सम्पूर्ण

श्री शिव महापुराण

ग्यारह खण्ड



ॐ नमः शिवाय

सम्पूर्ण

श्री शिव महापुराण

(ग्यारह खण्ड सरल भाषा में)



शिव-चालीसा, शिव-ताण्डव, शिव-सहस्त्रनाम तथा अन्य शिवार्चन की आरतियाँ व श्लोक दिए गए हैं।

सम्पादक
पं. केवल कृष्ण शास्त्री

(Shop) 0181-2241079
(Resi.) 0181-2234647

प्रदीप पब्लिशर्ज़

नज़दीक ट्यूबवैल, अड्डा टांडा, जालन्धर शहर।

मूल्य : 250/-

प्रकाशक :
प्रदीप पब्लिशर्ज़,
अड्डा टांडा, नज़दीक ट्यूबवैल,
जालन्धर शहर–144008.



प्रकाशक :
प्रदीप पब्लिशर्ज़,
जालन्धर शहर।

मुद्रक :
सरताज प्रिंटिंग प्रैस
जालन्धर शहर।

विषय-सूची

(पूर्वार्द्ध)
पहला खण्ड

तीसरा खण्ड

चौथा खण्ड

पाँचवां खण्ड

नौवां खण्ड

दसवां खण्ड

ग्यारहवां खण्ड



श्री शिवजी की आरती

जय शिव ओंकारा हर जय शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्धाङ्गी धारा॥ टेक॥
एकानन चतुरानन पंचानन राजे।
हंसानन गरुड़ासन बृषवाहन साजे॥ जय०॥
दो भुज चार चतुर्भुज दस भुज ते सोहे।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन जन मोहे॥ जय०॥
अक्षमाला बनमाला मुण्डमाला धारी।
चंदन मृगमद सोहे भाले शुभकारी॥ जय०॥
श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अंगे।
सनकादिक ब्रह्मादिक भूतादिक संगे॥ जय०॥
करके मध्य कमण्डल चक्र त्रिशूल धर्ता।
जगकर्ता जगभर्ता जगपालनकर्ता॥ जय०॥
ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव जानत अविवेका।
प्रणवाक्षर के मध्ये ये तीनों एका॥ जय०॥
त्रिगुण शिवजी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानन्द स्वामी मनवांछित फल पावे॥ जय०॥

श्री शिव चालीसा

॥दोहा॥

जय गणेश गिरिजा सुवन, मंगल मूल सुजान।
कहत अयोध्यादास तुम, देउ अभय वरदान॥

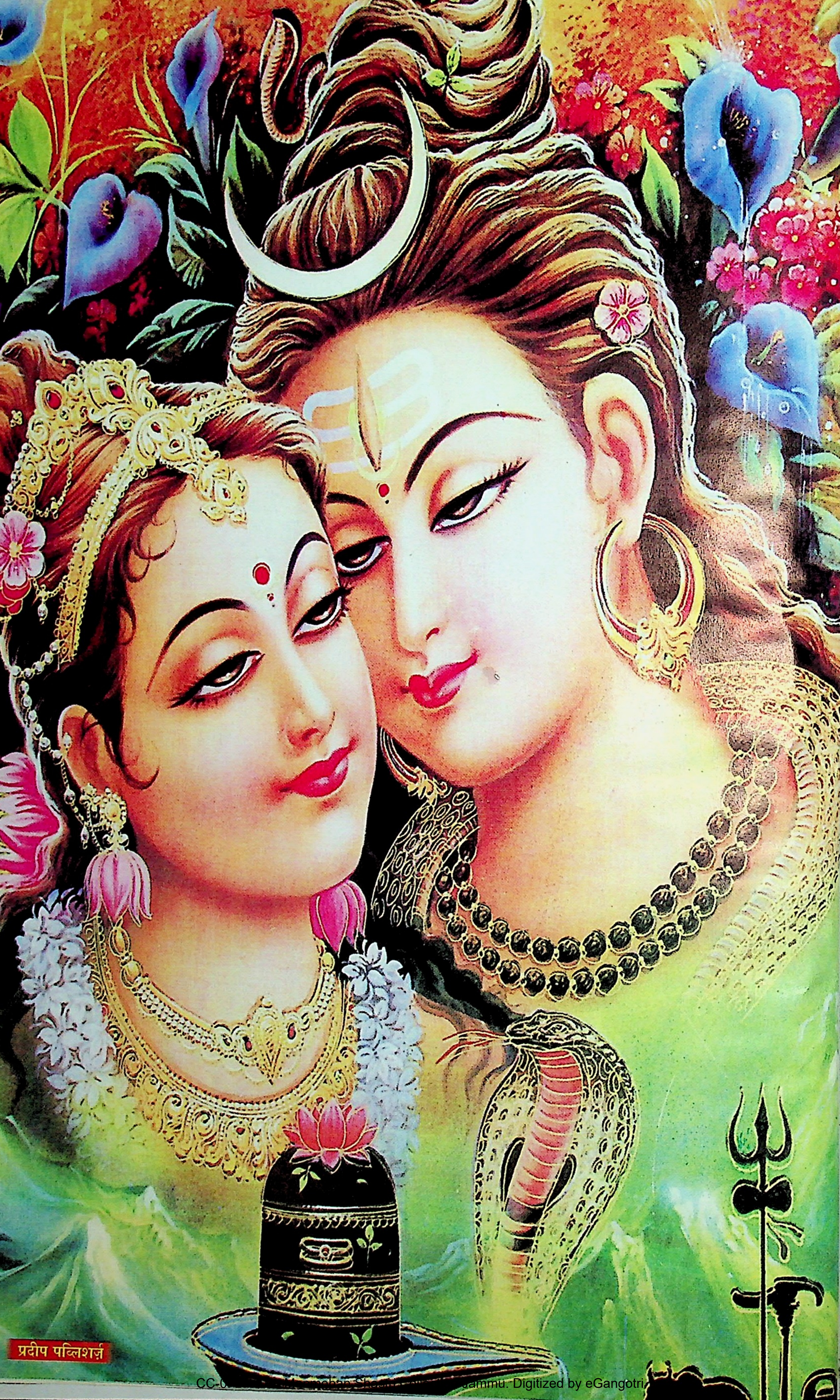
जय गिरिजापति दीनदयाला। सदा करत सन्तन प्रतिपाला॥
भाल चन्द्रमा सोहत नीके। कानन कुण्डल नागफनी के॥
अंग गौर शिर गंग बहाये। मुण्डमाल तन क्षार लगाये॥
वस्त्र खाल बाघम्बर सोहे। छवि को देख नाग मन मोहे॥
मैना मातु कि हवै दुलारी। बाम अंग सोहत छवि न्यारी॥
कर त्रिशूल सोहत छवि भारी। करत सदा शत्रुन क्षयकारी॥
नंदि गणेश सोहैं तहँ कैसे। सागर मध्य कमल हैं जैसे॥
कार्तिक श्याम और गणराऊ। या छवि कौ कहि जात न काऊ॥
देवन जबहीं जाय पुकारा। तबहीं दुःख प्रभु आप निवारा॥
किया उपद्रव तारक भारी। देवन सब मिलि तुमहिं जुहारी॥
तुरत षडानन आप पठायउ। लव निमेष महँ मारि गिरायउ॥
आप जलंधर असुर संहारा। सुयश तुम्हार विदित संसारा॥
त्रिपुरासुर सन युद्ध मचाई। सबहिं कृपा करि लीन बचाई॥
किया तपहिं भागीरथ भारी। पुरव प्रतिज्ञा तासु पुरारी॥
दानिन महँ तुम सम कोउ नाहीं। सेवक स्तुति करत सदाहीं॥
वेद नाम महिमा तव गाई। अकथ अनादि भेद नहिं पाई॥
प्रकटी उदधि मथन में ज्वाला। जरत सुरासुर भए विहाला॥
कीन्ह दया तहँ करी सहाई। नीलकंठ तब नाम कहाई॥
पूजन रामचन्द्र जब कीन्हा। जीत के लंक विभीषण दीन्हा॥
सहस कमल में हो रहे धारी। कीन्ह परीक्षा तबहिं त्रिपुरारी॥

एक कमल प्रभु राखेउ जोई। कमल नैन पूजन चहुँ सोई॥
कठिन भक्ति देखी प्रभु शंकर। भये प्रसन्न दिये इच्छित वर॥
जय जय जय अनन्त अविनाशी। करत कृपा सबके घटवासी॥
दुष्ट सकल नित मोहि सतावैं। भ्रमत रहौं मोहि नैन न आवैं॥
त्राहि त्राहि मैं नाथ पुकारों। यहि अवसर मोहि आन उबारों॥
ले त्रिशूल शत्रुन को मारो। संकट तें मोहि आन उबारो॥
मात-पिता भ्राता सब होई। संकट में पूछत नहीं कोई॥
स्वामी एक है आस तुम्हारी। आय हरहु मम संकट भारी॥
धन निर्धन को देत सदाहीं। जो कोई जाँचे सो फल पाहीं॥
स्तुति केहि विधि करौं तुम्हारी। क्षमहु नाथ अब चूक हमारी॥
शंकर हो संकट के नाशन। विघ्न विनाशन मंगल कारन॥
योगी यति मुनि ध्यान लगावैं। नारद शारद शीश नवावैं॥
नमो नमो जय नमो शिवाय। सुर ब्रह्मादिक पार न पाय॥
जो यह पाठ करे मन लाई। ता पर होत हैं शम्भु सहाई॥
ऋनियां जो कोई हो अधिकारी। पाठ करे सो पावनहारी॥
पुत्र होन कर इच्छा कोई। निश्चय शिव प्रसाद तेहि होई॥
पण्डित त्रयोदशी को लावे। ध्यानपूर्वक होम करावे॥
त्रयोदशी व्रत करे हमेशा। तन नहिं ताके रहे कलेशा॥
धूप दीप नैवेद्य चढ़ावे। शंकर सम्मुख पाठ सुनावे॥
जन्म-जन्म के पाप नसावे। अन्त धाम शिवपुर में पावे॥
कहत अयोध्या आस तुम्हारी। जानि सकल दुःख हरहु हमारी॥

॥ दोहा ॥

नित्य नेम कर प्रातः ही, पाठ करो चालीस।
तुम मेरी मनोकामना, पूर्ण करो जगदीश॥
मगसर छठि हेमन्त ऋतु, संवत् चौंसठ आन।
अस्तुति चालीसा शिवहिं, पूर्ण कीन कल्याण॥


प्रदीप पब्लिशर्ज़


प्रदीप पब्लिशर्ज़

श्री शिव स्तुति

॥ दोहा ॥

श्री गिरजापति वंदिकर, चरण मध्य शिरनाय।
कहत अयोध्यादास तुम, मो पर होहु सहाय॥

नंदी की सवारी नाग अंगीकार धारी, नित संत सुखकारी नीलकंठ त्रिपुरारी हैं।
गले मुण्डमाला धारी सिर सोहे जटाधारी, वाम अंग में बिहारी गिरिराज सुतवारी हैं॥
दानी देख भारी शेष शारदा पुकारी, काशीपति मदनारी कर त्रिशूल चक्रधारी हैं।
कला उजियारी लख देव सो निहारी, यश गावें वेदचारी सो हमारी रखवारी हैं॥
शम्भु बैठे हैं विशाला भंग पीवें सो निराला, नित रहें मतवाला अहि अंग पै चढ़ाये हैं।
गले सोहे मुण्डमाला कर डमरू विशाला, अरु ओढ़े मृगछाला भस्म अंग में लगाये हैं॥
संग सुरभि सुतमाला कर भक्त प्रतिपाला, मृत्यु हरे अकाला शीश जटा को बढ़ाये हैं।
कहैं रामलाला मोहि करो तुम निहाला अब, गिरिजापति कसाला जैसे काम को जलाये हैं॥
मारा है जलंधर और त्रिपुर को संहारा जिन, जारा है काम जाके शीश गंगधारा है।
धारा है अपार जासु महिमा है तीनों लोक, भाल से है इन्दु जाके सुषमा की सारा है॥
सारा है बात सब खायो हलाहल जानि, भक्त के अधारा जाहि वेदन उचारा है।
चारों हैं भाग जाके द्वारा हैं गिरीश कन्या, कहत अयोध्या सोई मालिक हमारा है॥
अष्ट गुरु ज्ञानी जाके मुख वेदबानी, सोहै भवन में भवानी सुख सम्पत्ति लहा करें।
मुण्डन की माला जाके चन्द्रमा ललाट सोहै, दासन के दास जाके दारिद दहा करै॥
चारों द्वार बन्दी जाके द्वारपाल नन्दी, कहत कवि अनन्दी नर नाहक हा हा करें।
जगत रिसाय यमराज की कहा बसाय, शंकर सहाय सो भयंकर कहा करें॥
सवैया—गौर शरीर में गौर विराजत, मोर जटा सिर सोहत जाके।
नागन को उपवीत लसै अयोध्या, कहे शशी भाल में ताके॥
दान करै पल में फल चारि, और टारत अंक लिखे विधना के।
शंकर नाम निःशंक सदाहि, भरोसे रहैं निशिवासर ताके॥

॥ दोहा ॥

मगसर मास हेमन्त ऋतु, छठा दिन है शुभ बुद्ध।
कहत अयोध्यादास तुम, शिव के विनय समुद्ध॥

श्री शिवाष्टक

आदि अनादि अनन्त, अखण्ड अभेद अखेद सुबेद बतावैं।
अलख अगोचर रूप महेश कौ, जोगि-जती-मुनि ध्यान न पावैं॥
आगम — निगम — पुरान सबैं, इतिहास सदा जिनके गुन गावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई, जो साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥
सृजन सुपालन-लय-लीला हित, जो विधि-हरि-हर रूप बनावैं।
एकहि आप विचित्र अनेक, सुवेष बनाइ कैं लीला रचावैं॥
सुन्दर सृष्टि सुपालन करि, जग पुनि बन काल जु खाय पचावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥
अगुन अनीह अनामय अज, अविकार सहज निज रूप धरावैं।
परम सुरम्य बसन-आभूषन, सजि मुनि-मोहन रूप करावैं॥
ललित ललाट बाल बिधु बिलसै, रतन-हार उर पै लहरावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥
अंग विभूति रमाय मसान की। विषमय भुजंगनि कौं लपटावैं।
नर-कपाल कर, मुण्डमाल गल, भालु-चर्म सब अंग उढावैं॥
घोर दिगम्बर, लोचन तीन, भयानक देखि कैं सब थर्रावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥
सुनतहि दीन की दीन पुकार, दयानिधि आप उबारन आवैं।
पहुंच तहाँ अविलम्ब सुदारुन, मृत्यु को मर्म बिदारि भगावैं॥
मुनि मृकंडु-सुत की गाथा सुचि, अजहु विग्यजन गाई सुनावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥
चाउर चारि जो फूल धतूरे के, बेल के पात औ पानी चढ़ावैं।

गाल बजाय कै बोला जो, 'हरहर महादेव' धुनि जोर लगावैं॥
तिनहिं महाफल देय सदाशिव, सहजहि भुक्ति-मुक्ति सो पावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥
बिनसि दोष दुःख दुरित दैन्य, दारिद्र्यं नित्य सुख-शांति मिलावैं।
आसुतोष हर पाप-ताप सब, निरमल बुद्धि-चित्त बकसावैं॥
असरन-सरन काटि भवबन्धन, भव निज भवन भव्य बुलवावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥
औढरदानि, उदार अपार जु, नैकु-सी सेवा तें ढुरि जावैं।
दमन अशांति, समन सब संकट, बिरद विचार जनहि अपनावैं॥
ऐसे कृपालु कृपामय देव के, क्यों न सरन अबहीं चलि जावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो, साँब-सदाशिव कौं नित ध्यावैं॥

भजन

झाँकी उमा महेश की, आठों पहर किया करूँ,
नैनों के पात्र में सुधा भर-भर के मैं पिया करूँ।
वाराणसी का वास हो, और न कोई पास हो,
गिरिजापति के नाम का सुमिरन भजन किया करूँ॥
जयति जय महेश हे! जयति नन्दकेश हे!
जयति जय उमेश हे, प्रेम से मैं जपा करूँ।
अम्बा कहीं श्रमित न हों, सेवा का भार मुझको दो,
जी भरके तुम पिया करो, घोट के मैं दिया करूँ॥
जी में तुम्हारी है लगन, खेंचते हैं उधर व्यसन,
हरदम चलायमान मन, इसका उपाय क्या करूँ।
भिक्षा में नाथ दीजिये, अपनी शरण में लीजिये,
ऐसा प्रबन्ध कीजिये, सेवा में मैं रहा करूँ॥
तुम तो जगत के नाथ हो, सब पै दया का हाथ हो,
मैं ही निराश हूँ प्रभो, द्वार से क्यों फिरा करूँ।
बेकल हूँ नाथ रात दिन, चैन नहीं हजूर बिन,
दासतो सब्र कर भी ले, दिल का इलाज क्या करूँ॥

श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रम्

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी,
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरिः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणन्,
ममाप्येवस्तोत्रे हर निरपबादः परिकरः॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोरतद्व्यावृत्त्या यं
चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतविधिगुणः कस्य विषयः,
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥

मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवतस्तव
ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः,
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्,
त्रयीवस्तुव्यस्तं तृसृषु गुणभिन्नासुतनुषु।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं विहन्तुं,
व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः॥

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम्,
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतवर्यैश्वेर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः,
कुतर्कोऽयंकांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगतामधिष्ठातरं,
किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च॥
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

महोक्षः खट्वाङ्गंपरशुरजिनं भस्म फणिनः,
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रू प्रणिहितां,
न हि स्वात्माराम विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्तव ध्रुवमिदं,
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव,
स्तुवज्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः,
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत् स्वयं तस्थे
ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं,
दशास्यो यद्बाहूनभृतरणकण्डूपरवशान्।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः,
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं,
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्यापातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि,
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रु वमुपचितो मुह्यतिखलः॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सतीमधश्चक्रे
बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन् रिवसितरि त्वच्चरणयोः,
न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा,
विधेस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव ज कुरुते न श्रियमहो,
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे,
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्,
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः॥

महीं पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदम्,
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगमणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा,
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैन विभुता॥
विद्यव्यापी तारागणगुणितफनोद्गमरुचिः,
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमित्यनेनैवोन्नेयं
धृतमहिमदिव्यं तव वपुः॥
रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो,
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधिर्विधेयैः क्रीडन्त्यो
न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥
हरिस्ते साहस्त्रं कमलवलिमाधाय
पदयोर्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा,
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहरजागर्ति जगताम्॥
क्रतौ सुप्ते जाग्रात्वमसि फलयोगे क्रतुमताम्,
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं,
श्रुतौ श्रद्धां वद्ध्वा कृतिपरिकरः कर्मसु जनः॥
क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृताम्,
ऋषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणा।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानब्यसनिनो ध्रुवं कर्तृः,
श्रद्धाविधुरमभिचाराय हिं मखाः॥
प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं,
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुः पाणेर्यातं दिवमति सपत्राकृतममुम्,
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगब्याधरभसः॥
स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वापुरमथन पुष्पायुधमपि।

यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटनाद,
अवैति त्वामद्धा तव वरद मुग्धा युवतयः ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः
सहचराश्चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलम्,
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः,
प्रहृष्योद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये,
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहस्त्वमापस्त्वं
व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रतिगिरम्,
न विद्मस्तत्तत्त्वंवयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

त्रयीं तिस्त्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि,
सुरानकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धारमणुभिः,
समस्तव्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥

भवः शर्वो रुद्र पशुपतिरथोग्रः सह महांस्तथा
भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरित देव श्रुतिरपि,
प्रियायास्मै ते धाम्ने प्रणि हितनमस्योऽस्मि भवते ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो,
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन दविष्ठाय च नमो नमः,
सर्वस्मैते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तो भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकुते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः,
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व चेद,
क्व चं तव गुणसोमोल्लङ्घिनीशश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्यमां
भक्तिराधाद्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधुपात्र,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानांमीशपारं न याति॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौलेर्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥
अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रमानकीर्तिमांश्च॥

महेशान्नपरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अधोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वंगुरोः परम्॥
दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं योगादिकाः क्रियाः।
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

कुसुमदशनामा सर्वगन्धर्वराजः शशिधरंवरमौलैर्देवदेवस्य दासः।
सखलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात् स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः॥
सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं पठित यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः स्तवनमिदममौघं पुष्पदन्तप्रणीतम्॥
श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्य गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम्॥
तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥
इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेश प्रीयतां मे सदाशिवः॥

॥ शिवताण्डवस्तोत्रम् ॥

जटाकटाहसंभ्रमन्निलिम्पनिर्झरीविलोलवी चिवल्लरी विराजमानमूर्धनिम्।
धगद्धगद्धगज्वलल्ललाटपट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम॥ १॥
जटाटवीगलज्जलंप्रवाहपावितस्थले गलेऽवलम्ब्यलम्बितांभुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डुमड्डुमड्डुमन्निनादवड्डुमर्वयं चकारचण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥ २॥
धराधरेन्द्र नंदिनी विलासबन्धुबन्धुरस्फुरस्फुरद्दिगन्त संततिप्रमोदमानमानसे।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि क्वचिद्दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि॥ ३॥
जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभाकदम्बकुङ्कमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे।
मदान्ध सिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमे दुरे मनो विनोदमद्भुतं बिभर्त्तु भूतभर्तरि॥ ४॥
ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम्।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं महाकपालिसम्पदेशिरोजटालमस्तु नः॥ ५॥
सहस्त्रलोचन-प्रभृत्यशेषलेखशेखर प्रसूनधूलिधोरणी विधूसराङ्घ्रिपीठभूः।
भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः श्रियै चिराय जायताञ्चकोरबन्धुशेखरः॥ ६॥
करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्वलद्धनञ्जयाधरीकृतप्रचण्डपञ्चसायके।
धराधरेन्द्र नन्दिनीकुचाप्र चित्रपत्रकप्रल्पनैकशिल्पनि त्रिलोचने मतिर्मम॥ ७॥
नवीनमेघमण्डली निरुद्धदुर्धरस्फुरत्कुहू निशीथिनीतमः प्रबन्धबन्धुकन्धरः।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतुकृत्तिसुन्दरः कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः॥ ८॥
प्रफुल्लनीलपंकजप्रपञ्चकालिमप्रभावलम्बिककण्ठकन्दली रुचिप्रबद्धकन्धरम्।
स्वरच्छिदंपुरच्छिदंभवच्छिदंमखच्छिदं गजच्छिदान्धकच्छिदंतमन्तकच्छिदंभजे॥ ९॥
अगर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरीरसप्रवाहमाधुरी विजृम्भणामधुव्रतम्।
स्मरान्तकं पुरान्तकंभवान्तकं मखान्तकं गजान्तकान्धकान्तकन्तमन्तकान्तकं भजे॥ १०॥
जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजङ्गमस्फुरद्धगद्धगद्वि निर्गमत्करालभालहव्यवाट्।
धिमिद्धिमिद्धमिध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गलध्वनिक्रमप्रवर्त्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः॥ ११॥
दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्त्रजोर्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः।
तृणारविन्दचक्षुपोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः समं प्रवर्तयन्मनः कदासदा शिवं भजाम्यहम्॥ १२॥
कदा निनिलम्पनिर्झरी निकुञ्जकोटरेवसन् विमुक्तदुर्भतिः सदा शिरस्यमञ्जलिं वहन्।
विमुक्तलोललोचनो लालमभाललग्नकः शिवेति मन्त्रमुच्चरन्कदासुखीभवाम्यहम्॥ १३॥
निलिम्पनाथनागरीकदम्बमौलिमल्लिका निगुम्फनिर्भरक्षरमन्धूष्णिकामनोहरः।
तनोतु नो मनोमुदं विनोदिनीमहर्निशं परश्रियः परम्पदन्तदङ्गजत्विषाञ्चयः॥ १४॥
प्रचण्डवाडवानल प्रभाशुभप्रचारिणी महाष्टसिद्धिकामिनीजनावहूतजल्पना।
विमुक्तवामलोचनाविवाहकालिकध्वनिः शिवेतिमन्त्रभूषणाजगज्जयायजायताम्॥ १५॥
पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं यः शम्भुपूजनमिदं पठित प्रदोषे।
तस्यस्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां लक्ष्मीं सदैवसुमुखीं प्रददाति शम्भुः॥ १६॥

॥ अथ मृत्युञ्जयस्तोत्रम् ॥

कैलासस्योत्तरे श्रृंगे शुद्धस्फटिकसन्निभे। तमोगुणविहीने तु जरामृत्युविवर्जिते॥ १॥
सर्वार्थ सम्पदाधारे सर्वज्ञान कृतालये। कृताञ्जलिपुटो ब्रह्मा ध्यानासीन सदा शिवम्॥ २॥
पप्रच्छ प्रणतो भूत्वा जानुभ्यामवनिं गतः। सर्वार्थसम्पदाधारो ब्रह्मलोकपितामहः॥ ३॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

केनोपायेन देवेश चिरापुर्लोमशोऽभवत्। तन्मे ब्रूहिम महेशान लोकानां हितकाम्यया॥ ४॥

॥ श्रीसदाशिव उवाच ॥

शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि चिरायुर्मुनिसत्तमः। सञ्जातः कर्मणा येन व्याधिमृत्युविविर्जितः॥ ५॥
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे सलिलौघपरिप्लुते। कृतान्तभयनाशाय स्तुतो मृत्युञ्जयः शिव॥ ६॥
तस्य सङ्कीर्त्तनान्नित्यं मुनिमृत्युविवर्जितः। तमेवं कीर्तयेब्रह्मन्मृत्युं जेतुं न संशयः॥ ७॥

॥ श्रीलोमश उवाच ॥

ॐ देवाधिदेवदेवेश सर्व प्राणिभृताम्बर। प्राणिनामपि नाथस्त्वं मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ८॥
देहिनां जीवभूतोऽसि जीवो जीवस्य कारणम्। जगतो रक्षकस्त्वं वै मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ९॥
हेमाद्रि शिखराकारं सुधावीचि मनोहरम्। पुण्डरीकं परज्योर्तिमृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ १०॥
ध्यानाधारं महाज्ञानं सर्वज्ञानेककारणम्। परित्रासि च लोकानां मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ११॥
निहता येन कालेन सदेवासुरसानुषाः। गन्धर्वाप्सरसश्चैव सिद्धविद्याधरास्तथा॥ १२॥
साध्याश्च वसवो रुद्रास्तथाश्विनिसुतावुभौ। मरुतश्च दिशा नागाः स्थावराजङ्गमास्तथा॥ १३॥
जिता सोऽपि त्वया ध्यायन्मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ १४॥
ये ध्यायन्ति परां मूर्तिम्पूजयन्त्यमरादयः। न ते मृत्युवंश यान्ति मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ १५॥
त्वमोङ्कारोऽसि देवानां च सदाशिवः। आधारशक्तिः शक्तिनां मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ १६॥
स्थावरेजङ्गमे वापि यावतिष्ठति देहगः। जीवत्यपत्तलोकोऽयं मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ १७॥
सोमसूर्याग्निमध्यस्य व्योमव्यापिन्सदाशिवः। कालत्रयमहाकाल मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ १८॥
प्रबुद्धे चाप्रबुद्धे च त्वयेव सृजसे जगत्। सृष्टिरूपेण देवेश मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ १९॥
व्योम्नि त्वं व्योमरूपोऽसि तेजः सर्वत्र तेजसि। ज्ञानिनां ज्ञानरूपोऽसि मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २०॥
जगज्जीवो जगत्प्राणः शृष्टा त्वं जगतः प्रभु। कारणं च सर्वतीर्थानां मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २१॥
नेता त्वमिन्द्रियाणां च सर्वज्ञानप्रबोधकः। सांख्ययोगश्च हंसश्च मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २२॥
रूपातीतः सुरूपश्च पिण्डस्थपदमेव च। चतुर्योगकलाधारः मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २३॥
रेचके बह्निरूपोऽसि सोमरूपोऽसि पूरके। कुम्भके शिवरूपोऽसि मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २४॥
क्षयंकरोषि पापानां पुण्यनामपि वर्द्धनम्। हेतुस्त्वं श्रेयसोनित्यं मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २५॥
सर्वमाया कलातीत सर्वेन्द्रिय परावर। सर्वेन्द्रिय कलाधीशं मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २६॥
रूपं गन्धो रसः स्पर्शः शब्दः संस्कार एव च। त्वत्तः प्रकाश ऐतेषां मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २७॥
चतुर्विधानां सृष्टिनां हेतुस्त्वं कारणेश्वर। भावाभावपरिच्छन्न मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २८॥
त्वमेको निष्कलो लोके सकले भुवनत्रये। अतिसूक्ष्मातिरूपस्त्वं मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ २९॥
त्वं प्रबोधस्त्वमाधारस्त्वद्वीजं भुवनत्रयम्। सत्वं रजस्तमस्त्वं हि मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ३०॥
त्वं सोमस्त्वं दिनेशश्च त्वमात्मा प्रकृतेः परः। अष्टत्रिंशत्कलानाथ मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ३१॥
सर्वेन्द्रियाणामाधारः सर्वभूत गुणाश्रेय। सर्वज्ञानामयानन्त मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ३२॥
त्वमात्मा सर्वभूतानां गुणानां त्वमधीश्वरः। सर्वानन्दमयाधार मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ३३॥
त्वं यज्ञः सर्वज्ञानां त्वं बुद्धिबोधलक्षण। शब्दब्रह्मत्वमोङ्कार मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते॥ ३४॥

॥ श्रीसदाशिव उवाच ॥

एवं सङ्कीर्त्तयेद्यस्तु शुचिस्तद्गतमानसः। भक्त्याश्रृणोतियोब्रह्मनसमृत्युवशो भवेत्॥ ३५॥
न च मृत्युभयं तस्य प्राप्तकालं च लंघयेत्। अपमृतत्युभयं तस्य प्रणश्यति न संशयः॥ ३६॥
ब्याधयो नोपपद्यन्ते नोपसर्गभयं भवेत्। प्रत्यासन्नयरे काले शतैकावर्तने कृते॥ ३७॥
मृत्युर्न जायते तस्य रोगान्मुञ्चति निश्चितम्। पाञ्चम्यां वा दशम्यां व पौर्णमास्यामथापि वा॥ ३८॥
शतमावर्तयेद्यस्तु शत वर्ष स जीवति। तेजस्वी बलसम्पन्नो लभते श्रियमुत्तमाम्॥ ३९॥
त्रिविधं नाशयेत्पापं मनोवाक्कायसंभवम्। अभिचाराणि कर्माणि कर्माण्यार्थवणानि च।
क्षीयन्ते नात्र सन्देहो दुःस्वप्नश्च विनश्यति॥ ४०॥
इदं रहस्यं परमं देवदेवस्य शूलिनः। दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं सर्वविघ्नविनाशनम्॥ ४१॥

॥ ओ३म नमो भगवते मृत्युञ्जयाय ॥

तो विष्णवर्पितमना मार्कण्डेयो महामतिः। तुष्टाव प्रणतो भूत्वा देवदेवं जनार्दनम्॥ १॥
विष्णुनैवोपदिष्टं तु स्तोत्रं कर्णे महामनाः। सम्भावितेन मनसा तेन तुष्टाव माथवम्॥ २॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नारायणं सहास्त्राक्षंपद्मनाभं पुरानतम्। प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति॥ ३॥
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजव्ययम्। केशं च प्रणतोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति॥ ४॥
वाराहं वामनं विष्णुं नरसिंह जनार्दनम्। माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति॥ ५॥
पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीज जगत्पतिम्। लोकनाथं प्रणतोऽस्मि किं मे मृत्यु करिष्यति॥ ६॥
भूतात्मानं महात्मानं जगद्योनिमयोनिजम्। विश्वरूपं प्रणतोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति॥ ७॥
सहस्त्र शिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्। महायोगं प्रणतोऽस्मि किं मे मृत्युः करिष्यति॥ ८॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः। अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैश्च पीड़ितः॥ ९॥
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता। प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम्॥ १०॥
मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह॥ ११॥
य इदं पठते भक्त्या त्रिकालं नियतः शुचि। नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नस्याच्युतचेतसः॥ १२॥
हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं नारायणं शाश्वतमादिदेवम्।
सञ्चिन्त्य सूर्यादपिरोचमानं मृत्युं स रोगी जितवांस्तदैव॥ १३॥

॥ अथ द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तोत्रम् ॥

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्ण तंसोमनाथं शरणं प्रपद्ये॥ १॥
श्रीशैलश्रृङ्गे बिबुधातिसङ्गे तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम्।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं नमामि संसार समुद्रसेतुम्॥ २॥
अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरणक्षार्थं बन्दे महाकाल महासुरेशम्॥ ३॥

कावेरिकानर्मदयोः पवित्र समागमे सजनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे बसन्तमोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे ॥ ४॥
पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा वसन्तं गिरिजासमेतम्।
सुरासुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि॥ ५॥
याम्ये सदङ्गे नगरेऽतिरम्ये विभूषितांग विविधैश्च भोगैः।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये॥ ६॥
महाद्रिपार्श्वेचतटेरमन्तं सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः॥
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः केदारमीशं विशमेकमीडे ॥ ७॥
सह्याद्रिशीषं विमले वसन्तं गोदावरीतीरपवित्रदेशे।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ॥ ८॥
सुताम्रपर्णीजलराशियोगे निबध्यसेतु विशिखैरसङ्ख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं रामेश्वराख्यं नियतं नमामि॥ ९॥
यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिप्रसिद्धं तं शङ्करं भक्तहितं नमामि॥ १०॥
सानन्दमानन्दवने वसन्तन् आनंदकन्दं हतापापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये॥ ११॥
इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम्।
वन्दे महोदारतरं स्वभावं घृणेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये॥ १२॥
ज्योतिर्मयद्वादशलिंगकानां शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण।
स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या फलं तदालोक्य निजं भजेच्च॥ १३॥

॥ शिवपंचाक्षरस्तोत्रम् ॥

श्रीगणेशाय नमः॥ नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्मांगरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय॥ १॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय॥ २॥
शिवाय गौरीवंदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषभध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय॥ ३॥
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्राकवैश्वानरलोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय॥ ४॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै याकाराय नमः शिवाय॥ ५॥
पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
शिवलोकम् वाप्नोति शिवने सह मोदते॥ ६॥

॥ अथ कल्किकृतशिवस्तोत्रम् ॥

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं, भूतावासं वासुकीकण्ठभूषणम्।
त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं, वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम्॥ १॥
योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासंगंक्लिक्रमूर्धानमीशम्।
जटाजूटटोपनिक्षिप्तभावं, महाकालं चन्द्रभालं नमामि॥ २॥
श्मशानस्थं भूतवेतालसंगं, नानाशस्त्रैः खड्गशूलदिभिश्च।
व्याग्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे, यस्यक्रोधोद्भूत लोकऽस्तमेति॥ ३॥
यो भूतादिः पञ्चभूतैः सिसृक्षुस्तन्मात्रत्माकाल कर्म स्वभावैः।
प्रहत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दे रमन्ते तं नमामि॥ ४॥
स्थितौ विष्णुः सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून्धन्धर्मसेतून्विभर्ति।
ब्रह्माद्यंशैर्योभिमानो गुणात्मा, शब्दाद्यंगैस्तं परेशं नमामि॥ ५॥
यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके, ज्वलत्यग्निः सविता याति तप्यन्।
शीतांशुः खे तारकासंग्रहश्चप्रवर्तन्ते तं परेश प्रपद्यं॥ ६॥
यस्य श्वासात्सर्वधात्रीधरित्री देवो वर्षत्युन्बु कालः प्रमाता।
मेरुर्मध्ये भुवनानां च भर्ता तमीशानं विश्वरूप नमामि॥ ७॥

॥ अथ प्रदोषस्तोत्रम् ॥

जय देव जगन्नाथ जय शंकर शाश्वत। जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित॥ १॥
जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद। जय नित्यं निराधार जय विश्वम्भराव्यय॥ २॥
जय विश्वैकवन्द्येशं जय नागेन्द्रभूषण। जय गौरपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर॥ ३॥
जय कोट्यर्क संकाश जयानन्तरगुणाश्रय। जय भद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्यनिरंजन॥ ४॥
जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभंजन। जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो॥ ५॥
प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः। सर्वपापक्षय कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर॥ ६॥
महादारिद्रयमग्नस्य महापापहतस्य च। महाशोकनिविष्टस्य महारोगातुरस्य च॥ ७॥
ऋणभारपरीतस्य दह्यमांनस्य कर्मभिः। ग्रहैः प्रपोड्यमानस्य प्रसीद् मम शंकर॥ ८॥
दरिद्रः प्रार्थयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम्। अर्थाढ्यो वाऽथ राजा वा प्रार्थयेद्देवमीश्वरम्॥ ९॥
दीर्घमायुः सदारोग्यं कोषवृद्धिर्बलोन्नतिः। ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्करः॥ १०॥
शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदंतु मम प्रजाः। नायान्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः॥ ११॥
दुर्भिक्षमारिसंतापाः शमं यातुं महीतले। सर्वसस्यसमृद्धिश्चभूयात्सुखमया दिशः॥ १२॥
एवमाराधयेद्देवं पूजान्ते गिरिजा पतिम्। ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चद्दाक्षिणाभिश्च पूजयेत्॥ १३॥
सर्वपापक्षयकारी सर्वरोगनिवारिणी। शिवपूजा मयाख्याता सर्वाभिष्टफलप्रदा॥ १४॥

॥ अथ शिवरक्षा स्तोत्रम् ॥

अस्य श्रीशिवरक्षास्तोत्रमंत्रस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः श्रीसदाशिवो देवता।
अनुष्टुप्छन्दः, श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थं शिवरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः॥

चरित्रं देव देवस्य महादेवस्य पावनम्। अपारं परमोदारं चतुर्वर्गस्य साधनम्॥ १॥
गौरीविनायकोपेतं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रकम्। शिवं ध्यात्वा दशभुजं शिवरक्षां पठेन्नरः॥ २॥
गंगाधरः शिरः पातु भालमर्धेन्दुशेखरः। नयने मदनध्वंसी कर्णौ सर्वविभूषणः॥ ३॥
घ्राणं पातु पुरारातिर्मुखं पातु जगत्पतिः। जिह्वां वागीश्वरः पातु कन्धरां शितिकन्धरः॥ ४॥
श्रीकण्ठः पातु मे कण्ठं स्कन्धौ विश्वधुरन्धरः भुजौभूभारसंहर्ता करौ पातु पिनाकधृक्॥ ५॥
हृदयं शंकरः पातुजठरं गिरजापतिः। नाभिं मृत्युञ्जयः पातु कटी व्याघ्राजिनाम्बरः॥ ६॥
सक्थिनी पातु दीनार्तशरणागतवत्सलः। ऊरू महेश्वरः पातु जानुनी जगदीश्वरः॥ ७॥
जंघे पातु जगत्कर्त्ता गुल्फौ पातु गणाधिपः। चरणौ करुणासिन्धुः सर्वाङ्गिन सदाशिवः॥ ८॥
एतांशिवबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्। सभुक्त्वा सर्कलान्कामान् शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ९॥
ग्रहभूतपिशाचाद्यास्त्रैलोक्ये विचरन्ति ये। दूरादाशु पलायन्ते शिवनामाभिरक्षणात्॥ १०॥
अभयङ्करनामेदं कवचं पार्वतीपतेः॥ भक्त्यां बिभर्ति यः कण्ठे तस्य वश्यं जगत्त्रयम्॥ ११॥
इमां नारायणः स्वप्ने शिवरक्षां यथाऽऽदिशत्॥ प्रातरुत्थाय योगीन्द्रौ याज्ञवल्क्यस्तथाऽलिखत्॥ १२॥

॥ अथ शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ॥

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः॥
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः॥ १॥
शङ्करः शूलपाणिश्व खट्वाङ्गी विष्णु वल्लभः॥
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः॥ २॥
भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः॥
उग्रः कपाली कामारिरन्धकासुरसूदनः॥ ३॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः॥
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः॥ ४॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः॥
वृषाङ्को वृषभारुढो भस्मोद्धूलितविग्रहः॥ ५॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः॥
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः॥ ६॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः॥
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः॥ ७॥

हिरण्यरेतादुधर्षो गिरीशो गिरोशोऽनघः ॥
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः ॥ ८ ॥
कृत्तिवासाः पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः ॥
मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः ॥ ९ ॥
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः ॥
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः ॥ १० ॥
अष्टमूर्तिरनेकाऽऽत्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः ॥
शाश्वतः स्त्रण्डपरशू रजः पाशविमोचनः ॥ ११ ॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययो हरिः ॥
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः ॥ १२ ॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्कारकः परमेश्वरः ॥ १३ ॥
एवमष्टोत्तरशतं नाम्नामाम्नायसम्मितम् ॥
शंकरस्य प्रिया गौरी जप्त्वा त्रैकाल्यमन्वहम् ॥ १४ ॥
प्रेरिता पद्मनाभेन वषमेकं प्रयत्नतः ॥
अवाप सा शरीरार्द्धं प्रसादाच्छूलपाणिनः ॥ १५ ॥
यस्त्रिसन्ध्यं पठेच्छम्भोर्नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥
शतरुद्रत्रयावत्त्या चैकावत्त्यापठेन्नरः ॥ १६ ॥

॥ अथ असितकृतशिवस्तोत्रम् ॥

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च।
योगीन्द्राणांयोगीन्द्र गुरूणा गुरवे नमः ॥ १ ॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन।
मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तुते ॥ २ ॥
कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण।
कालादतीत कालस्य कालकाल नमोऽस्तुते ॥ ३ ॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक।
गुणेश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः ॥ ४ ॥

तत्परः।
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च नमोऽस्तुते ॥ ५ ॥
ब्रह्मजीवस्वरूपेण ब्रह्मबीज
इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तथौ मुनीश्वरः।
दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥ ६ ॥
असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। लभेद्वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम्।
भवेद्धनाढ्योऽदुःखी च मूको भवति पण्डितः ॥ ७ ॥
अभार्यो लभते भार्या सुशीलां च पतिव्रताम्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसन्निधिम् ॥ ८ ॥
इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसे।
प्रचेतसा स्वपुत्रायासिताय दंत्तमुत्तमम् ॥ ९ ॥

॥ अथ शिवापराधक्षमापन स्तोत्रम् ॥

आदौ कर्मप्रसङ्गात्कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां,
विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्वथः यति नितरां जाठरो जातवेदाः ॥
यद्यद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोःश्रीमहादेव शम्भो ॥ १ ॥
बात्येदुःखातिरेकान्मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा,
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति ॥
नानारोगादिदुःखाद्रुदनपरवशः शङ्करं न स्मरामि,
क्षन्तव्योमेपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो ॥ २ ॥
प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसन्धौ,
दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादुसौख्ये निषण्णः ॥
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानवगर्वाधिरूढं,
क्षन्तव्योमेपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो ॥ ३ ॥
वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदैवाधितापैः,
पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनवसितवपुः प्रौढिषैदीनं च दीनम् ॥
मिथ्यामोहाभिलाहैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यं।
क्षन्तव्योमेपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो ॥ ४ ॥

नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपदगहनप्रत्यवायाकुलाख्यं।
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गेऽसुरारे॥
ज्ञातो धर्मो विचारैः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो॥ ५॥
स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्पननविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयं।
पूजार्थं वा कदाचिद्बहुतरगहनात् खण्डबिल्वीदनानि।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसितागन्धपुष्पैस्त्वदर्थं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो॥ ६॥
दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिसितसहितैः स्नापितं नैव लिङ्ग,
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं नं प्रसूनैः।
धूपैःकर्परदीपैर्विविधर सयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः,
क्षन्तव्योमेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो॥ ७॥
ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो,
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नापिंतं बीजमन्त्रेः॥
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमै रुद्रजाप्यैर्न वेदैः,
क्षन्तव्योमेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो॥ ८॥
स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयरुणत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे,
शान्ते स्वान्ते प्रलीनेप्रकटितविभवे ज्योतिरूपे पराख्ये॥
लिंगज्ञे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि।
क्षन्तव्योमेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो॥ ९॥
नग्नो निःसंगशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो,
नामाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित्।
उन्मन्याऽवस्थया त्वां विगतकलिमलं शङ्करं न स्मरामि।
क्षन्तव्योमेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेवशम्भो॥ १०॥
चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गंगाधरे शङ्करे,
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे॥
दन्तित्वक्कृस्सुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे मोक्षार्थं,
कुरुचित्तवृत्तिम खिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः॥ ११॥
किं वाऽनेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम्।

स्वात्मार्थं ज्ञात्वैतत्क्षणभंगुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः श्रीपार्वतीवल्लभम्॥ १२॥
गुरुवाक्यतो भज भज
आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गता पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाऽधुना॥ १३॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विहिगतविहितं वा सर्वमेतम् क्षमस्व जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥ १४॥

॥ अथ दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रम् ॥

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय॥
कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय दारिद्रयदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ १॥
गौरीप्रियाय रजनीशकलाधराय कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय॥
गङ्गाधराय गजराजविमर्दनाय दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ २॥
भक्तिप्रियाय भवरोगभयापहाय उग्राय दुर्गभवसागरतारणाय॥
ज्योतिर्मयाय गुणनामसुनृत्यकाय दारिद्रयदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ३॥
चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनया भालेक्षणाय मणिकुण्डलमण्डिताय॥
मञ्जीरपादयुगलाय जटाधराय दारिद्रयदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ४॥
पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय हेमांशुकाय भुमनत्रयमण्डिताय॥
आनन्दभूमिवरदाय तमोमयाय दारिद्रय०॥ ५॥
भानुप्रियाय भवसागरतारणाय कालान्तकाय कमलासनपूजिताय॥
नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय दारिद्रय०॥ ६॥
रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय नागप्रियाय नरकार्णवतारणाय॥
पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय दारिद्रय०॥ ७॥
मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय॥
मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय दारिद्रय०॥ ८॥
वशिष्ठेनकृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम्॥ सर्वसम्पत्करं शीघ्रं पुत्रपौत्रादिवर्धनम्॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ९॥

॥ अथ लिंगाष्टकस्तोत्रम् ॥

ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिङ्गं निर्मलभाषितशोभितलिङ्गम्। जन्मजदुःखविनाश कलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम्॥ १॥
देहमुनिप्रवरार्चितलिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम्। रावणदर्पविनाशनलिङ्गतत्प्रण०॥ २॥
सर्वसुगन्धिसुलेपितलिङ्गं बुद्धिविवर्धनकारलिंगम्। सिद्धसुरासुरवन्दितलिंगं तत्प्र०॥ ३॥
कनकमहामणि भूषितलिंगं फणिपतिवेष्टिशोभितलिंगम्। दक्षसुयज्ञविनाशन लिंगं तत्प्र०॥ ४॥
कुंकुमचन्दनलेपितलिंगं पङ्कजहारसुशोभितलिंगम्। सञ्चितपापविनाशनलिंगं तत्प्र०॥ ५॥
देवगणार्चितसेवितलिंगं भावैर्भक्तिभिरेव च लिंगम्। दिनकरकोटिप्रभाकरलिंगं तत्प्र०॥ ६॥
अष्टदलोपरिपेष्टितलिंगं सर्वसमुद्भवकारणलिंगम्। अष्टदरिद्रविनाशितलिंगं तत्प्र०॥ ७॥
सुरगुरुसुरवरपूजितलिंगं सुरवनपुष्पसदार्चितलिंगम्। परात्परं परमात्मकलिंगं तत्प्रणमामि०॥ ८॥
लिंगाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ। शिवलोकमवाप्नोति शिवने सह मोदते॥ ९॥

॥ अथ दक्षिणामूर्तिगुरुस्तोत्रम् ॥

विश्व दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया॥
यः साक्षीकुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये॥ १॥
बीजस्थनान्तरिवांकुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुनर्मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्याचित्रीकृतम्॥
मायावीन विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षि०॥ २॥
तस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसयो बोधयत्याश्रितान्।
सत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ तस्मै श्रीगुरुमूर्तये०॥ ३॥
नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभाम्वरं ज्ञानं यस्त तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते॥
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जगत्तस्मै श्रीगुरु०॥ ४॥
देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्ववहमिति भ्रान्ताभृशं वादिनः॥
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे तस्मै श्रीगुरु०॥ ५॥
राहुग्रस्त दिवाकरेन्दुसदृसोमायासमाच्छादनात्सन्मात्रः करणोपसंहरणतोयोऽभूत्सुषुप्तः पुमान्॥
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते तस्मै श्रीगुरु०॥ ६॥
बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा स्वास्ववस्थास्वपि व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा॥
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया तस्मै०॥ ७॥
विश्वं पश्यतिकार्यकारणतयास्वस्वामिसम्बन्धतः शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः॥
स्वप्ने जाग्रति वाय एष पुरुषो मायापरिभ्रामितस्तस्मै श्रीगुरु०॥ ८॥
भूरम्भांस्यनलोऽनिलोम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमानित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यै व मूल्यष्टकम्॥
नान्यत्किञ्चनं विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभोस्तस्मै श्रीगुरु०॥ ९॥
सर्वात्मस्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन्स्तवे तेनास्य श्रवणात्तथार्थमननाद्ध्यानाच्चसङ्कीर्तनात्॥
सर्वत्मत्वमहाविभूतिसहिंत स्यादीश्वरत्वं स्वतः सिद्ध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणत्तंचैश्वर्यमव्याहतम्॥ १०॥
वटविटपिसमीपे भूमिभागे निषण्णं सकलमुनिजनानां ज्ञानदातारमारात्॥
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं जननमरणदुःखच्छेददक्षं नमामि॥ ११॥
चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धा शिष्या गुरुर्युवा। गुरुस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥ १२॥
ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्तये॥ निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्तये नमः॥ १३॥

निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम्॥ गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्तये नमः॥ १४॥
मौनव्याख्याप्रकटितपरब्रह्मतत्त्वंयुवानं वर्षिष्ठान्तेवसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः॥
आचार्येन्दंकरकलितचिमुन्द्रमानन्दरूपं स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे॥ १५॥

॥ अथ वेदसारशिवस्तोत्रम्॥

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्ति वसानं वरेण्यम्।
जटायूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकंस्मरामिस्मरारिम्॥ १॥
महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यंगभूषम्।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम्॥ २॥
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गणातीतरूपम्।
भवं भास्वरं भस्मना भूषितांग भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम्॥ ३॥
शिवाकान्त शम्भोशशाङ्कार्धमोले महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप॥ ४॥
परमात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोंकारवेद्यम्।
यतो याजते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम्॥ ५॥
न भूमिर्न चापो वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्यास्ति भूर्तिस्त्रिमूर्ति तमीडे॥ ६॥
अजं शाश्वतंकारणंकारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनंप्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्॥ ७॥
नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य॥ ८॥
प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः॥ ९॥
शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्।
काशीपते करुणया जगदेतदेकस्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि॥ १०॥
त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश लिङ्गात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन्॥ ११॥

॥ अथ विश्वनाथाष्टकस्तोत्रम्॥

गङ्गातरंगरमणीजटाकलापं गौरीनिरंतरविभूषितवामभागम्।
नारायण प्रियमनंगमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥ १॥

वाचामगोचरमेनकगुणस्वरूपं काशीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम्॥
वामेन विग्रहवरेणकलत्रवन्तं वारा० ॥ २ ॥
भूताधिपं भुजगभूषणभूपितांगं व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम्।
पापांकुशाभयवरप्रदशूलपाणिर्वाराणसीपुरपितं भज० ॥ ३ ॥
शीतांशुशोभित किरीटविराजमानं भालेक्षणानल विशोषितपञ्चवाणम्॥
नागांधिपारचित भासुरकर्णपूरं वाराणसी० ॥ ४ ॥
पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां नागान्तकं दनुजपुंगवपन्नगानाम्॥
दावानलं मरणसोकजराटवीनां वाराणसीपुर० ॥ ५ ॥
तेजोमयं सगुण निर्गुणमद्वितीयमानन्दकन्दमपराजितप्रमेयम्।
नागात्मकं सकलनिष्फलमात्मरूपं वाराणसी० ॥ ६ ॥
आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां पापे रचिं च सुनिवार्य मनः समाधौ॥
आदायहृत्कमलमध्यगतं परेशं वाराणसीपुर० ॥ ७ ॥
रोगादिदोषरहितं स्वजनानुराग्यवैराग्यशांतिनिलयं गिरिजासहायम्॥
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामं वारा० ॥ ८ ॥
वाराणसीपुरपतेःस्तवनं शिवस्यव्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः॥
विद्यांश्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं समप्राप्य देहविलये लभते च मोक्ष॥ ९ ॥
विश्वनाथष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ॥
शिवलोकमवाप्नीति शिवेन सह मोदते॥ १० ॥

॥ अथ चन्द्रशेखराष्टकम् ॥

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेख्रर पाहिमाम्। चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्षमाम्॥ १ ॥
रत्नसानुशरसनं रजतादिशृंग निकेतनं। सिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युताननसायकम्॥
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ २ ॥
पञ्चपादपपुष्पगन्धपदाम्बुजद्वयशोभितं। भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहपू॥
भस्म दिग्धकलेवरं भवनाशनं भवमव्ययं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ३ ॥
मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं। पङ्कजासनपद्मलोचनपूजितांघ्रिसरोरुहम्॥
देव सिंधुतरंगसीकरसिक्तशुभ्रजटाधरं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ४॥
यक्षराजसखं भगाक्षहरंभुजंगविभूषणं। शैलराजसुतापरिष्कृत चारुवामकलेवरम्॥
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ५ ॥
कुण्डलीकृतकुण्डलेश्वरकुण्डलं वृषवाहनं। नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम्॥
अंधकांध कमाश्रितापरपादपं शमनान्तकं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ६ ॥
भेषजं भवरोगिणाम खिलापदामपहारिणं। दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्॥
भुक्ति मुक्ति फलप्रदसं कलाघसंघनिर्बहणं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ७ ॥

३८ सर्वभूतपतिं परात्पारमप्रमेयमनुत्तमम्॥
भक्तवत्सलमर्चितंनि धिमक्षयंहरिदम्बरं। सर्वभूतपतिं परात्पारमप्रमेयमनुत्तमम्॥ ८॥
सोमवारिजभूहुताशनसोमपानिलखाकृतिं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ८॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं। संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमन्वितं। चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ९॥
मृत्युभीतमृकण्डसूनुकृतस्तवं शिवसन्निधौ। यत्र कुत्र च यः पठेन्नहितस्यं मृत्युभयं भवेत्॥
पूर्णमायुररोगितामखिलार्थसम्पदमादरं। चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः॥ १०॥

॥ अथ शिवभुजंगप्रयायतस्तोत्रम् ॥

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गखण्डं चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम्।
लसद्दन्तकाण्डं विपद्भङ्गचण्डं शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम्॥ १॥
अनाद्यान्तमाद्यं परं तत्त्वमर्थं चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयं।
हरिब्रह्ममृग्यं परब्रह्मरूपं मनोवागतीतं महः शैवमीडे॥ २॥
स्वशक्त्यादिशक्त्यन्तसिंहासनस्थं मनोहारि सर्वाङ्गरत्नादिभूषम्।
जटाहीन्दुगङ्गास्थिशश्यर्कमौलिं परं शक्तिमित्रं नमः पञ्चवक्त्रम्॥ ३॥
शिवेशानतमत्वपूरुषाधोरवामादिभिह्न्मुखै षड्भिरङ्गैः।
अनौपम्यषट्त्रिंशतं तत्त्वविद्यामतीतं परं त्वां कथं वेत्ति को वा॥ ४॥
प्रबालप्रभाहप्रभाशोणमर्थ मरुत्वन्मणिश्रीमहः श्याममर्धम्।
गुणस्यूतमेकं वपुश्चैकमन्तः स्मरामि स्मरापत्तिसम्पत्तिहेतुम्॥ ५॥
स्वसेवासमायातदेवासुरेन्द्रानमन्मौलिमन्दारमालाभिषिक्तम्॥
नमस्यामि शम्भो पदाम्भोरुहं ते भवाम्भोधिपोतं भवानीविभाव्यम्॥ ६॥
जगन्नाथ मन्नाथ गौरीश नाथ प्रपन्नानुकम्पिन्विपन्नार्तिहारिन्।
महः स्तोममूर्ते समस्तैकबन्धो नमस्ते नमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तुते॥ ७॥
महादेव देवेश देवाऽधिदेव स्मरारेपुरारे यमारे हरेति ब्रू बाणः।
स्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं ततो मे दयाशील देव प्रसीद॥ ८॥
विरूपाक्ष विश्वेश विद्यादिकेश त्रयीमूल शम्भो शिव त्र्यम्बक त्वम्।
प्रसीद स्मर त्राहि पश्याव पुष्य क्षमस्वाप्नुहि त्र्यक्ष पाहि क्षिपामः॥ ९॥
त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्थ नेति प्रसीद स्मरन्नेव हन्यास्तु दैन्यम्।
न चेत्तं भवेद्भक्तावात्सल्यहानिस्ततो मे दयालो दयां सन्निधेहि॥ १०॥
अय दानकाकलस्त्वहं दानपात्रं भवान्नाथ दाता त्वदन्यं न याचे।
भवद्भ क्तिमेव स्थिरां देहि मह्यं कृपाशील शम्भो कृतार्थोऽस्मितस्मात्॥ ११॥
पशुं वेत्सि चेन्मां त्वमेवाधिरूढः कलङ्कीति वा मूर्ध्नि धत्से त्वमेव।
द्विजिह्वः पुनः तोऽपि ते कण्ठभूषा त्वदङ्गीकृताः शर्व सर्वेऽपि धन्याः॥ १२॥

न शक्नोमि कर्तुं परद्रोहलेशं कथं प्रीयसे त्वं न जाने गिरीश।
तदा हि प्रसन्नोऽसि कस्यापि कान्तासुतद्रोहिणो वा पितृद्रोहिणो वा॥ १३॥
स्तुतिं ध्यानमर्चा यथावद्विधातुं भजन्नप्यजानन् महेशावलम्बे।
त्रसन्तं सुतं त्रातुमग्ने मृकण्डोर्यमप्राणनिर्वापणं त्वपदाब्जम्॥ १४॥
अकण्ठे कलङ्कादनङ्गे भुजङ्गादापाणो कपालदभालेऽनलाक्षात्॥
अमौलो शशाङ्कादवामे कलत्रादहं देनमन्यं न मन्ये॥ १५॥

॥ अथ पशुपत्यष्टकम्॥

पशुपतीन्दुपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम्॥ प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ १॥
न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलंकुलम्॥ अवति कोऽपि न कालवंश गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्॥ २॥
मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम्॥ प्रथमभूतगणैरपि सेवितं भजत रे०॥ ३॥
शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम्॥ अभयदं करुणावरुणा लयं भजत रे०॥ ४॥
नरशिरोरचितं मणिकुण्डल भुजगहारमुदं वृभध्वजम्॥ चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे०॥ ५॥
मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वर भाजिफलप्रदम्॥ प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे०॥ ६॥
मदपपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम्॥ जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे०॥ ७॥
हरिविरिञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम्॥ त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे०॥ ८॥
पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा। पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरी वसते लभते मुदम्॥ ९॥

॥ अथ शंकराष्टकम्॥

शीर्षजटा गणभारं गरलाहारं समस्तसंहारम्। कैलासाद्रिविहारं पारं भवबारिधे रहं वन्दे॥ १॥
चन्द्रकलोज्वलभालं कण्ठव्यालं जगत्त्रयीपालम्। कृतनरमस्तकमालं कालं कालस्य कोमलं वन्दे॥ २॥
कोपे क्षणहतकामं स्वात्मारामं नगेन्द्रजावामम्। संसृतिशोकविरामं श्याम कण्ठेन कारणं वन्दे॥ ३॥
कटि तट विलसितनागं खण्डितयागं महाद्नुतत्यागं विगत विषय रसरांगभागं यज्ञेषु विभ्रतं वन्दे॥ ४॥
त्रिपुरादिकदनुजान्तं गिरिजाकातं सदैव संशान्तम्। लीलाविजिकृतांतं भांतं स्वान्तेषु देहिनां वन्दे॥ ५॥
सुरसरिताप्लुतकेशं त्रिदशकुलेशं हृदालयावेशम्। विगताशेषक्लेशं देशं सुर्वेष्टसंपदं वन्दे॥ ६॥
करतलकलितपिनाकं विगतजराकं सुकर्मणां पाकं पदपदवीतवराकं नाकङ्गमपूगवन्दितं वन्दे॥ ७॥
भूतिविभूषितकायं दुस्तरमायं भव विवर्जितोपायं प्रणम समूह सहायं सायं प्रातर्तिरन्तर वन्दे॥ ८॥
यस्तु पदाष्टकमेतदब्रह्मानन्देन निर्मितं नित्यम्। पठति समाहितचेताः प्रप्नोत्यन्ते स शैवमेव पदम्॥ ९॥

॥ अथ शिवनामावल्यष्टकम्॥

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो॥ भूतेश भीतभयसूदन मामनाथं संसार दुःखणहानाज्जगदीश रक्ष॥ १॥
हे पार्वतीहृदयवल्लभ चन्द्रमौले भूताधिपप्रमथनाथ गिरिशजाप॥ हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे संसार दुःख०॥ २॥
हे नीलकण्ठ वृषभध्वज पंचवक्त्र लौकेश शेषयलय प्रथमेश शर्व॥ हे धूर्जटे पशुपते गिरिजापते मां संसार०॥ ३॥
हे विश्वनाथ शिव शङ्कर देवदेव गङ्गाधर प्रमथनायक नन्दिकेश॥ बाणेश्वरान्धकरिपो हर लोकनाथ संसार०॥ ४॥

सर्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ संसार०॥ ५॥
वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश वीरेशं दक्षमखकालं विभो गणेश॥ सर्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ संसार०॥ ५॥
वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश वीरेशं दक्षमखकालं विभो गणेश॥ संसारदुःख०॥ ६॥
श्रीमन्महेश्वर कृपामय हे दयालो हे व्योमकेश शितिकण्ठ गणाधिनाथ भस्माङ्गराग नृकपाल कलापमालं संसारदुःख०॥ ६॥
कैलासशैल विनिवास वृषकपे हे मृत्युञ्जय त्रिनयन त्रिजगन्निवास॥ नारायणप्रिय पदापह शक्तिनाथ संसार०॥ ७॥
विश्वेश विश्व भवनाशितविश्वरूप विश्वात्मक त्रिभुवनैकगुणाभिवेश॥ हे विश्वबन्धुकरुणामय दीनबन्धो संसार०॥ ८॥
गौरीविलासभुवनाय महेश्वराय पंचाननाय शरणागत कल्पकाय। सर्वाय सर्व जगतामधिपाय तस्मै दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय॥ ९॥

॥ अथ विश्वनाथाष्टकम् ॥

आदि शंभु स्वरूप मुनिवर चन्द्रशीश जटाधरं। मुण्डमाल विशाल लोचन वाहनं वृषभध्वजम्॥
नागचर्म्म त्रिशूलडमरू भस्मअंग विहंगमम्। श्रीनीलकण्ठ हिमालजलधर विश्वनाथ विश्वेशवरम्॥ १॥
गङ्ग सङ्ग प्रसङ्ग सरिता कामदेव सुसेवितं। नादविन्दु संयोग साधन पंचवक्त्र त्रिलोचनम्॥
इन्दु विन्दु विराज शशिधर सेवितं सुरवंदितं॥ श्रीनीलकण्ठ हिमालजलधर विश्वनाथ विश्वेश्वरम्॥ २॥
ज्योतिर्लिङ्ग सुलिंग फणिमणि दिव्यदेव सुसेवितं। मालती तनुपुष्पमाला गंधधूप निवेदितम्॥
अनलकुंभ सुकुम्भ झलकत कलश कंचन शोभितं। श्रीनीलकण्ठ हिमालजधर विश्वनाथ विश्वेश्वरम्॥ ३॥
मुकुट क्रीट सुकनन कुण्डल मण्डितं मुनि रंजितं। हार मुकुता कनक रेखा रेखितं।
सुविशेषितम् गंधमादन शैलआसन आसनं परकासनं। श्रीनीलकण्ठ हिमालजलधर विश्वनाथं विश्वेश्वरम्॥ ४॥
मेघडंबर छत्रधारण चरनकमल विशालितं। पुष्परथपर मदनमूरति गौरिसंग सदाशिवम्॥
क्षत्रपाल सुपाल भैरव कुसुम नवग्रह भूषितं। श्रीनीलकण्ठ हिमालजलधर विश्वनाथ विश्वेश्वरम्॥ ५॥
त्रिपुरदैत्यसुरदैत्य दानव प्राप्तते फलदायकं। रावणा दशकमल मस्तक अङ्जलधर सायकम्॥
श्रीनीलकंठ हिमालजलधर विश्वनाथ विश्वेश्वरम्॥ ६॥
मथित दधि जल शेष विगलित भ्रमत मेरु सुमेरुकं। स्त्रवत विगलित दीपप्रनवत युग्मनेत्र सुनेत्रकं॥
महादेव सुदेव सुरपति सर्वदेव विश्वंभरं। श्रीनीलकंठ हिमालजलधर विश्वनाथ विश्वेश्वरम्॥ ७॥
रुद्ररूप सुतेजनं कृत भक्षपान हलाहलं। गगन वेधित अखिलधारा आदि अन्त समाहितम्।
कामकुञ्जर मानकेशव कहाकाम विश्वेश्वरं। श्रीनीलकंठ हिमालजलधर विश्वनाथ विश्वेश्वरम्॥ ८॥
ऋतु वसंत सुचक्र चौंदिश प्राप्यते फलदायकं। पूर्वकाशी भयेवासी मनुज मंगलदायकम्॥
अम्बकेतट वैद्यनाथं शैलशिखर महेश्वरं। श्रीनीलकंठहिमालजलधर विश्वनाथ विश्वेश्वरम्॥ ९॥

॥ अथ विश्वनाथाष्टकम् ॥

दोहा—

द्वादश लिंग प्रधान, विश्वनाथ महराज।
महिमा कहि कहि कहि जासुगण, राख्यो सकल समाज॥
कैलासवासि नमामि हे प्रभु! आदि शंभु सदा शिवम्॥
मणि रूप चन्द्र अनूप मस्तक जटाजूट शोभितम्॥
सर भुण्डमाल विशाल राजत गरे गरल विभूषितम्।
यह पाप मोचन् विमल लोचन वृषभवाहन मोदितम्॥ १॥

हर पाप वृषभध्वज करगहे डमरू बाघचर्म कलेवरम्।
लय भस्म अङ्ग समस्त छाये विश्वनाथ स्वभावकम्॥
पुनि कामदेव सुताड़ि तोष्यो नाद बिंदु संयोगकम्।
जगजननि गंगा बहित लटसों पंचमुख अघमोचनम्॥ २॥
सुरगण सुपूजित भाल शशिधर लोचनं त्रयलोचनम्।
इह नगर काशी लिंग द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग विशेषनम्॥
मणिधर फणीन्द्र विराज माला मालती मनमोहनम्।
हे धूपदीप निवेदितं प्रभु विश्वनाथ सुसोहनम्॥ ३॥
जहँ कनककलश विराज मंदिर करणकुण्डल मण्डितम्।
अरु मुकुट क्रीट सुहार मुक्ताकर महामुनि राजितम्॥
हे गौर वरण सुगौर शशिधर इन्दु शीश सुशोभितम्।
हे विश्वनाथ सनाथ दीनानाथ सुरमन मोहितम्॥ ४॥
प्रभु गंधमादन शैल बैठहिं योग आसन आसनम्।
जय मदन दाहक मदन चाहक नाथ मदन सुसोहनम्॥
तुम अधर अंग सुअङ्ग धारो शैलजा मन भावनम्।
प्रभु विश्वनाथ सुक्षत्र धारन चरन कमल सुवासनम्॥ ५॥
करि ध्यान गावहिं नारदादि बखान चरित मनोहरम्।
हर प्राण अखिल कुपात्र दानव अभय प्रभु विश्वेश्वरम्॥
वह त्रिपुर दैत्य सुदैत्य आदिक लहेउ फल शशि शेखरम्।
तुम होश करि निज लोक भेजे महादुष्ट क्षमाकरम्॥ ६॥
हे नाथ अपनी बुद्धि दूषण कबहुँ नाम मनोहरम्।
नहिं लिया पामर जाय रक्षा नाथ हे विश्वम्भरम्॥
सब जगत पर कल्यान कीन्हों नाम पाप सुशंकरम्।
हर मल कुबुद्धि सुविमल बुद्धि दे नाथ हर मम मत्सरम्॥ ७॥
धनुबान कर गहि भानु रघुकुल ध्यान जासु विराजितम्।
शिव परम भक्ति सुभागवत कहि योगिजन जेहिसेवितम्॥
करि कर्मपट नहिं सकत लहि वह नाथ देत प्रमाणितम्।
प्रभु आशुतोष सुपोष कीन्ही विश्वनौमि नमामि तम्॥ ८॥

॥ अथ प्रदोषस्तोत्राष्टकम् ॥

सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद्धृदयं ब्रवीमि ॥
संसारमुल्वणमसारमवाप्य जन्तोः सारोऽबमीश्वरपदाम्बुरुहस्य सेवा ॥ १ ॥
ये नार्चयन्ति गिरिशं समये प्रदोषेः ये नार्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चान्ये ॥
एकत्कथां श्रुतिपुटैर्न पिबन्ति मूढास्ते जन्मजन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः ॥ २ ॥
ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य कुर्वन्त्यनन्यमनसोऽघ्रिसरोजपूजाम् ॥
नित्यं प्रवृद्धधनधान्यकलत्रपुत्रसौभाग्यसम्पदधिकास्त इहैव लोके ॥ ३ ॥
कैलासशैलभुवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनकाचितरत्नपीठे ॥
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवाः प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे ॥ ४ ॥
वाग्देवीधृतवल्लकी शतमखो वेणुं दधत्पद्मजस्तालोन्निद्राकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता ॥
विष्णुःसान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तास्थिताः सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम् ॥ ५ ॥
गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्यविद्याधरामरवराप्सरसां गणाशय ॥
येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सहभूतवर्गाः प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्था ॥ ६ ॥
अतः प्रदोषे शिवएक एव पूज्योऽथ नान्ये हरिपद्मजाद्याः ।
तस्मिन्महेशे विधिनेज्यमाने सर्वे प्रसीदन्ति मुराधिनाथाः ॥ ७ ॥
एष ते तनयः पूर्व जन्मनि ब्राह्मणोत्तमाः ॥
प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न दानाद्यैः सुकर्मभिः ॥ ८ ॥
अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ॥
तद्दोषपरिहारार्थ शरणं पातु शङ्करम् ॥ ९ ॥

॥ अथ कालभैरवाष्टकम् ॥

देवराजसेव्यमानपवानाङ्घ्रिपङ्कजं व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम् ॥
नारदादियोगिवृन्दवन्दितं दिगम्बरं काशिकापुराधिनाथ कालभैरवं भजे ॥ १ ॥
भानुकोटिभास्करं भवाब्धितारकं परं नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम् ॥
कालकामम्वु जाक्षमशूलमक्षरं काशिका० ॥ २ ॥
शूलटंकपाशदण्डपाणिमादिकारणं श्यामकायमादिदेमक्षरं निरामयम् ॥
भीमविक्रम् प्रभुं विचित्रताण्डवप्रियं काशिका० ॥ ३ ॥
भुक्तिमुक्तिदायकं प्रशस्तचारुविग्रहं भक्तवत्सल स्थितं समस्तलोकविग्रहम् ॥
विनक्कणन्मनोज्ञहेमकिंकिणीलसत्कटिं काशिका० ॥ ४ ॥
धर्मसेतुपालकं त्वधर्ममार्गनाशकं कर्मपाशमोचकं सुशर्मदायकं विभुम् ॥
स्वर्णवर्णशेषपाशशोभिताङ्ग मण्डलं काशिका० ॥ ५ ॥
रत्नपादुकाप्रभाभिरामपादयुग्मक नित्यमद्वितीयतिष्टदैवतं निरञ्जनम् ॥
मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्टमोक्षणं काशिका० ॥ ६ ॥

अट्टहासं भिन्नपद्मजाण्डकोशसन्ततिं दृष्टिपातनष्टपापजलमुग्रशासनम्।
अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकन्धरं काशिका० ॥ ७॥
भूतसंघनायकं विशालकीर्तिदायकं काशिवासिलोकपुण्यपापशोधकं विभुम्॥
नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पतिं काशिका० ॥ ८॥
कालभैरवाष्टकं पठन्ति ये मनोहरं ज्ञानमुक्तिसाधनं विचित्रपुध्यवर्धनम्॥
शोकमोहदैन्यलोभकोपतापनाशनं ते प्रयान्ति कालभैरवाङ्घ्रिसन्निधिं ध्रुवम्॥ ९॥

॥ अथ शिवाष्टकम् ॥

प्रभुं प्राणनाथं विभुं विश्वनाथं जगन्नाथनाथं सदानन्दभाजाम्॥
भवद्भव्यभूतेश्वरं भूतनाथं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ १॥
गले रुण्डमालं तनौ सर्पजालं महाकालकालं गणेशाधिपालम्॥
जटाजूटभङ्गोत्तरङ्गै विशालं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ २॥
मुदामाकरं मण्डनं मण्डयन्तं महामण्डलं भस्मभूषाधरं तम्॥
अनादिं ह्यपारं महामोहमारं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ ३॥
तटाधो निवासं महाट्टाट्टहासं महापापनाशं सदा सुप्रकाशम्॥
गिरीशं गणेशं महेशं सुरेशं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ ४॥
गिरीन्द्रात्मजासंग्रहीतार्धदेहंगिरौसंस्थितंसर्वदासन्नगेहम्॥
परब्रह्मब्रह्मादिभिर्वन्द्यमानं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ ५॥
कपालं त्रिशूलं कराभ्या दधानं पदाम्भोजनम्राय कामं ददानम्॥
बलीयवर्दयानं सुराणां प्रधानं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ ६॥
शरच्चन्द्रगात्रं गुणानन्दपात्रं त्रिनेत्रं पवित्रं धनेशस्य मित्रम्।
अपर्णाकलत्रं चरित्रं विचित्रं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ ७॥
हरं सर्पहारं चिंताभूविहारं भवं वेदसारं सदा निर्विकारम्॥
श्मशाने वन्दतं मनोजं दहन्तं शिव शंकर शम्भुमीशानमीडे॥ ८॥
स्तवंयः प्रभाते नरः शूलपाणेः पठेत्सर्वदा भर्गभावानुरक्तः॥
सः पुत्र धनं धान्यमित्रं कलत्रं विचित्रं समासाद्य मोक्षं प्रयाति॥ ९॥

॥ अथ तुलसिदासकृतरुद्राष्टकम् ॥

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं, विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं, चिदाकाशमाकाश वासं भजेऽहं॥

गोतीतमीशं गिरीशं।
निराकारमोङ्कार मूलं तुरीयं, गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकाल कालं कृपालं, गुणागारं संसार पारं नतोऽहं॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गम्भीरं, मनोभूत कोटिप्रभा श्रीशरीरं।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनीचारुगङ्गा, लसद्भाल बालेन्दु कण्ठेभुजङ्गा॥
चलत्कुण्डलं भ्रू त्रिनेत्रं विशालं, प्रसन्नानन नीलकण्ठं दयालं।
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं, प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥
प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं, अखण्डं अजं भानु कोटि प्रकाशं।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं, भजेऽहं भवानिपतिं भावगम्यं॥
कलातीतकल्याण कल्पान्तकारी, सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।
चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी, प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं, मजन्तीह लोके परे वा वराणां।
नतावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं, प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां, नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं।
जराजन्म दुःखौघतातप्यमानं, प्रभो पाहि आपन्नमामीशशम्भो॥

श्लोक— रुद्राष्टकमिदंप्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

॥ अथ शिवसहस्रनाम् ॥

सूतउवाच॥

श्रूयतामृषयः श्रेष्ठाः कथयामि यथा श्रुतम्॥ विष्णुनाप्रार्थितो येनसंतुष्टः परमेश्वरः॥ तदहंकथयाम्यद्यपुण्यं नाम सहस्रकम्॥ १॥

श्रीविष्णुवाच॥

शिवोहरोमृडोरुद्रः पुष्करः पुष्लोचनः। अर्थिगम्यः सदाचारः सर्व शंभुमहेश्वरः॥ २॥
चंद्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वंविश्वामरेश्वरः। वेदांतसारसंदोहःकपालीनीललोहितः॥ ३॥
ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्योगौरीभर्त्ताः गणेश्वरः। अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गस्वर्गसाधनः॥ ४॥
ज्ञानगम्योदृढप्रज्ञोदेवदेवस्त्रिलोचनः। वामदेवोमहादेवः पटुः परिवृढोदृढः॥ ५॥
विश्वरूपोविरूपाक्षोवागीशः शुचिसत्तमः। सर्वप्रमाणसंवादीवृषाङ्कोवृषवाहनः॥ ६॥
ईशःपिनाकीखट्वांगीचित्रवेषश्चिरंतनः। तमोहरोमहायोगीगोप्ताब्रह्माचधूर्जटिः॥ ७॥
कालकालःकृत्तिवासाःसुभगःप्रणवात्मकः। उन्नध्रःपुरुषोजुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः॥ ८॥
दिव्यायुधः स्कंदगुरुः परमेष्ठीपरात्परः। अनादिमध्यनिधनोगिरीशोगिरिजाधवः॥ ९॥
कुवेरबन्धुःश्रीकंठोलोलोकवर्णोत्त मोमृदुः। समाधिबेद्यःकोदंडीनीलकंठः परस्वधीः॥ १०॥
विशालाक्षो मृगव्याधःसुरेशसूर्यतापनः। धर्मधामक्षवाक्षेत्रंभगवान्भगनेत्रभित्॥ ११॥
उग्रःपशुपतिस्ताक्ष्यः प्रियभक्तःपरंतपः। दातादयाकरोदक्षःकर्मदीकामशासंनः॥ १२॥
श्मशाननिलयःसूक्ष्मःश्मशानस्थोमहेश्वरः। लोककर्त्तामृगपतिर्महाकर्त्तमहौषधिः॥ १३॥
उत्तरोगोपतिर्गोप्तज्ञानगम्यःपुरातनः। नीतिःसुनीतिःशुद्धात्मासोमःसोमरतःसुखी॥ १४॥

सोमपोऽमृतपःसौम्योमहातेजामहाद्युतिः। तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्चसुधापतिः॥ १५॥
अजातशत्रुरालोकःसंभाव्योह्व्यवाहनः। लोककरोवेदकरःसूत्रकारःसनातनः॥ १६॥
महर्षिकपिलाचार्योविश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः। पिनाकपाणिर्भूदेवःस्वस्निःत्वस्तिकृत्सुधीः॥ १७॥
धातृधामामकरःसर्वगःसर्वगोचरः। ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्गः कर्णिकारः प्रियः कविः॥ १८॥
शाखोविशाखोगोशाखःशिवोभिषगनुत्तमः। गंगाप्लवोदकोभव्यःपुष्कलःस्थपतिःस्थिरः॥ १९॥
विजितात्माविषयात्माभूतवाहनसारथिः। सगणोगणकागश्चसुकीर्तिश्चिन्नसंशयः॥ २०॥
कामदेवः कामपालोभस्भोद्धलितविग्रहः। सुस्मप्रियोभस्मशायी कामीकांतः कृतागमः॥ २१॥
समावर्तोनिवृत्तत्माधर्मपुञ्जःसदाशिवः॥ अकल्मषश्चतुर्बाहुर्दुरावासोदुरासदः॥ २२॥
दुर्लभोदुर्गमोदुर्गःसर्वायुधविशारदः। आध्यात्मयोगनिलयः सुतंतुस्तन्तुवर्धनः॥ २३॥
शुभांगोलोकसारंगोजगदीशोजनार्दनः॥ भस्मशुद्धिकरोमेरुरोजस्वीशुद्धविग्रहः॥ २४॥
असाध्यः साधुसाध्यश्चभृत्यमर्कटरूपधृक। हिरण्ययेताः पौराणोरिपुजीवहरोबलः॥ २५॥
महाह्रदोमहागर्त्तः सिद्धवृंदापवंदितः। व्याघ्रचर्माम्बरोव्याली महाभूतोमहानिधिः॥ २६॥
अमृताशोऽमृतवपुः पांचजन्यः प्रभंजनः। पंचविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परावरः॥ २७॥
सुलभः शुव्रतः शूरोब्रह्मवेद निधिर्निधिः। वर्णाश्रमगुरुर्वर्णाशत्रुजिच्छत्रुतापनः॥ २८॥
आश्रमः क्षपण क्षमोज्ञानवान चलेश्वरः। प्रमाणभूतोदुर्ज्ञेयः सुपर्णोवायुवाहनः॥ २९॥
धनुर्धरोधनुर्वेदोगुणराशिर्गुणाकारः। सत्यः सत्यपरोदीनोधर्मागोधर्मसाधनः॥ ३०॥
अनंतदृष्टिरानंदोदंडोदमयितादमः। अभिवाद्योमदामायोविश्वकर्माविशारदः॥ ३१॥
वीतरागोविनीतात्मातपस्वीभूतभावनः। उन्मत्तवेषःप्रच्छन्नोजितकामोऽजितप्रियः॥ ३२॥
कल्याणप्रकृतिः कल्पःसर्वलोकप्रजापतिः। तरस्वीतारकोधीमान्प्रधानप्रभुरव्ययः॥ ३३॥
लोकपालोऽतर्हितात्माकल्पादिः कमलेक्षणः। वेदशास्त्रर्थतत्त्वज्ञोऽनियमोनियताश्रयः॥ ३४॥
चन्द्रःसूर्यःशनिः केतुवरागोविन्दु मच्छविः। भक्तिवश्यः परब्रह्ममृगवाणार्पणोऽनघः॥ ३५॥
अद्रिरद्यालयःकांतःपरमात्माजगद्गुरुःसर्वकर्मालयस्तुष्टोमंगल्योमङ्गलावृतः॥ ३६॥
महातपादीर्घतपाःस्थाविष्ठःस्थाविरोध्रुवः अहंःसंवत्सरोव्याप्तिः प्रमाणंपरमंतपः॥ ३७॥
संवत्सरकरोमंत्रप्रत्यय सर्वदर्शनः। अजः सर्वेश्वरः सिद्धोमहारेतामहाबलः॥ ३८॥
योगीयोग्योमहातेजाः सिद्धिसर्वादिरग्रहः। वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरोहरः॥ ३९॥
सुकीर्तिःशोभनःश्रीमानवाङः मनसगोचरः। अमृतःशाश्वतःशांतोवाणहस्तः प्रतापवान्॥ ४०॥
कमंडलुधरोधन्वी वेदांगो वेदविन्मुनिः। भ्राजिष्णुर्योजनं भोक्तालोकनाथोदुराधरः॥ ४१॥
अतीद्रियोमहामायः सर्ववासश्चतुष्पथः। कालयोगीमनानादो महोत्साहो महाबलः॥ ४२॥
महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरंदरः। निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः॥ ४३॥
अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वाचार्यंमनोगतिः॥ बहुश्रुतो महामायोनियतात्माध्रुवोऽध्रुवः॥ ४४॥
ओजस्तेजोद्युतिधरो नर्तकःसर्वनाशकः॥ नृत्यप्रियोनृत्यनित्यः प्रकाशात्माप्रकाशकः॥ ४५॥
स्पष्टक्षरो षुधो मंत्र-समानः सारसंप्लवः॥ युगादिकृद्युगावर्तो गंभीरो वृषवाहनः॥ ४६॥
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टःशलभःशरभोःधनुः॥ तीर्थरूपस्तीर्थनामातीर्थदृश्यः॥ स्तुतोऽर्थदः॥ ४७॥
अपांनिधिरधिष्ठानंविजयो जयकालिवित्॥ प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञोहिरण्यकवचोहरिः॥ ४८॥
विमोचनः सृरगणोविद्येशोविंदुसंश्रयः बालरूपोबलोन्मत्तोविकर्तागहनोगुहः॥ ४९॥
करणंकारणंकर्तासर्वबंधविमोचनः॥ व्यवसायोव्यस्थानः स्थानदोजगदादिजः॥ ५०॥
गुरुदोललितोऽभेदोभावात्मात्मनिसंस्थितः। वीरेश्वरोवीरभद्रोवीरासनाविधिर्विराट्॥ ५१॥
वीरचूडामणिर्वेत्तातीव्रानंदोनदीधरः। आज्ञाधारस्त्रिशूलीचशियिविष्टः शिवालयः॥ ५२॥

अभिरामःसुशरणःसुब्रभण्यःसुधापतिः॥ ५३॥
बालखिल्यो महाचापस्तिगमांशुर्वधिरःखगः। अभिरामःसुशरणःसुब्रभण्यःसुधापतिः॥ ५४॥

बालखिल्यो महाचापस्तिगमांशुर्वधिरःखगः। ललाटाक्षोविश्वदेहःसारःसंसारचक्रभृत्॥ ५४॥
मघवान्कौशिकोगोमान्विराभः सर्वसाधनः। ललाटाक्षोविश्वदेहःसारःसंसारचक्रभृत्॥ ५४॥

मघवान्कौशिकोगोमान्विराभः सर्वसाधनः। परमार्थःपरोमायीशंवरोव्याघ्रलोचनः॥ ५५॥
अमोघदंडोमध्यस्थोहिरण्योब्रह्मवर्चसी। परमार्थःपरोमायीशंवरोव्याघ्रलोचनः॥ ५५॥
अमोघदंडोमध्यस्थोहिरण्योब्रह्मवर्चसी। शास्तावैवस्वतोयमः॥ ५६॥
रुचिर्विरंचिः स्ववर्धुर्वाचस्पतिरहर्पतिः। रविर्विरोचनःस्कन्दः शास्तावैवस्वतोयमः॥ ५६॥
रुचिर्विरंचिः स्ववर्धुर्वाचस्पतिरहर्पतिः। कैलासाधिपतिःकांतःसवितारविलोचनः॥ ५७॥
युक्तिरुन्नतकीर्तिश्चसानुरागः परंजयः। कैलासाधिपतिःकांतःसवितारविलोचनः॥ ५७॥
युक्तिरुन्नतकीर्तिश्चसानुरागः परंजयः। नित्योनियतकल्याणः पुण्य श्रवणकीर्तनः॥ ५८॥
विद्वत्तमोवीतभयो विश्वभर्त्ताऽनिबारितः। नित्योनियतकल्याणः पुण्य श्रवणकीर्तनः॥ ५८॥
विद्वत्तमोवीतभयो विश्वभर्त्ताऽनिबारितः। उत्तराणोदुष्कृतिहाविज्ञेयोदु सहोऽभवः॥ ५९॥
दूर भवाविश्वसहोध्येयोदुः स्वप्ननाशनः। उत्तराणोदुष्कृतिहाविज्ञेयोदु सहोऽभवः॥ ५९॥
दूर भवाविश्वसहोध्येयोदुः स्वप्ननाशनः। विश्वगोप्ताविश्वकर्तासुवीरोरुचिरांगदः॥ ६०॥
अनादिर्भूर्भुवोलक्ष्मीः विकरीटीत्रिदशाधिपः। विश्वगोप्ताविश्वकर्तासुवीरोरुचिरांगदः॥ ६०॥
अनादिर्भूर्भुवोलक्ष्मीः विकरीटीत्रिदशाधिपः। वशिष्ठः कश्यपोभानुर्भीमोभीपराक्रमः॥ ६१॥
जननोजनमन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्थवः। वशिष्ठः कश्यपोभानुर्भीमोभीपराक्रमः॥ ६१॥
जननोजनमन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्थवः। जन्माधिपोमहादेवः सकलागमपारगः॥ ६२॥
प्रणवः सत्यथाचारोमहाकोशोमहाधनः। जन्माधिपोमहादेवः सकलागमपारगः॥ ६२॥
प्रणवः सत्यथाचारोमहाकोशोमहाधनः। ऋषिर्ब्राह्मणऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः॥ ६३॥
तत्त्वंतत्त्वविदेकात्माविभुर्विश्वभूषणः। ऋषिर्ब्राह्मणऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः॥ ६३॥
तत्त्वंतत्त्वविदेकात्माविभुर्विश्वभूषणः। आत्मयोनिरनाद्यं तोवत्सलोभक्तलोकधृक्॥ ६४॥
पंचयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशोविमोलदय॥ आत्मयोनिरनाद्यं तोवत्सलोभक्तलोकधृक्॥ ६४॥
पंचयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशोविमोलदय॥ शिशुर्गिरिरतः सम्राट्सुषेणः सुरशत्रुहा॥ ६५॥
गालत्रोवल्लभः प्रांशुर्विश्वासः प्रभाकरः। शिशुर्गिरिरतः सम्राट्सुषेणः सुरशत्रुहा॥ ६५॥
गालत्रोवल्लभः प्रांशुर्विश्वासः प्रभाकरः। स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिरात्मज्योतिरचंलः॥ ६६॥
अमोघोऽरष्टिनेमिश्चकुमुदोविगतज्वरः। स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिरात्मज्योतिरचंलः॥ ६६॥
अमोघोऽरष्टिनेमिश्चकुमुदोविगतज्वरः। ज्ञानस्कंदोमहानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपपल्वः॥ ६७॥
पिंगलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः। ज्ञानस्कंदोमहानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपपल्वः॥ ६७॥
पिंगलः कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः। कल्याणगुणनामाचपापहापुण्यदर्शनः॥ ६८॥
भगोविवस्वानादित्योगपारोदिवस्पतिः। कल्याणगुणनामाचपापहापुण्यदर्शनः॥ ६८॥
भगोविवस्वानादित्योगपारोदिवस्पतिः। नक्षत्रमालीनाकेशः स्वाधिष्ठानपदाश्रयः॥ ६९॥
उदारकीर्तिरुद्योगीसद्योगीसदसंमय। नक्षत्रमालीनाकेशः स्वाधिष्ठानपदाश्रयः॥ ६९॥
उदारकीर्तिरुद्योगीसद्योगीसदसंमय। हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रशांतोवृषाकपिः॥ ७०॥
पवित्रःपापहारीचमणिपूरोनभोगतिः। हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रशांतोवृषाकपिः॥ ७०॥
पवित्रःपापहारीचमणिपूरोनभोगतिः। अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः॥ ७१॥
उष्णोगृहपतिःकृष्णःसमर्थोऽनर्थयाशनः। अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरुश्रुतः॥ ७१॥
उष्णोगृहपतिःकृष्णःसमर्थोऽनर्थयाशनः। जगद्धितैषीसुगतः कुमार कुशलागमः॥ ७२॥
ब्रह्मगर्भो ब्रह्मद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः। जगद्धितैषीसुगतः कुमार कुशलागमः॥ ७२॥
ब्रह्मगर्भो ब्रह्मद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः। अरागानयनाध्यक्षो विश्वामित्रोधनेश्वरः॥ ७३॥
हिरण्यवर्णोज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः। अरागानयनाध्यक्षो विश्वामित्रोधनेश्वरः॥ ७३॥
हिरण्यवर्णोज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः। मातामहोमातरिश्वा नमस्वान्नानाहारधृक्॥ ७४॥
ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः। मातामहोमातरिश्वा नमस्वान्नानाहारधृक्॥ ७४॥
ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः। निरावरणनिर्वारोवैरंच्यो विष्टरश्रवाः॥ ७५॥
पुलस्त्यः पुलदोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः। निरावरणनिर्वारोवैरंच्यो विष्टरश्रवाः॥ ७५॥
पुलस्त्यः पुलदोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः। लोकवीरराग्रणीर्वीरश्चण्डः सत्यपराक्रमः॥ ७६॥
आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः। लोकवीरराग्रणीर्वीरश्चण्डः सत्यपराक्रमः॥ ७६॥
आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः। अलंकरिष्णुरचलोरोचिष्णुर्विक्रमोन्नतः॥ ७७॥
व्यालकल्पोमहाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः। अलंकरिष्णुरचलोरोचिष्णुर्विक्रमोन्नतः॥ ७७॥
व्यालकल्पोमहाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः। असंसृष्टोऽतिथिः शक्रमाथीपादपासनः॥ ७८॥
आयुः शब्दपतिर्वे गीप्लवनः शिखिसारथिः। असंसृष्टोऽतिथिः शक्रमाथीपादपासनः॥ ७८॥
आयुः शब्दपतिर्वे गीप्लवनः शिखिसारथिः। जप्योजरादिशमनोलोहितात्मातनूनपात्॥ ७९॥
वसुश्रवाहव्यवाहः प्रतप्ताविश्वभाजनः। जप्योजरादिशमनोलोहितात्मातनूनपात्॥ ७९॥
वसुश्रवाहव्यवाहः प्रतप्ताविश्वभाजनः। निदाघस्तहनोघः स्वक्षः परपुरंजय॥ ८०॥
वृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा। निदाघस्तहनोघः स्वक्षः परपुरंजय॥ ८०॥
वृहदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा। वसंतोमाधवोग्राष्मोनभस्योवीजवाहनः॥ ८१॥
सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः। वसंतोमाधवोग्राष्मोनभस्योवीजवाहनः॥ ८१॥
सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः। पावनः सुमतिर्विद्धांस्त्रैविश्वोनरवाहनः॥ ८२॥
अंगिरागुरुरात्रेयोविमलोविश्वपावनः। पावनः सुमतिर्विद्धांस्त्रैविश्वोनरवाहनः॥ ८२॥
अंगिरागुरुरात्रेयोविमलोविश्वपावनः। जमदग्निर्बल निधिर्विगालोविश्वगालवः॥ ८३॥
मनोबुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः। जमदग्निर्बल निधिर्विगालोविश्वगालवः॥ ८३॥
मनोबुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः। शैलोगगनकुन्दाभोदानवारिररिंदमः॥ ८४॥
अघोरोऽनुत्तरोयज्ञः श्रेयो निः श्रेयसांपथः। शैलोगगनकुन्दाभोदानवारिररिंदमः॥ ८४॥
अघोरोऽनुत्तरोयज्ञः श्रेयो निः श्रेयसांपथः। चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरप्रियः॥ ८५॥
रजनीजनकश्चारुविशल्योलोककल्पधृक्। चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरप्रियः॥ ८५॥
रजनीजनकश्चारुविशल्योलोककल्पधृक्। बहुरूपोमहारूपः सर्वरूपश्चराचराः॥ ८६॥
आम्नायोऽथसमाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः। बहुरूपोमहारूपः सर्वरूपश्चराचराः॥ ८६॥
आम्नायोऽथसमाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः। सहस्त्रर्धामूदेवेन्द्रः सर्वशास्त्रप्रभंजनः॥ ८७॥
न्यायनिर्मायकोन्यायीन्यायगन्योनिरन्तरः। सहस्त्रर्धामूदेवेन्द्रः सर्वशास्त्रप्रभंजनः॥ ८७॥
न्यायनिर्मायकोन्यायीन्यायगन्योनिरन्तरः। पिंगलाक्षोजनाध्वक्षोनीलग्रीवो निरामयः॥ ८८॥
मुण्डोविरूपोविक्रांतोदंडीदांतोगुणोत्तमः। पिंगलाक्षोजनाध्वक्षोनीलग्रीवो निरामयः॥ ८८॥
मुण्डोविरूपोविक्रांतोदंडीदांतोगुणोत्तमः। पद्मासनः परंज्योतिः परंपारः परंफलम्॥ ८९॥
सहस्त्राबादुःसर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक्। पद्मासनः परंज्योतिः परंपारः परंफलम्॥ ८९॥
पद्मगर्भोमहागर्भोविश्वगर्भोविचक्षणः। चराचरज्ञोवरदोवरेशस्तुमहाबलः॥ ९०॥

देवासुरगुरुर्देवोदेवासुरमहाश्रयः। देवादिदेवोदेवाग्निसुखदः प्रभुः॥ ९१॥
देवासुरेश्वरोदिव्योदेवासुरमहेश्वरः। देवदेवमयोऽचिंत्योदेवदेवात्मसंभवः॥ ९२॥
सद्योनिरसुरव्याघ्रोदेवसिंहोदिवाकरः। विबुधाग्रवरश्रेष्ठःसर्वदेवोत्तमोत्तमः॥ ९३॥
शिवज्ञानतरतः श्रीमांछिखिश्रीपर्वप्रियः। वज्रहस्तः सिद्धिखड्गीनरसिहनिपातनः॥ ९४॥
ब्रह्मचारीलोकचारीधर्मचारीधनाधिपः। नन्दीनन्दीश्वरोऽनंतोनग्नव्रतधरशुचिः॥ ९५॥
लिंगाध्यक्षःसुराध्यक्षोयोगाध्यक्षो युगावहः। स्वधर्मास्वर्गतः स्वर्गस्वरःस्वरमयस्वनः॥ ९६॥
बाणाध्यक्षोबीजकर्ताधर्मकृद्धर्मसंभव। दंभोलोभोऽर्थविच्छंभुः सर्वभूतमहेश्वरः॥ ९७॥
श्मशाननिलयस्त्र्यक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः। लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्र्यम्बकोनागभूषणः॥ ९८॥
अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकंधरपातनः। हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदंतभित्॥ ९९॥
धूर्जटिःखंडपरशुःसकलोनिष्कलोऽनघः। अकालःसकलाधारःपाडुराभो मृडोनटः॥ १००॥
मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः। जीवितांतकरो नित्योकीर्तिरनामयः॥ १०१॥
मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः। जीवितांतकरो नित्योवसुरेता वसुप्रदः॥ १०२॥
शद्गतिः सत्कृतिः सिद्धिः सज्जातिः कालकंटकः। कलाधरो महाकालो भूतसत्यपरायणः॥ १०३॥
लोकलावण्यकर्ताचलोकोत्तरसुखालयः। चंद्रसंजीवनः शास्ता लोकगूढ़ो महाधिपः॥ १०४॥
लोकबंधुर्लोकनाथः कृतज्ञः कीर्तिभूषणः। अनपायोऽक्षरः कांतःसर्वशस्त्रभृतांवरः॥ १०५॥
तेजोमवोद्युतिधरोलोकनामग्रणीरणुः। शुचिस्मितः प्रसन्नात्मादुर्जेयोदुरतिक्रमः॥ १०६॥
ज्योतिर्मयोजगन्नाथो निराकारो जलेश्वरः। तुंबवीणोमहाकोपो विशोकः शोकनाशनः॥ १०७॥
त्रिलोकपस्त्रिलोकेशः सर्वशुद्धिरधीक्षजः। अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्ताव्यक्तो विशांपतिः॥ १०८॥
वरशीलो वरगुणः सारो मानधनो मयः। ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्वयः॥ १०९॥
वेधा विधाता धाता च स्त्रष्टा हर्ता चतुर्मुखः। कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः॥ ११०॥
हिरण्यगर्भो द्रुहिणो भूतपालोऽथभूपतिः। सद्योगी, योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः॥ १११॥
देवप्रियो देवताथो देवज्ञो देवचिन्तकः। विषमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धनः॥ ११२॥
निर्ममो निरंहकारी निर्मोही विरुपद्रवः। दर्पहा दर्पद्रो द्रप्तः सर्वर्तुपरिवर्त्तकः॥ ११३॥
सहस्त्रजित्ससस्त्रार्चिः स्निग्धप्रकुतिदक्षिणः। भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो भूतिनाशनः॥ ११४॥
अथोऽनर्थो महाकोशः परकार्येकपंडितः। निष्कंटकःकृतानंदोनिर्व्याजो व्याजमर्दनः॥ ११५॥
सत्ववान्सात्त्विकः सत्यकीर्तिः स्नेहकृतागमः। अंकपितो गुणग्राहानैकात्मानैककमृकृतः॥ ११६॥
सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणानलिः। नंदिस्कंधधरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः॥ ११७॥
अपराजितः सर्वसत्वो गोविन्दाः सत्त्ववाहनः। अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः॥ ११८॥
वाराहशृंगधृक्छृङ्गी बलवानेकनायकः। श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबंधुरनेककृन्॥ ११९॥
श्रीवत्सलशिवारंभः शांतभद्रःसमोयशः। भूशयो भूषणो भूतिर्भूतकृद्भूतभावनः॥ १२०॥
अकधो भक्तिकायस्तु कालहा नीललोहितः। सत्यव्रतमहात्यागी नित्यशांतिपरायणः॥ १२१॥
परार्थवृत्तिर्वरदो विवक्षुस्तुविशारदः। शुभदः शुभकर्ताशुभनामाशुभःस्वयम्॥ १२२॥
अनर्थितोऽगुणः साक्षीह्यकर्ताकनकप्रभः। स्वभाव भद्रो मध्यस्थः शीघ्रगशीशघ्रनाशनः॥ १२३॥
शिखंडी कवची शूली जठी मुंडी च कुंडली। अमृत्युः सर्वदृक्सिंहस्तेजोराशिर्महाणिः॥ १२४॥
असंख्येयोऽप्रमेयात्मावीर्यवान्वीर्यकोविदः। वेद्यश्चैववियोगात्मापरावरमुनीश्वराः॥ १२५॥
अनुत्तमोदुराधर्षो मधुरप्रियदर्शनः। सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्म सतांगतिः॥ १२६॥
कालपक्षकालकारीकंकणीकृतवासुकिः। महेष्वासो महीभर्तानिष्कलंकोविश्रृंखलः॥ १२७॥
द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदसिद्धिसाधनः। विश्वतसंवृतः स्तुत्योत्र्यूढोरस्को महाभुजः॥ १२८॥
सर्वयोनिर्निरातंको नरनारायणप्रियः। निर्लेपो निष्प्रयंचात्मा निर्व्यगो व्यंगनाशनः॥ १२९॥

निरवद्यमयोपायो विद्याराशी रसप्रियः॥ १३०॥
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्ति निरंकुशः। निरवद्यमयोपायो विद्याराशी रसप्रियः॥ १३०॥
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्ति निरंकुशः। वैयाघ्रधुर्यो धात्रीशःशाकल्यःसर्वरोपतिः॥ १३१॥
प्रशान्तुबुद्धिरक्षुण्णसंग्रही नित्यसुन्दरः। वैयाघ्रधुर्यो धात्रीशःशाकल्यःसर्वरोपतिः॥ १३१॥
प्रशान्तुबुद्धिरक्षुण्णसंग्रही नित्यसुन्दरः। सोमोरसज्ञोरसदः सर्वसत्त्वावलंबनः॥ १३२॥
परमार्थगुरुर्दृष्टिः शरीराश्रितवत्सलः। सोमोरसज्ञोरसदः सर्वसत्त्वावलंबनः॥ १३२॥
परमार्थगुरुर्दृष्टिः शरीराश्रितवत्सलः। प्रार्थयामासशं भुंचपूजयामासपंकजैः॥ १३३॥
एवंनाम्नासहस्रेण तुष्टाववृषभध्वजम्। प्रार्थयामासशं भुंचपूजयामासपंकजैः॥ १३३॥
एवंनाम्नासहस्रेण तुष्टाववृषभध्वजम्। गोपयामासकमलंतदैकं भुवनेश्वरः॥ १३४॥
परीक्षार्थहरेस्त्वीशः कमलेषु महेश्वरः। गोपयामासकमलंतदैकं भुवनेश्वरः॥ १३४॥
परीक्षार्थहरेस्त्वीशः कमलेषु महेश्वरः। यातुयातुसुखेनैवनेत्रंकिं कमलंनहि॥ १३५॥
हृदिविचारितंतेनकुतोवैकमलंगतम्। यातुयातुसुखेनैवनेत्रंकिं कमलंनहि॥ १३५॥
हृदिविचारितंतेनकुतोवैकमलंगतम्। पूजयामासभावेनस्तवेनाऽनेनसर्वथा॥ १३६॥
ज्ञात्वातुनेत्रमुद्धृत्यसर्वंसत्वावलंबनम्। पूजयामासभावेनस्तवेनाऽनेनसर्वथा॥ १३६॥
ज्ञात्वातुनेत्रमुद्धृत्यसर्वंसत्वावलंबनम्। ततस्तु तमथोदृष्ट्वातथाभूतहरोहरिम्॥ १३७॥
मामेतिव्याहरन्नेव प्रादुरासीज्जगद्गुरु। ततस्तु तमथोदृष्ट्वातथाभूतहरोहरिम्॥ १३७॥
मामेतिव्याहरन्नेव प्रादुरासीज्जगद्गुरु। यथोक्तरूपिणंशंभुंतेजोराशिंसमुत्थितम्॥ १३८॥
तस्मादवततराशुमंडलात्पार्थिवस्यसः यथोक्तरूपिणंशंभुंतेजोराशिंसमुत्थितम्॥ १३८॥
तस्मादवततराशुमंडलात्पार्थिवस्यसः पूजयामास देवेशः पार्वत्यासंहितिंशिवम्॥ १३९॥
नमस्कृत्यपुरः स्थित्वास्तुतिंकृत्वा विशेषतः। पूजयामास देवेशः पार्वत्यासंहितिंशिवम्॥ १३९॥
नमस्कृत्यपुरः स्थित्वास्तुतिंकृत्वा विशेषतः। इत्थंभूतंहरोदृष्ट्वाको टिभास्करभूषितः॥ १४०॥
प्रसन्नवदनोभूत्वाशभोश्चसं मुखे स्थितः। इत्थंभूतंहरोदृष्ट्वाको टिभास्करभूषितः॥ १४०॥
प्रसन्नवदनोभूत्वाशभोश्चसं मुखे स्थितः। तदाप्राहमहादेवः प्रहसन्निव शंकरः।
प्राणिनामीश्वरः शंभुर्देवदेवोजनार्दनम। तदाप्राहमहादेवः प्रहसन्निव शंकरः।
प्राणिनामीश्वरः शंभुर्देवदेवोजनार्दनम। कृताजलि पुटंस्थितम्॥ १४१॥
संप्रेक्षमाणंतं विष्णु कृताजलि पुटंस्थितम्॥ १४१॥
शंकर उवाच॥ ज्ञातंमयेदंसकलंदेवकार्यजनार्दन। सुदर्शनाख्यंक्रंचददामितवशोभनम्॥ १४२॥
यद्रूपंभवतादृष्टंसर्वलोकसुखावहम्। हितायतवदेवेशकृतंभावयसुव्रत॥ १४३॥
रणाजिरेपिसंस्मृत्यदेवानांदुःखनाशनम्। इदंचक्रमिदंरूपमिदंनामसहस्रकम्॥ १४४॥
येशृण्वं तिसदाभक्त्यासिद्धिः स्पादनपायिनी। एवमुक्त्वाददौचक्रसूर्यायुतसमप्रभम्॥ १४५॥
विष्णु पिचसंस्नात्वाजग्राहोदङ्मुखस्तदा। नमस्कृत्यंतदादेवपुनर्वचनमब्रवीत्॥ १४६॥
शृणुदेवमयाध्येयंपठनीयंचमेप्रभो। दुखानांनाशनार्थंहिवदत्वंलोकशंकर॥ १४७॥
इतिपृष्टस्तदातेनसंतुष्टतुशिवोऽब्रवीत्। रूपंध्येयंमदीयंवैसर्वानर्थप्रशांतये॥ १४८॥
अनेकदुःखनाशार्थपाठ्यंनामसहस्रकम्। धार्यचक्रसदामेऽद्यसर्वानर्थप्रशांतये॥ १४९॥
अन्येचयेपठिष्यंतिपाठयिष्यंतिनित्यशः तेषांदुःखंनस्वप्नेऽपिजायतेनात्रसंशयः॥ १५०॥
राज्ञांचसंकटेप्राप्तेशतावर्तचरेद्यदा। सांगंचविधियुक्तोहिकल्याणंलभतेनरः॥ १५१॥
रोगनाशकरं ह्येतद्विद्यादावकमुत्तमम्। समुद्दिश्यफलंश्रेष्ठंपठंतिफल मुत्तमम्॥ १५२॥
लभंतेनाऽत्रसंदेहः सत्यमेतद्वचं मम। प्रातः समुत्थायसदापूजांकृत्वामदीयिकाम्॥ १५३॥
पठतोमत्समक्षंवैनित्यंसिद्धिर्नदूरताः। ऐहिकींसिद्धिमासाद्यपरलोकसमुद्भवाम्॥ १५४॥
प्राप्नोतिपाठकोनित्यमष्टमासान्सुरेश्वर। सायुज्यमुक्तिमापातिनाऽत्रकार्याविचारणा॥ १५५॥
एवमुक्त्वातदाविष्णुशंकरः प्रीतमानराः। उपस्पृश्यशक्कराभ्यांचउपाचशङ्करः पुनः॥ १५६॥
वरदोऽस्मिन्सुरश्रेष्ठवरान्वरयथे सिप्सतान्। भक्त्यावशीकृतोनूनंस्तवेनानेनवैपुनः॥ १५७॥
इत्युक्तोदेवदेवेनदेवदेवंप्रणम्भतम्। यथेदानींकृपांदेवक्रियतेचाऽप्यतः परम्॥ १५८॥
कार्याचैवविवेषणकृपालु त्वत्त्याप्रभो। त्वयिभक्ति महादेवप्रयच्छवमुत्तमम्॥ १५९॥
नाऽन्यभिच्छामिभगवन्पूतर्णोऽहंतेप्रसादतः। तच्छुत्वावचनंतस्यदयावान्सुतरांभवः॥ १६०॥
प्राहत्वेनंमहादेवः परमात्मानमच्युतम्। मयिभक्तिश्चवंद्यस्त्वंपूज्यश्चैवसुरैरपि॥ १६१॥
विश्वंभरस्त्वदीयंवैनामपाप हरंपरम्। भविष्यतिनसंदेहोमत्यप्रसादात्सुरोत्तम॥ १६२॥
इत्युक्त्वांऽन्तधेरुद्रोभगवान्नीललो हितः। जनार्दनोऽपिभगवानन्वचनाच्छंकरस्यच॥ १६३॥
प्राप्यचक्रंशुभंध्यानंस्तोत्रमेतन्निरंतरम्। पपाठाऽध्यापयामासभक्तेभ्यस्तदुपादिशत्॥ १६४॥
अन्येऽपियेपठिष्यंतितेविंदुंतुतथाफलम्। इतिपृष्टंसमाख्ययातंशृंण्वतांपापहारकम्॥ १६५॥
अतः परं च किं श्रेष्ठाः प्रष्टमिञ्छथ वै पुनः॥॥ १६६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे ज्ञानसंहितायां शिवसहस्रनामकथनं समाप्तम्॥

श्रीगणेशायनमः

॥ शिवस्तुति ॥

चापेयगौरार्द्ध शरीरकायै कर्पूरगौरार्ध शरीरकाय।
धम्मिल्लकायै च जटाधराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ १॥
रणत्क्वणत्कंकणनूपुरायै मिलत्फणा भासुरनूपुराय।
हेमांगदायै भुजगांगदाय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ २॥
कस्तूरिकाकुंकुमचर्चितायै चितारजः पुञ्जविचर्चिताय।
सुकुण्डलायै फणिकुण्डलाय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ ३॥
मन्दारमालाकुलतालकायै कपालमालांकितशेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ ४॥
प्रोत्फुल्लनीलोत्पलोचनायै विकासपंकेरुहलोचनाय।
समेच्चणायै विषमेक्षणाय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ ५॥
अम्भोरुहश्यामलकुन्तलायै तडित्प्रभाभासजटाधारय।
जगञ्जनन्ये जगदेकपित्रे नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ ६॥
सदाशिवानां प्रियभूषणायै सदाशिवानां प्रियभूषणाय।
शिवान्तितायै च शिवान्विताय नमः शिवाय च नमः शिवाय॥ ७॥
प्रपञ्चसृष्टेर्मुखवासदायै त्रैलोक्यसंहारकृतान्तकाय।
कृतस्मरायै विकृतस्मराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ ८॥
नमस्ते भगवद्रुद्रभास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय शिवाय परमात्मने॥ ९॥
शान्ताय क्षितिरूपाय सदाऽसुरमिदे नमः।
ईशानाय नमस्तुभ्यं स्पर्शमात्राय ते नमः॥ १०॥
महादेवाय सोमाय अमृतेशाय ते नतः।
उग्राय जयमानाय नमो मीढुष्टमाय ते॥ ११॥
नमोऽस्तुते शंकर शांतिमूर्ते नमोस्तुते चंद्रकलावतंस।
नमोऽस्तुते कारणकारणाय नमोस्तुते कारणवर्जिताय॥ १२॥
स एव धन्यस्तव भक्तिभाजां तवार्चनं यः कुरुते सदैव॥ १३॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूर्जितम् मया देव परिपूर्ण तदस्तु मे॥ १४॥

॥ अथ शिवमानस पूजा ॥

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं।
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्॥

जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं च पुष्पं च धूपं तथा।
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥ १॥
सौवर्णे मणिखण्डरत्नचिते पात्रे घृतं पायसं।
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं फाणितम्॥
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं।
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु॥ २॥
छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं।
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकलागीतं च नृत्यं तथा॥
साष्टाङ्ग प्रणतिः स्तुतिर्बहुविद्या ह्योतत्समस्तं मया।
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजा गृहाण प्रभो॥ ३॥
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितः॥
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥ ४॥
इत्येवं हरपूजने प्रतिदिनं यो वा त्रिसन्ध्य।
पठेत्सेवाश्लोकचतुष्टयं प्रतिदिनं पूजा हरेर्मानसी॥
सोऽयं सौख्यमवाप्नुयाद्द्युतिधरं साक्षाद्धर्दर्शनं।
व्यास्तेत महावसानसमये कैलासलोकं गतः॥ ५॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा।
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्॥
विहितमबिहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व।
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥ ६॥

॥ अथ द्वादश ज्योतिर्लिंगानि कथ्यन्ते ॥

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैल मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्॥ १॥
पर्यल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्या भीमशंकरम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥ २॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौमतीतटे।
हिमालये तु केदारं धृष्णशं शिवालये॥ ३॥
एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातःपठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥ ४॥

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

पहला खण्ड

पहला अध्याय

एक समय महर्षि श्री वेदव्यास जी के प्रधान शिष्य श्री सूत जी, जिन्होंने अपने गुरु की सेवा द्वारा बड़प्पन प्राप्त किया था, नैमिषारण्य नामक वन में भगवान् सदाशिव की तपस्या कर रहे थे। वे सदैव शंकर जी के ध्यान में मग्न रहकर उन्हीं के गुणों का कीर्तन किया करते थे। उन्हीं दिनों संयोग से शौनक ऋषि अपने साथ अन्य बहुत-से ऋषियों को लेकर श्री सूत जी के पास आये तथा उनसे इस प्रकार बोले—"हे सूत जी ! हम लोग संसार रूपी अथाह सागर में डूबे हुए हैं। हमारा परम सौभाग्य है कि आज हमें आपके दर्शन प्राप्त हुए। कुछ समय पश्चात् वह युग आने वाला है, जिसमें पुराने धर्म नष्ट हो जायेंगे तथा पापाचार में वृद्धि होगी। सब लोग उस धर्म को त्याग कर कुमार्ग पर चलने लगेंगे। चारों वर्ण इस प्रकार अपने कर्मों से पतित हो जायेंगे कि ब्राह्मण वर्ण खेती करने लगेगा। ब्राह्मण छल-कपट में अत्यन्त चतुर होंगे और अपने धर्म को भुला बैठेंगे। क्षत्रिय भी अपने जाति-धर्म को त्याग कर, युद्ध-क्षेत्र से विमुख हो, पलायनवादी बन जायेंगे तथा चोरी करने में अत्यन्त चातुरी का प्रदर्शन करेंगे। वे शूद्रों के समान कर्म कर बैठेंगे और उसी अवस्था में रह कर प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। गौ की रक्षा करना वे छोड़ देंगे। इस प्रकार क्षत्रिय जाति अत्यन्त अन्यायी एवं दुखदायी हो जायेगी।

इसी प्रकार वैश्य भी अपने श्रेष्ठ धर्म को त्याग कर, पाप कर्मों द्वारा धन का संचय करेंगे एवं उत्तम मार्ग को ठुकरा देंगे। इसी प्रकार शूद्र

भी अपने धर्म को त्याग कर ब्राह्मणों का कर्म करने की चेष्टा करेंगे। शूद्रों द्वारा इस प्रकार विपरीत कर्म किये जाने पर ब्राह्मणों का तेज नष्ट हो जायेगा। ऐसी दशा में सम्पूर्ण प्राणियों में आयु भी कम रह जाएगी।

संसार में जब इस प्रकार अधर्म बढ़ जाएगा और जाति बन्धन नष्ट प्राय हो जाएगा, उस समय भिक्षुकों द्वारा भिक्षा माँगे जाने पर भी उन्हें कोई कुछ दान नहीं देगा। वर्णसंकर मनुष्य अपने को उच्च कुलीन समझ कर और लोगों को हेय दृष्टि से देखेंगे। स्त्रियाँ भी दुष्ट प्रकृति वाली बन कर अपने पति की सेवा से विमुख हो जायेंगी। ऐसी अवस्था में सन्तान भी अपने माता-पिता से प्रीति रखना त्याग देगी। मनुष्यों में संयम, जप, तप तथा शील नष्ट हो जाएगा। ऐसी अवस्था में प्रतिदिन सत्य और शौच का अभाव होता जाएगा।

हे सूत जी ! ऐसे घोर कलिकाल में लोग तपस्वियों को केवल इसीलिए सम्मान देंगे कि वे उनके पुत्र आदि उत्पन्न होने की कामना को पूर्ण करने में सहायता प्रदान करेंगे। इस युग में केवल बालों को सम्भाल लेना ही सुन्दरता का लक्षण होगा और अपने पेट को भर लेना ही सबसे श्रेष्ठ कार्य समझा जायेगा। भला, आप ही बताइए कि ऐसे घोर समय में कलियुग वासी जीव किस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे? वे अपने पापों तथा सहस्त्रों दुष्कर्मों को भस्म कर सत्य पथ को अपनाने में किस प्रकार समर्थ हो सकेंगे? आप सब प्रकार की चिन्ताओं को दूर करके प्रसन्नता प्रदान करने वाले हैं। हम लोग इसी चिन्ता में डूबे हुए थे कि तब तक हमें आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो गया। अब कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे हमारी यह चिन्ता नष्ट हो जाए और हम प्रसन्नता को प्राप्त करें। संसारी जीवों का हित चाहने वाला आपके समान और कोई नहीं है। आप ने भगवान् वेदव्यास जी की अत्यन्त सेवा की है और अनेक पापियों को पाप रूपी समुद्र से पार उतारा है। भगवान् कृष्णद्वैपायन ने अत्यन्त कृपा करके आपको सम्पूर्ण पुराण पढ़ाये हैं, अतः आप हम पर भी अवश्य कृपा करें।''

शौनक ऋषि के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर सूत जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त अपने नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की वर्षा करते हुए इस प्रकार बोले—"हे शौनक जी तथा अन्य ऋषि महानुभावो ! आप लोग परम ज्ञानी एवं सम्पूर्ण संसार का हित चाहने वाले हैं। यद्यपि संसारी लोगों की वह बुद्धि नष्ट हो गयी है, जिसमें सब के मंगल का ध्यान रहता है, परन्तु आप सब लोग उसके अपवाद स्वरूप हैं। क्योंकि आपने अन्य लोगों के उपकार के लिए ही मुझसे यह प्रश्न किया है। अतः अब मैं आपकी इस प्रीति के वशीभूत होकर भगवान् सदाशिव की उस परम स्तुति का वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर कलिकाल के दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा अज्ञानी जीवों को भी मुक्ति प्राप्त होती है। यही कारण है कि जो लोग बुद्धिमान् होते हैं, वे भगवान् सदाशिव की तपस्या द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों को अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं। शिवलोक में किसी भी प्रकार शोक और दुःख कभी भी नहीं व्यापता। जो लोग शिवजी का नमन करते हैं, वे बहुत संतान प्राप्त करते हैं। अतः हे ऋषियो ! उचित यही है कि इस संसार को दुःख रूप समझ कर शिवजी के चरणों में ही प्रीति लगायी जाए। हे शौनक ! शिवजी की स्तुति करने में वेद भी असमर्थ हैं, अतः शिवजी का क्षण भर के लिए भी ध्यान करना नहीं भूलना चाहिए।

सूत जी के मुख से यह वचन सुन कर शौनक ऋषि अपने दोनों हाथ जोड़ कर उनके सम्मुख बैठ गये। तदुपरान्त सब ऋषियों ने परस्पर विचार-विनिमय करके सूत जी से यह कहा—"हे सूत जी ! शिवजी तो निर्गुण कहलाते हैं, उन्होंने सगुण रूप किस प्रकार धारण किया? उन्होंने संसार को किस प्रकार उत्पन्न किया तथा स्वयं किस प्रकार स्थित रहते हैं? वे किस कार्य से प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर क्या वरदान देते हैं? हे सूत जी ! यह सब वृत्तान्त तथा इसके अतिरिक्त भी, भगवान् सदाशिव के सम्बन्ध में और जो कुछ भी जानने योग्य हो, आप उसे हमें बताइए क्योंकि आप श्री वेदव्यास जी की कृपा से भूत, भविष्य एवं वर्तमान—इन तीनों कालों की गति को जानने में समर्थ हैं। तभी तो व्यास जी ने कृपा करके अपने श्रीमुख से आपको इस

ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण रहस्य समझा दिया है। यह बात निश्चित है कि जब तक श्रेष्ठ ब्रह्म-ज्ञानी से भेंट नहीं होती, तब तक शोक तथा मोह नष्ट नहीं होता है। हम तो उसी को बड़ा भाग्यवान् मानते हैं, जो शिवजी की कथा कीर्तन से अपना सम्बन्ध सदैव बनाये रहता है।''

दूसरा अध्याय

शौनक आदि ऋषियों के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुन कर सूत जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त उनको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे—''हे शौनकादि ऋषियो ! आपने जो प्रश्न मुझसे किया है, वही प्रश्न एक समय नारद जी ने श्री ब्रह्मा जी से किया था। उस समय श्री ब्रह्मा जी ने उन्हें समुचित उत्तर देकर प्रसन्नता प्रदान की थी। मैं आपसे वही प्रसंग कहता हूँ।

एक बार देवर्षि नारद जी तपस्या करने के निमित्त हिमालय पर्वत पर जा पहुँचे और वहाँ श्री गंगा जी के तट पर बैठ कर अत्यन्त कठिन तपस्या करने लगे। उन्होंने निश्चल भाव से सहस्त्रों वर्षों तक घोर तपस्या की। उनकी उस उग्र तपस्या को देख कर देवताओं के राजा इन्द्र अत्यन्त भयभीत हुए। उन्होंने यह समझा कि नारद जी मेरे इन्द्रासन पद की प्राप्ति के लिए ही सम्भवतः ऐसी कठिन तपस्या कर रहे हैं। अस्तु, इन्द्र ने भयभीत होकर यह विचार कि मुझे किसी प्रकार नारद जी की तपस्या में विघ्न डाल देना चाहिए। यह निश्चय करके उन्होंने अपने मित्र कामदेव को अपने पास बुलाया। जब कामदेव उनके पास आ गया, तब उन्होंने उसे सम्बोधित करते हुए यह कहा—''हे मित्र ! तुम्हारी सहायता से मैंने अनेक अहंकारियों के अहंकार को नष्ट किया है। इस समय नारद जी हिमालय पर्वत पर बैठे हुए शिवजी की तपस्या कर रहे हैं। मुझे भय है कि कहीं वे अपनी तपस्या द्वारा मेरे इन्द्रासन को न छीन लें, अतः तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे नारद जी की तपस्या भंग हो जाए।''

सूत जी बोले—"हे ऋषियो ! इन्द्र के मुख से निकले हुए उन शब्दों को सुन कर कामदेव ने उन्हें मनोकामना सिद्धि का विश्वास दिलाते हुए, नारद जी पर विजय पाने के हेतु अपनी संपूर्ण सेना को तैयार किया। तदुपरान्त उसने नारद जी के समीप पहुँच कर वहाँ चारों ओर अपनी माया फैला दी। कामदेव के प्रभाव के कारण उस निर्जन स्थान में भी अनेक प्रकार के पुष्प खिल उठे एवं कोकिल आदि पक्षी अपनी मीठी बोली से सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगे। हृदय में कामदेव को जगाने वाली तीनों प्रकार की शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी। अपनी इस विजयिनी सेना को देख कर कामदेव के हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह अपनी शक्ति भर जो कुछ भी कर सकता था, उसे कर चुका; परन्तु उसके कृत्यों से नारद जी का मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

हे ऋषियो ! नारद जी का मन विचलित न होने का जो कारण था, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। कारण केवल यही था कि जिस स्थान पर नारद जी बैठे हुए तपस्या कर रहे थे, उसी स्थान पर एक बार पहले सदाशिव ने कामदेव को जला कर भस्म कर दिया था। तदुपरान्त उसे जीवित होने का वर देकर यह कहा था कि अन्य स्थानों पर तेरा प्रभाव भले ही हो, परन्तु इस स्थान पर कभी प्रभाव नहीं हो सकेगा। यही कारण था, जिससे कामदेव निराश एवं लज्जित होकर इंद्र के पास लौट गया और उन्हें अपने निष्फल मनोरथ होने का सब वृत्तान्त कह सुनाया। कामदेव की बात सुन कर देवराज इन्द्र की सभा के सम्पूर्ण सभासद नारद जी की स्तुति एवं प्रशंसा करने लगे।

हे ऋषियो ! इधर अपनी तपस्या के पूर्ण हो जाने पर नारद जी को योग-दृष्टि द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि उन पर विजय प्राप्त करने के लिए यहाँ कामदेव आया था, परन्तु वह असफल मनोरथ होकर लौट गया है तो उनके हृदय में कुछ अहंकार उत्पन्न हो गया। उन्होंने यह समझा कि वे कामदेव से अधिक शक्तिशाली हैं। इस रहस्य को वे नहीं जान सके कि यह मेरा नहीं अपितु इस तपोभूमि का प्रताप है।

अस्तु, नारद जी अपने तपोबल पर अत्यन्त गर्व करते हुए वहाँ से उठ कर शिवजी के पास जा पहुँचे और अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें अपनी तपस्या का सब हाल सुनाने लगे। नारद जी की बात सुन कर शिव जी ने उन्हें समझाते हुए कहा—"हे देवर्षि ! कामदेव पर विजय पाने की सामर्थ्य तीनों लोकों में किसी के पास नहीं है। तुमने मुझसे तो यह बात कही, परन्तु मैं तुम्हें समझाता हूँ कि तुम विष्णुलोक में जा कर इस बात को मत कह बैठना। तुम इस बात को अपने मन में गुप्त ही रखना।

हे ऋषियो ! अहंकार में डूबे हुए नारद जी को शिवजी की यह बात अच्छी नहीं लगी। अस्तु, वे उनसे विदा लेकर, ब्रह्मा जी के समीप जा पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने अपनी प्रशंसा करते हुए तपस्या तथा कामदेव पर विजय पाने का वृत्तान्त कह सुनाया। अपने पुत्र नारद के उस अहंकार को देख कर ब्रह्मा जी ने भी भगवान् सदाशिव की भाँति उन्हें बहुत कुछ समझाया, परन्तु नारद जी के हृदय में अहंकार अपना घर कर बैठा था, इसलिए पिता का समझाना भी उन्हें अच्छा नहीं लगा और वे वहाँ से उठ कर विष्णुलोक में जा पहुँचे। नारद जी को आया हुआ देख कर भगवान् विष्णु ने अपने आसन से उठ कर, उन्हें अपनी छाती से लगाते हुए कहा—"हे देवर्षि ! अब तक आप कहाँ रहे?" यह सुन कर नारद जी ने अपनी तपस्या तथा कामदेव पर विजय प्राप्त करने का सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे भी कह दिया। उस समाचार को सुन कर भगवान् विष्णु शिवजी की इच्छा समझ कर मन-ही-मन हँसते हुए बोले—"हे नारद जी ! जो मनुष्य ब्रह्मज्ञानी नहीं है और परब्रह्म की आराधना से रहित है, उन्हीं के हृदय में मोह की उत्पत्ति होती है। आप तो ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले हैं, तब भला कामदेव आपका अनिष्ट कैसे कर सकता है? भगवान् विष्णु के मुख से इन शब्दों को सुन कर नारद जी और भी अहंकार में भर गये तथा इस प्रकार अभिमानपूर्ण वचन बोले—"हे प्रभो ! मुझे यह शक्ति आपकी कृपा से ही प्राप्त हुई है।"

हे ऋषियो ! इतना कह कर नारद जी भगवान् विष्णु से विदा ले कर

चल दिये। उस समय भगवान् सदाशिव ने अपने हृदय में यह इच्छा की कि मुझे नारद का अहंकार दूर कर देना चाहिए। अस्तु, उनकी इच्छा से जिस मार्ग से नारद जी चले जा रहे थे, उस मार्ग में स्वर्ग के समान सुन्दर एक श्रेष्ठ नगर शीघ्र ही बस गया। उस नगर में शीलनिधि नामक राजा राज्य करता था। जिस समय नारद जी उस नगर से हो कर जा रहे थे, उस समय उस राजा की कन्या के स्वयम्वर का आयोजन हो रहा था। उस राजकन्या की सुन्दरता पर सम्पूर्ण संसार मुग्ध था। नगर-निवासियों द्वारा जब नारद जी को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वे भी उस स्वयंवर सभा में जा पहुँचे। अब राजा शीलनिधि ने अपनी सभा में नारद जी को पधारते हुए देखा तो उसने आगे बढ़कर उनका अत्यन्त सम्मान किया। फिर उन्हें ले जा कर अपने आसन पर बैठ दिया। इसके उपरान्त उस राजा ने अपनी परम सुन्दर कन्या को भी बुला कर नारद जी के सम्मुख उपस्थित कर दिया। बहुत समय तक नारद जी उस कन्या के अनुपम स्वरूप को अपलक दृष्टि से देखते रहे। तदुपरान्त जब उन्होंने उस कन्या के लक्षणों का विचार किया तो यह पाया कि जो भी मनुष्य इस कन्या का पति होगा, वह संसार में अमर हो कर अक्षय कीर्ति को प्राप्त करेगा और युद्ध में कभी किसी से भी परास्त न हो सकेगा। कन्या के इन लक्षणों को विचार कर नारद जी वहाँ से उठ कर अपने मार्ग पर फिर चल दिये; परन्तु इस समय उनका मन काम के वशीभूत हो कर उस कन्या को स्वयं प्राप्त करने को लालायित हो रहा था। इस प्रकार वे अपनी बुद्धि के विपरीत कामदेव के जाल में फँस गये। उन्होंने यह भी विचार किया कि जब तक मैं सुन्दर नहीं हूँ तब तक मुझे उस कन्या का मिलना असम्भव है; क्योंकि स्त्रियाँ सुन्दरता को ही अधिक प्यार करती हैं। अस्तु मुझे यह उचित है कि मैं भगवान् विष्णु से उनकी सुन्दरता माँग लूँ और राजकुमारी को मोहित कर, अपने साथ विवाह करने के लिए उसे तैयार कर लूँ।

हे ऋषियो ! इस प्रकार निश्चय करके नारद जी वहीं मार्ग में एक स्थान पर बैठ कर श्री विष्णु का ध्यान करते हुए प्रार्थना करने लगे कि

आपके समान मेरा हितचिंतक अन्य कोई नहीं है। हे प्रभो ! संसार में आपके समान मेरा हितचिंतक अन्य कोई नहीं है। अस्तु आप यहीं प्रकट हो कर मेरा मनोरथ पूर्ण करें। नारद जी की प्रार्थना को सुन कर श्रीविष्णु उसी स्थान पर प्रकट हो गये। जब नारद जी ने उन्हें अपना मन्तव्य सुनाया तो उन्होंने उत्तर दिया—"हे नारद ! जिस प्रकार वैद्य रोगी की इच्छा के प्रतिकूल भोजन देता है, उसी प्रकार मैं भी आपकी सेवा करूँगा।" इतना कह कर श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये। नारद जी उनके गूढ़ वचनों का भावार्थ नहीं समझ सके। अस्तु, नारद जी का सम्पूर्ण शरीर श्रीविष्णु जैसा हो गया, परन्तु उनका मुख बन्दर जैसा बना रहा। नारद जी वहाँ से उठ कर शीघ्रतापूर्वक पुनः राज सभा में जा पहुँचे। नारद जी बारम्बार उचकते हुए, मन-ही-मन यह विचार करके प्रसन्न होने लगे कि अब राजकन्या मुझे छोड़ कर अन्य किसी को वरण नहीं करेगी। उस सभा में नारद जी के इस नये स्वरूप को कोई देख नहीं सका, अतः सब ने उन्हें नारद समझ कर ही प्रणाम किया। भगवान् सदाशिव के दो गण भी ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए बैठे थे। उन दोनों से यह रहस्य छिपा न रह सका। अस्तु, वे दोनों नारद जी के पास जा कर बैठ गये। उन्होंने मुस्काते हुए नारद जी से कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ ! आपको तो भगवान् विष्णु ने अत्यन्त सुन्दर रूप प्रदान कर दिया है। अब भला, राजकन्या आपको छोड़कर अन्य किसी को क्यों स्वीकार करेगी?"

सूत जी ने कहा—हे शौनकादि ऋषियो ! इसी बीच वह राजकन्या भी स्वयम्वर सभा में आ पहुँची। जब उसने नारद जी के उस भयानक स्वरूप को देखा तो वह अपने मन में अत्यन्त अप्रसन्न हुई और मुँह फेर कर दूसरी पंक्ति में अपने योग्य पति को ढूँढ़ने लगी। इधर नारद जी की यह दशा थी कि वे बारम्बार उचक-उचक कर, चारों ओर से उस राजकन्या के समीप पहुँचने का प्रयत्न करते थे। शिवजी के वे दोनों गण नारद जी की इस दशा को देख कर परस्पर और अधिक हास्य कर उठे। ठीक उसी समय भगवान् विष्णु उस सभा में आ पहुँचे। उन्हें देखते ही राजकन्या ने प्रसन्न हो कर, गले में वर माला डाल दी। यह

देख कर अन्य सब राजा तो निराश हुए ही, देवर्षि नारद जी अत्यन्त विह्वल हो गये। उस समय उन दोनों शिवगणों ने नारद जी से यह कहा—"हे मुनिराज ! आप इतने दुःखी क्यों होते हैं? कृपा कर अपने मुख को किसी दर्पण में तो देख लीजिए।

तीसरा अध्याय

शिवगणों की बात सुन कर नारद जी वहाँ से उठ कर एक पानी से भरे तालाब के पास जा पहुँचे। वहाँ जल के भीतर जब उन्होंने अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखा तो उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। अपने उस विकृत रूप को देख कर उन्हें अत्यन्त क्रोध हो आया और उसी क्रोध में उन्होंने उन दोनों शिवगणों को यह शाप दिया "अरे मूर्खो तुमने हमारी बहुत अप्रतिष्ठा की है, अतः तुम दोनों भी छली तथा पापी हो जाओ। तुम अपने किये का फल पाओ कि जिससे फिर ऐसा नीच-कर्म करने की तुम्हें हिम्मत न पड़े।" नारद जी के मुख से इस शाप को सुन कर वे दोनों गण अत्यन्त चिन्तातुर हो वहाँ से लौट कर अपने लोक में जा पहुँचे और शिव जी की स्तुति करने लगे। इधर नारद जी भी कुछ देर बाद अपनी यथार्थ दशा में आ गये। परन्तु उनके मन में यह विचार निरंतर चक्कर काटता रहा कि विष्णु द्वारा छल किये जाने के कारण ही मेरा यह अपमान हुआ है, अतः या तो मैं विष्णु को शाप दूँगा अन्यथा अपने प्राण त्याग दूँगा।

हे ऋषियो ! यह निश्चयकर नारद जी भगवान् विष्णु के वैकुण्ठधाम को चल दिए। उस समय नारद जी की इच्छा जान कर विष्णु भगवान् उन्हें मार्ग में ही मिल गये। विष्णु भगवान् के साथ वह कन्या भी थी, जिसको उन्होंने स्वयम्वर में प्राप्त किया था। अस्तु, विष्णु भगवान् ने नारद को प्रणाम करके हास्यपूर्ण शब्द में कहा—"हे नारद जी ! आप इस प्रकार चिंतित हो कर कहाँ जा रहे हैं?" विष्णु के ऐसे वचन सुन कर नारद जी अत्यन्त क्रोधित हुए, उसी क्रोधावस्था में नारद जी के

६०

मुँह से यह शब्द निकले—"हे विष्णु ! तुम इस समय हम को अच्छे मिले ! तुम बड़े छली हो। तुम्हारा वह छल जो तुमने दिति के पुत्रों के साथ मोहनी रूप धारण करके, अमृत को बाँटने में किया था, प्रसिद्ध है ही। तुम्हीं ने छल से जलन्धर की स्त्री से उसका पतिव्रत धर्म छुड़ाया। सदाशिव ने भी तुम को वरदान देकर सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी बना कर उचित नहीं किया है। अब सदाशिव भी तुम को ऐसा स्वाधीन एवं सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी बना कर अपने मन में चिन्तित हैं। अब हम सदाशिव की आज्ञानुसार ही, तुम को तुम्हारे कर्मों का फल देते हैं जिससे कि तुम भविष्य में फिर ऐसा कोई काम न करो। यद्यपि तुम को सदाशिव ने वरदान दिया है, तो भी हम तुमको केवल शिक्षा देने के लिए ही शाप देते हैं।"

नारद जी ने इतना कह कर, विष्णु को यह शाप दिया—"हे विष्णु ! तुम ने जिनके समान हमारा मुख कर दिया था, वही बानर तुम्हारी सहायता करेंगे। जिस स्त्री के लिए तुमने हमारा अपमान किया, तुम भी उसी स्त्री के वियोग में अत्यन्त दुखी हो कर वन-वन में घूमते फिरोगे।" विष्णु जी ने यह सुनकर नारद जी के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया; परन्तु नारद जी ने उन्हें क्षमा नहीं किया। भगवान् सदाशिव ने यह देख कर नारद जी के मन से अपनी माया हटा ली। उस समय न तो नारद जी की ही वह दशा रही और न वहाँ कोई स्त्री ही दिखाई दी। तब नारद जी ने आश्चर्यचकित हो कर, खेद प्रकट करते हुए कहा—"कहा नहीं जा सकता कि यह सब वृत्तान्त सत्य है या मैंने इसे स्वप्न में देखा है।" फिर "आपकी माया अपरम्पार है, जिससे हम जैसे बुद्धिमान् भी भ्रमित हो जाते हैं" कहते हुए नारद जी विष्णु जी के चरणों पर गिरते हुए बोले—हे नारायण ! आप मेरे शाप का खण्डन कर दीजिये तथा जो कठोर शब्द मैंने कहा है, उस महापाप के लिए मुझे क्षमा कर दीजिए।"

यह सुन कर विष्णु जी ने कहा—"हे नारद ! तुमने सदाशिव के वचनों की जो अवज्ञा की है, यह सब उसी का फल मिला है। अब भी

उचित है कि तुम चैतन्य हो कर सदाशिव को महान् समझो। वे ही तीन स्वरूप धारण करके तीनों कार्यों द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करते हैं। वे स्वयं प्रलय के स्वामी हैं। मैं केवल सदाशिव के तप के कारण ही सबसे बड़ा गिना जाता हूँ। हे नारद ! तुम उन्हीं सदाशिव की तपस्या करो; क्योंकि उनकी आराधना और तपस्या के बिना कोई भी परमपद प्राप्त नहीं कर सकता है। अब तुम्हें उचित है कि सब कुछ त्याग कर, सदाशिव का भजन करो एवं उनके शतनाम का जप करो। वे ही मेरी शक्ति हैं। तुम हृदय में शिव जी के चरणों का ध्यान रख कर, देशाटन करो जिससे तुम्हें दुःख न होगा। तुम्हारे लिए यही उचित है कि समस्त भूमण्डल पर भगवान् सदाशिव की महिमा देखते हुए, काशी जी को सिधारो। उसे रुद्र क्षेत्र, वाराणसी, मुक्ति क्षेत्र तथा महाश्मशानभूमि भी कहते हैं।

इतना कह कर विष्णु भी अन्तर्धान हो गये और नारद जी सदाशिव जी के पास चल दिए। मार्ग में वे दोनों गण मिले और वे भी नारद के चरणों पर गिर कर क्षमा याचना करते हुए बोले—"हे ऋषिराज ! हम ब्राह्मण नहीं, अपितु सदाशिव के गण हैं। हमने आपका बड़ा अपमान किया है। इसलिए, हमें अपना दास समझ कर कृपा करें, क्योंकि हम अपने कर्मों का फल प्राप्त कर चुके हैं।" नारद जी ने यह सुन कर खेद प्रकट करते हुए कहा—मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। सदाशिव की माया अपरम्पार है। मैंने जो कुछ कहा है, हे शिवगणो ! वह हो कर ही रहेगा, परन्तु मैं तुम्हें यह वर देता हूँ कि तुम दोनों भाई मुनि के वीर्य एवं राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न होगे तथा बहुत प्रतापी होगे। सम्पूर्ण सृष्टि पर विजय प्राप्त करोगे तथा अनेक प्रकार के भोग भोगकर भी सदाशिव की भक्ति से अचेत न होगे। अन्त में, बानर और मनुष्य द्वारा तुम मुक्ति प्राप्त करोगे।

इतना कह कर नारद जी पहले सदाशिव के पास तथा फिर ब्रह्मा के पास गये और वहाँ दोनों हाथ जोड़, स्तुति करते हुए बोले—"हे पिता ! आप ने विष्णु की जो कथा मुझसे कही थी—जिसमें भक्ति, वैराग्य, तप, दान की रीति एवं तीर्थ आदि का वर्णन है, वह तो मैंने

सुनी; परन्तु मैं सदाशिव जी की भक्ति से अभी अनभिज्ञ हूँ। इसलिए कृपा कर मुझे क्रम से बताइए कि सदाशिव आदि, मध्य तथा अन्त में क्यों रहते हैं और कैसे प्रसन्न होते हैं? वे निर्गुण हो कर भी सगुण कैसे हो जाते हैं? आप अपनी तथा विष्णु जी की उत्पत्ति के ऊपर भी प्रकाश डालिए। शिव और पार्वती के जितने भी चरित्र हों, कृपा करके उन पर भी प्रकाश डालिए, जिससे मुझे और आपको भी प्रसन्नता प्राप्त हो।''

ॐ ॐ ॐ

चौथा अध्याय

इतनी कथा सुना कर सूत जी ने कहा—''हे शौनकादि ऋषियो ! नारद जी का यह प्रश्न सुन कर, ब्रह्मा जी ऐसे प्रेम मग्न हुए कि उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। उन्हें तन, मन, स्त्री, पुत्र, घर द्वार आदि किसी का भी कुछ ध्यान न रहा। बहुत देर बाद जब वे प्रकृतिस्थ हुए तब 'शिव, शिव' कहते तथा शिवजी का ध्यान करते हुए हँस कर बोले—''हे नारद ! तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद है। तुमने मेरे सम्पूर्ण कुल को मुक्त कर दिया है, क्योंकि तुम्हारे हृदय में भगवान् सदाशिव की भक्ति उत्पन्न हुई है।'' इस प्रकार प्रशंसा करने के उपरान्त पितामह ब्रह्मा जी ने नारद जी से कहा—''हे पुत्र ! मैं सर्वप्रथम अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् सदाशिव के निर्गुण चरित्र का वर्णन करूँगा, तदुपरान्त उनकी सगुण महिमा को कहूँगा। तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि जिस समय सृष्टि का कहीं चिह्न भी न था, उस समय भगवान् सदाशिव ही निर्गुण रूप से सर्वत्र व्याप्त सच्चिदानन्द स्वरूप, एकमात्र परब्रह्म थे। वे भगवान् सदाशिव सत्य एवं परमानन्द रूप हैं। वे मन तथा वचन के स्वामी हैं और नाम रूप से हीन हैं। वे किसी के वशीभूत न तो देखने में आते हैं और न कोई उनका आदि-अन्त ही जानता है। वे किसी के वशीभूत न हो कर सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी बने हुए हैं। वे ही मनुष्यों के कर्मों के साक्षी हैं तथा सर्वव्यापक होते हुए भी, सबसे भिन्न रहते हैं।

हे नारद ! उन शिवजी की स्तुति करने में सहस्त्र फणधारी शेषनाग भी हार गये हैं। योगी लोग उनका भजन करते हैं, परन्तु उनके आदि और अन्त को नहीं जान पाते। वे निगुर्णस्वरूप वाले प्रभु बिना कान के ही सब कुछ सुन सकते हैं, बिना आँख के ही सब कुछ देख सकते हैं, बिना नाक के ही सम्पूर्ण सुगन्धियों को सूंघ लेते हैं, बिना मुख के ही सम्पूर्ण पदार्थों का भोजन करते हैं, बिना जिह्वा के सम्पूर्ण विद्या को पढ़ते हैं, जिन स्वामी की ऐसी विचित्र महिमा है, उनकी स्तुति भला किस प्रकार की जा सकती है?

हे नारद ! ऐसे निर्गुण स्वरूप भगवान् सदाशिव ने जब अपने मन में यह इच्छा की कि हम एक से अनेक हो जाएँ, उस समय वे सगुणरूप हो गये। उनके निर्गुण एवं सगुण रूप में कोई अन्तर नहीं है। उन्होंने विष्णु और ब्रह्मा को उत्पन्न किया है एवं वे ही सम्पूर्ण प्राणियों में प्रतिष्ठत विराट् स्वरूप हैं। उनके सहस्त्रों नाम हैं, जिनमें—शिव, शंकर, हर, नाथ, महेश, परमदेव, वामदेव, जगदीश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, गिरीश, शम्भु, सदाशिव, अनीश, विवुध, पार्वतीपति, चक्री, त्रिशुलपाणि, ईश्वर, सुखदाता, अनादि, अनन्त, सर्व आदि संसार में अधिक प्रसिद्ध हैं। वे भगवान् सदाशिव ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा मान प्राप्त करते हैं। संपूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाले तथा भक्तों को आनन्द प्राप्त कराने वाले वे भगवान् उमापति ही सूर्य, चन्द्रमा आदि सहस्त्रों गुणों से भरी हुई संपूर्ण सृष्टि एवं ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के उत्पन्नकर्त्ता हैं। इस प्रकार भगवान् सदाशिव अपने सहस्त्रों नामों से सम्पूर्ण लोकों में प्रसिद्ध हैं।

हे नारद ! अब तुम उन त्रिशूलपाणि भगवान् शिव के उस सगुण स्वरूप का वर्णन सुनो जिसको स्मरण करने से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। अपने सगुण स्वरूप में वे मस्तक पर जटाजूट एवं गंगा जी को धारण किये हैं। उनके भाल पर चन्द्रमा की कला एवं धनुषाकार त्रिपुण्ड विराजमान हैं। वे कानों में कुण्डल पहने हैं और सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि के समान तीन लाल नेत्रों को धारण किये हैं। उनका

प्रभातकालीन सूर्य के समान पहिला मुख पूर्व दिशा की ओर रहता है तथा उनका दूसरा मुख दक्षिण दिशा की ओर, उनके कंठ में तीन लकीरें हैं। उस कंठ में विराजित हलाहल की श्यामता भक्तों के मन को अनायास ही हर लेती है। वे अपने गले में मुण्डों की माला धारण किये रहते हैं और हाथ में त्रिशूल लिये रहते हैं। उन्हें कोई चतुर्भुज और कोई पंचमुख कहता है। बहुतों ने उन्हें दशभुजाधारी भी कहा है। वे अपने उन हाथों में भिन्न-भिन्न प्रकार के शस्त्र लिये रहते हैं। उँगलियाँ भी सुकोमल एवं अरुण प्रभायुक्त हैं। ऐसे सम्पूर्ण कलाधारी भगवान् सदाशिव के पवित्र स्वरूप का स्मरण बड़े-बड़े तपस्वी तथा मुनिजन निश्छल भाव से किया करते हैं।

हे नारद ! जिस प्रकार शिवजी के अनेक स्वरूप हैं, उसी प्रकार उनका ध्यान धरने की क्रियाएँ भी असंख्य हैं; परन्तु उन्हें जानने वाले बहुत कम लोग ही पाये जाते हैं। भगवान् सदाशिव की महिमा, स्वरूप तथा नामों की कोई गिनती नहीं हो सकती। वेदों का नाम भी न जानने वाले गज और गणिका जैसे असंख्य महापापी मूर्खों ने जो मुक्ति प्राप्त की, उसका एक मात्र कारण यही है कि उन पर भगवान् श्री त्रिशूलपाणि ने स्वयं ही कृपा कर दी थी। ऐसे दयालु गिरिजापति की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है?

हे नारद ! भगवान् सदाशिव ने ही अपने आनन्द के निमित्त शक्ति को प्रकट किया था अर्थात् भगवान् त्रिशूलपाणि के तेज द्वारा ही महाशक्ति का जन्म हुआ है। उस महाशक्ति का जो स्वरूप है वह मैं तुम्हें बताता हूँ। वे देवी सोलह श्रृंगार किये हुए हैं। उनका शरीर श्याम कमल के समान कोमल है। उनके केश घुंघराले तथा कृष्ण वर्ण हैं। उन शक्ति स्वरूपा देवी के ऐसे अनुपम स्वरूप का ध्यान धर कर भक्तों को अत्यन्त प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव ने उस परमशक्ति को श्यामरूप में उत्पन्न किया, परन्तु अनेक भक्त उन्हें गौरवर्ण अथवा सोने के समान रंग वाली कह कर उनका स्मरण एवं ध्यान करते हैं। इस संसार में जो

कुछ भी दिखाई देता है और जहाँ तक वचन तथा मन की गति है, उन सब को इन आदि शक्ति की कृपा से ही उत्पन्न समझना चाहिए। अब हम तुमसे भगवान् सदाशिव के सगुण स्वरूप के गूढ़ चरित्रों का वर्णन करते हैं।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव को परब्रह्म एवं भगवती उमा को परमशक्ति समझना चाहिए। सर्वप्रथम भगवान् सदाशिव ने उमा नामधारिणी उस परमशक्ति के साथ विहार करने के निमित्त एक लोक की रचना की, जिसमें दुःख, चिन्ता, शोक तथा दारिद्रय का कोई स्थान नहीं है। वह लोक अत्यन्त रमणीक, परम विचित्र एवं मनोहर है। उस स्थान को भगवान् सदाशिव किसी भी समय नहीं छोड़ते, इसीलिए वह 'अविमुक्त' कहा जाता है। वह स्थान सृष्टि के सम्पूर्ण जीवों को आनन्द देने वाला होने के कारण 'आन्नद वन' के नाम से भी प्रसिद्ध है। वह स्थान सिद्धरूप, तेजस्वरूप तथा अद्वितीय होने के कारण 'काशी' भी कहलाता है। उस नगर में भगवान् सदाशिव ने अपनी इच्छा से एक ऐसे भवन का निर्माण किया, जो अनेक प्रकार के रत्नों से अलंकृत है जिसमें मोतियों की झालरें लटका करती हैं। और जहाँ छत्र, विमान आदि असीमित संख्या में रखे हुए हैं। उस लोक अथवा नगर में कल्पवृक्ष के समान मनोभिलाषा पूर्ण करने वाले सहस्त्रों वृक्ष विद्यमान हैं। उस भवन को भगवान् सदाशिव ने अपनी आदिशक्ति सहित सुशोभित किया। उन्होंने परम शक्ति को सम्बोधित करते हुए कहा—'हे प्रिय ! यह लोक अत्यन्त उत्तम, परम पवित्र एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाला है, अतः यह मुझे तथा तुझे अत्यन्त प्रिय है। यहाँ किसी भी प्रकार के दुःख का कभी प्रवेश न हो सकेगा। जो मनुष्य यहाँ पहुँच जाएगा; वह नरक के दुःखों से मुक्त हो जाएगा। हम इस काशी की जो प्रशंसा करते हैं, सो कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि इसकी स्तुति का वर्णन करने में वेद भी असमर्थ हैं।'' इतना कह कर भगवान् सदाशिव भगवती उमा के साथ वहीं विहार करने लगे। जब उनके हृदय में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि हम

कोई रचनात्मक कार्य करें, उस समय उन्होंने भगवती उमा से इस प्रकार कहा—"हे प्रिये ! अब हम कोई ऐसा काम करना चाहते हैं, जिससे हम दोनों को प्रसन्नता की प्राप्ति हो।"

पाँचवाँ अध्याय

भगवान् सदाशिव ने कहा—"हे प्रिये ! हमें एक ऐसा मनुष्य उत्पन्न करना चाहिए, जो सब विद्याओं में पारंगत हो और जिसके ऊपर हम सम्पूर्ण सांसारिक भार को छोड़कर, आनन्दपूर्वक विहार कर सकें। भगवान् त्रिशूलपाणि के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुन कर भगवती जगदम्बा जी ने अपने बाईं ओर देखा तो उनकी इच्छा से तुरन्त ही एक मनुष्य की उत्पत्ति हुई। वह मनुष्य अत्यन्त स्वरूपवान्, कलावान्, बुद्धिमान् तथा शीलवान् था। उसका सम्पूर्ण शरीर श्यामवर्ण चन्द्रमा जैसा था। वह अपने भाल पर त्रिपुण्ड धारण किये हुए था। वह पीतवस्त्र धारण किये हुए था। उसका प्रत्येक अंग सुडौल एवं परम सुन्दर था। वह सम्पूर्ण विद्याओं का निधान, महाप्रतापी, सिद्धरूप तथा पवित्र था। वह उत्पन्न होते ही बारम्बार दंडवत् करता हुआ भगवान् सदाशिव एवं भगवती उमा के सम्मुख आ, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उस सुन्दर मनुष्य को देख कर उमा सहित उमापति शिवजी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए। वह भी इन दोनों को देख कर बहुत हर्षित हुआ। तदुपरान्त उसने हाथ जोड़ कर इन दोनों की स्तुति तथा प्रशंसा करते हुए प्रार्थना की—"हे पिता एवं हे मातेश्वरी ! आप मेरा नाम रख कर, मेरे योग्य जो कार्य हो उसे बताइए।" यह सुन कर श्री शिवजी बोले—"तुम्हारा नाम विष्णु होगा। सम्पूर्ण सृष्टि में तुम्हारे समान तेजस्वी तथा प्रतापी अन्य कोई भी प्राणी प्रकट न होगा। तुम्हारा यश सम्पूर्ण संसार में निरन्तर फैला रहेगा। संसारी मनुष्य तुम्हें हरि, चतुर्भुज, भगवान्, अच्युत आदि अनेक नाम से पुकारेंगे। तुम भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए उत्पन्न किये गये हो। अब तुम्हें यह

उचित है कि तुम तपस्या करो, जिससे तुम्हें अधिक तेज एवं सामर्थ्य की प्राप्ति हो।" इतना कह कर भगवान् सदाशिव ने विष्णु को योग विद्या का उपदेश किया। तब विष्णु एक स्थान पर बैठ कर तपस्या करने में संलग्न हो गये।

हे नारद ! वे द्वादश दिव्य सहस्त्र वर्ष पर्यन्त एक ही आसन पर बैठे हुए योग साधन द्वारा भगवान् सदाशिव का ध्यान करते रहे, परन्तु जब उन्हें तपस्या का कुछ भी फल प्राप्त नहीं हुआ तो उनके हृदय में अत्यन्त शोक हुआ। उसी समय, जिस प्रकार वर्षा में बादल गरजते हैं, ठीक उसी प्रकार यह आकाशवाणी हुई—"हे विष्णु ! तुम मन लगा कर फिर से तप करो; क्योंकि हम सुगमता से किसी को दिखाई नहीं देते हैं।" इस आकाशवाणी को सुन कर उन्होंने पुनः अत्यन्त कठिन तप करना आरम्भ कर दिया। उस कठिन तपस्या के कारण विष्णु के पवित्र शरीर से इतना पसीना निकला कि उससे एक नदी बह चली। उस अवस्था में बैठे हुए विष्णु जब मूर्च्छित हो गये, तब उनका नाम तीनों लोकों में 'हरनारायण' प्रसिद्ध हुआ। वे इस प्रकार मूर्च्छित हो गये कि जैसे कोई निद्रा में शयन कर रहा हो। उसी दशा में भगवान् सदाशिव की इच्छा से विष्णु की नाभि से एक कमल की उत्पत्ति हुई। उस कमल में बहुत-सी पंखुड़ियाँ थीं। वह देखने में बहुत ऊँचा, अत्यन्त मनोहर तथा लम्बा था।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! विष्णु को उत्पन्न करने के पश्चात् भगवान् सदाशिव ने मुझे अपनी दाहिनी भुजा से उत्पन्न किया और उसी कमल में बैठा दिया। मेरा रंग लाल था। मेरे चार मस्तक थे, जो चारों दिशाओं की ओर खुल रहे थे। मेरे अन्य सभी अंग विष्णु के समान ही थे। मैं भी अत्यन्त सामर्थ्यवान् एवं तेजस्वी था। उसी समय मैंने यह आकाशवाणी सुनी—'हे पुत्र ! तुम्हारे अज, ब्रह्मा, धाता, विधाता, प्रजेश, परमेष्ठी, बहुगर्भ आदि अनेक नाम होंगे।" परन्तु मैं उस समय यह नहीं जान सका कि मुझे उत्पन्न करने वाला कौन है? हे नारद ! भगवान् सदाशिव की माया तीनों भुवनों को घेरे हुये है। वे जो

चाहते हैं, वही होता है। अस्तु, जब मैं यह नहीं जान सका कि मैं किसके द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ और किसका पुत्र हूँ तथा उस कमल के पुष्प की जड़ कहाँ है? तब मैंने अपने मन में यह विचार किया कि जिसके मूल से यह कमल का पुष्प उत्पन्न हुआ है, वही मेरा पिता होगा। ऐसा निश्चय करके उस कमल की जड़ को जन्म देने वाले अपने पिता का पता लगाने के लिए मैं उस कमल की डण्डी के मार्ग से, उस जल के भीतर जा पहुँचा, जिसमें हो कर वह कमलनाल ऊपर को निकली हुई थी। यद्यपि मैं उस कमलनाल के सहारे सैंकड़ों कोसों तक पानी के भीतर चला गया, परन्तु मुझे उसके उद्‌गम स्थान का कोई भी पता नहीं चल सका। तब मैं निरन्तर सौ वर्षों तक प्रयत्न करने के बाद निराश हो जाने के शोक से व्याकुल हो कर उसी स्थान पर पुनः लौट आया, जहाँ से नीचे की ओर गया था। जब मैं पुनः ऊपर लौट कर आया तो यह देख कर मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि वहाँ वह कमल पुष्प कहीं भी दिखाई नहीं देता था जिस पर मैं पहले बैठा हुआ था। इस अद्‌भुत दृश्य को देख कर मुझे अत्यन्त चिन्ता हुई। तब मैंने इस सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी से अपनी रक्षा करने की प्रार्थना की।

हे नारद ! उस समय मुझे चिन्तायुक्त देख कर आकाशवाणी हुई, जिसके द्वारा दो अक्षर प्रकट हुए। उन अक्षरों के सहारे सोलह तथा इक्कीस अक्षरों का और ज्ञान हुआ जिनसे मैं बहुत-सी बातों को जान सका। ठीक उसी समय भगवान् सदाशिव की इच्छा से उस जल में अचेत हो कर पड़े हुए विष्णु सचेत हो कर मेरे समीप आये। वे रत्नजटित किरीट आदि को धारण किये हुए थे। उनके शरीर का रंग मेघ के समान श्यामल था। उनके उस मनोहारी प्रकाशवान् स्वरूप को देख कर मैं आशचर्यचकित रह गया।

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए; क्योंकि भगवान् सदाशिव जो चाहते हैं वही होता है। अस्तु, मैंने विष्णु के उस स्वरूप को देखकर

पूछा—"आप कौन हैं?" विष्णु ने उत्तर दिया—"हे ब्रह्मन् ! हम ब्रह्म, अलख, निरंजन, हरि, भूपति, निर्विकार अचिन्त्य तथा सतचित् आनन्दस्वरूप हैं। हम तुम्हारे पिता हैं और हमारे ही नाभि-कमल द्वारा तुम्हारी उत्पत्ति हुई है। अब तुम निर्भय हो जाओ, क्योंकि हम तुम्हारे रक्षक हैं। हम से ऊपर, हमारे समान अथवा हम से उत्तम अन्य कोई नहीं है। हमी सभी के स्वामी हैं।" हे नारद ! विष्णु जी ने यह बात अज्ञानावस्था में ही कही थी कि हम हीं उत्तम हैं और हम हीं ब्रह्म हैं, क्योंकि वे उस समय शिवजी की माया से अचेत थे। भला इस संसार में ऐसा कौन है, जिसे भगवान् सदाशिव की माया भुलावे में नहीं डाल देती?

हे नारद ! विष्णु के मुख से यह वचन सुनकर मुझे अत्यन्त क्रोध आया। तब मैंने उनसे कहा—हे विष्णु ! तुम ऐसी असत्य बात मत कहो और कैवल्य-भाव का निश्चय रखो। यदि तुम हमें उत्पन्न करने वाले होते तो वेद हमें ब्रह्मा, पितामह, विधाता, परमेष्ठी आदि नामों से नहीं पुकारते। हम स्वयं ही तीनों गुणों को धारण करके सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाले हैं। अतः तुम्हें हमारे प्रति ऐसा शब्द नहीं कहना चाहिए।" मेरी बात सुनकर विष्णु बोले—"हे ब्रह्मा ! तुम्हें ऐसे अज्ञान में पड़ना उचित नहीं है। इस सृष्टि को उत्पन्न करने वाले तुम नहीं हो, बल्कि हम हीं हैं। हम हीं सब जीवों को उत्पन्न करके उनका पालन करते हैं और प्रलयकाल में सब को नष्ट कर देते हैं। हमारे हरि, ईश, अच्युत आदि सर्वोत्तम नाम हैं। हमारी माया के वशीभूत हो कर सब लोग अपना ज्ञान भुला बैठते हैं, इसीलिए तुम भी ऐसा कह रहे हो। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह सम्पूर्ण संसार हमारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है और हमारे ही आधीन बना रहता है। हम हीं ने वेदों को बनाया है और तुम्हें नाभि-कमल द्वारा उत्पन्न किया है। हमसे अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। तुम अपने नामों पर अहंकार मत करो तथा क्रोध को त्याग कर जो वचन कहने योग्य तथा उचित हैं, उन्हीं का प्रयोग करो। जिस प्रकार अन्धा मनुष्य आँखों की महिमा का, निर्धन मनुष्य

धनवान् की अवस्था का वर्णन करे, उसी प्रकार वेद ने भी तुम्हारे नामों का वर्णन किया है। यदि तुम हमारा पूजन करोगे तो वह शुभ होगा अन्यथा हम तुम्हें अपनी शक्ति द्वारा नष्ट कर देंगे।

हे नारद ! विष्णु के ऐसे अहंकार पूर्ण शब्द सुनकर पहले तो मुझे बहुत हँसी आई, फिर हृदय में इतना क्रोध उत्पन्न हुआ कि मैं उनका शत्रु बन गया और उनसे इस प्रकार कहने लगा—"हे विष्णु ! जिस प्रकार गुरु अपने शिष्य को झिड़क कर बुलाता है, उसी प्रकार तुम हमें उपदेश क्यों दे रहो हो?" हे नारद ! परस्पर इस प्रकार कहते हुए हम तथा विष्णु आपस में युद्ध करने लगे। शिवजी की माया से मोहित हो कर हम दोनों ने बहुत समय तक खूब युद्ध किया, क्योंकि हम दोनों ही अपने को सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी समझते थे।"

ॐ ॐ ॐ

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! हमें तथा विष्णु को परस्पर लड़ते हुए देख कर, प्रलयकालीन प्रज्वलित बड़वाग्नि के समान शिवजी अचानक ही उस स्थान पर प्रकट हो गये। मैं उनकी उपमा किससे दूँ? उनके उस परम तेजस्वी स्वरूप को देख कर हम दोनों ने परस्पर युद्ध करना बन्द कर दिया। उस समय विष्णु अत्यन्त भयभीत तथा आश्चर्य चकित हो कर मुझ से यह कहने लगे—"हे ब्रह्मन् ! यह निस्सीम तेज यहाँ कहाँ से आ पहुँचा? अब हम दोनों को उचित है कि हम इस तेज के आदि और अन्त को देख आवें। हम दोनों में से जो भी इसके आदि और अन्त को देख लेगा, उसी को सबसे बड़ा और सब का स्वामी स्वीकार कर लिया जाएगा। हमें तो यह तेज आदि और अन्त से रहित जान पड़ता है। अच्छा, तुम इस तेज के ऊपर की ओर जाओ और हम नीचे की ओर जाते हैं।"

हे नारद ! विष्णु की यह बात मैंने स्वीकार कर ली। तब हम दोनों अहंकारी उस तेज के आदि और अन्त को देखने के लिए एक-दूसरे से

भिन्न दिशाओं में चल दिये। हे पुत्र ! जो कार्य अहंकार की अवस्था में किया जाता है, वह कभी पूर्ण नहीं होता और उसका फल भी अच्छा नहीं मिलता। जब तक मनुष्य अहंकार को नहीं त्याग देता, तब तक उनका कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। हमारे और विष्णु के इस चरित्र को जो मनुष्य प्रातःकाल हाथ-पाँव धो कर ध्यान में लाता है, उसे इस लोग में सुख, आरोग्य तथा परलोक में श्रेष्ठ गति की प्राप्ति होती है।''

हे नारद ! हम और विष्णु एक दिव्य सहस्त्र वर्ष पर्यन्त उस दिव्यज्योति के आदि और अन्त को ढूँढ़ते रहे, परन्तु हम दोनों में से किसी को भी उसका कुछ पता न चला। अस्तु, हम निराश हो कर अपने स्थान को लौट पड़े; परन्तु तभी एक आश्चर्य की बात हुई कि जिस स्थान से हम चले थे, वह हमें बहुत ढूँढ़ने पर भी कहीं दिखाई नहीं दिया। अतः हमें एक सहस्त्र दिव्य वर्षों का समय अपने पहले स्थान पर ढूँढ़ने में लग गया। उस समय हमें इस बात का भली प्रकार ज्ञान हो गया कि हम से ऊपर भी कोई बड़ी शक्ति है जो सबसे उत्तम और पुरातन है। यह बात ध्यान में आते ही हम दोनों उस पवित्र, निर्विकार स्वरूप की शरण में गये और परस्पर शत्रुता को त्याग कर, भक्ति भाव से उस परम स्वामी की स्तुति करने लगे। हम दोनों की उस प्रार्थना को सुनकर यह आकाशवाणी हुई ''हे ब्रह्मा तथा हे विष्णु ! तुम दोनों योग साधन करो।''

हे नारद ! उस आकाशवाणी को सुनकर हम दोनों ने योगाभ्यास करते हुए उस अलक्षित स्वामी की स्तुति में इस प्रकार कहना आरंभ किया—''हे स्वामी ! हम दोनों ने आपकी माया के वशीभूत हो कर अपने को सृष्टि का उत्पन्न कर्त्ता समझ लिया था। अब हम अभिमान को त्याग कर आपको दण्डवत् करते हैं। आप हमें अपना सेवक जान कर कृपा कीजिए और प्रकट हो कर हमें अपना दर्शन दीजिए।'' जिस समय हम लोग इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उसी समय हम दोनों को गूढ़ शब्दों में किसी ने कुछ प्रेरणा दी; परन्तु हम उसके तात्पर्य को नहीं समझ पाये। अब हमने दंडवत् करते हुए पुनः यह प्रार्थना की कि हे

प्रभो ! हमारे सम्मुख साकार रूप में प्रकट हो कर आप दर्शन दें; क्योंकि आपकी गूढ़ प्रेरणा को समझने में हम दोनों ही असमर्थ हैं। हमारे इस प्रकार कहते ही भगवान् सदाशिव ने साक्षात् प्रकट हो कर हमें अपना वह स्वरूप दिखाया, जिसके दर्शन पाकर सम्पूर्ण संसार मोहित हो जाता है। तदुपरान्त प्रणव अर्थात् ॐकार प्रकट हुआ। भगवान् सदाशिव की माया जानने में असमर्थ होने के कारण हम उसे भी समझने में असमर्थ रहे। कुछ देर पश्चात् जब उस प्रणव के चार भाग हुए और उसके भीतर से सगुणरूप भगवान् त्रिशूलपाणि प्रकट हुए, उस समय हमने यह समझा कि इस प्रणव के जो अकार, उकार तथा मकार अक्षर हैं, उसके नाद तथा बिन्दु का यह अर्थ है कि पहला अक्षर अर्थात् अकार लिंग की ज्योति है; दूसरा अक्षर उकार उस ज्योति का मध्य है; जो आधी मात्रा नाद स्वरूप है, वह उस लिंग ज्योति का मस्तक है जो बिन्दु है, वह सम्पूर्ण लिंग का ज्योति स्वरूप है। उसका वर्णन अन्य प्रकार से इस प्रकार किया जा सकता है कि अकार से ऋग्वेद, उकार से यजुर्वेद, मकार से सामवेद, नाद से अथर्ववेद तथा बिन्दु से ब्रह्म विद्या का स्वरूप बना है।

वह इस सम्पूर्ण सृष्टि में सर्वोत्तम है। उसी को 'वृषातन' कहा जाता है। उसी प्रणव में तीनों लोकों की स्थिति है। वह कभी नष्ट नहीं होता। ब्रह्म से लेकर तृण पर्यन्त सभी जीव तथा वस्तुएँ उसमें स्थित रहती हैं। ढूँढ़ने पर भी प्रणव के लिंग को प्राप्त नहीं किया जा सकता। चारों वेद तथा अठारहों पुराण भी उसके भीतर विद्यमान हैं।

हे नारद ! वेद भगवान् सदाशिव को प्रणवरूप कहते हैं। वे शिवजी अपने दाहिने अंग अकार द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं एवं बाएँ अंग उकार द्वारा उसका पालन करते हैं। प्रणवरूप शिव के हृदय में जो मकार है, उससे प्रलय का प्रादुर्भाव होता है। वर्णमाला के सम्पूर्ण अक्षरों से भगवान् सदाशिव का शरीर अलंकृत है। इन अक्षरों से अलंकृत श्री शिवजी का जो शरीर है, उसका स्मरण करने से अत्यन्त प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। मैंने और विष्णु ने सदाशिव का

जब यह प्रणवरूप देखा तो अत्यन्त प्रसन्न हो कर हाथ जोड़ उन्हें दंडवत् की तथा हम दोनों ही उनकी बहुत प्रकार से स्तुति करने लगे।

ॐ ॐ ॐ

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! इस प्रकार निर्विकार एवं निराकार परब्रह्म की बहुत प्रकार से स्तुति करने के उपरान्त हमने उनसे यह प्रार्थना की "हे प्रभो ! आप हमारे समक्ष अपने स्वरूप को प्रकट कीजिए।" मेरी तथा विष्णु जी की यह प्रार्थना सुन कर, भगवान् सदाशिव अपनी परमशक्ति सहित उसी क्षण प्रकट हो गये। उनका शरीर श्वेत पत्थर के समान गौर था। वे उस पर भस्म मले हुए थे। उनके वामांग में आदिशक्ति महामाया उत्तमोत्तम वस्त्रालंकारों को धारण किये हुए विराजमान थीं। इस प्रकार जब उन्होंने अपना दर्शन दिया तो उनके स्वरूप को देखकर हम दोनों को इतना अधिक आनन्द हुआ कि उस प्रसन्नता में हमारे नेत्रों से आँसू बह निकले और वाणी गद्गद हो गयी। कुछ देर पश्चात् जब हमें चैतन्यता प्राप्त हुई, तो हम हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करते हुए बोले—"हे प्रभो ! हमारा यह पारस्परिक विवाद शुभ ही हुआ, जो हमें आप परमप्रभु के दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। निश्चय ही हमारे शुभ कर्मों का उदय हुआ है जो हम आपको देखकर लोक-परलोक का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। हे प्रभो ! हम से जो कुछ अपराध हुआ, उसे आप कृपापूर्वक क्षमा कर दीजिए।" हम दोनों ने भगवान् सदाशिव को अपना स्वामी स्वीकार किया और अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपने हाथ जोड़ते हुए उनकी महान् महिमा का वर्णन किया। तत्पश्चात् हम अपने मस्तक को नीचे झुकाए हुए उनके चरणारविंदों की ओर देखने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! मेरे तथा विष्णु द्वारा की गई स्तुति को सुनकर भगवान् सदाशिव ने मुस्कुराये हुये इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मन् तथा हे विष्णो ! तुमने हमारी माया के मोह में पड़कर युद्ध किया और अन्त में हमने तुम दोनों को अपना भक्त जान कर, अपना लिंग स्वरूप प्रकट किया, जिसे तुम दोनों में कोई नहीं पहिचान सका। अब तुम्हें यह उचित है कि पारस्परिक विरोध भाव को त्याग कर, तुम दोनों ही अहंकार को नष्ट कर दो और वह कार्य करो, जिसकी हम तुम्हें आज्ञा देते हैं।"

हे नारद ! इतना कह कर भगवान् सदाशिव ने श्वास के मार्ग द्वारा मुझे सम्पूर्ण वेद पढ़ा दिये। तदुपरान्त वे पाँच मन्त्र भी बताये, जिनमें संपूर्ण विद्याएँ अन्तर्निहित हैं। उन्होंने सर्व प्रथम प्रणव की शिक्षा दी, जिसके अक्षर वेद कहलाते हैं। शिवजी का सर्वप्रथम वाक्य वही है। तदुपरान्त उन्होंने चौबीस अक्षरों से युक्त वेदों की माता गायत्री का उपदेश दिया। फिर महामृत्युञ्जय मंत्र की शिक्षा देने के उपरान्त उस चिन्तामणि मंत्र को सिखाया, जो भक्तों को महान् सुख देता है। उस वेद तथा मन्त्रों को पढ़कर हमें अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई। उस समय मैं तथा विष्णु जी कृतज्ञता भरी दृष्टि से उन महेश्वर भगवान् की ओर देखने लगे और दर्शन के उस आनन्द में आचूड़ निमग्न हो गये। उन परमप्रभु के दर्शन से हमें जो सुख प्राप्त हुआ, उसका वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। हमारे उन अनन्य प्रेम को देखकर भगवान् महेश्वर को भी बहुत प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने मुझसे यह कहा—"हे ब्रह्मा ! तुम धन्य हो, जो तुम्हें मेरी कृपा से सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अब तुम मेरी आज्ञा स्वीकार कर, सृष्टि करो।" मुझसे यह कह कर फिर वे विष्णु की ओर देखते हुए बोले—"हे विष्णु ! तुम सृष्टि का पालन करने के अधिकारी हो। तुम हमें वेद का स्वरूप जानो और वेद में जो कुछ

लिखा है, उसे हमारी आज्ञा मान कर स्वीकार करो।''

हे नारद ! भगवान् त्रिशूलपाणि की आज्ञा सुन कर हम दोनों ने उनसे प्रार्थना करते हुए कहा—''हे प्रभो ! हमें आपकी आज्ञा स्वीकार है, परन्तु हम यह चाहते हैं कि आप स्वयं भी कोई अवतार ग्रहण कर हमारी सहायता करते रहें। तीनों लोकों का पालन करने के पश्चात् अंत अर्थात् प्रलय का अधिकार आप अपने पास रखें। हमारा यही मनोरथ है।'' इतना कह कर हम दोनों मौन हो गये। तदुपरांत उनकी मौन स्वीकृति पाकर हमने यह बात कही—''हे प्रभो ! अब आप सर्वप्रथम हमें यह बताइए कि हम किस रीति के अनुसार आपका पूजन करें?'' यह सुनकर भगवान् भूतभावन ने उत्तर दिया—''हे ब्रह्मा तथा विष्णु ! हमें संसार में तुमसे अधिक प्रिय अन्य कोई न होगा। अब तुम दोनों सम्पूर्ण चिन्ता तथा शोक को त्याग कर, सुखपूर्वक अपना कार्य करो तथा उस कार्य द्वारा अन्य लोगों को भी सुख पहुँचाओ। हमने तुम्हें कुछ देर पूर्व जो अपना लिंग स्वरूप दिखाया था, उसका पूजन करना सर्वथा योग्य है। उसी के पूजन से सुख की प्राप्ति होगी। उस लिंग की उत्पत्ति का भेद यह है कि सम्पूर्ण संसार जिस क्षेत्र में लीन हुआ है, उसी को लिंग कहते हैं। अस्तु, ऐसे लिंग के पूजन से इस लोक तथा परलोक में सुख प्राप्त होता है। लिंग के पूजन की महिमा अनंत है। तुमने जो हमसे अवतार ग्रहण करने की प्रार्थना की है, उसके सम्बन्ध में यह जान लो कि समय आने पर हम स्वयं ही प्रकट हो कर आवेंगे। हमारे उस अवतार का नाम रुद्र होगा। हम चारों अर्थात् ब्रह्मा विष्णु, शिव और शक्ति एक ही स्वरूप हैं। जो व्यक्ति हम में किसी प्रकार का भेद समझेगा, उसे बहुत दुःख उठाना पड़ेगा।''

इतना कहकर भगवान् सदाशिव ने एक बड़े गुप्त भेद को प्रकट करते हुए मुझ से यह कहा—''यह भेद वेद में भी अधिक गुप्त है अर्थात् हम सगुण रूप में शिव और शक्ति दो नामों से प्रकट होते हैं, तथा तीनों गुणों द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव नामक देवताओं के रूप में अलग-अलग प्रकट होते हैं। किसी कल्प में पहिले, विष्णु, फिर ब्रह्मा

तदुपरान्त रुद्र की उत्पत्ति होती है तो किसी कल्प में पहले शिव, फिर विष्णु और तत्पश्चात् ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार तुम दोनों शक्ति के चिह्न से रजोगुण एवं सतोगुण को ग्रहण करते हो। हर अर्थात् महादेव हमारे ही अंश से उत्पन्न हो कर, हमारे ही तमोगुणी स्वरूप हैं। उनके आधीन प्रलय कार्य रहता है। अस्तु, जिस प्रकार हम तमोगुणी रुद्र का स्वरूप धारण कर प्रकट होंगे, वह सब हमने तुम्हें बता दिया। तुम दोनों श्याम एवं लाल वर्ण का स्वरूप धारण किये हुए हो, अतः हम श्वेत रूप धारण करेंगे। तुम दोनों पर तमोगुण का प्रभाव न होगा, परन्तु हमारे रुद्र स्वरूप की यह स्थिति होगी कि वह तमोगुण से संयुक्त होने पर भी दिन-रात पवित्र योग में निमग्न रहेगा।''

हे नारद ! मुझे यह आज्ञा देकर भगवान् सदाशिव ने विष्णु जी की ओर देखते हुए यह कहा—''हे विष्णु ! तुम सम्पूर्ण जीवों का भली प्रकार पालन करना। हमारे दाहिने ओर से ब्रह्मा, बाएँ ओर से विष्णु तथा हृदय से रुद्र की उत्पत्ति होगी। हमारी शक्ति जो उमा हैं—वह भी दो अंशों में प्रकट होंगी, जिससे तुम अलग-अलग नहीं समझे जाओगे। पहले अंश से वे लक्ष्मीस्वरूपा हो कर तुम्हें प्राप्त होंगी और दूसरे अंश से सरा हो कर ब्रह्मा को प्राप्त होंगी। उनके उमा स्वरूप को हर स्वीकार करेंगे। उस समय संसार में उनका नाम सती प्रसिद्ध होगा। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा हर—यह तीनों देवता अपनी शक्तियों के साथ रह कर वेद का पूजन करेंगे। अस्तु, तुम दोनों को उचित है कि तुम हमारी उस आज्ञा का अनुसरण करो। ब्रह्मा का एक दिन सहस्त्र चतुर्युगी का होगा। इस प्रकार की एक सौ वर्ष की आयु ब्रह्मा की होगी। ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु का समय विष्णु के आधे दिन के बराबर होगा और विष्णु की सम्पूर्ण आयु का समय हर का एक दिन होगा। ऐसा एक दिन व्यतीत हो जाने पर हमारा सगुण स्वरूप निर्गुण हो कर प्रलय कर दिया करेगा।''

इतना कह कर भगवान् सदाशिव ने हम दोनों के मस्तक पर अपने दोनों हाथ रखे। इस प्रकार उपदेश तथा शिक्षा दे कर जब भगवान्

शिव अन्तर्धान हो गये, तब हम दोनों शोक से व्याकुल हो, हाथ जोड़ कर 'शिव-शिव' कहते हुए जिस ओर वे गुप्त हुए थे, उसी ओर मुँह किये बारम्बार दंडवत् करते रहे।

ॐॐॐ

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! भगवान् सदाशिव की आज्ञा पा कर विष्णु भी कुछ देर पश्चात् अन्तर्धान हो गये और उन्होंने सम्पूर्ण लोक को ब्रह्माण्ड से पृथक् कर दिया। अस्तु, उन्हीं सदाशिव की कृपा से शक्ति को प्राप्त कर, मैंने ब्रह्माण्ड अर्थात् सर्वोत्तम सृष्टि को उत्पन्न किया। अब मैं तुमसे जीवों की उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ कि वे प्रकृति और पुरुष द्वारा किस प्रकार उत्पन्न होते हैं। जब भगवान् सदाशिव तथा उनकी परमशक्ति प्रकृति ने इच्छा की तो उनकी इच्छा द्वारा सर्वप्रथम बुद्धि की उत्पत्ति हुई। उस महत्त्व से अहंकार एवं अहंकार से सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण की उत्पत्ति हुई। इन तीन गुणों द्वारा पृथ्वी एवं आकाश उत्पन्न हुए। इसी प्रकार क्रमानुसार देवता, मनुष्य आदि योनियों की उत्पत्ति हुई। फिर मैंने भगवान् सदाशिव के चरणों का ध्यान धर कर सर्वप्रथम सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार एवं ऋभु—इन पाँच मनुष्यों को उत्पन्न किया। ये सब भगवान् सदाशिव का ध्यान धरने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते थे। इन्होंने मुझ से यह कहा कि हम लोग सृष्टि उत्पन्न करने का काम नहीं करेंगे। इस अवज्ञा को देखकर मुझे उनके ऊपर बहुत क्रोध आया, परन्तु विष्णु जी के समझाने पर मैंने उस क्रोध को शान्त कर लिया। तत्पश्चात् मैंने परिश्रमपूर्वक बहुत समय तक तपस्या की, परन्तु जब उस तपस्या का कोई फल न निकला तो मुझे अपने मन में बहुत आश्चर्य हुआ। उस समय मैं भगवान् सदाशिव की माया से ऐसा भयभीत हुआ कि मेरे नेत्रों से आँसुओं की बूँदें टपकने लगीं। इस समय भगवान् सदाशिव ने दयालु हो कर मुझे सद्बुद्धि प्रदान की,

जिससे मेरे हृदय में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि यदि भगवान् त्रिशूलपाणि ही मेरे पुत्र हो कर जन्म लें तो सम्पूर्ण कार्य स्वयं ही सिद्ध हो जायेंगे। इस बात को मन में रख कर मैं फिर बहुत समय तक योगसमाधि में लीन हो गया। मेरी उस तपस्या से भगवान् सदाशिव अत्यन्त प्रसन्न हुए और सृष्टि की वृद्धि करने के लिए उन्होंने मेरी भौंह के निचले भाग से अवतार ग्रहण किया। उन्होंने अपने उस अवतारी शरीर में वे चिह्न प्रकट कर दिये, जिन्हें मैंने सर्वप्रथम विष्णु जी के साथ, उनका दर्शन प्राप्त करते समय देखा था। इस प्रकार उन्होंने मेरी सहायता करने के हेतु अवतार ग्रहण किया।''

ॐ ॐ ॐ

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! भगवान् सदाशिव इस रूप में प्रकट हो कर मुझसे कहने लगे—''हे ब्रह्मन् ! यदि आप हमें आज्ञा दें तो हम वेदानुकूल कार्य करें।'' मैं ऐसे सुपुत्र को पा कर अपने मन में फूला नहीं समा रहा था। अस्तु, मैंने उनसे कहा—''जब तुम जैसे मेरे पुत्र उत्पन्न हुए हैं, तो मेरे सम्पूर्ण मनोरथ निश्चय ही पूर्ण हो जाएंगे। मैं वेद के अनुसार तुम्हारे जो ग्यारह नाम हैं उन्हें बताता हूँ—मन्युमनु, महर्निष, महान, शिव, कृतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव तथा धृतव्रत। तुम्हारी ग्यारह रुद्राणियों के नाम इस प्रकार होंगे—धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियृत्सर, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा तथा रुद्राणी। इसके अतिरिक्त रुद्र, महेश्वर, हर तथा जगदीश आदि तुम्हारे अनेक नाम और भी होंगे। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—ये पाँचों तत्त्व तथा सूर्य, चन्द्रमा, जीव और हृदय ये योग स्थान तुम्हारे निवास स्थान होंगे। तुम अपनी पत्नियों को भी इन्हीं स्थानों में अपने साथ रखो और सन्तान की उत्पत्ति करो, जिससे सृष्टि की वृद्धि हो।

हे नारद ! मेरी बात सुन कर उन सगुणस्वरूप शिवजी ने भूत, प्रेत,

पिशाच आदि सहस्त्रों प्रकार के भयानक जीव उत्पन्न किये, जिन्हें देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तब मैंने भयभीत होकर उनसे कहा—''तुम इस सन्तान को इसी समय नष्ट कर दो तथा श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करो।'' यह सुनकर उन्होंने उत्तर दिया—''हे ब्रह्मन् ! जिन जीवों को बार-बार जन्म लेना और मरना पड़े, उन्हें हम उत्पन्न नहीं करेंगे, उन्हें तो आप ही उत्पन्न कीजिये। आप हमें भूलियेगा नहीं।'' यह कहकर शिवजी ने अपनी माया को मेरे ऊपर से हटा लिया। उस समय मैंने चैतन्य होकर अपना मस्तक दण्डवत् करने के हेतु उनके चरणों में झुका दिया। यह देखकर शिवजी ने मुझे ऊपर उठाते हुए, मेरे मस्तक पर अपना हाथ फेरा। उस समय सनकादिक भी आ कर शिवजी के चरणों में गिर पड़े और उन्हें दण्डवत् करते हुए, स्तुति करने लगे। भगवान् सदाशिव ने सब पर दयालु हो कर उन्हें उत्तम बुद्धि प्रदान की। तदुपरान्त वे मेरे ललाट के मार्ग से गुप्त हो कर अपने लोक को चले गये। हे नारद ! हम तीनों देवताओं में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। अब मैं तुमसे सृष्टि का वर्णन पुनः करता हूँ।''

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! भगवान् सदाशिव की आज्ञा पाकर मैंने सर्वप्रथम पृथ्वी, आकाश आदि पंच तत्त्व, पर्वत, मूल एवं कला आदि को उत्पन्न किया। तदुपरान्त अपनी इच्छा से विरचि, अग्निरस, शातातप, भृगु, पुलस्त्य, पुलह तथा वशिष्ठ—इन सप्त ऋषियों को जन्म दिया। फिर मैंने अपने प्रत्येक अंग से तुम अर्थात् नारद, कद्रम एवं दक्ष आदि दस पुत्रों को उत्पन्न किया। फिर स्तन से मनुष्य, पीठ से पाप और अन्य अंगों से प्रीति, तृष्णा आदि को प्रकट किया, तदुपरान्त क्रमानुसार नक्षत्र, दिशा, दिक्पाल, एवं चन्द्रमा आदि को उत्पन्न किया। परन्तु अपने द्वारा उत्पन्न की हुई, उस तामसी सृष्टि को देखकर मुझे अत्यन्त चिन्ता हुई। रात्रि के कारण अब मुझे भूख लगी और मैं

राक्षस-यक्षादि को खाने के लिए दौड़ा, उस समय मैंने अपने शरीर को भयंकर बनाकर, काल को उत्पन्न किया।

हे नारद ! इसके उपरान्त मैंने उस शरीर को त्याग कर स्त्री का स्वरूप धारण किया। उस समय मेरे उस रूप को देखकर सब ऋषि-मुनि आसक्त हो कर मुझे पकड़ने के लिए दौड़े। तब मैंने उस शरीर को बदल कर एक दूसरा शरीर ग्रहण कर लिया और अपने घुटनों द्वारा असुरों की उत्पत्ति की। वे मुझे पहचान नहीं सके, अतः निर्लज्ज बन कर काम के वशीभूत हो, मेरे पास दौड़े चले आये। उनके भय से भयभीत हो कर मैंने अपनी रक्षा के लिए भगवान् सदाशिव से प्रार्थना की और यह कहा कि हे प्रभो ! आप इन दुष्टों को शीघ्र ही नष्ट कर डालें। मेरी प्रार्थना सुन कर भगवान् भूतभावन् ने अप्रकट रूप से मुझे यह आज्ञा दी कि तुम अपने इस शरीर को बदल डालो। तब मैंने उनकी आज्ञानुसार अपने शरीर को फिर बदल दिया। जिस समय मैंने शरीर को बदला, वह समय सायंकाल कहलाया। उसमें सम्पूर्ण असुर अचेत हो कर गिर पड़े। तदुपरान्त मैंने मनुष्यों की सृष्टि की। अस्तु, मैंने दूसरा स्वरूप धारण कर राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, गुह्य, किन्नर, किम्पुरुष, विद्याधर, ईश्वर, भूत, प्रेत आदि तथा स्त्री को उत्पन्न किया, परन्तु इन जीवों की उत्पत्ति से भी मेरे हृदय को प्रसन्नता प्राप्त नहीं हुई।

हे नारद ! इसके उपरान्त मैंने शिवजी की इच्छा से हाथी, सिंह, बैल आदि बुद्धिहीन जीवों को उत्पन्न किया। इस सृष्टि को उत्पन्न करने के पश्चात् मैंने यह विचार किया कि यह लोग क्या काम करेंगे। यह सोच कर जैसे ही मैंने श्री शिवजी का ध्यान किया तो चारों वेद उसी समय मेरे द्वारा उत्पन्न हो गये। उनसे मैंने धनुर्विद्या, गानविद्या एवं सम्पूर्ण कथाओं से युक्त पुराणों को, जिन्हें पंचम वेद कहा जाता है, उत्पन्न किया। इसके बाद मैंने संपूर्ण आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संन्यास एवं व्रत, धर्मशास्त्र, नीति, मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम तथा वैद्यक शास्त्र को उत्पन्न किया। इस प्रकार मैं जब सम्पूर्ण सृष्टि कर चुका तब विष्णु उसका पालन करने लगे एवं शिवजी पृथ्वी को

स्थिर रखने के कार्य में संलग्न हुए। हे नारद ! सृष्टि की उत्पत्ति का यह वर्णन अत्यन्त सुख प्रदान करने वाला है।''

ॐ ॐ ॐ

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—हे नारद ! अब मैं तुमसे उस सृष्टि का वर्णन करता हूँ, जो समागम से उत्पन्न होती है। यद्यपि मैंने अनेक प्रयत्न किये, परन्तु मुझे दृढ़ शक्ति की प्राप्ति नहीं हुई। यह देखकर मैंने अपनी संपूर्ण इन्द्रियों को वश में करके भगवान् सदाशिव की पुनः पूजा की, क्योंकि उनकी प्रसन्नता के बिना कोई भी कार्य पूरा नहीं होता है। शिवजी ने इस पूजा से प्रसन्न होकर पुनः दर्शन दिया। उस समय उनका शरीर अर्धाङ्गी था अर्थात् उनके दाहिने ओर आधे भाग में तो सदाशिव का पुरुष शरीर था और बाईं ओर आधे भाग में महारानी जगदम्बा का स्त्री रूप था। आधे मस्तक पर जटाएँ थीं और आधे पर घुंघराले सुन्दर केश थे। एक ओर ललाट पर त्रिपुण्ड लगा हुआ था और दूसरी ओर बिंदी चमक रही थी। एक ओर डमरू की ध्वनि थी और दूसरी ओर घुँघरू का मधुर-स्वर।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव के इस अर्धाङ्गी स्वरूप को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मैंने उन्हें दण्डवत् करते हुए प्रार्थना की—''हे प्रभो ! मेरा धन्यभाग है, जो आप ने कृपा कर मुझे अपने दर्शन दिये।'' मेरी स्तुति को सुनकर भगवान् सदाशिव हँसते हुए बोले—''हे ब्रह्मन् तुमने जिस मनोरथ की प्राप्ति के लिए इतना कष्ट भोगा है, उसे हम जानते हैं। तुम्हारी अभिलाषा अधिक सन्तान उत्पन्न करने की है।'' इतना कह कर भगवान् सदाशिव शक्ति से अलग हो गये। उस समय मैंने शक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए कहा—''हे महारानी ! मैंने आपकी आज्ञा से सृष्टि उत्पन्न करने की चेष्टा की, परन्तु वह अधिक नहीं बढ़ी। हे अंबे ! अब मैं कामदेव के आश्रय से सृष्टि उत्पन्न करना चाहता हूँ और आप से यह वरदान माँगता हूँ कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो।

हे जगदम्बे ! आप दक्ष की पुत्री के रूप में अवतार ग्रहण करें।'' मेरे मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर भगवती महामाया ने पहले तो भगवान् सदाशिव की ओर देखा, फिर मुझ से यह कहा—''हे ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारी पौत्री के रूप में जन्म लूँगी और मेरा नाम सती होगा। जिस समय राजा रक्ष भगवान् सदाशिव का अपमान करेगा, उस समय मैं अन्तर्धान हो जाऊँगी।'' इतना कहकर वे शक्तिस्वरूपा जगदंबा पुनः श्री सदाशिव के शरीर से संयुक्त हो गयीं। तब भगवान् भूतभावन् भी अन्तर्धान हो गये।''

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें वह वृत्तान्त सुनाता हूँ, जिस प्रकार इस मैथुनी सृष्टि की उत्पत्ति हुई। भगवान् सदाशिव से शक्ति प्राप्त कर मैंने एक पुरुष तथा एक स्त्री को अपने आधे-आधे शरीर से उत्पन्न किया। उस पुरुष का नाम 'स्वयंभू मनु' तथा स्त्री का नाम 'शतरूपा' हुआ। शतरूपा ने तपस्या द्वारा मनु को पति रूप में प्राप्त किया। फिर उन दोनों—पुरुष तथा स्त्री ने मेरे पास आकर कहा—'हे पिता ! आप हमें कुछ आज्ञा दीजिए।'' तब मैंने अत्यन्त प्रसन्न हो कर उन्हें यह आज्ञा दी थी कि तुम सर्वप्रथम भगवान् सदाशिव का पूजन करो, तदुपरान्त उनसे आज्ञा पा कर, सृष्टि उत्पन्न करने का कार्य करो।

मेरी आज्ञा को स्वीकार कर उन्होंने ऐसी तपस्या की कि भगवान् सदाशिव ने प्रसन्न हो कर उन्हें अपना दर्शन दिया तथा वरदान माँगने के लिए कहा। उस समय मनु ने उनकी स्तुति करते हुए यह कहा—''हे प्रभो ! अपने मन की इच्छा को आपके सामने प्रगट करना मूर्खता होगी, अतः आप हमारे लिए जो उचित समझें वह करें।'' यह सुनकर भगवान् त्रिशूलपाणि प्रसन्न होकर बोले—''हे मनु ! तुम मनुष्य सृष्टि को उत्पन्न करो। उस सृष्टि कार्य में तुम्हें कोई कष्ट न होगा। तुम्हें तीन

प्रकार के ऋण चुकाने होंगे जिन्हें देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण कहते हैं। इन तीनों ऋणों से उऋण होने का उपाय विद्या पढ़ना, संतान उत्पन्न करना तथा यज्ञ करना है। इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव से इस प्रकार वरदान प्राप्त कर मनु तथा शतरूपा मेरे समीप लौट आये और मुझे सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर मैंने भी उनसे कहा—"तुम दोनों सन्तान की उत्पत्ति करो।" मेरी आज्ञा पा कर वे दोनों सृष्टि उत्पन्न करने लगे। सर्वप्रथम उन्होंने दो पुत्र तथा तीन पुत्रियों को उत्पन्न दिया। उनमें एक पुत्र प्रियव्रत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर श्रेष्ठ धर्म का पालन किया। उसकी सन्तान भी अत्यन्त शीलवान् हुई। आगे चलकर उसी के वंश में भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने अवतार लिया। मनु के दूसरे पुत्र का नाम उत्तानपाद था। उसके वंश में ध्रुव के समान योगी भक्त का जन्म हुआ। मनु की पहली पुत्री का नाम अनुमति था। उसका विवाह मेरे पुत्र रुचि नामक मुनि के साथ हुआ था। वह पुत्र मुझे अत्यन्त प्रिय था। उसके द्वारा यज्ञ और दीक्षा नामक दो संतानों की उत्पत्ति हुई। मनु की दूसरी पुत्री का नाम देवहूति था। उसका विवाह कद्रम मुनि के साथ हुआ था। उसके गर्भ से भगवान् कपिल देव ने जन्म लिया। कद्रम मुनि के कला, अनुसूया, श्रद्धा, निवर्चा, कर्मागति, शान्ति, अरुन्धती, ख्याति, वर्हती तथा वृहती नामक दस कन्याएँ भी हुईं। इनमें से नौ कन्याएँ मरीच, अत्रि, अंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, कृतु, भृगु, वशिष्ठ तथा अथर्वण नामक सौ ऋषियों को ब्याही गईं।

मनु की तीसरी पुत्री का नाम प्रसूति था। उसका विवाह दक्ष के साथ हुआ। उन दोनों से आठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उनमें से दक्ष ने दस कन्याओं का विवाह धर्मराज के साथ कर दिया। सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को दीं तथा तेरह कन्याएँ कश्यप को, चार कन्याएँ ताक्ष्र्य को एवं, भूत, अंगिरस् तथा कृशाश्व को दो-दो कन्याएँ ब्याह दीं। उन सबसे बहुत अधिक सन्तानों की उत्पत्ति हुई। उसी के कुल में हम,

विष्णु जी तथा शिवजी ने जन्म लिया। इस प्रकार अपनी साठों पुत्रियों का विवाह करने के उपरान्त दक्ष ने मेरे पास आकर सब हाल कह सुनाया और यह पूछा कि अब आप मुझे क्या आज्ञा देते हैं। दक्ष की बात सुनकर मैंने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—"हे पुत्र ! अब तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे तुम्हारी एक पुत्री का विवाह शिवजी के साथ हो सके। ऐसा करने से तुम्हारा जन्म सफल हो जाएगा और हमारी सृष्टि पवित्र हो जाएगी।" मेरी यह आज्ञा सुनकर दक्ष कठिन तपस्या करने के लिए चला गया। उस तपस्या के प्रभाव से आदि शक्ति जगदम्बा ने दक्ष के घर में अवतार ग्रहण किया।"

ॐ ॐ ॐ

चौदहवाँ अध्याय

नारद जी ने हँस कर कहा—"हे पिता ! अब आप अपने, विष्णु जी एवं शिवजी के लोकों का वर्णन कीजिए।" यह सुनकर ब्रह्मा जी भगवान् सदाशिव का ध्यान धर कर बोले—"हे पुत्र ! मेरे लोक का नाम सत्यलोक है। इससे ऊपर विष्णु जी तथा शिवजी के लोक हैं, जिन्हें वेद तथा पुराण परमधाम कह कर पुकारते हैं। सत्यलोक के ऊपर वैकुंठलोक है। यह सोलह करोड़ योजन की परिधि में चौकोर बसा हुआ है। उसमें रत्नों से भरे हुए स्वर्ण-मन्दिर, बाग, उपवन, तथा कुएँ आदि सर्वत्र सुशोभित हैं। इसको स्वर्ग भी कहा जाता है।

हे नारद ! अब मैं तुमसे उस लोक का वर्णन करता हूँ, जो स्वर्ग से ऊपर है और जिसे स्वामिकार्तिकेय लोक कहते हैं। वह लोक चौंसठ योजन की परिधि में चौकोर बसा हुआ है। उस लोक के सभी घर रत्नों से भरे हुए हैं। उस लोक के स्वामी स्वामिकार्तिकेय हैं, जिन्होंने तारकासुर का वध कर देवताओं को आनन्द प्रदान किया था। वे भगवान् सदाशिव के पुत्र हो कर, उन्हीं के पद पर विराजमान हैं।

हे नारद ! उस लोक के ऊपर शक्ति लोक है। वहाँ सम्पूर्ण सृष्टि की माता जगदम्बा आदिशक्ति निवास करती हैं। वहाँ इन्द्र आदि

देवता जगन्माता की सेवा करते हुए उनके चरणों का ध्यान धरते रहते हैं। हे पुत्र ! तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि इस सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणी उन आदिशक्ति की कृपा से ही ठहरे हुए हैं। वे जगदम्बा भगवान् सदाशिव की अर्द्धांङ्गिनी हैं। उन्हीं के अंश द्वारा मेरी पत्नी ब्रह्माणी, विष्णु जी की अर्द्धांङ्गिनी लक्ष्मी एवं स्वाहा, स्वधा, सिद्धा, विश्वा तथा इन्द्राणी की उत्पत्ति हुई है। वह शक्ति लोक भली-भाँति सजा हुआ है।

हे नारद ! शक्ति लोक के ऊपर शिव लोक है। वहाँ किसी को चिन्ता और मोह नहीं व्यापते हैं। जिस स्थान पर भगवान् सदाशिव का सिंहासन है, वह स्थान परम मनोहर है। शिवजी के बैठने का सिंहासन रत्नों से जड़ा हुआ है। उसके पास ही शिवजी के तथा भगवती आदि शक्ति के अनेक निवास एवं विहार स्थल बने हुए हैं। उस शिव लोक का विस्तार दो सौ छप्पन करोड़ योजन है। उस लोक के बीचों-बीच अत्यन्त सुन्दर, पवित्र तथा सब प्रकार की चिन्ताओं को नष्ट करने वाला भूतभावन् का मुख्य निवास स्थल बना हुआ है। उन त्रिशूलपाणि शिवजी द्वारा ही मेरी, विष्णु जी की तथा रुद्र की उत्पत्ति हुई है। वे सबके स्वामी, स्वाधीन तथा एकरूप हैं। उसी शिव लोक में शिवजी की श्रेष्ठ गोशाला बनी हुई है, जिसे गोलोक कह कर पुकारा जाता है। उसके स्वामी श्रीकृष्ण जी तथा श्रीराधिका जी हैं।''

ॐ ॐ ॐ

पन्द्रहवाँ अध्याय

सूत जी ने कहा—''हे ऋषियो ! ब्रह्मा जी के वचन सुनकर, नारद जी अत्यन्त प्रसन्न हो, प्रेम एवं सुखरूपी समुद्र में गोते लगाने लगे। फिर प्रेमपूर्वक इस प्रकार बोले—''हे ब्रह्मा जी ! आपने जो शिव लोक को सर्वोच्च स्थान देकर उसका वर्णन किया, उसे सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है, परन्तु मेरे मन में एक सन्देह उत्पन्न हुआ है। मैंने सुना था कि शिवजी का स्थान कैलाश पर्वत पर है तथा जो शिवपुरी में

जाता है उस कैलाश की प्राप्ति होती है, न किसी अन्य स्थान की। इसलिए आप मुझे यह बताइए कि जो शिवजी कैलाश में निवास करते हैं क्या वे वही शिवजी हैं, जिनका कि आप वर्णन करते हैं अथवा कोई दूसरे हैं?''

नारद जी का यह प्रश्न सुनकर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें सब हाल विस्तारपूर्वक बताता हूँ। जो परमब्रह्म सगुणरूप शंकर हैं और उनकी इच्छा से शक्ति द्वारा शिवानी हुई, वे ही ब्रह्मशिव अपनी शक्ति द्वारा संसार की सृष्टि करते हैं। मैं उनके लोक काशी, ब्रह्मपुर तथा आनन्दवन का वर्णन कर चुका हूँ। अब अपनी शंका का समाधान सुनो। जब मैं शिवजी की आज्ञानुसार सृष्टि उत्पन्न कर चुका तब मैंने उन महाप्रभु से प्रार्थना की कि, ''हे प्रभु अब आप भी सगुणरूप अंगीकार करके आइए।'' यह सुनकर शिवजी बोले ''हे ब्रह्मा ! हम नियत समय पर अवश्य ही आयेंगे। जिस प्रकार तुम हमारे नाम आदि देखते हो तथा जैसे हम हैं वह सब अपने अवतार में प्रकट करेंगे।'' शिवजी यह कह कर अन्तर्धान हो गये। इसके पश्चात् शिवजी निश्चित समय पर प्रकट हो कर मेरी इच्छा की पूर्ति के लिए कैलाश पर्वत पर उपस्थित हुए तथा गौरी जी को अपने से पृथक करके स्वयं कठिन तपस्या करते हुए त्रैलोक्य का पालन करने लगे। अब मैं उस कथा का विस्तार से वर्णन करता हूँ, जिस कारण शिवजी कैलाश पर्वत पर आये। जिस कथा का अब मैं वर्णन करता हूँ, वह कल्पभेद के कारण दूसरे प्रकार से है, अर्थात् मैंने शिवजी की आज्ञानुसार संसार को उपजाया और चौदह लोक उपलोक, द्रुपदपुरी एवं कपिला को, जिन्हें देखने से मन प्रसन्न होता है तथा जहाँ काली मृत्यु रूप से बैठी है, प्रकट किया। पापनाशिनी गंगा के तट पर पापों को हरने वाला कपिल मुनी का पवित्र आश्रम था। उसी स्थान पर यज्ञदत्त नाम के दो ब्राह्मणों का जन्म हुआ। यज्ञदत्त यज्ञशास्त्र में बहुत ही योग्य था। उसको वहाँ के राजा ने बहुत-सा धन दिया। वह वाग्मी, शुद्ध हृदय, शीलवान् वेदों में निपुण, परम उपकारी, उदार तथा शिवजी का परम

भक्त था। उसकी स्त्री अत्यन्त पवित्र, पतिव्रता, गृहकार्य में निपुण तथा अच्छे कार्यों को करने वाली थी। कुछ समय पश्चात् उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम उन्होंने गुणनिधि रखा। गुणनिधि ने थोड़े ही दिन में अनेक विद्याएँ सीख लीं; परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् वह कुल की रीति छोड़ कर, बुरी नीति पर चलने लगा। उसने बुरे मनुष्यों की संगति की। उसी के फलस्वरूप उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, क्योंकि अच्छे और बुरे कर्मों पर संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

गुणनिधि उस अज्ञान-अवस्था में बुरे लोगों के सम्पर्क में आया-जाया करता था। धीरे-धीरे उसके सब धर्म नष्ट होने लगे। वह वेदों के विपरीत कर्म करने लगा। वह बड़ा छली तथा जुआरी हो गया। उसकी माता उसको नित्य भले-भले उपदेश देती, परन्तु वह पिता के निकट कभी न जाता। जिस समय उसकी माता गृह-कार्य में संलग्न रहती, वह घर की चीजें चुरा कर ले जाता। एक बार उसके पिता ने पूछा कि गुणनिधि कहाँ गया? तब माता ने उत्तर दिया कि वह स्नान, पूजन तथा भोजन आदि से निवृत्त हो कर, अपने मित्र विद्यार्थियों के साथ पाठशाला चला गया है। इस प्रकार उसकी माता ने उसके पिता से उसके अवगुण को छिपाया।''

ॐ ॐ ॐ

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जब भी गुणनिधि का पिता अपनी पत्नी से पुत्र के विषय में पूछता वह इसी प्रकार टाल दिया करती थी। इस प्रकार यज्ञदत्त अपने पुत्र के अवगुणों को न जान सका और वह बहुत दिनों तक इसी प्रकार दुष्कर्म करता रहा। जब उसकी अवस्था सोलह वर्ष की हुई तब उसका विवाह कर दिया गया। पत्नी भी पतिव्रता, शीलवती एवं सर्वगुणसंपन्न मिली।

गुणनिधि को ऐसी पवित्र पतिव्रता पत्नी प्राप्त हुई, फिर भी वह अपनी कुसंगति एवं दुष्कर्मों को न त्याग सका। उसकी माता सदैव

सदुपदेश देती तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की कथाओं द्वारा उत्तमोत्तम दृष्टान्त देती हुई कहती 'हे गुणनिधि तुम्हीं हमारे एक मात्र पुत्र हो, इसलिए इन दुष्कर्मों को त्याग दो। तुम्हारे पिता अत्यन्त क्रोधी प्रकृति के हैं। वह अभी तुम्हारे अवगुणों को नहीं जानते हैं, क्योंकि मैंने बहुत पूछने पर भी उन्हें नहीं बताया है। इसीलिए तुम अभी तक उनसे निर्भय हो। यदि किसी दिन उन्हें इन कर्मों का पता लग गया तो वे मुझे और तुम्हें दोनों को दंड देंगे। इससे यही उत्तम है कि उन्हें पता लगने से पहले ही तुम कुसंगति को त्याग कर, सत्कर्म करो। हे पुत्र ! तुम्हारी पत्नी बुद्धिमान् महारूपवती तथा उच्च कुल की है। उसी प्रकार तुम भी गुणवान् तथा उच्च कुल के हो। ऐसी पत्नी के साथ सुख से अपना जीवन व्यतीत करो। अपनी स्त्री का त्याग करना महापाप है। तुम पिता के धर्म पर चलो, नहीं तो सारा संसार तुमको बुरी दृष्टि से देखेगा। तुम मुझको तथा अपने पिता को क्यों लज्जित करते हो? तुम अन्य घरों के लड़कों को देखो, वे नित्य वेदपाठ करते हैं। जब यहाँ के राजा को तुम्हारे अवगुणों के विषय में ज्ञात होगा तो वह तुम्हारे पिता से अप्रसन्न हो कर उनका मासिक शुल्क देना बन्द कर देगा। अभी तो लोग यह कह कर टाल देते हैं कि तुम यह अवगुण के कर्म लड़कपन के कारण करते हो, परन्तु अवस्था बढ़ जाने पर सब लोग तुम पर हँसेंगे तथा व्यंग्यपूर्ण तानों से कहेंगे कि अब तुम्हारा कुल अति अपवित्र हुआ। वे तुम्हारे पिता की निन्दा करेंगे और इन्हीं सब कारणों से तुम्हारे पिता नरकगामी होंगे। सब लोग इसका दोषी मुझी को ठहरावेंगे। वे कहेंगे कि इसी ने पाप-कर्म से गर्भ धारण कर ऐसा पुत्र उत्पन्न किया है, क्योंकि तुम्हारें पिता निष्पाप हैं। वे वेद एवं धर्मशास्त्र के ज्ञाता हैं। मैं भी अपने पति के सिवाय और किसी पुरुष को नहीं जानती तथा निष्पाप हो कर गृह कार्य में संलग्न रहती हूँ। परन्तु यह सब भगवान् की इच्छा है कि मेरे गर्भ से तुम जैसा दुख देने वाला कुपुत्र उत्पन्न हुआ है?'' इस प्रकार गुणनिधि की माता अनेक उपदेश देती, भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाती, परन्तु गुणनिधि पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।''

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! गुणनिधि को यदि मेरे समान भी कोई गुरु मिलता तो भी उस मूर्ख के मन में बुद्धि उत्पन्न न होती। गुणनिधि की माता उपदेश करते-करते थक गयी। परन्तु गुणनिधि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह सदैव जुआ खेलता, चोरी करता, मद्यपान करता, और वेश्याओं के साथ भोग करने में अपना समय व्यतीत करता था। इस प्रकार उसने कुछ ही दिनों में पिता का धन चुरा कर जुआ, भोग तथा वेश्याओं पर खर्च कर डाला। इस प्रकार वह निर्धन हो गया। उसके पिता ने जितने बहुमूल्य रत्न एवं उत्तम वस्त्र, अपनी विद्या के प्रभाव से राजा के यहाँ से प्राप्त किये थे, उनमें से कुछ भी शेष न बचा। तब एक दिन गुणनिधि ने अपनी माता को पूरी तरह निद्रा में लिप्त देख कर, उसके हाथ में से अँगूठी उतार ली और उसको जुआरियों के साथ दाँव पर लगा दिया। जुआरियों ने उस अँगूठी को भी जीत लिया। एक दिन अकस्मात् उसके पिता यज्ञदत्त ने उस अँगूठी को एक जुआरी के पास देख कर पहचान लिया। उन्होंने उस जुआरी को एकान्त में ले जा कर पूछा कि तुमने यह अँगूठी कहाँ से प्राप्त की है? उस जुआरी ने उत्तर दिया ''यह अँगूठी तथा इसी प्रकार की अनेक अँगूठियाँ मेरे पिता के घर में हैं। जान पड़ता है, पराया धन देख कर तुम ललचाते हो। भला, तुमने ऐसी चतुराई किससे सीखी है?'' तब यज्ञदत्त ने क्रोधित हो कर उससे कहा—''अब तुम हँसी छोड़ कर तथा छल आदि को त्याग कर इस अँगूठी के विषय में सत्य-सत्य बता दो कि यह तुमने कहाँ से प्राप्त की है? मैंने इसे राजा से प्राप्त किया है अतः तुम इसे नहीं ले सकते। इस प्रकार जब उन्होंने दृढ़ता से जुआरी से पूछा तो उसने सब सत्य-बात उनको बता दी और कहा—''तुम मुझको डराते-धमकाते क्यों हो, मैंने कोई चोरी नहीं की है। यही क्या, और भी बहुत-सी वस्तुएँ मैंने तुम्हारे लड़के से जुए में जीती हैं। अनेक रत्न, सोने-चाँदी के आभूषण, पीतल-ताँबे आदि के बर्तन जो तुम्हारे घर में थे, हम लोगों ने वे सब तुम्हारे लड़के से जीत लिये हैं। वह केल जुआ ही नहीं खेलता, अपितु, चोरी तथा वेश्या-गमन भी करता है।''

जुआरी के ऐसे वचन सुन कर यज्ञदत्त को बहुत आश्चर्य हुआ। वे कपड़े से अपना मुँह लपेटे शोक से रुदन करते हुए, अपने घर आये तथा स्त्री से बोले—"गुणनिधि कहाँ है तथा मेरी अँगूठी कहाँ है?" उनकी स्त्री ने यह सुन कर भयभीत हो, बड़ी चतुराई से उत्तर दिया" इस समय मैं अनेक कार्यों में व्यस्त हूँ। तुम्हारा भी पूजा-पाठ का समय है। मुझे तुम्हारे प्रेमी अतिथियों का भोजन बनाना है। मैंने अँगूठी को किसी स्थान पर रख दिया है, परन्तु इस समय स्मरण नहीं है। जिस समय इन कार्यों से अवकाश पाऊँगी, उस समय तुम्हारी अँगूठी खोज कर दे दूँगी।" यज्ञदत्त यह सुन क्रोधित हो कर बोले—"हे कपूत की माँ ! छल वार्ता में चतुर ! मैंने जिस दिन भी तुम से यह पूछा कि गुणनिधि कहाँ है, तभी तुमने यह उत्तर दिया है कि यह अपने साथियों सहित विद्याध्ययन के लिए पाठशाला गया है। अच्छा, यदि अँगूठी नहीं मिलती तो अन्य वस्तुएँ मुझे ला कर दिखाओ। अब तुम पुत्र-मोह को त्याग दो, क्योंकि कुपुत्र किसी प्रकार का सुख नहीं पहुँचा सकता। अब मेरी इच्छा बिना पुत्र के रहने की है। मुझे ऐसी सन्तान की आवश्यकता नहीं है। अब तुमको यही उचित है कि हाथ में कुश एवं जल-लेकर लड़के के नाम तिलाजंलि छोड़ो। जब तक मैं यह न कर लूँगा, तब तक भोजन ग्रहण न करूँगा।" गुणनिधि की माता अपने स्वामी के ऐसे वचन सुनकर, उनके चरणों पर गिर पड़ी तथा क्षमा प्रार्थना करने लगी। कुछ देर के पश्चात् यज्ञदत्त का क्रोध भी कम हो गया।"

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद जब गुणनिधि ने यह बात सुनी तब वह चिन्ता और शोकयुक्त हो कर अपने को भाग्यहीन समझने लगा। वह रो-रो कर कहने लगा—"हाय-हाय, हे मेरी सहायक माता ! अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? इस समय मुझको कुछ नहीं सूझ पड़ता है।

मुझे धिक्कार है। गुणनिधि यह कह कर पिता के भय से भयभीत हो, रोता हुआ घर से भाग गया। वह कुछ समय में ही मार्ग के परिश्रम से थक कर तथा शोक-सागर में डूब कर, हाय-हाय करता हुआ रुदन करने लगा। रोते-रोते वह कहा—"हे मेरी माता ! मैं अब कहाँ जाऊँ और क्या करूँ? मुझे कोई उपाय नहीं सूझता। मैं विद्या से हीन हूँ, जो मुझको इस समय में लाभदायक होती। मैंने धन का संग्रह भी तो नहीं किया, जिससे विद्वान् एवं बुद्धिमान् लोग सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। अब तो मैं भिक्षा माँगने के योग्य भी नहीं रहा हूँ। प्रातःकाल जब मैं सोकर उठता था तो मेरी माँ मुझे बड़े स्नेह से भोजन देती थी, परन्तु अब उस माता को मैं कहाँ पाऊँ? क्या करूँ तथा कहाँ जाऊँ?"

गुणनिधि इस प्रकार भयभीत हो रुदन करते-करते अचेत हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सूर्यास्त का समय हो गया। कुछ समय पश्चात् वह सचेत हो कर पुनः इसी चिन्ता में डूबा हुआ था कि इतने में एक शिव भक्त पुरुष शिवजी की पूजा के लिए उधर से निकला। उसके पास पूजन के लिए अनेक प्रकार की सामग्री तथा शिवजी के लिए भाँति-भाँति के नैवेद्य थे। उसके साथ कुछ अन्य शिव भक्त भी थे। उस दिन शिवरात्रि थी, जिसमें मनुष्य व्रत करके मुक्ति प्राप्त करते हैं। यह शिवरात्रि सब व्रतों में श्रेष्ठ, अत्यन्त सुखदायक स्वयं शिवजी को अतिप्रिय है। मूर्ख भी इस व्रत को करके अपने मनोरथ सिद्ध कर चुके हैं। जिस प्रकार शिवजी समस्त देवताओं को सुख प्रदान करते हैं, उसी प्रकार यह व्रत भी मनुष्यों को सुख प्रदान कर इस अपार संसार के ऋणों तथा बन्धनों से मुक्त कर देता है। ऐसे परम शिवरात्रि व्रत को रखे हुए वे मनुष्य शिवालय में चले गये। जो पुरुष अनेक प्रकार के नैवेद्य एवं व्यंजन अपने साथ लाया था, उसकी सुगन्धि पा कर गुणनिधि जो बहुत भूखा था विचार करने लगा कि रात्रि के समय जब ये लोग शिवजी को अप्रण करेंगे तथा सो जावेंगे, उस समय मैं इस सुगन्धित भोजन को वहाँ से उठा लूँगा। गुणनिधि अपने मन में यह विचार कर, उन्हीं लोगों के साथ चल दिया तथा शिवालय के ऊपर जा

कर ठहर गया। शिव भक्त ने सच्चे हृदय से अनेक प्रकार से शिवजी की पूजा की। फिर वह भक्ति में खो कर नृत्य करने लगा। गुणनिधि ऊपर से यह सब देखता रहा। वह अपने मन में कहता था कि यदि इनकी दृष्टि क्षीण हो जाए तो मैं अपना काम करूँ। कुछ समय पश्चात् वे सब शिव भक्त, ऊँघ गये। तब गुणनिधि सबको निद्रावस्था में देख कर शीघ्र ही शिवालय में जा कर धीरे-धीरे दबे पाँव नैवेद्य के पास जा पहुँचा। अँधेरा होने के कारण उसने प्रकाश करने के निमित्त धीरे से अपना वस्त्र फाड़ कर बत्ती बनायी और उसको जलाया। उसके प्रकाश में सब व्यंजन उठा लिये तथा उन्हें लेकर वहाँ से वह प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र ही बाहर निकल गया, परन्तु चलते समय उसका एक पैर लेटे हुए किसी शिव भक्त के लग गया, जिससे वह उसी क्षण उठ कर चिल्लाया तथा कहने लगा कि यह कौन चोर भागा जाता है, इसे पकड़ो। नगर के रक्षक उस आवाज को सुनकर आ गये तथा गुणनिधि को लक्ष्य कर, उन्होंने बाण छोड़ दिया, जिससे आहत हो कर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। क्षण भर में वहीं उसकी मृत्यु भी हो गयी। अस्तु, तब यमदूत पहुँच कर मुगदर आदि भयंकर शस्त्र गुणनिधि को दिखाते हुए उसे पापी जान कर बाँधने लगे, परन्तु उसी समय शिवजी ने अपने गणों से कहा—''यद्यपि गुणनिधि ने अनेक पाप किया है; परन्तु वह शिवरात्रि का व्रत रख कर न तो रात्रि भर सोया है और न उसने हमारा निर्माल्य ही खाया है। नगर के रक्षकों द्वारा उसकी मृत्यु हुई है। इस समय उसको यमदूत बाँध रहे हैं, अतः मेरा आदेश है कि तुम यमदूतों से गुणनिधि को मुक्त करके मेरे लोक में ले आओ; क्योंकि मैंने उसको अपना लिया है। अब वह नरकगामी न होगा। मुझको शिवरात्रि व्रत अत्यन्त प्रिय है। अस्तु, अब गुणनिधि कलिंग देश का राजा हो कर मेरा परम भक्त होगा।''

शिवजी के आदेशानुसार उनके गण गुणनिधि के पास जा पहुँचे। उनके हाथों में त्रिशूल थे। यमराज के गण उन्हें देख कर बहुत भयभीत

हो गये। शिवगणों ने उनसे कहा—"तुम कौन हो, जो इस निष्पाप व्यक्ति को बाँध रहे हो?" यमदूत यह सुन कर आश्चर्य के साथ कहने लगे—"तुम कौन हो, जो यम की अवज्ञा करके ऐसे पापी को छुड़ाते हो? भला तुम किसकी शक्ति पर इतने प्रबल हो रहे हो?" तब शिवगणों ने यह उत्तर दिया कि हम उन शिवजी के गण हैं, जिनका ध्यान ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता करते हैं। तुम इसको छोड़ दो।" यमगणों ने कहा—तुम्हारी आज्ञा उचित है, परन्तु इसके पापों का विचार न कर तुम इसे क्यों छुड़ा रहे हो? इसने अपने कुल की रीति को त्यागा है तथा वेद का अपमान किया है। हम इसकी मूर्खता को कहाँ तक कहें? यह सब पापियों का सिरमौर है। सबसे बड़ा पाप जो इसने किया, वह यह है कि शिव-निर्माल्य चोरी करके ले भागा और खाने लगा। यह तो तुम भी देखे होगे। तुम यह भी भली-भांति जानते होगे कि जो कोई शिव-निर्माल्य ग्रहण करता है, उसको ऊपर से लाँघ जाता है अथवा किसी को देता है वह नरकगामी होता है। शिवजी पर चढ़ी वस्तु खाने की अपेक्षा, विष पीना कहीं अच्छा है, परन्तु इस संसार में तो धर्म रखना ही बहुत कठिन हो गया है।

शिवगणों ने यमगणों के मुख से यह शब्द सुन कर उत्तर दिया—"हे यमदूतो ! यह ब्राह्मण पुत्र निष्पाप हो चुका है। इसने सबसे बड़ा धर्म यह किया है कि इसने शिव-मन्दिर में जा कर अपना वस्त्र फाड़ा तथा उससे दिया जला कर प्रकाश किया। दूसरा बड़ा धर्म यह किया है कि शिवरात्रि को रात्रि दिन व्रत कर रात्रि भर जागरण किया, शिवजी का पूजन देखता रहा और उनके नाम श्रवण करता रहा। यद्यपि यह धर्म इससे अचानक ही हुआ, परन्तु इसको पुण्य लाभ हुआ है। अब यह भविष्य में कलिंग देश का राजा हो कर शिवजी का पूजन करेगा। "यह कह कर शिवजी के गण गुणनिधि को मुक्त कर, अदृश्य हो गये।"

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! शिवगणों के ऐसे वचन सुन कर यमदूत लज्जित हो कर यम के पास गये तथा उन्हें सब हाल विस्तारपूर्वक कह सुनाया। यम को भी यह सुन कर आश्चर्य हुआ। फिर यम ने शिवजी को दंडवत् कर, अपने गणों को तीनों लोकों में फिरने का आदेश देते हुए यह कहा कि जो मनुष्य देह में भस्म लगाये हो, रुद्राक्ष धारण किये हो, शिवलिंग का पूजन करता हो, एवं आराधन में डूबा हो अथवा छल से भी शिवजी का बान तथा वस्त्र धारण किये हो, तथा उसका शिवजी से किसी प्रकार भी संबन्ध हो तो तुम उसको मुक्त कर देना, और कोई कष्ट मत देना। यमराज ने शिवजी की स्तुति करते हुए कहा—''हे सदाशिव ! आप मेरे पापों को क्षमा कीजिए, क्योंकि यह अपराध मुझसे अज्ञान में ही हुआ है।'' इस प्रकार बहुत स्तुति करने के पश्चात् यमराज चुप हो गये।

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! गुणनिधि यमगणों से मुक्ति पा कर, विमान पर आरूढ़ हो, शिवलोक को चला गया। बहुत समय तक स्वर्ग में अनेक प्रकार के सुख भोग कर, वह कलिंग देश का राजा हुआ। वहाँ के पहले राजा का नाम इन्द्रमुनि था। गुणनिधि ने उसी के यहाँ जन्म लिया तथा कद्रम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह शिवजी का अनन्य भक्त था। इन्द्रमुनि अपने पुत्र में राजा के समस्त लक्षण देख, अपना सम्पूर्ण राज्य उसको सौंप रानी सहित वन में जा कर, शिवजी की कठिन तपस्या करके, शिवलोक को प्राप्त हुआ। कद्रम को पूर्व जन्म का स्मरण था, इसलिए वह समस्त शिवालयों में दीपदान करने लगा। उसने प्रत्येक मंडलेश्वर को आदेश दिया कि जितने भी शिवालय हों, वहाँ दीपक जलाये जाएँ और जो इस आज्ञा का उल्लंघन करे, उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाए। गाँव के स्वामी इस भय से दीपदान करने लगे। वह स्वयं भी बड़े हर्ष के साथ इस कार्य को करता रहा। उसने अपनी नीति द्वारा जनता को प्रसन्न रखा। वह

जीवन भर शिवजी के दीपदान से अचेत न रहा। जब उसकी मृत्यु हुई, तब उस पुण्य से वह शिवलोक को प्राप्त हुआ। उसने शिवलोक में अनेक प्रकार के आनन्द एवं सुख भोगे तथा शिव चरणों का ध्यान धरता रहा। इसके पश्चात् उसने मृत्युलोक में जन्म लिया।''

ब्रह्मा जी कहते हैं—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें अपने लड़के पुलस्त्य के पुत्र का हाल सुनाता हूँ। मेरे पुत्र पुलस्त्य के विश्रवा नाम का एक पुत्र हुआ। विश्रवा के तीन स्त्रियाँ थीं। वे तीनों ही विष्णु तथा शिव की भक्त थीं। विश्रवा की सबसे छोटी पत्नी से विभीषण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। विभीषण विष्णु का ऐसा भक्त हुआ कि वह इस अथाह संसार सागर से पार हो गया। विश्रवा की मँझली पत्नी से दो पुत्र रावण तथा कुम्भकर्ण, तुम्हारे शाप के फलस्वरूप उत्पन्न हुए। वे दोनों ही शिव के भक्त बन कर, अनेक प्रकार के संसारी भोग-विलासों में लिप्त हो गये। उनमें से रावण ने शिवजी की कठिन तपस्या कर, उनसे वरदान प्राप्त किया। उसने तेज एवं प्रताप से संसार भर में राज्य किया। विष्णु भगवान् ने उसका नाश करने के लिए स्वयं द्विभुज मानव अवतार लिया था, जिनका नाम राम हुआ, परन्तु वे रावण का नाश न कर सके। तब उन्होंने शिवजी की आराधना कर, अपने कठिन तप से उनको प्रसन्न किया और शिव के अवतार अर्थात् श्री हनुमान जी को साथ लेकर बानरों की सहायता से रावण-वध किया तथा उसके वंश को ही मिटा डाला। विश्रवा की सबसे बड़ी पत्नी का नाम षटतिला था। उसके उदर से गुणनिधि का जन्म हुआ था, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। विश्रवा ने पहले लंका में रह कर जो उचित था, वह किया; फिर काशी में आ कर घोर तपस्या की, जिससे शिवजी उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए। शिवजी का वरदान पा कर वह अलकापुरी का राजा हुआ तथा दिक्पति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसे राज्य करते हुए एक कल्प व्यतीत हुआ। जब धनवान् कल्प का आरंभ हुआ उस समय विश्रवा ने तपस्या आरंभ की। उसने दीपदान की सम्पूर्ण विधि कठंस्थ करके, उसमें बहुत ध्यान लगाया। अस्तु, वह काशी में कठिन तपस्या

करने लगा और हृदय के नेत्र खोल कर उसने शिवजी के दर्शन प्राप्त किए। अपने हृदय को ब्रह्मज्ञान से पूर्ण कर, उसने मन को शान्त कर लिया और उसी स्थान पर शिवलिंग की स्थापना करके षोडशोपचार द्वारा उसकी पूजा की। पूजा करते-करते विश्रवा के शरीर का रक्त एवं माँस सूख गया, केवल चर्म तथा हड्डियाँ ही शेष रह गयीं। ऐसी कठोर तपस्या करते-करते सौ करोड़ वर्ष समाप्त हो गये। उसकी ऐसी कठिन तपस्या को देख कर शिवजी पार्वती सहित विश्रवा के पास पहुँचे और वर माँगने के लिए कहने लगे।''

उन्नीसवाँ अध्याय

शिवजी ने विश्रवा से कहा—''अब इस तपस्या को छोड़ कर अपनी इच्छानुसार वर माँग लो।'' यद्यपि यह शब्द सदाशिव ने उच्च स्वर से कहे थे, परन्तु विश्रवा ध्यान मग्न होने के कारण, शिवजी के शब्दों को नहीं सुन सका। तब शिवजी ने उसके हृदय से अपनी मूर्ति हटा ली। दिक्पति ने उस समय आश्चर्यचकित हो कर जब अपने नेत्र खोले तो देखा कि शिवजी अपने पूर्व रूप से, जैसा कि वह सुन चुका था, सम्मुख खड़े हुए हैं। उनके वामांग में पार्वती खड़ी थीं। यह देख कर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ, परन्तु अत्यन्त प्रकाशवान् तेज को देखने की शक्ति न होने के कारण उसने अपने नेत्र बन्द कर लिये। फिर इस प्रकार कहा—''हे नाथ ! मुझे आप अपने चरण दिखा दीजिए तथा ऐसी शक्ति दीजिए जिससे मैं आपके दर्शन कर सकूँ। मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता; क्योंकि संसार में इससे अधिक और कोई पदार्थ नहीं है।'' दिक्पति यह कह कर चुप हो गया। शिवजी उसके वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने दिक्पति को अपने स्वरूप का दर्शन प्राप्त करने की शक्ति प्रदान की तथा अपने हाथों से उसके हाथ पकड़ लिये। सर्वप्रथम दिक्पति ने नेत्र खोलते ही शिवरानी को देखा और कहा—ये देवी कौन हैं? इनका बड़ा सौभाग्य

है जो ये शिवजी के इतने निकट रहती हैं। इनके पुण्य, प्रेम, और, तथा माता-पिता को धन्य है। उसने यह बात बारम्बार कही, तथा शिवरानी को प्रत्यक्ष कुदृष्टि से देखा। इससे उसकी आँखें तुरन्त फूट गयीं। उस समय देवी ने क्रोधित हो कर कहा—"यह तपस्वी कुदृष्टि रखने वाला है इसी से इसे कष्ट मिला है। यह ऐसे व्यंग्य वचन कह कर, मुझे अपनी स्त्री के समान देखता है।"

शिवरानी बोलीं—"हे शिव ! यह आपका कैसा भक्त है?" यह वचन सुन कर शिव जी हँसते हुए बोले—"हे देवी ! इसने छल का त्याग कर ऐसा तप किया है, जो प्रत्यक्ष है। तुमको मेरे साथ देख कर, तुम्हारे भाग्य को अपने से अधिक जान कर इसने सराहना की है, यह कुदृष्टि से नहीं देखता।" इसके पश्चात् शिवजी दिक्पति से बोले—"तुम्हारी जो इच्छा हो; माँग लो। हमारे आशीर्वाद से तुम समस्त निधियों एवं सम्पूर्ण राजाओं के स्वामी होंगे। तुम्हारे अधीन विद्याधर, यज्ञ तथा किन्नर रहेंगे। तुम्हारी जो गुप्त इच्छा है, हम उसे भी जानते हैं। अस्तु, हम मित्र हो कर तुम्हारे ही निकट रहेंगे अर्थात् कैलाश पर्वत पर निवास कर, तुमसे अत्यन्त प्रेम रखेंगे और तुम्हारी हर कठिनाई को दूर करते रहेंगे। अब तुम शिवरानी के चरणों पर गिर कर इनसे क्षमा माँगो; क्योंकि ये तुम्हारी माता हैं। इस प्रकार ये प्रसन्न हो कर अपना क्रोध शान्त कर लेंगी। शिवजी की आज्ञा सुन कर विश्रवा शिवरानी के चरणों पर गिर पड़ा। तब शिवजी शिवरानी से बोले—"हे देवि ! यह तुम्हारा परम भक्त है। तुम इसके ऊपर कृपा करो और इसको अपना सेवक समझो।" शिवजी की ऐसी बातें सुन कर शिवरानी ने अपना क्रोध शान्त कर लिया तथा दिक्पाल से कहा—"अब तुम हमारे पुत्र हुए, इसलिए तुम्हारे मन में शिव जी की भक्ति सदैव बनी रहेगी। तुमको शिवजी ने जो वरदान दिया है, वह सत्य है। तुम मेरे स्वरूप की इच्छा करके, अपने मन में भय नहीं लाये इससे तुम्हारा नाम कुबेर होगा। तुमने जिस शिवलिंग की स्थापना की है वह सिद्धि प्रदान करने वाला हो कर तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगा। वह सम्पूर्ण पापों

को नष्ट करके मुक्ति देगा। जो कुबेरेश्वर महादेव के दर्शन करेगा, वह थोड़ी-सी भक्ति में भी तपस्या का फल प्राप्त कर लेगा।'' यह कुबेरेश्वर महादेव विश्वेश्वर के दाहिने ओर हैं, जिनकी पूजा करके लोग अत्यन्त आनन्द प्राप्त करते हैं।

शिव और शिवरानी दिक्पति को यह वर देकर तथा यह कह कर कि 'हमारे आने की प्रतिक्षा करना' अन्तर्धान हो गये। दिक्पति भी अपने घर को लौट आया। शिवजी की कृपा से उसने बहुत धन प्राप्त किया। फिर वह अलकापुरी का राजा हो कर तथा शिवमित्र उपनाम पा कर, शिव का कोषाध्यक्ष हुआ। तब से वह सदैव शिव की भक्ति में सलंग्न रहता है। अलकापुरी इतनी सुन्दर है, जिसको देख कर मनुष्य का मन मोहित हो जाता है। हे नारद ! मैंने तुम्हें यह विश्रवा की कथा यह सुनायी कि इसने किस प्रकार शिवजी से वरदान प्राप्त किया। तीनों लोकों में शिव के समान दयालु कोई नहीं है।''

ॐ ॐ ॐ

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—'हे नारद ! दिक्पति को वरदान देकर जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, तब उन्होंने मन में सोचा कि हमने दिक्पति को अपना मित्र बनाया है, सो अब किस प्रकार उसके यहाँ जा कर, मनुष्य की भलाई के लिए कोई उपाय करें? हमने पहले भी यह विचार किया था कि अब हम कुबेर के मित्र हो कर उसके पास निवास करेंगे। हमारा मुख्य स्वरूप तो परब्रह्म रूप है, इसलिए उस स्वरूप तथा इस स्वरूप में जो हम अब उसके यहाँ धारण करके जाएँगे, कोई अन्तर नहीं होगा। जो व्यक्ति इनमें अन्तर या द्वैतभाव समझेगा, वह दुःख प्राप्त करेगा। ब्रह्मा, विष्णु आदि द्वारा जो स्वरूप पूजा जाता है उसी रूप एवं नाम से हम वहाँ वास कर कुबेर के साथ मित्रता स्थापित करेंगे। शिवरानी ने अब तक अवतार नहीं लिया है। अकेले हमने अवतार लिया है, इसलिए अब पहले अकेले हम हीं लोग कठिन तप

करके वहाँ निवास करते हुए भक्तों को मुक्त तथा कुमार्गियों को नष्ट करेंगे। कुछ समय इसी प्रकार अपना रूप देखने के पश्चात् शक्ति भी अवतरित होंगी तथा संसार की रीति के अनुसार वे हमारी पत्नी होंगी, तब उस दशा में हम गृहस्थ हो कर अनेक प्रकार के भोग-विहार भी करेंगे।

ऐसा विचार कर शिवजी ने आगे चलने का प्रयत्न कर अपना डमरू बजा दिया। उसके शब्द से तीनों लोक पूरित हो गये। तब सब लोग उसी शब्द की ओर चल दिये। विष्णु गरुड़ पर तथा मैं हँस पर चढ़ चला। सनकादिक मुनि, सिद्ध देवता, वेद, धर्म शास्त्र, पुराण, तुम, अन्य मुनि तथा सर्पों के यूथप उस शब्द को लक्ष्य करके चल दिये। शिव के गण प्रथम भी उसी ओर चले। सब लोग परस्पर यह कह रहे थे कि क्या कारण है जो आज डमरू बजाया गया है? आज किसके भाग्य उदय हुए? हमारा भी सौभाग्य है कि हम शिवजी के शुभ चरणों के दर्शन प्राप्त करेंगे। सब लोग इसी प्रकार की बातें करते हुए शिवजी के पास जा पहुँचे और उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने के पश्चात् हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे। शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न हो, विष्णु का हाथ पकड़ कर उन्हें अपनी बायीं ओर बैठा लिया तथा दाहिनी ओर मुझे स्थान दिया। इसके पश्चात् कुशलक्षेम पूछ कर मुझे अति प्रतिष्ठित किया। उन्होंने हाथ के संकेत से सूर्य का आदर किया तथा उन मुनियों को, जो अमर हैं देख कर अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की।

शिवगण शिवजी की इच्छा समझ कर स्वयं ही अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। इस प्रकार वहाँ बहुत-से लोग एकत्र हो गये तथा एक वृहत् उत्सव का आयोजन हुआ। फिर शिवजी ने कुबेर का मनोरथ पूरा करने के लिए कैलाश जाने का उद्योग किया। उस समय जब देवता तथा गण भी उनके साथ चलने की इच्छा से उठ खड़े हुए। विष्णु जी, नन्द एवं सुनन्द नामक दोनों गणों सहित उठ खड़े हुए। इसी प्रकार वेद तथा सनकादिक भी उद्यत हुए। इन्द्र तैंतीस कोटि अमर देवताओं के साथ खड़े हुए। इस प्रकार उस स्थान पर ग्यारहों रुद्र, अपने गणों

सहित बारहों सूर्य, आठों वसु, तेरह विश्वेदेवा, सत्ताईस नक्षत्र, बारह भक्त, चौंसठ आभासुर, उनचास पवन तथा अनेक देवता उनके साथ हुए। दस प्रकार के देवता अर्थात् विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, ऋच, सिद्ध, भूत, पिचाश आदि भी चल पड़े। दिशापति, अपने-अपने गणों सहित वासुकि, तक्षक आदि सप्र तथा नागपति शेष जी भी साथ गए। जगज्जननी श्री गायत्री, गरुड़, पर्वत, सातों समुद्र, दोनों अयन अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन तथा सम्पूर्ण ऋतुएँ, काल, यम, यक्ष, समस्त सरिताएँ तथा बड़े नद और वनवासी, ये सब एक साथ उठ खड़े हुए तथा शिवजी के साथ चलने की तैयारी करने लगे।

हे नारद ! समस्त रुद्रगणों को चलने के लिए उद्यत देख कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय चारों ओर से जय-जयकार का शब्द होने लगा। तदुपरान्त शिवजी अपने स्वरूप को प्रणाम एवं नमस्कार कर, बैल पर सवार हो गये। उनके दाहिने तथा बाएँ ओर मैं तथा विष्णु हंस एवं गरुड़ पर चढ़कर साथ-साथ चले। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़े थे तथा समस्त देवता मुनि अपने-अपने वाहनों पर बैठ कर चल रहे थे। सब के हृदय में शिव की मूर्ति स्थिर थी। प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त हर्ष में भर कर अपने-अपने वाहन पर चल रहे था। शिवजी बहुत धीरे-धीरे चलते थे जिससे कि किसी को कष्ट न हो। जिस-जिस देश में शिवजी आते थे वहाँ उनको भेंट दी जाती थी, जिसे वे सहज स्वीकार करते थे। इसी प्रकार चलते-चलते शिवजी अलकापुरी के निकट जा पहुँचे तब अलकापुरी के अधिपति शिवजी से विदा लेकर, जेवनार की सामग्री का प्रबन्ध करने के लिए आगे चले गये। उन्होंने अपने घर पहुँच कर विधिपूर्वक पूजन एवं जेवनार की सामग्री एकत्रित कीं। इसके पश्चात् वे अपनी समस्त सेना सहित शिवजी की शुभ अगवानी को आगे आकर, उनके चरणों पर गिर पड़े और प्रेम में मग्न हो गये। फिर भेंट देकर उन्होंने पूजन किया। वे प्रेमानन्द में मग्न हो कर सब कुछ भूल गये। उन्होंने शिव को प्रणाम कर विष्णु तथा

मेरा भी आदर किया। शिवजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। फिर उन्हें अपने साथ लेकर आगे बढ़े।''

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! इस प्रकार शिव जी समस्त देवताओं सहित अलकापुरी में पहुँचे तथा निधिनाथ की विनती मान कर वहीं वास करने लगे। अलकापुरी के अधिपति निधिनाथ ने शिवजी की पूजा करके मेरा भी आदर सत्कार किया। यही बात हर व्यक्ति के लिए उचित है कि जो कोई अपने घर आये, उसका सत्कार करें तथा वेद-शास्त्र को जान कर, अच्छे कर्मों से संसार में प्रसिद्धि प्राप्त करे।

फिर शिवजी ने सिंहासन पर विराजमान हो तुरन्त ही विश्वकर्मा को कैलाश पर्वत को अत्यन्त सुन्दर बनाने का आदेश दिया। उन्होंने आज्ञा दी कि प्रत्येक गण तथा सुर-मुनि लोगों के लिए भी सुन्दर-सुन्दर, मन्दिरों की स्थापना की जाए। विश्वकर्मा शिवजी का यह आदेश, सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो, कैलाश पर्वत पर मन्दिरों के बनाने में प्रवृत्त हुए। उन्होंने एक बहुत सुन्दर तथा विचित्र स्थल का निर्माण किया, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री तथा रत्नों से अलंकृत बहुमूल्य स्वर्णपत्रों से सजा हुआ था। बीच में एक मुख्य स्थान शिवजी के लिए निर्मित किया गया। अन्तःपुर अलग बनाया गया। इसके पश्चात् उसने शिवजी से आकर प्रार्थना की कि मन्दिर बन कर तैयार है, अब और जो कुछ आज्ञा हो, उसका पालन करूँ। यह सुनकर शिवजी अत्यंत प्रसन्न हुए। तब सब की यह इच्छा हुई कि शिवजी कैलाश को चलें तो अत्यन्त उत्तम हो। अन्तर्यामी शिवजी अपने भक्तों के मन की इच्छा समझ गये तथा अपने चरण कमलों से कैलाश पर्वत को सुशोभित किया।''

इतनी कथा कह कर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! उसी समय मैं और विष्णु दोनों ब्राह्मणों को साथ ले कर शिवजी के पास पहुँचे। तब

निधि पति ने हम सबकी ओर से प्रार्थना की कि हे स्वामी ! सब की प्रबल आकांक्षा है कि आपका अभिषेक एवं पूजन किया जाए। हम आपको सिंहासन पर बिठाकर पूजा करें, जिसमें हमारा मनोरथ सफल हो।'' शिवजी ने प्रसन्न हो कर यह बात स्वीकार कर ली। तब सब लोग आनन्द से तैयारी में लगे। मुनियों ने ज्योतिषियों से शुभ मुहूर्त्त जान कर प्रसन्न हो विष्णु ने यह कहा कि शिवजी के अभिषेक का मुहूर्त्त निश्चिय हो गया है, अब विलम्ब न कीजिये। तब मैंने तथा विष्णु ने शिवजी से कहा—''हे प्रभो ! अब आप स्नान कर, इस समय योग्य वस्त्र धारण कीजिये। शिवजी ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार किया और स्नान कर वस्त्र धारण किये। यह देख कर सब उपस्थित जन प्रसन्न हुए और शिवजी के स्नान के लिए समस्त तीर्थों का जल लाया गया। उसी जल में उन्होंने स्नान किया। मैंने तथा विष्णु जी ने उनके शरीर को अपने हाथों से अच्छी तरह मल कर धोया। उसके पश्चात् शिवजी दिव्य वस्त्र धारण करके सिंहासन पर सुशोभित हुए। मैंने वेद ध्वनि प्रारंभ की। सर्वप्रथम विष्णु जी ने मन्त्र पढ़ कर शिवजी की पूजा की तथा लक्ष्मी जी सहित बड़ी भक्ति के साथ बार-बार आरती उतारी।

समस्त गन्धर्व अपने प्रिय स्वर एवं मधुर वाणी में मनोहर गीत गाने लगे। मैंने भी समस्त देवताओं के साथ पूजा की। उसके पश्चात् सनकादिक, मरीचि ब्रह्मर्षि तथा अन्य मुनि आदि ने शिवजी की पूजा की। हम सब लोगों ने इस आनन्द में बहुत द्रव्य लुटाया। उस समय चारों ओर से 'धन्य-धन्य' का शब्द सुनायी देता था। सब लोगों ने अत्यन्त आनन्द के साथ वह उत्सव मनाया।

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! सबसे पहले विष्णु जी ने दोनों हाथ जोड़ कर स्तुति करते हुए कहा—''हे ईश्वर ! आपकी स्तुति वेद भी

नहीं कर सकते। मैंने भी आपकी स्तुति की है, पर आपका यदि अन्त नहीं जान पाया।'' फिर इसी प्रकार देवता, उपदेवता, गण आदि सब ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अत्यन्त विस्तारपूर्वक स्तुति की। सब ने खड़े हो कर एक स्वर से प्रसन्नता प्रकट की। तब शिवजी सब की प्रीत देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

शंकर जी यह देख कर अति प्रसन्न हो कर बोले—''तुम सब लोगों की जो भी इच्छा हो, उसे प्रकट करो। मैं उसकी पूर्ति करूँगा।'' यह सुन सब हाथ जोड़ कर बोले—''हे प्रभो ! आपके वचनों से ही हम तृप्त हो गये। हमारे सब क्लेश दूर हो गये हैं। इसके अतिरिक्त अब और कौन-सी वस्तु है, जिसको हम आप से माँगें? आप से क्या छिपा है? फिर भी हम सबकी एक इच्छा है कि हम सब सदा आपकी भक्ति में लिप्त रहें तथा आपके चरणों की इच्छा किया करें। हम को कोई भय नहीं हो और आप हमारे सब अपराध क्षमा करें। जब दानव हमारा अपमान करें, उस समय हमारे दुःखों को दूर करें। सब लोग इतना कह कर चुप हो गये। तब शिवजी सब को अभयदान देकर, स्वयं सगुण रूप से वहीं स्थित हुए। फिर सब को समझा कर वहाँ से विदा कर दिया। केवल मुझको तथा विष्णु को पास बुला कर उन्होंने यह कहा कि तुम दोनों ही हमारे शरीर हो तथा संसार की उत्पत्ति कर, तुम्हीं पालन करते हो; अस्तु जब तुमको कोई दुःख होगा, तब हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। अब तुम दोनों अपने लोक को, सुखपूर्वक चले जाओ। यह सुन कर हम दोनों उनसे भक्ति माँग और विदा हो कर चले आये। फिर शिवजी ने निधिपति का हाथ पकड़ कर कहा—''हे मित्र ! तुम्हारी प्रीति जान कर हमने तुम्हारे निकट ही वास किया है। हमारी तुम्हारी मित्रता तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गयी। तुम्हारा कैसा सौभाग्य है कि तुम हम को अति प्रिय हुये हो। तुम प्रसन्न रहो। अस्तु, अब तुम भी अपने लोक को जाओ।'' निधिपति कुबेर शिवजी की ऐसी कृपा देख कर प्रेम मग्न हो गये और उन्होंने यह निवेदन किया—''हे प्रभो ! मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ।'' यह कह कर निधिपति बारम्बार शिवजी को प्रणाम करके अति प्रसन्न हो, अपने घर तक पहुँचे।

इसके पश्चात् शिवजी उसी कैलाश पर्वत पर आनन्दपूर्वक वास करने लगे। वे कभी-कभी इस लोक में आ कर भ्रमण करते, तथा कभी-कभी अपने भक्तों के लिए कुछ लीलाएँ रचा करते। फिर उमा ने अवतार लिया और वे दक्ष के घर में उत्पन्न हुईं। दक्ष ने उमा का विवाह शिवजी के साथ कर दिया। शिवजी उमा के साथ भक्तों के हित के लिए लीलाएँ करने लगे।

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! मैंने तुम्हें शिव अवतार तथा शिवजी के कैलाश जाने तक का वर्णन सुनाया। इसके अतिरिक्त और भी शिवजी की सहस्त्रों लीलाएँ हैं। यह लीला मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार ही कही है। शिवजी की कथा अत्यन्त पवित्र है; जिसके सुनने से बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इसका स्मरण करता है, इसके समस्त शोक तथा दुःख नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य शिव प्रीति से युक्त हो कर इस कथा का पाठ करेगा, उसको धन तथा सन्तान की प्राप्ति होगी।''

इति श्री शिवपुराणे श्री शिवविलासे उत्तरखण्ड भाषायां ब्रह्मा-नारद सम्वादे प्रथम खण्ड समाप्त।

ॐ ॐ ॐ



ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

दूसरा खण्ड

पहला अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब मैं तुमको शिवजी के अनादि चरित्र के विषय में बताता हूँ। जिस प्रकार सती ने दक्ष के घर में अवतार लेकर पुनः शिवजी से विवाह किया तथा उन्होंने शिवजी के घर जो-जो कार्य किये, उन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। मैंने पहले दस पुत्र उत्पन्न करके उनको आदेश दिया कि तुम सृष्टि की रचना करो। मेरे वे पुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, नारद तथा दक्ष हैं। मैंने इनको मानसी सृष्टि की रीति पर उत्पन्न किया, परन्तु जब मैंने नारीस्वरूपा परम सुन्दरी सरस्वती को उत्पन्न किया तो उसके मनमोहक सुन्दर स्वरूप को देखकर मेरा हृदय काम के वशीभूत हो गया। अस्तु, उसे देखकर मेरे हृदय में भी उसके साथ मैथुन करने की इच्छा उत्पन्न हुई, क्योंकि उस समय मेरे हृदय में कामदेव प्रवेश किये हुए था। मुझे सरस्वती के साथ मैथुन करने के लिए उद्यत देखकर, मेरे सभी पुत्र हाहाकार करने लगे और वे सब मुझे उस भारी पाप से बचाने के लिए, भगवान् सदाशिव की स्तुति करने लगे। उस समय शिवजी ने प्रकट हो कर मुझे उस नरक देने वाले महाभयानक पाप से बचा लिया।"

सूत जी बोले—"हे ऋषियो ! ब्रह्मा जी के मुख से यह वृत्तान्त सुनकर नारद जी ने कुछ देर तक विचार करने के उपरान्त उनसे इस प्रकार कहा—"हे पिता ! आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी तथा सब को उत्पन्न करने वाले हैं। इस समय मेरा हृदय अत्यन्त चिन्तित है, अतः

आप सम्पूर्ण संशय को नष्ट करने के लिए इस कथा को विस्तारपूर्वक कहिए। आपका मन इस प्रकार क्यों अधीर हुआ? आपकी सेवा करने वाले मनुष्यों को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है, अतः आपके द्वारा ऐसा कर्म होना अत्यन्त आश्चर्य की बात है।''

ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—''हे नारद ! तुम ध्यान देकर सुनो, मैं तुमसे मुख्य वृत्तान्त भली-भाँति समझा कर कहता हूँ। भगवान् सदाशिव की माया धन्य एवं अपरम्पार है। उन श्री शिवजी की माया ने मुझे जिस प्रकार नचाया, वह कथा मैं तुमसे कहता हूँ। सृष्टि की वृद्धि के हेतु मैंने अपने मुख से एक कन्या को उत्पन्न किया। उसे उत्पन्न कर मेरे हृदय में कुछ अहंकार उपजा। अहंकार प्रत्येक प्राणी को दुःख देता है। अस्तु, उस समय शिवजी ने यह लीला दिखायी कि मेरे मुख से एक ऐसी परम सुन्दरी स्त्री उत्पन्न हुई जिसके देखने मात्र से सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाएं। उस स्त्री का नाम 'सन्ध्या' रखा गया। वैसी अपूर्व सुन्दरी मनुष्य लोक में तो क्या, देव लोक में भी नहीं थी। उस नख से शिखा तक नवीन पूर्ण चन्द्र के समान प्रभावशालिनी, गजगामिनी तथा चम्पक वर्ण कामिनी को देखकर मेरे हृदय में काम वासना जाग ही उठी और मैं उसके साथ रमण करने की इच्छा से, अपने स्थान से उठकर खड़ा हो गया। परन्तु दक्ष आदि ने उस समय मुझे ऐसा करने से रोक दिया। तदुपरान्त वे सब दक्ष आदि मेरे पुत्र स्वयं उसकी ओर पाप भरी दृष्टि से देखने लगे। जिस समय मैं अपने मन में उसी स्त्री के प्रति अनेक प्रकार का विचार कर रहा था, उसी समय अचानक ही एक अत्यन्त सुन्दर पुरुष भी वहीं उत्पन्न हो गया। वह मेरे सामने आ कर खड़ा हो गया और मुझसे इस प्रकार कहने लगा कि, ''हे पिता ! आप मुझे मेरा नाम और काम बता दें। आप मुझे जहाँ रहने की आज्ञा देंगे, मैं यहीं रहूँगा। अस्तु, आप कृपा करके मेरी इस इच्छा को पूर्ण करें।''

हे नारद ! उस पुरुष की बात सुनकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। फिर कुछ देर विचार करने के बाद मैंने उससे कहा—''हे पुत्र ! तेरे उत्पन्न होते ही मेरा हृदय और शरीर के सब अंग काँप उठे थे, अतः मैं तेरा नाम मन्मथ रखता हूँ। इसके अतिरिक्त मनसिज, मदन आदि तेरे

अनेक नाम होंगे। तू अपने इन पाँच बाणों द्वारा तथा अपने सौंदर्य द्वारा सबको अपने वशीभूत कर लेगा। सम्पूर्ण सृष्टि का हृदय तेरे अधीन रहेगा। इस प्रकार मैंने अपने पुत्र को बहुत-से अधिकार प्रदान किये। अपने कार्य को इस प्रकार सम्पन्न हुआ देख कर मेरे हृदय में प्रसन्नता भर गयी तथा अत्यन्त अहंकार भी उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् सिंहासन पर बैठे हुए अपने सभी पुत्रों को देख कर मुझे बहुत हर्ष हुआ। मैंने उस पुरुष का जो मन्मथ नाम रखा था, उसे सभी ने बहुत पसन्द किया और यह स्वीकार किया कि कामदेव का पद सबसे बड़ा तथा ऊँचा होगा।

इस घटना के उपरान्त जब कि हम सब लोग अपने मन में प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे, कामदेव ने अपने उस धनुष को सीधा किया, जिसके चढ़ते ही तीनों लोकों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। वह धनुष को चढ़ाये हुए मेरे पास आकर खड़ा हो गया और मन में यह विचार करने लगा कि मैंने उसे जो वरदान दिया है, उसकी परीक्षा करके देख ली जाए। अस्तु, उसने मेरी पुत्री संध्या को मेरे समीप खड़े देख कर, मेरे ही ऊपर अपना मोहन नामक बाण चला दिया। तदुपरान्त उसने मेरे अन्य पुत्रों को भी अपने उस बाण द्वारा मूर्च्छित कर दिये। उस प्रकार हम सब उसके वशीभूत हो गये। जब उसने यह देखा कि संध्या के ऊपर उसके बाण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है तो उसने संध्या के हृदय पर भी एक ऐसा बाण मारा कि जिसके कारण वह भी कामदेव के वश में हो कर चंचल और वक्र दृष्टि से सब की ओर देखने लगी। हम सब लोग बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण उसे पकड़ने की इच्छा करने लगे, क्योंकि काम के वशीभूत हो जाने के कारण हमें किसी प्रकार के कुकर्म तथा पाप का विचार नहीं रहा था।"

ॐ ॐ ॐ

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! मुझे इस प्रकार मोहित देख कर, धर्म के पुत्र सत्य को बहुत चिन्ता हुई। वह दोनों हाथ जोड़ कर शिवजी

के निकट जा पहुँचा और स्तुति प्रणाम करने के उपरान्त उन्हें सब हाल कह सुनाया। उसकी प्रार्थना पर हम लोगों को विरुद्ध व्यवहार से बचाने के निमित्त भगवान् शिव शीघ्र ही हम लोगों के बीच प्रकट हो गये। उन्हें देख कर मैं तथा मेरे पुत्र अत्यन्त लज्जित हुए और कामदेव भी बहुत लज्जित हुआ। उस समय शिवजी ने मेरी ओर क्रोध पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"हे ब्रह्मन् ! तुम ऐसे कुमार्गगामी क्योंकर हो गये? तुमने श्रेष्ठ बुद्धि को भुला कर अपनी पुत्री से भोग करना चाहा। तुम वेदपाठी होते हुए भी उस ज्ञान को भुला बैठे और लज्जा त्याग कर अधर्म कार्य की ओर प्रवृत्त हुए, यह उचित नहीं है। हमने संसार में बहुत-से पापियों को देखा है, परन्तु तीनों लोकों में ऐसा पाप करने वाला किसी को नहीं देखा।"

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी ने मेरी बहुत निन्दा की। तदुपरान्त वे मेरे पुत्रों की ओर अत्यन्त क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखते हुए बोले—"हे मरीचि आदि तुम लोग ऐसे अधीर और कामी क्यों हो गये। तुम सब ब्रह्मा के पुत्र हो और तुमने वेद का अध्ययन किया है, फिर भी तुम इस प्रकार मोहित हुए, इसलिए तुम्हें सहस्त्रों बार धिक्कार है।"

हे नारद ! भगवान् सदाशिव के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर मैं तथा मेरे पुत्र अत्यन्त लज्जित हुए। उस समय सब को ऐसा खेद हुआ कि किसी के मुँह से कोई भी शब्द नहीं निकला। तदुपरान्त मैंने इन्द्रियों एवं वीर्य को मस्तक पर चढ़ा कर, सन्ध्या के प्रति जो आसक्ति मेरे हृदय में उत्पन्न हुई थी, उसका त्याग कर दिया। भगवान् सदाशिव के भय से मैं पाप कर्म में प्रवृत्त होने से बच गया और मेरे पुत्र भी उस निन्दनीय कर्म की ओर से विमुख हो गये। उस समय भय के कारण मेरे शरीर से जो पसीना टपका, उससे चौंसठ, योगिनियाँ उत्पन्न हुईं, जो संसार से विमुख हो कर तपस्या के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करती हैं। तदुपरान्त छियासी पुत्र और उत्पन्न हुए, दक्ष प्रजापति के शरीर से पसीना निकल कर पृथ्वी पर गिरा, उससे एक स्त्री की उत्पत्ति हुई। अत्रि, मरीचि, पुलह, भृगु तथा तुम अर्थात् नारद

के शरीर से पसीना नहीं निकला। वशिष्ठ, विश्रवा, अंगिरस तथा क्रतु के शरीर से जो पसीना निकल पृथ्वी पर गिरा, उससे सम्पूर्ण अंगों सहित पितरों की उत्पत्ति हुई, जो सबसे प्रतिष्ठा, प्राप्त करने योग्य एवं प्रसन्नता प्राप्त कराने वाले हैं। उन्हें उसी समय वेद और धर्म-शास्त्रों का ज्ञान हो गया। वे सब परम धार्मिक, धर्म का उपदेश करने वाले एवं सम्पूर्ण कार्यों को करने की क्षमता रखने वाले थे।

हे नारद ! क्रतु से सोमपा, वशिष्ठ से अहिर्बुघ्न, पुलस्त्य से आज्यप तथा अङ्गिरस से बर्हिपद हुए। इस प्रकार पितर चार प्रकार के हैं। पर वे छः प्रकार के प्रसिद्ध हैं। तत्पश्चात् मेरी आज्ञा से संध्या ने उन पितरों द्वारा गर्भ धारण किया। इस प्रकार मेरे धर्म की रक्षा करके भगवान् सदाशिव अन्तर्धान हो गये। उनके चले जाने के पश्चात् मैंने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कामदेव की ओर देखा और उसे शाप देने की इच्छा प्रकट की। उस समय मेरे सब पुत्रों ने मुझे बहुत समझाया, परन्तु मैंने माया के वशीभूत हो कर उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। उस समय मैंने मन्मथ से कहा—"अरे मूर्ख ! तूने यह क्या दुखदायीपन किया जो मेरे हृदय को ऐसा घोर पापकर्म करने की ओर प्रवृत्त कर दिया? तूने अपने पिता की यह खूब सेवा की। अस्तु, तूने जैसा काम किया है, वैसा ही अब तू फल भी प्राप्त करेगा। तेरे कारण शिवजी ने मेरी अत्यन्त निन्दा की है, अतः मैं तुझे यह शाप देता हूँ कि तू जल कर भस्म हो जाये। भगवान् सदाशिव के नेत्रों की अग्नि में पड़ कर तुझे अपना शरीर त्याग देना पड़े और तेरी उस दशा को देख कर मेरा हृदय शीतल हो।"

हे नारद ! इस शाप को सुन कर कामदेव अत्यन्त भयभीत हो थर-थर काँपने लगा और इस प्रकार कहने लगा—"हे पिता ! आप संसार को उत्पन्न करने वाले तथा न्याय और अन्याय की स्थापना करने वाले हैं। मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी आपने मुझे यह शाप क्यों दे डाला? मैंने तो आपकी आज्ञा की केवल परीक्षा ही ली थी। मेरे भाग्य से आपने मेरे लिए अब जो नयी आज्ञा दी है, वह तो अवश्य होगी ही, परन्तु आप कृपा करके मुझे ऐसा वरदान भी दीजिए

जिससे मैं शिवजी की नेत्र-ज्वाला में भस्म होने के उपरान्त पुनः उत्पन्न हो सकूँ। इस प्रकार कृपा करके मेरा दुःख नष्ट कर दीजिए।

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! कामदेव की यह प्रार्थना सुन कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई तब मैंने कहा—"हे कामदेव ! मैंने तेरे सम्बंध में जो कुछ कहा है, वह तो निश्चित रूप से होगा ही, परन्तु अब मैं तुझे यह वरदान देता हूँ कि तुझे भस्म करने के उपरान्त कुछ दिनों बाद जब शिवजी अपना विवाह करेंगे, उस समय तुझे यही शरीर पुनः प्राप्त हो जाएगा और शिवजी तेरे सहायक हो उठेंगे।" इस बात को सुन कर सभा में फिर से नवीन आनन्द भर गया।

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! इस प्रकार मैंने शिवजी की माया के अधीन हो कर तथा अहंकार के वशीभूत हो कर, पहले तो अपने प्रभु के साथ वैर किया, तदुपरान्त कामदेव पर कृपा करके दक्ष प्रजापति से यह कहा—"हे पुत्र ! तुम अपनी स्वेदका नामक पुत्री का विवाह कामदेव के साथ कर दो तो हमारा हृदय प्रसन्न होगा। मेरी इस आज्ञा को सुन कर दक्ष ने कामदेव से कहा—"हे अनंग ! मेरी पुत्री को, जो रति नाम से भी प्रसिद्ध है, स्वीकार करो और प्रसन्नतापूर्वक तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करते रहो।" कामदेव ने भी दक्ष की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब रति के साथ कामदेव का बड़ी धूमधाम के साथ विवाह हुआ। उस समय मैंने अत्यन्त प्रसन्न हो कर दक्ष को अपनी बायीं ओर बिठाया। फिर पिता के समान उपदेश करते हुए भगवान् सदाशिव ने मुझसे जो शब्द कहे थे, उन पर विचार करते हुए दक्ष से बोला—"हे दक्ष ! शिवजी योगी स्वरूप धारण कर तीनों लोकों को जीत, भोग-विलास को त्याग, स्त्रीहीन हो, सदैव स्वच्छन्द विचरण किया करते हैं। अपनी दशों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, वे स्वाधीन बने हुए हैं। अतः तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे शिवजी

सांसारिक रीति के अनुसार अपना विवाह कर लें। ऐसा हो जाने पर हम निश्चित हो जायेंगे। शिवजी ने तुम्हें भी बहुत धिक्कार दिया है और अपने बड़प्पन के अहंकार में भर कर, किसी को कुछ नहीं समझा है। यदि विष्णु ने हम से ऐसा कहा होता तो हम कुछ भी बुरा नहीं मानते। शिवजी हमारे पुत्र होते हुए भी हमारे प्रति ऐसे कटु वचनों का प्रयोग करते हैं और तुमसे भी, जब कि तुम उनके भाई होते हो इस प्रकार अनादर वचन कहते हैं, सो यह किसी भी हालत में उचित नहीं है। अस्तु, जब तक शिवजी किसी स्त्री से विवाह नहीं कर लेते हैं, तब तक हमारा शोक दूर नहीं होगा। अब सोचने की यह बात है कि संसार में ऐसी कौन-सी स्त्री है जिसके ऊपर शिवजी मोहित हो जाएं और उससे अपना विवाह कर लें तथा वह स्त्री शिवजी की सारी चतुराई को दूर कर दे। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि जब कामदेव भी शिवजी को वश में नहीं कर सका तो अन्य देवता उनके समक्ष किस प्रकार ठहर सकते हैं, फिर भी यदि कामदेव कुछ प्रयत्न करे तो शायद काम बने।''

''हे नारद ! इतना कह कर मैं हँसता हुआ कामदेव के पास जा पहुँचा। उसके सुन्दर स्वरूप को देख कर मुझे यह निश्चय हो गया कि कामदेव द्वारा हमारा यह काम अवश्य सिद्ध हो जाएगा। कामदेव ने मुझे अत्यन्त आदरपूर्वक अपने पास बैठाया। उसी समय मेरे स्वांस से एक अत्यन्त सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका नाम मैंने वसन्त रखा। वसन्त के जन्म से कामदेव की शक्ति में वृद्धि हुई। उस समय तीनों प्रकार की वायु चलने लगी तथा पक्षीगण मधुर-स्वरों में चहचहाने लगे। कोकिला भी मीठे स्वरों में कूक उठी। कामदेव की उस शक्तिशालिनी सेना को देख कर मैंने कहा—''हे मन्मथ ! यदि तुम अपने पराक्रम से शिवजी को वश में कर लो तो तीनों भुवनों में तुम्हारी अत्यन्त प्रसिद्धि होगी। अस्तु, तुम मेरी आज्ञा मान कर इस कार्य को शीघ्र सम्पन्न करो।'' मेरी इस आज्ञा को सुन कर कामदेव ने उसे अपने

मस्तक पर धारण किया। तदुपरान्त वह मुझे प्रणाम कर एवं अपनी सेना को साथ ले कर शिवजी के समीप चल दिया।''

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जिस समय कामदेव अपनी सेना को ले कर शिवजी के पास चला, उस समय सम्पूर्ण संसार पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सृष्टि के समस्त प्राणी बुद्धिहीन हो, उसके वशीभूत हो गये। शिवजी के गणों पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा। तब शिवजी ने यह जाना कि कामदेव उन पर विजय प्राप्त करने के निमित्त अपनी सेना को साथ लिये हुए आ रहा है तो उनके ऊपर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वे अपनी इन्द्रियों को जीत कर अपने स्थान पर ध्यान मग्न बैठे रहे। उनके ऊपर कामदेव का कोई वश नहीं चला। तब कामदेव अत्यन्त दुखी एवं चिन्तित हो कर वहाँ से लौट आया और कायरों की भाँति मेरे सामने आ कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तदुपरान्त स्तुति करते हुए इस प्रकार बोला—''हे पिता ! मैंने अपनी सेना द्वारा सम्पूर्ण देवता, मुनि एवं अन्य जीवधारियों को तो वश में कर लिया, परन्तु शिवजी के ऊपर मेरा कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब मुझे यह भय लग रहा है कि कहीं वे मेरे ऊपर क्रुद्ध न हो जाएं। प्रज्ज्वलित अग्नि के समान उनके स्वरूप का स्मरण कर, मैं मन ही मन अत्यन्त भयभीत हो रहा हूँ। मुझ में इतना बल नहीं है कि मैं उन्हें परास्त कर सकूँ; क्योंकि इस बात की मैंने भली-भांति परीक्षा कर ली है।''

हे नारद ! कामदेव की बात सुन कर मुझे अत्यन्त चिन्ता हुई और मेरे मुख पर उदासी के लक्षण स्पष्ट हो गये। उस समय मैंने शोकाकुल हो कर जो बहुत से स्वांस छोड़े, उनसे अनेक प्रकार के गणों की उत्पत्ति हुई। वह अपने हाथों में अनेक प्रकार के शस्त्र धारण किये हुए थे। वे बड़े ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते, नाचते-गाते हुए मार-मार की पुकार करते थे। उनका कोलाहल सम्पूर्ण दिशाओं में भर गया। वे

अनेक प्रकार से उपद्रव करते थे। उनकी संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता।

हे नारद ! जब उन गणों को कामदेव ने देखा तो मुझसे पूछा—"हे पिता ! ये लोग कौन हैं और इनका नाम क्या है?" मैंने उत्तर दिया—"यह सब लोक मार-मार शब्द का उच्चारण कर रहे हैं, अतः इनका नाम मार होगा। हे अनंग ! तुम इस सेना को अपने साथ ले कर एक बार शिवजी के पास फिर जाओ और ऐसा उपाय करो, जिससे शिवजी किसी स्त्री के साथ विवाह करना स्वीकार कर लें।" यह सुन कर कामदेव ने उत्तर दिया—"हे पिता ! पहले तो मेरा कुछ वश नहीं चला और अब भी कोई आशा नहीं है, फिर भी मैं एक बार पुनः आपकी आज्ञा से उनके पास जाता हूँ; परन्तु आप यह निश्चय रखें कि यदि शिवजी का ध्यान भटक भी गया तो मैं जीवित कदापि नहीं बचूँगा।" इतना कह कर कामदेव अपनी उस नयी सेना को साथ ले कर वहाँ से चल दिया और उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ शिवजी ध्यान मग्न बैठे थे। सर्वप्रथम उसने पृथ्वी पर मस्तक रख कर शिवजी को प्रणाम किया, तदुपरान्त उनकी प्रसन्नता के निमित्त अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। उसने प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो ! मैं अपने पिता की आज्ञानुसार यह कार्य करने के लिए आया हूँ। अतः आप मेरे ऊपर कृपा बनाए रहें।" इतना कह कर कामदेव ने अपने साथी वसन्त को चारों ओर फैला दिया। उस समय संसार के किसी भी प्राणी का धैर्य स्थिर न रह सका। परन्तु इतने पर भी शिवजी का ध्यान विचलित न हुआ। कामदेव का उस समय भी यह बड़ा सौभाग्य रहा कि शिवजी ने उसे निरभिमान अनुमान कर भस्म नहीं कर दिया। तत्पश्चात् कामदेव लज्जित हो कर पुनः मेरे पास लौट आया और बोला—"हे पिता ! शिवजी पर मेरा इस बार भी कोई वश नहीं चला। यदि आप चाहते हैं कि शिवजी विवाह अवश्य करें तो किसी अन्य उपाय का आश्रय लीजिए।" इतना कह कर कामदेव अपने घर को चला गया। उस

समय मुझे अत्यन्त निराशा तथा चिन्ता हुई। जब कोई उपाय न सूझा तो मैंने विष्णु जी का ध्यान किया और बहुत प्रकार से उनकी स्तुति की।''

ॐ ॐ ॐ

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! मैंने भगवान् विष्णु की विनती करते हुए कहा—'हे प्रभो ! आप अपना सेवक जान कर मेरा दुःख दूर कीजिए। हे दीनबन्धु ! आप अनेक सेवकों के हित के लिए अवतार लेते हैं, अतः इस समय आप प्रकट हो गये।' जिस समय मैंने उन्हें प्रणाम किया, उस समय वे हँस कर कहने लगे—''हे ब्रह्मन् ! आप ने हमें किस लिए स्मरण किया है? आपको कौन-सा कष्ट है?'' तब मैंने उन्हें कामदेव जी का शिवजी के पास जाने और निराश हो कर लौट आने का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुन कर विष्णु जी बोले—''हे ब्रह्मन् ! आप शिवजी को पत्नी सहित क्यों देखना चाहते हैं? उन्हें अकेला क्यों नहीं रहने देते? आपकी मनोभिलाषा को जान कर ही हम कुछ उपाय बतायेंगे।'' श्री विष्णु के मुख से यह वचन सुन कर मैंने उन्हें वह वृत्तान्त कह सुनाया कि मैंने अपनी पुत्री संध्या के साथ मैथुन करना चाहा था और शिवजी ने प्रकट हो कर मुझे धिक्कारा था। मैंने कहा था कि जब तक मैं शिवजी को सपत्नीक नहीं देख लूँगा, तब तक मेरे हृदय का क्षोभ नहीं जायेगा।

हे नारद ! मेरी बात सुन कर विष्णु जी ने कहा—''हे ब्रह्मन् ! आप अपनी इस मूर्खता को दूर कर दें। आप जो शिवजी को अपना पुत्र समझ कर बुद्धि के विरुद्ध बातें कह रहे हैं वे उचित नहीं है। हम और आप दोनों ही उनके सेवक हैं। वे सर्वथा स्वाधीन एवं भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। यदि आपकी यही इच्छा है कि वे अपना विवाह कर लें तो आपको उनकी शरण में जाना उचित है। सर्वप्रथम आप कठिन तपस्या द्वारा उन्हें प्रसन्न करें, तदुपरान्त उमा का स्मरण करते हुए, दक्ष प्रजापति से भी उसी प्रकार करायें। उस तप के प्रभाव से

भगवती उमा दक्ष प्रजापति के घर पुत्री रूप में जन्म लेंगी और उनका विवाह शिवजी के साथ होगा। ऐसा करने से सम्पूर्ण लोकों का कल्याण भी होगा और आपकी इच्छा भी पूर्ण हो जायेगी।'' इतनी कह श्री विष्णु जी भगवान् सदाशिव के चरणों का ध्यान धरते हुए, अपने लोक को चले गये।''

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! भगवान् विष्णु की आज्ञा शिरोधार्य कर मैंने भगवान् सदाशिव के प्रति उस द्वेष का त्याग कर दिया, जिसे मैंने उनकी माया से मोहित हो कर अपना रखा था। तदुपरान्त दक्ष को बुला कर उसे वह सब हाल कह सुनाया, जो कुछ श्री विष्णु जी ने मुझ से कहा था। मैंने उससे कहा—''हे पुत्र ! अब तुम एक कन्या को जन्म दो, जो भगवान् सदाशिव की पत्नी हो सके। ऐसा होने पर हम और तुम संसार में धन्य हो जाएंगे। तुम भगवान् सदाशिव की तपस्या करके उनका दर्शन प्राप्त करो और यह वरदान माँगो कि हे प्रभो ! आप मेरी सन्तान बन कर जन्म लें। मैं भी तपस्या करके उस से यही माँगूंगा। वे भगवान् त्रिशूलपाणि आदिशक्ति सम्पन्न तथा सगुण-निर्गुण दोनों रूप वाले हैं। उनकी महिमा का पार वेद ने भी नहीं पाया है। वे तपस्या के वशीभूत हो कर निश्चय ही दर्शन देते हैं। जब उन कृपालु शिवजी ने मुझे उत्पन्न किया था, उस समय मेरी तथा विष्णु जी की प्रार्थना को सुन कर हमें यह वरदान भी दिया था कि वे स्वयं भी हर नामक अवतार ग्रहण करेंगे और हमारे सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करेंगे। उन्होंने यह बताया था कि उनकी आदिशक्ति, जिनके अंश से लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई है, भी एक कला से उमा के रूप में जन्म ले कर हर अवतार की पत्नी होंगी। भगवान् सदाशिव ने बताया था कि हमारे स्वरूप की आदिशक्ति द्वारा ही इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है और वह आदिशक्ति समस्त संसार की माता है।

अस्तु, हे दक्ष ! वे आदिशक्ति तुम्हारे घर में सती नाम से जन्म लेंगी। तुम मुझे तथा विष्णु को तो पत्नी सहित देखते हो परन्तु भगवान् सदाशिव के हर अवतार ने अब तक किसी स्त्री को स्वीकार नहीं किया है और न अब तक सती का अवतार ही हुआ है। अतः तुम ऐसा उपाय करो, जिससे सती का अवतार हो। इस प्रकार समझा कर मैंने दक्ष को विदा किया। तदुपरान्त घर जा कर, सम्पूर्ण इन्द्रियों को वशीभूत कर, वेद के अनुसार तपस्या करने लगा। मैंने अपने मन में श्री जगदम्बा का ध्यान कर श्वास को मस्तक पर चढ़ा लिया और मन के वेग को जीत कर उनकी स्तुति की। तब मेरी उस तपस्या से प्रसन्न हो कर जगदम्बा ने मुझे सेवक जान कर दर्शन दिया।''

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! ऐसा कौन-सा प्राणी है, जो भगवती महामाया के उस अनुपम, सुन्दर शरीर को देख कर मोहित न हो जाए? उनके दर्शन प्राप्त कर देवता तथा ऋषि-मुनि भी मोहित हो जाते हैं। वे अपने मुख्य चिह्नों से अलंकृत तथा वस्त्राभूषण को धारण किये हुए थीं। वे सिंह पर आरूढ़ थीं। उनके उस स्वरूप को देख कर मैं अपना मस्तक नीचे झुका कर, उनकी स्तुति करने लगा। उस समय भगवती भवानी ने मुझ पर दया करते हुए कहा—''हे ब्रह्मन् ! तुम जो चाहते हो, वर माँग लो।'' यह सुन कर मैंने पिछली बातों को स्मरण करते हुए कहा—''हे मातेश्वरी ! रुद्र नामक शिवावतार ने मुझ से बहुत ही कटु-वचन कहे हैं और व्यर्थ ही धिक्कारा है। अतः आप अवतार लेकर उन्हें वश में कर लें, जिससे वे भी हमारे ही समान गृहस्थ हो जाएं। कृपा कर आप यही वरदान दक्ष प्रजाप्रति को भी दीजिए, क्योंकि इसी अभिलाषा को लिये वह भी आपकी आराधना कर रहा है। तीनों लोकों में आपके अतिरिक्त कोई ऐसा नहीं, जो शिवजी को मोहित कर सके।''

हे नारद ! मेरी बात सुन कर भगवती भवानी ने कहा—"हे ब्रह्मन् ! तुम धोखा दे कर मुझसे यह क्या माँग रहे हो? इससे तुम्हें क्या लाभ होगा? इस समय तुमने मेरे सामने यह संकट भी उपस्थित कर दिया है कि मैं तुम्हें वरदान न दूँ तो वेद का मार्ग नष्ट हो जायेगा।" इतना कह कर उन भगवती ने योग धारण द्वारा उन परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान किया, जो अपने भक्तों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं और सब के अन्तःकरण का हाल जानते हैं। भगवान् सदाशिव ने उन्हें ध्यानावस्था में यह आज्ञा दी कि ब्रह्मा जिस वरदान को माँगते हैं, उन्हें दे दो और तुम अवतार ग्रहण करना स्वीकार करो। हम तुम्हें अत्यंत स्नेहपूर्वक अंगीकार करेंगे तथा ब्रह्मा को इस प्रकार मोहित करेंगे कि उनका सम्पूर्ण गर्व नष्ट हो जाएगा। परब्रह्म की ऐसी आज्ञा पा कर भगवती जगदम्बा ने मुझसे कहा—"हे ब्रह्मन् हर रूपी भगवान् सदाशिव योगिराज हैं। उन्हें मोहित नहीं किया जा सकता, परन्तु तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार युक्तिपूर्वक तुम्हारा मनोरथ सिद्ध कर दिया जाएगा। जब तक हर स्त्री को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक न तो उन्हें परलोक का फल मिलेगा और न संसार में आनन्द ही प्राप्त होगा। अतः मैं उनके निमित्त दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप में स्वयं ही अवतार ग्रहण करूँगी। उस समय शिवजी मुझ पर मोहित हो कर, मेरे साथ विवाह कर लेंगे।" इतना कह कर भगवती महामाया अन्तर्धान हो गयीं और मुझे अत्यंत प्रसन्नता प्राप्त हुई।"

आठवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर सूत जी बोले—"हे ऋषियो ! पितामह ब्रह्मा जी द्वारा इस वृत्तान्त को सुन कर नारद जी ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा—"हे पिता ! भगवान् सदाशिव की आदिशक्ति ने जब आपको यह वरदान दे दिया, उसके उपरान्त क्या घटना घटी, यह आप मुझे बताने की कृपा करें?" ब्रह्मा जी बोले—"हे आत्मज ! जब भगवती

महामाया ने प्रकट हो कर मुझे यह वरदान दिया तब दक्ष प्रजापति ने मेरी आज्ञानुसार घोर तपस्या करनी आरम्भ की। उसने तीनों प्रकार का प्राणायाम करते हुए, शिवरानी के चरण-कमलों में अपने हृदय को स्थित किया। दक्ष के उग्र तप को देख कर श्री जगदम्बा ने अपने उसी शुद्ध, मनोहर एवं पवित्र स्वरूप में प्रकट हो कर दर्शन दिया, जिसका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। दक्ष ने उन्हें प्रणाम-स्तुति करते हुए कहा—"हे भगवती ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे अपना सेवक जान कर मेरे ऊपर कृपा करें।" उसकी स्तुति को सुन कर भगवती बोलीं—"हे दक्ष ! तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझ से माँग लो। मेरे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है।" यह सुन कर दक्ष ने कहा—"हे मातेश्वरी ! आप मेरी पुत्री बन कर मेरे घर में अवतार लें और हर के मन को मोहित करें। इस कार्य में मेरा ही कोई प्रयोजन नहीं है, अपितु तीनों लोकों का उपकार भी सन्निहित है। मैंने मोक्ष का वरदान न माँग कर आपसे जो यह प्रार्थना की है वह पूर्ण होनी चाहिए।"

दक्ष की प्रार्थना सुन कर भगवती महामाया ने कहा—"हे दक्ष ! तुम जो चाहते हो, वही होगा। मैं तुम्हारी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हो कर शिवजी की अर्धांगिनी बनूँगी; परन्तु तुम अपने मन में किसी प्रकार अहंकार नहीं करना, अन्यथा तुम्हारा सम्पूर्ण गर्व नष्ट हो जाएगा।" इतना कह कर श्री जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं और दक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो कर अपने घर को लौट आया। तदुपरान्त दक्ष ने दस सहस्त्र मानस पुत्रों की उत्पत्ति की। वे सब तुम्हारी प्रेरणा से घर छोड़ कर तपस्या करने के लिए वन में चले गये और परमपद को प्राप्त हुए। तत्पश्चात्, दक्ष ने दस सहस्त्र पुत्र और उत्पन्न किये परन्तु वे भी तुम्हारा उपदेश सुन कर संसार से विरक्त हो कर वहीं चले गये; जहाँ उनके भाई गये। उस समय दक्ष ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर तुम्हें शाप दिया कि, हे नारद ! "तुम अत्यन्त अधम हो, क्योंकि तुमने मेरे सब पुत्रों को मेरे विरुद्ध कर दिया है। अब मैं तुम्हारे कर्म के अनुसार तुम्हें यह शाप देता हूँ कि तुम किसी एक स्थान पर न ठहर कर सदैव भ्रमण किया करो।"

"हे नारद ! तुम्हें यह शाप देने के उपरान्त दक्ष को अपने मन में कुछ संतोष हुआ। तब उसने अपने मन में यह निश्चय किया कि अब कुछ मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करनी चाहिए। यह विचार करके दक्ष ने वीर प्रजापति की पुत्री वीरनी के साथ विवाह किया। विवाह के उपरान्त दक्ष ने अपने हृदय में भगवती जगदम्बा का ध्यान किया। उस समय श्री जगदम्बा जी ने भी अपने मन में यह विचार किया कि अब मुझे दक्ष के घर जन्म ले कर, उसका मनोरथ पूर्ण करना चाहिए। यह निश्चय कर, वे दक्ष के हृदय में प्रवेश कर गयीं। उस समय दक्ष प्रजापति को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई और भगवती के तेज से उनका शरीर प्रदीप्त हो उठा। तदुपरान्त शुभ अवसर पा कर दक्ष ने उस तेज को अपनी पत्नी में स्थिर कर दिया।"

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जब दक्ष की पत्नी गर्भवती हुई, उस समय बहुत धूमधाम से उत्सव मनाया गया। दक्ष ने रीति के अनुसार पूजा की। मैंने तथा विष्णु ने भी उस उत्सव में सम्मिलित हो कर दक्ष की पत्नी की सेवा एवं स्तुति करने के पश्चात् दक्ष की प्रशंसा की। सभा समाप्त होने के पश्चात् हम सब लोग अपने-अपने लोक को लौट आए। नौ महीने बीतने के पश्चात् जब दसवाँ महीना आरम्भ हुआ, तब चारों ओर अपने आप आनन्द के दृश्य प्रकट हुए। सभी मन में हर्षित थे। आकाश में बाजे बजने लगे। ऐसे परमोत्तम समय में श्री महारानी जगदम्बा अवतरित हुईं। तीनों लोकों में प्रसन्नता भर गयी। उस समय कोई मनुष्य दुःखी दिखायी नहीं देता था। तब मैं, विष्णु तथा समस्त ऋषि-मुनि एकत्र हो कर दक्ष प्रजापति के घर गये। अत्यन्त प्रसन्नता के साथ बाजे बजने लगे। सब लोग देवी की स्तुति करके कहने लगे "हे शिवा, शिवरानी ! तुम सम्पूर्ण संसार की राजरानी हो। तुम्हारी महिमा अपरम्पार है, जिसका पार वेद भी नहीं पा सके। तुम

सब की माता तथा सब को प्रसन्नता प्राप्त कराने वाली हो।" इस प्रकार हम सब विनय करके अपने-अपने स्थान को चले गये। जब दक्ष की पत्नी ने अपनी पुत्री का मुख देखा तो उसको हृदय के ज्ञान से आभास हुआ कि यह आदिशक्ति है तथा इसने हमारे यहाँ अवतार लिया है। माता उस कन्या का अद्वितीय सौन्दर्य देख कर पहचान गयी। तब उस देवी ने अपनी माता को अष्टभुजा महातेजस्वी, मेघसदृश श्याम वर्ण, नख झलकते हुए अंग अत्यन्त सुडौल, परम सुन्दरी, सब प्रकार के आभूषणों तथा वस्त्रों से सुशोभित तथा कानों में कुंडल, हाथों में कंकण, कण्ठ में हार, माथे पर बिन्दी से सज्जित शशिमुख का दर्शन दिया।"

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! देवी स्वरूपा अपनी पुत्री का ऐसा रूप देख कर माता करबद्ध हो कर उसकी स्तुति करने लगी और कहने लगी—"मैं जानती हूँ कि तुम आदिशक्ति तथा सृष्टि की माता हो। तुमने हमारे ऊपर कृपा करके हमारे घर में अवतार लिया है, अस्तु तुम हम पर अनुग्रह करो और मेरे मन में अपने स्वरूप को स्थिर करो। इस समय तुम मुझे अपना स्वरूप बालरूप में ही दिखाओ। मैंने तुम्हें पहचान लिया है। मैं जानती हूँ कि तुमने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया है। वैसे मैं तुमको क्या पहचान सकती हूँ क्योंकि अन्त में वेद भी तुम्हारी स्तुति करके हार मान कर चुप हो जाते हैं।" उसी समय दक्ष प्रजापति ने आ कर बड़े प्रेम से स्तुति की और कहा—"तुमने अपने वचन का पालन कर मेरे घर में अवतार लिया है। मैं तथा मेरे भाई वेद सब जीवन मुक्त हो गये। तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। तुम केवल पूजा और तप के वश में हो, जैसा कि राजा सुरथ का तप साक्षी है। वह अपने तप से ही परमपद प्राप्त कर सका था। तुम्हारा शुम्भ और निशुम्भ ने भी क्रोध एवं वैमनस्य से मन लगाया तो भी वे ध्यान करने

से परमगति को प्राप्त हुए।'' इसी प्रकार दक्ष ने महामाया की अत्यन्त स्तुति करके अन्त में यह प्रार्थना की कि अपना यह मनमोहक रूप हमारे हृदय में बसा कर, अब जो रूप, समय के योग्य हो, उसे आप धारण कीजिए, जिससे प्रसन्नता प्रकट हो।

इस प्रकार दक्ष तथा उसकी पत्नी अर्थात् अपने माता-पिता की बातें सुन कर, श्री देवी जी बोलीं—कि, हे दक्ष तथा हे दक्षपत्नी ! तुम दोनों ही ने हमारी बड़ी उपासना की है। हमने भी वरदान के अनुसार तुम्हारे घर अवतार लिया है। अब तुमको यही उचित है कि तुम जिस प्रकार मुझे शक्ति समझते हो, उसी प्रकार का विश्वास रखते हुए, कभी गर्व न करना।'' देवी जी इतना कह कर कन्या का रूप धारण कर संसार की रीति के अनुसार रोने लगीं। तब वह रोदन सुन कर कुल की असंख्य नारियाँ, समस्त बाँदियाँ एकत्र हो गयीं। उन सब ने पुत्री को देख कर प्रसन्नता प्रकट की। उस दिन नगर में सर्वत्र प्रसन्नता छायी हुई थी। चारों ओर से जय-जय नाद गूँज रहा था। दक्ष तथा उसकी पत्नी ने वेद एवं कुल के नियमानुसार सब रीति की तथा बहुत-सा धन दान स्वरूप बाँटा। उस समय मैं तथा विष्णु जी देवताओं और मुनियों को साथ ले कर वहाँ जा उपस्थित हुए तथा दक्ष के निवेदन के अनुसार हमने उस कन्या का नाम सती रखा।

दक्ष के यहाँ पुत्री उत्पन्न होने से, इस आनन्दोत्सव की तीनों लोकों में चर्चा हुई। दक्ष प्रजापति तथा दक्षपत्नी ने पुरुषों एवं स्त्रियों का समुचित आदर सत्कार किया। इसके पश्चात् सब लोग अपने-अपने घर को चले गये। दक्ष अपनी पत्नी सहित सती के प्रेम में निमग्न हो कर सब कुछ भूल गये। सती चन्द्रकला की भाँति दिन-दिन बढ़ने लगीं। वे प्रतिदिन शिव पत्नी का पाठ करतीं तथा सदाशिव का ध्यान करतीं। वह पार्थिव पूजन करतीं तथा माता-पिता की प्रसन्नता की ओर से अधिक ध्यान देतीं। यद्यपि उनका शिव में अधिक ध्यान रहता, परन्तु इस बात को वे किसी पर प्रकट न होने देतीं। सती इसी प्रकार के विचित्र खेलों में मग्न रहतीं। जब कुछ बड़ी हुईं तो उनके मुख की

कान्ति दूनी हो गयी। उनकी सुन्दरता की समानता तीनों लोकों में कोई भी नहीं कर सकता था। लक्ष्मी मोहिनी भी उनकी सुन्दरता की समानता न करके अन्त में पराजय माना गयीं। हे नारद ! इस प्रकार मैंने दक्ष की कन्या का यह संक्षेप में वर्णन किया है।''

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! एक समय सती ने दक्ष के सम्मुख एक विचित्र चरित्र किया था। उस समय मैं और तुम वहाँ पहुँचे। सती ने हम दोनों को बैठने के लिए स्वर्ण की चौकी दे कर हमारी स्तुति की। हम दोनों ने सती की नम्रता तथा सेवा देख कर यह वरदान दिया कि जिसकी महिमा अपार है तथा जिसकी हम और विष्णु सेवा करते हैं, जो किसी दूसरी स्त्री को न चाहे, ऐसा परम पुरुष तुम्हारा पति हो। सती से ऐसा कह कर फिर दक्ष से कहा—''हे दक्ष ! तुम धन्य हो, तुम्हारे घर में आदिशक्ति जगदम्बा अवतरित हुई हैं। अब तुमको यही उचित है कि मोह रहित हो कर कन्या का विवाह शिव के साथ सम्पन्न कर दो।'' ऐसा कह कर मैं और तुम अपने-अपने स्थान को लौट आये। उस समय दक्ष ने प्रसन्न हो कर सोचा कि अब सती युवा हुई तथा घर से बाहर पैर नहीं रखती है। अस्तु अब मुझे यही उचित है कि जिस प्रकार शिवजी उसको स्वीकार करें, वही उपाय करना चाहिए। इसी प्रकार विचार करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया, परन्तु दक्ष के हृदय में कोई बात स्थिर न हुई। तब सती ने सोचा कि मैं शिव का तप करके शिवशक्ति हो जाऊँ, परन्तु लज्जावश माता-पिता की आज्ञा के बिना वे इस बात को प्रकट नहीं कर सकती थीं। अन्त में एक दिन उन्होंने अपनी माता से अपनी यह आकांक्षा प्रकट करते हुए कहा—''यदि आज्ञा हो तो मैं वन में जा कर शिवजी की तपस्या करूँ, क्योंकि वे बिना तपस्या किए मुझसे विवाह नहीं करेंगे और बिना विवाह के तुम्हारा मनोरथ पूर्ण न होगा। इसलिए हे माता ! यही उचित है कि तुम

मुझे इसके लिए पिता से आज्ञा दिला दो।''

माता ने सती की बात सुन कर दक्ष को बुलाया तथा सती की मनोकामना कह सुनायी। उसे सुन कर दक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार सती जी अपने माता-पिता की आज्ञा ले कर अपनी सखियों के साथ हाटकेश वन में पहुँच कर, कठिन तपस्या करने लगीं। उन्होंने तीनों ऋतुओं में उसी वन में रह कर व्रत का शुभारम्भ किया और पूरी तरह शिवजी की पूजा की। वे कार्तिक में नित्य प्रातः स्नान कर, शिव पूजन करके रात-दिन शिव के चरणों में ध्यान लगाये रहीं। माघ में स्नान कर, शिवजी की पूजा की तथा भीगे हुए वस्त्रों से नदी के तट पर तप करती रहीं और रात्रि को सखियों सहित जाग कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने फागुन मास की चौदस को शिवजी की पूजा की तथा उन पर अनेक प्रकार के पुष्प चढ़ाये और रात्रि को जागरण कर चारों प्रहर उनकी पूजा की। चैत्र मास में शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को टेसू के पुष्प अप्रित किये। उन्हीं पुष्पों से शिवजी का पूजन किया। वैसाख सुदी तृतीया को शिवजी का पूजन किया तथा उनके सम्मुख नाना प्रकार के पुष्पों से नैवेद्य समप्रित किये। ज्येष्ठ मास के अन्त में व्रत रख कर सहस्त्रों भटकटियों के पुष्पों से शिवजी की पूजा की। अत्यन्त पवित्र आषाढ़ मास में पूरे माह व्रत रख कर, नाना प्रकार के पुष्पों से शिवजी का पूजन किया। श्रावण की अष्टमी को वस्त्रादिक दान किये। भादों के कृष्ण पक्ष को काम तिथि में सुन्दर-सुन्दर पुष्प एवं फलों से अच्छी प्रकार शिवजी की पूजा की। इसी प्रकार चतुर्दशी को पुनः शिवजी का पूजन किया। इसी प्रकार सती का नन्दा व्रत आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

नन्दा व्रत पूर्ण हो जाने के पश्चात् सती ने प्रसन्न हो कर लोगों को बहुत दान दिया और वेद के अनुसार अनेक प्रकार की सर्वोत्तम वस्तुएं एकत्र कर उनसे शिवजी का पूजन किया। ब्राह्मणों को शिव स्वरूप जान कर उनकी भी पूजा की। इस प्रकार शिव के प्रेम में मग्न हो कर योग धारण से तप किया और श्वास चढ़ा कर जल में बैठ गयीं। उस

समय मैंने तथा विष्णु ने जा कर देखा कि सती सिद्धों एवं अमरगण की भाँति बैठी हैं और वहाँ के सम्पूर्ण जीवों में कोई भी द्वेषभाव नहीं है। यहाँ तक कि सिंह तथा गौ एक साथ रहते हैं। इसी प्रकार समस्त जीवधारी शत्रुता त्याग कर, वहाँ प्रेम पूर्वक क्रीड़ा करते थे। मैं और विष्णु जी वहाँ की ऐसी दशा देख कर सती की स्तुति करने लगे। फिर कैलाश पर्वत की ओर यह कहते हुए कि सती को शिवजी अंगीकार करें, चल दिये।

ॐ ॐ ॐ

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! मैंने स्वयं एवं विष्णु जी, देवता, मुनि, नाग, सिद्ध सब ने शिवजी के निकट जा कर देखा कि शिवजी शक्ति सहित विराजमान हैं। हम सब ने उसकी स्तुति की तथा विनती करते हुए कहा—''हे महाराज ! जब हम को आप ने उत्पन्न किया था, तब आप ने प्रण किया था कि हम तुम्हारे उपकार के लिए रुद्र नाम से अवतरित होंगे, सो ऐसा ही हुआ। आप ने अपनी प्रतिज्ञानुसार अवतार लिया। अब आप हम पर कृपा करें।'' मैं और विष्णु यह कह कर चुप हो गये।

यह सुन कर सदाशिव बोले—हे ब्रह्मा तथा विष्णो ! ''मुझे तुम दोनों ही अत्यन्त प्रिय हो। तुम यहाँ मुनियों के साथ किस लिए आये हो सो मुझे सब ठीक-ठीक बताओ?'' शिवजी के ऐसे वचन सुन कर हमने यह समझा कि अब मनोकामना अवश्य सिद्ध होगी। तब विष्णु और मैंने हाथ जोड़ कर उनसे निवेदन किया—हे प्रभो !''पहले आप ने कहा था कि हम विवाह करके लोक कार्य सिद्ध करेंगे, सो अब वह समय आ गया है। अब आप अपने वचन का पालन कीजिए।'' शिवजी यह सुन हँस कर बोले—''हम तो योगी हैं। हमें विवाह-भोग से क्या संबंध? हमारा शरीर अवधूत है और हमारी सामग्री भी अशुभ है। हम इसी दशा में बहुत प्रसन्न हैं। देखो, लोग विवाह से अधिक

दूसरा कोई आनन्द नहीं मानते, परन्तु वह एक कारागृह के समान है, जैसा कि वेद भी कहते हैं। जो बात मुझे अच्छी नहीं लगती, तुम उसी के करने के लिए मुझ से कहते हो। अच्छा, फिर भी मैं अपना वचन पूरा करूँगा और विवाह करूँगा परन्तु इसके साथ एक बात अवश्य है कि मैं जिस प्रकार की स्त्री कहूँगा, तुम को मेरे लिए उसी प्रकार की स्त्री ढूँढ़नी होगी। वह स्त्री ऐसी हो जो हमारे तेज को सह सके। वह परम सुन्दरी तथा कीर्तियुक्त हो और वह मेरी बात माने तथा पूरी तरह से मेरी सेवा करे।''

शिवजी के ऐसे वचन सुन कर मैंने तथा विष्णु ने हाथ जोड़ कर उनसे निवेदन किया—''हे प्रभो ! आपके योग्य सर्व गुण सम्पन्न दक्ष प्रजापति की पुत्री हैं। जो आपके लिए ही महा कठिन तप कर रही हैं। आप वहाँ चल कर उनको वरदान दीजिए तथा उनसे विवाह कीजिए।'' इतना कह कर हम लोग शान्त हो गए। तब शिवजी ने हँस कर कहा—''तथास्तु।'' शिवजी के मुख से यह सुन कर देवता तथा मुनि आदि जय जयकार करने लगे। इसके पश्चात् सब विदा हो गये। उधर शिवजी अपने गणों सहित सती को वर देने के लिए उसी स्वरूप में, जिसका सती ध्यान करती थीं, सती के पास जा पहुँचे। सती के मन से उस समय वह स्वरूप जिसका कि सती ध्यान कर रही थीं, लुप्त हो गया। तब चिंतित हो कर सती ने अपने नेत्र खोले और अपने सम्मुख उसी स्वरूप को देखा। सती ने उन्हें पहले तो प्रणाम किया, फिर अपने हृदय में उस स्वरूप का ध्यान धर, लज्जा से मस्तक, नत कर लिया तथा आनन्द में मग्न हो वे शान्त बैठी रहीं। उन्होंने कुछ न कहा। उस समय सती को जो आनन्द हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है।

शिवजी सती को शान्त देख कर बोले—''हे दक्ष प्रजापति की पुत्री ! हम तुम्हारे तप से बहुत प्रसन्न हुए हैं। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह माँगो।'' यद्यपि शिवजी सती की मनोकांक्षा जानते थे, परन्तु सती का वचन सुनने को यह आज्ञा दी, फिर भी सती कुछ न कह कर शान्त ही रहीं। सती का यह भाव शिवजी को बहुत भला लगा। वे फिर बोले—

"माँगो, माँगो, विलम्ब न करो। तुम्हारी प्रत्येक मनोकांक्षा पूर्ण होगी।" इतनी कथा कह कर ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! "इस प्रकार जब शिवजी ने बार-बार कहा, तब सती बोलीं—हे महाराज ! आप अन्तर्यामी हैं। आप मेरे मुख से अपनी प्रीति सुनना चाहते हैं तथा सांसारिक जीवों की भांति पूछते हैं तो मेरा मनोरथ सुनिए। मैं चाहती हूँ कि आप मेरे पति हों और मेरे साथ विवाह करके मुझको अपने घर की दासी बनायें।" शिवजी ने सती के ऐसे वचन सुन, प्रसन्न हो कर 'तथास्तु' कहा तथा अन्तर्धान हो गये।"

ॐ ॐ ॐ

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! शिवजी से ऐसा वरदान प्राप्त कर सती अत्यन्त प्रसन्न हो कर अपने घर पहुँचीं। सती की सखियों ने उनके माता-पिता को सती का सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया, उसे सुन कर उनके माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए।"

इतना कह कर सूत जी बोले—"हे मुनियो ! जब देवर्षि नारद ने ब्रह्मा जी से यह कथा सुनी, तो वे बोले—"हे ब्रह्मा जी ! आपके द्वारा वर्णित यह चरित्र सुन कर मेरे सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये हैं तथा मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है। अब इसके आगे और जो कुछ घटना हुई, उस पर भी प्रकाश डालिए। हे पिता ! आपके समान शिवजी की पूजा करने वाला संसार में और कोई नहीं है।"

नारद जी के यह वचन सुन कर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जब मुझ को यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो मैं प्रसन्न हो कर शिवजी के पास गया। वहाँ हाथ जोड़ कर उनकी बहुत स्तुति की तथा निवेदन किया कि मुझे क्या आज्ञा है? शिवजी ने उत्तर दिया—हे ब्रह्मा ! "सती ने हमारी बहुत आराधना की है तथा हमने उनको वर दिया है, सो तुम दक्ष प्रजापति के पास जा कर कहो कि वह हमारे विवाह की तैयारी करें।" यह कह कर शिवजी ने मुझे विदा किया। मैं उनकी आज्ञा पा कर दक्ष

के पास पहुँचा तथा शिवजी की आज्ञा उन्हें कह सुनायी। यह सुन कर दक्ष, शुभ लग्न का विचार कर विवाह की सामग्री एकत्र करने लगे। उन्होंने रत्नों सहित शिवजी के पास लग्न भेजा और यह समाचार सब को कहला भेजा। यह देख कर गण अत्यंत प्रसन्न हो कर इधर-उधर दौड़ने लगे। दोनों ही ओर से पूरी-पूरी तैयारी हुई तदुपरान्त शिवजी बारात सजा कर, दक्ष प्रजापति के नगर की ओर चले।

बारात जब दक्ष प्रजापति के नगर के निकट पहुँची, तब शिवजी ने सप्त ऋषियों को दक्ष के पास भेजा। दक्ष प्रजापति बारात को नगर के निकट आया जान कर, अगवानी के लिए चले। वे सब से भेंट कर, हाथ जोड़, बारात को अपने मन्दिर ले चले। उस समय मैं, विष्णु, अष्टवसु, ग्यारह रुद्र, बारहों सूर्य, सिद्ध, भूतप्रेत, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर, देवता, मुनि तथा अप्सराएँ शिवजी सहित दक्ष के द्वार पर जा पहुँचीं। चारों ओर से जय-जयकार होने लगा। वेद एवं कुल की रीति के अनुसार सब कार्य हुए। गायन होने लगा। दक्ष प्रजापति ने ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दे कर बारात के ठहरने के लिए अति उत्तम स्थान की व्यवस्था की जहाँ सब बारात ठहरी। फिर दक्ष ने मुझ को बुला कर कहा कि विवाह वेद के अनुसार कराओ, जिससे मेरी पुत्री सुखी तथा पति की प्यारी हो और उसके अनेक सन्तानें हों। इसके पश्चात् बारातियों को अनेक प्रकार के उत्तम भोजन खिलाये। उनमें चारों प्रकार के भोजन तथा छः रसों के स्वाद थे। बाराती इस प्रकार के स्वादिष्ट भोजन पा कर तथा अनेक प्रकार के व्यंग सुन कर अत्यंत प्रसन्न हुए। उस समय वहाँ सभी प्रसन्न दिखाई देते थे। भोजन के उपरान्त पान बाँटे गये। सब लोग शिवजी की स्तुति करने लगे। भोजन आदि से निवृत्त हो कर, लग्न ठहरा कर शिवजी के आगमन के लिए सूचना भेजी। शिवजी तुरन्त आये। तब दक्ष प्रजापति शिवजी को अन्दर ले गये। उन्होंने प्रसन्न हो कर सर्वप्रथम शिवजी के चरणों को स्वयं धोया तथा सोने की चौकी पर बिठाया। मैंने सब कार्य समयोचित किया तथा सती को बुलाया। उन्हें देख कर सब ने प्रणाम किया। तब

मैंने तथा विष्णु ने दक्ष को कन्यादान का जो समय बताया, उस समय दक्ष ने कुश, जल तथा पुत्री का हाथ शिव के हाथ में दिया। हे नारद ! लोक में यही सर्वप्रथम कन्यादान हुआ तथा तब से विवाह की यही रीति संसार में फैल गयी।''

ॐ ॐ ॐ

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जिस समय शिवजी ने सती का हाथ अपने हाथ में लिया, उस समय मुनि प्रसन्न हो कर शिव तथा सती का जय घोष करने लगे तथा पुष्पवृष्टि हुई। अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। दक्ष प्रजापति ने दहेज स्वरूप बहुत-सी उत्तम वस्तुएं अमूल्य रत्न आदि दिये। अन्य रीतियों के पूर्ण होने के पश्चात् मैंने हवन का आयोजन किया। दोनों की गाँठें बाँध कर भाँवरें फिरने लगीं उस समय एक महाभयानक काण्ड हुआ। मेरी इच्छा शिवजी को मोहित करने की थी, परन्तु मैं स्वयं ही उस रोग में ग्रस्त हो गया अर्थात् भाँवरें फिरते समय सती का चरण कपड़े से बाहर निकल गया। जब मेरी कामुक दृष्टि उस पर पड़ी, तो मैं मोहित और मुग्ध हो कर बुद्धिहीन हो गया। ऐसी दशा में मेरे हृदय में सती का अनुपम रूप देखने की अभिलाषा जाग्रत हुई। मैंने उस समय यह उपाय किया कि एक भीगी लकड़ी आग में डाल दी, जिससे बड़ा धुआँ उठा। शिवजी के नेत्रों में वह धुआँ लगने से ऐसे आँसू बहने लगे कि शिवजी उन्हें दोनों हाथों से पोंछने लगे। ऐसे सुअवसर से लाभ उठा कर मैंने सती के मुख से घूँघट उठा कर, उनका सुन्दर स्वरूप देखा तथा कामदेव के प्रचण्ड वेग से दुखित हो, सब धर्म-कर्म को भूल गया। उस समय मेरा वीर्य धरती पर गिर पड़ा। मैंने उसको इस प्रकार से छिपाया कि किसी पर यह बात प्रकट न हो सके, परन्तु शिवजी ने अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा इस भेद को जान लिया तब वे मुझ पर अत्यन्त क्रोधित हो कर, धिक्कारते हुए बोले—''हे ब्रह्मा ! तुमने यह निन्दनीय कर्म क्यों किया? तुम बड़े कामी हो।''

यह कह कर शिवजी ने बड़े क्रोध से त्रिशूल हाथ में ले लिया।''

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! शिवजी का यह स्वरूप देख कर मैं थर-थर काँपने लगा तथा मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह दशा देख कर सब लोग शिवजी द्वारा मेरी मृत्यु का निश्चय कर शिव की स्तुति करने लगे, परन्तु शिवजी का क्रोध कम न हुआ। दक्ष प्रजापति भी हाथ उठा कर 'शिव-शिव' कहने लगे तथा मेरे मारने की मना ही करते हुए शिवजी से बोले—''हे प्रभो ! आप इस समय रंग में भंग न करें।'' शिवजी ने कहा—''हे दक्ष ! तुम अब मुझ से कुछ न कहो। मैं ब्रह्मा को किसी प्रकार क्षमा नहीं कर सकता। इसने वेद के पथ को भुला कर सती को पाप दृष्टि से देखा है।'' शिवजी के ऐसे क्रोध पूर्ण वचन सुन कर उनके कोप से समस्त सभा काँप उठी। तब विष्णु ने शिवजी की बहुत स्तुति करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आप अप्रमेय हैं। आपका आदि-अन्त कोई भी नहीं जानता। मैं तथा ब्रह्मा आप से ही उत्पन्न हैं। आप अपने क्रोध को शान्त कर तथा मुझे अपना सेवक समझ मेरी प्रार्थना स्वीकार करें अर्थात् ब्रह्मा को क्षमा दान दें। आप ही ने ब्रह्मा को सृष्टि की रचना के लिए उत्पन्न किया है। ब्रह्मा के सिवाय सृष्टि की और कौन रचना करेगा? यह स्पष्ट है कि बिना सृष्टि से सब लीला व्यर्थ है। फिर आप ही ने तो ब्रह्मा जी को उत्पन्न किया, इसलिए आप उनका वध न कीजिए।'' यह सुन कर शिवजी ने फिर बड़े क्रोध से कहा—''नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हम ब्रह्मा का अवश्य वध करेंगे। हम स्वयं सृष्टि की रचना करेंगे अथवा दूसरा ब्रह्मा उत्पन्न कर सब लोकों में इस बात को प्रकट कर देंगे। हम को अब मत रोको। हमारा क्रोध कभी व्यर्थ नहीं जाता।'' शिवजी ने यह कह अपना समस्त शरीर जलती हुई अग्नि के समान कर दिया। देवता तथा मुनि आदि कोई भी ऐसा न था जो उस स्वरूप को देख सकता। मैं तो जैसे शिव रूप में ही समा गया। दक्ष को भी अति खेद से सब आनन्द विस्मरण हो गया। उसने अत्यन्त दुखी हो कर शिवजी के चरण-कमलों का ध्यान करके बहुत प्रार्थना की। विष्णु ने मुझे शिवजी के चरणों के नीचे डाल दिया

तथा मुझसे बहुत स्तुति करायी तथा स्वयं भी स्तुति की। वे बोले— "मैं और ब्रह्मा दोनों आपके सेवक हैं। आप अपनी कृपा दृष्टि से हम दोनों की ओर देखिए। ऐसे आनन्दोत्सव में किसी प्रकार का शोक उत्पन्न नहीं होना चाहिए। केवल आप ही हमारे रक्षक हैं। अब जो आप उचित समझें वही वर दीजिए। आप ब्रह्मा के दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें अभयदान दीजिए।" यह कह कर हम दोनों शिवजी के चरणों पर गिर पड़े। दक्ष भी अत्यन्त दीन बन कर 'त्राहिमाम्, त्राहिमाम्' कह उठे।

हे नारद ! उस समय शिवजी ने सती को अत्यन्त दुखी जान कर अत्यन्त कृपापूर्वक मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखा और मुझे अभयदान दिया। उस समय मैं तथा विष्णु अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए। दक्ष तथा अन्य सभासद भी आनन्द मग्न हो गये। उस हर्ष में भर कर मैंने भगवान् सदाशिव की अनेक प्रकार से स्तुति की और यह कहा—"हे प्रभो ! आप ने मुझे पाप रूपी समुद्र में डूबते हुए की रक्षा की है और नरक की अग्नि में पड़ने से बचाया है। अब आप कृपा करके वह उपाय बताइए, जिससे मेरा यह महान् पाप नष्ट हो जाए। यह सुन कर श्री शिवजी ने कहा—"हे ब्रह्मन् ! तुम अपनी स्त्री सहित तपस्या करो। तुम्हारे पाप का यही प्रायश्चित्त है। जब तुम तपस्या द्वारा निष्पाप हो जाओगे, उस समय तुम्हारा नाम 'रुद्रशिरा' होगा और तभी तुम अपने सम्पूर्ण मनोरथ को प्राप्त होगे। तुमने देवताओं का अधिपति होते हुए भी जो मनुष्य के समान निकृष्ट कर्म किया है, उसके कारण तुम्हें मनुष्य योनि में जन्म ले कर लज्जा उठानी पड़ेगी। इस उपाय से तुम्हारा पाप नष्ट हो जायेगा। भगवान् सदाशिव के श्री मुख से निकले हुए इन वचनों को सुन कर मुझे तथा दक्ष को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई।"

ॐ ॐ ॐ

पन्द्रहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुना कर नारद जी ने पूछा—"हे पिता ! जब भगवान् सदाशिव का क्रोध शान्त हो गया और वे प्रसन्नता को प्राप्त हो गये,

तदुपरान्त क्या हुआ, वह मुझे बताने की कृपा करें?'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जब भगवान् सदाशिव मुझ पर प्रसन्न हुए और मेरे वीर्य को पृथ्वी पर चमकता हुआ पड़ा देखा तो मुझसे कहा—''हे ब्रह्मन् ! यह वीर्य अत्यन्त तेजस्वी दिखाई देता है, अतः इसे नष्ट नहीं करना चाहिए। जिस समय तुम्हारा वीर्य पृथ्वी पर गिरा था, उसी समय मेरे नेत्रों से कुछ आँसू भी गिरे थे। अस्तु उन दोनों के सम्मेलन से चार मेघों की उत्पत्ति होगी। शिवजी ने इतना कहते ही चार मेघ उत्पन्न हो कर आकाश में छा गये और गरजते हुए पानी बरसाने लगे, परन्तु उस समय शिवजी के भय के कारण यह वर्षा धीमी फुहारों के रूप में हो रही थी। उस वर्षा को देख कर शिवजी तथा अन्य सभी सभासद अत्यन्त प्रसन्न हुए और सर्वत्र आनन्द भर गया। तदुपरान्त शिवजी की आज्ञानुसार विवाह की अन्य रीतियाँ पूरी करायी गयीं।

हे नारद ! यह सब हो जाने के पश्चात् विवाह के बाजे फिर पहले की भांति बज उठे। उस समय हमने शिवजी की स्तुति करते हुए कहा—''हे प्रभो ! जिस प्रकार शब्द और अर्थ में भेद नहीं है, उसी प्रकार आप तथा शक्ति में कोई अन्तर नहीं है। आपकी महिमा अप्रेमय है। आपके चरणारविन्द की कृपा से इस संसार में किसने क्या नहीं पाया? आप सम्पूर्ण जीवधारियों के पिता हैं और भगवती शक्ति संसार की माता हैं।'' इस स्तुति को सुन कर शिव तथा शक्ति अत्यन्त प्रसन्न हो, हम लोगों पर कृपा दृष्टि की वर्षा करते हुए, कैलाश पर्वत को चल दिये।''

हे नारद ! उस समय की शोभा यह थी कि शिवजी के सिर पर छत्र शोभित था और देवतागण दोनों ओर खड़े हुए उनकी स्तुति कर रहे थे। शिवजी ने कुछ दूर आगे जा कर दक्ष तथा अन्य सब देवताओं को विदा कर दिया और स्वयं शक्ति एवं अपने गणों सहित कैलाश पर्वत पर जा विराजे। जब शुभ लग्न में शिवजी और सती ने अपने भवन में प्रवेश किया, उस समय चारों ओर से जय-जयकार की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। मैंने तथा विष्णु जी ने शिवजी एवं सती को एक ही

सिंहासन पर बैठाया। उस समय नृत्य, गायन एवं मंगलाचरण होने लगे। शिवजी ने सब की मनोकामना पूर्ण करते हुए जिसने जो-जो माँगा, उसे वही वस्तु प्रदान की। तदुपरान्त सब लोग उनका यश वर्णन करके अपने-अपने घर को लौट गये। मैं तथा विष्णु जी भी उनकी आज्ञा प्राप्त कर अपने लोक को लौट आये। हे पुत्र ! इस प्रकार मैंने शिवजी के विवाह के लिए अनेक उपाय किये, परन्तु मेरा कोई वश नहीं चला। जब साक्षात् आदिशक्ति ने प्रकट हो कर उनके लिए तप किया, तभी शिवजी ने उन्हें स्वीकार किया। भगवान् सदाशिव का यह चरित्र प्राणियों को मुक्ति देने वाला है। शिवजी का विवाह हो जाने पर मेरे हृदय का दुःख दूर हो गया। इस प्रकार श्री त्रिशूलपाणि सती के साथ विहार करते हुए, कैलाश पर्वत पर रहते थे और सृष्टि के उपकार के निमित्त अनेक प्रकार की कथाएँ कहते थे। जो मनुष्य शिव तथा सती के विवाह की इस पवित्र कथा का पाठ करता है, वह संसार में इच्छित आनन्द को प्राप्त कर, अन्त में मुक्ति पाता है।''

ॐ ॐ ॐ

सोलहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर शौनकादिक ऋषियों ने कहा—''हे सूत जी ! सती के विवाह का वृत्तान्त सुनने के उपरान्त नारद जी ने ब्रह्मा जी से क्या बातें पूछीं वह आप हमें बताने की कृपा करें?'' पौराणिक सूत जी बोले—''हे ऋषियों ! जब देवर्षि नारद जी इतनी कथा सुन चुके तो उन्होंने ब्रह्मा जी से कहा—''हे पिता ! विवाह के उपरान्त शिव तथा सती ने जो चरित्र किये, उन्हें आप मुझसे कहने की कृपा करें।'' यह सुन कर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! एक दिन शिवजी को एकान्त में बैठे हुए देख कर सती उनके पास पहुँची और स्तुति प्रशंसा करने के उपरान्त बोलीं—''हे प्रभो ! आपने तीनों लोकों का कल्याण करने के निमित्त अवतार ग्रहण किया है। यह मेरा परम सौभाग्य है जो आपने मुझे अपनी पत्नी के रूप में अंगीकार किया है। हे भक्तवत्सल ! मैं

आपकी शरणागत हूँ। अब मैं आप से अपनी उस अभिलाषा को प्रकट करती हूँ जिसे मैंने आज तक गुप्त रखा है। हे स्वामी ! इस समय आपको अपने ऊपर प्रसन्न देख कर ही मैं यह बात कह रही हूँ। मेरी अभिलाषा यह है कि मैंने वर्षों तक आप के साथ विहार आदि का आनन्द प्राप्त किया, परन्तु परमतत्त्व का विचार कभी नहीं किया है। अब मेरे हृदय में वैराग्य उत्पन्न होने के कारण परमतत्त्व जानने की अभिलाषा जागृत हुई है। अतः आप मुझे श्रेष्ठ प्रकार से ब्रह्मज्ञान की युक्ति एवं मुक्ति का मार्ग बताने की कृपा करें। हे प्रभो ! तीनों लोकों में आपके समान ज्ञानी अन्य कोई नहीं है। आप वेदों के उत्पन्न कर्त्ता, परब्रह्म, अनादि, सम्पूर्ण विद्याओं के समुद्र एवं तीनों लोकों के स्वामी विष्णु तथा ब्रह्मा को भी श्रेष्ठ पद प्रदान करने वाले हैं। शेष जी दिन-रात आपकी महिमा का वर्णन करते हुए भी उसका पार नहीं पाते। अस्तु, आप कृपा करके मेरी मनोभिलाषा को पूर्ण करें।''

सती के इन वचनों को सुन कर भगवान् सदाशिव बोले—''हे प्रिये ! ज्ञान को सर्वोत्तम वस्तु समझना चाहिए। उसके पास तक किसी अन्य पदार्थ की गति नहीं है। इस प्रकार वह परम अलभ्य कहा जाता है। उसी को मेरा स्वरूप ब्रह्म जानना चाहिए। जिस तपस्या तथा आराधना का आश्रय ले कर जीवधारी पवित्र हो जाते हैं, उसे ज्ञान की पदवी समझना चाहिए। भक्ति तथा ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। जो मनुष्य इन दोनों में अन्तर देखते हैं, उन्हें दुःख उठाना पड़ता है। जो लोग भक्ति के विरुद्ध वचन कह कर ज्ञान को प्राधनता देते है, उन्हें महान् कष्ट उठाना पड़ता है। अत्रि मुनि को उस बात का निश्चय हो चुका है, जो संसार भर में विद्वान् माने जाते हैं। भक्ति को परमतत्त्व का ज्ञान प्रदान करने वाली समझना चाहिए। वह मुझे अत्यन्त प्रिय भी है। भक्ति के समान सीधा तथा भयहीन मार्ग अन्य कोई नहीं है, क्योंकि उसके द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस रीति को पिपीलिका कहा जाता है, क्योंकि इसमें बिना किसी आधार के भी ब्रह्म पर चढ़ कर फल प्राप्त किया जा सकता है। इसके विपरीत निर्गुण के मार्ग को

भीष्म कहते हैं, क्योंकि उसमें किसी वस्तु का आधार न होने के कारण अत्यन्त परिश्रम तथा कष्ट भोगने के पश्चात् ही फल की प्राप्ति होती है। भक्ति मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाली है और मैं सदैव उसके अधीन रहता हूँ। जो प्राणी मेरी भक्ति करता है, उसे मैं इह लोक में आनन्द तथा परलोक में मुक्ति प्रदान करता हूँ। मुझे कुल तथा जाति से कोई प्रयोजन नहीं है। चारों युगों में मुझे भक्त प्रिय हैं, परन्तु कलियुग में तो अपने भक्तों को अत्यन्त स्नेह करता हूँ। मैं अपने भक्तों की सदैव सहायता करता हूँ और उनकी प्रसन्नता के निमित्त अनेक प्रकार के श्रेष्ठ चरित्र दिखाता हूँ। अतः हे देवि ! भक्ति की महिमा सबसे बड़ी जान कर तुम उसी को अपनाओ।''

ॐ ॐ ॐ

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! भक्ति की ऐसी प्रशंसा सुन कर सती अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर सदाशिव से कहा—''हे प्रभो ! आप ने मेरे ऊपर कृपा करके भक्ति की प्रशंसा की है, परन्तु मेरी इच्छा है कि आप उसके सम्पूर्ण अंगों का वर्णन करें।'' शिवजी ने हँसते हुए कहा—''हे सती। मैं भक्ति का सम्पूर्ण वृत्तान्त, जिसको सुन कर प्रेम उत्पन्न होता है तथा तीनों लोकों के दुःख शोक नष्ट हो जाते हैं, सुनाता हूँ। भक्ति को परम तत्त्व कह कर उसका सर्वोत्तम वर्णन किया गया है। वह दो प्रकार की है। एक स्वाभाविक, जो प्रकृति से उत्पन्न होती है, दूसरी वैदेही, जो प्रारब्ध से प्राप्त होती है। जिसमें तीनों गुण पाये जाएं उसको सगुण भक्ति कहते हैं। जो गुणरहित हो, उसे अगुणा भक्ति कहते हैं। उसके दो भाग हैं, भक्त लोग जिनमें बड़ी श्रद्धा में मन लगाते हैं। इन दोनों खण्डों के दो-दो भाग हैं। जब उनको सावधानी से धारण किया जाता है, तब वे पूर्ण होते हैं। वे इस प्रकार हैं—अपने स्वामी को कीर्ति सुनना, कीर्तन अथवा उसका वर्णन करना, स्मरण करना, सेवन अर्थात् सेवा करना,

दासत्व अर्थात् दास्य भाव से पूजन करना, वन्दना अर्थात् वन्दना करना, सख्य अर्थात् मित्रों की भाँति रहना एवं आत्म समप्रण अर्थात् स्वयं को अप्रण कर देना। भक्ति के इन्हीं नौ भागों को मुनि भी बताते हैं। इस नवधा भक्ति के अतिरिक्त और भी बहुत-से प्रकार हैं, जिनको धारण करने से मन अत्यन्त प्रसन्न होता, जैसे—बरगद, बेल, तुलसी तथा गंगा आदि की सेवा, अतिथियों की सेवा, ब्राह्मणों की अधीनता तथा तीर्थों की स्थिति आदि।''

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! इतना कह कर शिवजी बोले—''अब मैं अलग-अलग नौ प्रकार के अर्थ वर्णन करता हूँ। जब मन वचन कर्म से मेरी प्रशंसा सुन भक्त बड़ाई का विचार कर तथा मन को दृढ़ करें तो इसको श्रवण कहते हैं। जब कुल, धन, व्यवहार तथा स्वयं के गर्व को छोड़ कर हमारी कथा को सुने, जिस स्थान पर कथा होती हो उसको नित्य प्रति सजा कर शुद्ध करता रहे, उस शास्त्र की भली प्रकार पूजा कर अनेक प्रकार की वस्तुएँ उस पर चढ़ावे, इसी प्रकार उसको पाठ करने वाले की पूजा करके अच्छे वस्त्र, द्रव्य, पदार्थ, फल-फूल आदि से स्तुति करे, तब उसका उचित फल मिलता है। यही श्रवण की प्रशंसा है। हे नारद ! अब मैं तुम्हें कीर्तन के विषय में बताता हूँ। जो अपने मन को निर्लोभ करके मेरे जन्म, कर्म तथा गुण को देखे, उनका उच्च स्वर से पाठ करे, उसी को कीर्तन कहते हैं। कर्म, काल तथा काम रहित हो कर संसार की लज्जा तथा इच्छा का त्याग कर, हृदय से हमारा गुण-गान करे तो ऐसा कीर्तन करने से अच्छे फल की प्राप्ति होती है। जो सृष्टि, जड़, चैतन्य, जीवित, निर्जीव, चलने वाले तथा एक ही स्थान पर स्थित रहने वाले सब जीवों में शिव को देखे, मुझको सर्वात्मा समझ कर निस्पृह रहा करे, उसे स्मरणी कहते हैं। ऐसे स्मरण से अत्यन्त आनन्द मिलता है। सेवन के अर्थ हैं कि नित्य प्रातःकाल उठ कर सर्वप्रथम अपने गुरु का ध्यान करे। फिर नियमानुसार नित्य नैमित्यिक आदि से सुचित्त हो, रेशमी वस्त्र धारण कर मस्तक पर त्रिपुण्ड लगावे, रुद्राक्ष की माला पहने, धरती को शुद्ध कर बैठने का

उत्तम स्थान बनावे तथा हृदय रूपी कमल में मेरा, अपने स्वामी के स्वरूप का प्रेम से ध्यान लगावे, पूजन की सामग्री तैयार होने के पश्चात् उससे क्रम पूर्वक षोडशोपचार से पूजा करे। नैवेद्य लगा कर आरती करके दण्डवत् करे। अच्छे सुगन्धित पुष्प बिछा कर उनके ऊपर अपने स्वामी को सुलावे तथा सदैव मेरे गुणों का गान कर जीवन व्यतीत करे। सन्ध्या समय फिर मुझे, अपने स्वामी को, जगावे तथा सन्ध्या आदि से मेरी आरती करे। नाम एवं स्तुति वर्णन कर, कुछ रात व्यतीत हो जाने पर गाने-बजाने का समान एकत्र करे। आनन्दपूर्वक बाजे बजवा कर भोग लगावे। पुनः आरती करे। इसके पश्चात् उत्तम शैय्या बिछा कर मुझ, स्वामी को उस पर सुलावे। इस प्रकार की सेवा करने वाला भक्त लोक-परलोक में आनन्द प्राप्त करता है और तीनों लोक उसके चरणों में नमस्कार करते हैं।

शिवजी बोले—''हे सती ! अब मैं अर्चन का वर्णन करता हूँ। इसे ध्यानपूर्वक सुनो। जो बेल पत्र, पुष्प तथा चन्दन को पवित्रता एवं विचार के साथ, लोगों से पूछ कर लगावे, धर्म की रीति के अनुसार जिसने धन संग्रह किया हो, उससे पूजा के बर्तन तथा सामग्री एकत्र करे, अपने स्वामी इष्ट देव की षोडशोपचार पूर्वक निःस्वार्थ पूजा करे, समय तथा नियम में कोई कमी न होने पावे, इसी को अर्चन कहते हैं। जो मेरे मन्दिर में फुलवाड़ी लगावे अथवा मेरे लिंग की स्थापना करे तथा मेरे लिए उत्सव करे, यह सब अर्चन के भाग हैं। जो इस प्रकार मेरा अर्चन करता है, वह दोनों लोकों में सिद्धि प्राप्त करता है। अब मैं वन्दन की व्याख्या करता हूँ। सती ! मन्त्र का जप करे तो बार-बार उसका ध्यान करना चाहिए और मन को एकाग्र करके प्रणाम करना चाहिए। यही वन्दन है। वन्दना का फल तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। इसी के प्रताप से सनकादिक निर्भर रहते हैं।''

शिवजी बोले—''हे सती ! अब मैं तुम्हें दास्य भाव के विषय में बताता हूँ। जो इन्द्रियों को वश में करके मुझे प्रसन्न करता रहे, जो मेरी प्रसन्नता से मन तथा शरीर की काम वासना को जड़ से नष्ट करे तो

वह दोनों लोकों का सुख प्राप्त करता है। जिस मनुष्य के विचार में दुःख-सुख, बुरा-भला, राग-द्वेष, जय-पराजय, लाभ तथा हानि बराबर हो तथा जो इस बात पर पूर्ण विश्वास रखता हो कि जो कुछ भी परब्रह्म हमारे लिए करता है, वह सब हमारी भलाई के लिए ही है ऐसे दृढ़ विचार को सख्य कहते हैं। ऐसे मनुष्य को तीनों लोकों में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती। जो मनुष्य अपनी देह, सेवक, पशु, धन तथा कोष आदि समस्त वस्तुओं को त्याग कर तथा उनका मोह दूर कर, मेरे लिए संकल्प कर दे और उनके लिए फिर कोई प्रयत्न न करे, उनकी प्रीति तथा ध्यान न करे, उसे आत्मसमर्पण कहते हैं। इससे गर्व दूर हो जाता है। जब तक मनुष्य इसको मन, वाणी तथा कर्म से नहीं करता, तब तक वह अपने स्वामी मुझको प्राप्त नहीं कर पाता। ऐसे मनुष्य को सब वस्तुएँ सुलभ हैं कोई वस्तु दुर्लभ नहीं। मैं सदैव रात-दिन उसकी रक्षा करता हूँ तथा उसके निकट ही निवास करता हूँ। भक्ति के केवल यही नौ अंग हैं।''

शिवजी ने कहा—हे सती ! अब मैं भक्ति के उपांग का वर्णन करता हूँ। उपांग दस हैं। उनमें से प्रत्येक दुःख को नष्ट करने वाला है। इसलिए वट तथा पीपल की सदैव पूजा करनी चाहिए और उनका जल से सिञ्चन करना चाहिए। उनका अनादर करना, मेरा अपमान करना है। उनकी परिक्रमा दायीं ओर से करनी चाहिए। इन दोनों वृक्षों की सेवा से ही निर्भय परमपद प्राप्त होता है। दूसरे विल्व वृक्ष की सेवा करनी चाहिए और उसको मेरा ही शरीर समझना चाहिए। उसके पूजन से कोई कष्ट नहीं रहता। उसको जल से सींच कर, उसका पूजन करना तथा उसकी आरती उतारना उचित है। जो लोग नित्य ऐसा करते हैं, उन्हीं को हमारी पूजा का फल प्राप्त होता है। तीसरा उपांग रेवा अर्थात् नर्मदा, सुरसरी अर्थात् गंगा आदि का पूजन कहलाता है। उनमें पवित्रता के साथ स्नान करने से बड़ा पुण्य मिलता है जैसा कि व्यास जी आदि ने कहा है। चौथा उपांग गुरु-सेवा है, जिसकी स्तुति वेद करते हैं। इसके बराबर और कुछ नहीं। पाँचवें हमारे चौदस आदि

जितने व्रत हैं, उनमें हमारा पूजन कर व्रत रखे, रात्रि भर जागरण करे। उनसे जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह वेदों में प्रकट है। इसी प्रकार शिवरात्रि मास के दोनों प्रदोष तथा हर महीने की अष्टमी के व्रत बड़ी महिमा रखते हैं तथा उत्तम गति प्राप्त कराते हैं। इन व्रतों से व्याध, किरात आदि ने बहुत आनन्द प्राप्त किया है। छठा शैवाराधन अर्थात् शैव लोगों की आराधना करना है। इसके अन्तर्गत जब किसी शिव भक्त को अपने यहाँ आता हुआ देखे, तब उसका समुचित आदर करे। उसको अपने यहाँ देख कर सकुटुम्ब प्रसन्न हो कर, सब प्रकार से उसकी सेवा में तत्पर रहे तथा उसकी पूजा आदि करे। शुद्ध भोजन द्वारा उसका स्वागत करे। यह शैवाराधन अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त कराने वाला है। उसी के प्रताप से अधिकतर लोग तीनों लोकों के अधिपति हुए हैं। सातवाँ अतिथि-सम्मान है अर्थात् जो कोई भी द्वार पर भिक्षा हेतु आवे, उसको यथाशक्ति कुछ अवश्य देना चाहिए। इसमें लोक-परलोक दोनों ही बनते हैं। यह कभी भी भुला देने के योग्य नहीं है। आठवाँ उपांग ब्राह्मण का सम्मान है। इसके द्वारा बहुत-से मनुष्यों ने परमपद प्राप्त किया है।''

सदाशिव जी बोले—''हे देवि ! मैं ब्रह्म शरीर हूँ, इसलिए ब्राह्मण की पूजा, उसको मेरे समान समझ कर करनी चाहिए। नौवाँ उपांग तीर्थ तथा क्षेत्र में भ्रमण आदि है। समस्त तीर्थों में से सात पुरियों का बृहद् वर्णन किया गया है। उनमें आनन्द-वन अर्थात् श्री काशीजी का बहुत मान है। इसलिए नियमित रीति के अनुसार प्रेमपूर्वक काशी जी की परिक्रमा करनी चाहिए तथा धर्म शास्त्र के कथनानुसार सब बातें करनी चाहिए। सब तीर्थों का फल उसको प्राप्त होता है, जिसकी मृत्यु काशी में होती है। यही बात वेदों में भी कही गयी है। दसवाँ बड़ा धर्म अहिंसा अर्थात् किसी जीव को कष्ट न पहुँचाना है। जिसने हिंसा को त्याग कर अहिंसा व्रत को अपनाया वह मानो संसार के समस्त धर्मों को प्राप्त कर सका है। यह अहिंसा व्रत अति प्रसन्नता देने वाला है। हे देवि ! जिसके हृदय में तुम वास करती हो वही मुझे अत्यन्त प्रिय है।

लोग कलियुग में ज्ञान-वैराग्य को कम चाहेंगे। उस युग में केवल भक्ति को ही प्रमुख समझना चाहिए। हे पार्वती ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, मैंने उसका तुम्हें पूरी तरह से उत्तर दिया। इस वृत्तान्त को जो सुनेगा अथवा पाठ करेगा वह भी आनन्द-पद प्राप्त करेगा।''

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! सती ने सदाशिव के ऐसे वचन सुन कर अपने को भाग्यवान् समझा। उन्होंने प्रेमपूर्वक उनसे भक्ति के अंग पूछे तथा उपासना के प्रकार, जिसके पाँच अंग हैं, पूछे। शिवजी ने तंत्र शास्त्र का स्तोत्र, कवच, सहस्त्र नाम, पटल तथा पद्धति सहित और अनेक प्रकार यन्त्र, मन्त्र, चेटक आदि गुणों सहित वर्णन किया। उन्होंने प्रेम में वृद्धि करने वाली कथाएँ तथा आनन्द उत्पन्न करने वाले वृत्तान्त, अपने भक्तों की महिमा, जिससे भक्ति में वृद्धि होती है तथा उनके धर्म जैसे नृपधर्म अर्थात् राजनीति, स्त्री धर्म, वर्णाश्रम धर्म, पुत्र धर्म तथा शंकर धर्म आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। सामुद्रिक शास्त्र तथा ज्योतिष आदि शास्त्र भी सती को बताये। इसी प्रकार शिव तथा सती कैलाश में निवास करते रहे और बहुत वर्षों तक विहार करते रहे। इसके पश्चात् सती ने अपने पिता के यज्ञ में शिव का अपमान देख, क्रोध से शरीर को प्राण रहित कर दिया। वही सती फिर हिमाचल के घर उत्पन्न हो कर शिवजी की सेवा में पहुँची।''

नारद जी इतनी कथा सुन कर बोले—''हे ब्रह्मा जी ! सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी सदाशिव, जो किसी के भी शत्रु नहीं हैं, उनके साथ दक्ष ने इस प्रकार से वैर क्यों किया? उनकी बुद्धि क्यों और कैसे भ्रष्ट हो गयी? शिवजी ने अपनी शक्ति को किस प्रकार त्यागा तथा सती ने शिवजी का क्या अपराध किया था जो उन्हें अपना शरीर त्यागने को विवश होना पड़ा? सती का अनादर किस प्रकार हुआ तथा जिन लोगों ने उनका अनादर किया था, उन्हें सती ने भस्म क्यों नहीं कर दिया। वे

स्वयं क्यों अपनी देह छोड़ बैठीं? आदिशक्ति होते हुए भी वे इस प्रकार क्यों अन्तर्धान हुईं—यह चरित्र मेरे हृदय में संदेह बढ़ा रहा है। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि सती दक्ष प्रजापति को अत्यन्त प्रिय थीं, फिर दक्ष ने उनके प्रति अप्रिय व्यवहार कैसे किया?''

नारद की यह बात सुन कर पितामह ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! यह सब उन्हीं शिवजी की महिमा है। इसमें और किसी को दोष कैसे दिया जाए। अस्तु, अब हम तुम्हें वह वृत्तान्त सुनाते हैं, जिस प्रकार श्री शिवजी ने दक्ष प्रजापति की शुद्ध बुद्धि को भ्रष्ट करके, उनसे वैर बढ़ाया था। हे नारद ! एक बार दक्ष प्रजापति ने एक यज्ञ रचाया। उस उत्सव में भाग लेने के लिए सभी देवता तथा ऋषि-मुनि आदि अपनी-अपनी पत्नियों सहित दक्ष के घर पहुँचे। मैं भी अपने सेवकों सहित यज्ञशाला में गया। मुझे देख कर सभी सभासदों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कुछ देर बाद जब भगवान् सदाशिव भी वहाँ पहुँचे तो हम सब लोग उन्हें देखते ही उठ कर खड़े हो गये तथा हाथ जोड़ कर, बहुत प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे। चारों ओर 'जय शिव, जय शिव' का नाद गूँज उठा। हमने प्रार्थना करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आपने इस यज्ञशाला में उपस्थित हो कर हम लोगों के ऊपर अत्यन्त कृपा की है।''

हे नारद ! हम लोगों द्वारा इस प्रकार की गयी स्तुति को सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त उनकी आज्ञा से हम सब लोग यथा स्थान बैठ गये। उस समय हम सभी सभासद अपने को परम धन्य मान कर, मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। इसके कुछ देर बाद ही उस यज्ञशाला में दक्ष प्रजापति भी आ पहुँचे। उन्हें देख कर सब देवता तथा ऋषि-मुनि फिर उठ खड़े हुए तथा दण्डवत्-प्रणाम करने के उपरान्त उनकी स्तुति करने लगे। मैं, विष्णु जी तथा शिवजी अपने आसन पर ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। यह देख कर दक्ष ने क्रोध भरी दृष्टि से देखते हुए मुझे प्रणाम किया। फिर अत्यन्त अहंकारपूर्वक अपने आसन को ग्रहण किया। तदुपरान्त जब दक्ष ने यह देखा कि उसके जामाता

शिवजी ने भी उसे प्रणाम नहीं किया है, तब वह अत्यन्त अहंकार में भर कर, शिवजी के प्रति कटु शब्द कहने लगा। शिवजी की माया के वशीभूत हो कर मृत्यु को प्राप्त होने वाला दक्ष, शिवजी की निन्दा करता हुआ, समस्त सभासदों को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार बोला—"हे सभासदो ! आप लोग मेरी बात को मन लगा कर सुनें। इस सभा में उपस्थित बड़े-बड़े देवताओं ने मुझे हाथ जोड़ कर दण्डवत् किया है, परन्तु शिव ने जामाता होते हुए भी, मुझे प्रणाम न करके अपनी मूर्खता का भारी परिचय दिया है। शिव का यह कार्य वेद के विरुद्ध है। न तो इसके माता-पिता का ही कुछ पता है और न इसके कुल-शील के सम्बन्ध में कोई कुछ जानता है। अस्तु, बुद्धिमानों का यह धर्म है कि वे मूर्ख को दण्ड अवश्य दें। यदि वे ऐसा न करें तो संसार में उद्दण्डता बहुत बढ़ जाएगी। इसलिए मैं शिव को शाप देता हूँ और अपने ब्राह्मण-वंश का तेज प्रकट करता हूँ।"

हे नारद ! इतना कह कर दक्ष ने शिवजी को यह शाप दिया कि 'हे शिव ! तुम मूर्खों के समान कर्म करने वाले हो, अतः तुम्हें आज से किसी भी यज्ञ में भाग नहीं मिलेगा।' दक्ष के इस शाप को सुन कर शिवजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप बैठे रहे; परन्तु उस समय नन्दी से नहीं रहा गया। अस्तु, नन्दीगण ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर दक्ष से कहा—"हे दक्ष ! तूने शिवजी को शाप दे कर अपनी परम मूर्खता का प्रदर्शन किया है। क्या तू यह नहीं जानता कि शिवजी के द्वारा इस सम्पूर्ण सृष्टि का भरण-पोषण होता है? फिर भी जो तू शिवजी को अशुभ कहता है, यह तेरी मूर्खता नहीं तो और क्या है? हे पापी तूने ऐसे परम प्रधान पुरुष की निन्दा की है। अस्तु, मैं तुझे यह शाप देता हूँ कि तेरा यह शिव-निन्दक मुख न रहे और तेरा कोई भी मनोरथ पूर्ण न हो।"

हे नारद ! नन्दीगण के मुख से यह शाप सुन कर दक्ष प्रजापति ने अत्यन्त भयभीत हो उन्हें भी यह शाप दिया—"हे नन्दी ! तुमने मेरा अपमान किया है। अस्तु, संसार में तुम दुखी रहोगे। तुम्हारे स्वरूप

विचित्र होगा। वेद के विरुद्ध आचरण करने के कारण तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जायेगी और तुम बोझ ढोने के काम में आओगे। यह शाप दे कर दक्ष प्रजापति ने भृगु आदि की ओर जो शिवजी से द्वेष रखते थे, देखा। दक्ष ने इस शाप को सुन कर वे सब बड़े प्रसन्न हुए। यह देख कर नन्दी को फिर क्रोध हो आया। तब उसने अपनी अप्रेमय महिमा को दिखाते हुए, जिन लोगों ने शिवजी की निन्दा की थी, उनकी ओर देखते हुए कहा—"तुम सब लोग व्यर्थ ही ब्रह्मा के अंश में उत्पन्न हुए हो। तुम तत्त्व का ज्ञान नहीं रखते हो और काम, क्रोध, लोभ आदि के वशीभूत हो कर शिवजी के विरुद्ध आचरण करते हो, अतः मैं तुम्हें भी यह शाप देता हूँ कि तुम्हें शुभ कर्मों का फल प्राप्त न होगा और तुम कभी भी परमपद को नहीं पा सकोगे। जो लोग शिवजी से द्वेष रखने वाले हैं, वे सब वेद के विरुद्ध चल कर ब्राह्मण के कर्मों का त्याग कर बैठेंगे। वे महा दरिद्र हो कर कुकर्म करेंगे तथा अन्त में नरकवास पाएँगे।"

हे नारद ! इस प्रकार नन्दीगण ने जब ब्राह्मणों को भी शाप दे दिया, उस समय शिवजी ने हँसते हुए कहा—"हे सभासदो ! हम तुम्हें अब सच्चे ज्ञान का उपदेश करते हैं। उस ज्ञान को सुन कर कोई अप्रसन्न न हो। वेद को अक्षर तथा मंत्र कहा जाता है। उसमें भी सूक्त को अत्यन्त आनन्द देने वाला कहा गया है। इसलिए ज्ञानियों के मन सूक्त में लगे रहते हैं और वे बुद्धिमान् जन अपने मन को सदैव अपने वश में किये रहते हैं। अस्तु, मैं नन्दी से भी यह कहता हूँ कि हे नन्दी ! तुम विद्वान होते हुए भी अपने हृदय में क्रोध को जो स्थान दे रहे हो, यह उचित नहीं है। दक्ष ने मुझे कोई शाप नहीं दिया। यह ठीक है कि उसने जानने योग्य बात को जानने में अपना मन नहीं लगाया है और इस प्रकार सभा में मेरा अपमान कर अपने अज्ञान को प्रदर्शित किया है, फिर भी, तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि इस जगत् के सम्पूर्ण कर्मों को करने वाले हमीं हैं। हमारी इच्छा है और हमीं इसके भीतर बाहर सब स्थानों पर निवास करते हैं। हम शुद्ध और अशुद्ध, भूत प्रेत, देवता,

दैत्य आदि तीनों लोकों के प्राणियों के उत्पन्न करने वाले हैं। अस्तु, तुम्हें यह उचित है कि हमारे इन वचनों को सुन कर अपने क्रोध को दूर कर दो और अब किसी को भी शाप आदि मत दो।'' हे नारद ! शिवजी के यह वचन सुन कर नन्दीगण ने अपना क्रोध शान्त कर लिया। तदुपरान्त शिवजी कैलाश पर्वत को चले गए। दक्ष प्रजापति भी उसी क्रोध से भरा हुआ अपने घर चला गया। उस दिन से वह सदैव शिवजी की निन्दा करने लगा। यदि वह किसी शिवभक्त को देख लेता था तो उसे बहुत क्रोध आ जाता था। शिवजी की माया ऐसी अपरम्पार है कि वह कब किससे क्या करा बैठेगी, इसका कोई पता नहीं चलता।''

ॐ ॐ ॐ

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! शिवजी की लीला अत्यन्त ही पवित्र एवं शुद्ध है, जिसको पूर्ण रूप से वेद तथा पुराण भी नहीं जानते हैं। अब मैं तुम्हें शिवजी के चरित्र के विषय में और बताता हूँ। एक बार शिवजी अपनी पत्नी सती सहित तीनों लोकों के अवलोकनार्थ चले। पृथ्वी पर घूमते-घूमते वे दंडक वन में पहुँचे। उन्होंने वहाँ रामचन्द्र जी को लक्ष्मण सहित देखा कि वे चारों ओर दुःख से विलाप करते हुए सीता जी को ढूँढ रहे हैं। उन्होंने रामचन्द्र जी को देख कर प्रणाम किया, क्योंकि वे पहले विष्णु को ऐसा वरदान दे चुके थे। शिवजी फिर जय कह कर आगे बढ़े तथा उचित समय न जान कर, उनसे कुछ वार्ता न की। इसलिए सती ने जब यह हाल देखा कि शिवजी अपने परम भक्त राम को इस प्रकार छोड़ कर आगे बढ़ गये तो वे बोलीं—''हे अनादि सर्वोपरि ब्रह्म आपने ब्रह्मा, विष्णु, सुर, मुनि तथा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति की है। यह सब आपकी सेवा, उपासना करते हैं। फिर आज दशरथ के पुत्र रामचन्द्र जो वन में मिले, तो आपने उनको

प्रणाम क्यों किया? मेरी समझ में नहीं आता कि इसका कारण क्या है? मुझे इसकी बहुत चिन्ता है।''

शिवजी ने जब सती को ऐसी चिन्ता में मग्न देखा तो वे बोले—''हे सती ! रामचन्द्र जी रमा के पति विष्णु हैं, जो संसार के पालन का अधिकार रखते हैं। उनका अवतार भक्तों के लिए ही है।'' फिर शिव ने सती को उनके अवतार लेने का कारण बताया; परन्तु सती का मन फिर भी सन्तुष्ट न हुआ। तब शिवजी ने विष्णु के अवतार के अनेक चरित्र सती को सुनाये, परन्तु फिर भी उन्हें कोई नहीं भाया और न उन्हें विश्वास ही हुआ। यह देख कर शिवजी ने पुनः उनसे कहा—''हे सती ! यदि तुम को विश्वास न हो तो स्वयं जा कर परीक्षा क्यों नहीं करतीं? तुम वही करो, जिससे तुम्हारा सन्देह दूर हो सके। मैं यहाँ वृक्ष की छाया में बैठा तुम्हारी तब तक प्रतीक्षा करूँगा, जब तक तुम परीक्षा ले कर लौट न आओगी।'' सती शंकर की आज्ञा पा कर सन्देहयुक्त चलीं। उन्होंने मन में विचार किया कि मैं किस प्रकार उनकी परीक्षा लूँ? बहुत सोचने के पश्चात् निश्चय किया कि मैं रानचन्द्र जी के सम्मुख श्री सीता जी का रूप धारण कर जाऊँ। यदि वे वास्तव में विष्णु होंगे तो मुझे अवश्य पहचान लेंगे और यदि केवल राजपुत्र होंगे तो नहीं पहचान सकेंगे। यह विचार कर वे सीता के रूप में हँसती हुई श्री रामचन्द्र जी की ओर गयीं। लक्ष्मण ने जब सती को इस स्वरूप में देखा तो आश्चर्य में आ कर जाना कि यह सती है, परन्तु पूर्ण ज्ञान न होने के कारण वे कुछ न बोले, परन्तु जब रामचन्द्र जी ने सती को ऐसे छल स्वरूप में देखा तो वे हँस पड़े तथा 'शिव-शिव' कहते हुए बोले—''जिसका ध्यान करने से सम्पूर्ण दुःख तथा भ्रम दूर हो जाते हैं और जिसके हृदय में सदाशिव का स्थान है, आप ने उसे धोखा देने का प्रयत्न किया है, वह सब शिव की ही माया है। धन्य है कि ऐसी माया को जो सब को, इस प्रकार नचाती है।'' इसके पश्चात् रामचन्द्र जी ने अत्यन्त नम्रता के साथ अपना पिता सहित नाम लेकर पूछा ''शिवजी कहाँ हैं तथा हे माता ! तुम उनसे अलग वन में अकेली

क्यों घूम रही हैं? तुमने अपना स्वरूप त्याग कर, यह रूप क्यों धारण किया है?'' सती यह सुन कर आश्चर्यचकित हुईं तथा उन्होंने सदाशिव का ध्यान कर रामचन्द्र जी को, विष्णु का अवतार जाना। फिर वे अपना रूप धारण कर, रामचन्द्र जी से बोलीं अब मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप विष्णु के अवतार हैं, जिन्होंने राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया है। परन्तु एक शंका है कि वह आपसे पूछती हूँ कि शिवजी आपका चतुर्भुजी स्वरूप देख कर कभी इतने प्रसन्न नहीं हुए, जितने यह स्वरूप देख कर आज प्रसन्न हुए हैं। अत्यन्त प्रेम से उनके अश्रु बह चले तथा वे आपकी प्रशंसा करने लगे। आप मुझे सत्य बताएं कि इसका मुख्य कारण क्या है?''

सती के मुख से ऐसे वचन सुन कर रामचन्द्र जी प्रेम विह्वल हो गये तथा उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उन्होंने प्रेम निमग्न हो कर चाहा कि उसी समय चल कर शिव को देखें; परन्तु उचित समय न जान कर तथा सती की आज्ञा पा कर उन्होंने केवल शिव का ध्यान ही किया। फिर रामचन्द्र जी ने कहा—''आज मैंने उसे देखा जो तीनों लोकों में प्रकट दिखाई नहीं देता है। यह मेरा सौभाग्य है कि मैंने उस स्वरूप को देखा है। मेरा भाग्य धन्य है कि उनकी मेरे ऊपर ऐसी कृपा है, जिनका ध्यान सिद्ध, मुनि, देवता आदि करते हैं तथा वेद स्तुति में मग्न रहते हैं, जिनकी कृपा से व्याध, किरात, नन्दा, पंचक की स्त्री हर्यक्षा तथा इन्द्रद्युम्न को परम पद प्रदान किया है। शिवजी ने किसके ऊपर कृपा नहीं की है?'' श्री रामचन्द्र इतना कह कर सती से बोले—''हे देवि ! शिवजी ने जो मुझे प्रणाम किया, उसका यही एक मात्र कारण है कि वे मुझ पर प्रसन्न हैं।''

बीसवाँ अध्याय

रामचन्द्र जी ने कहा—''हे देवि ! एक बार शिवजी ने विश्वकर्मा को बुला कर हमारी गोशाला में एक अति सुन्दर मन्दिर बनाने की

आज्ञा दी तथा उस मन्दिर में एक उत्तमोत्तम सिंहासन बनाने का आदेश दिया। इस प्रकार जब मन्दिर बन कर तैयार हो गया तो शिवजी ने सम्पूर्ण देवताओं, मुनियों तथा ब्रह्मा को आमन्त्रित कर, वहाँ पर एक उत्सव का आयोजन किया। शिवजी ने मुझे भी वैकुण्ठ से लाकर वहाँ बैठाया तथा सब जड़ी-बूटी तथा धन-द्रव्य, वस्त्र आदि एकत्र कर, मेरे विष्णु स्वरूप का अभिषेक करना चाहा। मेरे सिर पर एक बड़ा ऊँचा छत्र रख कर तथा मुझे सिंहासन पर बैठा कर उत्तम वस्त्र पहनाये और रत्न जड़ित मुकुट मेरे सिर पर बँधवाया। इसके पश्चात् लक्ष्मी जी सहित मेरा अभिषेक किया। उस समय आपने भी लक्ष्मी का बहुत आदर किया। देव नारियाँ गान करने लगीं। अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। तब शिवजी ने अपने कमल रूपी मुख से ऐश्वर्य से पूर्ण वचन कहे। फिर उन्होंने मुझे सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी बना दिया। अनेक आशीर्वाद दिए तथा स्वयं मेरी स्तुति की। फिर ब्रह्मा से कहा कि तुम भी इनको प्रणाम करके उनकी बड़ाई करो तथा समझो कि आज से विष्णु तुम सब के स्वामी हुए। वे सब को आनन्द प्रदान करेंगे तथा तुम सब की इच्छाओं की पूर्ति करेंगे।

शिवजी का यह आदेश सुन कर सबों ने मुझे प्रणाम किया। चारों ओर से जय-जयकार का शब्द गूँजने लगा। फिर शिव ने मुझे वरदान दिया "हे विष्णु ! तुम सब के स्वामी हो कर, सब के कष्टों को दूर करो। तुम्हारी तीनों लोक पूजा करेंगे। धर्म, काम तथा मोक्ष देने वाले हो कर बड़े विजयी वीर बनोगे। हम स्वयं भी तुम पर विजय प्राप्त न कर सकेंगे। तुम ब्रह्मा के भी स्वामी हो। हमने तुम को तीनों लोक प्रदान किये, अब तुम अवतार लेकर तीनों लोकों का पालन करो। हम तुम्हारे भक्तों को आनन्द दिया करेंगे तथा उनको मुक्त करेंगे। साथ ही तुम्हारे शत्रुओं का वध कर, हर प्रकार से तुम्हारी सहायता किया करेंगे। ब्रह्मा हमारी दाहिनी तथा तुम बायीं भुजा हो। तुम्हारे अवतार, जो कि राम एवं कृष्ण के रूप में होंगे, उनको हम स्वयं जा कर देखेंगे तथा संसार के देखने के लिए सदैव उनकी भक्ति किया करेंगे।" हे

माता ! तब से जहाँ शिवजी निवास करते हैं, मैं भी वहीं स्थित रहता हूँ। शिवलोक में ही विष्णुलोक है, जिसको गोलोक भी कहते हैं। मैं शिव के आदेशानुसार ही अवतार लेता हूँ। मेरे मत्स्य आदि अनेक अवतार हो चुके हैं। मैंने उन्हीं अवतारों में संसारी कार्य पूरे किये हैं।

हे देवि ! इस समय मेरा अवतार चार रूपों में हुआ है। राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न। उन चारों का मन एक है, परन्तु शरीर अलग-अलग हैं। मैं अपने पिता की आज्ञा से वन में आया हूँ, क्योंकि उन्होंने कैकेई को वरदान दिया था। मेरे साथ लक्ष्मण तथा सीता भी आयी थीं। रावण सीता को हर ले गया है। उसी को हम ढूँढ़ते हैं। आपके दर्शन से मेरे सब कार्य सिद्ध होंगे। इस प्रकार मुझको तो सीता हरण अत्यन्त शुभ हुआ, जिससे आपके चरणों के दर्शन प्राप्त कर सका। मुझे पूरा विश्वास है कि अब मुझे शीघ्र ही सीता का पता लग जायेगा तथा मैं शत्रु पर विजय प्राप्त कर, सीता को प्राप्त करूँगा। संसार में उससे महान् कौन है, जिसके ऊपर शिवजी तथा आपकी कृपा हो। तीनों लोक में शिवजी के समान कोई कृपा करने वाला नहीं। उनके अनेक अवतार हैं। उन्होंने पापियों का बहुत उद्धार किया है तथा मैं उनके चरित्र कहाँ तक कहूँ?'' यह कह कर रामचन्द्र जी ने सती से विदा मांगी इस प्रकार सती से आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त कर, शिवजी का ध्यान धर रामचन्द्र जी आगे चले तथा उसी प्रकार अपने कार्य में संलग्न हुए।

ॐ ॐ ॐ

इक्कीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ब्रह्मा से बोले—''हे जगत् पिता ! इसके पश्चात् शिवजी ने जो-जो कार्य किये उन पर भी प्रकाश डालिए।'' ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! सती को रामचन्द्र का वृत्तान्त सुन अत्यन्त आनन्द हुआ, परन्तु उन्हें अपने कर्म का विचार कर बहुत चिन्ता हुई। वे हृदय में अति भयभीत तथा दुःखी हो कर लौटीं।

मार्ग में उन्होंने सोचा कि मैंने शिव की अवज्ञा की तथा रामचन्द्र के विष्णु होने पर अविश्वास किया, अब मैं शिव को क्या उत्तर दूँगी? सती इस प्रकार सोचती हुई शिव के निकट पहुँची तथा उन्हें प्रणाम किया। शिवजी ने कुशल-क्षेम पूछ हँस कर कहा—"हे सती ! तुमने रामचन्द्र की जिस प्रकार परीक्षा की, वह सब हमें बताओ? सती ने यह सुन कर लज्जा से सिर नीचा कर लिया और कोई उत्तर न दिया। तब शिवजी ने ध्यान धर कर देखा तथा जो चरित्र सती ने किया था, उसे जाना। उन्होंने अपनी पहली बात को, जो विष्णु को अभिषेक के समय कही थी, स्मरण कर अत्यन्त क्रोध किया और हृदय में निश्चय किया कि अब यदि मैं सती से प्रेम करता हूँ तो मेरा प्रथम वाक्य झूठा सिद्ध होता है। सती जैसी स्त्री को छोड़ा नहीं जा सकता, यदि छोड़ता नहीं हूँ तो जो मैं पहले कह चुका हूँ वह झूठा होता है। अस्तु, शिवजी ने पुनः सोचा और निश्चय किया कि अब सती से भेंट न होगी। मैं अपने वचन को झूठा नहीं करूँगा। यह विचार कर शिव सती को छोड़ अपने स्थान को चल दिये। जिस समय वे वहाँ से चले, तब आकाश से यह शब्द हुआ कि हे शिव ! आपने अपने वचन का पूर्ण रूप से पालन किया। आपके समान दूसरा कौन है, जो इस प्रकार अपने वचन का पालन करे? यह शब्द सुन कर सती भयभीत हो गयीं। उन्होंने कुछ सोच कर शिव से पूछा—"हे प्रभो ! आपने क्या निश्चय किया है? आप सत्य बोलने वाले हैं। अस्तु आप मुझसे सत्य-सत्य कहिए? सती के बार-बार पूछने पर भी शिवजी ने यह बात छिपा रखी। यह देख कर सती को विश्वास हो गया कि शिवजी ने उन्हें त्याग दिया है।

कुछ देर के पश्चात् सती शिवजी से बोलीं—"हे नाथ ! मैंने जो कुछ भी किया, वह अज्ञानता तथा मूर्खतावश किया है। अब आप दूध और पानी अलग करके देखें, क्योंकि प्रीति की यही रीति है। मैं स्वयं ही अपने कर्म पर बहुत लज्जित हूँ, परन्तु शिवजी ने उस बात को प्रकट करना उचित न समझा। वे अनेक प्रकार की कथा आदि के सुनाने में समय टालते रहे, परन्तु अन्त में उनको सत्य बात कहनी ही पड़ी। इस

प्रकार वे कैलाश पर्वत पर पहुँचे। शिवजी मन में विचार कर बरगद के नीचे आसन लगा कर बैठ गये तथा अपने स्वरूप का ध्यान करने लगे। इधर सती मन्दिर में अत्यन्त उदास हुईं। उनका एक-एक दिन युग के समान बीतता था, परन्तु सिवाय उनके और किसी को यह हाल प्रतीत न हो पाया। दिन-दिन दुःख बढ़ता ही जाता था। वे सोचतीं कि यह दुःख कहने के योग्य नहीं। पता नहीं, इस दुःख सागर से मैं कब पार हूँगी? मैंने शिव का कहा न माना, यह उसी का परिणाम है। तीनों लोकों में ऐसा कौन है जो शिव की अवज्ञा से आनन्द प्राप्त कर सके? फिर वे मन-ही-मन कहतीं—''हे शिव ! आपका कोई दोष नहीं है। मैंने जो कुछ भी किया, उसका फल प्राप्त कर रही हूँ। हे भाग्य ! तुझे ऐसा न चाहिए था कि मुझे शिव के विरुद्ध किया। हे ब्रह्मा ! ऐसे संकट के समय में तुम मेरी मदद करो, ताकि मेरा शरीर बदल जाए। हे मृत्यु ! मैं तुमसे निवेदन करती हूँ कि तुम मुझे इस संसार से उठा लो।''

शिवजी को इस प्रकार समाधि में सत्तासी हज़ार वर्ष व्यतीत हुए। इतने समय के पश्चात् जब वे समाधि से जागे तो उन्होंने सती को अपने सम्मुख खड़ा पाया। शिवजी ने उनको अपने सम्मुख बैठाया तथा उस बात को समाप्त कर अन्य बातें आरम्भ कीं, जिससे सती को कोई दुःख न हो। इस प्रकार वे प्रसन्न रहने लगीं। शिव ने भी अपने प्रण को न तोड़ा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सती को पिछली बात का कुछ दुःख न हुआ तथा वे सभी बातें भूल गयीं। शिवजी प्रत्येक शरीर में हैं। बहुत-से मुनि यह कहते हैं कि शिव और शक्ति का बिछोह यह पीछे के वचन हैं। शिव के चरित्र हर कल्प के अलग-अलग हैं। कल्प भेद का हाल किसको ज्ञात है? वे जो कुछ करें, सब उचित है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए। शिव तथा शक्ति का भेद अत्यन्त गुप्त एवं कठिन है, उसको कोई नहीं जान सकता। शेष तथा विष्णु भी उनके चरित्र का वर्णन करने में असमर्थ हैं। यह जान कर भक्तों को उचित है कि सन्देह रहित हो कर उनकी पूजा आराधना करें। हे नारद ! इस प्रकार जब बहुत समय व्यतीत हो

गया, तब शिव ने अपना वह चरित्र किया, जिसको देख कर सब की बुद्धि भ्रमित हो गयी।''

ॐ ॐ ॐ

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जब हम ने दक्ष प्रजापति का अभिषेक कर उसको सब प्रजापतियों के अधिकार प्रदान किये तो वह अहंकार में लीन हो गया, जिसके कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उस समय दक्ष ने सम्पूर्ण सामग्री एकत्र कर, प्रजापति यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की। यही इच्छा लेकर वह कनखल तीर्थ गया। वहाँ उसने सब मुनियों को बुलाया। व्यास, ककुभ, गौतम, भारद्वाज, कश्यप, अंगिरा, वशिष्ठ, वामदेव, जैमिनि, पिप्पल, पराशर, भृगु, दधीचि, नारद आदि को बुलाया। इनके अतिरिक्त संसार भर के समस्त देवता तथा ब्राह्मण आ कर वहाँ उपस्थित हुए। अग्नि भी अपने गणों सहित यज्ञ में पहुँचे। अन्य देवता भी उसके बुलावे पर, विष्णु सहित प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ में सम्मिलित हुए। देवराज इन्द्र अपनी पत्नी शची सहित ऐरावत पर चढ़ कर वहाँ पहुँचे। इन्द्र पावक मेघ पर, यम भैंसे पर, वायु हिरण पर, तथा शिव के मित्र कुबेर पुष्पक विमान पर चढ़ कर वहाँ आये। वरुण भी अपने वाहन पर आरूढ़ हो कर यज्ञशाला में पहुँचे। सूर्य अपनी पत्नी सहित तथा चन्द्रमा भी अपनी पत्नी रोहिणी सहित वहाँ जा उपस्थित हुए।

दक्ष ने सब को उपस्थित देख कर अति आनन्द में मग्न हो, सब का आदर सत्कार किया और सब के निवास के लिए विश्वकर्मा द्वारा बनाये हुए मन्दिर बता दिये, जिनमें सब ने निवास किया। उस समय सती जी गन्धमादन पर्वत पर अपनी सखियों सहित क्रीड़ा कर रही थीं। उन्होंने देखा कि चन्द्रमा अपनी पत्नी सहित चला जा रहा है। सती ने अपनी विजया नाम की सखी को आदेश दिया कि तुम चन्द्रमा से जा कर पूछो कि वह कहाँ जा रहा है। सखी की आज्ञानुसार विजया ने

चन्द्रमा से जा कर पूछा कि सती पूछती है कि तुम अपनी पत्नी सहित ऐसे ठाठ से कहाँ जा रहे हो? यह बात सुन कर रोहिणी ने कहा कि सती के पिता दक्ष प्रजापति ने कनखल में एक यज्ञ का आयोजन किया है। वहाँ बहुत बड़ा उत्सव है। उनके निमन्त्रण पर समस्त देवता वहाँ गये हैं। ब्रह्मा तथा विष्णु भी वहाँ शोभायमान हैं। तुम तो इस प्रकार पूछती हो, जैसे कोई मूर्ख हँसी से पूछे। इसका क्या कारण है कि तुमको इस यज्ञ के विषय में कुछ भी पता नहीं है? वहाँ समस्त देवता अपना-अपना भाग लेने गये हैं, तुम वहाँ अपनी इच्छा से नहीं गयीं या दक्ष ने तुम को बुलाया ही नहीं है। विजया यह सुन कर लौट आयी तथा रोहिणी द्वारा कहे गये शब्द सती जी को कह सुनाये। इस समाचार को सुन कर सती जी को अत्यन्त दुःख हुआ। वे अपने मन में सोचने लगीं कि क्या माता-पिता ने मुझको भुला दिया है जो मुझे और शिवजी को उन्होंने नहीं बुलाया? ऐसा सोच कर सती उसी समय शिवजी के पास गयीं। उधर चन्द्रमा भी अपनी स्त्री रोहिणी सहित दक्ष के पास गया।

हे नारद ! दक्ष के यज्ञ की सजावट तथा उस समय के आनन्द, जो उस यज्ञ में मनाये जा रहे थे, अवर्णनीय हैं। जब सब मुनि एवं देवता कनखल में, जो कि हरिद्वार में है, आ गए; तब दक्ष ने यज्ञ आरम्भ किया। दक्ष अपनी पत्नी सहित यज्ञ में प्रवृत्त हुआ। भृगु मुनि को यज्ञ कराने वाला आचार्य बनाया गया। दक्ष ने उस यज्ञ में सब को उपस्थित देख, शिव से शत्रुता स्वीकार की। उस समय मेरे पुत्र दधीचि ने सदाशिव को यज्ञशाला में न देख, आश्चर्य से कहा—"इस उत्सव में समस्त देवता, मुनि तथा ब्रह्मा के पुत्र आदि आये हैं, फिर भी मैं निश्चय से कहता हूँ कि यह सभा सदाशिव के बिना अशोभित है। वे शुभ कर्मों के मूल हैं, वे सब देवताओं के स्वामी हैं। क्या कारण है कि वे यहाँ नहीं हैं? तुम लोग शिव को क्यों भूल गये? हे दक्ष ! तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार क्यों भ्रष्ट हो गयी? अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम सब देवताओं, मुनियों तथा ब्रह्मा एवं विष्णु को साथ लेकर, शिव को

प्रसन्न करके यहाँ ले आओ। साथ में सती जी को भी प्रसन्न करके यहाँ लाओ। यह निश्चय समझ लो कि बिना शिव के यहाँ आये, यह यज्ञ पूर्ण नहीं होगा। आश्चर्य है, ऐसे देवता को, जिसका स्मरण करने अथवा नाम लेने से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते; तुम लोग क्यों भूल गये तथा उन्हें यहाँ क्यों नहीं बुलाया? मैं फिर कहता हूँ कि जब तक शिव यहाँ न आएंगे, यज्ञ पूर्ण न होगा।''

दधीचि के ऐसे वचन सुन कर दक्ष अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा हँस कर बोला—''हे दधीचि ! यहाँ पर सब देवताओं के स्वामी बैठे हैं। सब धर्म, वेद तथा शुभ कर्म पूर्ण रूप से उपस्थित हैं। सब के स्वामी विष्णु भी हमारे इस यज्ञ में विराजमान हैं। अब क्या शेष रह गया है सो मुझे बता दो। मेरे इस यज्ञ में ब्रह्मा, वेद, धर्मशास्त्र, पुराण तथा उपनिषद् भी अपने-अपने गणों सहित आ चुके हैं। मेरा यह सौभाग्य है कि इन सब ने मुझ पर बड़ी कृपा की है। आज मेरे यहाँ इन्द्र, समस्त देवताओं के साथ विष्णु भगवान् तथा तुम्हारे समान अनेक मुनि विराजमान हैं, अब फिर शिव के आने की क्या आवश्यकता है? तुम सब मिल कर यज्ञ को पूरा करो। मैंने अपने भाग्यवश तथा ब्रह्मा की आज्ञा मान कर, अपनी कन्या का विवाह शिव के साथ कर दिया। यद्यपि यह विवाह अनुचित हुआ, क्योंकि वह कुलवान न था। शिव संसार से विरक्त, महा अहंकारी है। उस पर भी वह माता-पिता विहीन है। इसलिए मैंने ऐसे शिव को इस यज्ञ में बुलाने की आवश्यकता न समझ कर नहीं बुलाया है। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम पुनः ऐसे वचन मुख पर न लाना। अब यही उचित है कि तुम सब मिल कर मेरा यज्ञ पूर्ण करके, मुझे आनन्द प्रदान करो।''

दक्ष के ऐसे अहंकारपूर्ण वचन सुन कर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया, सब शान्त रहे। उनका यही शान्त रहना सब के लिए महापाप हुआ, क्योंकि सभी ने अपने कानों से शिव निन्दा सुनी। इस पर दधीचि ने पुनः कहा कि बिना शिव के यह यज्ञ कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। तुम सब धोखे में हो जो इसका अनुसरण कर रहे हो। यह दक्ष बड़ा

अधर्मी तथा मूर्ख है, जो शिव की निन्दा कर रहा है। यदि इसने शिव को नहीं बुलाया तो यह यज्ञ भी पूरा नहीं होगा। जो इस यज्ञ में रहेगा वह भी दुःख का भागी होगा। यह कह कर दधीचि उस सभा से उठ कर चले गये तथा बहुत से मुनि भी दुःखी हो कर वहाँ से उठ गये। ऐसे मुनियों को अपनी सभा से जाते देख दक्ष ने अत्यन्त प्रसन्नता से कहा—यह बहुत अच्छी बात हुई जो शिव के प्रेमी तथा भक्त, जो मुझको दुःख देते थे, उठ कर चले गये। अब तुम सब मिलकर मेरे इस यज्ञ को पूर्ण करो। दक्ष की बात सुन कर यज्ञ का कार्य प्रारंभ हो गया।

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! सती ने अपने पिता के घर यज्ञ का हाल सुन कर चाहा कि मैं भी वहाँ जाऊँ। वह इसी इच्छा से अकेली सदाशिव के पास पहुँचीं। वहाँ पहुँच कर देखा कि सेवक गण शिवजी की सेवा में संलग्न हैं। वे दिगम्बर केवल रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। उनके शीश पर जटाएँ लटक रही थीं। शरीर पर भस्म शोभित थी। शिव का ऐसा स्वरूप देख, सती ने उन्हें प्रणाम किया। सती को वहाँ देख कर शिवजी ने बड़े प्रेम के साथ उन्हें बैठा लिया। यद्यपि शिव सब कुछ जानते थे, फिर भी उन्होंने संसारी लीला के निमित्त वहाँ आने के कारण पूछा। अब सती अत्यन्त प्रसन्न हो कर बोलीं—"हे प्रभो ! क्या आपको यह अच्छा नहीं लगा कि दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया है? मित्रों तथा बान्धवों की भेंट महाधर्म है। इसी से अच्छे लोग भले बन्धुओं की संगति स्वीकार करते हैं तथा आनन्द प्राप्त करते हैं। अस्तु, आपको यह उचित है कि वहाँ चल कर यज्ञ को पवित्र करें तथा मुझे भी अपने साथ ले जा कर मेरी इच्छा की पूर्ति करें। मेरे पिता के यज्ञ में ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता पहुँच गये हैं; परन्तु आप वहाँ नहीं गये। शायद यह यज्ञ आपको अच्छा मालूम नहीं हुआ। आप वहाँ न जाने के कारण मुझ से विस्तारपूर्वक कहिये। मैं आपकी दासी हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि

इसलिए आप मुझे अपने साथ लेकर वहाँ मैं अपने पिता के घर जाऊँ, इसलिए आप मुझे अपने साथ लेकर वहाँ चलिये।''

शिवजी ने सती के वचन सुन कर मुस्कुराते हुए कहा—''हे सती ! तुम्हारे पिता दक्ष ने मुझ को यज्ञ का निमन्त्रण नहीं भेजा है तथा शत्रुता रख कर मेरा अनादर किया है। तुम्हीं सोचो, वहाँ केवल तुम्हीं को न बुला कर अन्य सब लड़कियों को बुलाया है, इसका एकमात्र कारण केवल शत्रुता ही है। ऐसे स्थान पर बिना बुलाये जाना कहाँ तक उचित है यद्यपि धर्मशास्त्र कहता है कि अपने पिता, मित्र, गुरु तथा स्वामी के घर बिना बुलाये भी जाना उचित है, परन्तु उनके मन में शत्रुता भी नहीं होनी चाहिए। किसी के घर बिना बुलाये जाना मृत्यु से अधिक तथा अनादर एवं लोक निन्दा का कारण होता है।'' सती यह सुन कर बोलीं—''हे स्वामी ! आप इस वैर का कारण तो बतावें।'' शिवजी ने पिछला सब वृत्तान्त सुना कर कहा। ''इसलिए उचित है कि तुम दक्ष यज्ञ में न जाओ। नहीं तो तुम को बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा।'' शिव ने सती को अनेक प्रकार से समझाया, परन्तु सती को यह अच्छा न लगा। वह दक्ष पर अति अप्रसन्न एवं कुपित हो कर कहने लगीं—''हे शिवजी ! आप तीनों लोकों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। सभी देवता आपका स्मरण करते हैं। आप यज्ञ-कर्म तथा यज्ञ के फल हैं। आप की दृष्टिमात्र से ही तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं। आपसे यज्ञ पूर्ण तथा पवित्र होता है। मेरा मूर्ख पिता ने आपको अपने यज्ञ में नहीं बुलाया सो मुझे चिन्ता है कि उसका यज्ञ किस प्रकार पूर्ण होगा? मेरा पिता इस प्रकार क्यों अज्ञानी हो गया, मुझे बड़ी चिन्ता है। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं जा कर उसके शील या दुःशील अथवा उसके वैर भाव को देखूँ।''

हे नारद ! शिवजी को तो कुछ और ही लीला करनी थी, इसलिए उन्होंने सती के आग्रह को न टाल कर, उन्हें नन्दी पर सवार हो कर, यज्ञ में जाने की आज्ञा दे दी। उन्होंने सती के साथ साठ हजार गण दे कर, उन्हें विदा किया। अच्छे-अच्छे वस्त्र आभूषण दिये। सती का

स्वरूप भी अति उत्तम कर दिया। हे नारद ! शिव ने ऐसी माया की कि सती बड़ी धूमधाम से चलीं। सती ने उस समय अपनी जैसी शोभा प्रकट की, वैसी किसी समय में भी प्रकट न की थी। उनके चलने के समय बड़ा शब्द हुआ। कोई गण उछलता-कूदता था। अन्य गण भी सब को प्रसन्न तथा आनन्दित करते हुए चले, कोई सती का प्रताप-वर्णन करता था, कोई शिव की महिमा का गुण-गान करता था। इस प्रकार सब अत्यन्त प्रसन्न हो, अनेक प्रकार की गति से चलते, सती की सेवा करते, दक्ष के घर जा पहुँचे।''

ॐ ॐ ॐ

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! इस प्रकार सती दक्ष से भयभीत यज्ञशाला में पहुँची, परन्तु वहाँ किसी ने उनसे बात तक न पूछी। न किसी ने यही जाना कि यह जगन्माता हैं। दक्ष ने तो अहंकार में उनसे कुशल क्षेम तक न पूछी। यह देख कर सती की बहनों ने, जो वहाँ उपस्थित थीं, हँसकर सती की निन्दा की। सती ने यज्ञ में सब देवताओं का स्थान देखा, परन्तु वहाँ शिवजी का स्थान न देखा। तब वे मन में अत्यन्त क्रोधित हुईं। उन्होंने अपना अनादर देख शिवजी का स्मरण किया तथा सोचा कि अपने क्रोध से दक्ष को भस्म कर डालें; फिर उन्होंने सोचा कि यह उचित नहीं होगा। क्योंकि जब दक्ष ने कठिन तपस्या करके मुझको प्रसन्न किया था, तब मैंने उससे कहा था कि जब मैं आप में कुछ गर्व तथा अपने मान की कमी देखूँगी, तो उसी समय अपने शरीर को त्याग दूँगी। दक्ष ने भी उस बात को मान लिया था। अब वही समय आ गया है। अस्तु, सती ने पुनः इस बात पर विचार कर बहुत दुःख प्रकट किया और मन में कहा कि मुझे बड़ा दुख है जो शिवजी बिना पुत्र के ही रहे और उन्हें मेरे विवाह का कोई फल न मिला। मेरे सिवाय और कौन ऐसी स्त्री है, जो मेरे पीछे शिवजी को प्रसन्न रख सकेगी। फिर शिव भी तो दूसरी स्त्री को अंगीकार न

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने शरीर को त्याग कर करेंगे। अब मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने शरीर को त्याग कर हिमाचल पर्वत के घर उत्पन्न हूँगी तथा हिमालय की पत्नी मुझे अपनी पुत्री समझेगी और मैं उसको अपनी माता समझ कर आनन्द प्रदान करूँगी। तब मैं शिवजी के साथ पुनः ब्याही जाऊँगी। उस समय मेरी सब लज्जा समाप्त हो जाएगी तथा संसार के मनोरथ पूर्ण होंगे। सती ने यह सब बातें सोच कर दक्ष से क्रोधित हो कर कहा—"हे पिता ! आपने शिव को निमन्त्रण क्यों नहीं भेजा? क्या आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। जिन मेरे स्वामी शिव से तीनों लोक पवित्र होते हैं, आपने उन्हें नहीं बुलाया। बिना शिवजी के सब कर्म असिद्ध हो जाते हैं। आपने ऐसे शिव को क्यों नहीं पहचाना?" फिर वे सनकादिक, ब्रह्मा तथा विष्णु से बोलीं—"आप सभा में बिना शिव के क्यों आए?" इस प्रकार उन्होंने सब से ऐसी बातें कहीं तथा शिवजी का वर्णन कर, एक-एक को अलग-अलग लज्जित किया। उन्होंने विष्णु से कहा—"क्या आप शिव को नहीं जानते, जिन्हें वेद सगुण एवं निर्गुण कह कर बखानते हैं? मैंने आपको अनेक बार समझाया है, फिर भी आप धर्म मार्ग को भ्रष्ट करते हैं। हे ब्रह्मन् ! आप भी बुद्धिहीन हो गये? क्या आप शिव के अपार बल को नहीं जानते? यद्यपि शिव ने आपको अनेक बार कहा है, फिर भी आप में बुद्धि नहीं आयी। आपके पाँच मुख थे। आपने शिव की निन्दा की, इसीलिए आपके चार मुख शेष रहे। हे विष्णु ! क्या आप शिव की महिमा भूल गये, जबकि उन्होंने अम्बर को जला दिया था? यह जान कर भी आप इस यज्ञ में क्यों सम्मिलित हुए हैं?"

सती ने फिर देवताओं से कहा—"हे देवताओ ! आपने अपनी शुद्ध बुद्धि क्यों नष्ट कर दी? मैं समझ गयी, आप सब बड़े अभागे हो जो बिना शिव के इस यज्ञ में चले आये। हे भृगु, अत्रि, वशिष्ठ ! आपने यह बात बुद्धि के विरुद्ध क्यों की? आपको तो शाप देने की महान् शक्ति है। क्यों तुम भी शिवजी की शक्ति को नहीं जानते? एक बार भगवान् सदाशिव मगर का रूप धारण कर द्रविड़पुर को गये थे

और वहाँ उन्होंने भक्त की परीक्षा लेने के लिए कुछ लीलाएँ कीं, परन्तु मुनियों ने उन लीलाओं के रहस्य को न जान कर, शिवजी को शाप दे डाला और उस शाप का प्रभाव उन्हीं के लिए प्रतिकूल पड़ा। उस समय जबकि तीनों लोक जलने लगे, तब शिवजी ने अपने लिंग को पृथ्वी पर गिरा दिया था, जिसके कारण वे पुनजीर्वित हो गये थे।''

इतना कह कर सती ने अत्यन्त क्रुद्ध ब्रह्मा तथा विष्णु से इस प्रकार कहा—''हे ब्रह्मा तथा हे विष्णु ! पिता जी ने जो कुछ किया है उसके मूल में तुम दोनों हो, क्योंकि तुम दोनों शिवजी के न आने पर भी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए हो। अस्तु, तुमने जैसा कार्य, किया उसका फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। आश्चर्य है कि जिन शिवजी द्वारा चारों वेद तथा सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है, उन्हें तुम बिल्कुल नहीं पहचान सके। यदि तुम दोनों दक्ष के इस यज्ञ में नहीं आते तो दक्ष को इतना अहंकार कभी न होता। यदि यहाँ उपस्थित देवता तथा ऋषि-मुनि भी न आते तो दक्ष को कभी भी यह हिम्मत न होती कि वे शिवजी से विरुद्ध हो कर कोई कार्य करते। तुम लोगों की बुद्धि वास्तव में भ्रष्ट हो गयी है जो तुम्हें दधीचि मुनि का सभा से उठ जाना भी अच्छा नहीं लगा।''

''हे नारद ! सती के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुन कर दक्ष ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर कहा—''अरी मतिमन्द ! तू ऐसी बातें क्यों कर रही है? मेरा और तेरा पिता-पुत्री का सम्बन्ध समाप्त हो चुका है। यदि तेरी इच्छा हो तो तू यहाँ रह, अन्यथा अपने घर चली जा। तेरा पति अत्यन्त अशुभ है। उसके नाम में केवल दो ही अक्षर हैं। वह भूत, प्रेत एवं पिशाचों के साथ रहता है, चिता की भस्म को अपने शरीर में लगाता है और श्मशान में घूमा करता है। उसके माता, पिता, कुल, जाति-पाति आदि का कुछ भी पता नहीं है। इसका वर्णन वेद में भले हो, परन्तु उसमें कोई शुभ लक्षण दिखाई नहीं देते। इसीलिए मैंने उसे यहाँ नहीं बुलाया, क्योंकि ऐसे मूर्ख मनुष्य का यज्ञ में आना निषिद्ध कहा गया है। हे सती ! मैंने वास्तव में बड़ी मूर्खता की, जो औरों के

कहने पर तुझ जैसी अपनी श्रेष्ठ पुत्री का विवाह उस नंग-धड़ंग औढर के साथ कर दिया। मुझे इस बात का बहुत बड़ा पश्चात्ताप है। अस्तु, तू मेरी बातों पर विचार करके अपना यह क्रोध त्याग दे।''

दक्ष की बातों को सुन कर सती पुनः क्रोधित हो उठीं और अपने पिता को महापापी अनुमान कर बहुत दुःखी भी हुईं। वे बोलीं—''शिवजी का अपमान कभी सुनना नहीं चाहिए। यदि कोई व्यक्ति शिवजी की निन्दा कर रहा हो तो सुनने वाले को उचित है कि वह या तो उस निन्दा करने वाले की जीभ काट ले अन्यथा अपने दोनों कान बन्द करके वहाँ से उठ जाये और अपने शरीर को अग्नि में जला कर भस्म कर दे। इसके विपरीत चलने से महापाप होता है। जो व्यक्ति शिवजी की निन्दा करता है, वह उस समय तक नरक में पड़ा रहता है, जब तक कि इस ब्रह्माण्ड में सूर्य और चन्द्रमा स्थित रहते हैं। यह बात वेद के कथन से भी पक्की होती है।'' इस प्रकार कह कर सती अपने मन में अत्यन्त पछताती हुई सोचने लगीं कि मैंने यहाँ आ कर शिवजी की निन्दा अपने कानों से सुनी यह अच्छा नहीं हुआ। उन्हें इस बात से और भी अधिक दुःख हो रहा था कि वे यहाँ किस लिए आयीं और अब कौन-सा मुँह ले कर शिवजी के पास लौटेंगी? वे सोचने लगीं कि यद्यपि शिवजी के श्री चरणों का दर्शन प्राप्त करना मेरे लिए अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु अब भला किस मुँह से मैं उनके पास जाऊँ। मुझे तो दोनों ही प्रकार से कठिनाई दिखाई दे रही है।

हे नारद ! इस प्रकार विचार करने के उपरान्त सती अत्यन्त क्रुद्ध हो कर शिवनाम का ज़ोर-ज़ोर से उच्चारण करने लगीं। उन्होंने किसी की भी प्रतिष्ठा का ध्यान न रखते हुए यज्ञशाला में उपस्थित सब लोगों को धिक्कारते हुए कहा—''हे उपस्थित सभासदो ! मैं तुम लोगों से यह बात सत्य ही कह रही हूँ कि इस समय तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है। अन्त में, तुम्हें बहुत अधिक पछताना पड़ेगा। तुम में से अनेक मारे जायेंगे और अनेक भाग कर किसी गुप्त स्थान पर छिप जाने के लिए विवश होंगे। इस सभा में जिस-जिस ने शिवजी की निन्दा की है और

जिसने उसे सुना है, उन सब को महापाप लगा है।" सभासदों से इस प्रकार कह कर वे दक्ष से बोलीं—"हे दक्ष ! तुमने शिवजी की बहुत निन्दा की है, अतः तुम्हें भी बहुत पछताना पड़ेगा। शिवजी सब को सुख देने वाले और सब के स्वामी हैं, पर तुम उन्हें साधारण देवताओं की भाँति ही समझ रहे हो। तुम्हें यह नहीं मालूम है कि वे सम्पूर्ण सृष्टि के सबसे बड़े हितैषी हैं। तुम्हें अपनी करनी का फल शीघ्र ही मिलेगा।

हे दक्ष ! वेद में मनुष्य को तीन प्रकार कहे गये हैं। जो किसी के गुण तथा शील में दोष लगाता है, उसे अधम कहा जाता है। जो किसी के पाप तथा पुण्य का सच्चा वर्णन करता है, उसे मध्यम कहते हैं और किसी के पापों को छिपाते हुए केवल उसके सद्गुणों का ही वर्णन कहता है, उसे उत्तम की संज्ञा दी जाती है। इन तीनों में भी जो सर्वोत्तम प्राणी होते हैं, वे अन्य लोगों के केवल गुण का ही वर्णन नहीं करते हैं अपितु वे सब को अपने कृत्य द्वारा प्रसन्न भी रखते हैं। मैंने इन तीन प्रकार के प्राणियों को विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि तुम अधम प्रकार के हो, क्योंकि तुमने शिवजी की झूठी निन्दा की है। मिथ्या भाषण, अहंकार, क्रोध, लोभ आदि जितने भी बड़े पाप हैं, उन सब में महान् पाप किसी दूसरे की निन्दा करना है। तुम जो यह कहते हो कि शिव नाम में केवल दो ही अक्षर हैं, सो तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि ये दो अक्षर इतने प्रभावशाली हैं कि जो मनुष्य इन्हें अपने मुख से निकालता है, उसके सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं। ऐसे पवित्र नाम की निन्दा करना कभी भी उचित नहीं है, परन्तु तुम अपने अज्ञान के कारण इस बात को नहीं पहचानते। शिवजी अनादि, अप्रमेय तथा महान् हैं। उनसे द्वेष रखने वाले का कभी भी कल्याण नहीं होता। जिन लोगों ने शिवजी की वास्तविक महिमा को पहचान लिया है, वे सदैव उन्हीं के प्रेम में मगन रहते हैं। यह मेरा शरीर तुम्हारे द्वारा उत्पन्न हुआ है। अस्तु, मैं अपना खेद नष्ट करने के निमित्त अब इसे अवश्य त्याग दूँगी। क्योंकि शिव-निन्दक पिता की पुत्री कहाना मुझे सहन नहीं होगा। हे दक्ष ! तुमने जो यह कहा कि शिवजी कोई कर्म नहीं करते

और अशुभ वेषधारी हैं, उसका उत्तर यह है कि वे परब्रह्म, शरीर-रहित एवं अनादि हैं। माया का ग्रहण किये रहने के कारण ही, वे अपना ऐसा अमंगल वेष बनाये रहते हैं। भला उन्हें किसी कर्म से क्या प्रयोजन है? तुमने जो यह कहा कि वे चिता भस्म लगाने वाले, नग्न, निर्धन तथा अवधूत हैं, उसका उत्तर केवल यही है कि मुझे उनका यह स्वरूप देख कर ही प्रसन्नता होती है, उनके इस स्वरूप के अतिरिक्त किसी अन्य रूप को देखना मुझे स्वीकार नहीं है। अस्तु, अब मैं अपने निश्चयानुसार अपने को भस्म करती हूँ, क्योंकि इससे शिवजी को प्रसन्नता की प्राप्ति होगी।''

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! यह कह कर सती उत्तर दिशा की ओर मुँह करके पृथ्वी पर बैठ गयीं—उन्होंने स्नान करने के उपरान्त अपने सम्पूर्ण शरीर को वस्त्रों से लपेट लिया। तत्पश्चात् योग धारण कर, विधिपूर्वक आसन लगाते हुए प्राणायाम किया। सर्वप्रथम उन्होंने समान वायु को नाभि चक्र में ला कर उदान वायु को ऊपर चढ़ाया और शिवजी की सुन्दर मूर्ति को अपने हृदय में स्थापित किया, तदुपरान्त उन्होंने अपने भौंहों के बीच दृष्टि जमाते हुए, पति के चरणों का ध्यान किया और अग्नि तथा वायु को उत्पन्न कर दिया। उस पवित्र अग्नि तथा वायु के द्वारा उन्होंने अपने उस निष्पाप शरीर को भस्म कर दिया। इस दृश्य को देख कर सब ओर हाहाकर मच गया। यज्ञशाला में उपस्थित सभी लोग अत्यन्त भयभीत तथा दुखी हुए और दक्ष की पत्नी वीरनी शोकाकुल हो गयी। उस समय शिवजी के गणों ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर सब लोगों को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—

ॐ ॐ ॐ

पच्चीसवाँ अध्याय

शिवगणों ने कहा—''इस दक्ष की मूर्खता को देखो कि इसने सती को भस्म होने से रोका तक नहीं। शिवजी के इस शत्रु को संसार में

अत्यन्त निन्दा प्राप्त होगी और यह अभिमानी मूर्ख करोड़ों नरकों के दुःख भोगेगा।'' इतना कह कर वे सब दक्ष को जान से मार देने तथा यज्ञ को भ्रष्ट करने के निमित्त अपने स्थान से खड़े हो गये। उस समय अनेक हृदय की इच्छा को जान कर, भृगु ऋषि ने यज्ञ की रक्षा के निमित्त यज्ञ-कुण्ड में एक पवित्र आहुति डाली। उस आहुति के पड़ते ही यज्ञ-कुण्ड द्वारा एक सहस्त्र अत्यन्त बलवान् तथा धैर्यवान् दैत्यों की उत्पत्ति हुई, जो संसार में ऋभु नाम से प्रसिद्ध हुए। वे महाभयानक स्वरूप धारण किये हुए शिवजी के गणों के सामने जा खड़े हुए। उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि उन्होंने अपने गणों के बल को चुपचाप हर लिया, जिसके कारण वे अत्यन्त निर्बल हो गये और भयभीत हो कर हाहाकर करने लगे। उनके विलाप को सुन कर वहाँ उपस्थित अन्य शिवगण भी आश्चर्यचकित रह गये। जब उन सब ने यह देखा कि वे उन दैत्यों से युद्ध करने में अशक्त हैं और सती के वियोग को सहन करने में असमर्थ हैं, तो उन्होंने अपनी स्वामिनी के साथ ही अपने प्राण दे देने भी उचित समझे। यह निश्चय करने के उपरान्त उनमें से किसी ने अपने मस्तक को और किसी ने अन्य अंगों को काट कर स्वयं ही अपना वध कर डाला। इस प्रकार जिस स्थान पर सती ने अपना शरीर त्यागा था, उसी स्थान पर शिवजी के बीस सहस्त्र गण भी मृत्यु को प्राप्त हो गये।

हे नारद ! उस दृश्य को देख कर सभा में उपस्थित सभी लोग अत्यन्त चिंतित हुए। उस समय मेरा तथा विष्णु का श्वास शीघ्रतापूर्वक चलने लगा। पहले तो सब लोग मौन खड़े रहे, फिर कोई विष्णु की स्तुति करने लगे तथा कोई किसी अन्य की प्रार्थना करने में संलग्न हो गया। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञशाला में दुःख भर गया। प्रसन्नता और आनन्द का कोई भी चिह्न शेष न रहा। अकेले दक्ष की मूर्खता के कारण उस महापाप का भागी सभी को होना पड़ा। तदुपरान्त जो थोड़े-से शिव गण शेष रह गये, उन्होंने शिवजी के पास पहुँच कर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। वे बोले—''हे प्रभो ! दक्ष ने सती जी के

पास पहुँच कर अत्यन्त अपमान किया था। अकेली दक्ष-पत्नी ही ऐसी थी, जिन्होंने उनका हार्दिक स्वागत किया, अन्य सब लोग तो अन्त तक दक्ष के ही साथी बने रहे।'' अपने गणों द्वारा यह समाचार प्राप्त कर शिवजी क्रुद्ध हुए। उस समय तुमने अर्थात् नारद ने भी शिवजी के पास पहुँच कर, जो कुछ घटना घटित हुई थी, उसे ज्यों-का-त्यों कह सुनाया और यह कहा कि वेद के बताये अनुसार आपको उचित है कि आप उन महापापियों को दण्ड अवश्य दें। यदि आप दक्ष को दण्ड नहीं देंगे तो वेद की आज्ञा और धर्म का मार्ग मिथ्या हो जाएगा। देवताओं को दंड न देना भी नीति के विरुद्ध कार्य है। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि यदि आप दक्ष को दण्ड नहीं देंगे तो दधीचि ऋषि का वचन भी मिथ्या हो जाएगा। खेद की बात तो यह है कि ब्रह्मा और विष्णु ने भी दधीचि ऋषि के शब्दों पर कोई ध्यान नहीं दिया और दक्ष से ऐसा निन्दनीय कर्म करा दिया।''

हे नारद ! तुम्हारी बात को सुन कर शिव जी ने अपने मन में विचार किया कि यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु, देवता, ऋषि-मुनि, एवं ब्राह्मण मुझे अति प्रिय हैं, तो भी वेद की आज्ञा सब से ऊँची है। यह निश्चय कर भगवान् शिवशंकर ने अपने गणों को अभयदान दे, दिव्य दृष्टि द्वारा यज्ञ के सम्पूर्ण वृत्तान्त की जानकारी प्राप्त की। तदुपरान्त वे ऐसे क्रुद्ध हुए कि मानो प्रलय ही कर देना चाहते हों। वे अपने दोनों होठों को दाँतों से काटने लगे। तदुपरान्त उन्होंने अपने मस्तक से एक जटा का केश उखाड़ कर पर्वत पर पटक दिया। उस बाल के गिरने से ऐसा महाभयानक शब्द उत्पन्न हुआ, जिसे सुन कर तीनों लोक काँपने लगे। यह जटा का केश टूट कर दो बराबर के टुकड़ों में अलग-अलग बँट गया। तब उसकी जड़ की ओर वाले टुकड़े से 'वीरभद्र' की उत्पत्ति हुई। उन वीरभद्र का शरीर अत्यन्त कृष्णवर्ण का था और उनके बाल काली घटा के समान घने तथा शान्त थे, वे प्रज्ज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान लग रहे थे। वे इतने ऊँचे थे, मानो अनायास ही आकाश को छू लेना चाहते हों। वे महाभयानक शस्त्रों को लिये हुए थे। उनके

हृदय में युद्ध करने की बड़ी प्रबल आकांक्षा थी। उनकी भौहें चढ़े हुए धनुष की भाँति बहुत टेढ़ी थीं। वे महाभयानक शब्द करते हुए सिंह के समान गरज रहे थे। उनके तीन मस्तक और एक सहस्त्र भुजाएँ थीं। वे शिवजी को प्रणाम करते हुए अपने स्थान पर निश्चल भाव से खड़े हो गये। उसी समय शिवजी के रोम-कूपों द्वारा अन्य सहस्त्रों गणों की उत्पत्ति हुई, जो शरीर, बल तथा स्वरूप में वीरभद्र के समान ही प्रतीत होते थे। शिवजी की आज्ञानुसार कैलाश पर्वत पर खड़े हुए वे परम भयानक शब्दों का उच्चारण अपने मुख से कर रहे थे। अस्तु, जटा के एक टुकड़े से तो इन सेना की उत्पत्ति हुई और दूसरे टुकड़े से श्री महाकाली प्रकट हुईं। उन महाकाली के साथ करोड़ों भूत, प्रेत आदि भी उत्पन्न हुए। वे अनेक प्रकार से नाचने-कूदने तथा लीलाएँ करने लगे। उस परम क्रोधमय अवस्था में भगवान् शिव की नासिका द्वारा जो श्वास निकले, उनसे सौ प्रकार तथा तेरह प्रकार के सन्निपातों की उत्पत्ति हुई, जो संसार में अनेक प्रकार के उपद्रव मचाते रहते हैं। इस प्रकार पलक मारते-मारते शिव गणों की महाभयानक सेना उपस्थित हो गयी। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उसी समय सम्पूर्ण सृष्टि को नष्ट कर डालेगी। हे नारद ! इसके पश्चात् वीरभद्र ने अपने हाथ जोड़ कर शिवजी को प्रणाम करते हुए कहा—"हे प्रभो ! आप जो उचित समझें, वह आज्ञा हमें दीजिये। यदि किसी ने आपका अपमान किया हो तो वह साक्षात् काल ही क्यों न हो, हम उसे भी नष्ट कर डालेंगे।" यह सुन कर शिवजी ने कहा—"हे वीरभद्र ! दक्ष प्रजापति ने अहंकार में भर कर कनखल से एक यज्ञ रचाया है। उसने शत्रुता करके हमें यज्ञ का निमन्त्रण नहीं दिया। जब सती लोक रीति के अनुसार उसके घर पहुँचीं तो उसने उन्हें भी कुछ न समझा और बहुत-से व्यंग्य वचन कहे। दक्ष के अतिरिक्त अन्य लोगों ने भी, जिसमें दक्ष-पत्नी सम्मिलित नहीं है, सती का कोई आदर नहीं किया। हमारे ऐसे अपमान को देख कर सती उस यज्ञ कुण्ड में जल कर भस्म हो गयीं, परन्तु किसी ने उन्हें रोका तक नहीं। इसके अतिरिक्त हमारे परम भक्त दधीचि ऋषि ने उस

सभा को शाप दिया कि उन लोगों को शिवजी का अपमान करने का फल अवश्य मिलेगा। अस्तु, तुम लोग दक्ष के यज्ञ में जा कर उसे भ्रष्ट कर डालो और हमारा अपमान करने वाले दक्ष का मस्तक काट डालो। दुर्वासा, कौशिक, मार्कण्डेय, कम्बु, उपमन्यु, इन्द्र, गौतम, पुलह, बृहस्पति तथा सनकादिक चारों भाई, जो मेरे परम भक्त हैं, वे सब भी निराश हो कर यज्ञशाला से उठ कर चले गये हैं और यह शाप दे गये हैं कि यह यज्ञ नष्ट हो जाएगा। अस्तु, मैं अपने उन भक्तों का वचन सत्य करने के हेतु तुम्हें यह आज्ञा देता हूँ कि तुम गणों को साथ ले, निर्भय हो कर दक्ष के यज्ञ में जा पहुँचो और किसी प्रकार का कुछ भी विचार न करते हुए जिसको जो उचित हो, वह दण्ड दो।'' शिवजी की इस आज्ञा को सुन कर वीरभद्र ने अत्यन्त प्रसन्न हो, महाभयानक स्वर में गर्जना की। तदुपरान्त उन्होंने शिवजी की परिक्रमा एवं स्तोत्रों द्वारा स्तुति की। फिर वे करोड़ों गणों की सेना तथा महकाली को साथ ले कर दक्ष यज्ञ को विध्वंस करने के लिए वहाँ से चल दिये।''

ॐ ॐ ॐ

छब्बीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुना कर सूत जी ने कहा—''हे शौनकादिक ऋषियो! इस वृत्तान्त को सुन कर नारद जी ब्रह्मा जी से बोले—''हे पिता! जिन महाभयानक यूथपतियों को साथ लेकर वीरभद्र, दक्ष-यज्ञ विध्वंस करने के निमित्त गये, आप मुझे उनका नाम सुनाने की कृपा करें तथा यह भी बतायें कि उन्होंने यज्ञशाला में जा कर क्या-क्या कार्य किये और किन-किन को किस प्रकार दण्ड दिया? मुझे यह बड़ा आश्चर्य है कि एक ओर तो शिवजी की ऐसी बलवान् आज्ञा थी और विष्णु जी दक्ष के सहायक थे। अतः आप मुझे यह बतायें कि विष्णु ने दक्ष की सहायता की अथवा नहीं? कुछ समझ में नहीं आता कि शिवजी और विष्णु जी के चरित्र कैसे होते हैं? मैंने भगवान् शिव तथा विष्णु के

किसी युद्ध का वृत्तान्त नहीं सुना; परन्तु इस कथा में वह सब सामग्री उपस्थित है।''

यह सुन कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! भगवान् सदाशिव परब्रह्म हैं। अन्य सब देवता तथा प्राणी उनके सेवक हैं। वे शिवजी अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक कार्य करते हैं। हम अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु तथा हर तीनों उन्हीं के स्वरूप हैं। अस्तु, तुम इस सम्बन्ध में कोई सन्देह मत करो। वीरभद्र के साथ जो सेनाएँ गयी थीं, उनके सेनापतियों तथा विस्तार का वृत्तान्त सुनो। शंखकर्ण के साथ एक करोड़, केयेक राक्षस के साथ एक करोड़, विकृत के साथ आठ करोड़, मारियाक के साथ नौ करोड़, सुरमन्थक के साथ छः करोड़, विकृतानन के साथ भी छः करोड़, जालक के साथ बारह करोड़, दुंदुभि के साथ आठ करोड़ एवं आवेश के साथ भी आठ ही करोड़ वीरों की सेनाएँ थीं। अनल वर्ण, घण्टाकर्ण, कुक्कुट, चित्रासन, सम्वत, करटि, भृङ्ग, बकुली, नन्दन, प्रियभानु, सुरसरिनन्द, तारक, छाया, चण्ड, कालतुंग, कपटी, शूलकार्ण, पिंगल, मान, सुकेश, अंग, भारभूत, मणिभद्र, लांगूल, बिन्दु एवं मयूराक्ष के साथ चौंसठ-चौंसठ करोड़ योद्धाओं की सेनाएँ वीरभद्र की सहायता के लिए चलीं। इसके अतिरिक्त करोड़ों वीरों की सेनाएँ वीरभद्र के साथ चलीं।

''हे नारद ! रविमर्या नामक सेनापति अत्यन्त क्रोध में भर कर अपने साथ एक करोड़ वीरों को लेकर वीरभद्र के साथ चला। इसके अतिरिक्त कोकिल, अमोध एवं सुमन्त्रक इन तीनों यूथपों के साथ भी एक-एक करोड़ योद्धा थे। नील नामक महाबली यूथप के साथ नौ करोड़ वीर थे और पूर्णभद्र की सेना में भी इतने योद्धा थे। क्षेत्रपाल के साथ इतनी सेना थी जिसकी संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता। इन सेनापतियों के अधिपति भैरव अपार सेना लेकर चले। उस असंख्य सेना के चलते समय दसों दिशाओं में भारी हाहाकार मचा।

''हे नारद ! इन सबके साथ ही भगवती महाकाली अपने नौ स्वरूपों के साथ नाचती-कूदती हुई चलीं। उन नौ स्वरूपों के नाम इस

प्रकार हैं—काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डीरमद्रिनी, भद्रकालिका, भद्रा, त्वरिता तथा वैणवी। इनके साथ शाकिनी, डाकिनी, भूत, प्रेत, लंकिनी, मसान्ती, कुष्माण्डी, ब्रह्मराक्षसी तथा चौंसठ योगिनी के समूह भी चले। उस सेना का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ? जिस समय वह विशाल सेना दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने के लिए चली, उस समय पृथ्वी से उठ कर ऊपर पड़ने वाली धूल समस्त आकाश में इस प्रकार भर गयी कि उसमें सूर्य नारायण छिप गये और महाभयानक अन्धकार चारों ओर फैल गया। यह सम्पूर्ण कटक दक्षिण दिशा की ओर चलता हुआ कनखल के समीप जा पहुँचा। उस समय दक्ष के यज्ञ में अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे, जो भावी विपत्ति के सूचक थे।''

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! उस समय यज्ञशाला में जो अपशकुन हुए अब मैं उनका वर्णन करता हूँ। आकाश से पिसी हुई हड्डियों की वर्षा होने लगी तथा ऐसी आश्चर्यजनक बातें दिखाई देने लगीं जिनके कारण कर्म तथा धर्म का विचार शेष न रहा। तीनों प्रकार के दुःख सब लोगों को दुःखी करने लगे। डर के मारे उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकलता था। सब के शरीर थर-थर काँपने लगे। उस समय यज्ञ करने वाले दक्ष प्रजापति तथा यज्ञ कराने वाले भृगु ऋषि की आँखें उत्तर दिशा की ओर उठ गयीं तो उन्होंने देखा कि उधर से भारी धूल के उड़ने का कारण क्या है; परन्तु कोई ठीक बात उनकी समझ में नहीं आयी। सभा में उपस्थित सभी लोग आश्चर्य में भर कर एक-दूसरे से अनेक प्रकार की बातें करने लगे।

''हे पुत्र ! उस समय दक्ष की पत्नी वीरनी ने सब लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—''हे सभासदो ! तुमने मूर्ख बन कर सती का अनादर किया और उन्हें भस्म होने से नहीं रोका। दक्ष प्रजापति ने

शिवजी का घोर अपमान किया है और सती की बहनों के सामने ही सती का भी तिरस्कार किया है। यह सब उपद्रव उसी के प्रतिफल है। शिवजी का शत्रु कभी भी आनन्द नहीं पा सकता। वह कुछ समय के लिए अपने मन को प्रसन्न कर ले, परन्तु अन्त में उसे नरकगामी होना पड़ता है। अस्तु, तुम लोगों को अपने किये हुए पाप का फल अवश्य मिलेगा।''

वीरनी के इन शब्दों को सुन कर सभी देवता तथा मुनियों को अत्यन्त भय लगा। दक्ष भी भयभीत हो कर विष्णु जी के पास पहुँच कर इस प्रकार कहने लगा—''हे विष्णो ! आप यज्ञरूप, यज्ञरक्षक तथा यज्ञ के कर्मस्वरूप हैं। आपका कार्य भक्तों की रक्षा करना है। अस्तु, आप मुझे इस भय से छुड़ाइये और अपनी कृपा द्वारा यज्ञ को नष्ट होने से बचाइये। आप सच्चे स्वामी हैं।'' यह सुन कर विष्णु जी ने हँसते हुए कहा—''हे दक्ष! जहाँ तक सम्भव होगा, हम, तुम्हारी रक्षा करेंगे, परन्तु तुमने शिवजी से शत्रुता स्थापित कर स्वयं ही संकट का आवाहन कर लिया है। तुमने प्रलयकर्त्ता एवं जगत् स्वामी शिवजी के साथ वैर करके अच्छा नहीं किया। अब तुम्हें कौन पार लगा सकता है? हम स्वयं तथा अन्य सभी देवतागण भगवान् की आज्ञारूपी रस्सी से बँधे हुए हैं। संसार में उनके समान बलवान् अन्य कोई नहीं है। कोई सहस्त्रों उपाय भी क्यों न करे, परन्तु शिवजी की कृपा के बिना किसी को कर्म का फल नहीं मिलता। जिस स्थान पर पूजा करने योग्य शिवजी की पूजा नहीं की जाती, वहाँ कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। जो देवता पूजा करने योग्य नहीं हैं, उसकी पूजा करने से दारिद्र्य, मृत्यु तथा भय—ये तीनों उपद्रव उत्पन्न होते हैं।''

हे नारद ! विष्णु के मुख से इन शब्दों को सुन कर दक्ष अत्यन्त चिन्तित और महादुखी हुआ। अन्य सब लोग भी भय के मारे काँपने लगे और इस प्रकार कहने लगे कि अब हमारी रक्षा किसी भी प्रकार नहीं हो सकती। जिस समय सभी सभासद आपस में एक-दूसरे का मुँह देखते हुए चिन्ता मग्न हो रहे थे, उसी समय वीरभद्र अपनी सेना

सहित यज्ञस्थल में जा पहुँचे और बड़े ज़ोर का शब्द करने लगे। भैरव तथा कालिका आदि भी अपनी सेना सहित वहाँ पहुँच गए। उस समय वीरभद्र का यह स्वरूप था कि उनके पाँच मुख, तीन नेत्र तथा दस हाथ थे। वे अपने मस्तक पर जटाओं को धारण किये थे तथा उनके ललाट पर अर्द्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था। वे रुद्राक्ष की माला पहने, शरीर में भस्म लगाये, बैल पर सवार थे। उनके सभी अंग वज्र के समान अत्यन्त कठोर थे। वे अपने अत्यन्त सुन्दर हाथों में अनेक प्रकार के शस्त्र लिये, चँवर-छत्र धारण किये, शिव-शिव शब्द का उच्चारण करते हुए, परम विचित्र स्वरूप से भली-भाँति अलंकृत थे। जिस रथ पर वे अपने नन्दी सहित आरूढ़ थे, वह पच्चीस योजन ऊँचा था और उस रथ को दस लाख सिंह खींच रहे थे। शार्दूल तथा हाथी चारों ओर से उस रथ की रक्षा के निमित्त चैतन्य खड़े हुए थे।

उसकी सेना ने आते ही चारों ओर से धावा करना आरम्भ कर दिया। अनेक प्रकार के युद्ध के बाजे, भेरी, शंख, पटह, गोमुख, शृंग, उपंग, मृदंग आदि बजने लगे। उस समय इन्द्र, वायु, यमराज, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा दिक्पाल अपने-अपने वाहनों पर सवार हो-हो कर दक्ष के सम्मुख जा पहुँचे। दक्ष ने उन सब से कहा—''हे दिक्पालो ! मैंने इस यज्ञ को केवल तुम्हारे ही बल पर किया था, अतः तुम सब मेरी रक्षा और सहायता करो।'' इस प्रकार सब देवताओं से कहने के उपरान्त दक्ष प्रजापति ने विष्णु जी के चरणों पर अपने मस्तक को रखते हुए कहा—''हे प्रभो ! आप संसार के रक्षक एवं शुभ कर्मों के साक्षी हैं। आपकी कृपा से संसार का पालन होता है, अतः आपको मेरे यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए।'' यह सुन कर विष्णु जी ने उत्तर दिया—''हे दक्ष ! जहाँ तक हमारा अधिकार है और जहाँ तक हम में शक्ति है, वहाँ तक हम तुम्हारे यज्ञ की रक्षा अवश्य करेंगे, परन्तु तुम्हारे कर्मों का स्मरण कर हमारी बुद्धि को आश्चर्य होता है। ब्रह्मस्वरूप शिवजी के क्रोध से तुम्हारी कौन रक्षा कर सकता है। अस्तु, उस शिव नामधारी ईश्वर से विरोध कर, कभी हित साधन नहीं

हो सकता। वे शिवजी तीनों गुणों से युक्त होने पर भी परम पवित्र हैं, अतः उचित है कि तुम उन्हीं शिवजी की शरण में जाओ, जिससे तुम्हारा यह यज्ञ सम्पन्न हो सके।''

इस प्रकार दक्ष और विष्णु में बातें हो रही थीं कि वीरभद्र की सेना चारों ओर इस प्रकार घिर आयी, मानो कोई समुद्र घिर-घिर कर आकाश की ओर बढ़ रहा हो। उस सेना के सेनापतियों ने दक्ष तथा विष्णु जी को ब्रह्मज्ञान व ज्ञान की बातें करते हुए सुना तो वे सब हँस पड़े। उस समय गणों को युद्ध करने के लिए उद्यत देख कर, इंद्र ने अपना वज्र उठा लिया और यह इच्छा की कि मैं शिवगणों से युद्ध करूँ। इन्द्र युद्ध करने के लिए सामने आये, शिवजी के गण हर हर का घोष करते हुए उनके सम्मुख जा पहुँचे।''

ॐ ॐ ॐ

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! इन्द्र की सेना शिवगणों से युद्ध करने लगी। उस युद्ध में असि, शूल, तोमर, बाण, पटिस आदि अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होने लगा। भेरी, शंख, मृदंग, ढप, दुन्दुभि, पटह, निशान तथा डिमडिम आदि प्रसिद्ध रणवाद्यों की ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी। सभी योद्धा उस युद्ध में अपनी वीरता का अधिकाधिक प्रदर्शन करने लगे। जिस समय शिवगणों ने अपनी परमवीरता को प्रकट किया, उस समय इन्द्र की सेना को पराजित होते हुए देख कर भृगु ऋषि ने उच्चाटन मन्त्र का जप करके वीरभद्र की सेना को अशक्त बना दिया। तब इन्द्र की सेना ने उन्हें अत्यन्त दुखी करके, सहस्त्रों योद्धाओं को जान से मार डाला। उस अयाचित विपत्ति को देख कर शिव के गण भयभीत हो कर भागने लगे और इन्द्र की सेना विजयिनी हुई।''

हे नारद ! शिव गणों की हार का मुख्य कारण यही था कि इस प्रकार शिवजी ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता को सम्मान दिया था। अस्तु, जब वीरभद्र ने यह देखा कि उनकी सेना हार कर भाग रही है, तब वे भूत-

 आगे बढ़ आये। जो बड़े-बड़े सेनापति प्रेतों आदि को पीछे कर स्वयं आगे बढ़ आये। जो बड़े-बड़े सेनापति योद्धा बैल पर सवार थे। वे भी उनके साथ आगे आ कर खड़े हुए। तदुपरान्त उन्होंने अपने हाथों में त्रिशूल लेकर इन्द्र के साथ महाभयानक युद्ध किया। उन प्रहारों से घायल हो कर देवता आदि भयभीत हो, युद्ध क्षेत्र से भागने लगे। किसी के विभिन्न अंग कट गये तो कोई टुकड़े-टुकड़े हो कर गिर पड़ा। इस प्रकार देवताओं की सम्पूर्ण सेना क्षीण-विषीर्ण हो गयी। कुछ देवता तो भाग कर अपने घरों को भी चले गये। उस समय अकेले इन्द्र ही दृढ़तापूर्वक खड़े हुए युद्ध क्षेत्र में दिखाई पड़ रहे थे। अपनी सेना को इस प्रकार भागते देख कर इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति जी से कहा—"हे गुरु ! आप देवताओं की सेना के रक्षक हैं, अतः आप हमें ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे हमारी जीत हो।" यह सुन कर बृहस्पति ने उत्तर दिया—"हे इन्द्र ! विष्णु जी ने जो कुछ कहा था, वही सब इस समय सामने आ रहा है। मन्त्र, तन्त्र, औषधि, वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, विचार तथा प्रतीति आदि यह सब शिवजी की महिमा को जानने में असमर्थ हैं। तुम मूर्ख हो, जो बच्चों के समान बुद्धिहीन बन कर, उन्हीं भगवान् सदाशिव से वैर ठान रहे हो, यह सभी गण शिवजी की आज्ञानुसार आये हुए हैं और इस यज्ञ को नष्ट करके ही मानेंगे। इनके सामने किसी का कोई वश नहीं चलेगा।"

हे नारद ! बृहस्पति जी के मुख से यह वचन सुन कर इन्द्र के सहित सभी देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई। उसी समय वीरभद्र ने उन सब को सम्बोधित करके कहा—"हे देवताओ ! तुम्हारी सभी बातें बच्चों के समान बुद्धिहीनता की सूचक एवं व्यर्थ की सी हैं। तुम लोग सारवस्तु को नहीं पहचान पाए। अस्तु, इस यज्ञ में जो-जो देवता भाग लेने के लिए आये हैं, वे सब मेरे समीप आ कर यज्ञ का भाग ले जाएं।" यह कह कर वीरभद्र ने एक बार फिर इन्द्र, अग्नि, कुबेर, वरुण, सूर्य, चन्द्र आदि देवताओं को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे देवताओ ! तुम सब मेरे समीप आ कर अपना-अपना भाग ले जाओ। मैं तुम्हें सुख पहुँचा कर ऐसा प्रसन्न करूँगा कि तुम्हें सदैव के लिए भगवान्

सदाशिव की महिमा का ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।" इतना कह कर वीरभद्र अत्यन्त क्रुद्ध हो कर बाण वर्षा करने लगे। उनके तीक्ष्ण बाणों के प्रहार ने इन्द्र के शरीर को घायल कर दिया। जब उन्होंने यह अनुभव किया कि वीरभद्र पर वे किसी प्रकार विजय प्राप्त नहीं कर सकते, तो सब देवताओं के साथ भाग खड़े हुए।

हे नारद ! यह दृश्य देख कर सब ऋषि-मुनि अत्यन्त भयभीत हो, विष्णु जी की शरण में गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो ! हम आपकी शरण में आये हैं। अस्तु, आप दयालु हो कर हमारी रक्षा करें।" उन ऋषि-मुनियों की प्रार्थना को सुन कर श्री विष्णु भी अपने अस्त्र-शस्त्र ले कर, युद्ध करने की इच्छा से वीरभद्र के सम्मुख जा खड़े हुए। जब वीरभद्र ने अपने सामने खड़े हुए विष्णु जी को देखा तो उन्हें पुकारते हुए इस प्रकार कहा—"हे विष्णु ! तुम यहाँ किस लिए आये हो? तुम दक्ष के रक्षक बन कर अपने तेज तथा प्रकाश को नष्ट कर देने पर क्यों तुले हुए हो? तुमने सब से बड़ी गलती तो यह की कि इन्द्र को साथ ले कर इस यज्ञ में अपना भाग ग्रहण करने के लिए चले आये। अब यदि तुम युद्ध करने के लिए आये हो तो यह भी स्मरण रखो कि शिवजी की जैसी आज्ञा है, उसी प्रकार मैं तुम्हें भी अच्छी तरह तृप्त कर दूँगा।"

हे नारद ! वीरभद्र के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुन कर विष्णु जी ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हे वीरभद्र ! तुम शिवजी के गण हो और उन्हीं के द्वारा उत्पन्न होने के कारण पूजा किये जाने के योग्य हो। मैं शिवजी को त्याग कर दक्ष की रक्षा के निमित्त यहाँ जिस लिये आया हूँ, वह वृत्तान्त तुमसे कहता हूँ। दक्ष मेरे परम भक्त हैं और उन्होंने मेरी बड़ी सेवा की है। जब उन्होंने मुझे यहाँ आने का निमन्त्रण दिया तो उनकी भक्ति के वशीभूत हो कर मैं यहाँ चला आया, क्योंकि मैं सदैव अपने भक्तों के आधीन रहता हूँ। अब मैं तुम्हें अपनी शक्ति द्वारा उस स्थान से हटाने का प्रयत्न करता हूँ, इसलिए तुम्हें भी उचित है कि तुम जिस कार्य के लिए यहाँ आये हो, उसे सम्पन्न करो। जब

तक तुम मुझे पराजित नहीं कर देते, तब तक यज्ञ के समीप नहीं पहुँच पाओगे।''

हे नारद ! यह सुन कर वीरभद्र ने सहिष्णु बन कर हँसते हुए कहा—''हे विष्णु ! आप में और शिवजी में कोई भेद नहीं है। अस्तु, मैं तो आप दोनों का ही सेवक हूँ। जो मनुष्य आप में और शिवजी में भेद समझते हैं, उन्हें घोर दुःख उठाना पड़ता है। फिर भी मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि मुझे भगवान् सदाशिव की आज्ञा का पालन करना है। अस्तु, यदि मैं आपको कोई कष्ट पहुँचाऊँ तो उसमें मेरा कोई दोष नहीं होगा। आप जानबूझ कर भी अपने लोक को लौट कर नहीं गये और यहाँ मुझ से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं। अतः आप स्वयं ही मुझे यह बतावें कि इस समय मुझे क्या करना उचित है?'' यह सुन कर विष्णु जी बोले—''हे वीरभद्र ! तुम निश्चिन्त हो कर हमारे साथ युद्ध करो। इस युद्ध में तुम अवश्य ही विजयी होगे। जब हम तुम्हारी चोट से घायल हो कर अपने लोक को लौट जाएं, उस समय तुम जो उचित समझो, वह करना।'' यह सुन कर वीरभद्र ने अपने हथियार उठा लिए। उस समय युद्ध के बाजे बजने लगे तथा विष्णु जी ने अपना भी शंख फूँक कर सम्पूर्ण संसार में हाहाकार मचा दिया। जो लोग युद्ध क्षेत्र से भाग गये थे, वे भी फिर लौट आये। इन्द्र आदि देवता विष्णु जी के साथ रह कर फिर से अपने पराक्रम का प्रदर्शन करने लगे। इस प्रकार घमासान संग्राम आरंभ हो गया।''

उन्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! इन्द्र के साथ नन्दी ने युद्ध करना प्रारंभ किया। अनल के साथ मुनिभद्र का युद्ध होने लगा। यमराज तथा महाकाल एक दूसरे के सम्मुख जा खड़े हुए तथा निक्रति तथा मुण्ड ने परस्पर युद्ध करते हुए वीरता का प्रदर्शन किया। वरुण के

साथ मुण्ड एवं वायु के साथ भृंगी का युद्ध होने लगा। उस समय इन्द्र ने अपने हाथ में वज्र लेकर नन्दी के ऊपर प्रहार किया और नन्दी ने क्रुद्ध हो कर अपने त्रिशूल को इन्द्र के ऊपर चलाया। उस चोट से घायल हो कर इन्द्र पृथ्वी पर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये; परन्तु कुछ देर बाद जब उन्हें होश आया, तो वे पुनः युद्ध करने लगे। उधर अनल ने शक्ति की चोट द्वारा मुनिभद्र को घायल कर दिया और मुनिभद्र ने भी निर्भय हो कर अपने त्रिशूल द्वारा उसका उत्तर दिया। कालदन्त ने यमराज को अपने त्रिशूल की चोट से व्याकुल बना दिया। इधर तो ये बड़े-बड़े सेनापति परस्पर युद्ध करने में प्रवृत्त थे, उधर भैरव अत्यन्त क्रोधित हो कर योगिनियों को साथ ले, देवताओं की सेना में घुस गये और सब को घायल करते हुए उनका रुधिर पीने लगे। फिर उन्होंने अपने स्वरूप को ऐसा भयानक बनाया कि उसे देख कर अनेक देवता युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े हुए। जो देवता खड़े रहे, वे उनके तेज तथा प्रकाश को देख कर, अत्यन्त भयभीत हो, ''भैरव-भैरव'' की पुकार करने लगे।

हे नारद ! भैरव की भाँति क्षेत्रपाल ने भी देवताओं की सेना के अन्दर प्रविष्ट हो कर, उसे कष्ट देना आरंभ कर दिया। नौ काली भी देवताओं की सेना को नष्ट करने लगीं। वे देवताओं के मस्तक को तोड़ कर उनका रुधिर पीती थीं और शरीर को खा जाती थीं। जिसके कारण चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय वे सब लोग भाग कर विष्णु जी की शरण में जा पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे—''हे प्रभो ! इस समय हम लोग बहुत दुखी हैं, अतः आप हमारी सहायता करें। आप हम सब के स्वामी हैं, इसलिए हम आप से यह प्रार्थना करते हैं कि भैरव, क्षेत्रपाल तथा काली ने हमारी जो दुर्गति की है, उसका आप उचित उपाय करें।'' विष्णु जी ने सब देवताओं की उस दयनीय दशा को देखा तो उन्होंने अत्यन्त क्रोध में भर कर क्षेत्रपाल की ओर अपना चक्र छोड़ दिया। उस चक्र के तेज से संपूर्ण दिशाएँ भस्म-सी होने लगीं। जब क्षेत्रपाल ने उस प्रज्वलित ज्योति को इस प्रकार अपनी

ओर आते देखा तो उसने यह चक्र अपने मुख में डाल दिया। यह देख कर विष्णु जी ने क्षेत्रपाल के गाल पर अपनी गदा का प्रहार किया, जिसके कारण वह मुँह के बल पृथ्वी पर गिर पड़ा।

हे नारद ! इस अवस्था को देख कर काली जी विष्णु के सम्मुख जा पहुँचीं। उन्हें देख कर विष्णु जी ने जितने बाण चलाये उन सब को वे सहज ही में खा गयीं। तब विष्णु जी ने अपने नन्दक नामक खड्ग का प्रहार उनके ऊपर किया। उसे काली जी ने पकड़ कर तोड़ डाला। यह दृश्य देख कर विष्णु जी ने काली के साथ युद्ध करना बन्द कर दिया और भैरव के समीप जा पहुँचे। विष्णु जी ने भैरव के ऊपर जब अपना चक्र चलाया तो भैरव ने उसे सहज ही काट कर गिरा दिया। तदुपरान्त उन्होंने अपने मृत्यु के समान भयानक बाणों द्वारा विष्णु जी पर प्रहार करना आरम्भ कर दिया। विष्णु जी तथा भैरव का युद्ध, बहुत देर तक होता रहा। उस युद्ध को सब देवता अलग खड़े हो कर देखते रहे, तदुपरान्त भैरव ने उस प्रलयकर्त्ता त्रिशूल को अपने हाथ में उठाया, जो बिना प्राण लिये कभी नहीं रुकता था। भैरव के क्रोध को इस प्रकार बढ़ता देख कर वीरभद्र दौड़ते हुए उनके पास जा पहुँचे और अनेक प्रकार से उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—"हे भैरव जी ! आप ऐसा क्रोध न करें, क्योंकि शिवजी ने इतनी कठिन आज्ञा नहीं दी है। विष्णु जी भी शिवजी के एक रूप हैं, अतः सेवक को अपने स्वामी के विरुद्ध ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।" यह सुन कर भैरव जी ने अपना त्रिशूल रोक लिया। तदुपरान्त वीरभद्र स्वयं विष्णु से युद्ध करने लगे।

हे नारद ! जब विष्णु जी ने देखा कि वीरभद्र पर सहज ही विजय पाना संभव नहीं है, तब उन्होंने योगमाया द्वारा अपने ही समान असंख्य गणों को उत्पन्न किया। वे सब गरुड़ पर आरूढ़ थे और शंख चक्र गदा तथा पद्म को अपने हाथों में धारण किये हुए थे। वे उत्पन्न होते ही शिवगणों से युद्ध करने लगे। उन्होंने अपनी बाण वर्षा, शंख ध्वनि, चक्र तथा गदा आदि से शिवगणों को व्याकुल कर दिया। यह दशा

देख कर वीरभद्र ने भगवान् सदाशिव का ध्यान धर कर अपना त्रिशूल चलाया। उस त्रिशूल के चलते ही विष्णु जी के गण भस्म होने लगे और देखते ही देखते अदृश्य हो गये। यह दशा देख कर विष्णु जी ने अत्यन्त क्रोध कर, वीरभद्र को मार डालने की इच्छा से उनके मस्तक पर अपनी गदा का एक कड़ा प्रहार किया। तब वीरभद्र ने उनकी मनोभिलाषा को जानते हुए अपना त्रिशूल उनकी छाती में मार कर, उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया। विष्णु जी के इस प्रहार से मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर जाने से, चारों ओर हाहाकार मचने लगा, परन्तु कुछ देर बाद ही विष्णु जी उठ कर खड़े हो गये। तब वीरभद्र को मारने के लिए उन्होंने अपने चक्र को हाथ में उठा लिया। उस समय विष्णु जी का स्वरूप अत्यन्त भयानक हो उठा। ऐसा प्रतीत होता था मानो आज वे अपने चक्र द्वारा प्रलयकाल उपस्थित कर देंगे।

हे नारद ! वीरभद्र ने जब विष्णु के उस तेजस्वी स्वरूप को देखा, तो मन-ही-मन भगवान् सदाशिव के चरणों का ध्यान किया। उस समय शिवजी ने वीरभद्र को अभयदान देते हुए अपने शत्रु का प्रहार सहने करने की सामर्थ्य प्रदान की। उधर विष्णु जी भी पर्वत शिखर के समान निश्चल भाव से खड़े थे। अस्तु, सर्वप्रथम वीरभद्र ने अपने पवित्र बाणों द्वारा विष्णु जी के धनुष के दो टुकड़े कर डाले। विष्णु जी भी प्रबोधन मन्त्र का त्याग कर, जड़ता से मुक्त हो, अपनी सामर्थ्य को प्राप्त कर चुके थे। अस्तु, उस समय का दृश्य देख कर मैंने अर्थात् ब्रह्मा ने विष्णु जी से कहा 'हे प्रभो ! होनहार किसी के मिटाये नहीं मिटती, यद्यपि आपने दक्ष के यज्ञ की रक्षा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी, परन्तु उसका भाग्य ही इस समय विपरीत है। इसलिए आप इस युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। वीरभद्र इस यज्ञ को अवश्य नष्ट करके मानेगा। शिवजी के क्रोध के साथ ही साथ उसका यह भी एक कारण है कि दधीचि मुनि ने भी इस यज्ञ को नष्ट होने का शाप दिया है। यदि ब्राह्मणों के वाक्य को सत्य न माना जाए तो सम्पूर्ण सृष्टि छली एवं नास्तिक हो जायेगी। अस्तु, आप युद्ध करना बन्द कर

दें। जिस समय भगवान् सदाशिव पुनः कृपालु होंगे, उस समय बिगड़े हुए सभी कार्य स्वतः ही बन जायेंगे। आपकी और शिवजी की लीला अपार है। उसका भेद कोई नहीं जान सकता।' हे नारद ! मेरी इस बात को सुन कर विष्णु जी युद्ध बन्द करके अपने लोक को चले गये और मैं भी अपने लोक को चला आया, क्योंकि मैं यह जानता था कि जब शिवजी पुनः दयालु होंगे, तभी बिगड़ा कार्य बन सकेगा।''

ॐ ॐ ॐ

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जिस समय विष्णु जी अपने लोक को चले गये, उस समय यज्ञ देवता को अत्यन्त शोक हुआ। वह मृग का रूप धारण कर उस स्थान से भाग चला; परन्तु वीरभद्र ने उसे तुरन्त ही पकड़ लिया। तदुपरान्त उन्होंने उसके मस्तक को धड़ से काट कर यज्ञ कुण्ड में डाल दिया। फिर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो, बारम्बार गरजते हुए यज्ञ मण्डप के समीप पहुँचे। भैरव, क्षेत्रपाल तथा काली आदि ने यज्ञ स्थल पर उपस्थित सभी लोगों को इस प्रकार पकड़ा, मानो वे कोई चोर हों। कोई शिवगण देवताओं को पकड़ता, कोई मुनियों को बाँधता था, कोई विष्णु के घण्टे तोड़ता था और कोई यज्ञ कुण्ड को ठंडा करने के लिए उसमें जल डाल रहा था। सभी शिवगण अपने शत्रुओं के साथ घोर युद्ध कर रहे थे और यज्ञ-मण्डप को गिराने में संलग्न थे। उन्होंने अपने मुद्गरों की चोट से अनेक के हाथ-पावों को कुचल दिया और यज्ञ पात्रों को तोड़कर नदी में फेंक दिया। किसी ने देवताओं के शरीर को काटा, किसी ने ऋषि-मुनियों को दुःख दिया, किसी ने यज्ञ कुण्ड को खोद डाला और किसी ने सभा स्थल, अन्तःपुर तथा विहार स्थल को जड़ से खोद कर नष्ट कर दिया।

हे नारद ! इसके उपरान्त वीरभद्र ने दक्ष को पकड़ लिया। नन्दी ने सूर्य देवता को बन्दी बनाया। मणिमान ने भृगु ऋषि को पकड़ा और चण्डी ने पूषा को बाँध लिया। इसी प्रकार अन्य देवताओं को भी

उन्होंने बन्दी बना लिया। जो देवता कहीं जा कर छिप गये थे, उन सब को भी वे ढूँढ़ कर ले आये। मणिमान ने अत्यन्त क्रोध में भर कर भृगु मुनि की मूँछें उखाड़ लीं और उन्हें नगर में घुमा कर सब लोगों को भयभीत कर दिया। तदुपरान्त नन्दीश्वर ने क्रुद्ध हो कर भृगु मुनि के नेत्र निकाल लिये, क्योंकि उन्होंने दक्ष प्रजापति को बहका कर शिवजी के विरुद्ध कर दिया था। जो व्यक्ति शिवजी के विरुद्ध जाने का उपदेश करे, उसकी आँखें निकाल लेना ही उचित है। उधर चण्डी ने पूषा के उन दाँतों को तोड़ डाला, जिन्हें खोल कर उन्होंने शिवजी का उपहास किया था।

हे नारद ! इसके पश्चात् वीरभद्र ने अत्यन्त क्रोध में भर कर दक्ष प्रजापति को पृथ्वी पर पटक दिया और उसकी छाती पर पाँव रख कर उसका सिर काट डालने की इच्छा की, परन्तु अनेक हथियारों का प्रयोग करने पर भी वे न तो दक्ष का मस्तक ही काट सके और न ही उसे कोई कष्ट ही पहुँचा सके। यह दशा देख कर वीरभद्र ने शिवजी का ध्यान किया और उस ध्यानावस्था में उनसे आज्ञा प्राप्त की कि दक्ष के सिर को जोर से मरोड़ कर तोड़ डाले। वीरभद्र ने ऐसा ही आचरण किया, तदुपरान्त उस कटे हुए मस्तक को यज्ञ कुण्ड में डाल कर जला दिया। फिर अत्यन्त क्रोध करके उसके शरीर को काटा और उस कटे हुए शरीर के हिस्सों को कश्यप तथा धर्मराज के हाथों में रख दिया। फिर उन्होंने धृष्टनेमि को बहुत दुःख दिया और अंगिरा ऋषि को लातों से मारा, फिर जिस प्रकार उन्होंने शान्तनु को मारा था उसी प्रकार अन्य ऋषि-मुनियों को भी मार डाला। फिर कश्यप की पत्नी की नाक को उन्होंने अपने नखों से काट डाला, जिसके कारण देवताओं की माता अदिति, उस अंग को ही खो बैठी। इस प्रकार जिसके लिए जैसा उचित था, वैसा दण्ड दे दिया।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव ने अपना तिरस्कार करने वाले लोगों को इस प्रकार यथोचित फल दे कर अपनी महत्ता को प्रतिष्ठापित किया। शिवजी के बिना जो देवता यज्ञ में अपना भाग लेना चाहते थे,

वे सब या तो मारे गये या घायल हुए। इस प्रकार दक्ष का यज्ञ सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। हे पुत्र ! शिवजी से शत्रुता रखने वाले को इसी प्रकार दुःख भोगना पड़ता है। सहस्त्रों उपाय करने पर भी जब तक शिवजी का पूजन नहीं किया जाता, तब तक किसी को मुक्ति प्राप्त नहीं होती। शिवजी सब से बड़े और सब के स्वामी हैं। उनकी महिमा ऐसी अपार है कि आज तक उसे कोई नहीं जान सकता। जो लोग प्रेमपूर्वक शिवजी की सेवा एवं पूजा करते हैं, उन्हें किसी प्रकार दुःख नहीं उठाना पड़ता, क्योंकि सदाशिव सदैव उनकी सहायता करते रहते हैं। शिवजी अपने भक्तों के उस पाप को भी नष्ट कर देते हैं जो पिछले पाप-कर्मों के कारण प्राप्त होता है। शिवजी के विपरीत चलने वाला मनुष्य इस संसार में तो दुःख पाता ही है, अन्त में दण्डनीय हो कर नरकवास भी करता है। शिवजी की आराधना किये बिना जो कार्य किया जाता है, उसका परिणाम इसी प्रकार दुःखदायी होता है। अस्तु, इस प्रकार दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने के उपरान्त वीरभद्र भगवान् सदाशिव के समीप जा पहुँचे।''

ॐ ॐ ॐ

इकतीसवाँ अध्याय

सूत जी ने कहा—''हे शौनकादि ऋषियो ! ब्रह्मा जी द्वारा इस कथा को सुन कर नारद जी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। अस्तु, उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हुए ब्रह्मा जी से पूछा—''हे पिता ! शिवजी के बिना विष्णु आदि अन्य सब देवता दक्ष के यज्ञ में क्यों चले गये? फिर विष्णु जी ने शिवगणों के साथ मित्रतापूर्वक युद्ध क्यों किया? वे दक्ष के यज्ञ को बचाने में समर्थ क्यों न हो सके?'' ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—''हे नारद ! पूर्व काल में मेरा छू नामक एक पुत्र था। वह राजा था। दधीचि उसका परम मित्र था। वे दोनों आनन्दपूर्वक अपनी राजधानी में रहते थे। कुछ समय बाद ही छू अपने सम्मान एवं पद के कारण अत्यन्त अहंकारी हो गया और अपने को सर्वश्रेष्ठ

समझने लगा। छू कहता था कि राजा सबसे श्रेष्ठ है और दधीचि का कहना था कि ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य सभी लोग, जिनमें राजा भी सम्मिलित हैं, ब्राह्मण को प्रणाम करते हैं, परन्तु छू उसकी बात को न मान कर तथा उसके प्रमाण को अपने तर्क द्वारा काट कर, यह कहता था कि देखो, आठों दिक्पाल जो राजा हैं, उन्हें प्रजापति तथा ईश्वर कहा जाता है और सब लोग, जिनमें ब्राह्मण भी सम्मिलित हैं, उनका पूजन तथा सम्मान करते हैं; इसलिए तुम्हें भी उचित है कि तुम हमारी पूजा करो।

हे नारद ! छू की इस बात को सुन कर दधीचि ने अपने बाएँ हाथ से उसके मस्तक पर एक थप्पड़ मारा और ब्राह्मण की श्रेष्ठता को प्रमाणित कर दिखलाया। यह देख कर छू ने अपने हाथ में वज्र उठा कर दधीचि को मार डाला और इस प्रकार उस पर विजय प्राप्त की। जिस समय दधीचि पृथ्वी पर गिर कर मरने को था, उस समय उसने गुरु का स्मरण करके अपने प्राण त्यागे। उसकी प्रार्थना को सुन कर शुक्राचार्य शीघ्रतापूर्वक उस स्थान पर जा पहुँचे और उन्होंने दधीचि के छिन्न-भिन्न शारीरिक अंगों को एकत्र करके उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। इस प्रकार जीवन-दान एवं आरोग्य प्राप्त करने के पश्चात् दधीचि ने शुक्राचार्य से कहा—"हे शुक्राचार्य जी ! आप मुझे कोई ऐसी युक्ति बताइये, जिससे मैं अमर हो जाऊँ।" यह सुन कर शुक्राचार्य ने उत्तर दिया—"हे दधीचि ! ऐसा वरदान केवल शिवजी ही दे सकते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी शिवजी के चरण सेवक हैं। उन्हीं की सेवा द्वारा मैंने यह संजीवनी विद्या प्राप्त की है। उनका मृत्युञ्जय नाम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उनकी कृपा प्राप्त करके बाणासुर अमर हो गया और वह सब राजाओं मुनियों तथा ब्राह्मणों में श्रेष्ठ बन कर, शिवपुरी में निवास करता है। शिवजी की सेवा करके ही दुर्वासा ऋषि तीनों लोकों के स्वामी बन बैठे हैं और अपने उत्तम चरित्र द्वारा धर्म की रक्षा करते हैं। शिवजी की सेवा करने के कारण ही विश्वामित्र मुनि ने ब्राह्मण पद को प्राप्त किया है और नवीन सृष्टि को

उत्पन्न कर अनेक प्रकार की नूतन वस्तुओं को जन्म दिया है। ब्रह्मा जी दिन-रात शिवजी की सेवा में संलग्न रहते हैं तथा उन्हीं की आराधना के कारण ही मार्कण्डेय ऋषि कल्प समाप्त हो जाने पर भी जीवित बने रहते हैं।

हे दधीचि ! इन्द्र ने शिवजी की सेवा द्वारा ही यह शक्ति प्राप्त की है कि उनका शत्रु किसी भी प्रकार जीवित नहीं बच सकता। भगवान् विष्णु भी शिवजी के अनन्य सेवक हैं। जगदम्बा शक्ति भी रात-दिन शिवजी की सेवा करने के कारण तीनों लोकों की स्वामिनी बनी हैं। रामचन्द्र, परशुराम तथा बलराम ने शिवजी की पूजा से ही अपना नाम अमर किया है। विकट, अंगिरस तथा गौतम ऋषि ने शिवजी का पूजन करके अमरत्व प्राप्त किया है। बृहस्पति ने भी शिवजी की सेवा द्वारा उच्च पद पाया है। इन्द्रदेव मुनि बिना इच्छा के ही शिवजी का नाम ले लेने के कारण, शिवगणों में सम्मिलित हो गये। वैश्य वर्ण नन्दी ने शिवजी की सेवा द्वारा उच्च पद को प्राप्त किया। महाकाल पूर्व जन्म में अक्सर वेद के विरुद्ध कार्य किया करते थे, परन्तु शिवजी की सेवा करने के कारण ही उन्होंने मुक्ति पद प्राप्त किया। ब्रह्मा तथा विष्णु ने परस्पर विवाद करने के उपरान्त भी शिवजी के आदि तथा अन्त को नहीं पाया। एक बार एक राक्षसी ने धोखे से शिव मन्दिर को धोया था, उसी पुण्य के कारण वह कैलाश में जा पहुँची और फिर एक राजपुत्री के रूप में उत्पन्न हुई। एक बार एक चोर ने शिवालय में अपने शरीर को त्याग दिया, जिसके कारण उसे परमपद की प्राप्ति हुई। अतः यदि तुम्हें अमरत्व प्राप्ति की इच्छा है तो उन्हीं भगवान् शिव की पूजा करो।''

हे नारद ! शुक्राचार्य जी की बात सुन कर दधीचि ने प्रसन्न हो कर कहा—''हे स्वामिन् ! आप मुझे शिव मन्त्र का उपदेश दीजिये।'' तब शुक्राचार्य जी ने भगवान् सदाशिव से प्राप्त संजीवनी विद्या का उपदेश दधीचि ऋषि के प्रति किया और शिवजी का पूजन करने के लिए एक मन्त्र का उपदेश भी दिया। फिर मैंने भी दधीचि को शिक्षा दी। तब

दधीचि ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर, उस मन्त्र का जाप करते हुए शिवजी की बहुत सेवा-पूजा की। उनकी सेवा से प्रसन्न हो कर शिवजी ने अपना दर्शन देते हुए उनसे वरदान माँगने के लिए कहा। उस समय दधीचि ने अपने दोनों हाथ जोड़ कर भगवान् सदाशिव की बहुत प्रकार से प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिये और यह वरदान दीजिये कि मेरी हड्डियाँ वज्र के समान हो जायें और मुझे कोई न मार सके। मैं किसी के साथ नम्रतापूर्वक वार्तालाप भी न करूँ।" दधीचि ऋषि की प्रार्थना सुन शिवजी ने हँसते हुए उन्हें ये तीनों वरदान दिये। तदुपरान्त दधीचि राजा छू के पास जा पहुँचे और पहुँचते ही उन्होंने उसके मस्तक में एक लात मारते हुए कहा—"यह कौन पड़ा हुआ है।" यह देख कर छू ने भी अत्यन्त क्रुद्ध हो, दधीचि के ऊपर अपने वज्र का प्रहार किया, परन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। राजा छू ने दधीचि के साथ बहुत समय तक युद्ध किया, परन्तु न तो वह विजय प्राप्त कर सका और न उन्हें किसी प्रकार का कष्ट ही पहुँचा सका। उस समय राजा छू को यह निश्चय हुआ कि दधीचि ने शिवजी से कोई वरदान प्राप्त कर लिया है।

हे नारद ! यह देख कर राजा छू लज्जित हो, भगवान् विष्णु का पूजन करने लगा। उसकी भक्ति से प्रसन्न हो कर भगवान् विष्णु लक्ष्मी सहित गरुड़ पर आरूढ़ हो उसे दर्शन देने के लिए आ पहुँचे। उन्हें देख कर राजा छू ने साष्टांग दंडवत् प्रणाम तथा स्तुति करने के उपरान्त यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! दधीचि नामक एक ब्राह्मण पहले मेरा परम मित्र था, परन्तु अब शत्रु बन गया है और शिवजी से वरदान प्राप्त कर, वज्र शरीर एवं अमर हो गया है। उसने मेरा अनादर करते हुए अपने बाएँ पैर से मेरे मस्तक पर लात मारी है और अहंकार में भर कर यह कहा है कि मैं तीनों लोकों में निर्भय हूँ। हे प्रभो ! उस पर विजय प्राप्त करने के निमित्त ही मैंने आपका पूजन किया है, क्योंकि आप अहंकार को नष्ट करने वाले हैं। अस्तु, आप मुझे कृपा

करके यह वरदान दीजिये कि मैं उसके ऊपर विजय प्राप्त कर सकूँ।'' राजा छू की इस प्रार्थना को सुन कर भगवान् विष्णु अपने मन में अत्यन्त चिन्तित हो कर यह विचार करने लगे कि यदि मैं इस समय अपने भक्त को वरदान नहीं देता हूँ तो वेद का वचन मिथ्या होता है। इसके साथ ही यह बात भी है कि यदि मैं इसे वरदान देता हूँ तो भी वेद का वाक्य झूठा होता है; क्योंकि वेद में कहे अनुसार ब्राह्मण सदैव से निर्भय हैं। इसके साथ यह बात भी है कि मैं शिवजी का भक्त हूँ और दधीचि भी शिवजी का भक्त है। इधर राजा छू मेरा भक्त है। अस्तु, दोनों बातों में से मैं किस बात को रखूँ? शिवजी की सृष्टि मेरे द्वारा मोहित नहीं हो सकती, अतः इस सम्बन्ध में मेरी कोई भी न चल सकेगी। इस प्रकार विचार करने के उपरान्त भगवान् विष्णु ने छू से कहा—''हे राजन् ! पहले तो तुम इस बात को अपने मन में निश्चय कर रखो कि शिवजी के भक्त को कहीं भी, किसी प्रकार का भय नहीं होता; तदुपरान्त तुम यह जानो कि हम तुम्हारे सदैव रक्षक बने रहेंगे, जिसके कारण दधीचि अपना हठ त्याग देगा। साथ ही हम तुम्हें यह भी बताये देते हैं कि हम दधीचि को किसी प्रकार शाप दिलवा देंगे।''

ॐ ॐ ॐ

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जब राजा छू ने विष्णु जी का यह कथन स्वीकार कर लिया, तब विष्णु जी ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर, छलपूर्वक दधीचि के पास गये और उन्हें प्रणाम करते हुए बोले—''हे ब्रह्मन् ! आप मुझे एक वरदान देने की कृपा करें।'' अपने भक्त के मनोरथ की प्राप्ति के हेतु जब विष्णु जी ने इस प्रकार कहा, उस समय उनके तात्पर्य को जान कर दधीचि ने निर्भय हो कर इस प्रकार उत्तर दिया—''हे विष्णु ! मैं आपको पहचान गया हूँ। मेरे ऊपर शिवजी की कृपा है, अतः मैं प्रत्येक बात को भली-भाँति जान लेता

हूँ। आप मेरे साथ छल करने के निमित्त ही यहाँ ब्राह्मण भेष धारण कर आये हैं। राजा छू ने आपकी सेवा की है और केवल इसीलिए की है कि वह मुझे परास्त कर सके। अस्तु, अब आपको उचित है कि आप अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करें और अपने घर चले जायें। शिवजी की दया से मैं तीनों काल की बातें जान लेता हूँ और तीनों लोकों में कभी किसी से भयभीत नहीं होता।''

दधीचि के मुख से यह शब्द सुन कर भगवान् विष्णु ने हँसते हुए कहा—''हे दधीचि ! तुम सत्य कह रहे हो, क्योंकि शिवजी की कृपा प्राप्त होने के कारण सदैव निर्भय हो, परन्तु मैं दंडवत् करके तुम से यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि तुम मेरे मनोरथ को स्वीकार कर छू के वरदान को पूर्ण करो।'' यह सुन कर दधीचि ने उत्तर दिया—''हे विष्णु ! शिवजी की कृपा प्राप्त होने के कारण मुझे अब किसी का भय नहीं है। अस्तु, आप मेरे साथ ऐसा छल न करें और अपने लोक को चले जायें।'' तब विष्णु जी बोले—''अरे मूर्ख ! तू मेरी इस बात को क्यों नहीं मानता? मुझसे शत्रुता रख कर कोई सुखी नहीं हो सकता। मैंने रावण आदि महान् बलशाली वीरों को भी नष्ट कर दिया है। तू मेरी अवज्ञा मत कर, अन्यथा मैं तुझे अपने चक्र से मार डालूँगा।

यह सुन कर दधीचि ने कहा—''हे विष्णु ! आपका कथन सत्य है और आप तीनों लोकों को जीत भी सकते हैं। आप ने करोड़ों राक्षसों, दैत्यों तथा अपने शत्रुओं को मारा भी है; परन्तु आप यह ध्यान रखिये कि शिव-भक्तों के ऊपर आपका कोई वश नहीं चल सकता। उनके ऊपर आपका सुदर्शन चक्र निष्फल हो जाता है। इसके प्रमाण स्वरूप मैं आपको स्मरण दिलाये देता हूँ कि तारक के कंठ में लग कर आपका चक्र निष्फल हो गया तथा रावण का भी कुछ नहीं बिगाड़ सका। जिस समय आपने अपने चक्र को निष्फल होते देख कर रावण को मारने के लिए शिवजी का पूजन किया और उन्होंने प्रसन्न हो कर आपको अमोध बाण तथा आज्ञा दी, तभी आप रावण पर विजय प्राप्त कर सके थे। आप यह भली-भाँति जान लें कि शिवजी की भक्ति के

बिना कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता।''

हे नारद ! यह सुन कर विष्णु जी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, अपना चक्र दधीचि के ऊपर छोड़ दिया, परन्तु दधीचि के शरीर का स्पर्श करते ही वह चक्र सर्वथा निष्फल हो गया। उस समय विष्णु जी अपनी ऐसी पराजय देख कर बहुत व्याकुल हुए। तभी दधीचि ने मुस्कराते हुए उनसे इस प्रकार कहा—''हे विष्णु ! आप आश्चर्यचकित न हों। मैं आपको चक्र के निष्फल हो जाने का कारण विस्तारपूर्वक समझाता हूँ। यद्यपि आपने बहुत उपायों द्वारा इस चक्र को प्राप्त किया है; परन्तु यह मुझे अपना मित्र समझ कर नहीं मारता। आप मेरे ऊपर जिस अस्त्र का प्रयोग चाहें करें और अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर मुझे नष्ट करने का प्रयत्न करें परन्तु यह निश्चित है कि आप मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।'' यह सुन कर विष्णु जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने महा भयानक गर्जना की। उस घोर गर्जना को सुन कर देवता, उप-देवता तथा वैकुण्ठवासी लोगों की सेना विष्णु जी के समीप तुरन्त आ पहुँची। तब विष्णु जी उस सेना को साथ ले कर दधीचि के साथ युद्ध करने लगे।''

हे नारद ! विष्णु जी ने सब देवताओं के साथ मिल कर दधीचि के ऊपर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा की। इस प्रकार धर्म के प्रतिकूल चलते हुए, सब ने मिल कर एक मनुष्य को मार डालना चाहा; परन्तु उस दशा में भी दधीचि निर्भय बना रहा। उसने एक मुट्ठी कुश ले कर जैसे ही उन देवताओं की ओर छोड़े, वैसे ही वे पवित्र त्रिशूल बन कर प्रलयकाल की ज्योति के समान चारों ओर अग्नि फैलाते हुए सब को भस्म करने लगे। उन त्रिशूलों ने विष्णु सहित सम्पूर्ण देवताओं को नष्ट कर देना चाहा। यह दृश्य देख कर सब देवताओं ने अपने हथियार डाल दिये और उस स्थान से भाग खड़े हुए। तब विष्णु जी ने माया द्वारा अपने समान करोड़ों पार्षदों को अपने पवित्र शरीर से उत्पन्न किया, परन्तु दधीचि ने शिवजी का ध्यान धर कर, उन सब को भी भस्म कर दिया। अपने गणों को इस प्रकार नष्ट

होते हुए देख कर विष्णु जी ने एक अत्यन्त आश्चर्यजनक चरित्र का आश्रय लिया अर्थात् उन्होंने अपना विराट स्वरूप प्रकट कर, अपने शरीर में तीनों लोकों को दिखाया ताकि दधीचि भयभीत हो जाये; परन्तु उस विराट रूप को देख कर भी दधीचि निर्भय बना रहा और बोला—"हे विष्णु ! आप इस प्रकार माया का प्रदर्शन न करें। यह सब तो केवल मन की शक्ति है। इसमें ईश्वरीय शक्ति कुछ भी नहीं है। आप चाहें तो मेरे शरीर में भी इन सब वस्तुओं को देख लें। तदुपरान्त मुझ से छल करें।" यह कह कर दधीचि ने शिवजी का स्मरण किया और अपने शरीर से सम्पूर्ण जीवों को प्रकट करके दिखा दिया। यह गति देख कर सभी देवता वहाँ से चले गये, परन्तु विष्णु जी की इच्छा युद्ध करने से फिर भी विरत नहीं हुई।

हे नारद ! उस समय विष्णु जी के मन की बात जान कर मैंने उन्हें समझाते हुए कहा "हे विष्णु जी ! आप इस प्रकार हठ क्यों कर रहे हैं। आपकी बुद्धिमत्ता और शक्ति का लोप क्यों हो गया है? क्या आप उन शिवजी के तेज से परिचित नहीं हैं। जो क्षण भर में ही तीनों लोकों को नष्ट कर देने की सामर्थ्य रखते हैं?" मेरी बात सुन कर विष्णु जी ने युद्ध बन्द कर दिया। फिर हाथ जोड़ कर, छू को आगे कर दधीचि की प्रशंसा करते हुए यह कहा—"हे दधीचि ! छू आपकी शरण में आया है और उसने अपने हठ को त्याग दिया है।"

विष्णु जी के इस प्रकार कहने के उपरान्त छू ने भी दधीचि की स्तुति करते हुए कहा—"हे मित्र ! तुम मेरा अपराध क्षमा कर दो। तुम शिवजी के परम भक्त हो और तुम्हारा कथन सब प्रकार श्रेष्ठ है। आप धन्यभाग्य हैं कि आपके ऊपर शिवजी इस प्रकार दयालु हैं। मैं यह भली-भाँति समझ गया हूँ कि तीनों लोकों में शिवजी के समान अन्य कोई नहीं है।" राजा छू के इन शब्दों को सुन कर दधीचि ने भी उसके ऊपर कृपा दिखायी। शिव भक्तों की यही रीति है कि जो व्यक्ति उनकी शरण में पहुँचता है, उस पर वे तब कृपा रखते हैं। अस्तु, दधीचि ने उस समय विष्णु तथा अन्य देवताओं को यह शाप दिया कि

तुम लोगों ने शिव भक्तों की महिमा को नहीं समझा, इस प्रकार तुमने भगवान् सदाशिव का निरादर किया है। अस्तु, तुम सब रुद्र के क्रोध में पड़ कर उनसे पराजित होगे। विष्णु जी भी अपने पार्षदों सहित इसका फल प्राप्त करेंगे। केवल ब्रह्मा ही ऐसे बचेंगे जिन्हें कोई चिन्ता और शोक नहीं होगा।''

इतना कह कर राजा छू की ओर कृपा पूर्ण दृष्टि से देखते हुए दधीचि ने कहा—''हे छू ! तुम यह स्मरण रखो कि ब्राह्मण सर्वोत्तम हैं और वे इस संसार में पूजे जाने योग्य हैं। देवताओं, राजाओं तथा सर्पों आदि से इस प्रकार कह कर, दधीचि अपने घर को चले गये। विष्णु जी भी उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त चिन्तित मन से अपने लोक को लौट आये। ब्रह्मा जी, विष्णु तथा सनकादि को पहले तो अपने हृदय में बहुत ही ग्लानि तथा दुःख हुआ, परन्तु जब उन्होंने अहंकार रहित हो कर शुद्ध बुद्धि से यह पहचाना कि शिवजी सबसे श्रेष्ठ हैं, तो उनका खेद नष्ट हो गया। जिस स्थान पर दधीचि के साथ देवताओं का युद्ध हुआ था, वह स्थान 'हरपुर तीर्थ' तथा 'स्थानेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध है। उस तीर्थ की सेवा करने से सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य स्थानेश्वर तीर्थ में जा कर शिवजी का पूजन करता है, वह सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करता है। जो मनुष्य दधीचि तथा छू की यह कथा पढ़ेगा, उसके सम्पूर्ण शोक नष्ट हो जायेंगे और वह आवागमन से रहित हो जायेगा। जो मनुष्य इस कथा को सुन कर किसी युद्ध क्षेत्र में जायेगा, उसकी निश्चय रूप से विजय होगी अथवा वह श्रेष्ठ मृत्यु को प्राप्त कर, शिवलोक पहुँचेगा।''

ॐ ॐ ॐ

तैंतीसवाँ अध्याय

सूत जी ने कहा—''हे ऋषियो ! इतनी कथा सुन कर देवर्षि नारद जी पितामह ब्रह्मा जी से बोले—''हे पिता ! दक्ष के यज्ञ विध्वंस का वृत्तान्त मैंने सुना। अब आप कृपा कर विस्तारपूर्वक यह बताइये कि

यज्ञ नष्ट हो जाने के उपरान्त क्या घटना घटित हुई। यह सुन कर ब्रह्मा जी ने शिवजी के श्री चरणों का ध्यान धरने के उपरान्त उत्तर दिया— "हे नारद ! जब शिवजी के गणों ने यज्ञ में उपस्थित लोगों की इस प्रकार दुर्गति की तथा उन्हें लज्जित किया, उस समय सभी सभासद् उस स्थान पर आ कर, जहाँ मैं तथा विष्णु जी बैठे हुए थे, रुदन करने लगे तथा विस्तारपूर्वक सब वृत्तान्त बताने लगे। देवताओं तथा मुनियों की उस दुर्गति को देख कर हम दोनों को बहुत दुःख हुआ। उसी समय जब सब लोगों ने 'त्राहिमाम्, त्राहिमाम्' की पुकार की, तब मैंने उन्हें समझाते हुए कहा—"हे देवताओ तथा ऋषियो ! तुमने शिवजी को क्रुद्ध किया है और अन्य देवताओं के समान ही उन्हें जान कर भारी अपराध भी किया है, अतः अब तुम सब लोग शिवजी के चरणों पर गिर कर प्रार्थना करो और उनसे ही अपना अपराध क्षमा कराओ। तीनों लोकों में ऐसा कौन है, जो शिवजी के क्रोध को सहन कर सके? भगवान् सदाशिव रौद्र होते हुए भी, आशुतोष हैं। वे सेवा करने पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। अतः तुम सब उनकी शरण में जाओ। तुम सब शिवजी के बिना यज्ञ में अपना भाग लेना चाहते थे, उसी का फल तुम्हें प्राप्त हुआ है। जो लोग शिवजी के शत्रु बन कर सुख प्राप्ति की कामना करते हैं, उनका अन्त ऐसा ही होता है। जो शिवजी क्षण भर में ही सम्पूर्ण सृष्टि को भस्म कर देने की सामर्थ्य रखते हैं, उनसे शत्रुता करके किस प्रकार सुख मिल सकता है? मैं भी दधीचि के शाप के वशीभूत हो कर उस यज्ञ में चला गया था। अस्तु, तुम लोग निश्चिन्त हो कर शिवजी की शरण में जाओ। वे तुम्हें अवश्य ही क्षमा कर देंगे। एक बात यह भी तुम्हें समझ लेनी चाहिए कि यदि शिवजी इस यज्ञ को नष्ट नहीं करते तो मनुष्य वेद की रीति को त्याग कर, नास्तिक हो जाते। अतः उन्होंने जो कुछ किया वह उचित ही है।"

इतना कह कर मैं, विष्णु जी तथा अन्य सब देवताओं के साथ कैलाश पर्वत पर जा पहुँचा। हे नारद ! उस स्थान की सुन्दरता का वर्णन किस प्रकार किया जाए? वहाँ पहुँच कर, किसी को किसी

प्रकार की चिन्ता और शोक नहीं रहता। वहाँ चारों ओर सुन्दर फुलवारी लगी हुई है, जहाँ भाँति-भाँति के सुन्दर पुष्प तथा फल वृक्षों पर सुशोभित हैं। कैलाश के आगे हम सब ने कुबेर की अलकापुरी को देखा। फिर उस पवित्र वट वृक्ष को देखा, जिसके नीचे भगवान् शिवशम्भु बैठे हुए थे। जो लोग उन शिवजी के दर्शन प्राप्त करते हैं उनके धन्य भाग्य हैं। महाप्रभु का इतना सुन्दर स्वरूप था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका शरीर अत्यन्त कान्तिमय था। उस समय वे वीरासन की मुद्रा में, कुश के आसन पर बैठे हुए थे। तब मैंने, विष्णु जी ने, दधिगुप्त ने तथा अन्य देवताओं एवं ऋषि मुनियों ने उन्हें प्रणाम करते हुए, अनेक प्रकार से स्तुति की।''

ॐ ॐ ॐ

चौंतीसवाँ अध्याय

देवताओं ने कहा—''हे दीनबन्धु भगवान् सदाशिव ! आप सब के रक्षक, सब के स्वामी, परब्रह्म तथा अप्रमेय हैं। आपकी लीला को कोई भी नहीं जानता। आपकी जो इच्छा होती है, वही होता है। हे प्रभो ! दक्ष प्रजापति ने अपनी मूर्खता तथा अज्ञानता के कारण आपको अपने यज्ञ में नहीं बुलाया और नास्तिक बन कर आपके भक्तों का सम्मान भी नहीं किया, जिसके कारण वे सब उसे शाप दे कर अपने घर को लौट गये। उसने आदिशक्ति का भी कोई सम्मान नहीं किया और उन्हें भस्म होने से नहीं रोका। देवताओं ने भी कोई हस्तक्षेप नहीं किया। अस्तु, सब लोग अपने-अपने किये का फल प्राप्त कर चुके हैं। हमें आप से कुछ नहीं कहना है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण दोष देवताओं का ही है। हम सब ने आपको भुला दिया था। अस्तु, अब आप हमारे अपराध क्षमा कर दें और कृपा दृष्टि से देख कर, हमें निर्भय बना दें। हे स्वामिन् ! यदि आप इस प्रकार दण्ड न देते तो धर्म नष्ट हो जाता। आपकी अवज्ञा होती, वेद की प्रतिष्ठा कम हो जाती तथा दक्ष का अहंकार और अधिक बढ़ जाता। अस्तु, आपने जो

कुछ किया, वह सर्वथा उचित है।''

हे नारद ! देवताओं तथा ऋषि-मुनियों द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर मैंने तथा विष्णु जी ने भगवान् सदाशिव की प्रार्थना करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आपकी माया सम्पूर्ण सृष्टि को अचेत किये हुए है। आप अपनी माया के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि को भुलावे में डाले हैं और अपने तीनों रूपों से संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हैं। हे प्रभो ! इस समय हम सब आपकी शरण में आये हैं। अस्तु, आप हम सब पर कृपा कीजिये और हमें वरदान दीजिये, जिसके कारण दक्ष को पुनः जीवन प्राप्त हो। आप भृगु देवता को नेत्र प्रदान कीजिये तथा भृगु ऋषि के क्लेश को दूर कीजिये। आपकी कृपा से पूषा अपने दाँतों को पुनः प्राप्त करें तथा सम्पूर्ण देवताओं के घायल शरीर भी आरोग्य प्राप्त करें। हे नाथ ! आपके यज्ञशाला में चलने पर ही यह सब बात पूरी होगी। हम यह प्रण करते हैं कि भविष्य में आपके बिना कोई भी यज्ञ न होगा।''

हे नारद ! हम लोगों की इस प्रकार स्तुति सुन कर भगवान् सदाशिव अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुस्कुराते हुए बोले—''हे देवताओ ! हम कभी क्रोध नहीं करते तथा कल्प वृक्ष के समान सब को सुख प्राप्त कराते हैं। तुम यह निश्चय जानो कि जो प्राणी जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल अवश्य मिलता है; क्योंकि सांसारिक प्राणी माया में फँस कर सार वस्तु के सच्चे ज्ञान को भुला बैठते हैं। दक्ष ने जो कुछ किया, उसका फल उसे प्राप्त हो गया। अब हम यह वरदान देते हैं कि दक्ष बकरे का मुख पा कर जीवित हो जाएंगे, भृगु मित्र के नेत्रों से देखेंगे, पूषा यजमान के दाँतों से भोजन करेंगे तथा सभी देवताओं के शरीर स्वस्थ हो जाएंगे।'' इतना कह कर शिवजी मौन हो गये। उस समय सब देवता प्रसन्न हो कर जय-जयकार करने लगे तथा यह कहने लगे कि हे प्रभो ! आप अब यज्ञ में अवश्य चलें; क्योंकि आपके बिना यज्ञ पूर्ण न होगा। आप कृपा कर अपने भाग को स्वीकार कीजिये।'' इस प्रकार देवताओं ने जब प्रार्थना की तो शिवजी ने प्रसन्न

हो कर यज्ञ में चलना स्वीकार कर लिया। उस समय सब को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। जिस समय शिवजी यज्ञ स्थल की ओर चले, उस समय की शोभा यह थी कि कोई देवता शिवजी पर चँवर डुलाता था, कोई छत्र लिये चल रहा था और कोई उनकी महिमा का वर्णन कर रहा था।"

ॐ ॐ ॐ

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! इस प्रकार मैं, विष्णु जी तथा अन्य सभी देवता जिस समय शिवजी के साथ चलते हुए दक्ष के यज्ञ-मंडप में जा पहुँचे, उस समय दक्ष के पारिवारिक जनों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त शिवजी की आज्ञानुसार प्रत्येक कार्य किया गया। जब दक्ष के शरीर में यज्ञपशु (बकरे) का सिर लगाया गया तो वह जीवित हो कर इस प्रकार उठ खड़ा हुआ, मानो अभी तक निद्रा में सो रहा हो। शिवजी के दर्शन प्राप्त कर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस समय वह प्रेम में भर कर बकरे की जिह्वा से शिवजी की स्तुति करने लगा। हार्दिक प्रेम का सम्मिश्रण होने के कारण यह स्तुति परम पुनीत एवं सुन्दर है। दक्ष ने कहा—"हे प्रभो ! आपके आदि और अन्त को कोई नहीं जान पाया है। इसीलिए आपने मुझे दण्ड दे कर ब्रह्मज्ञान कराया, यह आपकी मुझ पर अत्यन्त कृपा है। मैंने अपने अज्ञानता तथा मूर्खता के वशीभूत हो कर आपको नहीं पहचाना और आपकी बहुत निन्दा की। अस्तु आप कृपापूर्वक मुझे अपनी भक्ति का वर प्रदान करें।"

दक्ष की स्तुति के उपरान्त विष्णु जी ने कहा—"हे प्रभो ! आपका यश अमृत के समुद्र के समान शुद्ध, शीतल एवं फलदायक है। उस समुद्र में हमारा मन हाथी के समान चिन्ता में जला हुआ, जिस समय बैठता है, उस समय उसे बाहर निकलने की इच्छा नहीं होती। आप दया करके हमारे अपराधों को क्षमा करें।" ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नाथ ! संपूर्ण सृष्टि मुझे बुरा कहती है, परन्तु आपका उपासक होने के

कारण मैं किसी की बातों पर ध्यान नहीं देता।'' ऋत्विज् ने प्रार्थना की—''हे प्रभो ! हम आपको न पहचान पाने के कारण शोक और चिन्ता आदि में पड़े हुए हैं। आपका तेज और प्रकाश अत्यन्त सुन्दर है। अतः हम आपको सहस्त्रों बार प्रणाम करते हैं।'' इसी प्रकार इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि आदि देवता, गन्धर्व, अप्सरा, ब्राह्मण, यजमान, विद्याधर, योगी, सती, ऋषि-मुनि आदि सभी ने शिवजी की अलग-अलग प्रार्थना करते हुए यह माँग की कि, ''हे प्रभो ! आप हमारे अपराधों को क्षमा कर दें। आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी, सब को उत्पन्न करने वाले, सब का पालन करने वाले तथा सब का नाश करने वाले हैं। अस्तु, आप हमारे दोषों पर विचार न करते हुए, हमें अभयदान दें।''

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! तुम इस बात को सत्य समझो कि शिवजी के चरणों का पूजन किये बिना, करोड़ों जन्मों तक भटकते रहने पर भी दुःख दूर नहीं होता। अस्तु, जो बुद्धि बाद में प्राप्त होती है, वह यदि पहले ही प्राप्त हो जाए तो किसी को कष्ट न भोगना पड़ेगा। अब मैं शिवजी की अन्य लीलाओं को कहता हूँ, उन्हें सुनो। भगवान् सदाशिव ने जब सब लोगों द्वारा की गयी स्तुति एवं प्रार्थना को सुना तो उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई। उस समय उन्होंने मुस्कुराते हुए इस प्रकार कहा—''हे देवताओ ! दक्ष ने बकरे की जिह्वा होने के कारण गलबल के रूप में जो उत्तम स्तुति की है, उसी प्रकार जो मनुष्य हमारी प्रार्थना करेगा, उसे सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति होगी। हे सभासदो ! हम, ब्रह्मा तथा विष्णु संसार को मुक्ति-भुक्ति प्रदान करने वाले, परब्रह्म परमेश्वर हैं। हम तीनों गुणों से परे हैं। सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म केवल हमी हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य सब जीव हमारे ही स्वरूप हैं। वेदों का कहना भी यही है, परन्तु जो अज्ञानी जीव उसमें भेद

समझते हैं उन्हें कष्ट उठाना पड़ता है। जो मनुष्य हम तीनों देवताओं को अन्य प्राणियों के समान ही विचारता है और उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं मानता, वह उच्च पद को प्राप्त होता है। जो हम तीनों को भिन्न-भिन्न करके देखता है, वह सहस्त्रों युगों तक शोक में डूबा रहता है। इससे सब लोगों को उचित है कि वे श्रेष्ठ बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर, सब देवताओं तथा मुनियों की सेवा किया करें। ब्रह्मा के पूजन के बिना विष्णु का पूजन व्यर्थ है और विष्णु की सेवा किये बिना मैं कभी प्रसन्न नहीं होता, इस बात को भली-भाँति जान लेना चाहिए।''

इस प्रकार शिवजी ने सब को सम्बोधित करने के उपरान्त भृगु ऋषि की ओर देखते हुए कहा—''हे भृगु ! तुम जो चाहते हो, वही होगा। संसार में जो व्यक्ति विष्णु अथवा हम में भेद मानेगा अथवा विष्णु का भक्त हो कर हमारी निंदा करेगा अथवा हमारा सेवक बन कर विष्णु की बुराई करेगा, वह अवश्य ही नरक को प्राप्त होगा। हम दोनों में भेद रखने वाला मनुष्य तत्त्व ज्ञान से हीन कहा जाता है।'' इस प्रकार के वचन कह कर जब शिवजी ने शापोद्धार का वरदान किया, तो सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये। दक्ष भी अपने परिवार सहित प्रसन्न हो, आनन्द में डूब गया। उस समय सब ओर से 'जय हर-हर' की ध्वनि सुनायी देने लगी और सब लोग भगवान् सदाशिव की स्तुति-प्रशंसा करने लगे।

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जो व्यक्ति शिवजी की जिस भावना से स्तुति करता है, उसकी अभिलाषा को भगवान् सदाशिव अवश्य पूरा करते हैं। यह बात सब लोकों में प्रसिद्ध है कि भगवान् शिव की प्रशंसा से सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति होती है। वेद और पुराणों का यह कथन है कि शिवजी के विरोधी को कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। अस्तु, इस घटना के पश्चात् शिवजी ने दक्ष प्रजापति को सम्बोधित करते हुए यों कहा—''हे दक्ष ! अब तुम यज्ञ फिर से प्रारम्भ करो। हमारी प्रसन्नता द्वारा पूर्णता को प्राप्त होगा।'' शिवजी के मुख से यह वचन सुन कर सब लोग आनन्द मगन हो गये।

तदुपरान्त एक नवीन विशाल मण्डप का निर्माण किया गया। भगवान् शिवशंकर की आज्ञानुसार ऋषि-मुनियों ने पुनः यज्ञ आरम्भ कराया। दक्ष ने भी सब देवताओं सहित श्री शिवजी को यज्ञ का भाग दिया और उन्हें सबसे श्रेष्ठ तथा सबसे बड़ा स्वीकार किया। ब्राह्मणों को यथायोग्य दान देने के उपरान्त दक्ष प्रजापति ने यज्ञ समाप्त हो जाने पर, अपनी पत्नियों सहित नदी में स्नान किया। इस प्रकार भगवान् सदाशिव ने दक्ष के यज्ञ को पूर्ण करवा कर, सब को आनन्द प्रदान किया। तब सब देवता तथा ऋषि-मुनि श्री शिवजी की स्तुति एवं प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर को चले गये। मैं तथा विष्णु जी भी अपने-अपने लोक में लौट आये। परन्तु भगवान् शिवशंकर को दक्ष प्रजापति ने यह कह कर वहीं रोक लिया कि, हे प्रभो ! आप कुछ समय तक यहीं निवास कर हमें अपनी सेवा करने को सौभाग्य प्रदान करें। शिवजी ने भी दक्ष को अपना भक्त जान कर, उसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। अस्तु, कुछ दिनों तक वहीं निवास करने के पश्चात् शिवजी अपने गणों सहित कैलाश पर्वत पर लौट गये।

हे नारद ! यद्यपि शिवजी प्रसन्न हो कर लौटे, परन्तु सती के वियोग का दुःख उनके हृदय से नहीं गया। वे अनेक कथाओं का वर्णन करते हुए, संसारी जीवों के समान चरित्र दिखाते हुए समय व्यतीत करने लगे। हे पुत्र ! भगवान् शिव अनादि और अनन्त हैं। उन्हें किसी प्रकार भी दुःख कैसे हो सकता है?, परन्तु यह सब उनकी माया का ही प्रभाव है। उस माया के भेद को हम लोग नहीं जान पाते और सहस्त्रों युक्तियों द्वारा शिवजी की महिमा को नहीं समझ पाते हैं। वे परब्रह्म परमेश्वर हैं और माया उनकी दासी है। वेद का कहना है कि भगवान् शिव की महिमा का वर्णन किया ही नहीं जा सकता और सरस्वती सब कुछ वर्णन करने के उपरान्त भी यह कहती है कि मैं भगवान् शिवशंकर की महिमा का वर्णन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। विष्णु जी प्रतिदिन भगवान् शिव की सेवा करते रहते हैं और अपने हृदय में उनका भय माना करते हैं। उनके समान दीनों का रक्षक और कौन है? वे अपने

भक्तों के मनोरथ को सब प्रकार से पूर्ण करते हैं। वे अपने भक्तों के निमित्त अनेक प्रकार के दुःख भी उठाते हैं; परन्तु स्वयं किसी को दुःख नहीं पहुँचाते। उनकी सहायता से ही मैं सृष्टि को उत्पन्न करता हूँ तथा उनकी आज्ञा पा कर ही विष्णु जी सृष्टि का पालन करते हैं। उन निर्गुण रूप परम प्रभु शिवजी को मेरा कोटिशः प्रणाम है।''

ॐ ॐ ॐ

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! मैंने दक्ष यज्ञ विध्वंस का सम्पूर्ण वृत्तान्त तथा अहंकार को नष्ट करने वाले शिव-चरित्रों का तत्त्व ज्ञान तुम्हें सुना दिया। अब तुम जो चाहो, वह पूछ लो। यह सुन कर देवर्षि नारद जी ने अपने दोनों हाथ जोड़ कर ब्रह्मा जी की स्तुति एवं प्रशंसा करते हुए नम्रतापूर्वक कहा—''हे पिता ! अब आप यह बताइये कि जब शिवजी कैलाश पर्वत पर लौट गये, उसके पश्चात् क्या हुआ?'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जिस स्थान पर सती ने अपना शरीर त्याग किया था, उस स्थान पर एक परम प्रकाशवान् ज्योतिपुंज का उदय हुआ। वह ज्योतिपुंज पश्चिम दिशा की ओर एक देश में गिर गया। तब उस ज्योतिपुंज का नाम 'ज्वाला भवानी' हुआ। उसकी सेवा करने से सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति होती है। उसको 'ज्वाला देवी' भी कहा जाता है। कल्पभेद के अनुसार सती के अन्य अंग भी प्रकट हुए हैं। वे जहाँ-जहाँ गिरे, उन स्थानों की महिमा अलग-अलग है।''

सूत जी बोले—''हे ऋषियो ! यह वृत्तान्त सुन कर नारद जी ने ब्रह्मा जी से पूछा—''हे पिता ! अब आप कल्पभेद से सती के सम्पूर्ण चरित्रों का वर्णन करें और यह बतायें कि उनके द्वारा किन-किन देवियों की उत्पत्ति हुई है?'' यह सुन कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब तुम कल्पभेद के अनुसार सती के चरित्रों को सुनो। एक कल्प की कथा यह है कि जब सती जी ने दक्ष के यज्ञ में पहुँच कर अपना अपमान तथा शिवजी के निरादर को देखा तो वे अत्यन्त क्रुद्ध

हुईं। उन्होंने अपनी माता के पास पहुँच कर, उन्हें बहुत समझाते हुए कहा—"हे माता ! इस यज्ञ स्थल में बहुत दुःखदायी निन्दनीय कर्म हुआ है। मैं अब अवश्य ही अपने प्राणों को त्याग दूँगी, जिसके कारण सब लोगों को बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। मेरी मृत्यु के पश्चात् शिवजी के गण बहुत उपद्रव मचायेंगे और कोई भी व्यक्ति बिना दण्ड पाये नहीं बचेगा। तदुपरान्त शिवजी भी मेरे वियोग में बहुत दुःखी हो कर तीनों लोकों में भ्रमण करेंगे।"

हे नारद ! इस प्रकार की भविष्यवाणी कर, सती ने उस स्थान से चला जाना चाहा, परन्तु उनकी माता तथा बहनों ने उन्हें रोक लिया। उस समय सती जी योग धारण कर, अन्तर्धान हो गयीं और गंगा तट पर पहुँच कर स्नान करने के उपरान्त नवीन वस्त्रों को धारण कर, गन्धमादन पर्वत पर जा पहुँची। वहाँ उन्होंने सर्वप्रथम शिवजी की पूजा की, तदुपरान्त श्वास को ब्रह्माण्ड पर चढ़ा कर, शरीर को त्याग, परब्रह्म की ज्योति में लीन हो गयीं। उस समय तीनों लोकों में भारी हाहाकार मच गया और एक ऐसा शब्द उत्पन्न हुआ, जिसके कारण दैत्यों के घर नष्ट हो गये और देवता अत्यन्त दुःखी हुए। सती जी के साथ जो गण यज्ञ मंडप में गये थे, वे भी अत्यन्त दुःखी हुए। उनमें से कुछ तो आत्मघात करके मर गये और कुछ विभिन्न प्रकार के उपद्रव करने लगे। यह देख कर भृगु ऋषि ने अपनी मन्त्र-शक्ति द्वारा यज्ञ की रक्षा की। उस समय शिव-गणों ने भगवान् सदाशिव के समीप पहुँच कर सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया और उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना की। उस समाचार को सुन कर शिवजी ने अत्यन्त क्रोधित हो, अपनी जटा को उखाड़ा और उसके द्वारा अनेक गणों को उत्पन्न किया। गणों की उस असंख्य सेना ने दक्ष के यज्ञ मंडप पर धावा बोल दिया और यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। सभी सभासदों को पूरा दंड देने के उपरान्त जब वे शिवजी के पास पहुँचे, उस समय शिवजी का क्रोध तो अवश्य कुछ कम हो गया, परन्तु सती का वियोग सहन करने में वे असमर्थ ही रहे। उसी दुःख में व्याकुल हो कर वे अपने गणों को साथ ले गंगा तट पर जा पहुँचे और जिस स्थान पर सती ने अपना शरीर

त्यागा था, उस स्थान पर पहुँच कर, वहाँ सती के शरीर को पड़ा देख मूर्छित तथा मोहित हो गये। कुछ देर पश्चात् जब उन्हें चेत हुआ तो वही सती का शरीर ऐसा दिखायी दिया, मानो कोई श्रेष्ठ कमल खिला हुआ हो। उस स्वरूप को देख कर शिवजी फिर मूर्छित हो गये। इसी का आश्रय ले कर उन्होंने यह भी प्रदर्शित कर दिया कि मोह सब दुःखों का मूल है।''

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! तुम इस सम्बन्ध में कोई सन्देह मत करना। शिवजी की लीला अत्यन्त विचित्र है। अस्तु, कुछ देर पश्चात् जब शिवजी को चैतन्यता प्राप्त हुई, तब वे अपने को निपट अभागा अनुमान कर अधीर और निर्बल हो गये तथा किसी भी प्रकार सन्तोष धारण न करके, ज़ोर-ज़ोर से रोने-चिल्लाने लगे। 'हे प्राण प्रिये ! तुम्हारे तिरछे नेत्रों को देखे बिना मुझे बेचैनी हो रही है। भला, तुम इतनी निष्ठुर कैसे हो गयी कि मुझ से बोलती तक नहीं हो?'' इस प्रकार कहते हुए शिवजी ने सती जी के मृत शरीर को अपने हाथ से उठा कर हृदय से लगा लिया। तदुपरान्त उसे बार-बार छाती से लगा कर, चूमने लगे। इस प्रकार अपने प्रेम को प्रदर्शित करते हुए, वे फिर मूर्छित हो गये। कुछ देर बाद जब उन्हें चैतन्यता प्राप्त हुई, तब वे सती के मृत शरीर को अपने कन्धे पर लाद कर, घोर दुःख उठाते हुए, चारों ओर भ्रमण करने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण देश, पर्वत, द्वीप, समुद्र, वन, लोकालोक, सप्तशृंग पर्वत आदि सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण किया। तदुपरान्त वे भरतखण्ड में आ कर देव नदी के तट पर खड़े हो गये। उस स्थान पर एक बरगद का बहुत बड़ा तथा श्रेष्ठ वृक्ष था। वहीं दौड़-दौड़ कर शिवजी ने रुदन करना आरम्भ कर दिया। साथ ही 'सती ! प्रिये।' आदि अनेक नाम ले-ले कर, वे सती को पुकारने लगे। उस समय उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।

''हे नारद ! जिस स्थान पर भगवान् सदाशिव के आँसू गिरे, वह स्थान 'नेत्र सरोवर' नामक तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को अपने सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति होती है। वह स्थान तपस्वियों के लिए श्रेष्ठ तपोभूमि है। उस तीर्थ पर स्नान करने से

सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। उस सरोवर की लम्बाई का प्रमाण दो योजन है। अस्तु, वहाँ कुछ समय ठहरने के पश्चात् शिवजी फिर आगे चल दिये। मार्ग में चलते हुए जिन-जिन स्थानों पर सती के मृत शरीर का जो भी अंग पृथक् हो कर गिर पड़ा, वे स्थान 'सिद्धपीठ' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन सिद्धपीठ स्थानों की पूजा करने से सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति होती है। उक्त स्थानों पर भगवती महामाया अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित निवास कर, अपने भक्तों को सर्वस्व प्रदान करती हैं। इस प्रकार लीला करने के उपरान्त शिवजी एक स्थान पर जा कर बैठ गये। सती के मृत-शरीर का जो भाग शेष रह गया था, वहाँ उन्होंने उसका दाह-संस्कार किया। तदुपरान्त उनकी हड्डियों को एकत्रित कर एक माला बनायी, जिसे उन्होंने अपने गले में धारण कर लिया। फिर चिता की भस्म को अपने शरीर पर मल कर, वे उसी स्थान पर बैठ गये और 'प्राणेश्वरी, भवानी' आदि नामों द्वारा सती का स्मरण करते हुए रो-रो कर व्याकुल होने लगे। उन्होंने परब्रह्म होते हुए भी ऐसी लीलाओं द्वारा सब को मोहित कर लिया। हे पुत्र ! भगवान् सदाशिव के इस चरित्र को पढ़ने तथा सुनने से भी मुक्ति की प्राप्ति होती है।''

ॐ ॐ ॐ

अड़तीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाकर पौराणिक सूत जी ने कहा—''हे शौनकादि ऋषियो ! सिद्धपीठ के इस वृत्तान्त को सुनकर देवर्षि नारद जी ने ब्रह्माजी से कहा—हे पिता ! सती के अंगों द्वारा जिन-जिन स्थानों पर जो-जो पीठ उत्पन्न हुए, अब उनके सम्बन्ध में मुझे बताने की कृपा करें।'' यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! सिद्ध पीठों का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तुम्हें सुनाता हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो। देवपुर नामक परम रमणीक पर्वत पर सतीजी के दोनों चरण गिरे, उस स्थान पर 'महाभागा देवी' प्रकट हुईं। वहाँ शिवलिंग भी विराजमान हैं। औद्यानि देश में सतीजी के दोनों नितम्ब गिरे, वहाँ 'कात्यायनी' सिद्धपीठ

प्रकट हुआ। वहाँ भी शिवलिंग विराजमान है। मैंने, विष्णु जी ने तथा सम्पूर्ण सृष्टि ने उस स्थान की पूजा की। कामशैल पर्वत पर सतीजी की योनि गिरी, वहाँ 'कामाक्षा' नामक देवी की उत्पत्ति हुई। उन्हें 'कामरूपा' भी कहा जाता है। हम सब लोगों ने उस सिद्धपीठ की पूजा करके अपने मनोरथों को प्राप्त किया। सती जी की अग्नि द्वारा पूर्णशैल पर्वत पर 'पूर्णेश्वरी भवानी' शिवलिंग सहित प्रकट हुईं। जलन्धर नामक पर्वत पर सती के कुच गिरे, जिससे वहाँ चण्डी नामक देवी का सिद्धपीठ प्रकट हुआ। गंगा जी के तट पर भी सतीजी का एक अंग कट कर गिरा जिससे उस स्थान पर 'वागीश्वरी देवी' का आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार सती जी के अंग-प्रत्यंगों के गिरने पर बहुत-से सिद्धपीठ प्रकट हुए। उन सभी स्थानों पर शिवलिंग भी स्थापित हुए हैं। मैंने, विष्णु जी तथा अन्य सभी देवताओं ने उन सिद्धपीठों का पूजन कर, सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त किया है। जो व्यक्ति इन सिद्धपीठों की पूजा करता है, उसकी सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं।

हे नारद ! शिवजी ने सांसारिक मनुष्यों के विशेष उपकार के लिए यह लीलाएं की हैं, क्योंकि वे अपने भक्तों को भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। शिवजी तथा भवानी सम्पूर्ण सृष्टि के माता-पिता हैं। तीनों लोकों में उनकी समता का कोई स्त्री-पुरुष नहीं हैं। वे दोनों लोक-परलोक का सुख प्रदान करने वाले हैं और तीनों लोकों में सबसे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकृति का मूल जगदम्बा सती द्वारा ही है। मैं तथा विष्णु जी आदि सब देवता उन्हीं भवानी के सेवक हैं। शिवजी साक्षात् परब्रह्म, निर्गुण सगुण तथा अप्रमेय हैं। शिव तथा भवानी की सेवा करने वाले मनुष्य भवसागर से पार हो जाते हैं।

हे नारद ! दक्ष के यज्ञ में शरीर त्यागने के पश्चात् सतीजी ने पर्वतराज हिमाचल के घर, उनकी मैना नामक पत्नी के गर्भ से जन्म लिया। वहाँ उन्होंने अनेक प्रकार की श्रेष्ठ लीलाएँ करके अपने माता-पिता को बहुत आनन्द दिया तथा उनकी आज्ञा लेकर शिवजी की तपस्या की। फिर शिवजी के साथ ही उनका विवाह हुआ। उन्होंने

शिवजी की अर्द्धांगिनी होकर देवताओं के सम्पूर्ण दुःख दूर किये। फिर शिवजी की उपासना करके अपने शरीर का रंग गौर कर लिया।

हे नारद ! शिव और शक्ति अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर उन्हें सब प्रकार के आनन्द प्रदान करते हैं। वे सम्पूर्ण सृष्टि के माता-पिता हैं और उनसे बाहर कोई भी नहीं है। जब प्राणी के हृदय में यह बुद्धि उत्पन्न हो जाती है और इस बात का भली-भांति ज्ञान हो जाता है कि शिव और शक्ति ही सृष्टि के मूल कारण हैं, तब वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर, परमपद को प्राप्त कर लेता है। मैं उन्हीं की कृपा प्राप्त करके सृष्टि को उत्पन्न करता हूँ और उन्हीं की शक्ति पाकर विष्णुजी संसार का पालन करते हैं। उन शिव और शक्ति को मैं, विष्णु जी तथा सनकादिक की भली-भाँति नहीं जान सके हैं। केवल अपनी बुद्धि के अनुसार ही हम उनकी महिमा का थोड़ा-बहुत वर्णन कर लिया करते हैं।

हे नारद! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार शिव-सती के चरित्र को कहा है। इसी प्रकार अन्य सभी लोग भी अपनी बुद्धि के अनुसार चरित्र का वर्णन करते हैं, परन्तु अन्त में दीन होकर पार नहीं पाते। भगवान् सदाशिव एवं भगवती सती का यह चरित्र परम पवित्र तथा आनन्द बढ़ाने वाला है। इसको सुनने से कीर्ति तथा आयु की वृद्धि होती है। यह चरित्र सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराने वाला है। शिव और सती का यह चरित्र जो स्वयं पढ़ता है अथवा दूसरों को सुनाता है, वह अपने कुल सहित समस्त विपत्तियों से छूट जाता है और इस संसार में अनेक प्रकार के आनन्द का उपभोग करने के पश्चात् अन्त में शिवलोक को प्राप्त होता है। हे नारद! मैंने तुमसे यह सब चरित्र कहा। अब तुम और जो सुनना चाहते हो, उसे बताओ।''

इति श्री शिवपुराणे श्री शिवविलासे उत्तरखण्डे भाषायां ब्रह्मा-नारद सम्वादे द्वितीयो खण्डस्समाप्तः ॥ २॥

ॐ ॐ ॐ

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

तीसरा खण्ड

पहला अध्याय

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! इतनी कथा सुनकर नारदजी ने ब्रह्मा जी से कहा—"हे पिता! अब आप मुझे यह बताइये कि सती ने दूसरा अवतार किस प्रकार लिया, उनका विवाह शिवाजी के साथ किस प्रकार हुआ और उन्होंने अर्द्धांगिनी नाम किस प्रकार पाया? इसके अतिरिक्त आप मुझे शिव-पार्वती की अन्य लीलाओं को भी सुनायें, क्योंकि शिव-चरित्र सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती है। इसके विपरीत यह इच्छा अधिक बढ़ती जाती है कि मैं भगवान् शिव के चरित्र को निरन्तर सुनता रहूँ।" नारदजी के मुख से यह वचन सुनकर ब्रह्माजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे नारद ! दक्ष-यज्ञ में भस्म होने से पूर्व सती ने शिवजी से यह वरदान माँगा था कि मुझे आपके चरणों की भक्ति सदैव प्राप्त हो और आपकी प्रीति भी मेरे ऊपर कभी कम न हो। इतना कहकर उन्होंने अपने शरीर को भस्म कर दिया, तदुपरान्त मैना के गर्भ से दूसरा जन्म लिया।

यह सुनकर नारदजी बोले—"हे पिता ! मैं मैना को नहीं जानता हूँ। अस्तु, आप विस्तारपूर्वक यह बताने की कृपा करें कि मैना किसकी पुत्री थी और किसके साथ विवाह हुआ था।" ब्रह्माजी ने कहा—"हे नारद ! उत्तर दिशा की ओर सम्पूर्ण पर्वतों का राजा हिमालय नामक पर्वत है। वह पर्वत प्रदेश अत्यन्त रमणीक है। उसी हिमालय प्रदेश के एक देश में, एक राजा राज्य करता था। उसके राज्य की शोभा का किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ

बिना तेल के ही दीपक जलते हैं और वहाँ के निवासी अपने घरों में देवदारु की लकड़ी जला कर प्रकाश करते हैं। वहाँ की बर्फ पत्थर की शिला के समान कठोर होती है जिसके ऊपर लोग चलते हैं। यदि कोई छोटा मनुष्य भी वहाँ जा पहुँचता है तो वहाँ के निवासी उच्च पद वाले व्यक्ति भी, उसका आदर तथा सम्मान करते हैं। उस पर्वत पर ऐसी गायें हैं कि लोग उनकी पूँछ का मोरछल बनाते हैं और वे वन में निर्भय होकर स्वच्छन्द विचरण किया करती हैं। वहाँ की स्त्रियाँ भी निर्भय होकर स्वच्छन्द जहाँ भी चाहें, वहाँ घूमती रहती हैं। सहस्त्रों प्रकार के सुगन्धित पुष्प वहाँ सर्वत्र खिले रहते हैं।''

हे नारद ! अब मैं तुमसे उस पर्वत की श्रेष्ठता का वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार कि उसने मेरे द्वारा उच्च पद प्राप्त किया। सर्वप्रथम जब मैंने यह विचार किया कि पर्वतों का राजा किसे बनाना चाहिए तब मैंने हिमालय पर्वत में सम्पूर्ण लक्षण देखकर, उसे राजा बनाना निश्चित किया, क्योंकि वह पर्वतराज विष्णु के अंश से उत्पन्न हुआ है। उसका सम्पूर्ण शरीर देवताओं के समान सुन्दर है तथा उसका स्वरूप सत्पुरुषों के समान है। वह विशाल शरीरधारी, पुष्ट, परम तेजस्वी, निष्पाप तथा बहुत बुद्धिमान् है और वह अपने समान आप ही है। वह न तो औरों को दिखाई देता है और न कोई उसके पास पहुँच ही सकता है। पर्वतों का स्वामी होने के पश्चात् वह नीतिपूर्वक राज्य करता हुआ, प्रजा का पालन करने लगा। उसकी प्रजा भी शुद्ध आचरणों वाली तथा व्रत-नियमों को धारण कर धर्म-मार्ग पर सदैव दृढ़ रहती थी। जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से रस लेता है तथा वर्षा द्वारा पुनः उसी को दे देता है, उसी प्रकार वह राजा भी अपनी प्रजा से जो कर लेता था, उस सब को उसी की भलाई में व्यय कर देता था।

हे नारद ! हिमाचल सम्पूर्ण राज्य लक्षणों को धारण किये हुए था। वह परम शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी था। वह चिकित्सा तथा उपाय से रहित होकर अपने शरीर का पालन करता था और किसी कार्य में शीघ्रता नहीं दिखाता था। वह दूसरों के आनन्द के लिए धन संचित करता था और इसलिए मौन रहता था कि अधिक न बोलने से

श्रेष्ठ बुद्धि की प्राप्ति होती है। शक्तिशाली होते हुए भी वह दीन बना रहता था। त्याग तथा सन्तोष की कीर्ति का प्रकाश बढ़ाकर, उसने अहंकार से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया था। यद्यपि वह युवा था तो भी वृद्ध पिता की भाँति अपनी पुत्र रूपी प्रजा का उदारतापूर्वक पालन करता था। वह दंड देने योग्य व्यक्तियों को इसलिए दंड देता था ताकि धर्म स्थिर बना रहे। वह प्रत्येक विद्या तथा गुण का ज्ञाता था। उसके राज्य में चोरों ने चोरी करना छोड़ दिया और वे वेद की आज्ञानुसार चलने लगे। उसके मित्र उसके प्रति हृदय में सच्चा स्नेह रखते थे। उसके राज्य में किसी को कष्ट नहीं था।

हे नारद ! उस श्रेष्ठ राजा के विवाह के लिए सब देवताओं ने उद्योग किया। उन्होंने अपने मनोरथ की पूर्ति के हेतु पितरों से कहा कि आप अपनी बड़ी पुत्री, जिसका नाम मैना है, का विवाह हिमाचल के साथ कर दीजिये। ऐसा करने से देवताओं के अनेक कार्य सिद्ध होंगे तथा सब लोगों के दुःख दूर हो जायेंगे। अपनी पुत्रियों के शाप का स्मरण कर, पितारों ने देवताओं की यह बात स्वीकार कर ली तथा एक शुभ लग्न में मैना का विवाह हिमाचल के साथ कर दिया। विवाह में आनन्द-मंगल की जो-जो रीतियां होती हैं, ये सब यथाविधि सम्पन्न हुईं। उस विवाह को देखकर मुझे, विष्णुजी को तथा देवताओं को यह समझ कर विशेष प्रसन्नता हो रही थी कि इसके घर में जो पुत्री उत्पन्न होगी वह भगवान् सदाशिव को ब्याही जायेगी। अस्तु, विवाह हो जाने के उपरान्त हिमाचल मैना को साथ ले अपने घर को लौट गये।''

ॐ ॐ ॐ

दूसरा अध्याय

सूत जी बोले—हे शौनकादि ऋषियो ! इतनी कथा सुनने के पश्चात् नारदजी ने ब्रह्माजी से इस प्रकार कहा—''हे पिता ! यह वृत्तान्त सुनकर मेरे मन में एक सन्देह उत्पन्न हुआ है, अतः आप उसका

निराकरण कर दें। आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि मैना की कितनी बहनें और थीं? क्योंकि आप अभी यह बता चुके हैं कि मैना अपनी बहनों में सबसे बड़ी थी। आप यह भी बताइये कि उन बहनों को किसने शाप दिया था?" यह सुनकर ब्रह्माजी बोले—"हे नारद ! मेरे पुत्र दक्ष प्रजापति ने सर्वप्रथम बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये, परन्तु उनके द्वारा दक्ष को आनन्द लाभ न हुआ, क्योंकि वे मुक्ति पाकर परमपद को जा पहुँचे। तब यह देखकर दक्ष प्रजापति ने सात कन्याएँ उत्पन्न कीं और उनका विवाह चन्द्रमा आदि के साथ कर दिया। यह वृत्तान्त पहले भी सुना चुका हूँ। दक्ष की उन पुत्रियों में एक लड़की का नाम 'स्वधा' था। उसका विवाह पितरों के साथ हुआ। स्वधा के गर्भ से तीन कन्याओं ने जन्म लिया। उनमें सबसे बड़ी का नाम मैना, मझली का नाम धन्या तथा छोटी का नाम कलावती था।

हे नारद ! प्रातःकाल के समय जो मनुष्य इनका नाम लेता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूरे होते हैं। इनके शुद्ध चरित्र को सुनने से आनन्द की प्राप्ति होती है, क्योंकि तीनों लोकों में सम्मान प्राप्त करने वाली ये इसी योग्य हैं। एक दिन की बात है कि तीनों कन्याएँ श्वेतद्वीप में जाकर, क्षीर समुद्र के निकट भगवान् विष्णु के समीप जा पहुँचीं और वहाँ विष्णुजी के दर्शन करने के उपरान्त उनकी स्तुति करके, उनकी आज्ञा से वहीं एक स्थान पर बैठ गयीं! कुछ देर पश्चात् मेरे पुत्र सनकादिक भी वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने दूर से ही भगवान् विष्णु को प्रणाम किया। सनकादिक को आते देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग उठकर खड़े हो गये तथा सम्मानपूर्वक उन्हें प्रणाम करने लगे, परन्तु हे नारद! वे तीनों कन्याएँ अपने स्थान पर ज्यों-की-त्यों बैठी रहीं। उन्होंने न तो सनकादिक को प्रणाम किया और न उनका सम्मान ही किया।

हे नारद ! दूसरों को दोष भले ही दे दिया जाए, परन्तु सत्य बात तो यह है कि शिवजी की जो इच्छा होती है, वही होता है। भगवान् सदाशिव की आज्ञा को ही भाग्य अथवा कर्म कहते हैं। अस्तु, उन तीनों कन्याओं की ढिठाई को देखकर सनत्कुमार को बहुत क्रोध

हुआ। यद्यपि वे लोग बुद्धिमान्, निरहंकार तथा परमहंस हैं, परन्तु उस समय शिवजी की माया में पड़कर वे अपने ज्ञान को भुला बैठे। भला, तीनों लोकों में ऐसा कौन है, जो शिवजी की माया तथा इच्छा पर विजय प्राप्त कर सके। अस्तु, सनत्कुमार ने उनको सम्बोधित करके कहा—''अरी ! तुम तीनों बहनें परम मूर्ख हो। तुम वेद के आशय को नहीं समझ पायी हो और तुमने यह बात नहीं जानी है कि ब्राह्मण समस्य प्राणियों द्वारा पूजा जाने योग्य हैं। तुमने अहंकार के वशीभूत हो, मनुष्यों के समान अपने मार्ग को त्याग दिया है और हमारा बहुत निरादर किया है, अतः हम तुम्हें यह शाप देते हैं कि तुम देवभूमि स्वर्ग को त्यागकर, मनुष्यों के देश में जाकर रहो।''

हे नारद ! इस शाप को सुनकर वे तीनों आश्चर्य चकित रह गयीं और सनत्कुमार की प्रार्थना करती हुई बोलीं—''हे मुनि ! हमसे यह बड़ा भारी अपराध हुआ जो आपका सम्मान नहीं किया। वास्तव में यह अपराध हमसे मनुष्य के समान ही बन पड़ा है। उसका फल भी हम प्राप्त कर चुकी हैं। परन्तु अब हम आप से प्रार्थना करती हैं कि आप हमें यह वरदान दें कि जिस समय हमारा पाप नष्ट हो जाए, तब हम फिर इसी स्वरूप को प्राप्त कर लें।'' उनके इन विनीत वचन को सुनकर सनत्कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—''हे कन्याओ ! तुम्हारी प्रार्थना सुनकर हमारे मन का क्षोभ दूर हो गया है। अस्तु, हम प्रसन्न होकर तुम्हें यह वर देते हैं कि तुम में जो सबसे बड़ी कन्या है, वह विष्णु के अंश से उत्पन्न पर्वतराज हिमाचल की पत्नी होगी और उसके गर्भ से जो लड़की उत्पन्न होगी, वह शिवरानी होकर अपने कुटुम्ब के लोगों का सब पाप नष्ट कर देगी। मंझली कन्या का विवाह त्रेतायुग में राजा जनक के साथ होगा। उसके गर्भ से सीता का जन्म होगा, जो भगवान् रामचन्द्र के साथ ब्याही जायेंगी। तीसरी बहन का विवाह द्वापर युग में वैश्य वर्ण वृषभानु के साथ होगा। उसकी पुत्री राधा भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी होंगी। इस प्रकार तुम तीनों ही पुनः अपनी गति को प्राप्त होकर, स्वर्ग में आ पहुँचोगी। इतना कहकर

सनकादिक वहाँ से चले गये। तब वे तीनों कन्याएँ भी अपने पिता के घर लौट आयीं।''

इतनी कथा को सुनकर नारद जी ने पूछा—''हे पिता ! इसके बाद क्या हुआ, वह आप मुझसे कहिये।'' ब्रह्मा जी बोले—हे पुत्र ! अब मैं आगे का यह वृत्तान्त भी कहता हूँ, जिसे सुनकर भगवान् सदाशिव के चरणों में भक्ति उत्पन्न होती है।''

ॐ ॐ ॐ

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जब हिमाचल विवाह करके अपने घर लौटे उस समय उनके राज्य में बहुत आनन्द मनाया गया। ब्रह्माणों की सेवा करके उन्हें दान-दक्षिणा देकर बहुत प्रसन्न किया गया। तदुपरान्त देवता तथा ऋषि, मुनि आदि अपने मनोरथों की प्राप्ति के लिए हिमाचल के समीप पहुँचे। हिमाचल ने सबका स्वागत सत्कार करते हुए कहा—''आज मेरा अहोभाग्य है जो आप सबने यहाँ पधार कर मेरे घर को पवित्र किया है। अब आप मुझे अपना सेवक जानकर कोई आज्ञा दीजिये। हिमाचल के इन विनम्र वचनों को सुनकर देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—''हे हिमाचल ! हम लोग तुम्हारे पास इसलिए आये हैं कि तुम्हारे, द्वारा देवताओं के कार्य की सिद्धि होगी। तुम यह तो जानते हो कि सती ने दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग दिया था। अस्तु, अब तुम ऐसा उपाय करो, जिससे वे तुम्हारी कन्या बनकर पुनः जन्म लें। ऐसा करने से उन्हें तो आनन्द प्राप्त होगा ही, तीनों लोकों का भी कल्याण होगा।''

हे नारद ! इस प्रकार हिमाचल को युक्ति बताने के उपरान्त सब देवता भगवती जगदम्बा की शरण में गये और उनकी बहुत प्रकार से स्तुति-प्रशंसा करन लगे। उस समय आदि शक्ति ने अपने पूर्ण स्वरूप को प्रकट कर उन्हें दर्शन दिया। वे भगवती श्रेष्ठ रथ पर विराजमान थीं और उसके शरीर से करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश निकल रहा

था। जब देवता उनके तेजस्वी स्वरूप के तेज को सहन करने में असमर्थ हुए, तब भगवती जगदम्बा ने कृपा करके उन्हें ऐसी शक्ति प्रदान की, जिससे वे स्थिर रह सकें। अस्तु, भगवती महामाया के प्रकट होने पर देवता तथा ऋषि-मुनियों ने हाथ जोड़कर उनकी प्रार्थना करते हुए यों कहा—"हे मातेश्वरी! आप सर्वश्रेष्ठ हैं। आपकी शरण में पहुँचे हुए जीव को कभी दुःख प्राप्त नहीं होता। हे जगदम्बे! अब हम आपकी शरण में आये हैं। अस्तु, आप हमारे मनोरथों को पूर्ण करें अर्थात् पृथ्वी पर दूसरा जन्म लेकर शिवरानी का पद ग्रहण करें, जिससे सब देवताओं का दुःख दूर हो तथा ब्रह्मा एवं विष्णु को भी प्रसन्नता प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त सनत्कुमार जो भविष्यवाणी कर चुके हैं, उसको पूर्ण करना भी आपका ही कार्य है। अस्तु, आप हमारी इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करने की कृपा करें।"

हे नारद ! देवताओं द्वारा की गयी इस प्रार्थना को सुनकर भगवती जगदम्बा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मधुर वाणी में कहा—"हे देवताओ ! हमारी अपनी भी यही इच्छा थी। अब हम तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार कर अवश्य ही अवतार लेंगी। हिमाचल तथा मैना हमें प्राप्त करने के लिए तप कर रहे हैं। उनसे बड़ा भक्त अन्य कोई नहीं है। अतः उन्हीं के घर हम प्रकट होंगी। अब तुम सब लोग हमारे कथन पर विश्वास रखकर, अपने-अपने घरों को जाओ। हम तुम्हारे दुःख को अवश्य ही दूर करेंगी। और सुनो, हम तुम पर एक गुप्त रहस्य और प्रकट किये देती हैं। वह यह है कि शिवजी ने भी हमारे दुबारा अवतार लेने के लिए अनेक उपाय किये हैं। जब से हमने दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शरीर त्यागा है, तब से वे संसार से विरक्त होकर हमारे वियोग में अत्यन्त दुखी हैं। उन्होंने हमारे शरीर की भस्म को अपने शरीर में मल रक्खा है और हमारी हड्डियों की माला को कण्ठ में पहन रक्खा है। हमारे वियोग-दुख में दुःखी होकर वे अब तक अकेले ही वनों में भ्रमण करते रहते हैं और देवताओं की सभा में नहीं गये हैं। अस्तु, तुम अपने मन में किसी प्रकार का सन्देह मत करो। तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख अवश्य

ही दूर हो जायेंगे। इतना कह कर भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। तब सब देवता भी उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने घर लौट गये। हे नारद ! इस चरित्र को जो कोई सुनेगा अथवा सुनायेगा, उसे परम पद की प्राप्ति होगी और उसके यहाँ धन, सन्तान आदि की निरन्तर वृद्धि होती रहेगी।"

❀❀❀

चौथा अध्याय

ब्रह्माजी ने कहा—"हे नारद ! हिमाचल ने अब अपनी पत्नी मैना को देवताओं की आज्ञा सुनायी तो मैना को बहुत प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त दोनों पति-पत्नी गृहस्थ धर्म का अति उत्तम रीति से पालन करने लगे। मैना ने शिवजी की सेवा-पूजा आरम्भ कर दी तथा प्रतिदिन उन्हीं कार्यों में अपना समय व्यतीत करने लगी, जिनके करने से शिवजी प्रसन्न होते हैं। दोनों पति-पत्नी शिव तथा शिवरानी के स्मरण एवं ध्यान में मग्न हो गये। हे नारद ! शिवजी के भक्त परम धन्य हैं। वे लोक तथा परलोक में अत्यन्त आनन्द तथा पुण्य प्राप्त करते हैं तथा अपने कुल को ही नहीं, अपितु औरों को भी मुक्त कर देते हैं। अस्तु, हिमाचल ने भगवती जगदम्बा की आराधना आरम्भ की और मैना से भी यह कहा कि तुम अपनी तपस्या द्वारा आदिशक्ति तथा शिवजी को प्रसन्न करने का उपाय करो। इस प्रकार वे दोनों शिव तथा शक्ति की उपासना करने लगे।

हे नारद ! उन दोनों ने शिव तथा शक्ति की उपासना करने के अतिरिक्त अन्य सब कार्यों को भुला दिया। वे अष्टमी के दिन व्रत रखने तथा शिवजी का पूजन किया करते थे। श्रावण मास में शिव व्रत रखने के उपरान्त उसकी पूर्णता के निमित्त गंगा तट पर बसे औषधप्रस्थ देश में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने शिवलिंग की स्थापना कर, तपस्या करना आरम्भ किया। उस तप की अवधि बीस वर्ष की थी। उस बीच में उन्होंने कभी बिना अन्न-जल ग्रहण किये और कभी केवल वायु

का ही भक्षण करते हुए, शिव तथा शक्ति का विधिवत् पूजन किया। जब वह तपस्या पूर्ण हुई, तब भगवती उमा ने प्रकट होकर उन्हें अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। उनका शरीर सजल मेघ के समान श्रेष्ठ श्यामवर्ण था तथा आठ हाथ और तीन आँखें थीं। वे सब प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत थीं। हे नारद ! तब उन भगवती ने प्रकट होकर मैना से कहा—"हे मैना ! तुम अपने मनोरथ को प्रकट करो, जो चाहो, माँग लो।"

हे नारद ! जब मैना ने अपने नेत्र खोल कर भगवती जगदम्बा के स्वरूप को देखा तो उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए कहा—"हे माता ! मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मुझे आज आपके दर्शन प्राप्त करने का यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं इस समय आपकी कुछ स्तुति करना चाहती हूँ, परन्तु हे माता ! न तो मुझे कुछ ज्ञान ही है और न मैं विद्या ही जानती हूँ, जिससे अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण कर सकूँ। यह जानकर भगवती महामाया ने मैना के शरीर से अपने हाथ से स्पर्श करा दिया, जिसके कारण उसे उसी समय श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हुई। तब वह अत्यन्त प्रेममग्न होकर अपनी आँखों से अश्रुवर्षा करने लगी। उस समय उसने ऐसे कठिन शब्दों से युक्त श्रेष्ठ पदावली में जगदम्बा की स्तुति की, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् भी अच्छी तरह नहीं समझ सके। उस स्तुति को सुनकर भगवती ने कहा—"हे मैना ! जो व्यक्ति इस स्तुति को सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करेगा तथा संसार में स्त्री, पुत्र, धन आदि प्राप्त करके, अन्त में मेरे लोक में आवेगा।"

भगवती महामाया के इन कृपापूर्ण वचनों को सुनकर मैना ने हाथ जोड़कर कहा—"हे मातेश्वरी ! तीनों लोकों में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे आप न दे सकती हैं? अस्तु, अब मेरी आप से यही प्रार्थना है कि सर्वप्रथम मेरे गर्भ से अत्यन्त वीर, धीर तथा गुणी सौ पुत्रों का जन्म हो। वे ब्रह्मज्ञानी होकर अपने कुल का मान बढ़ायें तथा दोनों वंशों को मुक्ति देने वाले सिद्ध हों। तदुपरान्त मेरे गर्भ से एक कन्या का जन्म

हो, जो सब बातों में आपके समान ही हो। तीनों लोकों में उसके समान और कोई न हो और वह देवताओं की दुःख रूपी जड़ को काटने में कुल्हाड़ी के समान सिद्ध हो सके।

मैना की इस प्रार्थना को सुनकर भगवती जगदम्बा ने मुस्कुराकर कहा—''हे मैना ! तुम्हारी बुद्धि को धन्य है, जो तुमने ऐसा वर माँगा है। मैं तुम्हें इच्छित वर देती हूँ और यह बताती हूँ कि तुमने जिस प्रकार के सौ पुत्रों की कामना की है, वे तुम्हारे गर्भ से उसी रूप से जन्म लेंगे, परन्तु अपने समान मैं स्वयं ही हूँ अस्तु, तुम्हारी मनोभिलाषा की पूर्ति के हेतु मैं स्वयं ही तुम्हारे घर में अवतार लूँगी।'' इतना कहकर भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। तब जिस दिशा की ओर वे अन्तर्धान हुई थीं, उस दिशा की ओर प्रणाम करने के पश्चात्, मैना भी अपने घर को लौट चली। जब उसने घर जाकर हिमाचल को सब वृत्तान्त सुनाया तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने मैना की बहुत प्रकार से प्रशंसा की। तदुपरान्त हिमाचल ने इस उपलक्ष्य में एक बहुत बड़ा उत्सव मनाया।''

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जिस दिन से सती ने अपने शरीर को त्यागा था, उसी दिन से भगवान् सदाशिव अवधूत स्वरूप धारण कर, साधारण मनुष्यों के समान पत्नी-वियोग से दुःखी हो, संसार में सब ओर भ्रमण करते रहे। वे परमहंस योगियों के समान नग्न शरीर, सर्वांग में भस्म मले हुए, मस्तक पर जटाजूट धारण किये, गले में मुण्डों की माला पहने हुए, भ्रमण करते रहे। कुछ समय तक इस प्रकार भ्रमण करने के उपरान्त वे एक पर्वत की कन्दरा में जा बैठे और घोर तप करने लगे। अकेले रह जाने पर उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाये। एक दिन ये दिगम्बर वेषधारी शिवजी दारुक वन में जा पहुँचे। वहाँ उन्हें नग्नावस्था में देखकर, मुनियों की स्त्रियाँ उनके सुन्दर

स्वरूप पर मोहित हो, काम के आवेग में उनसे लिपट गयीं। यह देखकर सब मुनियों ने शिवजी को शाप दिया। उस शाप के कारण शिवजी का लिंग उनके शरीर से पृथक् होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उस समय तीनों लोकों में भारी हाहाकार मच उठा।''

इस कथा को सुनकर नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—''हे पिता ! मैं चाहता हूँ कि आप शिवजी के चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''अच्छा सुनो, जिस समय शिवजी दिगम्बर वेष में वन में भ्रमण कर रहे थे, उस समय ऋषि-मुनि तो कहीं अन्यत्र गये थे, केवल उनकी स्त्रियाँ ही घरों में थीं। उस कठिन अवस्था में भी शिवजी का स्वरूप इतना सुन्दर था कि उसे देखते ही सब ऋषि-पत्नियाँ उनके ऊपर मोहित हो, काम के वशीभूत हो गयीं। वे आपस में एक दूसरी को सम्बोधित करती हुई यों बोलीं—''हे सखी ! उस स्त्री को बड़ी भाग्यवान् समझना चाहिए, जो इनके शरीर से जा लिपटें।'' इस प्रकार कहकर वे सब स्त्रियाँ काम के वशीभूत हो, हँसती, मुस्कुराती हुई शिवजी से जाकर लिपट गयीं। उसी समय उनके पति भी लौट कर वहाँ आ पहुँचे। जब उन्होंने यह दृश्य देखा तो वे अत्यन्त क्रोध में भरकर शिवजी से कहने लगे—''अरे मूर्ख ! नारकी, अधर्मी, पापी, अनाचारी, तू यह कैसा पाप कर रहा है? तूने वेद के विरुद्ध अधर्म को स्वीकार किया। तूने अपने इस स्वरूप द्वारा हमारी स्त्रियों के धर्म को बिगाड़ा है। अस्तु, हम तुझे यह शाप देते है कि तेरा लिंग पृथ्वी पर गिर पड़े।''

हे नारद ! उन ऋषियों के इस प्रकार कहते ही शिवजी का लिंग कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और पृथ्वी को पार करता हुआ पाताल के भीतर जा पहुँचा। इधर लिंग-हीन हो जाने पर शिवजी भी अत्यन्त लज्जित हुए। फिर उन्होंने अपने स्वरूप को प्रलयकालीन रूप की भाँति महा भयानक बना लिया, परन्तु यह भेद किसी पर प्रकट न हुआ कि शिवजी ने ऐसा चरित्र क्यों रचा था? शिवजी का लिंग जब गिर पड़ा, उसके पश्चात् तीनों लोकों में अनेक प्रकार के उपद्रव उठने

लगे, जिसके कारण सब लोग अत्यन्त भयभीत, दुःखी तथा चिन्तित हो गये। पर्वतों से अग्नि की लपटें उठने लगीं, दिन में आकाश से तारे टूट-टूट कर गिरने लगे, चारों ओर हाहाकार का शब्द भर गया, ऋषि-मुनियों के आश्रम में यह उत्पात सबसे अधिक हुए, परन्तु इस भेद को कोई भी नहीं जान सका कि इन उपद्रवों का मूल कारण क्या है।

हे नारद ! प्रत्येक मनुष्य को यह उचित है कि वह प्रत्येक कार्य को भली-भाँति सोच-समझ लेने के पश्चात् ही करे। जो मनुष्य विद्या पढ़कर अहंकारी हो जाते हैं, वे शिवजी को नहीं जान पाते और पीछे बहुत दुःख उठाते हैं। अस्तु, उन उपद्रवों के कारण घोर दुःख पाने के पश्चात् वे ऋषि-मुनि अपने स्थान को त्याग कर देवलोक में जा पहुँचे ; परन्तु जब वहाँ भी उन्हें शान्ति न मिली तब से सब देवताओं को लेकर मेरे पास आए। उस समय इन्द्र आदि सब देवताओं ने मुझे प्रणाम करते हुए पूछा—"हे प्रभो ! जिन उपद्रवों के कारण तीनों लोक भस्म हुए जाते हैं, उनके उत्पन्न होने का वास्तविक कारण क्या है?" देवताओं की बात सुनकर मैंने बहुत विचार किया, परन्तु वास्तविक रहस्य को नहीं समझ पाया। तब मैं उन सबको साथ लेकर विष्णु लोक में जा पहुँचा। वहाँ भगवान् विष्णु को प्रणाम करने के पश्चात् मैंने उनसे उन उत्पादों का कारण पूछा। मैं बोला—"हे प्रभो ! पृथ्वी में भूकंप, उल्कापात तथा पर्वतों का जलना क्यों हो रहा है? आप कृपापूर्वक इसका कारण बताइये तथा जैसे हो, इन उपद्रवों को शान्त कर दीजिये, जिससे तीनों लोक इस घोर दुःख से मुक्ति प्राप्त कर सकें।"

ॐ ॐ ॐ

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! मेरी यह प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा—"हे ब्रह्मन् ! मैंने दिव्यदृष्टि द्वारा उन उत्पातों का जो

कारण जाना है, उसे तुमसे कहता हूँ। आश्चर्य की बात तो यह है कि बुद्धिमान् लोग भी पशुओं के समान मूर्ख बन बैठे और उन्होंने निन्दनीय कर्म कर डाला। तुम्हारे साथ जो ऋषि-मुनि आये हैं, यह सब इन्हीं की मूर्खता का परिणाम है। इन्होंने अपनी स्त्रियों को काम के वशीभूत हो, शिवजी के शरीर से लिपटे हुए देखकर, अपने ब्रह्मतेज का प्रदर्शन किया, जिसके कारण शिवजी का लिंग पृथ्वी पर गिर पड़ा है। जबसे वह लिंग गिरा है, तभी से यह सब उपद्रव उठ रहे हैं। अब हम को उचित है कि हम सब भगवान् सदाशिव की शरण में चलें और उनसे क्रोध शान्त कर लेने की प्रार्थना करें। हे ब्रह्मन् ! जब तक वे अपने लिंग को पुनः धारण नहीं कर लेते, तब तक किसी को भी चैन नहीं मिलेगा। इतना ही नहीं, यदि इस कार्य में अधिक विलम्ब हुआ तो सर्वत्र प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जायेगा।''

इतना कहकर विष्णु जी हम सबको साथ लेकर शिवजी के पास पहुँचे और उनकी अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—''हे प्रभो ! आप हमारे ऊपर कृपा करके अपने लिंग को पुनः धारण करें।'' विष्णु जी की यह प्रार्थना सुनकर शिव जी ने अत्यन्त लज्जित होकर कहा—''हे विष्णो ! इसमें इन मुनियों तथा देवताओं का कोई दोष नहीं, यह चरित्र तो हमने अपनी इच्छा से ही किया है। जब हम बिना स्त्री के हैं, तब फिर हमें लिंग धारण करने की आवश्यकता ही क्या है? अस्तु, तुम हमें इसी दशा में रहकर आनन्द प्राप्त करने दो।'' भगवान् सदाशिव के मुख से यह वचन सुनकर सब देवताओं ने उनकी स्तुति करते हुए कहा—''हे प्रभो ! यद्यपि हमें आपके सम्मुख धृष्टता करनी उचित नहीं है, परन्तु तो भी हम आपसे यह प्रार्थना करते हैं कि सती जी ने हिमाचल के घर फिर से जन्म लिया है और वे तपस्या करके आपकी अर्द्धांगिनी होंगी। अस्तु, आपको उचित है कि आप अपने लिंग को पुनः धारण कर लें।''

यह सुनकर शिवजी ने कहा—''हे देवताओ तथा मुनियो ! यदि तुम हमारे लिंग की पूजा करना स्वीकार करो, तो हम पुनः अपने लिंग

को ग्रहण कर सकते हैं और तभी सृष्टि को आनन्द प्राप्त हो सकता है।'' भगवान् शिव के श्रीमुख से निकले हुए इन वचनों को सुन मैंने, विष्णु जी ने तथा अन्य सभी देवताओं एवं ऋषि-मुनियों ने उनसे कहा—''हे प्रभो ! हम सब आपके लिंग की पूजा करेंगे आप उसे धारण कर लें।'' इन शब्दों को सुनकर शिवजी उसी समय अन्तर्धान हो गये। तब लोगों ने पाताल के नीचे पहुँच कर शिवजी के लिंग का पूजन किया। सर्वप्रथम विष्णु जी ने, तदुपरान्त मैंने, फिर इन्द्र ने, इसी प्रकार क्रमानुसार सब देवताओं तथा ऋषि-मुनियों ने शिवलिंग की पूजा की। उस पूजा में अनेक प्रकार के उत्सव हुए तथा आकाश से पुष्प वर्षा हुई। उस समय शिवजी ने अपने लिंग से प्रकट होकर हँसते हुए कहा—''हे देवताओ तथा मुनियो ! हम तुम्हारी पूजा से अत्यन्त प्रसन्न हुए। अब तुम जो चाहो, वह वर माँग लो।'' यह सुनकर हमने उनसे प्रार्थना की—''हे प्रभो ! आप तीनों लोकों को अभयदान देकर, अपने लिंग को पुनः धारण कर लीजिये। तदुपरान्त आप हम लोगों को यह वर दीजिये कि हम सब अहंकार रहित होकर, आपकी भक्ति करते रहें।'' यह सुनकर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहते हुए अपने लिंग को पुनः धारण कर लिया।

हे नारद ! इस चरित्र के पश्चात् मैंने तथा विष्णु जी ने एक उत्तम तथा पवित्र हीरे को लेकर शिवलिंग के समान एक मूर्ति का निर्माण किया और उस मूर्ति को उसी स्थान पर स्थापित कर दिया। तदुपरान्त मैंने सब लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—''इस हीरकेश शिवलिंग का जो भी व्यक्ति पूजन करेगा, उसे लोक तथा परलोक में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होगा।'' उस शिवलिंग के अतिरिक्त हमने वहाँ और भी शिवलिंग की स्थापना की। तदुपरान्त हम सब शिवजी के उस लिंग स्वरूप का ध्यान धरते हुए, अपने-अपने लोक को लौट आये। भगवान् सदाशिव भी प्रसन्न होकर अपने स्थान को चले गये। वे भगवान् त्रिशूलपाणि अपनी इच्छानुसार कभी मुनियों के पास बैठकर ज्ञान चर्चा करते तथा कभी पर्वत पर चढ़कर सती के वियोग को भुला

देने की चेष्टा में सलंग्न रहते थे। हे नारद ! शिवलिंग पूजन की कथा को जो प्राणी मन लगाकर सुनता है, वह सदैव प्रसन्न रहता है। जो लोग शिवलिंग की पूजा करते हैं, वे अपने कुल सहित मुक्ति को प्राप्त करते हैं।''

सातवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! आपने शिव-चरित्र का वर्णन कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान की है। अब आप शिवजी की अन्य कथाओं का भी विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये तथा उनके कैलाश पर्वत पर निवास करने का सब हाल सुनाइये।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! कैलाश पर्वत पर पहुँच कर शिवजी ने सती जी का स्मरण किया और वीरभद्र आदि गणों के सम्मुख सती जी की महिमा का विविध प्रकार से वर्णन किया। उन्होंने सांसारिक मनुष्यों को कामदेव की महिमा दिखाने के लिए सती जी के वियोग में शोक-प्रकट करते हुए, अनेक प्रकार के चरित्र दिखाये। तदुपरान्त वे बहुत समय तक एक ही आसन पर बैठकर, ध्यान मग्न हो गये। जब उन्होंने बहुत दिनों बाद उस समाधि का त्याग किया, उस समय उनके ललाट से कुछ पसीना पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके द्वारा एक परम तेजस्वी पुरुष की उत्पत्ति हुई। उस पुरुष के चार हाथ थे। वह लाल वर्ण वाला, अपने कण्ठ में माला पहने तथा अत्यन्त शक्तिशाली था। उत्पन्न होते ही वह बालकों के समान रोने लगा।

हे नारद ! उसे देखकर पृथ्वी ने अपने मन में यह विचार किया कि इस बालक का पालन-पोषण मुझे करना चाहिए ; क्योंकि यह परम तेजस्वी प्रतीत होता है। शिवजी की अर्द्धांगिनी सती जी अपना शरीर त्याग चुकी हैं? अतः अब मेरे अतिरिक्त इसका पालन करने वाला और कौन है? यह मेरे ऊपर उत्पन्न हुआ है, इसलिए मैं इसकी माता के समान हूँ और माता के समान ही मुझे इसका पालन-पोषण करना

चाहिए। यदि मैं स्त्री रूप धर कर इसका पालन नहीं करूँगी तो शिवजी मुझे अवश्य ही दण्ड देंगे। यह निश्चय कर पृथ्वी ने अपना स्वरूप स्त्रियों के समान बनाया। पृथ्वी का यह स्वरूप अत्यन्त सुन्दर तथा पवित्र था। उसे देखकर यह प्रतीत होता था मानो कामदेव की पत्नी रति दूसरा अवतार ग्रहण किया हो अथवा भगवान् विष्णु ने फिर मोहिनी रूप धारण कर लिया हो। ऐसा सुन्दर स्वरूप बनाकर पृथ्वी उस बालक के समीप जा पहुँची और उसे अपनी गोद में उठाकर तथा अपने स्तनों को उसके मुख से लगाकर, दूध पिलाने लगी। वह बार-बार उसे देखकर हँसती और उसका मुख चूमती थी।

शिवजी ने जब पृथ्वी को इस रूप में देखा तो वे उनकी अभिलाषा जानकर मुस्कुरा पड़े। फिर उसे सम्बोधित करते हुए बोले—"हे पृथ्वी ! तुम्हारा बड़ा भाग्य है, जो हमारा पुत्र तुम्हें दिखाई दिया। तुम प्रसन्नतापूर्वक इसका पालन करो। यद्यपि यह बालक हमारे पसीने से उत्पन्न हुआ है, तो भी यह तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा अर्थात् सब लोग इसे भौम कहकर पुकारेंगे। यह बालक तुम्हें अत्यन्त सुख प्रदान करेगा।" इस प्रकार पृथ्वी से कहकर, जब शिवजी ने उस बालक की ओर देखा तो उनके हृदय का शोक कुछ घट गया। तदुपरान्त पृथ्वी उस बालक को लेकर अपने घर लौट गयी और प्रसन्नतापूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगी। वह भौम नामक बालक शरद काल की रात्रि के समान निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगा। जब वह बड़ा हुआ तो शिवजी का पूजन करने के निमित्त मधुवन में जा पहुँचा और अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिवजी की पूजा करने लगा। उसने ग्रीष्म ऋतु में अग्नि सुलगाकर तथा शीत ऋतु में जल में बैठकर शिवजी की पूजा की। तीन करोड़ शिवलिंगों की स्थापना करके उसने श्रेष्ठ व्रत तथा नियमों द्वारा उनका पूजन किया। इस प्रकार कठिन तपस्या करने के उपरान्त जब वह एक स्थान पर निश्चिंत होकर बैठा, उस समय शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे अपने दर्शन प्रदान किये।

हे नारद ! शिवजी के दर्शन प्राप्त कर भौम ने सर्वप्रथम अत्यन्त

कठिन शब्दावली में रचित उनकी स्तुति की, तदुपरान्त यह कहा— ''हे प्रभो ! मैं स्वयं आप से कुछ नहीं माँगना चाहता अस्तु, आप मेरे लिए जो भी उचित समझें, वह वरदान देने की कृपा करें।'' यह सुनकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—''हे भौम ! तुम्हारी बुद्धि को धन्य है, तुम मेरी आराधना द्वारा भक्तिपद को प्राप्त कर चुके हो। अब मेरी कृपा से तुम पवित्र मंगल ग्रह के रूप में प्रसिद्ध होंगे और तुम्हारा स्थान सूर्य लोक में भी ऊपर होगा। तुम्हें सब प्रकार के आनन्द और प्रसन्नता की प्राप्ति होगी। इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। तब भौम भी अपने लोक को जाकर परिवार सहित आनन्द करने लगा। हे नारद ! शिवजी के इस पवित्र चरित्र को सुनने अथवा कहने से धन, सन्तान तथा सुख की प्राप्ति होती है एवं सम्पूर्ण प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं।''

ॐ ॐ ॐ

आठवाँ अध्याय

नारद जी ने कहा—''हे पिता ! शिव-चरित्र को सुन-सुन कर मुझे अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। अब आप कृपा करके यह वृत्तान्त सुनाइये कि हिमाचल की पत्नी मैना ने शिवजी से वरदान माँगने के उपरान्त क्या किया?'' यह सुनकर श्री ब्रह्मा जी ने भगवान् सदाशिव का ध्यान धरने के उपरान्त कहा—''हे पुत्र ! जब मैना ने शिवजी से वरदान प्राप्त किया तथा शक्ति को अपने ऊपर प्रसन्न देखा, तब वह आनन्दित हो अपने घर लौट आयीं। वहाँ सर्व प्रथम उसने एक सौ पुत्रों को जन्म दिया। वे सब 'मैनाक' तथा 'क्रौंच' आदि नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके शरीर बहुत लम्बे थे। वे सब अत्यन्त बलवान्, बुद्धिमान् तथा गुणवान् हुए। इसके पश्चात् सती जी ने हिमाचल के हृदय में प्रवेश किया, ताकि उनके सब मनोरथ पूर्ण हो सकें। हिमाचल ने सती जी के उस तेज़ को शुभ घड़ी प्राप्त कर मैना में स्थित कर दिया। जिस समय में सती जी मैना के गर्भ में आयीं, उस समय से मैना का शरीर

अत्यन्त तेजस्वी हो गया। उस गर्भ को धारण कर मैना ऐसी सुन्दर तथा तेजस्विनी हो गयी, जैसी पहले कभी नहीं थी। हिमाचल की यह अवस्था थी कि वे बारम्बार मैना के निकट पहुँचते तथा मैना की सखी-सहेलियों द्वारा यह पुछवाते कि उसे किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं है। मैना लज्जित होकर कोई उत्तर नहीं देती थी, परन्तु वह जिस वस्तु की इच्छा करती वह स्वयं ही प्रकट हो जाया करती थी। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं थी, जिसे प्राप्त करने में मैना को कभी कोई कठिनाई हुई हो।

हे नारद ! मैना का गर्भ जितना अधिक बढ़ता जाता था, उतना ही उसका तेज भी अधिक होता जाता था। गर्भावस्था में जिन रीतियों तथा उत्सवों को करना उचित है, उन सबको हिमाचल ने बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न किया। उन्होंने सब लोगों को इच्छानुसार दान दिया, तथा ब्राह्मणों, देवताओं एवं अतिथियों की भली-भाँति पूजा की। उन्हीं दिनों में, विष्णु जी तथा अन्य सब देवता शिवरानी की गर्भ स्तुति करने हेतु हिमाचल के घर गये और अपने कर्त्तव्य को पूरा करने के उपरान्त लौट आए। जब गर्भ के नौ महीने व्यतीत हुए और दसवाँ मास पूरा होने लगा, उस समय आकाश तथा पृथ्वी में शुभ शकुन होने लगे। आकाश पूर्णतः निर्मल हो गया और उसका प्रकाश बढ़ गया। सभी अशुभ ग्रह लुप्त हो गए। उस समय ऋषि-मुनि तथा देवता पुष्प-वर्षा करने लगे एवं गन्धर्व, सिद्ध, चारण, किन्नर, अप्सरा तथा विद्याधर अपनी स्त्रियों सहित नाचने-गाने लगे। इस प्रकार मधुमास की शुक्लपक्ष नवमी को मृगशिरा नक्षत्र में अर्धरात्रि के समय भगवती महामाया ने उस अपार आनन्द के बीच मैना के गर्भ से पार्वती रूप में जन्म ग्रहण किया। कालिका पुराण में भी यह कथा लिखी हुई है।

हे नारद ! उस समय मैं तथा विष्णु जी, सब देवताओं सहित सम्पूर्ण सामग्रियों को साथ लेकर, हिमाचल के स्थान पर जा पहुँचे। हम सब ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार शिवरानी की स्तुति एवं प्रशंसा की। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे तथा पुष्प वर्षा हो रही थी।

देवताओं ने उन आदि शक्ति की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—'हे जगदम्बे ! आपकी जय हो। आप तीनों लोकों की माता तथा भगवान् भूतभावन की अर्द्धांगिनी हैं। आप हमारी विपत्तियों का नाश करें, क्योंकि हमारे मन की कोई भी अभिलाषा आपसे छिपी नहीं है। हे आदिशक्ति ! आपका तेज अपरिमित है। सृष्टि के सभी जीव आपके सेवक हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आपके पुत्र कहे जाते हैं तथा तीनों गुणों की उत्पत्ति आप से ही हुई है। आप ब्रह्मस्वरूप आदिशक्ति बनकर सब जीवों में निवास करती हैं तथा सबसे भिन्न सी रहती हैं। वेदों ने आपकी महिमा का कुछ वर्णन किया है, परन्तु पार नहीं पाये हैं। नारद, शारद, शुक तथा सनकादिक बुद्धिमान् मुनि और देवता वाचाल होने पर भी आपकी महिमा का बहुत थोड़ा ही वर्णन कर सके हैं। उपनिषद् इस बात को कहते हैं कि यदि किसी मूर्ख पर भी आपकी कृपा हो जाए तो वह आपकी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है। आप अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान करती हैं तथा करोड़ों कलाओं को अपने वश में किये रहती हैं। आप अहंकार को नष्ट करने वाली हैं। वेद और वेदान्त सब में आप ही सन्निहित हैं। हे भगवती ! आपके सहस्त्रों नाम हैं, जिनका वर्णन करना वाणी की सामर्थ्य से परे है।' इस प्रकार बहुत स्तुति करने के उपरान्त सब लोग अपने-अपने घर को लौट गये।

ॐ ॐ ॐ

नौवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! अब मेरी यह अभिलाषा है कि भगवती महामाया के जन्म के पश्चात् का वृत्तान्त आप मुझे सुनाने की कृपा करें। उन्होंने हिमाचल के घर में रह कर जो बाल-लीलाएँ कीं, उन सब को सुनाकर, आप मुझे प्रसन्नता प्रदान कीजिये।" देवर्षि नारद की यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! जब भगवती महामाया ने अवतार ग्रहण किया और सब देवता उनकी स्तुति-प्रशंसा करने के उपरान्त अपने-अपने स्थान को लौट

गये, उस समय हिमाचल ने बड़ी धूमधाम से अपनी पुत्री का जन्म-महोत्सव मनाया। मैना, उन्हें आदिशक्ति का अवतार पहचान कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। उस समय भगवती जगदम्बा ने भी अष्टभुजी स्वरूप धारण कर मैना को अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। हे नारद ! उस स्वरूप का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। वे भगवती आठ भुजाएँ, तीन नेत्र एवं ज्योतिपूर्ण वस्त्रालंकारों को धारण किये हुए थीं। मैना ने जब उनको इस स्वरूप में देखा तो उनकी बहुत प्रकार से स्तुति-प्रशंसा करते हुए यह कहा—"हे भगवती ! आपने अत्यन्त कृपा करके मेरे घर में अवतार लिया है। मेरी यही प्रार्थना है कि आपका यह स्वरूप मेरे हृदय में सदैव स्थित रहे। अब आप कृपा करके पुनः अपना बाल स्वरूप धारण कर मुझे सुख पहुँचाइए।"

हे नारद ! मैना की प्रार्थना सुनकर भगवती महामाया ने उसे सान्तवना देते हुए कहा—"हे मैना ! मैने इस समय यह स्वरूप केवल इसीलिए धारण किया है ताकि तुम्हारे हृदय में यह विश्वास हो सके कि मैं वही देवी हूँ, जिसे तुमने वरदान प्राप्त करते समय देखा था। अब तुम अपने मन में निश्चिन्त हो जाओ।" इतना कहकर भगवती जगदम्बा ने पुनः बाल-स्वरूप धारण कर लिया और नवजात शिशु की भाँति रुदन करने लगीं। उस समय स्त्रियाँ मैना के समीप आ इकट्ठी हुईं। कन्या का जन्म देखकर उन सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। हिमाचल को भी उस समय बहुत हर्ष हुआ। तदुपरान्त वे पुरोहित, गुरु, ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनियों को साथ लेकर घर के भीतर पहुँचे। उस समय ऋषि-मुनियों ने उस कन्या को देखकर कहा—"हे पर्वतराज ! तुम्हारे घर आदिशक्ति ने अवतार लिया है।" यह सुनकर हिमाचल ने अत्यन्त प्रसन्न हो, ब्राह्मण तथा भिक्षुकों को बहुत-सा धन दान में दिया। नगर की सब स्त्रियाँ भी उस समय अपने-अपने श्रृंगार सजाकर बधावा देने के लिए मैना के समीप आ पहुंचीं। हिमाचल ने रीतिपूर्वक सम्पूर्ण संस्कारों को सम्पन्न किया, तदुपरान्त ब्राह्मणों ने उस कन्या के नाम गिरिजा, काली आदि रखे।

हे नारद ! बाल-स्वरूपा शिव रानी ने संसारी लड़कियों की भाँति ही अनेक चरित्र करके माता-पिता को प्रसन्न करना आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों उनकी आयु बढ़ती जाती थी, वे विविध प्रकार के चरित्रों द्वारा सबको प्रसन्नता प्रदान करती थीं। वे कभी गोद में लिपट कर मुस्कुरातीं, कभी अपनी तुतली वाणी से ऐसी बातें कहती थीं, जिनको सुनकर माता-पिता को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त होती थी। कुछ समय में ही उन्हें उमा, शिवा आदि नामों से भी पुकारा जाने लगा। बड़ी होकर जब उन्होंने तपस्या करने के लिए वन में जाने का विचार किया, उस समय मैना ने चिन्तित होकर उन्हें नहीं जाने दिया। पर्वतराज हिमाचल यद्यपि अनेक सन्तानों के पिता थे, तो भी उनका सबसे अधिक प्रेम गिरिजा पर ही रहता था। गिरिजा दिन-प्रतिदिन चन्द्रमा की कला की भाँति बढ़ती जाती थीं। कभी वे कौड़ियों का खेल खेलतीं और कभी गंगा जी के जल में विहार किया करती थीं। संसारी रीति के अनुसार उन्होंने विद्या अध्ययन भी प्रारम्भ किया और कुछ ही समय में सम्पूर्ण विद्याओं का निधान हो गयीं।

हे नारद ! बाल्यावस्था व्यतीत हो जाने पर जब उन्होंने युवावस्था में प्रवेश किया, उस समय उनकी सुन्दरता का वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। वे ऐसी अनन्य स्वरूपा थीं कि उन्हें उत्पन्न करने के पश्चात् मैं उन जैसी सुन्दरता अन्य किसी भी प्राणी को प्रदान नहीं कर सका। मानो गिरिजा को उत्पन्न करने के पश्चात् मेरा सृष्टि रचना का सम्पूर्ण परिश्रम सफल हो गया हो। जिन लक्ष्मी जी को मैंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक समुद्र से निकाला था, उन्हें भी गिरिजा के समान कहते हुए मुझे लज्जा का अनुभव होता है। गिरिजा के समान अन्य किसी को न पाकर मैं उन्हें केवल निरूपमेय कहकर ही मौन हो जाता हूँ। तीनों लोकों में उन जैसी अन्य कोई नहीं है। मेरी पत्नी तो किसी भी प्रकार उनके समक्ष नहीं ठहर सकती। लक्ष्मी में चंचलता का अवगुण है, अतः उन्हें गिरिजा के समान नहीं कहा जा सकता। रति तथा भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप की महिमा भी उनके सौन्दर्य के समक्ष

नहीं ठहर सकती, इसलिए यही कहना उचित है कि वे अपनी उपमा आप ही थीं।''

❀❀❀

दसवाँ अध्याय

सूत जी ने कहा—''हे ऋषियो ! इतनी कथा सुनकर नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—हे पिता ! जिस प्रकार आपने भगवती गिरिजा की सुन्दरता का वर्णन किया, उसी प्रकार उनके विवाह का चरित्र भी मुझे सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिवजी तथा शिव रानी की लीलाएँ परम आश्चर्यजनक हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी हैं। अतः तुम्हें उचित है कि तुम सन्देह रहित होकर उनकी सम्पूर्ण कथाओं में विश्वास रक्खो। अब मैं तुम्हें उनके विवाह का चरित्र सुनाता हूँ। कुछ लोगों का यह कहना है कि गिरिजा का विवाह स्वयंवर के रूप में हुआ, परन्तु कल्पभेद के अनुसार गिरिजा के विवाह की कथाएँ अलग-अलग प्रकार से हैं। एक कथा यह है कि शिवजी दिगम्बर वेष में भिक्षुक स्वरूप धारण कर हिमाचल के द्वार पर विवाह करने के लिए आये थे। उस समय वे बैल पर आरूढ़ थे और शुक्र तथा शनिश्चर नामक देवता उनके साथ थे। अन्य देवता उनके साथ तो थे, परन्तु वे प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते थे। अस्तु, इस प्रकार विवाह के निमित्त पधारकर, सर्व प्रथम शिवजी ने हिमाचल के अहंकार का नाश किया, तदुपरान्त वे बारात सजाकर विवाह करने को पधारे और गिरिजा को अंगीकार किया।

हे नारद ! कुछ आचार्यों का कहना है कि शिवजी ने गिरिजा की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके साथ विवाह करना स्वीकार किया और बारात लेकर हिमाचल के घर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अनेक प्रकार की लीलाओं के द्वारा सब लोगों को सुख पहुँचाया तथा मैना के भ्रम को नष्ट किया। इन अनेक प्रकार की कथाओं का कारण एक तो कल्पभेद है और दूसरा यह है कि शिवजी के प्रति जिसकी जैसी प्रीति

होती है, उसे वैसा ही चरित्र दिखाई देता है। अस्तु, इन बातों पर किसी प्रकार की शंका अथवा विचार करना ठीक नहीं है। सर्वप्रथम मैं स्वयंवर कथा का वर्णन करता हूँ जिससे विष्णु के गणों तथा देवताओं की बुद्धि कुण्ठित हो गयी थी। वह कथा इस प्रकार है—

एक दिन हिमाचल ने यह देखा कि गिरिजा युवावस्था को प्राप्त हो चुकी हैं, तब उसने अपने भाई-बन्धुओं को बुलाकर यह कहा कि तुम लोग गिरिजा के अनुरूप किसी देवता को देखकर, उसके साथ गिरिजा का विवाह कर दो ; क्योंकि पिता का धर्म यही है कि वह अपनी पुत्री के युवा हो जाने पर किसी श्रेष्ठ वर के साथ उसका विवाह करके अपने ऋण से उऋण हो जाए। उन्हीं दिनों मैना ने भी हिमाचल को अपने निकट बुलाकर यह कहा कि, "हे पति ! गिरिजा युवावस्था को प्राप्त हो चुकी है। अस्तु, आप उसके लिए कोई श्रेष्ठ वर ढूँढें। उन्होंने यह भी कहा कि गिरिजा मुझे अत्यन्त प्रिय है, अतः इसके लिए कोई ऐसा योग्य वर ढूँढ़ें जो सब प्रकार से प्रशंसा का पात्र हो।"

हे नारद ! मैना की बात सुनकर हिमाचल अत्यन्त प्रसन्न हो, घर के बाहर निकले और राज्यसभा में पहुँचकर मन्त्रियों से इस प्रकार कहने लगे—"हे मन्त्रियो ! आप मेरी पुत्री के योग्य किसी उचित वर की तलाश करें।" उस समय मन्त्रियों ने यह सम्मति दी—"हे राजन् ! राजकन्या के विवाह के लिए आप एक ऐसे स्वयंवर का आयोजन करें, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी दिक्पाल भी सम्मिलित हों। सर्व प्रथम आप उस स्वयंवर के समय गिरिजा को प्रत्येक विवाहेच्छु पुरुष के नाम, गुण आदि के सम्बन्ध में सूचित करें, तदुपरान्त उसका स्वरूप दिखाएँ। उस समय गिरिजा जिसके कण्ठ में वरमाला डाल दे, उसी के साथ गिरिजा का विवाह कर दिया जाए।" मन्त्रियों की इस सम्मति को सुनकर हिमाचल को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने स्वयंवर की तिथि निश्चित कर, सब लोगों के पास निमन्त्रण-पत्र भेज दिये।

हे नारद ! गिरिजा के स्वयंवर का समाचार प्राप्त कर सभी देवता हिमाचल के नगर में जा पहुँचे। मैं, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि

तथा अन्य दिक्पाल भी अपनी-अपनी बारात सजा कर, बड़ी धूमधाम से हिमाचल के यहाँ गये।

हे नारद ! हम सब लोगों को देखते ही हिमाचल ने अगवानी करते हुए, सबका अत्यन्त आदर-सत्कार किया। तदुपरान्त स्तुति एवं प्रशंसा करके, रहने के लिए श्रेष्ठ निवास दिया। उसने अन्य सब देवताओं की भी बहुत सेवा की। जब हम लोग स्वयंवर स्थल में जा पहुँचे तो उस विचित्र मण्डप को देखकर हमें अत्यन्त आनन्द हुआ। हम लोग परस्पर बातें करते हुए कहने लगे—"देखें, आज गिरिजा किस पर प्रसन्न होती हैं और किसे उसके साथ विवाह करने का सौभाग्य प्राप्त होता है?" कोई कहता—वे विष्णु जी को स्वीकार करेंगी और कोई अन्य देवता का नाम लेता था। बीच-बीच में सब लोग यह भी कहते जाते थे कि गिरिजा का विवाह जिसके साथ होगा, उसी को हम सब अपने से उत्तम और प्रधान पुरुष समझ लेंगे। वे लोग जो विवाह देखने योग्य हैं, अतः उनका विवाह किसी के साथ क्यों न हो, हम तो उस आनन्द को देखकर ही कृतार्थ हो जायेंगे।"

ॐ ॐ ॐ

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! उस समय हिमाचल ने स्वयंवर-सभा में अनेक स्वर्ण-सिंहासन रखवा दिये तथा उन्हें सब प्रकार से सुसज्जित करके सब लोगों के पास यह सन्देश भिजवाया कि वे स्वयंवर-सभा में आ विराजें। उस सन्देश को सुनकर प्रत्येक व्यक्ति बड़ी धूमधाम से स्वयंवर-मण्डप में जा पहुँचा। इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार होकर आया, विश्वानर के पुत्र अग्नि अपने गणों के साथ बड़ी सजधज कर आये। इसी प्रकार विष्णु, दिक्पाल, वरुण, कुबेर, यमराज, सूर्य तथा चन्द्रमा आदि भी सभा में पहुँचकर अपनी-अपनी चौकियों पर बैठ गये। मैं भी अपने हंस पर बैठकर उस स्वयंवर-सभा में पहुँचा। वहाँ मैंने यह देखा कि विष्णु जी चतुर्भुज रूप धारण किए,

पीत वस्त्र पहने, रत्नालंकारों से सुसज्जित हो, सभा में बैठे हुए हैं। कोई भी देवता ऐसा न था, जो वहाँ दिखाई न पड़ रहा हो। मेरी, विष्णु जी की तथा अन्य सभी लोगों की यह इच्छा थी कि गिरिजा का विवाह केवल हमारे साथ ही हो। सम्पूर्ण पर्वत अर्थात् कनकगिरि, देवकूप, विन्ध्य पर्वत, त्रिकूट, करवीर, चित्रकूट आदि भी उस सभा में आये थे और समुद्र के जीव भी मनुष्यों का स्वरूप धारण कर आ पहुँचे थे। तात्पर्य यह कि प्रत्येक लोक, प्रत्येक द्वीप, प्रत्येक दिशा तथा प्रत्येक नगर से आये हुए जीव उस स्वयंवर-सभा में उपस्थित थे। उस मण्डप में सुख की सम्पूर्ण सामग्रियाँ उपस्थित थीं। वहाँ घण्टा, ढोल आदि विविध प्रकार के बाजे बज रहे थे तथा वेदपाठी जन वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे।''

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जब स्वयंवर-सभा में सब लोग यथास्थान आ विराजे, उस समय हिमाचल ने गिरिजा को यह आज्ञा दी कि अब तुम स्वयंवर-सभा में पहुँच कर, अपने अनुरूप पति का चुनाव कर लो। उस समय कुल की स्त्रियों ने गिरिजा का अनेक प्रकार से श्रृंगार किया तथा सभी ने यह प्रार्थना की कि गिरिजा का विवाह किसी श्रेष्ठ वर के साथ हो। अस्तु, गिरिजा भगवान् सदाशिव का ध्यान धरती हुई स्वयंवर-सभा में आ पहुँचीं। उस समय सहस्त्रों आँखें उनकी ओर उठ गयीं। विवाहेच्छु सभी व्यक्तियों ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। उस समय सखियों ने सर्व प्रथम गिरिजा को इन्द्र के समीप ले जाकर खड़ा किया और उनका परिचय देते हुए कहा ''हे पार्वती ! इनका नाम इन्द्र है। इन्होंने सहस्त्र यज्ञ किये हैं। जो व्यक्ति इनकी शरण में आ जाता है, उसकी ये सब प्रकार से रक्षा करते हैं। इनका स्वरूप चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर है। इन्हें स्वीकार कर लेने पर तुम इन्द्राणी पद को प्राप्त करोगी तथा सब प्रकार

के सुख-भोग तुम्हें हर समय उपलब्ध होते रहेंगे। अस्तु, हे गिरिजे ! तुम्हें उचित है कि तुम इनके साथ विवाह करना स्वीकार कर लो।''

हे नारद ! सखी की बातें सुनकर गिरिजा ने एक बार इन्द्र की ओर नीची दृष्टि डाली, तदुपरान्त उन्हें प्रणाम करती हुई चुपचाप आगे बढ़ गयीं। इसी प्रकार सखियों ने विष्णु आदि देवताओं की प्रशंसा करते हुए, उनमें से किसी को भी अपना पति चुन लेने की सलाह दी, परन्तु गिरिजा उन सबको प्रणाम करती हुई आगे बढ़ती गयीं। जब वे मुझ पर तथा विष्णु जी पर भी प्रसन्न नहीं हुईं और वर माला लेकर आगे बढ़ीं, उसी समय अचानक ही शिवजी उस स्वयंवर स्थल में आकाश से प्रकट होकर आ विराजे। उन्हें देखते ही गिरिजा के मुख पर प्रसन्नता चमक उठी और उन्होंने माला शिवजी के गले में डाल दी।''

ॐ ॐ ॐ

तेरहवाँ अध्याय

इस वृत्तान्त को सुनकर देवर्षि नारद ने ब्रह्मा जी से कहा—''हे पिता ! आप इस कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये कि शिवजी वहाँ किस प्रकार प्रकट हुए और गिरिजा ने उनके गले में वरमाला किस लिए पहना दी?'' ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! गिरिजा तो जन्म-जन्मान्तर से भगवान् शिव की संगिनी थीं। तब वह किसी अन्य को वरमाला किस प्रकार पहना देतीं? स्वयंवर-सभा में वे जिसके समीप पहुँचकर आगे बढ़ जाती थीं, वही अपने मन में अत्यन्त लज्जित होकर रह जाता था। इस प्रकार गिरिजा ने सब लोगों को सभा में देखा, परन्तु वे किसी को भी देखकर प्रसन्न न हुईं? जब उन्हें वहाँ परब्रह्म शिवजी दिखाई न दिये तो उन्होंने अत्यन्त चिन्तित होकर यह विचार किया कि भला, क्या कारण है जो शिवजी अभी तक यहाँ नहीं पधारे हैं? उस समय उन्होंने मन-ही-मन शिवजी की बहुत प्रकार से स्तुति करते हुए यह कहा—''हे प्रभो ! मैं तो सदैव से आपकी चेरी हूँ, मेरे चाहे करोड़ों जन्म क्यों न बीत जाएं, परन्तु मैं आपके अतिरिक्त अन्य

किसी के साथ विवाह न करूँगी। हे स्वामी ! यदि मुझ से कोई अपराध बन पड़ा हो तो आप उसे क्षमा कर दें और मुझे इसी समय अपना दर्शन देकर कृतार्थ करें।''

हे नारद ! इस प्रकार मन-ही-मन प्रार्थना करती हुई जब गिरिजा भगवान् सदाशिव के प्रेम में मग्न हो गयीं ; उसी समय शिवजी उनके आन्तरिक स्नेह को पहचान कर वहाँ प्रकट हो गये। भगवान् शिवजी के तेज तथा स्वरूप को देखकर सभी सभासद् चकित रह गये। उन्हें कोई पहचान भी नहीं पाया। शिवजी सब मनुष्यों के अहंकार का नाश करने वाले हैं, अस्तु, उस समय उन्होंने यह लीला भी रची कि वे उस सभा मंडप में एक सुन्दर बालक के रूप में प्रकट हुए। भगवान् भूतभावन के उस रूप को पहचानने में असमर्थ होने के कारण सब लोगों ने उन्हें एक साधारण बालक ही समझा और अपने पास से दूर हटा देना चाहा। जब वे भगाने पर भी नहीं भागे और निर्भय होकर अपने स्थान पर ही खड़े रहे, तब कुछ लोगों ने क्रुद्ध होकर यह चाहा कि उन्हें जान से ही मार डाला जाए। अपनी इच्छा की पूर्ति के हेतु पहले तो कुछ देवताओं ने साधारण अस्त्र-शस्त्रों द्वारा उनके ऊपर प्रहार किया, परन्तु जब शिवजी के ऊपर उन शस्त्रों का कोई प्रभाव न पड़ा, तो वे अपने तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा उन पर प्रहार करने की इच्छा करने लगे। यह गति देखकर शिवजी ने उन सब की ओर ज्यों ही अपनी आँखें उठाकर देखा तो उनके हाथ तथा शरीर जड़वत् हो गये और उस समय जो जैसे बैठा था, पत्थर की मूर्ति के समान उसी प्रकार बैठा रह गया।

हे नारद ! इस स्थिति को देखकर विष्णु जी ने अपना सुदर्शन चक्र उनके ऊपर छोड़ा; परन्तु वह भी निष्फल हो गया। उस समय सब लोगों को मन में अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वह परम शक्तिशाली बालक कौन है ; परन्तु शिवजी की माया में मोहित होने के कारण किसी को उनके वास्तविक भेद का पता न चल सका। शिवजी के इस चरित्र को देखकर गिरिजा मुस्कुराने लगीं। उस समय जब मैंने शिवजी

का ध्यान धर कर विचार किया तो यह जाना कि यह बालक और कोई नहीं, साक्षात् भगवान् सदाशिव ही हैं। उसी समय वे बालरूप भगवान् भूतभावन भी मेरी ओर देखकर हँस दिये। तब मैंने उनकी स्तुति करते हुए कहा—"हे प्रभो ! हम लोगों का इसमें कोई दोष नहीं है। आपकी माया के वशीभूत होकर ही हम भगवती जगदम्बा को प्राप्त करने की इच्छा से यहाँ आये थे। अब आप हमें जो आज्ञा देंगे वह शिरोधार्य होगी।" इसके उपरान्त मैंने गिरिजा की भी स्तुति करते हुए कहा—"हे देवी ! अब आप वह चरित्र कीजिये, जिससे हम लोगों की चिन्ता दूर हो।" मेरे मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर भगवान् त्रिशूलपाणि अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब उन्होंने अपनी माया को हमारे ऊपर से हटा लिया। उस समय चैतन्यता प्राप्त होने पर हम सब लोगों को उस बालक के स्थान पर साक्षात् सदाशिव खड़े हुए दिखाई दिये। उनका स्वरूप इतना सुन्दर था कि उसे देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाएं। वे मणि एवं स्वर्ण निर्मित आभूषणों को धारण किये हुए थे और ऐसे मनमोहक प्रतीत हो रहे थे जिसका वर्णन करना नितान्त असम्भव है।

ॐ ॐ ॐ

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! भगवान् सदाशिव के उस स्वरूप को देखकर सभा में उपस्थित सभी लोगों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उनकी बहुत स्तुति की। विष्णु जी ने प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो ! हम आपकी माया के वशीभूत होकर गिरिजा के साथ विवाह करने की इच्छा से यहाँ आये थे, सो आप हमारे अपराध को क्षमा करने की कृपा करें। आप और गिरिजा जी सम्पूर्ण सृष्टि के माता-पिता हैं। अस्तु, आप हमें अपना बालक समझकर हमारे पाप को क्षमा कर दें।" इसी प्रकार मैंने तथा इन्द्र, अग्नि, धर्मराज, निर्ऋति, वरुण, वायु, ईशान, कुबेर, शेष, दक्ष प्रजापति आदि सिद्ध जन एवं

हिमाचल आदि ने शिवजी की प्रार्थना करते हुए अपने अपराधों की क्षमा माँगी। हे नारद ! उस समय गिरिजा ने अपने पिता की आज्ञा प्राप्त कर, भगवान् सदाशिव के गले में वरमाला पहना दी। सब लोगों ने हर्ष में भर कर जय-जयकार की।''

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! उस समय के आनन्द का वर्णन किस प्रकार किया जाए? हम सब लोग गिरिजा तथा शिवजी के पीछे-पीछे चलने लगे। विष्णु जी उनके बायीं ओर थे और मैं दाहिनी ओर चल रहा था। अन्य सब देवता पीछे अपने हाथों में छत्र-चँवर उठाये चल रहे थे। कोई जय-जयकार कर रहा था तो कोई शंख आदि की ध्वनि द्वारा अपना उत्साह प्रकट कर रहा था। इसी प्रकार सब लोग उनकी सेवा करने में संलग्न थे। अपने भाइयों तथा मित्रों सहित पर्वत राज हिमाचल भी हम लोगों के साथ चले। जिस समय सब लोग हिमाचल के नगर में पहुँचे, उस समय चारों ओर धूमधाम होने लगी। भगवान् सदाशिव के दर्शन प्राप्त करने के लिए नगर की सभी स्त्रियाँ अपने-अपने मकान के ऊपर जा चढ़ीं। सब लोग अपने-अपने काम को छोड़कर शिवजी का दर्शन पाने के लिए दौड़ पड़े। स्त्रियों की तो यह दशा थी की जो काजल लगा रही थी, वह एक आँख के बिना काजल लगाये ही दौड़ी चली गयी। वे झरोखों के भीतर बैठी हुई शिव दर्शन करने में ऐसी मग्न थीं कि यदि किसी की धोती की गाँठ खुल गयी तो उस बात का उनको कोई ध्यान ही नहीं था। स्त्रियों की ऐसी दशा को देखकर शिवजी, विष्णु जी तथा हम बहुत हँसते चले जा रहे थे।

हिमाचल के घर पहुँचने पर शिवजी अपने नन्दी से नीचे उतरे। पर्वतराज ने सभी बारातियों को श्रेष्ठ स्थानों पर ठहराया और सबकी यथा शक्ति सेवा पूजा की। उस समय शिवजी की आज्ञा से उनके वीरभद्र आदि गण भी कैलाश से चलकर उस स्थान पर आ पहुँचे। उन

गणों ने आकर हम सबको प्रणाम किया। तदुपरान्त हिमाचल की प्रार्थना स्वीकार कर शिवजी घर के भीतर गये। वहाँ हिमाचल के पुरोहित गर्ग ऋषि ने विवाह की सम्पूर्ण विधियों को सम्पन्न कराया। मैंने तथा विष्णु जी ने हवन के मंत्रों का उच्चारण किया। उस समय दोनों ओर से बहुत दान दिया गया। जब शिवजी ने गिरिजा का हाथ अपने हाथ में लिया, उस समय के सुख का वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। उस अवसर पर जिसने जिस वस्तु की इच्छा प्रकट की, वह उसे प्राप्त हुई। जब भाँवरें पड़ चुकीं, तब शिवजी तथा गिरिजा को एक ही शैय्या पर बैठाया गया। उस समय सब लोगों ने धन्य-धन्य का घोष कर, आकाश को गूँजा दिया। हिमाचल ने भगवान् भूतभावन को दहेज में बहुत-सा धन तथा वस्त्रालंकार प्रदान किये। फिर सब बारातियों को भोजन कराया। इस प्रकार जब विवाह हो चुका तो शिवजी वहाँ से चल कर अपने कैलाश पर्वत पर लौट आए। फिर हम सब लोग भी शिवजी की आज्ञा पाकर अपने-अपने लोक को लौट गये।''

ॐ ॐ ॐ

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं दूसरे प्रकार के शिवजी के विवाह का विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। वह प्रकार यह है कि जब गिरिजा युवावस्था को प्राप्त हुई तब मैना ने हिमाचल से यह कहा—''हे पति ! आप एक लाख पर्वतों के राजा हैं। अस्तु, आप जैसे श्रेष्ठ कीर्तिवाले हैं, उसी प्रकार गिरिजा के लिए भी किसी उत्तम वर को ढूँढ़िये। हे स्वामी ! हमारे पुत्र तो सौ हैं, परन्तु कन्या केवल एक ही है, अस्तु, इसके श्रेष्ठ भविष्य के हेतु हमें अच्छी से अच्छी जगह इसका विवाह करना चाहिए।'' हिमाचल ने उत्तर दिया—''हे प्रिये ! तुम निश्िंचत रहो। जो वर श्रेष्ठ होगा, उसी के साथ हम गिरिजा का विवाह करेंगे।''

हे नारद ! इतना कहकर हिमाचल अपनी राज्यसभा में आये और मन्त्रियों से विचार-विमर्श करने के उपरान्त अपने पुरोहित से बोले— "हे पुरोहित जी ! आप गिरिजा के लिए कोई योग्य वर ढूँढने की कृपा करें।" हिमाचल की बात सुनकर पुरोहित सर्व प्रथम इन्द्र लोक में गये। वहाँ इन्द्र की सुन्दरता को देखकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उनसे गिरिजा के विवाह की चर्चा छेड़ी। उसे सुनकर इन्द्र ने उत्तर दिया—"हे पुरोहित ! गिरिजा ने तो शिवजी के लिए अवतार ग्रहण किया है। तुम ऐसी बातें करके हमें नरकगामी क्यों बनाना चाहते हो?" इन्द्र के यह वचन सुनकर पुरोहित अग्निलोक में गये। वहाँ भी उन्हें यही उत्तर सुनने को मिला। इस प्रकार वे जहाँ-जहाँ भी गये वहीं सबने गिरिजा को अपनी माता अनुमान कर पुरोहित के ऊपर क्रोध किया। अन्त में सब के कहने से पुरोहित विष्णु जी के पास गये। विष्णु जी ने स्वयं गिरिजा के साथ विवाह करना स्वीकार न करके, पुरोहित को यह उत्तर दिया कि तुम हिमाचल से जाकर यह कहना कि वे गिरिजा से ही यह बात पूछें कि तुम्हारा पति कौन है। तब गिरिजा जिसे बतावे उसी के साथ हिमाचल उसका विवाह कर दें। विष्णु जी के मुख से यह शब्द सुनकर पुरोहित हिमाचल के पास लौट गये और उन्हें सब समाचार कह सुनाया। समाचार पाकर गिरिजा अत्यन्त प्रसन्न हुईं।"

ॐ ॐ ॐ

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! तब हिमाचल ने अपनी सभा में गिरिजा को बुलाया और जिस प्रकार विष्णु जी ने पुरोहित को बताया था, वह सब वृत्तान्त सुनाते हुए यह पूछा—"हे पुत्री ! तुम्हारा पति कौन है? तुम उसे हमें बताओ तो हम उसी के साथ तुम्हारा विवाह कर देंगे।" यह सुनकर गिरिजा ने लज्जित होते हुए उत्तर दिया—"हे पिता ! यदि आप शपथ पूर्वक मेरी बात मानने के लिए तैयार हों तो मैं पुरोहित जी को अपने पति का नाम बता दूँगी। उसी के अनुसार वे

तिलक चढ़ा आवें।'' हिमाचल ने प्रसन्नता पूर्वक यह बात स्वीकार कर ली। तब गिरिजा ने पुरोहित को अलग ले जाकर कहा कि तीनों लोकों में सब से उत्तम जो कैलाश पर्वत है, वहाँ शिवजी निवास करते हैं। तुम वहीं जाकर उन्हें टीका चढ़ा आओ, क्योंकि मैं उन्हीं के साथ अपना विवाह करना चाहती हूँ।''

हे नारद ! यह सुनकर पुरोहित अपने साथ ही एक नाई को लेकर टीका चढ़ाने के लिए चल दिये परन्तु उन्होंने नाई को यह नहीं बताया कि वे किस व्यक्ति को टीका चढ़ाने के लिए जा रहे हैं। अस्तु, जब वे कैलाश पर्वत पर पहुँचे तो वहाँ एक वट वृक्ष के नीचे शिवजी को दूर से ही बैठे देखकर, उन्होंने प्रणाम किया। उस समय शिवजी ध्यान-मग्न बैठे थे। अस्तु, वे दोनों भी कुछ दूरी पर चुपचाप बैठ गये। लेकिन थोड़ी देर बाद ही नाई ने क्रोध में भरकर पुरोहित से यह कहा—''हे पुरोहित जी ! आप मुझे ऐसे निर्जन स्थान में क्यों ले आये हो? यहाँ तो चारों ओर दैत्य ही दैत्य दिखाई पड़ते हैं। अस्तु, यहाँ प्राण बचना असम्भव है। तुम यहाँ से तुरन्त भाग चलो और गिरिजा के लिए कोई दूसरा पति ढूँढो। यह व्यक्ति तो गिरिजा का पति होने के सर्वथा अयोग्य है।'' नाई की बात सुनकर पुरोहित ने उसे डाँटते हुए कहा—''अरे मूर्ख ! तू चुप क्यों नहीं बैठा रहता? इस प्रकार प्रलाप क्यों कर रहा है?'' पुरोहित की इस दृढ़ता को देखकर तथा गिरिजा की प्रीति का स्मरण कर शिवजी ने अपनी समाधि खोली। उस समय पुरोहित हाथ जोड़कर उनके सामने जा खड़ा हुआ और बहुत प्रकार से स्तुति तथा प्रशंसा करने लगा।

हे नारद ! पुरोहित ने गिरिजा के गुण तथा सौन्दर्य का वर्णन करते हुए शिवजी से कहा—''हे प्रभो ! गिरिजा आपके साथ विवाह करना चाहती हैं, अतः आप उसे स्वीकार करें।'' तब शिवजी ने उससे कहा—''हे पुरोहित ! तुम्हें ऐसी बात कहनी उचित नहीं है, क्योंकि हिमाचल की पुत्री के साथ सम्बन्ध रखने के योग्य हम नहीं हैं। हिमाचल पर्वतों के राजा हैं तथा बहुत धनवान् हैं। इसके विपरीत हम

निर्धन हैं। मित्रता, शत्रुता तथा विवाह अपने समान बल वालों के साथ करनी चाहिए। गिरिजा मुझे अपना पति बना कर कोई सुख नहीं पावेगी बल्कि यों कहिये कि मेरी भाँग घोंटते समय उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा। वह राजपुत्री है, अतः उसका विवाह किसी राजा के साथ होना ही उचित है। दूसरी बात यह भी है कि मुझे तिलक चढ़ाने पर तुम्हें पुरस्कार में धन भी नहीं मिल सकेगा, क्योंकि हम तो दक्षिणा में थोड़ी-सी भस्म ही तुम्हें दे सकते हैं।''

हे नारद ! शिवजी की यह बात सुनकर पुरोहित ने उत्तर दिया ''हे प्रभो ! यदि आपकी भस्म हमें मिल जाए तो इससे बढ़कर हमारे भाग्य और क्या होंगे? अस्तु, अब आप कुछ और अधिक न कहकर, मुझे तिलक चढ़ाने दीजिये।'' इतना कहकर पुरोहित ने शिवजी के तिलक चढ़ा दिया। शिवजी को भी उस समय अत्यन्त प्रसन्नता हुई, परन्तु नाई को यह बातें अच्छी न लगीं। जब पुरोहित ने घर लौटना चाहा उस समय शिवजी ने उसे थोड़ी-सी भस्म देकर उसे विदा कर दिया। इसी प्रकार नाई को भी उन्होंने थोड़ी-सी भस्म दे दी। पुरोहित तो उस भस्म को पाकर बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु नाई को अत्यन्त क्रोध आया। उसने पुरोहित से कहा—''हे पुरोहित जी ! तुमने राजा हिमाचल की पुत्री का तिलक एक अवधूत को चढ़ा दिया, इससे बढ़कर बुरी बात और क्या हो सकती है? भला, तुमने किस लोभ में पड़कर ऐसा बुरा काम किया? यदि तुमने किसी राजा के यहाँ तिलक चढ़ाया होता तो हमारी राह इस प्रकार नहीं कटती, जैसी कि अब कट रही है। शिवजी ने तो केवल एक मुट्ठी भर राख दे दी है और मुँह से भी कुछ अच्छी बात नहीं कही। मेरे घर में तो ऐसी राख बहुत भरी पड़ी है। यदि तुम्हारे घर में न हो तो तुम भले ही ले जाओ। मुझे तो उन्होंने मार्ग का खर्च भी नहीं दिया। अब भला मैं किस प्रकार अपने घर तक पहुँचूँ? पता नहीं, राजा हिमाचल इस वृत्तान्त को सुनकर क्या दंड देंगे? मैं तो सारा दोष तुम्हारे ही सिर पर रख दूँगा, यह याद रखना।'' इतना कह कर नाई ने क्रुद्ध हो भस्म को खोलकर वहीं फेंक दिया।

हे नारद ! जब पुरोहित और नाई अपने-अपने घर पहुँचे तो उस भस्म के प्रभाव से पुरोहित के घर में संसार के सम्पूर्ण रत्न और सुख-सामग्री उत्पन्न हुई, जिससे पुरोहित तथा उनकी पत्नी को बहुत आनन्द हुआ। एक दिन नाई की स्त्री पुरोहित के घर आयी। जब उसने यह देखा कि उसके घर में सुख की सम्पूर्ण सामग्रियाँ उपस्थित हैं तो उसने पुरोहित की पत्नी से उस ऐश्वर्य का कारण पूछा। जब पुरोहित की पत्नी ने उसे यह बताया कि यह सब सम्पत्ति शिवजी द्वारा दी गयी भस्म के कारण प्राप्त हुई है, तो उसने अपने पति के पास पहुँच कर यह सब हाल कह सुनाया। उसे सुनकर नाई दौड़ा-दौड़ा पुरोहित के पास आया और झगड़ा करके यह कहने लगा कि तुम मुझे इस धन का आधा भाग दो। उस समय पुरोहित ने उसे यह उत्तर दिया—"मूर्ख ! तूने शिवजी द्वारा दी गयी भस्म का निरादर करके उसे फेंक दिया, इसलिए तू इस सम्पत्ति से वंचित रहा। अब मुझसे लड़ने के लिए क्यों आया है? यदि तू सम्पत्ति प्राप्त करना चाहता है तो फिर उन्हीं के पास चला जा, जिन्होंने पहले तुझे भस्म दी थी।" पुरोहित की बात सुनकर नाई फिर कैलाश पर्वत पर गया, परन्तु इस बार उसे वहाँ से निराश लौट आना पड़ा।"

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जब राजा हिमाचल ने पुरोहित एवं नाई के झगड़े का हाल सुना, तो उन्होंने दोनों को अपने पास बुलाकर यह कहा कि तुम दोनों गिरिजा के वर का हाल कह सुनाओ।" यह सुनकर पुरोहित ने उत्तर दिया—"हे प्रभो ! आपकी आज्ञानुसार मैं सर्वप्रथम गिरिजा के पास गया। फिर गिरिजा की आज्ञा पाकर कैलाश पर्वत पर जा पहुँचा और वहाँ शिवजी को तिलक चढ़ा आया। मैंने शिवजी का पूजन किया फिर उनकी स्तुति करते हुए यह कहा कि तीनों लोक आपके सेवक हैं, अतः आप कृपा करके गिरिजा के साथ

विवाह करना स्वीकार कर लीजिये। मेरी बात सुनकर पहले तो शिवजी ने मना किया, परन्तु फिर मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। मैं उन्हें तिलक चढ़ाकर लौट आया। हे राजन्! शिवजी सब प्रकार से गिरिजा के पति होने योग्य है। तीनों लोकों में उनसे बड़ा और कोई नहीं है। सब लोकपाल उन श्री शिवजी की महिमा का वर्णन करते हैं। उन्होंने चलते समय मुझे भस्म दी थी, जिससे मेरे घर में सब प्रकार की सुख-सामग्रियाँ उपस्थित हुई हैं। इतना कहकर पुरोहित अपने घर चला गया।

हे नारद! पुरोहित के जाने के बाद नाई आया। वह हाय-हाय करता हुआ राजा हिमाचल से बोला—"हे राजन्! आपके पुरोहित ने सब काम बिगाड़ दिया। वह स्थान ऐसा निर्जन था कि वहाँ एक भी मनुष्य दिखाई नहीं देता था। कुछ और आगे चलकर वट वृक्ष के नीचे बैठा हुआ केवल एक मनुष्य दिखाई दिया। उसका रूप अवधूतों जैसा था। वह योगियों के समान ध्यान मग्न बैठा हुआ था। पुरोहित ने बिना पूछे ही उसे तिलक चढ़ा दिया। यद्यपि मैंने बहुत रोका, किन्तु पुरोहित ने मेरी एक बात नहीं मानीं। उस अवधूत के पास एक बैल के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। चलते समय उसने हमें कुछ धन भी नहीं दिया। केवल एक-एक मुट्ठी भस्म पकड़ा दी। हे राजन्! जो सच्ची बात थी, वह मैंने कह सुनायी। अब जो आप उचित समझें, वह करें।"

हे नारद! इस समाचार को सुनकर हिमाचल को तो कुछ ही खेद हुआ, परन्तु मैना को बहुत चिन्ता उत्पन्न हुई। उन्होंने हिमाचल से कहा—"हे स्वामी! मैंने जब से यह सुना है कि पुरोहित ने एक भिखारी के साथ मेरी पुत्री का विवाह निश्चित किया है, तब से मुझे बहुत चिन्ता हो रही है। मैंने यह भी सुना है कि वह अवधूत बहुत कुरूप, अशक्त तथा मूर्ख है। मेरी पुत्री परम सुन्दरी है, तब भला ऐसे पति के साथ उसका विवाह किस प्रकार किया जा सकता है?" हे नारद! हिमाचल ने यह सुनकर जब अपने मित्रों को सब वृत्तान्त सुनाया, तब उनमें से किसी ने यह बताया कि तुम्हारे धन्य भाग्य हैं जो

गिरिजा को ऐसे श्रेष्ठ पति की प्राप्ति हुई है और किसी ने यह कहा कि ऐसे वर के साथ विवाह करना उचित नहीं है। गिरिजा का विवाह तो किसी राजा के साथ ही होना चाहिए। हिमाचल ने उन सबकी बातें सुनकर उत्तर दिया—"हे भाइयो ! जो भगवत इच्छा होती है, उसमें किसी का वश नहीं चलता।" यह कहकर हिमाचल ने यह सब वृत्तान्त कह सुनाया कि जिस प्रकार सब देवताओं ने गिरिजा के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया था। फिर उन्हें यह शाप भी बताया कि देखो, शिवजी की भस्म के प्रताप से हमारे पुरोहित के घर किसी प्रकार की कमी नहीं रही है। उन्होंने यह भी कहा कि इन सब बातों पर भली-भाँति विचार कर, आप मुझे अपनी राय दीजिए उसी के अनुसार मैं आचरण करूँगा।"

ॐ ॐ ॐ

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! हिमाचल की बातों को सुनकर सब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। तब उनमें से किसी ने यह राय दी कि शिवजी के साथ विवाह कभी नहीं करना चाहिए। अंत में बहुत कुछ सोच-विचार करने के उपरान्त बुद्धिमान् तथा विद्वान् पुरुषों ने हिमाचल से यह कहा—हे राजन् ! आप शिवजी को एक पत्र इस आशय का लिखें कि वे एक अच्छी-सी बारात सजाकर लावें। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो गिरिजा के साथ उनका विवाह न हो सकेगा। यदि वे वास्तव में तपस्वी तथा योगी होंगे तो आपकी बात को स्वीकार करके श्रेष्ठ बारात सजाकर लावेंगे।"

हे नारद ! बुद्धिमानों की इस बात को हिमाचल तथा मैना ने स्वीकार कर लिया तथा शिवजी को अच्छी बारात लाने के लिए पत्र लिखा। उसमें यह कहा गया था कि आपकी बारात में सभी देवता, ऋषि, मुनि, सनकादिक, शेषनाग, ब्रह्मा जी तथा विष्णु जी को भी आना चाहिए। यदि ये लोग नहीं आये तो गिरिजा के साथ आपका

विवाह न हो सकेगा। इस पत्र के साथ लग्न की सामग्री देकर हिमालय ने पुरोहित को पुनः शिवजी के पास भेजा। जब पुरोहित पुनः कैलाश पर्वत पर पहुँचा तो उसने देखा कि शिवजी ने उसकी मनोभिलाषा जानकर पहले से ही वहाँ देवताओं की सभा जमा कर रखी है। उस सभा के समान अन्य कोई सभा संसार में नहीं हो सकती थी। जिस समय पुरोहित ने उस सभा को देखा तो उसके आनन्द का पारावार न रहा। अस्तु, उसने प्रसन्न होकर लग्न चढ़ायी। उस लग्न की सामग्री को देखकर सभी सभासद् अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त पुरोहित शिवजी से आज्ञा तथा अपना नेग लेकर, हिमाचल के समीप लौट आया और उन्हें सब हाल कह सुनाया। पुरोहित ने नाई की निन्दा करते हुए कहा—"हे राजन्! मैं आपको शपथ खा कर कहता हूँ कि गिरिजा का पति अत्यन्त सुन्दर तथा तेजस्वी हैं और तीनों लोकों में उसके समान अन्य कोई नहीं हैं।" पुरोहित के मुख से इन शब्दों को सुनकर हिमालय तथा मैना अपने भाई-बन्धुओं सहित अत्यन्त प्रसन्न हुए। पुरवासी जनों ने जब यह समाचार सुना तो उन्हें भी हार्दिक आनन्द हुआ।

ॐ ॐ ॐ

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद! हिमाचल ने सब सामग्री एकत्र करके, बारात के ठहरने के लिए एक बहुत लम्बा-चौड़ा श्रेष्ठ भवन निर्मित कराया। जहाँ एक ओर भगवती आदिशक्ति और दूसरी ओर परमपुरुष सदाशिवजी हों, वहाँ किसी प्रकार की कमी हो भी कैसे सकती है? अब तुम शिवजी का हाल सुनो। जब शिवजी ने हिमाचल का पत्र पढ़ा तब उन्हें बहुत हँसी आयी। फिर उन्होंने हिमाचल के गर्व को नष्ट करने के लिए यह चरित्र किया कि उन्होंने अपना स्वरूप एक बूढ़े जैसा बना लिया। तदुपरान्त अपने बैल को भी बूढ़ा बना कर उसके ऊपर बैठ गये, फिर अपने साथ दो शिष्यों को ले डमरू तथा

सिंगी को बजाते हुए 'अलख-अलख' शब्द का उच्चारण करते हुए, भयानक वेष बनाये, हिमाचल के नगर में जा पहुँचे और वहाँ जाकर एक बाग में ठहर गये। इधर राजा हिमाचल बारात आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अस्तु, उन्होंने जब सिंगी और डमरू का नाद सुना तो बहुत-से लोगों को बारात देखने के लिए भेजा। वे सब मनुष्य तथा गिरिजा की सहेलियाँ उस स्थान पर जा पहुँची, जहाँ अवधूत-स्वरूप शिवजी बैठे हुए 'अलख-अलख' शब्द का उच्चारण कर रहे थे। उन्होंने शिवजी के पास पहुँचकर पूछा—"हे योगिराज ! तुमने कहीं शिवजी की बारात तो नहीं देखी?" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हम हीं गिरिजा के दूल्हा हैं और हम हीं बारात हैं। हमारे साथ दो शिष्यों के अतिरिक्त और कोई नहीं आया है।"

हे नारद ! शिवजी के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर गिरिजा की सखियों ने उन्हें गालियाँ देते हुए कहा—"अरे पागल ! तू हमारे राजा की पुत्री के लिए ऐसी बात क्यों कहता है? यदि तू ठीक-ठाक बतायेगा कि तूने बारात को नहीं देखा है, तो हम तुझे अच्छे भोजन खिलायेंगी और पहनने के लिए सुन्दर वस्त्र भी देंगी।" यह सुनकर शिवजी ने फिर अपना पहला उत्तर दुहरा दिया और कहा—"हे सखियो ! तुम गिरिजा से जाकर यह कह देना कि हम वही व्यक्ति हैं, जिन्हें पुरोहित लग्न चढ़ाकर आया है। गिरिजा हमें अच्छी तरह जानती है, अतः वह सब कुछ बता देगी। यह सुनकर उन सब स्त्रियों ने शिवजी की लात-घूसों से खूब पिटाई की तथा पाँव पकड़कर चारों ओर घसीट डाला। इसके बाद उन्होंने नाखून तथा चुटकियों से उनके पवित्र शरीर को जगह-जगह काटा। किसी ने उनके बैल को डंडा मार कर भगा दिया और किसी ने उनके साथ के छोटे-छोटे नंग-धड़ंग बालकों को ऐसे जोर-जोर के चाँटे लगाये कि वे रोते हुए भाग खड़े हुए।

हे नारद ! उन सखियों ने यह सब ऊधम केवल इसीलिए किया था कि वे शिवजी की माया में मोहित होकर, उन्हें पहिचानने में असमर्थ

रही थीं। शिवजी ने उनकी इस मार-पीट का कोई बुरा न मानते हुए हँसकर कहा—"हे स्त्रियो ! ससुराल में इस प्रकार मार खाना भी अच्छा लगता है, अतः तुम अपने मन में किसी प्रकार का संकोच मत करो और जिस प्रकार चाहो, मुझे खूब तंग कर लो।" यह सुनकर वे स्त्रियाँ तथा पुरुष शिवजी को छोड़कर अपने घर को लौट चले। जब वे लोग चले गये, तब शुक्र और शनिश्चर देवता, तो बाल-स्वरूप धारण किये हुए शिवजी के साथ थे तथा बैल, जिन्हें स्त्रियों ने कुछ देर पहले मार कर भगा दिया था, वे रोते-रोते फिर शिवजी के पास आ पहुँचे। उस समय शिवजी ने हँसते हुए उनसे कहा—"तुम लोग अपने मन में कुछ बुरा मत मानो। ससुराल में तो इसी प्रकार का आनन्द मिलता है।" परन्तु जब उन लोगों को शिवजी की इस बात से प्रसन्नता नहीं मिली, तब शिवजी ने लौटकर जाती हुई उन स्त्रियों के पीछे, अपने झोले में से निकाल कर अनेक प्रकार की बर्रें छोड़ दीं। उन बर्रों ने स्त्रियों के कोमल शरीर को काट कर जगह-जगह सुजा दिया। तब वे रोती-चिखती और चिल्लाती हुई बड़ी तेजी के साथ अपने घरों को भाग चलीं। उसी अवस्था में वे सब गिरिजा के समीप जा पहुँची। उनकी इस दुर्गति को देखकर जो स्त्रियाँ उनके साथ नहीं गयी थीं, वे बहुत प्रसन्न हुईं और उन्हें चिढ़ाती हुई पूछने लगीं—"अरी सखियो ! तुम्हारी यह दुर्गति किसने कर दी है?" गिरिजा भी उनकी हालत को देखकर पहले तो बहुत हँसी, फिर अपनी कृपा दृष्टि द्वारा उन सबको स्वस्थ कर दिया। तदुपरान्त उन्होंने पूछा कि यह सब चरित्र कैसे हुआ, वह तुम मुझे बताओ। गिरिजा के इन शब्दों को सुनकर उन स्त्रियों ने सम्पूर्ण घटना कह सुनायी। तब शिवजी के चरित्र को देख-सुनकर गिरिजा हँसने लगीं।"

ॐ ॐ ॐ

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! हिमाचल की आज्ञा पाकर जो लोग बारात को ढूँढने गये थे, उन लोगों ने लौटकर यह समाचार दिया कि

हमें बारात कहीं नहीं मिली। हिमाचल यह सुनकर पहले तो बहुत दुःखी हुए, परन्तु जब उन्होंने गिरिजा की सखियों की दुर्गति का समाचार सुना तो उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि सम्भवतः वही शिवजी होंगे। यह विचार आते ही वे बहुत पछताकर कहने लगे— ''हाय, ब्राह्मण आदि तो शिवजी की बहुत प्रशंसा किया करते हैं, फिर क्या कारण है, जो वे ऐसा भयानक स्वरूप बनाकर मेरी पुत्री को ब्याहने आये हैं? अब मुझे वास्तव में पता चला कि पुरोहित ने मेरे साथ धोखा किया है। मैं राजा होकर ऐसे भिखारी के साथ अपनी पुत्री का विवाह कदापि नहीं करूँगा।'' इस प्रकार की बातें करते हुए हिमाचल तथा मैना बहुत चिन्तित हुए। जो बन्धु-बान्धव विवाह में सम्मिलित होने के निमित्त हिमाचल के घर आये हुए थे, वे भी शोकाकुल होकर कहने लगे कि अरे, यह क्या हुआ?

हे नारद ! उस समय हिमाचल आदि के चित की चिन्ता को देखकर गिरिजा ने 'विजया' नामक सखी को अपने पास बुलाया और उसे एक पत्र देते हुए कहा—हे सखी ! तुम इसी समय इस पत्र को लेकर शिवजी के पास चली जाओ और निर्भय हो हाथ जोड़कर, उनसे मेरी ओर से प्रार्थना करते हुए यह कहना कि आप गिरिजा के इस पत्र का उत्तर तुरन्त देवें। फिर वे जो भी उत्तर दें उसे लेकर तुम मेरे पास लौट आना। यह सुनकर वह सखी गिरिजा का पत्र लेकर शिवजी के पास चल दी और वहाँ पहुँचकर उन्हें दणडवत्-प्रणाम करने के उपरान्त पत्र देती हुई बोली—''हे परब्रह्म शिवजी ! मैं आपको भली-भाँति जानती हूँ, परन्तु मेरे माता-पिता तथा अन्य लोग आपकी महिमा को न पहिचान पाने के कारण अत्यन्त चिन्तित हो रहे हैं। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप अपने परम सुन्दर तथा कोमल स्वरूप को धारण कीजिये। इसके अतिरिक्त आप श्रेष्ठ बारात एवं सुन्दर सामग्री के साथ यहाँ पधारिये, जिससे सब लोगों के मन की व्याधि दूर हो।'' शिवजी ने इस पत्र को पढ़कर उत्तर लिख दिया और

उसे देकर सखी को विदा किया। जब गिरिजा को अपने पत्र का उत्तर मिल गया, तब वे अपने मन में बहुत प्रसन्न तथा सुखी हुईं।''

ॐ ॐ ॐ

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! उस समय हिमाचल ने बहुत दुःखी होकर गिरिजा को अपने पास बुलाया और यह कहा—''हे पुत्री ! तूने यह क्या किया जो सब देवताओं को छोड़कर ऐसे अवधूत पति की इच्छा की? मैं तो अपनी प्रतिज्ञा के कारण तुझ से कुछ नहीं कह सकता, परन्तु तेरी माता अपयश का ध्यान करके बहुत दुःखी हो रही हैं। जब मैं यह विचार करता हूँ कि मेरी लड़की का विवाह एक अवधूत के साथ होगा, उस समय मैं शोक-समुद्र में डूब जाता हूँ। मुझे बड़ी चिन्ता है कि मैंने तो इतनी सामग्रियाँ एकत्र कीं, परन्तु तेरा पति अपने साथ केवल दो कुरूप शिष्यों को बारातियों के नाम पर लाया है। उसके साथ जो बैल है, वह भी बहुत बूढ़ा तथा निर्बल है। उस बैल के ऊपर भाँग-धतूरा आदि अनेक प्रकार की मादक वस्तुएँ तथा विभिन्न प्रकार के विष लदे हुए हैं। मेरा भाग्य तो देखो कि कैसी बारात आज मेरे दरवाजे पर आयी है। अब भला तू ही बता कि इस अवसर पर सब लोग मुझे क्यों नहीं धिक्कारेंगे?''

हे नारद ! हिमाचल की बात सुनकर गिरिजा ने हँसते हुए कहा—''हे पिता ! आप कुछ चिन्ता न करें। विष्णु जी का वचन मिथ्या न होगा। इस समय जो लीला हो रही है, वह भी सब लोगों का आनन्द प्रदान करने वाली सिद्ध होगी। अन्त में, सब लोग आपकी बहुत स्तुति करेंगे तथा आपके प्रताप को सबसे बड़ा स्वीकार करेंगे। आप विश्वास रखें कि इस विवाह के बाद तीनों लोकों में आपको सुयश प्राप्त होगा। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी आपका अत्यंत सम्मान करेंगे। अब आपको उचित है कि आप उन योगी रूपधारी भगवान् सदाशिव के समीप जायें और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करें, वे

आपकी सम्पूर्ण इच्छाओं को पूरी करेंगे।''

हे नारद ! शिवजी तथा गिरिजा की लीलाएँ अपार हैं। वे दोनों एक ही रूप हैं। अस्तु, उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं समझना चाहिए। जिस प्रकार शब्द और अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता, उसी प्रकार शिवजी तथा गिरिजा जी में भी किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है। उनकी जो इच्छा होती है, उसी लीला को वे सब लोगों को दिखाते हैं। उनकी लीलाओं का पार किसी ने नहीं पाया है। अस्तु, इस घटना के उपरान्त हिमाचल ने अपने भाई-बन्धुओं को बुलाकर गिरिजा ने जो बात कही थी, वह सब कह सुनायी। फिर कहा—''हे भाइयो ! वह योगी अवधूत का स्वरूप बनाये हुए एक निर्बल बैल तथा दो छोटे-छोटे बालकों को साथ लिये हुए यहाँ आया है। अब आप लोगों की जो सम्मति हो, वही कार्य किया जाए।''

ॐ ॐ ॐ

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! हिमाचल की बात सुनकर सब पर्वतों ने इस प्रकार कहा—''हे राजन् ! हमें सर्व प्रथम उस योगी के पास पहुँचकर उसकी परीक्षा ले लेनी चाहिए। यदि उसमें कोई बुराई न हो तो उसके साथ गिरिजा का विवाह करने में कोई हानि नहीं है।'' यह सुनकर हिमाचल अपने साथ कई लोगों को लेकर शिवजी के पास जा पहुँचे और हाथ जोड़कर प्रणाम करने के उपरान्त चुपचाप खड़े हो गये। उस समय शिवजी ने यह लीला की कि शुक्र तथा शनिश्चर, जो शिष्यों की भाँति उनके साथ थे, पास आ पहुँचे और रुदन करने लगे। उन्हें रोते हुए देखकर शिवजी ने कहा—''हे बालको ! तुम रोना-धोना त्यागकर खूब खेलो-कूदो, परन्तु मेरे पास से कहीं दूर मत चले जाना। मैं अकेला निर्धन मनुष्य हूँ। तुम भी मुझे बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुए हो। देखो, तुम बैल की भी देखभाल करते रहना ; क्योंकि नशे में चूर होने के कारण इस समय मैं उसकी देखभाल नहीं कर सकता हूँ।''

हे नारद ! इस प्रकार नशे बाजों की भाँति शिवजी ने हिमाचल आदि के सामने उन बालकों से बहुत-सी बातें कहीं, परन्तु वे बालक बराबर रोते रहे। उस समय शिवजी ने उनसे रोने का कारण पूछा तो वे उत्तर देते हुए बोले—"हे बाबा ! हम तो भूख से मरे जाते हैं, अब या तो आप हमें कुछ खाने के लिए दीजिये, अन्यथा हम इसी प्रकार चिल्लाते रहेंगे।" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे बालको ! मेरे पास तो खाने के लिए कुछ भी नहीं है, परन्तु तुम कुछ देर और ठहरे रहो। हिमाचल के घर खाने-पीने की बहुत सामग्रियाँ बनी हैं। जब गिरिजा के साथ मेरा विवाह होगा, उस समय तुम्हें भी बहुत-सा भोजन खाने के लिए मिलेगा।" यह सुनकर दोनों चेलों ने कहा—"हे बाबा ! विवाह में तो अभी बहुत देर है तब तक हम भूखे नहीं रह सकेंगे। कई दिनों से भोजन प्राप्त न होने के कारण अब हम से और अधिक देर तक नहीं ठहरा जाता है। इसलिए आप कुछ-न-कुछ खाने का प्रबन्ध तो कर ही दें।"

हे नारद ! हिमाचल ने जब उन दोनों बालकों की यह बात सुनी तो शिवजी से कहा—"हे प्रभो ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम आपके दोनों शिष्यों को अपने साथ घर ले जाकर भोजन करा लावें।" शिवजी बोले—"हे राजन् ! यदि आप यही चाहते हैं तो इन्हें भोजन करा लाइये। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।" यह सुनकर हिमाचल को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे राजन् ! हम आपके घर भोजन करने के लिए नहीं जायेंगे ; क्योंकि घर के स्वामी के बिना हमें वहाँ कोई भी अच्छी तरह से भोजन नहीं करा सकेगा। यदि आप स्वयं हमें लेकर चलें तो हम तैयार हैं, अन्यथा भूखे रहकर यहीं रोते रहेंगे।" उस समय शिवजी ने हिमाचल को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे राजन् ! आप स्वयं इन्हें साथ ले जाकर भोजन करा लाइये। सचमुच यह कई दिन के भूखे हैं। आप इन्हें अच्छी तरह से भोजन करा दें तथा पानी भी पिला दें।"

हे नारद ! शिवजी की आज्ञा सुनकर हिमाचल उन दोनों को साथ

लेकर घर आये और उन्हें भोजन कराने लगे। उस समय उन दोनों शिष्यों ने यह किया कि उनके सामने जितना भी भोजन परोसा गया, उन सब को वे एक ही ग्रास में खा गये, तदुपरान्त उन्होंने हिमाचल को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे राजन् ! अभी तो हमने केवल एक ही ग्रास भोजन खाया है, इससे हमारी भूख बिल्कुल नहीं बुझी, अब तुम हमें शीघ्र ही और कुछ खिलाओ। तुम बहुत बड़े राजा हो, अतः तुम्हें किसी प्रकार का लोभ करना उचित नहीं है। यदि हम भूखे उठ गये तो तुम्हें बहुत पाप लगेगा।" यह सुनकर हिमाचल ने रसोई करने वालों से कहा—"तुम्हें लोभ करने की आवश्यकता नहीं है। मेरे यहाँ भोजन ढेर के ढेर रखे हैं, अतः ये जितना भी खा सकें, तुम इन्हें खूब खिला दो।" यह सुनकर रसोईया जब और सारा भोजन ले आया तो उसको भी वे एक ही ग्रास में खा गये। हिमाचल के यहाँ जितना पानी था, उन सबको भी उन्होंने एक ही घूँट में पी लिया। तदुपरान्त वे चिल्लाते हुए बोले—"हे राजन् ! हम तो भूख के मारे मरे जा रहे हैं, तुम हमें खाने के लिए कुछ क्यों नहीं देते हो? यदि तुम्हारे यहाँ भोजन तैयार न हो तो हमें कच्चा अन्न ही बतला दो, हम उसी को खा जायेंगे।" यह सुनकर हिमाचल ने अत्यन्त चिन्तित होकर कच्चे अन्न का जो अम्बार लगा था, वह उन दोनों को बतला दिया। उस पर्वत के समान अन्न के ढेर को भी वे एक ही ग्रास में खा गये। जब राजा के घर कुछ भी शेष नहीं रहा, तब वे भूख-भूख चिल्लाते और रोते हुए वहाँ से लौट पड़े तथा अपने गुरु के समीप जा पहुँचे। शिवजी ने जब उन्हें देखा तो पहले तो बहुत हँसे, तदुपरान्त अपने झोले से निकाल कर उन्हें एक जड़ी ऐसी दे दी, जिसे खाते ही उनकी भूख शांत हो गयी।"

ॐ ॐ ॐ

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! हिमालय के घर से जब शिवजी के दोनों शिष्य चले गये, तो उस समय सब लोगों ने हिमालय के पास

पहुँचकर कहा—"हे राजन् ! अब तो नगर में अन्न का लेश मात्र भी शेष नहीं रहा है। भला, हम लोग किस प्रकार जीवित रहेंगे? अब आप शीघ्र ही वह उपाय कीजिये, जिससे प्रजा का यह दुःख दूर हो।" यह सुनकर हिमाचल ने उनसे कहा—"हे भाइयो ! हमारे नगर के बाहर उद्यान में एक बूढ़ा योगी कहीं से आकर ठहरा हुआ है। उसके साथ एक बैल है और दो शिष्य हैं। वह मेरी पुत्री के साथ विवाह करने की इच्छा रखता है। उसके शिष्यों ने ही नगर में अन्न का अकाल उपस्थित कर दिया है। ऐसी दशा में अब आप ही बताइये कि हमें क्या करना चाहिए?" यह सुनकर सब लोगों ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! इसका भेद तो पुरोहित अथवा गिरिजा से ही पूछना उचित है, परन्तु एक बात को हम लोग अवश्य स्वीकार करते हैं कि यदि उस योगी में कोई दोष होता तो गिरिजा उसे पति रूप में पाने की इच्छा कभी नहीं करतीं।"

हे नारद ! यह सुनकर हिमाचल ने पुरोहित को अपने पास बुलाकर पूछा—"हे पुरोहित ! तुम सच-सच बताओ कि जो योगी दो शिष्यों को साथ लेकर यहाँ आया है, वह वास्तव में कौन है?" पुरोहित ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! गिरिजा ने मुझे इस योगी का पता बताया था, तब मैं उसे तिलक चढ़ा आया।" इतना कहकर पुरोहित ने योगी स्वरूप शिवजी की महिमा को सुनाते हुए कहा—"हे राजन् ! ये योगीरूप में साक्षात् शिवजी हैं और तुम्हारी पुत्री गिरिजा आदिशक्ति भवानी का अवतार हैं। यदि आप इससे कुछ और अधिक जानना चाहते हों तो गिरिजा से ही पूछ लीजिये। वे इस सम्बंध में आपको और अधिक बात बता सकेंगी।" पुरोहित के मुख से यह बात सुनकर सब लोगों ने गिरिजा की बात सुनने का निश्चय किया। तब हिमाचल ने गिरिजा को अपनी सभा में बुलाया। पिता की आज्ञा सुनकर गिरिजा अपनी माता तथा दो सखियों को साथ लेकर सभा में पहुँचीं। जब गिरिजा ने लोगों को प्रणाम किया तो हिमाचल ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने पास बैठा लिया।

पच्चीसवाँ अध्याय

हिमाचल ने गिरिजा को अपने पास बैठाते हुए अत्यन्त स्नेह पूर्वक कहा—"हे पुत्री ! इस समय सब लोग दुःख सागर में निमग्न हैं, अतः तुम सब हाल समझाकर कहो कि वह योगी कौन हैं, जिसके शिष्यों ने हमारा सम्पूर्ण भोजन खा लिया है और नगर में अन्न तो अन्न, कहीं पानी भी ढूँढे नहीं मिलता है?" पिता की बात सुनकर गिरिजा मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुईं, परन्तु ऊपर से लज्जित होकर कुछ न कह सकीं। हे नारद ! उसी समय तुम हिमाचल की सभा में पहुँचे और तुमने आदि से अन्त तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए हिमाचल से कहा—"हे राजन् ! तुम किसी प्रकार सन्देह मत करो। तुम और तुम्हारी पत्नी परम धन्य हो। तुम्हारे यहाँ भगवती आदिशक्ति ने अवतार लिया है। ये आदिशक्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को भी उत्पन्न करने वाली हैं। यही सब का संहार भी करती हैं। इनकी माया अपरम्पार है। यह जो तुम्हारे घर में सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई भ्रमण कर रही हैं, इसे तुम अपना अहोभाग्य ही समझो। इन्होंने प्रेम के वशीभूत होकर ही तुम्हारे ऊपर यह कृपा की है। वे बूढ़े योगी, जिसका नाम हर है और जो अपने साथ शुक्र तथा शनिश्चर नामक दो शिष्यों को लेकर बाग में ठहरे हुए हैं, तुम्हारी इस कन्या के सच्चे पति हैं। ये ब्रह्मा तथा विष्णु के भी पिता हैं और सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाले तथा उसका संहार करने वाले भी हैं। अब तुम्हें यह उचित है कि तुम उन्हीं की शरण में जाओ। वे तुम्हारे अन्न आदि को जो उनकी माया द्वारा गुप्त हो गया है, फिर से प्रकट कर देंगे तथा तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करेंगे। वे अपना स्वरूप भी ऐसा सुन्दर बना लेंगे कि उसे देखकर तुम्हें अत्यन्त आश्चर्य होगा। उनकी बारात भी पलक मारते ही सज जायेगी और उसमें ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता सेवक बनकर सम्मिलित होंगे।"

हे नारद ! जब तुमने इस प्रकार सब लोगों को समझाया, उस समय हिमाचल तथा अन्य लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई। तदुपरान्त

तुम अपने लोक को चले गये और हिमाचल गिरिजा के विवाह की तैयारी में संलग्न हुए।''

ॐ ॐ ॐ

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! फिर पर्वतराज हिमाचल सब लोगों को साथ लेकर शिवजी की सेवा में जा पहुँचे और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। यह देखकर शिवजी ने उनसे हँसते हुए पूछा—''हे राजन् ! तुम क्या चाहते हो? हम तुम्हारी प्रत्येक मनोकामना को पूर्ण करेंगे?'' यह सुनकर हिमाचल ने अपनी इच्छा को प्रकट करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आपकी लीला जानी नहीं जाती। आप कृपा करके मेरे सम्पूर्ण अपारधों को क्षमा कीजिये और मुझे ऐसा ज्ञान प्रदान कीजिये कि जिससे मैं सदैव चैतन्य बना रहूँ। हे प्रभो ! आपका वर्णन वेदों से भी नहीं हो सकता। यदि नारद जी हमें आश्चर्य रूपी समुद्र से बाहर न निकालते तो हमारी अज्ञानता कभी दूर नहीं होती। हे नाथ ! अब मेरा सम्पूर्ण अहंकार नष्ट हो गया है। आप नगर में पधारकर गिरिजा को स्वीकार कीजिये और हम सब लोगों को प्रसन्नता प्रदान कीजिये। हे प्रभो ! आपके दोनों शिष्यों ने नगर का सम्पूर्ण अन्न खा डाला है जिसके कारण लोग अत्यन्त दुःखी हैं। आप कृपा करके इस दुःख को भी दूर कर दीजिए। इस समय मेरी प्रतिष्ठा आपके हाथ में है। मैं आपकी शरण में आया हूँ।''

हे नारद ! हिमाचल के इन शब्दों को सुनकर शिवजी ने प्रसन्न होते हुए कहा—''हे राजन् ! अब तुम प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर को लौट जाओ। तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे। तुम विवाह की सामग्री एकत्र करो। हे पर्वतराज ! तुम्हें अपने राज्य तथा सामग्री एकत्र करने का बहुत अहंकार हो गया था, उसे नष्ट करने के लिए ही हमने यह लीला दिखायी है। अब तुम घर जाकर बारात की अगवानी की प्रतीक्षा करो। तुम्हारे घर की सभी वस्तुएँ ज्यों-की-त्यों प्रकट हो जायेंगी।'' शिवजी

की आज्ञा पाकर हिमाचल अपने घर लौट गये। वहाँ जाकर जब उन्होंने यह देखा कि सब सामग्रियाँ पुनः प्रकट हो गयी हैं तो उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मैना भी गिरिजा की ओर देखकर अत्यन्त आनन्दित हुईं। तदुपरान्त हिमाचल बारात की अगवानी के लिए सभी लोगों को साथ लेकर आगे चले। इधर हिमाचल को विदा करने के उपरान्त शिवजी ने सिंगी नाद करके अपना डमरू बजा दिया। उसके शब्द को सुनते ही मैं, विष्णु, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि-मुनि सम्पूर्ण सृष्टि के साथ लेकर शिवजी के समीप जा पहुँचे। उस समय शिवजी ने वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर अपना सुन्दर दूल्हा रूप बनाया। भगवान् सदाशिव के उस परम तेजस्वी स्वरूप का दर्शन प्राप्त कर, सब लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जब हिमाचल अपने भाई-बन्धु तथा प्रजा को साथ लेकर अगवानी के लिए आगे आये, उस समय शिवजी की सजी हुई बारात की धूमधाम को देखकर वे आनन्द मग्न हो गये। उस बारात के सम्मुख हिमाचल ने अपनी सम्पूर्ण सामग्री को बहुत तुच्छ समझा। तब वह अत्यन्त लज्जित हो शिवजी के चरणों पर गिर पड़े। उस समय शिवजी ने प्रेम मग्न हो उन्हें अपने हाथों पर उठा लिया। फिर बारात हिमाचल के द्वार की ओर चली। उस सुन्दर बारात को देखने के लिए नगर की सभी स्त्रियाँ अपना-अपना काम छोड़कर छज्जों पर आ बैठीं। यहाँ तक कि कोई स्त्री अपने पति को भोजन करते छोड़कर ही उठ बैठी और कोई अधूरा श्रृंगार किये ही भागी चली आयी। वे सब शिवजी के परम मनोहर रूप को टकटकी बाँधकर देखने लगीं और गिरिजा के भाग्य की सराहना करती हुई, बारात के ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगीं।

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी की बारात हिमाचल के द्वार पर जा

पहुँची। उस समय हिमाचल तथा मैना ने अपना अहंकार त्याग कर बहुत-सा धन शिवजी को भेंट किया। तदुपरान्त बारात के ठहरने के लिए जो निवास बनाया गया था, उसमें सभी बाराती ठहरे। गिरिजा ने ऋद्धि-सिद्धियों को बारात की सेवा करने के लिए भेज दिया था। अस्तु, किसी को किसी वस्तु की कमी न रही। रीति-भाँति सम्पन्न होने के पश्चात् हिमाचल ने बारातियों को अनेक प्रकार के सुस्वादु, व्यंजन खिलाये। तदुपरान्त भगवान् सदाशिव के उन चरण-कमलों को जिन्हें हम तथा विष्णु रात-दिन अपने हृदय में बैठाये रहते हैं, हिमाचल ने अपने हाथों से धोया। भोजन के समय बारातियों को जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य, ये चारों प्रकार के व्यंजन बारातियों को खिलाये गये। जब बारात भोजन करके जनवासे में चली गयी, तब हिमाचल के बन्धु-बान्धवों ने भोजन प्राप्त किया। शिवजी जिस स्थान पर ठहरे हुए थे, वहाँ विविध प्रकार के नृत्य एवं गीतों का आयोजन हुआ, जिन्हें देख-सुनकर व्यसनी लोग अत्यन्त प्रसन्न होते थे। उस समय सब लोग भगवान् सदाशिव तथा भगवती गिरिजा की बारम्बार प्रशंसा कर रहे थे।''

ॐ ॐ ॐ

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! उस समय हिमाचल के पंडित ने आकर लग्न का मुहूर्त बताया। तब मैं और विष्णु जी, शिवजी को साथ लेकर हिमाचल के घर में जा पहुँचे। भगवान् सदाशिव के उस समय के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका सम्पूर्ण शरीर कपूर तथा अथवा कुन्द के पुष्प के समान श्वेत था। वे सिर से पाँव तक वस्त्राभूषणों से अलंकृत थे और माथे पर मौर रक्खे हुए थे। जिस बैल पर वे आरूढ़ थे, उसके सौन्दर्य और श्रृंगार का भी वर्णन नहीं किया जा सकता। जब शिवजी घर के भीतर पहुँचे, तब उनकी

ओर से मैंने तथा हिमाचल की ओर से पुरोहित ने मिलकर सम्पूर्ण रीतियाँ सम्पन्न कीं। हिमाचल ने शिवजी का मधुपर्क सहित अर्घ्य प्रदान किया तथा दो वस्त्र भेंट किये, तदुपरान्त मैंने उसी स्थान पर गिरिजा को बुलवाया।''

''हे नारद ! गिरिजा के आ जाने पर पुरोहित ने हवन किया। तदुपरान्त अग्नि को साक्षी करके हिमाचल ने कन्यादान किया। जिस समय शिवजी ने गिरिजा के हाथ को अपने हाथ में पकड़ा, उस समय सब लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये। हिमाचल के कुटुम्बियों ने शिव तथा गिरिजा दोनों के चरणों की पूजा की। दोनों ओर के सेवकों को उस समय इतना पुरस्कार दिया गया कि वे सब तृप्त हो गये। भाँवरें हो जाने के उपरान्त शिव तथा गिरिजा को एक स्वर्ण सिंहासन पर बैठाया गया तथा जो रीतियाँ शेष रह गयी थीं, उन्हें मैंने पुरोहित के साथ सम्पन्न कराया। फिर शिवजी ने मेरी आज्ञानुसार गिरिजा के मस्तक में सिन्दूर लगाया। उस समय मैंने तथा पुरोहित ने भी अपना-अपना पुरस्कार प्राप्त कर दोनों को आशीर्वाद किया। हे पुत्र ! शिव तथा पार्वती के विवाह का वह आनन्द तीनों लोकों में भर गया। फिर स्त्रियाँ शिवजी को अन्तःपुर में ले गयीं। वहाँ जो भी रीतियाँ होने को थीं, उन सबको शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक किया। दूसरे दिन भी हिमाचल ने बारात को ठहराये रखा और इस दिन भी उसने सम्पूर्ण बारात का अत्यन्त स्वागत-सत्कार किया। तीसरे दिन हिमाचल ने अत्यन्त स्नेह में भरकर शिवजी को प्रणाम किया और गिरिजा का हाथ उनके हाथ में देकर, बारात को विदा किया। हिमाचल के नगर से विदा होकर बारात कैलाश पर्वत पर जा पहुँची। वहाँ भी अनेक प्रकार के उत्सव हुए। तदुपरान्त सब देवता शिवजी से विदा लेकर अपने-अपने घर लौटे। मैं तथा विष्णु भी अपने-अपने लोक को लौट गये। शिवजी तथा गिरिजा जी के विवाहोत्सव का वर्णन करते हुए सब लोग अत्यन्त प्रसन्न होते थे।''

ॐ ॐ ॐ

उन्नीतसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! एक समय संसार की मंगल-कामना करते हुए हम हिमालय के घर पहुँचे थे। उस समय की कथा यह है कि जब हिमाचल ने तुम्हारे दर्शन पाये तो उसने अत्यन्त प्रेम मग्न होकर तुम्हें दंडवत् करते हुए, स्तुति एवं प्रशंसा की। तदुपरान्त उसने गिरिजा को बुलाकर तुम्हारे चरणों में डाल दिया और यह कहा—हे मुनि ! आज आप इस कन्या के गुण-दोषों का वर्णन करने की कृपा करें। यह सुनकर तुमने गिरिजा की हस्तरेखा को देखते हुए हिमालय को बताया—"हे राजन् ! तुम्हारी पुत्री सर्व गुण सम्पन्न हैं। यह शीलवान् बुद्धिमान्, गुणवान्, रूपवान् तथा पति को प्रसन्नता प्रदान करने वाली होगी। यह अपने माता-पिता के सुयश को दुगुना बढ़ायेगी, परन्तु इसका पति योगी, अहंकार-हीन, नग्न-वेषधारी तथा माता-पिता से रहित होगा।"

हे नारद ! तुम्हारी बात सुनकर हिमाचल अत्यन्त चिन्तित हुए, परन्तु गिरिजा को बहुत प्रसन्नता हुई ; क्योंकि वे जानती थीं कि ऐसे लक्षण वाले शिवजी ही हैं। उन्हें यह विश्वास था कि नारद जी का वचन कभी झूठा नहीं होता, इसलिए वे शिवजी को पति रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा से और अधिक प्रसन्न हो गयीं, परन्तु उन्होंने प्रसन्नता का कोई लक्षण प्रकट नहीं किया। उस समय हिमाचल ने मुझसे कहा—"हे ऋषिराज ! आपने तो ऐसी बात बतायी, जिसे सुनकर मैं चिन्तित हो उठा हूँ। अब आप कृपा कर यह और बताइये कि मुझे गिरिजा के वर के सम्बन्ध में क्या उपाय करना चाहिए?" यह सुनकर तुमने उत्तर दिया—"हे राजन् ! भाग्य के सम्मुख किसी का वश नहीं चलता, फिर भी हम तुम्हें एक उपाय बतलाते हैं, यदि भाग्य सहायता दे तो वह ठीक बैठेगा। हमने गिरिजा के पति के सम्बन्ध में जो गुण बताये हैं, वे सब शिवजी में भी पाये जाते हैं। भगवान् सदाशिव सबसे श्रेष्ठ तथा सब के स्वामी मैं। आप अपनी कन्या का विवाह उनके साथ करें। मुझे

यह भी निश्चय है कि वे स्वयं भी गिरिजा के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री के साथ अपना विवाह नहीं करेंगे।''

हे नारद ! यह सुनकर हिमाचल ने कहा—''हे मुनिराज ! शिवजी को तो सब लोग त्यागी कहते हैं तथा वे सदैव योग-समाधि में मग्न रहते हैं। इसके अतिरिक्त तीनों लोकों में यह बात भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने केवल सती के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा की है। अस्तु, मुझे यह सन्देह होता है कि वे गिरिजा को किस प्रकार स्वीकार कर लेंगे?'' यह सुनकर तुमने उत्तर दिया—''हे हिमाचल ! शिवजी की उन आदिशक्ति सती ने ही गिरिजा बनकर तुम्हारे घर में अवतार लिया है। तुम इस सम्बन्ध में किसी प्रकार सन्देह मत करो।'' यह कहकर तुमने हिमाचल को पूर्व-वृत्तान्त कह सुनाया। तदुपरान्त तुम गिरिजा को श्रेष्ठ वर देकर, वहाँ से लौट आये। हे नारद ! कुछ दिनों बाद जब गिरिजा युवावस्था को प्राप्त हुईं, उस समय मैना ने हिमाचल से इस प्रकार कहा—''हे स्वामी ! अब आपको गिरिजा के विवाह का प्रयत्न करना चाहिए।'' पत्नी की बात सुनकर हिमाचल ने उत्तर दिया—''हे मैना ! सूर्य चाहे पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में उदय होने लगे, परन्तु नारद जी के वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते हैं। अस्तु, तुम सम्पूर्ण सन्देहों को नष्ट कर, शिवजी का ध्यान धरो और गिरिजा से यह कह दो कि वह शिवजी को प्राप्त करने के निमित्त तपस्या करें। तभी हमारा मनोरथ पूर्ण होगा।'' यह सुनकर मैना के हृदय में धैर्य बँधा। तब वह गिरिजा के समीप पहुँचकर, उन्हें गोद में उठाकर रोने लगी। प्रेम की अधिकता के कारण उनके मुख से कोई बात नहीं निकलती थी। उस समय गिरिजा ने अपनी माता के मनोरथ को पहचान कर इस प्रकार कहा—''हे माता ! मैंने आज स्वप्न में यह देखा है कि मुझ से एक मनुष्य इस प्रकार कह रहा है—''हे गिरिजे ! तुम वन में जाकर शिवजी की तपस्या करो, जिससे तुम्हारे माता-पिता तथा तीनों लोकों को आनन्द की प्राप्ति हो। नारद का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। तुम जब तक तपस्या नहीं करोगी, तब तक कोई कार्य सिद्ध न होगा।''

गिरिजा के स्वप्न को जब मैना तथा हिमाचल ने सुना, वे अत्यन्त प्रसन्न होकर, शुभ समय की प्रतीक्षा में रात-दिन व्यतीत करने लगे।

ॐ ॐ ॐ

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! एक समय शिवजी ने यह इच्छा की कि हम परिश्रम पूर्वक तप करें तथा अपने नाम का स्वयं स्मरण करें। यह विचार कर वे अपने गणों सहित हिमालय पर्वत की ओर चले। जब वे हिमालय पर्वत पर पहुँचे तो उन्होंने डमरू को बजाना आरम्भ कर दिया। उस स्थान पर गंगा जी की धारा बह रही थी और औषधियों का केन्द्र होने के कारण वह जगह 'औषधप्रस्थ' के नाम से प्रसिद्ध थी। वहाँ पक्षी मधुर ध्वनि में चहचहाते थे तथा अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्प खिले हुए थे। उस श्रेष्ठ स्थान को देखकर शिवजी तप करने की इच्छा से वहीं बैठ गये और अपने स्वरूप का ध्यान धरने लगे। उन्होंने कुम्भक, रेचक तथा पूरक—इन तीनों प्रकार के प्राणायाम को करना आरम्भ कर दिया। उनके नन्दी, भृंगी आदि गण भी, शिवजी का ध्यान धरते हुए, उसी स्थान पर बैठ गये।

हे नारद ! जब हिमाचल ने भगवान् सदाशिव के आगमन का समाचार सुना तो बड़ी सज-धज के साथ उनके समीप जा पहुँचे। फिर शिवजी की बहुत प्रकार से स्तुति-प्रशंसा करते हुए बोले—"हे प्रभो ! मेरा धन्य भाग्य है, जो आप यहाँ पधारें हैं। अब आप मुझे कोई आज्ञा दीजिये, जिसका पालन करने मैं कृतार्थ हो जाऊँ।" यह सुनकर शिवजी ने हँसते हुए कहा—"हे पर्वतराज ! हम यहाँ तपस्या करने के हेतु आये हैं और कुछ दिनों तक यहीं निवास करेंगे। हम केवल यही चाहते हैं कि जब तक हम यहाँ रहें, तब तक हमारे समीप कोई न आने पावे।" हिमाचल ने इस आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए कहा—"हे स्वामी ! आप जो चाहते हैं, वही होगा। मेरा यह परम सौभाग्य है कि आपने यहाँ पधारकर मुझे प्रतिष्ठा प्रदान की है। इतना कहकर

हिमाचल शिवजी की आज्ञा लेकर अपने घर लौट आये और सब जगह यह राजा की आज्ञा घोषित कर दी कि औषधप्रस्थ पर कोई व्यक्ति न जाने पाये, यदि कोई जायेगा तो वह मृत्यु-दण्ड पायेगा। इस आज्ञा के उपरान्त हिमाचल अपनी पुत्री गिरिजा को साथ लेकर फिर शिवजी की सेवा में पहुँचे और उनकी स्तुति प्रशंसा करने के उपरान्त बोले—"हे प्रभो ! यदि आप आज्ञा दें तो मेरी कन्या गिरिजा अपनी सखियों सहित यहाँ आपकी सेवा करती रहे।"

हे नारद ! हिमाचल की प्रार्थना सुनकर शिवजी ने गिरिजा को सिर से पाँव तक देखने के उपरान्त विचार किया कि श्रेष्ठ कार्यों में स्त्री बाधा स्वरूप आ खड़ी होती है, इसलिए उत्तम कार्य करते समय स्त्री को पास रखने का निषेध किया गया है। कामदेव का उत्तम शस्त्र स्त्री को ही कहा गया है, इसीलिए बुद्धिमानों ने स्त्री को महारोग के समान कहा है। यह विचार कर शिवजी ने हिमाचल से कहा—"हे राजन् ! हम तपस्वियों का स्त्री के साथ रहना शुभ नहीं है। स्त्री तप को भ्रष्ट कर डालती है। अतः हमें गिरिजा का यहाँ रहना स्वीकार नहीं है।" शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर हिमाचल आश्चर्य चकित रह गया, परन्तु गिरिजा ने शिवजी को सम्बोधित कर कुछ बातें कहीं।

हे नारद ! गिरिजा ने कहा—"हे तपस्वी ! आपका मत यह है कि पुरुष प्रकृति से पृथक् रहता है, परन्तु मैं कहती हूँ कि प्रकृति के बिना पुरुष कभी नहीं ठहर सकता। इस संसार में जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है, वह सब प्रकृति का स्वरूप है। प्रकृति जड़ तथा चैतन्य को अपने वश में रखती है। आपकी समझ में तो पुरुष और प्रकृति अलग-अलग हैं, परन्तु मेरी समझ में पुरुष प्रकृति से मिला हुआ है; क्योंकि कहना, सुनना तथा तपस्या करना आदि सब कार्य माया के रूप हैं। जो पुरुष माया से अलग है, उसे तो तपस्या करते समय किसी के द्वारा विघ्न डाले जाने का भय होना ही नहीं चाहिए।"

गिरिजा के ऐसे वचन सुनकर शिवजी बोले—"हे गिरिजे ! तुम्हारी यह बुद्धि केवल अपने मन से उत्पन्न की हुई है, जिसे केवल

आनुमानिक ही कहा जा सकता है। तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ है। माया कभी स्वाधीन नहीं है, क्योंकि वह जड़ होती है। यदि तुम्हें ऐसा अहंकार है कि माया और ब्रह्म एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते तो तुम ब्रह्म को रोक क्यों नहीं लेती हो?'' इतना कहकर शिवजी चुप हो गये। तब हिमाचल शिवजी की स्तुति करने के उपरान्त अपने घर को लौट गये, परन्तु गिरिजा को सखियों सहित वहीं छोड़ गये। इस बार शिवजी ने भी उनसे यह आग्रह नहीं किया कि वे गिरिजा को लौटा ले जाएं। अस्तु, गिरिजा प्रतिदिन अपनी सखियों सहित शिवजी की सेवा करने लगीं। वे वन से अनेक प्रकार के पुष्प आदि तोड़कर लातीं और शिवजी का पूजन किया करती थीं, परन्तु शिवजी का चित्त किसी भी प्रकार चलायमान न हुआ।

हे नारद ! गिरिजा अपने मन में विचार किया करती थीं कि शिवजी मुझे किस समय स्वीकार करेंगे? उधर शिवजी भी अपने मन में यह सोचते थे कि यदि मैं गिरिजा को इसी समय ग्रहण कर लूँगा तो इसे अपने मन में बहुत अहंकार हो जायेगा। इसके अतिरिक्त तीनों लोकों में मेरी निन्दा भी होगी। क्योंकि उस समय लोग यह कहेंगे कि शिवजी ने काम के आवेश में गिरिजा को स्वीकार कर लिया। अस्तु, जब गिरिजा मेरे लिए बहुत तपस्या करेगी, तब मैं इसके मनोरथों को पूर्ण करूँगा। यह निश्चय कर शिवजी ध्यान में मग्न हो गये। उसी समय तारक नामक दैत्य के द्वारा दुःखी होकर सब देवता मेरी शरण में आये। तब मेरे कहने से इन्द्र ने कामदेव को बुलाकर शिवजी को वश में करने के लिए उसे हिमालय पर्वत पर भेजा। इन्द्र की आज्ञा मानकर कामदेव शिवजी के पास गया, परन्तु वहाँ उनकी क्रोधाग्नि में पड़कर भस्म हो गया। उस समय तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। गिरिजा ने वन में जाकर बहुत तपस्या की तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें अंगीकार कर लिया।''

इकतीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाकर सूत जी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो ! ब्रह्मा जी के मुख से यह वृत्तान्त सुनकर नारद जी ने संशययुक्त हो, यह प्रार्थना की—"हे पिता ! आप मुझे तारक दैत्य द्वारा देवताओं को दुःख देने, कामदेव के भस्म होने तथा शिवजी द्वारा गिरिजा को पुनः ग्रहण करने का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें।" ब्रह्मा जी बोले—'हे पुत्र ! तुम ध्यान देकर इस कथा को सुनो। कश्यप की दिति नामक स्त्री के गर्भ से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दो अत्यन्त बलवान् तथा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने अपनी शक्ति द्वारा तीनों लोकों को वश में कर लिया। उनके अत्याचारों के कारण देवताओं को स्वप्न में भी आनन्द नहीं मिलता था। तब विष्णु जी ने अवतार लेकर हिरण्यकशिपु को मारा तथा वाराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष का वध किया। उस समय सब देवता प्रसन्न होकर विष्णु जी की स्तुति करने लगे।

हे नारद ! अपने दोनों पुत्रों की मृत्यु से दिति को बहुत दुःख हुआ। उसने कश्यप के पास जाकर सब समाचार कह सुनाया। तदुपरान्त उसने अपने पति की अत्यन्त सेवा करके, उनसे आनन्द प्रदान करने वाले एक पुत्र की माँग की। दिति की सेवा से प्रसन्न होकर कश्यप ने उससे यह कहा—"हे दिति ! तुम एक सहस्त्र वर्षों तक तपस्या करो। यदि तुम्हारा तप सिद्ध हुआ तो तुम्हें अवश्य ही भाग्यवान् पुत्र की प्राप्ति होगी।" यह सुनकर दिति ने तप करना आरम्भ कर दिया। जब इन्द्र ने दिति को इस प्रकार तप करते देखा तो वे पास जाकर दिति की सेवा करने लगे। दिति ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर पूछा—"हे इन्द्र ! तुम मेरी इतनी सेवा किस इच्छा से कर रहे हो? तुम मुझे अपनी अभिलाषा बताओ तो मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी।" यह सुनकर इन्द्र ने उत्तर दिया—"हे माता ! हम अपनी सेवा के बदले तुम से यही वर माँगते हैं कि जिस पुत्र के लिए तुम ऐसा कठिन तप कर रही हो, वह

जब जन्म ले तो हमारे भाई के समान, हमारा परम हितैषी हो और हम देवताओं का दुःख दूर किया करे।'' यह बात सुनकर दिति ने अत्यन्त दुःखी होकर कहा—''हे इन्द्र ! तुमने छल करके मुझे ठग लिया है, फिर भी मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगी।'' इतना कहकर दिति पुनः उग्र तप करने लगी।

हे नारद ! एक दिन अचानक ही दिति सोते समय अशुद्ध हो गयी। उस समय इन्द्र छिद्र के मार्ग द्वारा उसके गर्भाशय में प्रवेश कर गये। वहाँ पहुँचकर, उन्होंने दिति के गर्भ में जो बालक था, उसके सात खण्ड कर डाले ; परन्तु इतने पर भी जब वह बालक नहीं मरा और एक के स्थान पर सात रूपों में विभाजित हो गया, तब इन्द्र ने उनमें से प्रत्येक खण्ड के सात-सात टुकड़े और कर दिये। इस प्रकार वे सब उनचास टुकड़े हो गये, परन्तु वे सब टुकड़े मृत्यु को प्राप्त न होकर अलग-अलग बालक के रूप में जीवित बने रहे। यह देखकर इन्द्र दिति के गर्भाशय से बाहर निकल आए। इसी बीच दिति की नींद टूट गयी। तब उन्होंने अत्यन्त चिन्तित होकर इन्द्र से पूछा कि कुछ देर पूर्व मेरे गर्भाशय में किसने प्रवेश किया था? दिति की बात सुनकर इन्द्र ने उन्हें सब सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया। उस घटना को सुनकर दिति को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जब वे उन्चास खण्ड बालक के रूप में प्रकट हुए, तब उनका नाम मरुद्गण अर्थात् वायु रखा गया। वे उनचासों मरुद्गण इन्द्र के भाई होकर, देवपद को प्राप्त हुए।

हे नारद ! मरुद्गणों के जन्म के पश्चात् दिति ने कश्यप जी की फिर बहुत सेवा की और यह कहा कि, ''हे प्रभो ! अब आप मुझे एक ऐसा लड़का दीजिये, जिसके शरीर पर किसी भी शस्त्र का प्रभाव न हो सके। यह सुनकर कश्यप ने उत्तर दिया—''हे दिति ! तुम दश सहस्त्र वर्षों तक तपस्या करो, तो तुम्हें निश्चय ही ऐसे पुत्र की प्राप्ति होगी। पति की आज्ञानुसार दिति ने पुनः दश सहस्त्र वर्षों तक कठिन तप किया। जब उसकी तपस्या पूर्ण हुई तो उसके गर्भ से एक बालक ने जन्म लिया। उसका नाम 'वज्रांग' रक्खा गया। वह बालक

महाप्रतापी, तेजस्वी, धीर, वीर तथा बुद्धिमान् था, उसने अपने माता दिति की आज्ञा से इन्द्र को पकड़ लिया। फिर उसे लात-घूसों से अच्छी तरह पीटता और पृथ्वी पर घसीटता हुआ अपनी माता के सामने लाकर खड़ा कर दिया। हार कर इन्द्र ने वज्रांग की अधीनता स्वीकार कर ली।

हे नारद ! जब मैंने इन्द्र की यह दशा देखी, उस समय मैंने तथा कश्यप ने वज्रांग के पास जाकर यह कहा—"हे पुत्र ! तुमने इन्द्र को अपने वश में कर लिया है। अस्तु, अब तुम हमारे ऊपर कृपा करके इसे छोड़ दो। तुम अपने कुल में सूर्य के समान प्रतापी हो। तुम्हारी शक्ति का वर्णन कहाँ तक किया जाए। यह सुनकर वज्रांग ने उत्तर दिया— मैं आप लोगों के कहने से इन्द्र को छोड़ देता हूँ। मुझे इन्द्र लोक प्राप्त करने की कोई इच्छा नहीं है। मैंने तो अपनी माता की आज्ञा मानकर ही इन्द्र को यह दंड दिया है।" इतना कहकर वह मुझसे बोला—"हे पितामह ! आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, अतः मैं चाहता हूँ कि आप मुझे तीनों लोकों का सार बता दें।" उसकी बात सुनकर मैंने बहुत देर तक सोच-विचार करने के उपरान्त उसे तपस्या तथा योग का सार बता दिया और वारांगी नामक एक स्त्री उसे देकर बोला—"हे वज्रांग ! यह स्त्री तुम्हारी पत्नी होगी, तुम इसे स्वीकार करो।"

हे नारद ! इतना करके मैं तो अपने लोक को लौट आया, उधर वज्रांग समुद्र में घुसकर तपस्या करने लगा। उसकी स्त्री वारांगी भी समुद्र, के तट पर स्थिर एक पर्वत के समीप बैठकर तपस्या करने लगी। उस समय इन्द्र ने उसकी तपस्या भ्रष्ट करने के लिए अपने अनेक सेवकों को भेजा। उन्होंने अनेक प्रकार के स्वरूप धारण कर वारांगी को डराया परन्तु उस स्त्री के ऊपर किसी का कुछ वश न चला। यह देखकर इन्द्र ने अत्यन्त भयभीत हो, मनुष्य रूप धारण कर उसकी शरण में पहुँचा, परन्तु जैसे ही वारांगी ने उसकी ओर अपनी दृष्टि घुमायी, वैसे ही इन्द्र की सम्पूर्ण माया इस प्रकार लुप्त हो गयी, जिस प्रकार शिवजी के दर्शन प्राप्त करके, सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। तब इन्द्र अपने गणों के साथ उस स्थान से चला गया।

हे नारद ! कुछ समय बाद वज्रांग की तपस्या से प्रसन्न होकर मैं उसे वर देने के लिए पहुँचा। उस समय उसने मेरी बहुत प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे पितामह ! आप मुझे अपना सेवक जानकर यह वरदान दीजिये कि मुझ में आसुरी भाव उत्पन्न न हो। मेरा मन धार्मिक कार्यों में सदैव लगा रहे। वज्रांग की विनती सुनकर मैंने उसे इच्छित वरदान दे दिया और अपने लोक को लौट आया। तदुपरान्त वज्रांग भी जल से बाहर निकल कर अपनी स्त्री के पास जा पहुँचा। स्त्री ने उसे देखकर रोते हुए इन्द्र के गणों द्वारा कष्ट देने का सब हाल कह सुनाया, परन्तु वज्रांग ने उसे शान्त करते हुए धर्म का उपदेश किया और यह कहा कि हमें इन्द्र के ऊपर क्रोध करना उचित नहीं है। उस समय तो वारांगी यह सुनकर चुप रह गयी। जब कुछ समय उसे पति की सेवा करते हुए व्यतीत हुए, तब एक दिन उसने वज्रांग से कहा कि हे स्वामी ! इन्द्र हम लोगों का शत्रु है और उसने मुझे बहुत दुःख दिया अस्तु, आप मेरी मनोभिलाषा पूर्ण करने के निमित्त मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये जो इन्द्र से मेरे अपमान का बदला ले सके। इतना कहकर वह अपने पति के चरणों में गिर पड़ी।"

ॐ ॐ ॐ

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अपनी स्त्री के मुख से यह शब्द सुनकर वज्रांग ने अपने मन में दुःखी होकर यह विचार किया कि अब मुझे क्या करना चाहिए? मेरी पत्नी तो देवताओं से शत्रुता करना चाहती है। मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि मुझे क्या करना उचित है और क्या अनुचित है? नियम यह है कि यदि स्त्री का मनोरथ पूर्ण हो जाये तो वह अत्यन्त सुख देने वाली होती है, उसके कारण तीनों लोकों में किसी को अप्रसन्नता नहीं होती। इसके विपरीत जो स्त्री के मनोरथ को पूरा नहीं करता तो वह भी लोक में बहुत दुःख पाता है और अन्त में नरक में गिरता है। इस विचार से वज्रांग बहुत दुःखी होकर तपस्या

करता रहा। बहुत समय तक वह उसी अवस्था में बैठा रहा। अन्त में, मैं उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसे वरदान देने के लिए पास पहुँचा। उस समय उसने मेरी बहुत स्तुति करते हुए यह माँग की मेरे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो परम तेजस्वी, बलवान् तथा अपनी माता को आनन्द देने वाला सिद्ध हो। मैं उसे इच्छित वरदान देकर अपने लोक को लौट आया। तब वज्रांग ने भी अपने घर पहुँचकर वारांगी को वरदान पाने का सब हाल कह सुनाया।''

हे नारद ! कुछ समय बाद वारांगी गर्भवती हुई। उसके गर्भ से जब बालक उत्पन्न हुआ, उस समय संसार में अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे। पृथ्वी पर भूकम्प आने लगे, आकाश से तारे टूट-टूट कर गिरने लगे। इस प्रकार उस दुखदायी बालक ने जन्म लिया। वज्रांग ने नियमानुसार जातकर्म आदि संस्कारों को सम्पन्न किया। उसकी माता को भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह बालक अपने माता-पिता के दुःख को दूर करने के लिए उत्पन्न हुआ था इसलिए उसका नाम 'तारक' रखा गया।

हे नारद ! कुछ समय बाद जब वह बालक बड़ा हुआ तब उसने अपनी माता की आज्ञा से पारिजात पर्वत पर जाकर तीनों लोकों को विजय करने की इच्छा से तप करना आरम्भ कर दिया। वह सौ वर्षों तक पाँव के अगूँठे के बल खड़ा रह कर तपस्या करता रहा। गर्मियों के दिनों में वह अग्नि में तपा तथा अन्य ऋतुओं में वन में बैठा रहा। जाड़े के दिनों में उसने पानी के भीतर खड़े होकर तपस्या की। उसकी इस कठिन तपस्या को देखकर भी जब शिवजी प्रसन्न नहीं हुए, तब उसने आसुरी-यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। और उसने अपनी शरीर को काट-काट कर अग्नि में हवन करने का व्रत लिया। जब उसकी इस कठिन तपस्या से तीनों लोक जलने लगे, उस समय सब देवताओं ने मेरे पास आकर अपने दुःख को सुनाते हुए कहा—''हे ब्रह्मन् ! तीनों लोकों में यह कैसी अग्नि फैल रही है। हम सब लोग इसमें पड़कर भस्म हुए जाते हैं। अस्तु, आप हमारी रक्षा करने की कृपा करें।''

हे नारद ! देवताओं की प्रार्थना सुनकर मैंने बहुत विचार किया, परन्तु शिवजी की माया को किसी प्रकार नहीं समझ सका। तब मैं उन सबको अपने साथ लेकर विष्णु जी के पास जा पहुँचा। विष्णु जी भी शिव की माया को नहीं जान सके। तब हम सब लोग शिवजी के पास पहुँचे और स्तुति-प्रणाम करने के उपरान्त उनसे कहने लगे—"हे प्रभो ! हम सब आपकी शरण में आये हैं। आप सबसे श्रेष्ठ तथा सबके स्वामी हैं। अस्तु, आप कृपा करके हमारे दुःख को दूर कीजिये।" हमारी प्रार्थना सुनकर शिवजी ने हँसते हुए कहा—"हे देवताओ ! तारक द्वारा कठिन तपस्या किये जाने के कारण ही सब लोगों की यह दशा हो रही है। वह देवताओं को दुःख देने के लिए उग्र तप कर रहा है, इसीलिए हम उसे वरदान देने में संकोच करते हैं।" शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर देवताओं ने अत्यन्त अचरज में भरकर कहा—"हे प्रभो ! आप तारक को वरदान अवश्य दे दें क्योंकि उसे वरदान देने पर हम इतनी जल्दी नष्ट नहीं होंगे, जितने इस समय अग्नि के कारण भस्म हुए जाते हैं।" तब शिवजी बोले—"हे देवताओ ! क्या तुम में से कोई भी इतना बलवान् नहीं है जो अपनी माया द्वारा तारक की तपस्या को भ्रष्ट कर दे?" यह सुनकर विष्णु जी ने अहंकार में भरकर उत्तर दिया—"हे प्रभो ! यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं तारक की तपस्या को भंग कर सकता हूँ।" विष्णु जी की यह बात सुनकर शिवजी ने उन्हें आज्ञा दे दी। तब विष्णु जी मोहिनी रूप धारण करके तारक के पास जा पहुँचे ; परन्तु शिवजी की लीला के कारण वे तारक पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सके और असफल मनोरथ होकर लौट आये।

इतनी कथा सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! शिवजी की माया अत्यन्त बलवान् है। इसके कारण विष्णु जी मोहिनी स्वरूप धारण करके भी शिव भक्त तारक की तपस्या भ्रष्ट करने में असमर्थ रहे। अस्तु, विष्णु जी ने शिवजी के पास जाकर यह प्रार्थना की हे प्रभो ! तारक की तपस्या भंग करने में, मैं असफल रहा हूँ। अस्तु, आप

उसे वरदान दे दीजिये।'' यह सुनकर शिवजी तारक का वरदान देने के लिए उसके पास जा पहुँचे और उसे सुनाते हुए बोले—''हे तारक ! मैं तुम्हारी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो वह वरदान माँग लो।'' यह सुनकर तारक ने अत्यन्त प्रसन्न हो, पहले तो शिवजी को प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर यह कहा—''हे प्रभो ! मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी के हाथ से न मरूँ और करोड़ों वर्षों तक तीनों लोकों का राज्य करूँ। यह वरदान आप मुझे दीजिये।'' शिवजी ने तारक की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली, तदुपरान्त वे उसे इच्छित वरदान दे, कैलाश पर्वत पर लौट आये। तारक भी शिवजी से वरदान प्राप्त कर, अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने घर को लौट गया।''

ॐ ॐ ॐ

तैंतीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! वरदान पाकर तारक ने क्या किया, वह सब वृत्तान्त आप मुझे सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! वरदान पाकर तारक अपने घर लौट आया और उसने अपनी स्त्री से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय सब दैत्यों ने एकत्र होकर तारक को अत्यन्त प्रतिष्ठित तथा अपना स्वामी स्वीकार करते हुए, उसकी बहुत प्रकार से स्तुति-प्रशंसा की। तदुपरान्त तारक ने सब असुरों की एक बड़ी सेना इकट्ठी की। उसमें करोड़ों बलशाली असुर योद्धा थे। उस सेना के दस मुख्य सेनापति थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—कुम्भक, कुञ्ज, महिष, कुंजर, कालनेमि, निमि, कृष्णजठर, प्रजम्बुक, शुंभ तथा कालकेतु। जो दैत्य इस सम्पूर्ण सेना का प्रधान सेनापति था, उसका नाम 'ग्रसन' था। ये सब असुर योद्धा अपने सामने तीनों लोकों को तुच्छ समझते थे। इस सेना को लेकर तारक ने सबसे पहले इन्द्र पर चढ़ाई की, तदुपरान्त देव लोक को चारों ओर से घेर लिया।''

हे नारद ! उस समय देवता तथा दैत्यों में घोर युद्ध होने लगा,

जिसमें अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग हुआ। तारक से इन्द्र ने युद्ध ठाना, निमि से अग्नि आ भिड़े, कालनेमि तथा यमराज आमने-सामने हुए, नमुचि तथा नऋति ने परस्पर युद्ध करते हुए अपनी-अपनी विजय की कामना की, महिषासुर तथा वरुण ने एक दूसरे को मारने के लिए शस्त्र धारण किये। इसी प्रकार सभी दैत्यों और देवता अपनी-अपनी जोड़ी देखकर आपस में युद्ध करने लगे।

हे नारद ! उस समय तारक ने अपना तेज प्रकट करके इन्द्र को परास्त कर दिया, तदुपरान्त वह विष्णु जी के सम्मुख जा पहुँचा। तारक के इस प्रताप को देखकर विष्णु जी ने पहले तो बहुत आश्चर्य किया, फिर शिव जी के वरदान की महिमा समझकर युद्ध-क्षेत्र से अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार तारक ने उस युद्ध में विजय पाकर सब देवताओं को बन्दी बना लिया। तदुपरान्त वह उन्हें अपनी राजधानी में ले गया और बन्दीगृह में डालकर अनेक प्रकार की यन्त्रणा देने लगा। जिस स्थान पर महानदी समुद्र में जा मिली है, उसी स्थान पर तारक की राजधानी थी। इस प्रकार वहाँ देवता तथा दैत्य इकट्‌ठे होकर रहने लगे। तारक ने निर्भय होकर अपने देश को अलग-अलग भागों में बाँट दिया और उनका राज्य असुरों को सौंप दिया, जहाँ वे अपने परिवार तथा मित्रों सहित आनन्द का उपभोग करने लगे। इस प्रकार विष्णु जी के स्थान पर तारक स्वयं ही तीनों लोकों का स्वामी बन बैठा। उसने अग्नि की पद निमि को दी तथा कालनेमि को यमराज के स्थान पर नियुक्त किया। तदुपरान्त उसने निऋति का पद नमुचि को, वरुण का महिषासुर को, पवन का मेध को, कुबेर का कक्ष को, इन्द्र का जृम्भक को, अहिपति का शुम्भ को, ब्रह्मा का कुंभ को तथा मित्र का पद कुञ्जर को दिया। इसी प्रकार उसने सब देवताओं के पद पर दैत्यों को प्रतिष्ठित कर दिया। वे सब असुर संसार के स्वामी बनकर राज्य करने लगे। उनके राज्य में देवताओं के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्राणी दुःखी नहीं था। अस्तु, कुछ समय बीतने पर विष्णु जी ने छिपे हुए देवताओं के पास जाकर यह कहा कि हे देवताओ ! शिवजी का

भक्त होने के कारण तारक अत्यन्त बलवान तथा प्रतापी है, इसलिए वह तुमसे कभी परास्त नहीं होगा। मैंने बहुत कुछ विचार करने के उपरान्त यह निश्चय किया है कि तुम सब लोग अपना मनोरथ प्राप्त करने के लिए उसकी सेवा करना आरम्भ कर दो। तुम नट का स्वरूप धारण कर उसके पास जाओ और अपने कौशल द्वारा उसे प्रसन्न करो। जब वह प्रसन्न हो जायेगा, तब तुम्हें अवश्य छोड़ देगा। तदुपरान्त सब देवता नट का रूप धारण कर तारक के पास जा पहुँचे और उससे ऐसी बातें कीं, जिनके कारण वह अत्यन्त प्रसन्न हो गया। तब तारक ने देवताओं से कहा—"हे देवताओ ! तुम जो चाहो, वह मुझ से माँग लो।" यह सुनकर देवताओं ने प्रार्थना की—"हे असुरराज ! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो देवताओं को अपने बन्दीगृह से मुक्त कर दीजिये" देवताओं की इस प्रार्थना को स्वीकार कर, तारक ने उनके सभी साथियों को बन्दीगृह से मुक्त कर दिया। तब वे भी अपने लोक को चले गये। हे नारद ! तारक के राज्य में देवताओं के अतिरिक्त और कोई दुःखी नहीं था। यह बात मुझे भली-भाँति जान लेनी चाहिए।

ॐ ॐ ॐ

चौंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जब देवताओं ने राक्षसों द्वारा पीड़ित होकर अनेक प्रकार के दुःख उठाये तो वे परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि हम किसके पास जाकर अपना दुःख कहें? सूर्य और चन्द्रमा जो संसार के जीवन दाता हैं, वे स्वयं भी इस समय तारक की सेवा करते रहते हैं। पता नहीं, यह दैत्य हमें कब तक दुःख देता रहेगा? इस समय हमारा कौन सहायक है, जिसके पास जाकर हम अपना दुःख सुनायें? इस प्रकार देवताओं ने दुःख में डूब कर बहुत चिन्ता की। अन्त में, वे सब एकत्र होकर इन्द्र तथा बृहस्पति को साथ लेकर मेरे पास आये और मेरी स्तुति तथा पूजा करने लगे। देवताओं की

प्रार्थना सुनकर मैंने उनसे कहा—"हे देवताओ ! मैं तुम लोगों को अत्यन्त दुःखी तथा चिन्तित देख रहा हूँ। इन्द्र के मुख पर भी कोई तेज दिखाई नहीं देता। हे पुत्रो ! तुम मुझे अपने यहाँ आने का सब कारण कह सुनाओ।"

हे नारद ! मेरी बात सुनकर देवताओं की ओर से बृहस्पति ने मुझ से कहा—"हे पिता ! तारक नामक दैत्य ने शिवजी से वरदान प्राप्त कर तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया है। उसके भय से सूर्य ने भी अपने तेज को ठंडा कर लिया है तथा चन्द्रमा भी अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित उसकी सेवा में हर समय उपस्थित रहता है। सभी ऋतुएँ उसकी सेवा में बनी रहती हैं और फल-फूलों को उत्पन्न कर, उसे सन्तुष्ट रखती हैं। इन्द्र भी उसकी बहुत प्रकार से सेवा किया करते हैं। इस प्रकार सभी देवता उनके सेवक बने हुए हैं, परन्तु वह किसी के ऊपर कोई कृपा नहीं दिखाता। जिन देव वृक्षों की पत्तियों को देव स्त्रियाँ बहुत समझ-बूझ कर तोड़ती थीं, उन वृक्षों को तारक के साथी जड़ से उखाड़कर फेंक देते हैं। जिस समय वह शयन करता है, उस समय देवताओं की स्त्रियाँ अपने नेत्रों से आँसू बहाती हुईं उसकी स्तुति करने को विवश होती हैं। उनके भय से देवता अपने लोक की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। वे स्वयं ही यज्ञ का भाग ले लेते हैं। इन्द्र को भी कोई कुछ नहीं गिनता। जिस प्रकार सन्निपात हो जाने पर कोई औषधि काम नहीं देती, उसी प्रकार भगवान् विष्णु के जिस चक्र पर हमें बड़ा भारी भरोसा था, वह इन दिनों व्यर्थ हो गया है। हे पिता ! आप हमारे दुःख को दूर करने के लिए कोई उपाय करें।"

हे नारद ! देवताओं की प्रार्थना सुनकर मैंने उन्हें उत्तर दिया—"हे देवताओ ! तारक ने शिवजी से ऐसा वरदान प्राप्त किया है कि उसे शिवजी के अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकेगा। यदि शिवजी के वीर्य से कोई पुत्र उत्पन्न हो तो वह भी तारक को मारने में समर्थ हो सकता है, क्योंकि पुत्र में पिता का तेज रहता है और उसे पिता का स्वरूप कहा जाता है; परन्तु यह बात बहुत कठिन दिखाई देती है। इस

समय शिवजी हिमाचल पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं तथा गिरिजा अपनी सखियों सहित उनकी सेवा में सलंग्न हैं। यदि किसी प्रकार वे दोनों परस्पर मिल जाएं तो तुम्हारा कार्य पूर्ण हो सकता है। गिरिजा के बिना और किसी से तुम्हारा कार्य नहीं चलेगा। मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ तुम उसके अनुसार कार्य करो। वह उपाय यह है कि तुम कामदेव को शिवजी के पास भेजो वह शिवजी के मन में गिरिजा के प्रति स्नेह उत्पन्न करे। बस, इतना होते ही सब कार्य स्वतः सिद्ध हो जायेंगे।''

हे नारद ! मेरी बात सुनकर सब देवता बहुत स्तुति करते हुए अपने घर को चले गये। तदुपरान्त इन्द्र ने कामदेव को अपने समीप बुलाया और उससे यह कहा—''हे कामदेव ! तुम देवताओं के हितैषी तथा उनका सब कार्य सिद्ध करने वाले हो। अस्तु, ब्रह्मा जी ने जो उपाय बताया है, उसके अनुसार कार्य सिद्ध करने के हेतु शीघ्र तैयार हो जाओ। हे मित्र ! वीरों की परीक्षा युद्ध के समय ली जाती है, उदार लोगों को समय के अनुसार पहचाना जाता है, इसी प्रकार विपत्ति पड़ने पर मित्र तथा स्त्री की परीक्षा का अवसर होता है। अस्तु, इस अवसर पर मैं तुम्हारी मित्रता की परीक्षा लेना चाहता हूँ। इस कार्य में केवल मेरा ही स्वार्थ नहीं है, अपितु अन्य सब लोगों का भी हित है।''

हे नारद ! इन्द्र की बात सुनकर कामदेव ने उत्तर दिया—''हे देवराज ! मैं आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। यदि कोई व्यक्ति आपका पद प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रहा हो तो मैं उसके तप को इसी समय भ्रष्ट कर सकता हूँ। देवता, दैत्य, ऋषि आदि सभी लोग मेरे वश में रहते हैं। मनुष्य तो सेवकों की भाँति मेरी पूजा किया करते हैं। अस्तु, आप अपने हृदय में अब किसी प्रकार की चिन्ता न करें।'' कामदेव की इन बातों को सुनकर इन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न हो, उसे अपने पास बैठाते हुए कहा—''हे मन्मथ ! मैं जिस कार्य के लिए तुमसे कहने जा रहा था, उसे तुम स्वयं ही बता रहे हो यह अत्यन्त शुभ है। अब सुनो, तारक दैत्य ने शिवजी की तपस्या करके

उनसे अमोघ वरदान प्राप्त किया है। उसने धर्म-कर्म को नष्ट करके, उस वरदान के बल पर देवताओं के सम्पूर्ण सुखों को छीन लिया है और उनके पद पर अपने साथी दैत्यों को प्रतिष्ठित कर दिया है। उसके ऊपर देवताओं के सभी अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो गये हैं, इस कारण सभी देवता अत्यन्त चिन्तित एवं दुःखी हैं। ब्रह्मा जी ने इस कष्ट से मुक्ति प्राप्त करने का यह उपाय बतलाया है कि शिवजी के वीर्य द्वारा किसी पुत्र की उत्पत्ति हो तो वह तारकासुर का वध करने में समर्थ हो सकेगा। शिवजी स्वयं अपने भक्त तारक को अपने हाथ से नहीं मारेंगे। अब कहना यह है कि गिरिजा अपनी सखियों सहित उनकी सेवा में संलग्न हैं। तुम अपनी माया द्वारा शिवजी को मोहित करके उनका संयोग गिरिजा के साथ करा दो। ऐसा करने से शिवजी के द्वारा पुत्र उत्पन्न होना सम्भव हो जायेगा।''

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इन्द्र की बात को कामदेव ने स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त वह शिवजी पर विजय प्राप्त करने के हेतु, इन्द्र से विदा लेकर अपनी पत्नी के साथ चल दिया। जिस समय वह चला, उस समय अनेक प्रकार के अपशकुन होने लगे। होनी के वशीभूत होकर उसने उन अपशुकनों पर कोई विचार नहीं किया। उसने वसंत आदि अपनी सम्पूर्ण सेना को एकत्र किया और अत्यन्त अहंकार में भरकर शिवजी पर विजय प्राप्त करने के लिए हिमाचल पर्वत की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में वह इस बात पर निरन्तर विचार करता चला जा रहा था कि मैं शिवजी के ऊपर किस प्रकार विजय पाऊँगा। अस्तु, जब वह शिवजी के समीप पहुँचा, उस समय उसने अपनी माया द्वारा सब ओर वसंत ऋतु को फैला दिया। वसंत ऋतु के फैलते ही उस स्थान पर चारों ओर रंग-बिरंगे फूल खिल गये तथा लताओं ने प्रकट होकर वृक्षों से आलिंगन करना आरम्भ कर दिया।

अनेक प्रकार के पक्षी मीठे स्वरों में चहचहाने लगे। जिन लोगों को अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान था, वे भी कामदेव की माया में पड़े बिना न रहे। सब का तप और संयम नष्ट हो गया। चराचर जगत् में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं बचा, जिसे कामदेव के बाणों ने घायल न किया हो। यद्यपि यह अवस्था एक मुहूर्त भर ही रही, परन्तु इसी बीच सब लोगों का विवेक नष्ट हो गया। सम्पूर्ण संसार तो कामदेव के वशीभूत हुआ, परन्तु शिवजी और उनके गणों पर कामदेव का कोई प्रभाव न पड़ा। जिस समय कामदेव शिवजी के पास पहुँचा, उस समय उसका सम्पूर्ण बल नष्ट हो गया। कामदेव की शक्ति क्षीण होते ही संसार के सभी प्राणी उसी प्रकार पूर्व स्थिति में आ गये, जिस प्रकार कि नशा उतर जाने पर मनुष्य होश में आ जाता है।'' हे नारद ! उस समय कामदेव अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा—''मुझ से यह बड़ा अपराध हुआ जो मैं अपने अहंकार में भरकर शिवजी का चित डिगाने के लिए यहाँ चला आया। अब शिवजी के क्रोध से मेरी मृत्यु अवश्य ही होगी। यह विचार कर कामदेव कुछ समय तक तो चिन्ता में पड़ा रहा, अन्त में उसने निश्चय किया कि पर उपकार के लिए यदि मुझे प्राण भी त्याग देने पड़ें तो वह शुभ ही है। साथ ही यदि मेरी मृत्यु शिवजी के द्वारा हुई तो मैं भी शिवगणों में गिना जाऊँगा। अस्तु, मुझे मृत्यु का भय त्याग कर देवताओं का कार्य सिद्ध करना चाहिए।'' यह निश्चय कर कामदेव ने पुनः अपनी शक्ति को प्रदर्शित किया और सम्पूर्ण संसार को पहले के ही समान फिर अपने वश में कर लिया। शिवजी ने यह दशा देखकर अपने मन को दृढ़ता पूर्वक वश में कर लिया और हठ योग साध कर बैठ गये। यह देखकर कामदेव अपने धनुष पर बाण चढ़ा शिवजी की बाँयी ओर जा खड़ा हुआ। उस समय तपो भूमि में शिवजी के अतिरिक्त ऐसा और कोई नहीं था, जिसे उसने मोहित न कर लिया हो। वह छिपकर समय की प्रतक्षा करने लगा। अस्तु, जिस समय शिवजी अपना ध्यान छोड़कर आसन पर बैठे और गिरिजा पूजन की सामग्री लेकर उनके पास आयीं, उसी समय

कामदेव ने उचित अवसर जानकर, अपने बाण को कानों तक खींचकर शिवजी के हृदय पर छोड़ दिया। उसके लगते ही शिवजी के मन में प्रीति का अंकुर उत्पन्न हो गया। उस समय शिवजी भी कामदेव के वशीभूत हो, मुस्कराते हुए, गिरिजा के सुन्दर अंगों की प्रशंसा करने लगे और यह इच्छा प्रकट करने लगे कि गिरिजा का हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया जाए। उस समय गिरिजा नारी-सुलभ लज्जा के कारण संकुचित हो, कुछ पीछे की ओर हट गयीं।

हे नारद ! यह दशा देखकर शिवजी ने अपने मन में विचार किया कि यह क्या कारण है जो हम इस स्त्री के द्वारा छले गये हैं? ऐसा कौन सा प्रतापी है, जिसने हमें ऐसा आचरण करने के लिए विवश कर दिया? यह विचार कर ज्यों ही उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमायी, त्यों ही उन्हें अपने बाँयी ओर एक वृक्ष की आड़ में छिपा हुआ कामदेव दिखाई दे गया। उस समय शिवजी के भयानक रूप को देखकर तीनों लोक काँपने लगे और यह प्रतीत होने लगा मानो अब प्रलय होने ही वाली है। अस्तु, शिवजी ने कामदेव पर क्रोधित हो, जैसे ही अपने तीसरे नेत्र को खोला, वैसे ही कामदेव जलकर भस्म हो गया। उस समय तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। सभी देवता अत्यन्त भयभीत, परम दुःखी तथा दीन हो गये और व्यक्तियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।''

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—''हे पिता ! यह चरित्र सुनकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है। शिवजी परब्रह्म, निष्पाप, माया-रहित, योगी, तीनों लोकों के स्वामी तथा देवताओं के पूज्य हैं, उनका नाम कामजित् तथा मृत्युजित् प्रसिद्ध है, उनकी कृपा प्राप्त करके उनके भक्त कामदेव को अपने वश में किये रहते हैं। ऐसे भगवान् सदाशिव को कामदेव ने अपना लक्ष्य क्यों बनाया और सुगमतापूर्वक उनके ऊपर विजय कैसे प्राप्त कर ली?'' यह सुनकर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—''हे नारद ! मैं तुम्हें यह वृत्तान्त सुना चुका हूँ कि पहले मैंने सन्ध्या नामक एक कन्या को उत्पन्न किया था,

तदुपरान्त मैंने मन्मथ अर्थात् कामदेव को जन्म दिया। फिर मैंने कामदेव को यह वरदान भी दिया कि तुम तीनों लोकों के स्वामी बनकर सब लोगों को अपने वश में रखोगे। यहाँ तक कि मैं, विष्णु तथा शिव भी तुम्हारे वशीभूत हो जायेंगे। मुझसे यह वरदान पाकर उसने सर्व प्रथम मेरे ही ऊपर अपना बाण छोड़ा और मुझसे कुकर्म करना चाहा। तब मैंने उसे यह शाप दिया कि तुम शिवजी के तीसरे नेत्र की ज्वाला में पड़कर भस्म हो जाओगे। इसी शाप के कारण कामदेव ने पहले तो शिवजी को अपने वश में कर लिया, तदुपरान्त वह शिवजी के तीसरे नेत्र की ज्वाला में पड़कर भस्म हो गया। जिस समय शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया, उस समय कुछ लोगों को दुःख हुआ और कुछ लोग सुखी हुए। गिरिजा को भी अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस समय उनके शरीर से बहुत पसीना छूटा और वे अपने सौंदर्य का अहंकार त्याग कर मूर्च्छित हो गयीं। उनका कमल के समान मुख प्रभात कालीन चन्द्रमा के समान तेजहीन हो गया। जब सखियों ने उनकी इस अवस्था को देखा, तो वे गिरिजा का हाथ पकड़कर उनका उपचार करने लगीं। तदुपरान्त चैतन्यता प्राप्त होने पर, गिरिजा अत्यन्त लज्जित हो, अपने घर लौट आयीं।

हे नारद ! इस घटना के उपरान्त शिवजी भी हिमाचल पर्वत को छोड़कर अपने कैलाश पर्वत पर चले गये। शिवजी के चले जाने पर गिरिजा की यह दशा हुई कि वे हर समय शिवजी के चरित्रों का ध्यान करती हुईं, उन्हीं के स्मरण में संलग्न हो गयीं। कामदेव की स्त्री रति ने जब अपने पति की मृत्यु को देखा, तो वह बहुत प्रकार से विलाप कर उठी। वह अपने पति के चरित्रों का वर्णन करती हुई 'हाय-हाय' शब्द का उच्चारण करती थी और अपने शरीर की सुधि-बुधि को भुला बैठी थी। जब उसे कुछ चैतन्यता प्राप्त हुई, तब वह अपने पति के शव को सम्बोधित करती हुई इस प्रकार कहने लगी—"हे स्वामी ! मैंने आपको पहले भी बहुत समझाया था कि शिवजी के साथ वैर करना उचित नहीं है, परन्तु आपने दूसरों के वश में पड़ कर मेरी बात पर कोई

ध्यान नहीं दिया। हे नाथ ! आपने मुझसे कुछ भी नहीं कहा और मुझे त्याग कर अकेले ही शिवपुरी को चले गये। अब मैं अनाथ बनकर रह रही हूँ। आपने जैसा किया, उसका फल अच्छी तरह पा लिया। यह नियम है कि संसार में कोई किसी को दुःख देकर, स्वयं सुखी नहीं रहा है। उसे कहीं भी आनन्द नहीं मिलता है। हे पति ! आप तो शिवगणों में सम्मिलित हो गये, परन्तु अब मेरा कोई नहीं रहा।'' इस प्रकार की बातें कहते हुए रति ने बहुत विलाप किया।

ॐ ॐ ॐ

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! मैं, विष्णु तथा अन्य सभी देवता रति को साथ लेकर शिवजी की शरण में गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे—''हे प्रभो ! हम सब लोग शोक रूपी समुद्र में डूब रहे हैं, अतः आप हमारा उद्धार करने की कृपा करें।'' हमारी प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने प्रकट होकर दर्शन दिया। उस समय वे परमहंसों के समान स्वरूप धारण किये हुए थे। उनके उस सुन्दर रूप को देखकर हम सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तब मैंने अलग-अलग खड़े होकर शिवजी की प्रार्थना की। शिवजी ने प्रसन्न होकर हम सबको सम्बोधित करते हुए कहा—''हे देवताओ ! तुम सबने जो हमारी स्तुति की है, उससे हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। जो मनुष्य इस स्तुति को पढ़ेगा, उस पर हम सदैव कृपा किया करेंगे। अब तुम जो चाहो, वह हमसे माँग लो।'' शिवजी के मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर हमने उनसे कहा—''हे प्रभो ! आप हमारे मन की इच्छा को भली-भाँति जानते हैं, हम स्वयं आपसे क्या कहें?''

हे नारद ! यह सुनकर शिवजी ने हँसते हुए कहा—''हे देवताओ ! हमने ब्रह्मा के शाप को सत्य करने के लिए ही कामदेव को भस्म किया है। अब हम तुम्हें यह वरदान देते हैं कि आज से कामदेव शरीर रहित होकर 'अतनु' के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा और उसकी

उत्पत्ति मन के द्वारा हुआ करेगी। उचित समय आने पर हम रति को उसका स्वरूप भी दिखा देंगे। तब वह हमारे पास इसी कैलाश पर्वत पर निवास किया करेगा। जब द्वापर युग में विष्णु का अवतार कृष्ण के रूप में होगा, तब कामदेव कृष्ण के पुत्र के रूप में जन्म लेगा। उस समय वह रति को पुनः प्राप्त कर लेगा। अब रति को उचित है कि वह उस समय के आने तक इन्द्र के यहाँ जाकर रहे और अपने मन में किसी प्रकार का दुःख न माने। वह बिना कोई परिश्रम किये अपने पति को पुनः प्राप्त कर लेगी। जब रुक्मिणी के गर्भ से पुत्र के रूप में कामदेव की उत्पत्ति होगी, उस समय इन्द्र उसे उठा ले जायेंगे और समुद्र में डाल देंगे। वहाँ समुद्र में एक मछली उसे निगल जाएगी। पर हमारे प्रताप से उसकी मृत्यु नहीं होगी। उस मछली को एक केवट अपने जाल में फँसा लेगा और उसे 'शंबर' नामक एक असुर को भेंट कर देगा। जिस समय मछली का पेट फाड़ा जायेगा, उस समय कामदेव जिसका नाम उस समय 'प्रद्युम्न' प्रसिद्ध होगा, प्रकट होकर रति के पास गुप्त रूप से रहेगा। तदुपरान्त वह बालक उस असुर को मारकर यहाँ चला आयेगा।'' इतना कहकर शिवजी सबके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। फिर देवताओं ने भी रति को इन्द्र के साथ कर दिया और अपने-अपने स्थान को चले गये। हे नारद ! कामदेव का चरित्र तुम से कहा, अब तुम गिरिजा का वृत्तान्त सुनो।''

ॐ ॐ ॐ

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जिस समय गिरिजा ने कामदेव को जलते हुए देखा, उस समय वे भयभीत हो वहाँ से भागकर अपने घर जा पहुँचीं। इस दशा को देखकर माता-पिता शीघ्र ही गिरिजा के समीप जा पहुँचे। उस समय हिमाचल के सम्पूर्ण नगर में भी खलबली मच गयी। जब गिरिजा को कुछ चैतन्यता प्राप्त हुई, तब उनकी माता ने इस प्रकार पूछा—''हे पुत्री ! तुझे इस प्रकार किसने भयभीत किया

है, जो तू लम्बी-लम्बी श्वासें ले रही है?'' तब गिरिजा ने जो कुछ दृश्य देखा था वह सब विस्तारपूर्वक कह सुनाया। उसे सुनकर माता-पिता ने गिरिजा को बहुत सान्त्वना दी।

हे नारद ! कुछ समय बाद तुम गिरिजा के समीप पहुँचे। तब गिरिजा ने अत्यन्त लज्जित होकर तुमसे यह कहा कि आप मुझे ऐसा उपाय बतावें जिससे मुझे शिवजी की प्राप्ति हो। यह सुनकर तुमने उत्तर दिया—''हे गिरिजे ! शिवजी केवल तपस्या के वशीभूत रहते हैं। यदि तुम उन्हें अपने पति रूप में प्राप्त करना चाहती हो, तो वन में जाकर कठिन तपस्या करो। शिवजी तपस्या के वशीभूत होकर सब लोकों का पालन करते हैं और उसी के बल पर सबका संहार भी करते हैं। तपस्या के बल पर ही शेषनाग पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण किये हुए हैं और तपस्या के द्वारा ही देवता सम्पूर्ण वस्तुओं को प्राप्त करते हैं।'' यह सुनकर गिरिजा ने उत्तर दिया—''हे मुनिराज ! आपका कथन सत्य है, परन्तु गुरु के बिना किसी को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, आप मुझे अपनी शिष्या बनाकर, तपस्या की विधि बताइये। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी गुरु के बिना शक्ति-हीन हो जाते हैं, आप मेरे गुरु बनना स्वीकार करें।''

हे नारद ! यह सुनकर तुमने शिवजी का ध्यान किया और गिरिजा को अपनी शिष्या बनाकर, पंचाक्षर मंत्र का उपदेश दिया। तदुपरान्त तुम वहाँ से लौटकर मेरे पास आये और गिरिजा तुम्हारे उपदेश को पाकर, अपने मन में तपस्या करने की दृढ़ इच्छा को ले, सखियों सहित अपने पिता हिमाचल के समीप जा पहुँचीं। उस समय सखियों ने पर्वतराज हिमाचल को सम्बोधित करते हुए यह कहा—''हे राजन् ! गिरिजा अपने मन की अभिलाषा को कहते हुए लजाती हैं। अस्तु, उनकी ओर से हम आप से यह प्रार्थना करती हैं कि आप गिरिजा को तपस्या करने के निमित्त वन में जाने की आज्ञा दें, जिससे वे शिवजी को प्राप्त करने के लिए तप करें।'' सखियों की यह बात सुनकर हिमाचल अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने इस प्रार्थना को स्वीकार करते

हुए गिरिजा को तपस्या के निमित्त वन में जाने की आज्ञा दे दी। तदुपरान्त गिरिजा अपनी सखियों को साथ लेकर अपनी माता के पास पहुँचीं और उनसे भी यही प्रार्थना की। मैना ने जब इस समाचार को सुना तो उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई। उन्होंने अत्यन्त उदास होकर गिरिजा से यह कहा—"हे पुत्री ! तुम घर में ही रहकर तपस्या करो। माता-पिता के घर को किसी तीर्थ अथवा देवालय से कम नहीं समझना चाहिए। तुम्हें इस प्रकार कष्ट सहन करना उचित नहीं है, तुम यही तपस्या करो।"

हे नारद ! मैना की बात सुनकर गिरिजा ने उत्तर दिया—"हे माता ! शिवजी केवल तपस्या के ही वश में हैं। अस्तु, बिना तपस्या किये कोई फल प्राप्त नहीं हो सकता। संसार में जिसने जो वस्तु पायी है, वह सब तपस्या का ही फल है। तपस्या करने से अत्यन्त सुख प्राप्त होता है। अस्तु, तुम मुझे तपस्या करने से मत रोको।" यह सुनकर मैना बोली—"हे पुत्री ! मेरे सौ पुत्र हैं, परन्तु तुम उनमें मुझे सबसे अधिक प्रिय हो। मैं चाहती तो यह हूँ कि तुम मेरी आँखों से दूर मत जाओ और यहीं रहो। तुम जो चाहोगी, मैं वही करूँगी, जो माँगोगी वही दूँगी।" गिरिजा ने कहा—"हे माता ! जब तक मैं तपस्या नहीं करूँगी, तब तक शिवजी मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे और तपस्या केवल वन में हो सकती है, क्योंकि घर अहंकार, मूर्खता, दुःख एवं चिन्ता को प्रदान करने वाला होता है। यदि घर में बैठकर तपस्या हो सकती हो तो मुनि तथा राजा लोग वन में कभी न जाते।" यह सुनकर मैना ने फिर चिन्तित होते हुए कहा—"हे गिरिजा ! वन में सिंह, हाथी आदि अनेक हिंसक जीव घूमते रहते हैं। तुमने उन्हें कभी देखा भी नहीं है, फिर भला तुम उनके बीच किस प्रकार रह सकोगी?" गिरिजा ने उत्तर दिया—"हे माता ! बिना कष्ट उठाये संसार में किसी वस्तु अथवा मनोरथ की प्राप्ति नहीं होती। मेरा यह निश्चित मत है कि शिवजी अपने भक्त की, घर तथा बाहर सब जगह रक्षा करते हैं।" गिरिजा के मुख से इन शब्दों को सुनकर मैना ने उसका मन शिवजी की ओर से

हटाने के लिए यह बात कही—"हे गिरिजा ! शिवजी भाँग, धतूरा, विष आदि मादक वस्तुओं का सेवन करते हैं। वे नग्न शरीर, अशुभ वेषधारी तथा दरिद्री हैं। भला, यह तो बताओ कि उनकी भक्ति करने से तुम्हें क्या प्राप्त हो सकेगा?"

हे नारद ! माता की यह बात सुनकर गिरिजा ने उत्तर दिया—"हे माता ! ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा समस्त ऋषि-मुनि शिवजी की सेवा करते हैं। वे आदिपुरुष तथा सबके स्वामी हैं। मेरे हृदय में भी अब उन्हीं का निवास हो गया है। वे तीनों गुणों से रहित होते हुए भी अनेक प्रकार के चरित्र करते हैं। अस्तु, तुम्हें उनकी निन्दा करनी उचित नहीं है। अब तुम मुझे आज्ञा दो जिससे मैं वन में जाकर तपस्या करूँ।" गिरिजा के इस प्रकार के निश्चय को देखकर जब मैना ने यह जान लिया कि गिरिजा के हृदय में सचमुच ही शिवजी की भक्ति दृढ़ हो गयी है, तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो इस प्रकार कहा—"हे पुत्री ! मैंने तुम्हारे निश्चय को देखने के लिए ही जानबूझकर ऐसी बातें कही थीं। सच पूछा जाए तो भगवान् शिव सबका मनोरथ पूरा करते हैं। अब तुम प्रसन्नतापूर्वक वन में जाओ और शिवजी की आराधना करो।" इस प्रकार माता-पिता की आज्ञा पाकर गिरिजा भगवान् सदाशिव की स्तुति करती हुईं, तपस्या करने के हेतु वन के लिये चल दीं। जिस समय मैना ने उन्हें जाते हुए देखा तो वे मातृ-प्रेम के कारण मूर्च्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यह देखकर सब कुटुम्बियों तथा नगरवासियों ने गिरिजा को पुनः वन में जाने से रोकना चाहा तथा वन के कष्टों का वर्णन करते हुए सलाह दी कि वे घर में ही रहकर तपस्या करें। उन्होंने सब लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे प्रियजनो ! आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें, मैं शीघ्र ही शिवजी का वरदान प्राप्त कर लौट आऊँगी। मुझे वन में जाना ही शुभ है, क्योंकि यहाँ रहकर तपस्या नहीं की जा सकती।"

हे नारद ! इस प्रकार मीठे शब्दों में सब को समझाने-बुझाने के उपरान्त गिरिजा ने ब्राह्मणों को प्रणाम किया तथा अपने लौटने के

समय तक के लिए उन्हें कालक्षेप करने के निमित्त बहुत कुछ दान देकर प्रसन्न किया। उन्होंने भिखारियों को भी सब वस्तुएँ प्रदान कीं, क्योंकि भिखारियों को भिक्षा देने से शिवजी अधिक प्रसन्न होते हैं। गिरिजा ने श्रेष्ठ मुहूर्त में वन के लिए प्रस्थान किया। उस समय सब लोग उन्हें आशीर्वाद देने लगे। देवताओं ने भी जय-जयकार करते हुए उनके ऊपर फूलों की वर्षा की तथा दुन्दुभी बजायी। जिस समय गिरिजा चलीं, उस समय उनके बायें अंग फड़कने लगे तथा शुभ-शकुन होने लगे, जिनसे यह प्रतीत होता था कि उन्हें शिवजी अवश्य प्राप्त होंगे। यद्यपि गिरिजा के वन जाने के कारण नगर-निवासी अत्यन्त चिन्तित थे, किन्तु अशुभ समझकर किसी ने भी अपने नेत्रों से आँसू नहीं बहाये। हिमाचल के नगर का सम्पूर्ण वैभव मानो लोप-सा हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो यह नगर कालरात्रि के समान भयानक हो। नगर निवासी भी साक्षात् यमराज जैसे दिखाई देने लगे। वे आपस में ही एक-दूसरे को देखकर भयभीत हो जाते थे। नगर के सभी घर श्मशान के समान प्रतीत होने लगे और मित्र यमदूत के समान दिखाई पड़ने लगा। नदी और नालों में पानी नहीं रहा। सब प्राणियों का तेज नष्ट हो गया। सब लोग गिरिजा के वियोग दुःख से दुःखी होकर उनकी बाल-लीलाओं का स्मरण कर अपना समय ज्यों-त्यों कर काटने लगे।

हे नारद ! तुम इस बात को भली-भाँति जान लो कि शक्ति के बिना संसार में कोई आनन्द नहीं है। शक्ति के प्रकट होने पर ही संसार में आनन्द प्रकट होते हैं। वे शक्ति ही अपने चरित्रों द्वारा सब लोगों के दुःखों को दूर किया करती हैं। जिस प्रकार जीव के बिना इन्द्रियाँ, चन्द्रमा के बिना रात्रि और जल के बिना मछली प्रसन्न नहीं रहती, उसी प्रकार गिरिजा के बिना हिमाचल का नगर भी सूना हो गया। यह दशा देखकर वेदज्ञ मुनि हिमाचल के नगर में पहुँचे। उन्हें देखकर सब लोगों ने उनकी बहुत प्रकार से सेवा की। मुनि ने उन्हें सम्बोधित करते हुए पूछा—"हे हिमाचल ! तुम किस शोक में व्याकुल हो?" मुनि की

बात सुनकर हिमाचल पहले तो दुःख की अधिकता के कारण कुछ नहीं बता सके, तदुपरान्त धैर्य धरकर बोले—"हे प्रभो ! मेरी पुत्री शिवजी को प्राप्त करने के निमित्त वन में तपस्या करने के लिए गयी है। मैं उसी के वियोग दुःख से दुःखी हूँ।" मैना ने भी यह कहा—"हे मुनिराज ! मेरी पुत्री को कभी उष्ण वायु भी नहीं लगी थी, परन्तु अब वह वन में जाकर न जाने कैसे-कैसे दुःख उठा रही होगी? जब वह यहाँ घर में सोती थी उस समय उसकी सखियाँ स्तुति किया करती थीं, परन्तु अब मुझे यह सन्देह हो रहा है कि कहीं वन में उसे कोई सिंह आदि न खा ले। मेरा जीवन तो उसके जाते ही कठिन हो गया है।" हे नारद ! हिमाचल तथा मैना के मुख से यह शब्द सुनकर मुनि ने भगवान् सदाशिव की माया को बारम्बार धन्यवाद देते हुए कहा—"हे भगवान् सदाशिव ! आपकी माया का पार कोई नहीं पा सकता। आप जब जो चाहते हैं, वही कर दिखाते हैं।" मन-ही-मन इतना कहकर वे हिमाचल तथा मैना को सम्बोधित करते हुए बोले—"हे पर्वतराज ! तुम अपने मन में कुछ चिन्ता मत करो। तुम्हारी पुत्री आदिशक्ति है। तुम उसकी महिमा को नहीं जानते हो, इसीलिए इतने दुःखी हो रहे हो। वह अपनी तपस्या के द्वारा तुम सबको आनन्द प्रदान करेगी। उसके कारण संसार में तुम्हारा भी बहुत यश फैलेगा। अस्तु, तुम्हें उचित है कि तुम उसके लिए कोई चिन्ता मत करो और अपने हृदय में शिवजी का ध्यान धरते रहो।" इतना कहकर मुनि ने मन ही मन गिरिजा को प्रणाम किया, तदुपरान्त वे हिमाचल से विदा लेकर चल दिये। उनके वचन सुनकर हिमाचल मैना तथा सब नगर-निवासी भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। सभी ने चिन्ता करना त्याग दिया और मन-ही-मन शिवजी का ध्यान धरने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जब हिमाचल और मैना का दुःख दूर हो गया, तब उन्होंने शिवजी के चरणों में अपना ध्यान लगा दिया।

उधर गिरिजा ने भी वन में पहुँचकर अपना स्वरूप ऋषि-मुनियों के समान बनाया तथा शिवजी के अतिरिक्त और सबों का ध्यान भुला दिया। तदुपरान्त वे तपस्या करने के निमित्त 'शृंगतीर्थ' को गयीं, जो उसी समय से 'गौरीशिखिर' के नाम से संसार में प्रसिद्ध है। उन्होंने चौंसठ वर्षों तक सिर नीचा किये हुए, एक ही आसन पर बैठे, तपस्या की। वे ग्रीष्मकाल में अग्नि में तपतीं, वर्षाकाल में खुले मैदान में रहतीं और शीतकाल में जल के भीतर बैठकर कठिन तपस्या करतीं। जब इस प्रकार के उग्र तप द्वारा भी उन्हें फल की प्राप्ति नहीं हुई तो उन्होंने एक सहस्त्र वर्षों तक केवल वृक्षों की जड़ तथा पत्ते खाकर और कठिन तपस्या की। तदुपरान्त एक वर्ष तक केवल हरी घास और साग आदि खाये। फिर कुछ समय तक केवल वायु पीकर ही तप करती रहीं।

हे नारद ! ऐसा उग्र-तप करने पर भी जब उनका मनोरथ पूरा न हुआ, तब वे हिमाचल पर्वत पर लौट आयीं। वहाँ उन्होंने तीन करोड़ पार्थिव अर्थात् शिवलिंग बनाकर, उनका पूजन किया। उन्होंने अनेक प्रकार के पुष्प गिन-गिन कर उन शिव-मूर्तियों पर चढ़ाये तथा दिन-रात शिवजी के पूजन, ध्यान तथा स्मरण के अतिरिक्त अन्य किसी बात से अपना सम्बन्ध नहीं रक्खा। वे शिवजी के प्रेम में ऐसी मगन हुईं कि उन्होंने प्राणायाम करके अपने को अपने में ही लीन कर दिया और ब्रह्म रूप में स्थित हो गयीं। उनके इस तपस्या काल में अनेक प्रकार के संकट भी सामने आये। कई बार उन्हें भूत-प्रेत की सेना ने चारों ओर से घेर लिया। कई बार सिंह, हाथी, भैंसा, बैल तथा चमगादड़ आदि का स्वरूप धारण करके भूतों ने उन्हें डराया। जो भूत-प्रेत गिरिजा को डराने के लिए आते थे, उनका स्वरूप ऐसा भयानक था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनमें से अनेक के केवल एक ही आँख थी। कोई अन्धा था, तो किसी के सहस्त्रों नेत्र थे। कोई नाचता था तो कोई दौड़ता था। कोई मार-मार शब्द का उच्चारण करता और कोई गिरिजा को मारने की चेष्टा करता था। कोई मैना का स्वरूप धारण

कर के यह कहता कि "हे गिरिजे ! तुम्हारे पिता ने तुम्हारे वियोग में खाना-पीना छोड़ दिया है, अब वे मृत्यु को प्राप्त होने ही वाले हैं। अस्तु, तुम घर चल कर, उनकी रक्षा करो। इस प्रकार भूत-प्रेतों ने गिरिजा का तप भंग करने के लिए अनेक छल किये, परन्तु गिरिजा का ध्यान पल भर को भी विचलित न हुआ। वे दुगुने उत्साह से शिवजी के चरणों में अपना मन लगाये रहीं। तब गिरिजा के तेज़ से भयभीत होकर बहुत-से भूत-भाग गये। जो बचे, उनमें से कोई भस्म हो गया, तो कोई किसी नदी में डूब कर मर गया। इस प्रकार गिरिजा के ध्यान को भंग करने में वे सब के सब असमर्थ रहे।"

हे नारद ! जिस स्थान पर गिरिजा तपस्या कर रही थीं, वह स्थान कैलाश पर्वत के समान ही सुन्दर हो गया। वहाँ के निवासियों को ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ कि वे संसार की माया को भुलाकर ब्रह्मज्ञानी हो गये। उस स्थान पर सिंह, गायों के साथ खेला करते थे, बिल्ली चूहों से प्यार करती थीं। यदि किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट होता था, तो दूसरे प्राणी उसके दुःख दूर करने की स्वयं चेष्टा करने लगता था। उस स्थान पर पारस्परिक वैर-विरोध का कहीं नाम ही न रहा। वहाँ के तालाब, नदी और नाले जल से परिपूर्ण हो बहते रहते थे। सब वृक्षों में अनेक प्रकार के फल-फूल दिखाई पड़ते थे। इस प्रकार वहाँ किसी वस्तु की कोई कमी नहीं रही। गिरिजा की तपस्या तीनों लोकों में ऐसी प्रसिद्ध हुई कि उसे देखने के लिए मैं, विष्णु तथा इन्द्र आदि उस स्थान पर पहुँचे। हम लोगों ने उन्हें इस प्रकार देखा मानो वे स्वयं सिद्धि रूपा हों। हम सबने उन्हें प्रणाम करते हुए स्तुति की। उस समय इन्द्र ने सब देवताओं को सम्बोधित करते हुए यह कहा—"गिरिजा का तप सर्वश्रेष्ठ है। तीनों लोकों में किसी भी प्राणी ने ऐसी कठिन तपस्या नहीं की। गिरिजा को तथा गिरिजा के माता-पिता को सहस्त्रों धन्यवाद हैं।"

हे नारद ! इस प्रकार गिरिजा की स्तुति-प्रशंसा करने के उपरान्त हम सब लोग कैलाश पर्वत पर शिवजी के समीप पहुँचे। वह कैलाश

पर्वत इतना सुन्दर है कि वहाँ छहों ऋतुएँ हर समय वर्तमान रहती हैं। वहाँ कलकल-निनादिनी गंगा जी की धारा अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान करती है। वहाँ किसी को भी, किसी प्रकार का दुःख नहीं है। सब ओर ऋषि-मुनि लोग बैठे हुए भगवान् सदाशिव का ध्यान धरते रहते हैं। कहीं पर सिद्धजन तपस्या करते हैं और कहीं किन्नर गीत गाते हैं। कैलाश के उस आनन्द को देखते हुए जब हम लोग शिवजी के समीप पहुँचे तो उन्होंने हमें योगस्थित शरीर धारण किये अपना दर्शन दिया। शिवजी के उस स्वरूप को देख हमें ऐसी प्रसन्नता हुई कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके ललाट पर चन्द्रमा विराजमान था तथा जटाओं से गंगा जी बह रही थीं। वे अपने मस्तक पर त्रिपुण्ड लगाये हुए थे तथा कानों में सर्पों के कुण्डल पहने थे। शिवजी के उस परम सुन्दर स्वरूप को देखकर हम सब लोगों ने पहले तो उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया, तदुपरान्त बहुत प्रकार से स्तुति एवं प्रशंसा की।''

उन्तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! देवताओं ने भगवान् सदाशिव की प्रार्थना करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आपके महान् तेज तथा महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। आपने कृपा करके शबरी को मुक्त किया तथा सुमना को भी परम पद दिया है। आपकी सेवा करके अनेक पापी आपके लोक को प्राप्त हुए हैं। आप परब्रह्म, परमेश्वर तथा सबके स्वामी हैं। उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय यह तीनों कार्य आपके वश में रहते हैं। आप ही हम सबके रक्षक हैं। जड़ तथा चेतन की बातों को आप भली-भाँति जानते हैं। संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो आपसे भिन्न हो। यह सम्पूर्ण संसार एक वृक्ष के समान है, उस वृक्ष का एक अंकुर, दो फल, तीन मूल तथा चार रस हैं। आप स्वयं ही आकाश तथा स्वयं ही पृथ्वी रूप हैं। निकट तथा दूरी सब में आप वर्तमान हैं।

हे प्रभो ! माया के वशीभूत रहने के कारण साधारण लोग आपको नहीं जान पाते, परन्तु जो लोग आपके भक्त हैं, वे सम्पूर्ण संसार को शिवमय ही देखते हैं। आपका स्वरूप निर्गुण है, परन्तु भक्तों पर कृपा करके आप सगुण भी बन जाते हैं। बहुत-से लोग आपकी चरण रूपी नौका का सहारा लेकर संसार-सागर से पार उतर गये हैं। आपकी भक्ति के बिना आवागमन से छुटकारा नहीं मिलता। आपके भक्त आवागमन से सहज ही छूट जाते हैं और वे सदैव निर्भय होकर आपके चरणों की सेवा द्वारा परम पद को प्राप्त कर लेते हैं। हे स्वामी ! आप उत्पत्ति के समय ब्रह्म, पालन के समय विष्णु तथा प्रलय के समय हर का स्वरूप धारण कर लेते हैं। वेद, कर्म, जप, तप, योग तथा ध्यान आदि द्वारा आप प्राप्त होते हैं। यदि आप सगुण रूप धारण नहीं करते तो हम लोगों को सहज ही मोक्षपद किस प्रकार प्राप्त होता? आपके नाम तथा गुण अनन्त हैं और उनका वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। हम में आप के समान बुद्धि कहाँ से आयी? आपकी महिमा अपार है। हे नाथ ! आप हमारे कार्यों को पूर्ण करें। आप देवताओं के स्वामी, सम्पूर्ण सृष्टि के इन्द्र, शुभ मार्ग पर स्थित करने वाले, सम्पूर्ण सृष्टि के कारण रूप, अविनाशी, अनादि तथा अप्रेमय हैं। आपका शरीर विद्या तथा बुद्धि से परिपूर्ण है।

हे प्रभो ! आपका पवित्र स्वरूप भक्तों के हृदय में वास करता है, इसीलिए वे कुसंगति तथा काम-क्रोध आदि को त्याग कर आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं। आप पूर्ण ब्रह्म, आनन्द के निधान, दुःख-नाशक अत्यन्त कृपालु हैं। आप इच्छा रहित, अद्वितीय, निरीह तथा परब्रह्म हैं। आपने ही सबसे पहले शरीर धारण किया है। आपके अवतार हमारे मनोरथों को पूर्ण करने के लिए ही होते हैं। आपके उन अवतारों की महिमा अपार तथा अप्रेमय है। हम लोगों का मन आपकी महिमा को कहाँ तक जान सकता है? जो लोग मन लगाकर आपके गुणों को सुनते हैं और उनका ध्यान धरते हैं, उन्हीं पर आप अपनी कृपा दिखाते हैं। बहुत-से लोग तो धर्म मार्ग को भी त्याग कर केवल आपसे

ही स्नेह रखते हैं और अपनी भक्ति पर दृढ़ रहने के कारण आप को प्राप्त कर लेते हैं। वे केवल आपका गुण-गान करते हैं तथा किसी संसारी वस्तु से अपना कोई प्रयोजन नहीं रखते। आपको भी अपने भक्त अत्यन्त प्रिय हैं। आप उन्हीं के सामने प्रकट होते हैं तथा उनकी प्रत्येक अभिलाषा को पूर्ण करते हैं।'' इस प्रकार स्तुति करके मैं, विष्णु तथा अन्य सब देवता चुप रह गये।

हे नारद ! उस समय शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर हम लोगों से इस प्रकार कहा—''हे देवताओ ! तुम सब लोग यहाँ किस लिए आये हो? हमें ऐसा प्रतीत होता है कि तुम बहुत चिन्तित हो। अस्तु, जो भी बात हो, उसे हमारे सम्मुख निःसंकोच प्रकट करो।'' यह सुनकर मैंने तथा विष्णु जी ने प्रार्थना करते हुए उनसे यह कहा—''हे प्रभो ! हम लोगों के धन्य भाग्य हैं, जो आपने हम पर कृपा दृष्टि की। संसार में वे ही लोग पूर्णात्मा हैं, जिनके ऊपर आप अनुग्रह करते हैं। हे स्वामी ! आपकी महिमा महान् है। आप प्रत्येक प्राणी के शरीर में निवास करते हैं। आपकी कलाएँ असंख्य हैं तथा आप अपने भक्तों को दुःखी देखकर, उन्हें अत्यन्त आनन्द प्रदान करते हैं।'' इतना कहकर मैं तथा विष्णु जी चुप हो गये।

ॐ ॐ ॐ

चालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! हमारी इस प्रकार स्तुति एवं प्रार्थना को सुनकर शिवजी बोले—''हे ब्रह्मा तथा हे विष्णु ! तुम सब देवताओं को साथ लेकर जिस कार्य के लिए आये हो, वह हमसे स्पष्ट कहो। हम तुम्हारे मनोरथ को अवश्य पूरा करेंगे।'' यह सुनकर मैंने तथा विष्णु जी ने फिर इस प्रकार कहा—''हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी हैं। आप सबके मन की बात जानते हैं और अपने स्थान पर बैठे हुए तीनों लोकों की घटनाओं को देखते रहते हैं। अस्तु, आप इस प्रकार अनजान बनकर हमसे क्यों पूछ रहे हैं? फिर भी जब

आपकी आज्ञा है तो हम यह प्रार्थना करते हैं कि नारद जी से उपदेश ग्रहण कर गिरिजा अत्यन्त कठिन तपस्या कर रही हैं। उन जैसा कठोर तप आज तक किसी ने नहीं किया। अब आपको उचित है कि आप उनके पास जाकर इच्छित वरदान दें। हम सब लोगों की यह प्रबल इच्छा है कि हम गिरिजा के साथ आपके विवाह का आनन्द लाभ करें और आपकी बारात में बाराती बनकर सम्मिलित हों।''

हे नारद ! हम लोगों की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी हँसकर बोले—''हे देवताओ ! विवाह करके सांसारिक जाल में फँसना मूर्खों का काम है। यद्यपि वेद ने इस सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कहीं हैं, परन्तु उनमें सबसे मुख्य बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि स्त्री की संगति के समान बुरा कर्म और कोई नहीं है। परन्तु, हम तुम्हारा कहना भी नहीं टाल सकते, क्योंकि यदि हम अपने भक्तों की बात न मानें तो वेद और धर्मशास्त्र की प्रतिष्ठा कम होगी। अस्तु, चाहे हमें बहुत दुःख ही क्यों न उठाने पड़ें, फिर भी हम गिरिजा की तपस्या के वशीभूत होकर तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार किये लेते हैं। तुम यह तो जानते ही होगे कि जब राजा कामरूप ने इच्छा की, तब हमने दैत्य को मारकर उसे आनन्द प्रदान किया था। इसी प्रकार गौतम के दुःख को भी दूर किया था। जब हलाहल विष के कारण सब देवता भस्म हुए जा रहे थे उस समय हमने कृपा करके उस विष को भी पी लिया था। विष्णु जी के रामचन्द्र अवतार के समय हमने हनुमान का अवतार लेकर अनेक दुःख उठाये थे। इसी प्रकार जब-जब हमारे भक्तों पर कोई कष्ट पड़ा है। तब-तब हमने स्वयं दुख उठाकर उन्हें आनन्द प्रदान किया है, जिस प्रकार हमने ग्रहिपति नामक अवतार लेकर विश्वामित्र मुनि के दुःख को दूर किया, उसी प्रकार अब तुम्हारे लिए भी हम गिरिजा के साथ विवाह कर लेंगे, क्योंकि हमने भक्तों की प्रार्थना को कभी अस्वीकार नहीं किया है। अब तुम सब लोग निश्चिंत होकर अपने-अपने लोक को जाओ।''

हे नारद ! हम सबको विदा करने के उपरान्त शिवजी ने सप्त

ऋषियों को अपने पास बुलाया। तब उन्होंने शिवजी के समीप पहुँचकर दंडवत्-प्रणाम एवं स्तुति करते हुए हाथ जोड़कर कहा—''हे प्रभो ! आपने हमें किस लिए बुलाया है? अब आप हमें क्या आज्ञा देते हैं, वह बताइए। हम उसका पालन करेंगे?'' यह सुनकर शिवजी उनसे बोले—''हे ऋषियो ! गिरिजा हमें प्राप्त करने के लिए बहुत कठिन तपस्या कर रही है। अस्तु, तुम उसके प्रेम की परीक्षा लेने के लिए उसके पास जाओ और उसे छलने का प्रयत्न करो।'' शिवजी की यह आज्ञा पाकर सप्त ऋषि गिरिजा के समीप जा पहुँचे और यह देखा कि वे साक्षात् तपस्या का रूप बनी बैठी हैं। उस समय ऋषियों ने अपनी चतुराई का प्रदर्शन करते हुए उनसे यह कहा—हे गिरिजे ! तुम ऐसा तप क्यों कर रही हो और किस कार्य के लिए ऐसी कठिन साधना में संलग्न हो? तुम हमसे सब हाल सत्य-सत्य कहो।'' ऋषियों की बात सुनकर पार्वती ने उत्तर दिया—''हे ऋषियो ! मुझे अपना मनोरथ कहने में लज्जा का अनुभव होता है, क्योंकि आप उसे सुनकर अवश्य ही हँसेंगे, फिर भी मैं आपको बताती हूँ कि देवता तथा मुनियों के वचन को सत्य मानकर शिवजी के साथ विवाह करने की इच्छा से यह तपस्या कर रही हूँ।''

हे नारद ! गिरिजा की बात सुनकर मुनियों ने हँसते हुए इस प्रकार कहा—''हे गिरिजे ! तुम नारद की बातों पर विश्वास कर बैठीं, इससे बढ़कर मूर्खता और क्या होगी? तुम्हें यह पता नहीं है कि नारद की बातों से अनेक नगर तथा गाँव उजड़ चुके हैं। इस सम्बन्ध में हम एक इतिहास सुनाते हैं। ब्रह्मा जी के पुत्र दक्ष प्रजापति ने दस सहस्त्र पुत्रों को उत्पन्न किया था। वे सब बड़े गुणवान्, रूपवान्, बलवान् तथा बुद्धिमान् थे। दक्ष ने उन्हें सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा दी, परन्तु उसी समय नारद ने उनके पास पहुँचकर ऐसा उपदेश दिया कि वे संसार त्यागकर वन में चले गये ; फिर कभी लौटकर नहीं आये। इसके उपरान्त दक्ष ने फिर उतने ही पुत्र उत्पन्न किये, परन्तु वे भी नारद के उपदेश से उसी स्थान पर जा पहुंचे, जहाँ पहले उनके भाई गये थे। यह

गति देखकर दक्ष ने नारद को यह शाप दिया कि तुम एक मुहूर्त से अधिक किसी स्थान पर नहीं ठहर सकोगे। इसके अतिरिक्त नारद ने राजा चित्रकेतु के घर को भी नष्ट कर दिया और उन्होंने हिरण्यकशिपु का भी सर्वस्व नष्ट कर दिया है। हम नारद को बहुत अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि बहुत दिनों तक हम उनके साथ रहे हैं। इसलिए हम यह कहते हैं कि तुम नारद के भुलावे में आकर बहुत बड़ी भूल कर रही हो।'

''हे गिरजे ! इसके अतिरिक्त जिन शिवजी को प्राप्त करने के लिए तुम यह घोर तपस्या कर रही हो, उनके सम्बन्ध में भी हम तुम्हें यह बता देना चाहते हैं कि वे निर्गुण, अशुभ, निर्लज्ज तथा बुरा वेष धारण करने वाले हैं। न तो उनके कुल परिवार का कोई पता है और न उनके पास सेवक आदि ही हैं। तुम्हें उस ठग नारद ने मोहित करके तुम्हारी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है। भला, ऐसा पति पाकर तुम्हें कौन सा सुख मिल सकेगा? तुम इस बात पर भली-भाँति विचार करो तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारा कथन सत्य है अथवा नहीं। शिव ने पहले दक्ष की पुत्री के साथ भी विवाह किया था, परन्तु जब वे उसका निर्वाह नहीं कर सके, तो उसे मिथ्या दोष लगाकर त्याग दिया। तब से वे अपने-आप में ध्यान लगाकर निश्चिंत बैठे रहते हैं। भला, जो आदमी एकान्त में ही रहना पसन्द करता है उसके साथ किसी स्त्री का निर्वाह किस प्रकार हो सकता है? हमारा तो यह कहना है कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम अपना हठ छोड़कर घर चली जाओ। यदि तुम अपने लिए श्रेष्ठ वर को ही चाहती हो तो हम तुम्हें यह भी बताये देते हैं कि विष्णु से अधिक श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वे सब देवताओं के स्वामी हैं और तुम्हारे वर बनने के सर्वथा योग्य हैं।''

हे नारद ! सप्तऋषियों की बात सुनकर पार्वती ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा—''हे ऋषियो ! आपका कहना सत्य हो सकता है, परन्तु मेरे हठ में किसी प्रकार की कमी नहीं आयेगी। मैं तो उसी राग में गाती रहूँगी, जिसे अब तक गाती आयी हूँ। मेरा शरीर पहाड़ से उत्पन्न हुआ है,

अतः उसमें पहाड़ की जड़ता प्रत्यक्ष देखने में आती है। मैं नारद जी को अपना गुरु स्वीकार कर चुकी हूँ, अतः उनकी बात को किसी प्रकार नहीं टालूँगी ; क्योंकि जो लोग गुरु के वचन को मिथ्या समझते हैं, वे कल्प भर भटकते रहने पर भी कभी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर पाते। मैं आपकी इस बात को मान लेती हूँ कि विष्णु में सब गुण भरे हुए हैं तथा शिवजी अवगुणों की खान हैं, परन्तु आपको यह भी अवश्य बता देना चाहती हूँ कि शिवजी निर्गुण हैं और उन्होंने अपने भक्तों की प्रसन्नता के निमित्त ही शरीर धारण किया है। वे अपनी शक्ति और ऐश्वर्य का विज्ञापन नहीं करना चाहते। इसलिए वे परमहंस गति में रहकर, अवधूतों के समान दिखाई देते हैं। वस्त्र और आभूषणों को पहनना तो साधारण मनुष्यों का काम है। शिवजी तीनों गुणों से रहित तथा सब के स्वामी हैं। अस्तु, वे इन वस्तुओं को स्वीकार नहीं करते। मैंने अपने गुरु की कृपा से शिवजी को भली-भाँति पहचान लिया है और इसीलिए मैं यह निश्चय पूर्वक कहती हूँ कि या तो मैं शिवजी के साथ विवाह करूँगी, अन्यथा जन्म भर कुंवारी रहूँगी। अस्तु, आप मुझे इस प्रकार का उपदेश देने की कृपा न करें।''

हे नारद ! इतना कहकर गिरिजा ने सप्तऋषियों को प्रणाम किया, तदुपरान्त वे पहले की ही भाँति शिवजी के ध्यान में मग्न हो गयीं। गिरिजा के उस दृढ़ निश्चय को देखकर सप्तर्षि जय-जयकार करने लगे तथा आशीर्वाद देते हुए बोले—''हे गिरिजे ! तुम परम धन्य हो। तुम्हें शिवजी अवश्य प्राप्त होंगे।'' इतना कहकर वे गिरिजा को प्रणाम करने के उपरान्त शिवजी के पास चले गये। कैलाश पर्वत पर पहुँचकर उन्होंने शिवजी से कहा—''हे प्रभो ! हमने गिरिजा की बहुत प्रकार से परीक्षा ली तथा अपने वाक्जाल द्वारा छलने का भी बहुत प्रयत्न किया; परन्तु न तो वे हमारे धोखे में आयीं और न उन्होंने आपके चरणों से अपने ध्यान को ही हटाया। अस्तु, आपको उचित है कि आप उन्हें वहाँ जाकर वरदान दें।'' इतना कहकर सप्तर्षि अपने स्थान को चले गये।''

इकतालीसवाँ अध्याय

इतना सुनकर नारद ने ब्रह्मा जी से पूछा—"हे पिता ! जब सप्तर्षि विदा होकर अपने घर चले गये, तब उस समय शिवजी ने क्या किया, यह सब वृत्तान्त आप मुझे बताइए?" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी ने सप्तर्षियों के चले जाने के पश्चात् ब्राह्मण का रूप धारण किया तथा ब्रह्मचारियों के समान दंड लेकर मस्तक में त्रिपुण्ड लगाया, गले और हाथ में रुद्राक्ष की माला पहनी। फिर ऐसा स्वरूप धारण कर के वहाँ पहुँचे, जहाँ पार्वती तप करती थीं। पार्वती ने उन्हें प्रणाम किया तथा कुशल के पश्चात् पूछा कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो?" यह सुनकर ब्राह्मण रूपी शिवजी ने ठंडी साँस लेकर कहा—" हम ब्रह्मचारियों का व्रत धारण किये सृष्टि की भलाई के लिए इधर-उधर घूमते हैं। तुमने हमको धर्मनिष्ठ जानकर हमारा जो आदर और सत्कार किया इससे हमको बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब हम तुमसे पूछते हैं कि हे देवी ! तुम कौन हो और किस उद्देश्य से आयी हो?" श्री पार्वती जी ने यह सुन, कुछ सोचकर अपनी एक सखी से संकेत किया। उसने आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त जिस प्रकार नारद जी ने आकर भविष्यवाणी की थी कि पार्वती का विवाह शिव से होगा, कह सुनाया। उसे सुनकर ब्राह्मण ने पश्चात्ताप करके कहा—"हे पार्वती ! तुम हमसे यह हँसी क्यों करती हो, तुम स्वयं हमको उत्तर क्यों नहीं देतीं?" पार्वती बोली—"हे ब्राह्मन् मेरी सखी ने आपसे जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। मैं यह चाहती हूँ कि मेरा विवाह शिव के साथ हो।" यह सुनकर ब्राह्मण वेषधारी शिवजी ने शब्द जाल फैलाते हुए कहा—"हे गिरिजे ! तुम जो चाहो सो करो, हमको उससे क्या मतलब ; परन्तु तुमने मेरा आदर और सत्कार किया है, इसलिए मुझ से बिना कहे नहीं रहा जाता। इसके अतिरिक्त जान-बूझकर किसी बात को छिपाना भी बहुत बड़ा पाप है। हे पार्वती ! तुम हिमाचल की पुत्री होकर इतनी मूर्ख क्यों हो गयी हो जो अपने ऐसे

कोमल शरीर को तपस्या द्वारा भस्म कर रही हो? तुम इस प्रकार अपनी सुन्दरता को क्यों नष्ट करना चाहती हो? यह भाग्य की बात है कि तुम विष्णु एवं ब्रह्म को छोड़कर शिव के लिए तप करती हो। क्या तुम्हारे लिए शिव के समान अशुभ तथा अनुचित पति चाहिए? उनकी चाल-ढाल तो संसार से अलग है। देखो, विष्णु आदि सर्वगुण सम्पन्न, कुलवान् तथा प्रतिष्ठित हैं, परन्तु शिव में इनमें से कोई बात नहीं। वे माता-पिता से हीन हैं तथा सर्प एवं भस्म शरीर से लपेटे रहते हैं। वे बैल पर सवार होकर नाना प्रकार के विष एवं भंग का सेवन करते हैं। वे सिंगी तथा डमरू हाथ में लिये हुए भूत-प्रेतों के साथ लीला करते हैं तथा वन में अकेले उदास बैठे रहते हैं। उन्होंने कामदेव को, जो स्त्रियों को प्रिय है, जला दिया है। नारद ने भी तुमको उनके अवगुण न बताकर इस प्रकार छला है। फिर नारद का तो यह स्वभाव है कि वह सम्पूर्ण सृष्टि में इसी प्रकार के उत्पात करते फिरते हैं। उन्होंने दक्ष प्रजापति के सब लड़के नष्ट कर डाले तथा हिरण्यकशिपु के लड़के के साथ कितना छल किया। वे प्रकट में साधु बनकर सब को छला करते हैं। तुम उन सब बातों को भुलाकर, समझ से काम लो तथा अपना काम करो। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम स्वर्ण जड़ित अँगूठी छोड़कर कांच को क्यों ग्रहण करती हो? गंगाजल छोड़कर कुएँ के जल की क्यों इच्छा करती हो?''

इतना कहकर शिवजी ने पार्वती के स्वरूप की प्रशंसा करते हुए कहा—''हे पार्वती ! देखो, तुम्हारे इस सुन्दर मुख-कमल पर असंख्य चन्द्रमाओं की कान्ति विद्यमान है। तुम्हारा मुखचन्द्र सुन्दरता की खान के समान सुन्दर है। तुम इस प्रकार अपने सुन्दर शरीर को व्यर्थ ही क्यों नष्ट करती हो? तुम्हारे विवाह के लिए केवल विष्णु ही हैं। तुम उन्हीं से विवाह करो। हम तुमसे कहते हैं कि यह बात उचित नहीं है। तुम सम्भल जाओ।'' इस प्रकार ब्राह्मण रूपधारी शिवजी छल की बातें कहकर खेद सहित तथा रूखे हो, अलग बैठ गये। पार्वती ने शिवजी की निन्दा सुन, मन में कुपित हो बार-बार खेद किया। कुछ समय के

पश्चात् पार्वती मन-ही-मन बोलीं मैंने इस व्यक्ति को ब्राह्मण जानकर धोखा खाया। यदि मैं पहले से इस ब्राह्मण को दुष्ट तथा शिवजी की इतनी निन्दा करने वाला जानती तो चुप रहती। इसने वेद के विरुद्ध शिवजी की इतनी निन्दा की है कि यदि अब मैं इसको उत्तर नहीं देती हूँ तो शिव की निन्दा सुनने का पाप मुझे लगेगा।'' यह विचार कर पार्वती ने कहा—''हे ब्राह्मण ! तू हमको धोखा क्यों देता है? तूने तो वेद के विरुद्ध शिवजी की अत्यन्त निन्दा की है। तुझको ब्राह्मण होने के नाते प्राण दंड नहीं दिया जा सकता। अब मैं वेद, पुराण तथा स्मृति के वचनों के अनुकूल शिवजी का वर्णन करती हूँ। तू अब तक शिवजी के गुणों को नहीं जान पाया है, इसीलिए तेरा वचन वेद के विरुद्ध है। यदि तू शिव को जानता तो वेद के विरुद्ध कभी ऐसे वचन न कहता। शिव की समस्त अशुभ सामग्री शुभ ही है। कोई भी देवता उनसे श्रेष्ठ नहीं है। वे सब विद्याओं के ज्ञाता, पूर्णब्रह्म, अलख, जगदीश हैं। उन्होंने ही ब्रह्म को अपने श्वास-मार्ग से वेद दिये। वही शिव सबका आदि, मध्य एवं अन्त हैं। उनका तेज एवं प्रताप आज तक कोई नहीं जान पाया। वे अपने भक्तों को तीनों लोक प्रदान करते हैं। उनकी सेवा द्वारा ही मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। शिवजी की निन्दा करने से मनुष्य बहुत दुःख प्राप्त करता है। जो दुष्ट एवं अनाचारी ब्राह्मण शिव के विरुद्ध हैं, वे करोड़ों जन्म तक दरिद्र रहा करते हैं। हे ब्राह्मन् ! तूने शिव की निन्दा करके अपने लिए नरक का मार्ग खोला है। तेरा आदर करने से मुझे कोई फल प्राप्त नहीं हुआ, वरन् मेरे समस्त पुण्य नष्ट हो गये। अब तू शीघ्र अपने घर चला जा; क्योंकि मेरा मन शिवजी में लग रहा है।''

ब्राह्मण यह सुनकर हँसा तथा मन में पार्वती की प्रशंसा करना चाहा कि और कुछ कहें, परन्तु पार्वती ने ब्राह्मण की इच्छा समझ, अपनी एक सहेली से कहा—''अब इस स्थान को छोड़कर कहीं और चलो, क्योंकि यहाँ रहने से बड़ा दुःख होता है। इस ब्राह्मण ने शिव की निन्दा करके हमको दुःख पहुँचाया है। शिव की निन्दा करने वाले को आँख

से न देखना ही उचित है। इसकी व्यर्थ की बातें सुनने से महापाप होगा। जो शिव-निन्दा की आँखों से देख ले, उसको तुरन्त स्नान कर डालना चाहिए और यदि वश चले तो उसकी जिह्वा को काट डाले नहीं तो अपने दोनों कान बन्द कर वहाँ से उठ जाना चाहिए। वेद भी यही कहते हैं। अस्तु, अब तुम देरी न करो। उठो, किसी और वन में चलकर रहेंगे। अन्यत्र जाकर तप करूँगी। यदि मेरा निश्चय दृढ़ है तो शिवजी मुझ से अवश्य प्रसन्न होंगे। किसी के धोखा देने से क्या होता है? शिव तो केवल प्रेम से ही प्रसन्न होते हैं। मैंने गुरु से सुना है कि तप करने में इसी प्रकार के विघ्न सामने आते हैं। उनसे धोखा खाकर जो तप से विमुख हो जाते हैं, वे मूर्ख हैं और तप का फल प्राप्त नहीं कर पाते। जो दृढ़तापूर्वक धोखे से बचे रहकर तप में संलग्न रहते हैं, वे ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। शिवजी अपने भक्तों का पालन करने वाले हैं। पहले तो वे अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं, फिर प्रसन्न हो जाते हैं।'' यह कह कर पार्वती अपनी सखियों के साथ वहाँ से चली गयीं।

बयालीसवाँ अध्याय

इतना कहकर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिवजी इस प्रकार पार्वती का हठ तथा प्रेम देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होंने अपना यथार्थ मुख्य स्वरूप जैसा कि नारद जी ने उमा से कहा था, धारण कर लिया। मस्तक पर जटा, गंगा की धारा तथा चन्द्रमा विराजमान, ललाट पर त्रिपुण्ड लगाये हुए, कानों में कुण्डल पहने, गोल-गोल सुडौल कपोल, तीन नेत्र, नाक तथा ओष्ठ परम सुन्दर, हाथ-पाँव की उँगलियाँ लाल-लाल, इसी प्रकार प्रत्येक अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुन्दर एवं सुभग था। ज़िस रूप का पार्वती ध्यान कर रही थीं, शिवजी ने उसी प्रकार का रूप धारण कर, उनको दर्शन दिये और कहा कि ''हे पार्वती ! तुमने हमारी इतनी आराधना तथा तपस्या की है, जितनी आज तक किसी ने नहीं की। तुमको ग्रहण करके हम भी लोक में पवित्र

होते हैं। यद्यपि हमारा तप और संयम अत्यन्त दृढ़ है, परन्तु तुम्हारे तप ने उसे भी हिला दिया। हमने पहले भूतों को, फिर सप्तर्षियों को तुम्हारे पास भेजा जिसमें तुम्हारे दृढ़ तप की ख्याति संसार भर में प्रसिद्ध हो। तुम क्रोध न करो, क्योंकि हमने यह सब बातें तुमसे प्रकट होने के लिए तथा परीक्षा लेने के लिए की हैं, जैसा कि कुम्हार घड़े को सम्हालने के लिए ऊपर से पीटता है। हमने तुम्हारी भक्ति को संसारी रीति के कारण ही देखा है। तुम समस्त संसार की माता तथा वह देवी हो, जिनके चरण-कमलों की सेवा देवता आदि सब करते हैं। तुम उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय के हेतु तीन गुण धारण करती हो। तुम्हीं तीनों लोकों को आनन्द देने वाली हो। तुम्हारे रूप गुण तथा प्रभाव असंख्य हैं। तुम्हारा ही अंग लक्ष्मी, वाणी तथा ब्राह्मणी है। तुमने मुझे सगुण अवतार लेते हुए जानकर गिरिजा का अवतार लिया है। जिस प्रकार शब्द एवं अर्थ में कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार हमारे और तुम्हारे बीच में भी कोई अन्तर नहीं है। केवल संसारी जीवों की दृष्टि में हम-तुम दो शरीर रखते हैं, परन्तु वास्तव में हम एक हैं। हमारे तुम्हारे चरित्र वेद भी नहीं जानते। तुम्हारा तप अब पूर्ण हो गया है। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह हमसे माँगो।'' यह कहकर शिवजी चुप हो गये।

पार्वती बोली—''हे देव ! यदि आप वास्तव में मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझको मेरी इच्छानुसार वर दीजिये। आप मेरे पति होकर संसार की रीति के अनुसार मेरे साथ विवाह कीजिये। मेरे समस्त अपराधों को क्षमा कर, अब आप मेरे पिता से जाकर विनती करें तथा अपने संसारी चरित्र को दिखावें।'' पार्वती यह कहकर चुप हो गयीं। तब शिवजी ने कहा—''हे गिरिजे ! तुमने जो वरदान माँगा है, हम उसे स्वीकार करते हैं।'' यह कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। तब देवताओं ने जय-जयकार किया, आकाश से पुष्प-वर्षा हुई, विष्णु, मैं तथा अन्य देवता गिरिजा के चरणों पर आकर गिर पड़े तथा हर्ष के कारण गिरिजा की स्तुति करने लगे। जो कोई उस स्तुति का पाठ करता है, उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। उस स्तुति को सुनकर पार्वती ने सब देवताओं से

कहा—"हे देवताओ ! तुम सब अपने-अपने घरों को जाकर प्रसन्न रहो। मैंने कठोर तप किया है इसलिए देवताओं के सभी कार्य पूर्ण होंगे। शिवजी ने मुझको वर दिया है कि तुम्हारा कोई कार्य शेष नहीं रह जायेगा।" यह आज्ञा सुनकर सब देवता वहाँ से चले गये तथा गिरिजा भी घर जा पहुँचीं। उस समय जो हर्ष हिमाचल एवं मैना को हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिमाचल ने हर प्रकार से आनन्द मंगल मनाया तथा असंख्य द्रव्य दान दिया। यद्यपि गिरिजा ने वरदान का वृत्तान्त किसी पर प्रकट न किया, पर वह सब लोगों पर प्रकट हो गया।"

तैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! भगवान् सदाशिव की महिमा जानना अत्यन्त कठिन है। उनकी महिमा करोड़ों वर्ष तप करके भी कठिनता से जानी जा सकती है। वे शरीर धारण कर अनेक प्रकार की लीलाएँ रचते हैं तथा संसार के जीवों की भाँति प्रकट होकर, अपने भक्तों के कार्य पूरे करते हैं। हे नारद ! तुम ध्यान से सुनो, जिस समय शिवजी पार्वती को वर देकर चले गये, उसी समय उन्होंने भिक्षुक का रूप धारण किया और नृत्य एवं गायन में पूर्ण अभ्यास करके एक सहस्त्र गति के ज्ञाता बन गये। फिर उन्होंने अपने बाएँ हाथ में सिंगी तथा दाहिने हाथ में डमरू लिया और समस्त शरीर में श्वेत भस्म लगाकर लाल वस्त्र पहने। इस प्रकार वे वृद्ध बन गये। उनका शरीर बूढ़ों की भाँति काँपता था, परन्तु वाणी अत्यन्त मधुर थी। ऐसे अनूप रूप तथा वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर श्री सदाशिव जी हिमाचल पर्वत के पास गये। उन्होंने अनेक प्रकार के नृत्य-गान, नट करतब, मधुर-स्वर, प्रिय सिंगी तथा डमरू के नाद से नगर निवासियों को मोहित कर लिया। उनके इस करतब को देखने के लिए चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड पर्वत-निवासी एकत्र होकर यहाँ तक कि सभी बूढ़े

बालक स्त्री, पुरुष वह मधुर शब्द सुन, घरों से बाहर निकल आए। इस प्रकार कोई भी शिव के उत्तमोत्तम ताल एवं प्रिय स्वर सहित राग द्वारा मोहित विह्वल तथा अधीर होने से शेष न रहा। पार्वती उस आनन्ददायक स्वर में मग्न हो गयीं। वे शिव की मूर्ति का मन में ध्यानकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं तथा उन्होंने अपने मन में शिव की स्तुति की। तब शिवजी कृपालु होकर बैठ गये। जब मैना को चेत आया, तब वह योगी को अत्यन्त प्रसन्न हो, हीरा, पन्ना, मोती, मणि आदि थाल में भरकर देने लगीं, परन्तु उस योगी ने कुछ न लेकर केवल पार्वती को माँगा तथा फिर नृत्य करने को उठ खड़ा हुआ। यह सुनकर मैना ने अप्रसन्न होकर उसे बहुत डराया, धमकाया तथा यह इच्छा की कि उस योगी को निकाल दें। इतने में हिमाचल भी वहाँ आ पहुँचे और सब वृत्तान्त सुनकर क्रोधित हुए। उन्होंने आज्ञा दी कि इस योगी को तुरन्त यहाँ से निकाल दो। हिमाचल के सेवक इस आदेश को पाकर इस योगी को निकालने को उद्यत हुए, परन्तु वे उस योगी के प्रताप से, उसके निकट भी न जा सकें। उस समय हिमाचल ने मन में सोचा कि यह कौन मनुष्य है? जब उन्होंने बहुत ध्यान से विचारपूर्वक योगी को देखा तो उन्होंने शिवजी को चतुर्भुजी स्वरूप, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, पीले वस्त्र पहने हुए तथा जो पुष्प विष्णु पर चढ़ाए जाते हैं, उनसे भूषित देखा। फिर हिमाचल ने उसी समय द्विभुजी मूर्ति इस प्रकार देखी कि वे अपने को गोपों के समान भूषित किये, मुरली हाथों में लिये, चन्द्रमा के समान उत्तम किशोरावस्था को प्राप्त दिखाई दे रहे हैं।

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी ने हिमाचल को अपना मुख्य स्वरूप दिखाया कि शीश पर जटा तथा गंगा की पवित्र धारा, मस्तक पर चन्द्रमा एवं त्रिपुण्ड, चन्द्र के समान सुन्दर मुख, लालिमा लिये हुए तीनों नेत्र, कीर के समान नासिका, अरुण अधर, कंठ में श्यामता लिये हुए तीन रेखाएं, गले में हार पहने, चार भुजाएं, सूर्य, कपाल, अभय आदि नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत, उदर अत्यन्त

कोमल, जिसमें तीन बल पड़े हुए, अत्यन्त सुन्दर कटि, लाल कमल के समान लाल पगतल, गोल नितम्ब, रक्त वर्ण नख आदि थे। हिमाचल ने ऐसा मनोहर विचित्र स्वरूप देख, अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर जाना कि यह सदाशिव हैं। जब सदाशिव ने जाना कि हिमाचल ने हमको पहचान लिया तो उन्होंने तुरन्त उसी योगी का स्वरूप धारण कर लिया तथा पुनः हिमाचल से पार्वती को पाने की इच्छा प्रकट की। उस समय हिमाचल ने तुरन्त ही प्रणाम कर, सब स्वीकार कर लिया। कुछ समय पश्चात् योगी जब अन्तर्धान हो गये, तब मैना और हिमाचल ने चेत में आकर शिव को सर्वश्रेष्ठ जाना। देवताओं ने भी अपने हृदय में निश्चित ठहराया कि शिव एवं पार्वती का विवाह उनको, समस्त संसार को तथा पार्वती के माता-पिता को शुभदायक होगा।

इसी इच्छा से उन सभी देवताओं ने हिमाचल के गुरु के घर जाकर उनको प्रणाम किया तथा कहा—"हे देव ! इस समय शिव के चरित्र से मैना एवं हिमाचल ने शिव को सर्वश्रेष्ठ समझ लिया है। अप आप वहाँ जाकर ऐसा प्रयत्न करें, जिससे शिव तथा पार्वती का विवाह हो जाए।" यह सुनकर गुरु अत्यन्त क्रोधित होकर दोनों हाथ कानों पर रखकर बोले—"हे देवताओ ! तुम बड़े स्वार्थी हो। तुम हमारी यही सेवा करते हो, जिससे हमको नरक प्राप्त हो। जो मनुष्य विष्णु, महादेव, ब्रह्मा आदि देवता, ब्राह्मण, अपने गुरु, गौ, तुलसी, पुराण, गंगा, वेदमाता, गायत्री, वेद एवं दान की निन्दा करता है, वह निःसंदेह नरक में जाकर असंख्य कल्पों तक दुःख तथा कष्ट भोगता है। यदि तुम यह कार्य करना आवश्यक समझते हो, तो तुमको चाहिए कि ब्रह्मा के पास जाकर उनसे सहायता माँगो तथा तुम भी अपनी बुद्धि के अनुसार कोई उपाय करो, परन्तु अपने मन में शिव के चरणों का ध्यान अवश्य रखो। हमें पूर्ण विश्वास है कि ब्रह्मा, अरुन्धती तथा सप्तर्षि के साथ जाकर हिमाचल को समझाएंगे। हमको अपने तपोबल से यह भी

पूर्ण विश्वास है कि पार्वती को शिव के अतिरिक्त और कोई प्राप्त नहीं कर सकता।'' यह कहकर गुरु चुप हो गये।

ॐ ॐ ॐ

चौवालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! गुरु के आदेशानुसार समस्त देवताओं ने हमारे पास आकर अपना मनोरथ कहा। हमने उनसे कहा कि तुम हमें शिवजी की निन्दा कराना सिखाते हो? क्या अच्छे लोगों का यही धर्म है? भला, पिता की यही सेवा करना लड़कों का धर्म है? शिव की निन्दा सबको दुःख देने वाली है। यह विपत्ति की जड़ तथा सब प्रकार के आनन्द-मंगल को नष्ट करने वाली है। मैं तुम्हारी इस विषय में कोई सहायता नहीं करूँगा। तुम सब मिलकर शिव के पास जाओ तथा विनय करो, क्योंकि पर-निन्दा तीनों लोकों में दुःखदायी होती है।'' यह सुनकर वे सब कैलाश पर्वत में जाकर शिव की प्रशंसा एवं स्तुति करने लगे। वे बोले—''हे विश्वपति ! हिमाचल आपका बड़ा भक्त है, उसने आपको परब्रह्म जानकर इच्छा की है कि अपनी पुत्री आपको देकर मुक्ति प्राप्त करे। अस्तु, आप इस प्रस्ताव को स्वीकार करें।'' देवताओं की यह विनती सुनकर शिवजी हँस दिये तथा उन सबको अत्यन्त प्रसन्न कर विदा किया। इसके पश्चात् वे अति सुन्दर ब्राह्मण-शरीर धारण कर, हाथ में श्वेत रत्नों की माला पहने, मस्तक पर तिलक लगा, गले में शालिग्राम की मूर्ति डाल, उत्तमोत्तम वस्त्र धारण कर, वैष्णवी वस्त्रों से भूषित हो, अति चतुरता से हिमाचल के घर गये। हिमाचल सपरिवार उनके आदर के लिए उठ खड़ा हुआ। पार्वती ने उस ब्राह्मण रूप की बड़ी भक्ति से पूजा की। उन्होंने पहचान लिया कि यह शिव ही हैं। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर कुशल-क्षेम पूछा। तब हिमाचल ने उनसे पूछा—''हे महात्मन् ! आप कौन हैं तथा किस कार्य से आये हैं?'' ब्राह्मण रूपी शिवजी ने उत्तर दिया—''मैं ब्राह्मण हूँ और पर्यटन करता रहता हूँ। मैं अपने गुरु की कृपा से तीनों लोकों को

पहचानता तथा सब बातों को जानता हूँ। मनुष्यों तीनों लोकों में कोई काम करता है, मैं उसे अपने मन में ही जान लेता हूँ।''

ब्राह्मण ने कहा—''हे राजन् ! तुम्हारी यह प्रबल इच्छा है कि पार्वती का विवाह शिवजी के साथ हो। मैं तुम्हारे भले के लिए कहता हूँ कि तुम ऐसी रूपवती गुणवती कन्या को ऐसे बुरे एवं निर्गुण व्यक्ति को क्यों देते हो? जिनकी सेवा सम्पूर्ण सृष्टि, देवता, मुनि, दैत्य, सिद्ध आदि सब करते हैं, उन विष्णु के ही साथ इसका विवाह करना उचित है। इस विषय में तुम अपने भाई-बन्धुओं से परामर्श ले लो। यदि तुम यह कहोगे कि पार्वती को शिव के अतिरिक्त अन्य पति स्वीकार नहीं है तो यह बात स्पष्ट है कि रोगी को कुपथ्य ही भाता है, कोई गुणकारी औषधि रुचिकर नहीं लगती।'' यह कहकर ब्राह्मण रूपधारी शिव वहाँ से चल दिये। उस समय हिमाचल के नेत्रों से दुःख और चिन्ता के अश्रु बह चले। तब मैना ने हिमाचल से कहा—''हे स्वामी ! मेरी बात सुनो, जो अन्त को अच्छी फलदायक होगी। आपको यही उचित है कि सब पर्वतों को बुलाकर उस ब्राह्मण के कथन के विषय में अवश्य पूछें, क्योंकि उसकी बातें सुनकर मुझको बड़ा सन्देह हुआ है। जब तक यह बात स्पष्ट न होगी, मुझे बहुत ही भय बना रहेगा। आप भी ब्राह्मणों की बातों पर अच्छी तरह विचार करें। यदि ऐसा न किया तो मैं या तो वन में जा रहूँगी या विष खाकर मर जाऊँगी।'' मैना यह कह अत्यन्त कुपित होकर पार्वती को साथ ले, कोप भवन में जा बैठी। हिमाचल मैना का यह चरित्र देख अत्यन्त दुःखी हुए तथा उसके पास जाकर अनेक प्रकार से समझाने लगे। उन्हें समझाते हुए कहा कि तुम इस प्रकार के कोप भवन में क्यों पड़ी हो? फिर हिमाचल बड़े आश्चर्य में पड़कर सोचने लगे कि शिव ने यह चरित्र कैसा किया?''

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इस दशा को देखकर हिमाचल के परिवार के सब लोग तथा नगर निवासी अत्यन्त व्याकुल हुए। देवता

भी आपस में यह कहने लगे कि क्या करते हुए, यह क्या हो गया? तब सब स्त्री-पुरुषों ने भगवान् सदाशिव का ध्यान कर इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आपने जो कुछ किया, वह सब लोगों के लिए शुभ हो।" गिरिजा भी बहुत उदास होकर शिवजी का स्मरण करने लगीं। उस समय गिरिजा की चिन्ता को देखकर शिवजी ने सप्तर्षियों का स्मरण किया। शिवजी की आज्ञा का पालन करने के लिए वे शीघ्र ही आ पहुँचे। वे अपने सम्पूर्ण शरीर पर भस्म लगाये थे तथा हाथों में माला लिये थे। वे अपने मुख से 'शिव-शिव' उच्चारण कर रहे थे। उन्होंने आते ही शिवजी को प्रणाम किया, तदुपरान्त हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए बोले—"हे प्रभो ! आप हमें क्या आज्ञा देते हैं?" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे ऋषियो ! तारक दैत्य के संहार के निमित्त हमने गिरिजा के साथ विवाह करने का निश्चय किया है। अब वह समय निकट है। अस्तु, तुम हिमाचल के निकट जाकर उनसे तथा उनकी स्त्री से हमारे विवाह के लिए कहो।"

हे नारद ! यह सुनकर सप्तर्षि अत्यन्त प्रसन्न हो, परस्पर यह कहने लगे कि हमारे भाग्य धन्य हैं जो सृष्टि का उपकार करने के निमित्त शिवजी अपने विवाह का सन्देश पहुँचाने के लिए हमें हिमाचल के पास भेज रहे हैं। इस प्रकार कहकर वे हिमाचल के समीप जा पहुँचे। हिमाचल ने उन्हें दंडवत्-प्रणाम करने के उपरान्त आने का कारण पूछा। उस समय सप्तर्षियों ने उत्तर दिया—"हे हिमाचल ! शिवजी सम्पूर्ण सृष्टि के पिता हैं और गिरिजा सब की माता हैं। संसार के कल्याण करने के निमित्त शिवजी गिरिजा के साथ विवाह करना चाहते हैं। अस्तु, तुम गिरिजा का शिवजी के साथ विवाह कर दो। इस सम्बन्ध में ब्रह्मा जी ने शिवजी से बड़ी प्रार्थना की थी तथा गिरिजा ने भी कठिन तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया है। तभी शिवजी यह विवाह करने को तैयार हुए हैं।"

जिस समय सप्तर्षि हिमाचल से इस प्रकार की बातें कर रहे थे, उसी समय अगस्त्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा तथा वशिष्ठ मुनि की

पत्नी अरुन्धती भी मैना के समीप जा पहुँची। उन्होंने देखा कि मैना महामलिन वस्त्र पहने, अत्यन्त दुःखी हो, कोप भवन के भीतर पृथ्वी पर पड़ी हुई है। यह देखकर उन्होंने मैना से कहा—"हे मैना ! तुम उठकर हमारी बात सुनो।" ऋषि-पत्नियों को देखकर मैना तुरन्त उठ बैठी और बोली—"मेरा धन्य भाग्य हैं जो आपने यहाँ पधारकर मेरे ऊपर कृपा की। आप मुझे कोई आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें।" यह सुनकर अरुन्धती ने कहा—"हे मैना ! देखो, हिमाचल गिरिजा का विवाह शिवजी के साथ करना चाहते हैं। तुम इससे अप्रसन्न क्यों हो? क्या तुम शिवजी को नहीं पहचानती कि वे तीनों लोकों के स्वामी और सबसे श्रेष्ठ हैं?" इस प्रकार शिवजी की महिमा का बहुत कुछ वर्णन करने के उपरान्त दोनों ऋषि-पत्नियाँ मैना को साथ ले हिमाचल की सभा में जा पहुँचीं। वहाँ पहुँचकर मैना ने सप्तर्षियों को प्रणाम किया। फिर वह अपने पति के चरणों का ध्यान धरती हुई अरुन्धती के समीप बैठ गयी। उस समय सप्तर्षियों ने हिमाचल से इस प्रकार कहा—

ॐ ॐ ॐ

छियालीसवाँ अध्याय

सप्तर्षियों ने कहा—"हे हिमाचल ! तुम्हें उचित है कि अब तुम अपनी बुद्धि को स्थिर कर शिवजी के साथ गिरिजा का विवाह कर दो। शिवजी को अपना जामाता बनाकर तुम सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करोगे। देखो, इस समय संसार में तारक नामक दैत्य अत्यन्त उपद्रव कर रहा है। उसका वध करने के निमित्त ही शिवजी ने विवाह करना स्वीकार किया है। अस्तु, तुम देवताओं का कार्य पूरा करने के लिए इस कार्य में विलम्ब न करो।"

यह सुनकर हिमाचल ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"हे ऋषियो ! मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ कि वे संसार में विरक्त, वनवासी, अवधूत तथा अशुभ वेषधारी हैं। भला मैं ऐसे व्यक्ति के

साथ अपनी कन्या का विवाह कैसे कर दूँ? इस प्रकार के वर को कन्यादान करने से पिता नरकगामी होता है ; क्योंकि विवाह, मैत्री और वैर बराबर वाले से ही करना चाहिए। इसीलिए मैं शिवजी के साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं करना चाहता।''

हिमाचल की बात सुनकर अरुन्धती ने उत्तर दिया—''हे राजन्! वेद के अनुसार, तीन प्रकार के वचन होते हैं। एक ऐसा होता है, जिसको सुनने में ऊपर से तो आनन्द होता है, परन्तु वास्तव में वह आनन्द का नाश करने वाला होता है। दूसरे प्रकार का वचन सुनने में भी अमृत के समान होता है और उसका अन्त भी शुभ होता है। तीसरे प्रकार के वचन सत्य धर्म से विभूषित होता है। अस्तु, हम बीच वाले वचन का आश्रय लेकर तुम्हें समझाती हैं कि शिवजी सम्पूर्ण संसार के राजा तथा सबके स्वामी हैं। वे निर्गुण तथा सगुण दोनों रूप वाले हैं। कुबेर के समान धनपति उनके सेवक हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा हर उन्हीं के तीनों गुणों द्वारा उत्पन्न हुए हैं।''

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद! अरुन्धती ने पुनः कहा—''हे राजन्! गिरिजा तो सनातन काल से शिवजी की शक्ति हैं अतः तुम्हें उचित है कि तुम गिरिजा का विवाह शिवजी के साथ कर दो। ऐसा करने से तीनों लोकों में तुम्हें यश प्राप्त होगा तथा सम्पूर्ण देवता तुम्हारे वशीभूत हो जायेंगे। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो भी यह निश्चित रखो कि गिरिजा तो शिवजी को अवश्य प्राप्त करेगी ही, तुम्हें व्यर्थ ही सन्ताप उठाना पड़ेगा। जिस प्रकार राजा अनरण्य ने अपनी कन्या का विवाह ब्राह्मण के साथ करके अपने वंश की रक्षा की, उसी प्रकार तुम्हें भी उचित है कि तुम गिरिजा का विवाह शिवजी के साथ करके अपने कुल की रक्षा कर लो।''

यह सुनकर हिमाचल ने कहा—''आप मुझसे राजा अनरण्य की कथा कहने की कृपा करें।'' यह सुनकर वशिष्ठ जी ने उत्तर दिया—''हे हिमाचल! वेदचन्द्र नामक चौहदवें मनु की सौलहवीं पीढ़ी में 'अनरण्य' नामक राजा उत्पन्न हुआ था। वह मंगलारण्य राजा की

भाँति प्रजा का पालन करने वाला तथा राज्य सिंहासन पर बैठकर नीतिपूर्वक राज्य करने वाला था। उसके सात पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुई। पुत्री का नाम 'पद्मा' था। वह पुत्री राजा तथा रानी को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। जब उसकी अवस्था विवाह के योग्य हुई, तब राजा उसके लिए पति की खोज करने लगे। इतने में 'पिप्पलाद' मुनि ने अपने आश्रम को जाते समय वन में देखा कि एक गन्धर्व अपनी स्त्री से विहार कर रहा है। मुनि भी यह देखकर काम के वशीभूत होकर स्त्री से भोग की इच्छा करने लगे। तभी मुनि ने पुष्पभद्रा नदी के तट पर पद्मा को देख, सबसे पूछा कि यह किसकी कन्या है? लोगों ने बताया कि यह राजा अनरण्य की पुत्री है। यह सुनकर मुनि स्नान तथा पूजन कर राजा के पास गये और कामवश होकर उससे उनकी पुत्री को माँगा, परन्तु राजा चुप रहे, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। तब मुनि ने क्रोधित होकर कहा कि तू हमको लड़की नहीं देता तथा चुप बैठा हुआ है। हमारे पास वह विद्या है, जिससे हम इसी समय तुझे जला कर भस्म किये देते हैं।'' मुनि के ऐसे क्रोधपूर्ण वचन सुनकर राजा, स्त्री, पुत्र तथा भृत्यों सहित आश्चर्य चकित होकर रोने लगा। उस समय एक बुद्धिमान् पंडित ने राजा से कहा—''हे राजन् ! अब आपको यही उचित है कि अपनी पुत्री मुनि को दे दें और इस प्रकार मुनि के क्रोध से अपने कुल को जलने से बचावें।'' तब राजा ने पंडित की बात मानकर, अपने कुल की रक्षा के लिए, पुत्री मुनि को दे दी। इसलिए हे हिमाचल ! तुमको भी यही करना चाहिए। अब विवाह के शुभ मुहूर्त को केवल सात दिन शेष रह गये हैं। उस दिन मृगशिरा नक्षत्र, चन्द्र वार, उत्तम योग करण तथा केन्द्र के शुभ ग्रह हैं। उसी समय लग्न का स्वामी अपने स्थान पर आयेगा। यही अति उत्तम मुहूर्त होगा। उस दिन तुम गिरिजा का विवाह शिव के साथ कर दो।'' इस प्रकार समझाते हुए सप्तर्षि तीन दिन तक वहाँ ठहरे। तब हिमाचल ने उनकी बात मानकर, चौथे दिन लग्न लिखाया। उसे लेकर सप्तर्षि शिव के पास गए।''

सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! सप्तर्षियों ने शिवजी के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।" शिवजी बोले—"हे ऋषियों ! तुमने यह काम अच्छा किया। तुम भी अपने शिष्यों सहित हमारे विवाह में अवश्य उपस्थित होना।" यह सुनकर सप्तर्षि प्रसन्न होकर वहाँ से विदा हुए। हे नारद ! इसके पश्चात् शिवजी ने तुमको स्मरण किया। तुम वहाँ तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे। तुमने शिवजी की हाथ जोड़कर स्तुति एवं विनती की और कहा कि मेरा यह सौभाग्य है, जो आपने मुझे स्मरण किया। आप मुझ सेवक को आज्ञा दीजिये। उस समय शिवजी ने संसार की रीति के अनुसार कहा—"हे नारद ! गिरिजा ने हमारी बड़ी आराधना की है। हमने प्रेम के वश होकर उसे अपने साथ विवाह करने का वर दे दिया है। अब तुम हमारी ओर से समस्त देवताओं को निमन्त्रण दो। उन सब को यह बात भली-भाँति समझा देना कि जो हमारी बारात में सम्मिलित न होगा, वह हमारा प्यारा न होगा।" तुम यह सुनकर तुरन्त चल दिये। सर्वप्रथम तुम विष्णु जी के पास तथा इसी प्रकार सनकादिक, भृगु आदि के समीप पहुँचे। तुमने सबको शिवजी का सन्देश कह सुनाया और सब ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उसे स्वीकार किया।

हे नारद ! इस प्रकार तीनों लोकों में कोई ऐसा स्थान शेष नहीं रहा। जहाँ तुमने शिव की ओर से जाकर निमन्त्रण न पहुँचाया हो। सबको निमन्त्रण देने के पश्चात् तुम शिवजी के पास लौट आये और उनकी स्तुति करते हुए बोले—"हे महाराज ! आपके निमन्त्रण को ब्रह्मा, विष्णु एवं सम्पूर्ण सृष्टि ने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया है।" इसके पश्चात् तुम शिव की आज्ञा से वहीं रह गये। नियत समय पर ब्रह्मा, विष्णु, सनकादिक, लोकपाल, इन्द्र आदि गणपति, अग्नि, धर्मराज, वरुण, कुबेर, पवन, ईशान, दिक्पाल, सूर्य, चन्द्रमा, हिंगुलाज, ज्वालामुखी आदि देवी-देवता तथा मुनि कैलाश में अपनी समस्त

सामग्री, परिवार, स्त्री, गण, सेना तथा सभासदों को लेकर आये और अपने पद के अनुकूल बैठे। विष्णु तथा मैं शुभ लग्न पर शिवजी के पास आये तथा प्रणाम के पश्चात् उनसे बोले—"हे प्रभो ! अब तो चलने का समय आ गया है।"

ॐ ॐ ॐ

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी नें उसी समय बारात की तैयारी की आज्ञा दी। उनके आदेशानुसार सब अपने को वस्त्राभूषणों से भूषित करने लगे। चारों ओर ध्वजा, पताका, चँवर आदि शुभ सामग्री स्थापित हुई। देवताओं की पत्नियाँ मंगलगान करने लगीं। रत्न एवं मोतियों से चौक पुराये गये। उस समय की शिवजी की सुन्दरता का हम वर्णन नहीं कर सकते। विष्णु, मैं तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने प्रसिद्ध वस्त्रों से भूषित हुए। सवारों के रिसाले, गज समूह तथा घोड़ों के छल-बल देखने योग्य एवं प्रशंसा के योग्य थे। शुभ मुहूर्त में शिवजी महाराज बारात सहित चले। नन्दी, वीरभद्र, भैरव आदि भी अपने गणों सहित उनके साथ हुए। शिवजी की उस बारात में असंख्य सेना चली। शिवजी ने सर्वप्रथम सांसारिक नियम के अनुसार ब्राह्मण के चरणों का ध्यान धर, डमरू बजाया, इसके पश्चात् वे बारात के साथ चले।"

ॐ ॐ ॐ

उन्चासवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! हिमाचल ने भी इस विवाह के लिए अपने भाई, बान्धव तथा समस्त नदी, नद एवं समुद्रों को स्त्रियों सहित निमन्त्रित किया और अपने नगर को भली-भाँति सजाया। अनेक मन्दिरों को रत्न आदि से पूर्ण कर भूषित किया। अच्छा मँडवा छाकर बन्दनवार तथा मोतियों की झालरें लटका दीं। समस्त निमन्त्रित भाई-

बन्धु उनके घर एकत्र हुए। इस प्रकार वहाँ एक आश्चर्यजनक सामग्री एकत्र हुई। हिमाचल ने अपने दान से सब याचकों को सन्तुष्ट किया। प्रत्येक ने अपने को सुसज्जित किया तथा अनेक प्रकार के साज सजने लगे। स्त्रियों के समूह ने एकत्र होकर गिरिजा को स्नान कराया। जो-जो कुल देवता आदि की पूजा नियत हैं, वह सब गिरिजा से करायी गयीं। तुमको शिवजी की ओर से देवताओं ने पहले, हिमाचल के पास भेजा, जहाँ तुम्हारा बहुत ही आदर-सत्कार हुआ। सब रीति-रिवाजों के पूरा हो जाने के पश्चात् हिमाचल ने पहले अपने पुत्रों को बारात की अगवानी के लिए भेजा तथा स्वयं भी बारात आने की प्रतीक्षा करने लगे। जब बारात निकट पहुँची तो हिमाचल स्वयं अपने समस्त भाई-बन्धुओं सहित अगवानी के लिए चले। वे बारात की शोभा, असंख्य सेना तथा विचित्र सामग्री देखकर साथियों सहित आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने हम सबको झुककर प्रणाम किया तथा बहुत कुछ स्तुति की। तदुपरान्त रहने के लिए एक बहुत अच्छा स्थान दिया।

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! बारात की उस शोभा का वर्णन किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता। सब बारात बड़ी सज-धज के साथ अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर हिमाचल के घर की ओर चलीं। बारात को द्वार पर आया हुआ देखकर मैना की इच्छी हुई कि सर्वप्रथम मैं अपने दामाद को देखूँ, उसके पश्चात् द्वारचार की रीति पूरी की जाए। यह विचार कर मैना ने तुमको बुलाया तथा अपनी मनोकांक्षा प्रकट की। वह बोली कि तुम जिसको परब्रह्म तथा सर्वश्रेष्ठ कहते थे, उसे देखकर ही सब काम किये जाएंगे।"

ॐ ॐ ॐ

पचासवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जब मैना राज्य के अहंकार से यह अनुचित विचार अपने मन में लायी तथा उसने शिवजी के स्वरूप की

परीक्षा करनी चाही, तब शिवजी यह जानकर अप्रसन्न हुए। अब मैं ऐसा चरित्र करता हूँ, जिससे यह मूर्ख ऐसी बातों को भूल जाए। ऐसा सोचकर शिवजी ने अपना विचार विष्णु को बुलाकर प्रकट किया और कहा—''हे विष्णु ! तुम और ब्रह्मा हमारे बड़े शुभचिन्तक हो। हम तुमको आदेश देते हैं कि तुम सब पहले अलग-अलग अपनी सेना सहित हिमाचल के द्वार पर चलो। हम सब के पश्चात् वहाँ आवेंगे।'' विष्णु जी ने यह सुनकर सबको शिवजी का आदेश सुनाया। उस आदेश के अनुसार ही सब अलग-अलग अपनी सेना सहित चले तथा हिमाचल के द्वार में प्रवेश करने लगे। मैना ऐसी धूमधाम से आती हुई बारात को देखकर प्रसन्न हो कहने लगी—''वाह, वाह, कैसी सुन्दर बारात है।'' उसकी ऐसी दशा हुई कि जिसको देखती, तुमसे उसी के विषय में पूछती कि क्या यही गिरिजा के पति हैं? पहले जब मैना ने गन्धर्वराज वसु को देखा तो तुमसे कहा कि क्या यही शिव हैं? तब तुमने उत्तर दिया—''नहीं। यह तो शिव की सभा के गाने वाले हैं।'' यह सुनकर मैना बोली कि जिसकी सभा के गाने व नाचने वाले ऐसे हैं, तब वह मुझको कब दिखाई पड़ेंगे? फिर मैना ने यक्षों के स्वामी मणिग्रीव को देखा और तुमसे पूछा कि क्या यही शिव हैं? तुमने उत्तर दिया—''नहीं।''

हे नारद ! इसी प्रकार मैना ने धर्मराज, सप्र, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान, आठों दिक्पाल, रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, गृहपति, शुक्र प्रजापति, सप्तर्षि, ब्रह्मा तथा विष्णु जो एक के पीछे एक आते थे, को देखकर, प्रसन्न हो, तुमसे पूछा—''क्या यही शिव है?'' परन्तु तुम बराबर यही उत्तर देते रहे कि नहीं यह शिव नहीं हैं, यह तो शिव के भक्त हैं। यह सुनकर मैना अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा अपने को धन्य समझने लगी। वह समझी कि हमारा कुल कृतार्थ हो गया। इस प्रकार मैना के सब दुःख दूर हो गए।''

इक्यावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! मैना ने तुम्हारी तथा गिरिजा की बहुत प्रशंसा करते हुए तुमसे कहा कि मैंने अब तक शिवजी को नहीं देखा। इतने में शिवजी सम्मुख आ गये। तब तुमने मैना से कहा—"यही शिवजी हैं, यही गिरिजा के पति हैं, इन्हें अच्छी तरह देखो।" मैना ने शिव को अच्छी तरह देखा, परन्तु शिव की माया से उसके नेत्र ऐसे हो गये कि उसकी दृष्टि में सन्देह उत्पन्न हुआ। उस समय उसको शिवजी का दल ऐसा दिखाई देने लगा, जैसे कि वे सभी भूत प्रेत आदि हैं। कई के तो हाथ ही नहीं थे तथा कई के बहुत से हाथ थे। मैना ऐसा दल देखकर बहुत भयभीत हुई। उस सेना में शिव को बैल पर चढ़े, त्रिनेत्र, चन्द्रमा तथा मुकुट धारण किए, बाघम्बर एवं गज चर्म धारण किये, हाथों में डमरू, कपाल, त्रिशूल और सब शस्त्र लिए, सिर पर जटा-जूट, कानों में सप्र, पाँच मुख, मुण्डमाल धारण किये हुए, कण्ठ में हलाहल की श्यामता तथा शरीर में सर्प लपटाये हुए देखा। हे नारद ! उस समय तुमने मैना से कहा कि अब तुम इधर-उधर क्या देखती हो, शिव का रूप क्यों नहीं देखतीं? जब मैना ने शिव का ऐसा रूप तथा वैसी सेना देखी तो वे भयभीत होकर अत्यन्त दुःखी हुईं और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ीं। सबको अत्यन्त खेद हुआ। सब लोग औषधि आदि का उपचार कर मैना को चेत में लाए। फिर मैना तुमसे बोली—"हे नारद ! तुझे धिक्कार है। तूने मेरी कन्या का जीवन नष्ट कर दिया। यह अवधूत मेरी लड़की के साथ विवाह करने के लिए भूत-प्रेतों की सेना लेकर आया है। मेरा तथा हिमाचल का जन्म वृथा हुआ। सप्तर्षियों ने भी मेरे साथ धोखा किया है।"

हे नारद ! यह कहकर मैना गिरिजा से बोली—"हे पुत्रि ! तुमने वन में जाकर यह क्या काम किया? हंस के स्थान पर कौआ लिया, सूर्य से मतलब न रखकर जुगनू से मनोरथ चाहा, घी अच्छा न लगा और रेंडी के तेल से रुचि हुई। तुमने यज्ञ की भस्म को दूर कर चिता

की भस्म लगायी, जो विष्णु तथा अन्य देवताओं को छोड़, शिव के लिए तप किया। तुम्हारे कर्मों को धिक्कार है, तुम्हारे उपदेश, तुम्हारी सखियों एवं तुम्हें भी धिक्कार है। अब मुझको आनन्द कहाँ है? यह सब मेरे कर्मों का ही फल है। मैंने बड़े प्रेम से पुत्री के लिए तप किया था परन्तु ऐसा दुःख देने वाल फल तथा ऐसा भयावना स्वरूप मुझको प्राप्त हुआ।'' यह कहकर मैना बारम्बार पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित होने लगी। कुछ देर पश्चात् मैना को जब चेत हुआ तो गिरिजा की ओर से आँखें मूंद कर 'धिक्-धिक्' कहने लगीं। वे बोलीं—''मुझे दुःख है कि तुम मर न गईं। इस प्रकार इस समय हमारे कुल में बट्टा तो न लगता। हिमाचल ने भी नारद के वचन पर इतना विश्वास कर बहुत बड़ी मूर्खता की। अब मैं क्या करूँ, जिससे मेरा यह दुःख दूर हो?'' मैना ऐसे वचन कहती हुई रो-रो कर धरती पर गिर पड़ती थी। यह देखकर सब आनन्द दुःख में परिवर्तित हो गया, परन्तु बहुत समझाने के पश्चात् सब लोगों ने पुनः आनन्द मनाया।''

ॐ ॐ ॐ

बावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! मैना की यह दशा देखकर नगर भर में उदासी छा गयी। तब देवता आदि वहाँ बहुत प्रकार से मैना को समझाने लगे कि तुम यह क्या करती हो, जो इस प्रकार इस शुभ अवसर को अशुभ किये देती हो? यह सुनकर मैना ने जो कुछ मन में आया, देवताओं को बुरा-भला कहा तथा दिक्पाल आदि को वहाँ से उठा दिया। हे नारद ! तुम तुमने मैना को समझाते हुए कहा—''हे मैना ! तुम्हारी बुद्धि कहाँ गयी है? यह सब शिव की लीला है। शिवजी परब्रह्म हैं। उठकर अपना सब काम करो।'' मैना ने तुम्हारे इस प्रकार के वचन सुन 'दुर-दुर' कहकर तुम को फटकारा। तब सप्तर्षि अरुन्धती सहित वहाँ आकर मैना को समझाने लगे। मैना ने उनको भी क्रोधित होकर वहाँ से निकाल दिया। जब मैंने अच्छी प्रकार से शिव

की स्तुति की, तब मैना मुझसे अत्यन्त क्रोधित होकर बोली—"चुप रहो, ऐसी व्यर्थ की झूठी बातें मत कहो।" अन्त में हिमालय ने वहाँ जाकर मैना को बहुत समझाया और कहा—"संसार के स्वामी तथा पिता शिव मेरे द्वार पर आये हैं, तुमको ऐसा अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए। देखो, एक बार पहले भी वे शिवजी मेरे यहाँ अवधूत स्वरूप धारण कर आये थे तथा ऐसे नाचे-गाये थे कि स्त्री-पुरुष सब अधीर हो उठे। उन्होंने यहाँ ऐसे-ऐसे रूप दिखलाये थे कि उनको देखकर मैं और तुम दोनों ने गिरिजा को उन्हें देना स्वीकार कर लिया था।" इस प्रकार हिमाचल ने अनेक उदाहरण देकर मैना को समझाया, परन्तु मैना के मन में कुछ न आया। तब मैना की यह दशा देखकर गिरिजा बोलीं—"हे माता ! मैं शिवजी के अतिरिक्त और किसी के साथ विवाह न करूँगी। यह बात किस प्रकार हो सकती है कि सिंह का भाग सियार प्राप्त करे?" यह सुनकर मैना क्रोधित हो उठी। हे नारद ! जब मैना का क्रोध शान्त न हुआ, अपितु वह और बढ़ता ही गया, तब विष्णु जी स्वयं वहाँ मैना को समझाने के लिये गए।"

ॐ ॐ ॐ

तिरपनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! विष्णु जी ने वहाँ पहुँचकर मैना को समझाते हुए कहा—"हे मैना ! तुम शिव को नहीं जानती हो। वे सबसे बड़े, सबके स्वामी तथा अनादि हैं। उन्हीं से प्रकृति, पुरुष, सनकादिक, मैं तथा ब्रह्मा आदि सब उत्पन्न हुए हैं। वे और मैं उन्हीं की सेवा करता हूँ।" अनेक स्तुति करने के पश्चात् विष्णु जी ने फिर कहा—सबको शिवजी में और शिव को सब में समझो। जिस प्रकार एक शरीर अनेक प्रकार के वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार शिवजी को भी समझना चाहिए। शिवजी की भक्ति बड़ी आनन्ददायक है। मैं उन्हीं की शक्ति से सब कार्य करता हूँ तथा उन्हीं के तप से मुझको चक्र प्राप्त हुआ है। सब देवता शिवजी की सेवा से ही अमर हो गये हैं।"

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! विष्णु जी शिवजी के गुणों का इस प्रकार वर्णन करते हुए मैना से फिर बोले—"हे मैना ! तुमको सब धर्म रूप कहते हैं, इसलिए आज मैं तुमको समझाता हूँ कि तुम्हारा यह परम सौभाग्य है, जो सदाशिव हम सब के साथ तुम्हारे द्वार पर पधारे हैं। तुम इस बात को भली-भाँति समझो कि शिवजी की भक्ति के बिना यह संसार भर का बखेड़ा व्यर्थ है। शिवजी का तप बहुत सरल है। उनके अनेक रूप तथा असंख्य लीलाएँ हैं। जिस प्रकार तुमने सब अनेक रूप देखे थे, उसी प्रकार अब उनके भयानक स्वरूप को भी देख लिया। जो मनुष्य किसी को कुछ देने के लिए कहे और अन्त में अपने वचन का पालन न करके न दे, उसके बराबर और कोई पापी नहीं। अब तुम उठो तथा अपना काम करो। शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि शिव और गिरिजा का विवाह अवश्य होगा।"

चौवनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! विष्णु जी के मुख से इस प्रकार के पवित्र वचन सुनकर मैना को कुछ ढाढस हुआ। तब वह उठकर लज्जापूर्वक विष्णु से बोलीं—"आपने मुझको समझाकर बड़ा धीरज बँधाया, परन्तु मैं अपने मन से विवश हूँ। वह बात को समझ कर भी समझने की शक्ति नहीं रखता। मेरा हृदय यह कार्य करने को नहीं चाहता।" हे नारद ! यह सुनकर विष्णु जी ने तुमसे कहा कि तुम शिवजी के पास जाकर निवेदन करो कि वे मैना के हृदय से अपनी माया को खींच लें जिससे मैना अपनी यथार्थ दशा को प्राप्त करे और गिरिजा का विवाह हो सके तथा सब मनुष्य प्रसन्न हो जाएं। हे नारद ! तुम विष्णु जी की आज्ञा पाकर शिवजी के चरणों में पहुंचे तो शिवजी विष्णु की इच्छा जानकर, अत्यन्त सुन्दर हो गये। उन्होंने एक मुख, दो नेत्र, चम्पा के फूल के समान शरीर का रंग तथा सब प्रकार से मोहक

रूप धारण कर लिया। उन्होंने अपने शरीर को उत्तमोत्तम रत्न एवं जड़ाऊ वस्त्रों से भूषित कर लिया। अग्नि के समान चमकते हुए मस्तक पर चन्दन, कस्तूरी, अगरु, कुंकुम, इत्र आदि लगाये। मणिजड़ित अँगूठियाँ हाथों में पहनी तथा नेत्रों में काजल लगाया। उस समय समस्त संसार की सुन्दरता एकत्र होकर शिवजी में स्थित हो गयी।

हे नारद ! जो परब्रह्म आदि, मध्य, अन्तरहित तथा सृष्टि उत्पन्न करने वाला है, उसने ऐसे रूप में प्रकट होकर कैसी-कैसी लीला की? हे नारद ! तुमने शिवजी का ऐसा सुन्दर स्वरूप देखा, अत्यन्त आनन्द माना। तुम स्तुति करने लगे और मैना से बोले कि हे मैना ! अब तुम शिवजी के रूप के देखो। तब मैना ने शिवजी के रूप को देखा और अत्यन्त प्रसन्न हुई। फिर चारों ओर प्रसन्नता छा गयी। देवता उच्च स्वर में 'जय शिव शम्भु' कहने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। शंख, मृदंग आदि वाद्य बजने लगे। उस समय मैना भी बोली—"यह हमारा परम सौभाग्य है।" इसके पश्चात् शिवजी सम्पूर्ण बारात के साथ हिमाचल के द्वार को चले।"

पचपनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! वे लोग संसार में बड़े भाग्यशाली हैं, जो शिवजी की भक्ति करते हैं। शिवजी की भक्ति तीनों लोकों को भाग्य से ही प्राप्त होती है। वे ही सदाशिव जब देवताओं सहित संसारी मनुष्यों के समान हिमाचल के द्वार को चले, तब उनको देखने के लिए नगर की सब स्त्रियाँ, जो जिस अवस्था में बैठी थीं, उसी प्रकार उठकर चल दीं। वे शिवजी को देखकर परस्पर कहती थीं कि गिरिजा को ऐसा पति तप के ही कारण मिला है। वे सब मिलकर परस्पर मंगल गान करने लगीं। मैना ने अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवजी की आरती उतारी। गिरिजा ने भी अपनी माता से छिपकर शिवजी को देखा। उनका जैसा सुन्दर स्वरूप गिरिजा को दिखाई दिया, उसकी प्रशंसा

नहीं की जा सकती। गिरिजा ने सुन्दर स्वरूप को देखकर प्रणाम किया। तब हिमाचल ने कुल तथा संसार की रीति के अनुसार बड़ी प्रसन्नता व धूमधाम के साथ सब रीतियाँ पूरी कीं। द्वारचार के पश्चात् गायन, नृत्य, पुष्प वृष्टि तथा अनेक प्रकार के आनन्द मंगल होने लगे। तत्पश्चात् बारात जनवासा में गयी।''

छप्पनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! हिमाचल ने बारात की सेवा के लिए दास-दासी तथा अन्य सब प्रकार की सामग्री भेज दी। गिरिजा ने ध्यान करके बारात में सिद्धि को प्रकट कर दिया, जिससे किसी बात की कमी न रह गयी। विष्णु आदि सब देवता हिमाचल की बड़ाई करने लगे, परन्तु वे सब यह न जान सके कि यह सब सिद्धि गिरिजा की है। इसके पश्चात् मैंने हिमाचल से लग्न मुहूर्त का ध्यान दिलाते हुए कहा कि अब देर मत करो, यह सुनकर हिमाचल ने प्रसन्न होकर अपने पुरोहित को बुलाया। पण्डित वेद पाठ करते हुए अनेक प्रकार के बाजे बजवाते हुए चले तथा शिवजी के पास जाकर यह निवेदन किया कि अब आप हमारे घर चलें। तब मैं, शिव सहित हिमाचल के घर को गया। हम सब देवता वहाँ पहुँचकर उचित स्थानों पर बैठे। फिर गिरिजा को भीतर से बुलवाया। सबने गिरिजा को आते हुए देखकर प्रणाम किया। गिरिजा को उत्तम स्थान पर बैठने के उपरान्त विवाह की सब रीतियाँ होने लगीं। दोनों ओर से बहुत-सा दान दिया गया, जो प्रत्येक को उसकी इच्छानुसार ही मिला। उस समय चारों ओर बड़ा आनन्द हुआ। स्त्रियाँ मंगल गान कर रही थीं।''

हे नारद ! इसके पश्चात् बारात वहाँ से चल कर जनवासा में आयी। तब हर प्रकार के भोजन परोसे गए। हिमाचल ने अपने घर में ही छप्पन प्रकार के भोजन बनवाए थे। हिमाचल ने बारात को आने का सन्देश भेजा। थोड़ी ही देर में सब बारात आ पहुँची। हिमाचल ने

सबके पाँव धोये। जिस समय उन्होंने शिव के चरण धोए, उस समय वे प्रसन्नता से विह्वल हो गए। उन्होंने यही सोचा कि ये वही चरण हैं, जिनका विष्णु एवं ब्रह्मा ध्यान करते हैं। चरण धोने के पश्चात् शिवजी को एक सुन्दर स्वर्ण की चौकी पर बैठाया तथा उनके सम्मुख भोजन लाकर रखा। प्रत्येक के सम्मुख स्वादिष्ट भोजन रखे गये। वे भोजन चारों प्रकार के थे, जिनमें छहों रसों का स्वाद था। सभी भोजन करने लगे। स्त्रियों ने गालियाँ गायीं, जिनमें वे सब के नाम लेती थीं और बाराती प्रसन्न होकर बहुत धीरे-धीरे भोजन करते थे। जब भोजन समाप्त कर चुके, तब उनको पान बाँटे गये। तदुपरान्त वहाँ से बारात विदा होकर जनवासा में आईं। जब मैंने विवाह की शुभ लग्न पहले के विचार के अनुसार देखी तो हिमाचल को सूचित कर दिया। हिमाचल ने उसी समय अपना एक पुत्र शिवजी को आदर सहित लाने के लिए भेज दिया। शिवजी देवता एवं मुनियों सहित तुरन्त वहाँ से चल दिये। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। उस समय चारों ओर जो आनन्द छा गया उसका वर्णन किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता।''

ॐ ॐ ॐ

सत्तावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! उस समय शिवजी का विवाह अपने नेत्रों से देखने के लिए सभी उत्सुक एवं प्रसन्न थे। मैना ने सर्वप्रथम शिवजी की आरती उतारी, इसके पश्चात् शिवजी अन्दर गए। देवता एवं मुनि आदि भी अन्दर आकर बैठ गये। वे सब शिवजी के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को चकोर की भाँति देखने लगे। उस समय मण्डप के चारों ओर की धरती चार प्रकार से पवित्र की गयी। उसके नीचे सिंहासन पर शिवजी विराजमान हुए। फिर गिरिजा आयीं। वे सोलह श्रृंगार किये हुए अपने सखियों के साथ थीं। विष्णु जी तथा हम सब देवताओं ने हाथ जोड़कर गिरिजा को प्रणाम किया तथा सबने

शुभ आशीर्वाद दिया। दोनों ओर के मुनियों ने प्रथम गणपति एवं गौरी का पूजन किया। तदुपरान्त वे अन्य रीतियाँ पूरी करने लगे।''

हे नारद ! पंचदेवता अनादि हैं तथा पाँचों के समान जानकर उनकी पूजा करनी चाहिए। जिस प्रकार वेद में विवाह की विधि लिखी है, हिमाचल ने उसी प्रकार सब रीतियाँ पूरी कीं। मैना ने बहुत महीन तथा उत्तम वस्त्र शिवजी को दिये। उसी प्रकार के दो वस्त्र गिरिजा को भी दिये। गिरिजा हिमाचल की दाहिनी ओर आकर बैठीं और शिवजी गिरिजा के सम्मुख बैठे। तब मुनीश्वरों ने वेदपाठ किया। मैना भी कन्यादान के समय आयीं। पुरोहित दूसरे पक्ष का गोत्र-नाम पूछने लगा तथा अपने कुल का बताने लगे। पुरोहित दूसरे पक्ष का गोत्र-नाम पूछने लगे तथा अपने कुल का बताने लगे। हिमाचल ने गर्ग, विष्णु जी तथा मुझसे कहा कि अब आप लोग कन्यादान करा दीजिये, परन्तु हम लोग शिवजी का गोत्रोच्चारण न कर सके, इसलिए विवश होकर चुप ही रहे। तब हिमाचल ने शिवजी से कहा कि आप अपना गोत्र एवं कुल स्वयं वर्णन कीजिये ; क्योंकि बिना इसके कन्यादान नहीं हो सकता। शिवजी ने लीला करके अपने मुख से कुछ न कहा, वे चुप हो गये। यह देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे। उस समय सबको बहुत दुःख भी हुआ, सबकी आशा टूट गयी। हिमाचल का यह वचन एवं हठ किसी को भी भला न लगा। सब परस्पर एक-दूसरे की ओर देखने लगे, परन्तु शिवजी की लीला को कोई न जान सका। गिरिजा अपने पति के मुख को देखकर सबसे अधिक चिन्तित हुई और शिवजी का ध्यान करने लगीं। शिवजी ने गिरिजा की चिन्ता को जानकर, तुम (नारद) पर अपनी इच्छा प्रकट की। तब तुम तुरन्त हँसकर अपनी वीणा बजाने लगे। हिमाचल मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए। सब लोगों ने तुम से कहा कि यह समय वीणा बजाने का नहीं है।

हे नारद ! यह सुनकर तुमने उत्तर दिया—''हे राजन् ! तुमने जो शिवजी का गोत्र एवं कुल पूछा है सो हमने शिवजी के संकेत के अनुसार उत्तर दिया है अर्थात् शिवजी का कुल एवं गोत्र नाद है।

शिवजी का शरीर नादरूपी है तथा शिवजी नादपूर्ण है। शिवजी का कुल एवं गोत्र जो ब्रह्मा, विष्णु तथा हम सब में से कोई नहीं जानता, कौन मनुष्य बता सकता है। तुम तो मूर्खों जैसी बातें करते हो। शिव सशरीर, शरीर रहित, निष्कुल, सकुल, अगोत्र तथा सगोत्र सब कुछ हैं। अब समय बीता जाता है, इसलिए तुम कन्यादान कर दो।'' तब हिमाचल ने उसी समय कुश एवं जल लेकर कन्यादान कर दिया तथा गिरिजा का हाथ शिवजी के हाथ में पकड़ा दिया। इससे हिमाचल की तीनों लोकों में कीर्ति हुई। शिवजी ने गिरिजा का हाथ पकड़ा सो यही विवाह पद्धति लोक में प्रसिद्ध हो गयी।''

अट्ठावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! उस समय सब आनन्दित हुए। दास, दासी आदि को भरपूर पारितोषिक दिया गया। तदुपरान्त पुरोहित गिरिजा को शिव के वामभाग में बैठाकर हवन करने लगे। उत्तम रीति से भाँवरें पड़ने लगीं, जिनको देखकर सबको आनन्द प्राप्त हुई। तब शिवजी ने ऐसा चरित्र किया कि भाँवरें पड़ते समय गिरिजा का एक अँगूठा कपड़े से हट जाने से मुझे दिखाई दे गया। मैंने भावी के वश में होकर उसको काम की दृष्टि से देखा। यद्यपि मैंने अपने को बहुत सँभाला, परन्तु मेरा वीर्य धरती पर गिर पड़ा। उससे असंख्य बटुक एवं जटाधारी तेजस्वी उत्पन्न हुए। वे सब मेरी स्तुति करके खड़े हो गये। शिवजी ने उनको देखकर अत्यन्त क्रोधित हो त्रिशूल उठा लिया। जब सबने मिलकर शिवजी की विनती की तब शिवजी प्रसन्न होकर बोले—''हे ब्रह्मा ! हम अप्रसन्न नहीं हैं। तुम सुखपूर्वक अपना कार्य करो।'' तब मैंने उन सब बटुकों को सूर्य को सौंप कर कहा कि तुम सब इनकी सेवा में रहो। वे सब सूर्य की सेवा में ब्रह्मचारी रहकर, वेद के महान् ज्ञाता हुए।

हे नारद ! इसके पश्चात् मैंने विवाह का जो कार्य शेष रह गया था,

वह सब भली-भाँति पूर्ण करा दिया। फिर हिमाचल ने हम सबको जो कुछ उचित था, दिया। शिवजी को उन्होंने रत्न आदि हर प्रकार का धन-द्रव्य दहेज के रूप में दिया। हिमाचल की उदारता से उस समय कोई भिक्षुक खाली हाथ न रहा। फिर हम सब तो अपने-अपने निवास स्थान पर लौट आए, परन्तु स्त्रियाँ शिवजी को घर के भीतर ले जाकर सब रीतियाँ पूरी करने लगीं। उन स्त्रियों ने शिवजी के साथ अनेक प्रकार के हास्य किए।''

उन्सठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! सब रीतियाँ पूरी हो जाने के पश्चात् स्त्रियों ने शिव और गिरिजा को अन्तःपुर में ले जाकर उत्तम शैय्या पर बैठाया। गिरिजा और शिव के उस समय के स्वरूप का, जो वस्त्राभूषण से सज्जित था, किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय सब देव पत्नियाँ शिवजी के पास गयीं, जिनमें सावित्री, जाह्नवी, लक्ष्मी, सरस्वती, अहल्या, तुलसी, शतरूपा, संज्ञावर्ता, अदिति तथा सोलहों संसार की माताएँ जो अपनी कृपा द्वारा संसार के दुःखों को नष्ट कर देती हैं, थीं। सर्वप्रथम सरस्वती बोलीं—''हे देवाधिदेव ! तुमने प्राणों के समान पत्नी पायी अब अपनी प्यारी के मुख को तो देखो।'' लक्ष्मी ने कहा—''हे देवताओं के देवता ! अब समस्त लज्जा त्याग कर अपनी प्यारी को हृदय से लगा लो।'' फिर सावित्री बोलीं—''हे देव ! तुम स्वयं भोजन करके अपनी प्यारी को भोजन कराओ और उन्हें पान खिलाओ।'' तुलसी बोलीं—''हे शिव ! आपने तो स्त्री को छोड़कर कामदेव को भस्म कर दिया था तथा संसार से त्यागी एवं काम-रहित बन गये थे, फिर अरुन्धती को तुमने क्यों सिखाकर भेजा?'' स्वाहा ने कहा—''हे गिरिजापति ! स्त्री के वचन सुनकर लज्जित मत होना। यदि वह कोई ढिठाई से लाड़-प्यार की बातें कहें तो उसका बुरा मत मानना ; क्योंकि संसार की यही रीति है।'' इसके

पश्चात् शंखा ने सबसे कहा कि अब गिरिजा को शिव के साथ वहाँ भेज दो, जहाँ सुन्दर मन्दिर पुष्पों से सज्जित हों तथा रत्नदीप जलते हों।''

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! स्त्रियों की ऐसी हास्यपूर्ण बातें सुनकर शिवजी अत्यन्त लज्जित हुए तथा बोले—''हम आप सब को हाथ जोड़ते हैं तथा विनय करते हैं कि हमारे समक्ष ऐसी बातें मत कहो।'' सब स्त्रियाँ शिवजी के यह वचन सुनकर लज्जित हो गयीं तथा चित्रलिखित-सी चुप होकर रह गयीं। उस समय शिवजी को प्रसन्न देखकर रति बोली—''हे शिवजी ! आपने तो अपनी स्त्री को ग्रहण कर प्रसन्नता प्राप्त की ; परन्तु मेरे पति को व्यर्थ ही जला दिया। अब मैं यह आशा लेकर आपसे विनय करती हूँ कि आप मेरे पति को जीवित कर दीजिये। इस समय मेरे अतिरिक्त सारा संसार आनन्दित है।'' यह कहकर रति विलाप करने लगी, जिससे सभी दुखित हुए। फिर रति अपने पति की जली हुई भस्म को, जिसे वह बाँध कर लायी थी, खोलकर शिवजी के आगे खड़ी हो गयी। रति का रोना सुनकर सब स्त्रियाँ भी रोने लगीं। उस समय शिवजी ने रति एवं देव-पत्नियों का रुदन सुनकर एक बार अमृत दृष्टि से देखा जिससे उसी समय कामदेव अपनी भस्म से उत्पन्न हो गया। यह देखकर रति अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा कामदेव शिवजी की स्तुति करने लगा। शिवजी ने कहा—''हे कामदेव ! अब तुम शोक मत करो तथा बाहर बारात में जाकर बैठो।'' कामदेव ने शिवजी के आदेशानुसार जनवासा में जाकर, मुझको एवं विष्णु जी को प्रणाम किया। मैंने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम शिव एवं गिरिजा के प्यारे हो। अस्तु, अब तुमको किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए। यह सुनकर कामदेव वहीं बैठ गया।

हे नारद ! फिर स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्नता के साथ शिवजी एवं गिरिजा को अनेक प्रकार की विचित्र वस्तुओं एवं रत्न आदि से भूषित मुख्य अन्तःपुर में ले गयीं। उस अन्तःपुर को विश्वकर्मा ने स्वयं अपने

हाथों से निर्मित किया था। चन्दन, कस्तूरी, अगरु आदि से मन्दिर में सब ओर सुगन्धि फैल रही थी। उसमें कहीं विष्णु लोक, ब्रह्म लोक, इन्द्रलोक तथा गोलोक, रासमण्डल आदि के चित्र थे और कहीं पर वह कैलाश पर्वत बना हुआ था, जहाँ वृद्धावस्था एवं मृत्यु का कोई भय नहीं है। शिवजी उन सुन्दर चित्रों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। जब प्रभात हुआ तो चारों ओर से अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे तथा मुनि, देवता आदि जयकार का शब्द करने लगे। तब विष्णु जी ने धर्मराज से कहा कि तुम शिवजी के पास जाकर उन्हें किसी उपाय से निन्द्रा से जगाकर उठाओ। विष्णु जी के वचन सुनकर धर्मराज ने शिवजी के समीप जाकर कहा—''हे महाराज ! कृपा कर अब उठिये तथा जनवासा में चलकर सबको आनन्दित कीजिए।'' धर्मराज की यह बात सुनकर शिवजी हँस कर बोले—''हे धर्मराज ! तुम चलो, मैं अभी आता हूँ। शिवजी बड़ों की आज्ञा पाकर, मन में हँसते हुए जनवासा की ओर चल दिए।''

साठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अन्तःपुर से उठकर जब शिवजी जनवासा में आए, तब हमें सब देवताओं आदि को बुला लिया।'' विष्णु जी तथा मैंने, तुम्हें सप्तर्षियों को सम्बोधित करते हुए, इस प्रकार उच्च स्वर में कहा—''हे नारद ! एवं हे सप्तर्षियो ! तुमने बड़ी कृपा की। केवल तुम्हारी कृपा के फलस्वरूप ही यह विवाह सम्पन्न हुआ है।'' फिर विष्णु जी तथा मैंने बहुत-सा दान देकर हिमाचल से विदा माँगी। हिमाचल बहुत-से लोगों के साथ आकर विनय करते हुए बोले—''हे देवताओ ! आप मुझे छोड़कर न जायें। यद्यपि मैं आप लोगों की भली प्रकार से सेवा न कर सका, सेवा तो क्या आपके चरण भी नहीं धो सका। मैं अत्यन्त लज्जित हूँ, यहाँ तक कि पुष्प भी आप लोगों को भेंट न कर सका। आशा है आप लोग उसका विचार न

करके पुनः मेरे गृह को पवित्र करेंगे।"

हे नारद ! यह सुनकर मैंने, विष्णु जी ने तथा समस्त देवताओं ने हिमाचल से कहा—"हे पर्वतराज ! तुम तो धन्य हो। हमने ऐसा आनन्द कहीं प्राप्त नहीं किया। इस प्रकार का मनोहरी स्थान तथा भोजन कहीं प्राप्त नहीं हुआ। ऋद्धि-सिद्धि तुम्हारी चेली हैं। संसार में तुम्हारे समान और कौन है?" इसी प्रकार दोनों ओर से नम्रता के वचन कहे गये। इसके उपरान्त हिमाचल बारात को अपने घर भोजन कराने के लिए ले गये। वहाँ पहुँचकर वे बारात को भोजन कराने लगे और स्त्रियाँ शिवजी को सुनाकर गाली गाने लगीं, जिनका आशय यह था कि यद्यपि तुम अपनी सम्पूर्ण सामग्री अशुभ रखते हो, परन्तु अपने भक्तों को सब कुछ प्रदान करते हो। यह सुनकर शिवजी ने वरदान दिया कि जो इस वृत्तान्त को पढ़ेगा, वह सदैव प्रसन्न बना रहेगा।

ॐ ॐ ॐ

इकसठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! इस प्रकार हिमाचल ने तीन दिन तक आग्रह एवं विनती करके बारात को नहीं जाने दिया। चौथे दिन मैंने स्वयं पश्चिम मुख से शिव-गिरिजा को बैठाकर होम कराया तथा जो रीतियाँ शेष रह गयी थीं, उन सब को पूर्ण कराया। तत्पश्चात् अभिषेक किया गया। सब ने शुभाशीर्वाद दिया। फिर सब बारात को भोजन कराया गया। प्रातःकाल जब हिमाचल से विदा माँगी तो हिमाचल अत्यन्त विनय के साथ बारात विदा की आज्ञा न देकर, उसे कई दिन तक वहीं ठहराये रहे। हिमाचल के प्रेम एवं शील के कारण किसी को भी ऐसी संगति छोड़ने की इच्छा न हुई। उस समय देवताओं ने हिमाचल की बहुत स्तुति की तथा समझाते हुए कहा—"हे राजन् ! शिवजी परब्रह्म हैं जिनके हम सब सेवक हैं। वे तुम्हारे घर आये, इसलिए संसार में तुम से अधिक भाग्यवान् कौन है?" यह कहकर सब देवता एवं मुनि अत्यन्त दुःखी होकर वहाँ से लौट आये तथा कोई

किसी से कुछ न कह सका। अन्त में निराश होकर हिमाचल ने लज्जा से एक सभा कर सबको यह सूचना दी कि शिवजी अब विदा होने वाले हैं। हिमाचल के मुख से ऐसे वचन सुनकर सबलोग अचेत तथा मूर्च्छित से हो गये, परन्तु फिर हिमाचल ने गुरु की आज्ञानुसार सब प्रकार की सामग्री उपस्थित कर, बारात को घर के भीतर बुला लिया।

हे नारद ! जब बारात के सब लोग आ गए, तब मैंने शिव एवं गिरिजा को मध्य में बैठा लिया। फिर गौरी-गणपति की पूजा कराकर, सब करने योग्य काम पूरे करा लिए। हिमाचल ने दहेज में पकवान, फल, हाथी, घोड़े, रथ, दास, दासी, गौ आदि इतने दिये जो असंख्य थे। इसके उपरान्त हिमाचल ने कहा—"मुझे पूर्ण आशा है कि जो अपराध मुझसे हुआ हो, उसे आप लोग क्षमा करेंगे।" हिमाचल के ऐसे वचन सुनकर सब देवता बोल उठे—"हे हिमाचल ! तुम मुक्त हो गये, क्योंकि शिवजी ने तुम पर दया की है। तुमने गिरिजा का विवाह शिवजी के साथ कर दिया, यह हम सब पर बड़ी कृपा हुई।"

ॐ ॐ ॐ

बासठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! इस प्रकार हिमाचल तथा मैना सहित समस्त परिवार बारम्बार शिवजी की स्तुति करने लगा। तत्पश्चात् सब बारात वहाँ से वास स्थान में लौट आयी। शिवजी हिमाचल के घर के भीतर गये ; जहाँ सब स्त्रियाँ एकत्र होकर शिवजी को विदा करने लगीं। शिवजी ने कहा—"सब बारात यहाँ से विदा हो गयी, अब मुझे भी विदा होने की आज्ञा दें।" यह सुनकर मैना ने बड़े स्नेह के साथ गिरिजा को शिवजी को सौंप दिया तथा बोली—"हे शंकर ! यह गिरिजा मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है तथा अभी इसकी अवस्था छोटी ही है। यह अधिक कोमलांगी है। इसको संसार के रीति-रिवाज अब तक मालूम नहीं। यह बहुत ही सीधी है, इसलिए आप इसे प्रेम तथा कृपा से रखें। यह कहकर मैना शिवजी के चरण पकड़कर मोहित हो गयी।"

हे नारद ! यह सुनकर शिवजी बोले—"तुम और हिमाचल धन्य हो जिनकी संसार में सब लोग स्तुति करते हैं, तुम कुल एवं परिवार सहित मुक्ति प्राप्त करोगे। हमें भक्तजन वैर, भय, प्रीति, भक्ति एवं सम्बन्ध आदि द्वारा अनेक प्रकार से पाते हैं।" यह कह शिवजी मैना से विदा होकर हिमाचल के पास आए तथा हाथ जोड़कर खड़े होकर विदा माँगी। उस समय हिमाचल अत्यन्त प्रेम एवं भक्ति से आँसू बहाते हुए बोले—"हे प्रभु ! आप मेरे समस्त अपराधों को क्षमा करें तथा मुझे अपना सेवक समझकर सब दुःख दूर करते रहें। यह कहकर हिमाचल ने शिवजी को विदा किया। तब बारात बड़ी धूमधाम से चली उस समय सब प्रकार के बाजे बजने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

तिरसठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! इस प्रकार शिवजी वहाँ से विदा होकर नगर के बाहर ठहरे। उधर मुनियों ने हिमाचल से कहा कि अब गिरिजा को भी विदा कीजिये। जब यह समाचर भीतर मैना के पास भेजा गया तो मैना सुनकर प्रेम-सागर में डूब गयी। नगर भर की स्त्रियों को बुलाया गया। वे सब वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर गिरिजा को विदा करने के लिए आयीं। ब्राह्मण स्त्रियों ने गिरिजा को पातिव्रत धर्म की शिक्षा देते हुए कहा—"हे गिरिजे ! अपने पति की सेवा लोक में अत्यन्त आनन्द प्राप्त करने वाली है। तुम दिन-रात पति की सेवा में ही लगी रहना। स्त्री के लिए इसके समान कोई दूसरा तप नहीं है। संसार में चार वस्तुएं सुख देने वाली हैं—पहला प्रियतम, दूसरा धर्म, तीसरी स्त्री तथा चौथा सन्तोष; परन्तु इन चारों की परीक्षा विपत्ति के समय में ही हो सकती है। जो स्त्रियाँ अपने पति का सम्मान नहीं करतीं, उनकी सेवा नहीं करतीं, वे निःसन्देह नरक में जाती हैं। इसलिए स्त्री को सब कुछ त्यागकर, केवल अपने पति की ही सेवा करना उचित है। वेदों में चार प्रकार की स्त्रियाँ बतायी गयीं हैं। पहली उत्तम वह है, जो स्वप्न में

भी दूसरे पुरुष का मन में विचार न लावे। दूसरी मध्यम, जो अन्य पुरुष को पुत्र, पिता व भाई के समान समझे। तीसरी निकृष्ट, जो अपने धर्म का विचार करके पर-पुरुष की संगति से बची रहे। चौथी अति अधम, जो अपने पति व कुल के भय से दूसरे की संगति से बच जावे। समय से न डरना भी चौथी प्रकार की स्त्री में ही गिना गया है। पतिव्रता स्त्रियों की सभी प्रतिष्ठा करते हैं।"

"हे नारद ! ब्राह्मण स्त्रियाँ गिरिजा को इस प्रकार समझाती हुई फिर बोलीं कि स्त्री से चाहे अनेक पाप हुए हों, परन्तु वह केवल अपने पतिव्रत धर्म से ही परम पद प्राप्त करती है। हे गिरिजा ! शिवजी जितनी स्त्रियों पर कृपा करते रहे हैं, उतनी और किसी पर नहीं। जो स्त्रियाँ अपने पति का विरोध करती हैं, वे निःसन्देह नारकीय हैं। उनकी पहचान यह है कि दूसरा जन्म धारण कर या तो युवावस्था में ही वैधव्य को प्राप्त करती हैं या पति सहित अनेक प्रकार के दुःखों को भोगती हैं। पतिव्रता स्त्रियों की वेद भी बड़ाई करते हैं। स्त्री को उचित है कि प्रथम अपने पति को भोजन कराकर, स्वयं पीछे खाए तथा प्रथम अपने पति को सुलाने के पश्चात् स्वयं सोए। पति जो आज्ञा दे, उसको बिना किसी हठ के पूरा करे। बुरी स्त्रियों से प्रेम तथा संगति न रखे। अपने मुख से कभी पति की निन्दा के शब्द न निकाले। एकान्तवास न करें। जहाँ अपने पति की प्रसन्नता तथा इच्छा देखे, वहाँ स्वयं भी अधिक प्रीति बढ़ावे तथा अपने पति को किसी समय भी न छोड़े। विपत्ति के समय में भी एक समान ही देखे। ऐसे नियम से चले, जिससे पति को अधिक परिश्रम न करना पड़े। जो स्त्री अपने पति की इच्छा के बिना व्रत आदि करती है, वह अपने पति की आयु को कम करती है, तथा स्वयं नरक में जाती है। स्त्री को यही उचित है कि वह पति से ऊँचे स्थान पर न बैठे और पति के सम्मुख किसी पर-स्त्री से बात न करे। झूठ एवं दुर्वचन मुख से न निकाले। सदैव लड़ाई-झगड़ों से दूर रहे। यदि किसी समय उसका पति मारपीट करे, तो स्त्री को क्रोध न करना चाहिए और न भागना चाहिए।

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! ब्राह्मण स्त्रियाँ गिरिजा को पुनः समझाते हुए बोलीं—"हे गिरिजा ! देखो अत्रि ब्राह्मण की स्त्री अनुसूया ने इस धर्म से कितना आनन्द प्राप्त किया तथा वाराह मुनि को अपने तेज से जलाकर दूसरे एक ब्राह्मण को जीवित किया। पातिव्रत धर्म की एक कथा मुनि इस प्रकार कहते हैं कि एक तपस्वी तप करते थे। एक बगुली ने उनके सिर पर विष्ठा कर दी। जब तपस्वी ने ऊपर दृष्टि उठाकर उसकी ओर देखा तो उसी समय बगुली जलकर भस्म हो गयी। यह देखकर तपस्वी ने अनुमान लगाया कि हमारा तप अब पूर्ण हो गया है। इसी विचार से वे तप को छोड़, चलते-फिरते एक पतिव्रता स्त्री के द्वार पर आये। उस स्त्री ने तपस्वी की बड़ी सेवा की तथा द्वारा पर तपस्वी को ठहराकर, स्वयं घर पर दान के लिए वस्त्र लेने गयी। संयोगवश उसके पति ने घर में उससे किसी काम के लिए कहा। वह उसी कार्य में लग गयी तथा तपस्वी की बात भूल गयी। उसको देख तपस्वी ने क्रोधित होकर शाप देने की इच्छा की। उस समय उस स्त्री ने तपस्वी को क्रोधित देखकर कहा—"हे तपस्वी ! मुझको किसी प्रकार का भय नहीं है। तुम इतना क्रोध क्यों करते हो? क्या मैं बगुली हूँ?" इतना सुनकर तपस्वी का अहंकार नष्ट हो गया। उसने उसकी बारम्बार प्रशंसा कर इस बात को समझा कि पातिव्रत धर्म सब धर्मों से बड़ा है। हे गिरिजे ! तुम विश्वास रखो कि संसार में पति से बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है।"

चौंसठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! मैना ने भी गिरिजा को इसी प्रकार बहुत-सी बातें समझायीं। फिर उनको विदा करने की इच्छा की। वे गिरिजा के वियोग का दुःख स्मरण कर अत्यन्त दुखी हुईं। वे गिरिजा को बारम्बार अपनी बाहों में लिपटा लेती थीं। इसी प्रकार शिवजी की सेवा के लिए बार-बार कहती हुई रोने लगीं। वे बोली—"हे पुत्री !

दूसरे के फन्दे में पड़कर कुछ आनन्द नहीं मिलता।" गिरिजा भी प्रेम से मैना के चरणों पर गिर पड़ीं तथा मूर्च्छित हो गयीं। मैना ने उन्हें उठाकर अपनी छाती से लिपटा लिया। फिर गिरिजा की सखियाँ गिरिजा को मैना से अलग कर, ले चलीं। इसी प्रकार गिरिजा सबसे विदा होकर स्वयं रोती तथा दूसरों को रुलाती हुई चलीं। गिरिजा की बातों को सुनकर बड़े-बड़े धैर्यवान् भी अधीर हो उठते थे। यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी रोने लगे। हिमाचल को भी बहुत दुःख हो रहा था। उस समय कोई भी ऐसा पंडित, ज्ञानी शेष न रहा, जिसको रोने-पीटने के अतिरिक्त कुछ ज्ञान रहा हो। तब ब्राह्मणों ने हिमाचल तथा उनके मित्रों से कहा कि अब शीघ्रता करो, शुभ मुहूर्त्त समाप्त हुआ जाता है। यह सुन हिमाचल ने निरुपाय होकर गिरिजा को पालकी पर सवार कर, स्त्री-धर्म की शिक्षा दी। मैना आदि अन्य समस्त स्त्रियाँ तथा पुरुष एक साथ गिरिजा को आशीष देने लगे। हिमाचल ने गि़रिजा को वे दासियाँ भी दे दीं, जिन्हें गिरिजा विशेष रूप से चाहती थीं। जितने तोता आदि मधुरवाणी के पक्षी थे, जिन्हें गिरिजा बहुत प्यार करती थीं, वे भी गिरिजा के साथ कर दिये। गिरिजा के चलने के समय मार्ग में शुभ-शकुन हुए। बाजे बजने लगे तथा चारों ओर प्रसन्नता की बातें दृष्टिगोचर होने लगीं।

हे नारद ! गिरिजा के विदा के समय बहुत-सा धन-द्रव्य लुटाया गया। चलने के समय हिमाचल ने अपने पुत्रों सहित देवताओं से प्रार्थना की कि हम कुछ दूर तक आपके साथ चलेंगे। कुछ दूर तक जाने के पश्चात् देवताओं ने हिमाचल को विदा किया। हिमाचल भी वहाँ से यह कहकर कि मुझे तीनों लोकों में बड़ाई प्राप्त हुई है, सब को प्रणाम कर विदा हुए। उन्होंने शिवजी से कहा कि आप मुझे कृपा करके अपनी भक्ति दीजिये। शिवजी ने प्रसन्न होकर हिमाचल की इच्छा पूरी की और उन्हें विदा किया। हिमाचल के यहाँ जितने अतिथि आये थे, उन सबको भी हिमाचल ने आदर सहित विदा किया। उस समय विन्ध्य पर्वत ने हिमाचल से कहा— "हे राजन् ! तुम शिवजी से

सम्बंध स्थापित करके, हम सब से श्रेष्ठ हुए।'' अस्तु, जब शिवजी बारात के साथ कैलाश पर्वत पर पहुँचे, तब वहाँ हर प्रकार के आनन्द की सामग्री एकत्र हुई। बाजे बजने लगे तथा शिवजी की आरती उतारी गयी। तदुपरान्त शिव-गिरिजा ने शुभ लग्न में मन्दिर में प्रवेश किया।

ॐ ॐ ॐ

पैंसठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिव-गिरिजा के मन्दिर में प्रवेश करने के पश्चात् सब स्त्रियाँ एकत्र होकर उनकी आरती उतारने लगीं। विष्णु तथा हम सब ने दोनों का पूजन किया। उस समय हम सबको इस प्रकार आनन्द प्राप्त हुआ जिस प्रकार दरिद्री को धन, अन्धे को नेत्र तथा रोगी को अमृत प्राप्त होने से होता है। हम सब ने उनकी अलग-अलग स्तुति की, जिससे शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर वहाँ से विदा होने की आज्ञा माँगते हुए शिवजी से यह निवेदन किया—''हे कैलाशपति ! हम सबका जो मनोरथ है, उसे आप भली-भाँति जानते हैं, आप हम पर कृपा बनाये रहें और अब हमें जाने की आज्ञा दें।''

हे नारद ! इसके उपरान्त क्रमशः वहाँ से सब लोग विदा हुए। शिवजी ने विष्णु तथा मुझ से कहा—''मुझे तुमसे अधिक प्रिय कोई नहीं है। तुम्हारे कहने से ही मैंने गिरिजा से विवाह किया। अब तुम भी अपने लोक को लौट जाओ। तुम्हारे सब कार्य सम्पन्न होंगे। तारक दैत्य शीघ्र ही यमलोक में जायेगा।'' यह कहकर शिवजी हँस कर चुप हो गए। विष्णु जी तथा मैं भी हँसकर बड़ी प्रसन्नता से 'जय-जय श्रीशम्भु' कहते हुए, उनकी स्तुति करके वहाँ से चल दिये। सब बारात के चले जाने के पश्चात् शिव-गण उनकी सेवा करने लगे। शिवजी जगत् पिता तथा गिरिजा जगत् माता हैं। हम उनके श्रृंगार का किस प्रकार वर्णन करें? संसार में शिव के समान और कौन सहायक है। उन्होंने परब्रह्म होकर भी संसार का दुःख दूर करने को विवाह किया, जिससे उनकी वह लीला कह-सुनकर संसारी जीव मोक्ष प्राप्त करें।

शिव-गिरिजा के विवाह की यह कथा अत्यन्त मंगल प्रदान करने वाली है। जो इसको न सुने, वह पशु के समान है। इस संसार में शिवजी के यशगान के अतिरिक्त मुक्ति प्राप्त करने की कोई सरल युक्ति नहीं है। यद्यपि उनका यश अपार है ; परन्तु जितना सुना जा सके, भलाई के लिए उतना ही बहुत है। जो इस कथा को प्रेमपूर्वक सुनेगा तथा दूसरों को सुनावेगा, वह शिवजी के समान हो जायेगा तथा आनन्द प्राप्त करेगा। जो कम से कम भी इस कथा का पाठ करेगा, वह भी धन्य होगा। चारों वर्ण के जो लोग इस कथा का पाठ करेंगे, उनके सब रोग दूर होंगे। सब कष्टों से छुटकारा मिलेगा तथा अन्त में मुक्ति प्राप्त करेंगे।''

इति श्री शिवपुराणे श्री शिवविलासे तीर्थखण्डे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां शिवगिरिजाविवाहवर्णननाम तृतीयोखण्डस्समाप्त।। ३।।



ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

चौथा खण्ड

पहला अध्याय

इतनी कथा सुनकर शौनक जी बोले—"हे सूत जी ! नारद जी ने शिवजी के विवाह का वर्णन सुनकर ब्रह्मा जी से फिर क्या पूछा?" सूत जी ने कहा—"नारद जी ने ब्रह्मा जी से पूछा—"हे पिता ! मैं समस्त संसार में भ्रमण करता रहा, परन्तु शिवजी का तत्त्व भेद न जान सका। फिर विष्णु जी के कथनानुसार मैंने आपकी सेवा में पहुँचकर थोड़ा-सा शिवजी का चरित्र सुना तो मन को अच्छी तरह से धैर्य प्राप्त हुआ तथा इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि शिवजी का चरित्र संसार के लिए बहुत ही आनन्द एवं मंगलदायक है। इसीलिए अब मेरी इच्छा है कि आप मुझे यह बतायें कि जब शिवजी गिरिजा के साथ विवाह करके कैलाश पर्वत पर सुशोभित हुए, तब उन्होंने भक्तों को सुखदायक कौन-से चरित्र किये तथा हिमाचल से विदा होकर कौन-कौन से कार्य किये? आप मुझे तारक दैत्य का वध, कार्तवीर्य की उत्पत्ति तथा त्रिपुरासुर का प्रकट होना आदि सब कथा सुनाइये, क्योंकि तीनों लोकों में आप से अधिक कोई शैव नहीं है और न कोई शिवजी के चरित्र के विषय में जानने वाला है।" यह सुनकर ब्रह्मा जी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा शिवजी के प्रेमानन्द में विभोर हो गये। कुछ देर के पश्चात् ब्रह्मा जी ने कहा—"हे पुत्र ! मुझे विश्वास है कि तुम्हारे हृदय में शिवजी विराजमान हैं। तुम्हें अब शिवजी के अन्य चरित्रों को सुनाता हूँ।"

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जब सदाशिव गिरिजा को विवाह

कर लाये, तब देवताओं का मनोरथ समझ उन्होंने ताराकासुर के वध की इच्छा की। मैं, विष्णु तथा समस्त देवता वहाँ से विदा होकर अपने घरों को गये। हमने शिवजी की कृपा का भरोसा रखा, परन्तु कोई बात प्रकट न हुई। एक दिन समस्त देवता, मुनि आदि एक स्थान पर एकत्र होकर सम्मति करके कहने लगे कि बड़े आश्चर्य का विषय है कि इतना समय व्यतीत हो गया, परन्तु अभी तक हमारा कार्य सिद्ध नहीं हुआ। फिर उन सबने तेज अर्थात् अग्नि से कहा कि तुम चतुरता से शिवजी के पास जाकर देखो कि वे क्या कर रहे हैं? अग्नि देवता यह आदेश पाकर वहाँ से विदा हो, कपोत का स्वरूप धारण कर, शिवजी के निवास स्थान पर पहुँचे। फिर मैं तथा विष्णु जी सब देवताओं के साथ कैलाश पर्वत पर गये। जब हम लोगों ने शिवजी को वट वृक्ष के नीचे नहीं देखा तो गणों से पूछा कि सदाशिवजी महाराज कहाँ हैं? उस समय गणों ने यह उत्तर दिया कि वे तो बहुत समय से घर के भीतर गिरिजा जी के पास हैं, अभी तक बाहर नहीं आये। यह सुनकर विष्णु जी, मैं तथा देवता आदि सदाशिवजी के भवन के द्वार पर गये तथा उच्च स्वर से उन्हें पुकारा। हमारी पुकार सुनते ही शिवजी तुरन्त गिरिजा को छोड़कर बाहर आये। उस समय हमारे मन में शिवजी के प्रति अत्यन्त प्रेम उमड़ पड़ा तथा प्रसन्नता से हम सबके नेत्रों में अश्रु छलक गये। हमने कहा—"हे सदाशिव ! हम अब आपकी शरण में हैं। आशा है आप कृपा करके हमारे दुःख को दूर करेंगे। आपके कृपा-कटाक्ष से हमारा कार्य सुधरता है। हम आपकी महिमा कहाँ तक वर्णन करें? आपकी महिमा नारद, शारद, शेष तथा वेद कहकर थक जाते हैं। आप भक्ति एवं तप के अधीन दया के सागर तथा समस्त संसार के स्वामी हैं। उसका वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं। आप हमारी ओर दया दृष्टि क्यों नहीं करते? हम सब आपकी शरण में हैं। आप केवल हम भक्तों के उपकार के लिए सगुण स्वरूप धारण करते हैं।" मैं तथा विष्णु जी आदि इस प्रकार स्तुति करके शिवजी के आगे मस्तक झुकाकर खड़े हो गये।

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! देवताओं की स्तुति को सुनकर शिवजी ने प्रसन्नता एवं हर्ष से भरकर कहा—"हे देवताओ ! तुम लोग जिस कार्य के लिए आये हो, उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करो।" शिवजी के वचन सुनकर सब देवताओं ने हाथ जोड़कर विनती की—"हे कैलाशपति ! आप अपना सब विहार तथा आनन्द त्यागकर देवताओं का कार्य पूरा करिये।" शिवजी बोले—"हे देवताओ ! हमारा वीर्य जाता है, जिसमें शक्ति हो, वह इसे धारण कर ले।" यह सुनकर विष्णु ने अग्नि को संकेत किया तथा शिवजी ने विष्णु की इच्छा जानकर उसे पृथ्वी पर डाल दिया। देवताओं की आज्ञा से अग्नि ने तुरन्त उस वीर्य को धारण कर लिया। फिर अग्नि कपोत का शरीर धारण कर अपनी चोंच से उस वीर्य को निगलकर अपने घर की ओर उड़ गये।

हे नारद ! जब शिवजी बहुत देर तक न लौटे तो गिरिजा चिन्तित होकर बाहर आयीं, जहाँ देवता लोग शिवजी के पास खड़े थे। वहाँ जाकर उन्होंने इतना क्रोध प्रकट किया कि सब देवता अत्यन्त भयभीत हुए। गिरिजा ने क्रोधावेश में होंठ चबाते हुए कहा—"हे देवताओ ! तुम सब अपने स्वार्थ के साथी हो। तुमने अपने स्वार्थ के लिए मुझ को बाँझ कर दिया। तुमने शिवजी को अपने पास बैठा रखा। तुमने हमारे विहार में विघ्न उत्पन्न किया है, इसलिए तुम्हारी सब स्त्रियाँ बाँझ होंगी।" गिरिजा ने देवताओं को यह शाप देकर अग्नि से कहा—"हे भाग्यहीन वह्नि ! तुम इतने दुष्ट हो कि तुमने भक्ष्य-अभक्ष्य का कुछ विचार न किया। अब तुम सब चीज़ें खाया करोगे ; क्योंकि तुमने शिवजी का वीर्य खा लिया है।" जिस समय गिरिजा ने अग्नि को यह शाप दिया, उस समय देवता आदि बहुत दुःखी हुए। फिर शिव एवं पार्वती अन्तःपुर में चले गये। उसी समय समस्त देवता आदि ने गर्भ धारण किया। तब अपने उदर को गर्भ से पूरित देख वे बहुत ही लज्जित और दुःखी हुए। सब देवता मिलकर शिवजी की शरण में गये

तथा स्तुति करते हुए बोले—"हे देवाधिदेव ! आप हमारे ऊपर कृपा करें। अब आप हमको मुक्त करें।" इस प्रकार बहुत-सी स्तुति सुनकर शिवजी फिर प्रकट हुए, जिनको देखकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा पुनः स्तुति करके बोले—"हे गिरिजापति ! आप हमारी सहायता करें तथा हमारे दुःखों को दूर करें। हम आपके सेवक हैं। जब से हमने गर्भ धारण किया है तब से हम महादुःखी हैं। हे प्रभो ! लोक में हमारी निन्दा हो रही है।"

हे नारद ! देवताओं की बातें सुनकर शिवजी हँस पड़े तथा बोले—"विष्णु तथा सब देवताओ ! तुम तुरन्त वीर्य को मुख के मार्ग से बाहर निकाल दो, जिससे हमें प्रसन्नता प्राप्त हो।" यह सुनकर देवताओं ने तुरन्त शिवजी के आदेश का पालन कर, वीर्य निकाल दिया। उस वीर्य का वर्ण स्वर्णवत् हो गया। इस प्रकार देवताओं को उस दुःख से छुटकारा मिला, परन्तु शिव ने अनल को यह आज्ञा न दी ; इससे उसको बहुत दुःख हुआ। अन्त में वह भी बहुत दुःखी होकर शिवजी की स्तुति करने लगा और बोला—"हे देवताओं के देवता ! अब आपको मेरी सहायता करनी चाहिए। आप ही बताइये कि मैं आपके चरण छोड़कर कहाँ जाऊँ? अब आप मुझे ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरा यह दुःख दूर हो।" यह सुनकर शिवजी बोले—"हे अनल ! हमारे इस वीर्य को स्त्रियों को दे दो जिससे तुमको शान्ति मिले।" तब अग्नि ने धैर्य के साथ विनय की कि हे प्रभो ! आपके वीर्य के तेज को स्त्रियाँ कैसे धारण कर सकेंगी।"

हे नारद ! अग्नि के मुख से ऐसे वचन सुनकर, तुमने शिवजी की आज्ञा से उत्तर दिया—"हे वह्नि ! जो स्त्रियाँ माघ मास में अग्नि में तपती हों, उनके शरीर में तुम इस तेज को बाँट दो।" अग्नि यह सुनकर प्रसन्न हो प्रातःकाल उठ, नदी किनारे अग्नि जलाकर बैठ गये। उस समय अनेक स्त्रियाँ नदी में स्नान करने के लिए उस स्थान पर आयीं क्योंकि सर्दी ने उनको बहुत दुःख दिया था, इसलिए जलती हुई अग्नि देखकर उनकी इच्छा आग तापने की हुई परन्तु अरुन्धती ने इस रहस्य

को समझ कर स्त्रियों को आग तापने से मना किया। फिर भी अरुन्धती की बात को किसी ने न माना। वे सब आग के पास बैठकर तापने लगीं। तब वह वीर्य धीरे-धीरे निकलकर रोम के मार्ग से स्त्रियों के शरीर में प्रवेश करने लगा, जिससे अग्नि का बोझ हल्का हुआ। तब अग्नि अत्यन्त प्रसन्न होकर तेज़ को दूर हुआ देख़, प्रसन्न हुआ तथा वे स्त्रियाँ तुरन्त गर्भवती हुईं। तब वे दुःखी होकर अपने घर लौट आयीं। यह दशा देखकर ऋषीश्वरों ने उन पर इतना क्रोध किया कि वे सब पक्षियों की भाँति उड़ने लगीं। उन्होंने अपनी यह अवस्था देख, अत्यन्त दुःखी हो वीर्य को हिमगिरि के ऊपर छोड़ दिया। वहाँ उस वीर्य का तेज स्वर्ण के समान झलकने लगा। फिर उन्होंने उसे उठाकर गंगा नदी में डाल दिया। जैसे ही वह वीर्य नदी में पड़ा, वैसे ही नदी काँप कर, बहना छोड़, स्थिर हो गयी तथा शिवजी के वीर्य को न सहकर दुःखी हो, बड़े ज़ोर से नाद करने लगी। फिर गंगा ने उस वीर्य को अपनी लहरों के द्वारा किनारे पर फेंक दिया। उस स्थान पर सरपत के बोझ पड़े हुए थे। वह वीर्य वहीं जाकर रुक गया तथा एक बालक स्वरूप में प्रकट हुआ। उस समय आकाश से जय-जय का घोष हुआ। उस लड़के का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर था। मुख, नाक एवं हाथ बहुत ही सुडौल तथा वर्ण जलती हुई अग्नि के समान था। नख परम सुन्दर थे, चरण ऐसे थे जिनको देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाएं। उसी समय गिरिजा के दोनों स्तनों से दुग्ध की धारा बहने लगी, जिसको देख शिव तथा गिरिजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तब गिरिजा ने शिवजी से पूछा—"हे नाथ ! हमारे स्तनों से दूध क्यों निकला है?" उस समय शिवजी ने मुस्कुराकर कोई उत्तर न दिया।"

ॐ ॐ ॐ

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! उस समय समस्त देवता, सिद्ध मुनि एवं गण आदि एकत्र होकर, बड़ा आनन्द मनाते हुए तथा पुष्पों की

वृष्टि करते हुए कैलाश पर पहुँचे। गंधर्वों ने प्रसन्न होकर आनन्द के बाजे बजाये। इसी प्रकार बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाया गया। तीनों लोकों में सबको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उसी समय गाधिपुत्र विश्वामित्र जो प्रसिद्ध ब्राह्मण हैं, तुरन्त वहाँ आ उपस्थित हुए। उन्होंने उस लड़के की स्तुति कर, आदर किया। तब वह बालक विश्वामित्र की बनायी हुई स्तुति सुनकर प्रसन्न होकर कहने लगा—''हे मुने ! तुम हमारा संस्कार करो। तुम्हीं आज से हमारे पुरोहित हुए। तुम तीनों लोकों में सम्मान के योग्य होगे।'' यह सुनकर विश्वामित्र ने कुछ सोचकर विनयपूर्वक कहा—''मैं ब्राह्मण के घर उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, जो आपका संस्कार करूँ। मैं तो गाधि नामक क्षत्रिय से उत्पन्न हूँ तथा मेरा नाम विश्वामित्र है। संस्कार आदि कार्य करना ब्राह्मण का धर्म है, इनके अतिरिक्त यदि अन्य कोई करावे तो वह दुःख पाता है। अस्तु, अब आप अपने विषय में बताइए कि आप इस प्रकार बालक रूप धारण किए हुए कौन हैं? आपके माता-पिता कौन हैं? वे दोनों आपको इस प्रकार अकेला छोड़कर कहाँ चले गये? मैं आपको यहाँ अकेला देख रहा हूँ। आपका तेज अद्भुत है। आप ब्रह्मचारी हैं या गृहस्थ हैं अथवा तीनों देवताओं में से कोई हैं? आप ब्रह्म हैं, जो बालरूप से प्रकट हुए हैं? मैंने आज तक ऐसा बालक नहीं देखा। आप तो उत्पन्न होते ही बातें करके आनन्द प्रदान करते हैं तथा अपने संस्कार के लिए मुझे आज्ञा देते हैं। कृपा करके मुझे सब कुछ स्पष्ट बतला दीजिए।''

हे नारद ! विश्वामित्र के ऐसे वचन सुनकर उस बालक ने हँसते हुए कहा—''हे विश्वामित्र ! हम गिरिजा एवं शिव के पुत्र हैं तथा दैत्यों को मारकर तीनों लोकों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं।'' यह कहकर उस बालक ने अपना प्रताप विस्तारपूर्वक कह सुनाया और कहा—''हे ऋषि ! तुम ब्रह्मर्षि होकर सब ब्राह्मणों से प्रतिष्ठा प्राप्त करोगे ; यहाँ तक कि ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ भी तुमको ब्रह्मर्षि कहेंगे। यह हमारा वर है। अब तुम शिव और गिरिजा की लीला को अपार

समझकर हमारे संस्कार के विषय में विचार एवं विलम्ब न करो।'' यह सुनकर विश्वामित्र ने तुरन्त आज्ञा मानकर संस्कार किया। तब शिवजी के पुत्र ने विश्वामित्र को वर दिया और अपना पुरोहित बनाया। उसी समय अग्नि ने भी वहाँ पहुँचकर तथा शिवजी के पुत्र को देखकर आनन्द प्राप्त किया। फिर उस बालक को प्रणाम किया। विश्वामित्र ने जो बातें पूछीं, उनका ठीक-ठाक उत्तर उस बालक ने दिया। फिर उसने अपनी सब कथा अग्नि से कही। अग्नि तथा विश्वामित्र उस लड़के में पूर्ण बल एवं प्रताप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त अग्नि ने उसे गोद में उठा, छाती से लगा दिया और उसका मुख चूमा। फिर अत्यन्त प्रेम के साथ उस लड़के को अपना पुत्र माना तथा अपने बहुत-से शस्त्र उसे दिए।

हे नारद ! शिवजी के पुत्र ने दोनों को वहाँ से विदा किया तथा स्वयं अग्नि की दी शक्ति हाथ में ले श्वेतगिरि पर चढ़कर अत्यन्त भयानक शब्द से नाद किया। उस शब्द को सुनकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे प्रलय हुआ चाहता हो। फिर उसने देवताओं के मनोरथ पूर्ण करने के लिए अपनी शक्ति पर्वत के शिखर पर मारी जिससे तीनों लोकों में हाहाकार मच गया और पर्वत फटकर गिर पड़ा। उस समय महाबलवान् दस परम् राक्षस कालवश हुए, जो पहले वहाँ रहते थे तथा उन्हें मारने को दौड़े थे। फिर देवता और मुनि चिन्तित होकर कहने लगे कि यह क्या हुआ, परन्तु किसी की समझ में कुछ न आया। तब इन्द्रादि देवता उसे देखने के लिए चले। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि वही लड़का पर्वत पर खड़ा है। उस समय उस पर्वत ने अपना रूप मनुष्यों के समान बनाकर इन्द्र से भेंट की तथा हाथ जोड़कर यह कहा—''हे इन्द्र ! आप तीनों लोकों के देवता हैं। इस समय मुझको महान् दुःख प्राप्त हुआ है। इस बालक ने मुझको शक्ति से मारकर ऐसा भयानक शब्द किया है कि सब जीवों को दुःख पहुँचा, धरती काँप उठी तथा सब पर्वत, वन, नदी भी काँप उठे हैं। असंख्य जीव मर गये, यह सब इसी बालक ने किया है, जो सामने खड़ा है। नहीं मालूम कि यह कौन है

तथा किसका पुत्र है? इसने व्यर्थ ही मुझे इतना दुःख दिया है। हे इन्द्र ! आप शीघ्र ही इसका वध कर डालें नहीं तो यह प्रलय ही कर डालेगा।'' इन्द्र ने यह सुनकर उस लड़के पर बहुत क्रोध किया तथा कुछ भेद न समझकर उस बालक को मार डालने की इच्छा की। परन्तु शिवजी की लीला अपार है। इन्द्र ने आक्रमण कर अपना वज्र उस लड़के की दाहिनी कोख में मारा जिससे उस स्थान से एक मनुष्य उत्पन्न हुआ, जो बल एवं पराक्रम में उसी के बराबर था। उसका नाम शारव रखा। शारव ने उत्पन्न होते ही बड़ा भयानक शब्द किया। तब इन्द्र ने यह देख क्रोधित होकर, उसकी बायीं कोख में फिर अपना वज्र मार दिया। उससे एक दूसरा मनुष्य उत्पन्न हुआ, उसे भी शारव कहते हैं। दूसरा शारव भी उत्पन्न होकर घोर नाद करने लगा। इन्द्र ने क्रोधित होकर अपना वज्र फिर मारा, परन्तु उसका कोई फल न निकला तथा एक व्यक्ति और प्रकट होकर खड़ा हो गया, उसे नैगमेय कहते हैं। वे तीनों पहले बालक के सहायक हो गये। वे चारों प्रलय की अग्नि के समान प्रकट हुए। तब उस बालक ने अपने तीनों गणों सहित इन्द्र के ऊपर आक्रमण कर दिया।

हे नारद ! इस प्रकार उनके आक्रमण से, रुद्र का प्रलय करने वाला तेज उनमें देखकर इन्द्र निर्बल होकर काँप उठे तथा हाथ जोड़कर उनकी शरण में आये। इन्द्र ने अपने सब शस्त्र फेंककर दंडवत् की। इन्द्र के साथ जो सेना थी, उसने भी उनका आदर सम्मान किया। तब उस बालक ने इन्द्र की यह दशा देखकर इन्द्र को ढाढ़स बँधाया तथा निर्भय किया। तब सब देवताओं सहित इन्द्र ने हाथ जोड़कर उसकी स्तुति की—''आप बालक नहीं, बालक के रूप में ब्रह्म हैं। हमने आपके प्रताप को नहीं पहचाना, इसी कारण अहंकार से हमारी यह दशा हुई। कृपा करके हमारे सब अपराध क्षमा कर दीजिये और हमको अपनी शरण में ले लीजिये। आपने किसी भक्त पर प्रसन्न होकर ही अवतार लिया है। आप सच-सच बताएं कि आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं तथा कहाँ उत्पन्न हुए हैं?'' इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर

बालक ने कहा—"हे इन्द्र ! अब तुम शीघ्रतापूर्वक यहाँ से जाओ और प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्यकार्य करो।" यह कहकर उसने इन्द्र को वहाँ से विदा किया तथा कुछ भी भेद न बताया। इस प्रकार वहाँ से विदा होकर, इन्द्र अपने राज्य में जा पहुँचे।"

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! वही स्त्रियाँ, जिनके विषय में हम पहले बता चुके हैं उसी समय स्नान करने के लिए उस नदी के किनारे पर जा पहुँचीं। वे उस बालक को देख, निकट जा पहुँचीं तथा बालक को अत्यन्त सुन्दर पाकर प्रत्येक स्त्री का मन उसको लेने के लिए चाहने लगा। तब सब ने उसे उठा लेने की इच्छा की और बोलीं कि यह बालक मेरा है, मैं इसे लूँगी, यह मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है। यों कहती कुई सब परस्पर झगड़ने लगीं। तब बालक ने सब के स्तनों से दूध पीकर उनके झगड़े को दूर किया। इस प्रकार वे सब माता के समान हो गयीं। पार्वती नन्दन, सैनानी, पावकभू स्कन्द, गंगासुत, सरजन्मा, षणमुख, आदि बालक के नाम पड़े। इसके पश्चात् उन स्त्रियों ने बालक को अपने घर ले जाकर बड़ा उत्सव किया। बालक के जन्म का महीना कार्तिक तथा षष्ठी तिथि थी। इस प्रकार शुभ लग्न एवं शुभ मुहूर्त्त में उसने जन्म लिया था।

हे नारद ! एक दिन ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि सब देवता इन्द्र की सभा में विराजमान् थे। तुमने उचित समय जानकर शिवजी का ध्यान करने के पश्चात् स्कन्द के जन्म का वृत्तान्त वर्णन किया। उसे सुनकर देवता बोले—"ज्ञात होता है कि शिवजी ने हम पर कृपा करके अपने लड़के को उत्पन्न किया है। अब हमारे सब कार्य पूरे हो गये।" इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि स्कन्द अपने साथियों के साथ खेलते-खेलते उस स्थान पर आ पहुँचे। मुनियों और देवताओं ने ऐसे तेजस्वी बालक को देखकर पूछा—"यह कौन है तथा किसका लड़का है?"

फिर सबने यही कहा—"इसको बुलाकर पूछना चाहिए, क्योंकि इस सुन्दर स्वरूप को देखकर नेत्र नहीं थकते।" तब उन्होंने उसी समय लड़के को बुलाकर पूछा कि तुम कौन हो? स्कन्द ने उत्तर दिया—"हम लड़के के रूप में शिवजी हैं। वही शिवजी, जिनका तुम सदैव ध्यान धरते हो तथा जो लोक के हित चाहने वाले हैं। हमको लोक गुरु कहते हैं।" यह सुनकर विष्णु जी ने कुछ सोचकर कहा—"यदि तुम शिवजी हो तो हमको विश्वास दिलाने के लिए अपना स्वरूप दिखलाओ।" स्कन्द ने यह सुनकर अपने भयानक शरीर में विराट् रूप प्रस्तुत किया, जिसमें करोड़ों ब्रह्माण्ड, इन्द्र, उपेन्द्र आदि वर्तमान थे। उस समय समस्त सभा उसके रोम-रोम में ब्रह्माण्ड देखकर काँप उठी। विष्णु जी तथा मैंने घबराकर 'शरण-शरण' पुकारी तथा कहा—"वास्तव में आप शिवजी के रूप हैं, अब आप अपना वही रूप धारण कर लीजिये।" यह सुनकर स्कन्द ने तुरन्त अपना पहले वाला रूप धारण कर लिया।

हे नारद ! विष्णु जी ने हाथ जोड़कर स्कन्द की स्तुति की और बोले—"हे षणमुख ! हे शिव-गिरिजा के पुत्र ! अब तुम हम पर कृपा करो। तुम तो अनादि, निर्गुण तथा सगुण स्वरूप हो। इस समय तुमने स्कन्द अवतार धारण किया है।" इस प्रकार विष्णु जी ने स्तुति की, इसके उपरान्त विष्णु जी तथा मैं स्कन्द को विमान पर चढ़ाकर, देवताओं सहित शिवजी के मन्दिर की ओर चले। उस समय प्रत्येक के मुख से जय-जयकार का शब्द निकल रहा था। सब लोग आनन्द मनाते हुए कैलाश में जा पहुँचे। हमने स्कन्द को शिवजी के पास ले जाकर खड़ा किया। उसे देखकर शिवजी एवं गिरिजा को अपार आनन्द प्राप्त हुआ। गिरिजा के स्तनों से दूध निकल पड़ा तथा वही दशा हो गयी, जैसी कि पुत्र की उत्पत्ति के समय होती है। तब शिवजी ने पूछा कि यह किसका पुत्र है। तब हे नारद ! तुमने यह समझकर कि शिवजी यह चरित्र लीला के निमित्त करते हैं, उत्तर देकर, आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर शिवजी ने बड़े लाड़-

प्यार से लड़के को लिया तथा गिरिजा ने गोद में लेकर दुग्ध पान कराया। इस प्रकार शिवजी तथा गिरिजा दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए। हम सबने शिवजी एवं गिरिजा की पूजा की। सर्वप्रथम विष्णु जी ने स्कन्द का नीराजन किया, फिर लक्ष्मी तथा फिर मैंने अपनी पत्नी सहित किया। इसके पश्चात् इन्द्र ने इन्द्रानी सहित किया। इस प्रकार समस्त देवता बराबर स्कन्द का नीराजन करते गये। उस समय बड़ा उत्सव हुआ। मुनीश्वर अपना मनोरथ पूर्ण होते देख जय-जयकार करने लगे। स्कन्द शिवजी की गोद में खेलने लगे। वे वासुकि नाग का गला अपने दोनों हाथों से जोर से पकड़, उसके साथ खेलते थे और वासुकि नाग स्कन्द के चरणों पर लोटता था। शिवजी ने स्कन्द जी का यह चरित्र तथा क्रीड़ा देखकर, हँसकर गिरिजा की ओर देखा। यह देख गिरिजा भी हँसने लगीं।''

ॐ ॐ ॐ

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! सब देवता विनती करते हुए शिवजी से बोले—''हे सबके स्वामी, सबके दुःख दूर करने वाले ! देवताओं के लिए तो आपकी केवल कृपा-कटाक्ष ही बहुत है। हम आपकी शरण में आये हैं, आप हम पर दया कीजिये और हमको अपना सेवक जानकर कृपा की दृष्टि रखिये। आपका ध्यान विष्णु, ब्रह्मा तथा सनकादिक भी करते हैं ; परन्तु वे आपको प्राप्त नहीं कर पाते। हमारा यह सौभाग्य है कि हम इस कैलाश पर्वत पर आपके प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। इस समय आपने जो शिशु के समान अपना रूप बनाया है, हम सबको उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती है। आपकी गति आपके सिवाय और कोई नहीं जानता।'' देवताओं ने इसी प्रकार अत्यन्त नम्रता से उनकी बहुत स्तुति की। फिर विष्णु जी ने विनय करते हुए कहा—''हे शिवजी ! हमें आनन्द पहुँचाने एवं तारक दैत्य का वध करने के लिए अब आप स्कन्द को आज्ञा दीजिये, क्योंकि ये इसी निमित्त अवतरित हुए हैं।''

हे नारद ! विष्णु के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने हँसकर कहा— "हे विष्णु ! हमने तो इसी निमित्त गिरिजा से विवाह किया था। अब तुम जाकर अपना-अपना काम करो।" इसके पश्चात् शिवजी एवं गिरिजा ने स्कन्द को अच्छी तरह से प्यार किया तथा अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर देवताओं ने स्कन्द के लिए शिव की आज्ञा लेकर, कैलाश पर्वत के निकट त्वष्टापुर में एक बहुत ही उत्तम मन्दिर की स्थापना की। वह मन्दिर इतना सुन्दर था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस मन्दिर में प्रत्येक स्थान को अच्छी-अच्छी सामग्रियों से सज्जित किया गया था। इस प्रकार के मन्दिर के पूरी तरह तैयार हो जाने पर विष्णु जी ने मुझ समेत सब मुनियों को बुलाकर उस मन्दिर में स्कन्द का अभिषेक किया तथा सिंहासन पर बैठाया। विष्णु तथा हम सबों ने स्कन्द को विश्व एवं अपना स्वामी मानकर राजतिलक किया और अनेक उपहारें दीं। उनकी अच्छी प्रकार से सेवा कर, अनेक प्रकार के शस्त्र भी भेंट किये। उसी समय शिव एवं गिरिजा भी वहाँ उपस्थित हुए। वे देवताओं की ऐसी सभा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होंने अपनी समस्त सेना स्कन्द को दे दी। गिरिजा ने सब वस्त्रों पर पहनने का एक ऐसा कवच दिया, जो युद्ध में शत्रुओं के सब प्रकार के प्रहारों से रक्षा करे। विष्णु ने स्कन्द को वैजयन्ती माला देकर एक पुष्पहार अपने हाथ से बनाकर उनके कण्ठ में डाला। वरुण ने एक बकरा भेंट दिया। उस समय चारों ओर आनन्द ही आनन्द दिखाई देता था। मैं, विष्णु तथा सब देवता प्रसन्न होकर स्कन्द की स्तुति करने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! ऐसे समय में एक नारद नाम के ब्राह्मण का, जो अजामेध करता था, यज्ञ में बलि देने के लिए एक बकरे की आवश्यकता हुई। तब स्कन्द का बकरा जो वरुण ने भेंट

किया था, वह स्कन्द की इच्छा जानकर नारद ब्राह्मण की ओर भाग गया। नारद ने उस बकरे को यज्ञ के लिए सब प्रकार योग्य जानकर पकड़ लिया तथा यज्ञ की अन्य सब सामग्री एकत्र की। संयोगवश नारद किसी कार्य से किसी दूसरे गाँव में गया। तब बकरा ब्राह्मण के जाने के पश्चात् मंच उखाड़कर, अपने घर भाग गया। फिर वह सातों द्वीप तथा पृथ्वी को जीतकर, पृथ्वी के नीचे चला और शेष लोक के पश्चात् उसने पाताल लोक को भी जीत लिया। इसके पश्चात् वह फिर ऊपर के लोक को चला। प्रथम वह गले में रस्सी बाँधे हुए स्वर्ग लोक को गया, फिर आकाश पर भी उसने विजय प्राप्त की। फिर सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड पर विजय प्राप्त कर वह विष्णुपुरी में जा पहुँचा। जब नारद ब्राह्मण उस गाँव से घर लौटा तो उसने देखा कि वहाँ बकरा नहीं है केवल रस्सी ही बँधी हुई है। उस समय आश्चर्यचकित होकर उसने सब से पूछा तब सब ने यह उत्तर दिया कि हमने उसे जाते हुए नहीं देखा, न जाने वह बकरा था या क्या था ; क्योंकि उसके शरीर में तेज दिखाई पड़ता था, मानो वह अग्नि का रूप हो। नारद ब्राह्मण बकरे के इस प्रकार चले जाने से अत्यन्त चिन्तित हुआ। फिर उसने विद्वान् पंडितों को बुलाकर आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा पूछा कि आप लोगों की क्या राय है? मेरा तो सब परिश्रम व्यर्थ हो गया। अब मैं क्या करूँ? स्कन्द का यह चरित्र जानकर सब ब्राह्मण कहने लगे—''ब्राह्मण ! तारक दैत्य के वध के लिए स्कन्द ने अवतार लिया है और उनको देवताओं ने अपने-अपने शस्त्र दिये हैं। अस्तु, अब यही उचित है कि तुम उन्हीं के पास जाकर अपना सब वृत्तान्त कहो।''

हे नारद ! विद्वान ब्राह्मणों के ऐसे वचन सुनकर नारद ब्राह्मण वहाँ से चल कर स्कन्द के द्वार पर पहुँचा तथा द्वारपालों से कहा कि तुम स्कन्द से कहो कि नारद नामक एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है। द्वारपाल ने पूछा—''तुम्हारा क्या मनोरथ है?'' तब नारद ने द्वारपाल को सब वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर द्वारपाल स्कन्द के पास जा पहुँचा और

विनती की कि हे स्वामी ! द्वार पर नारद नामक एक ब्राह्मण हठ से आपके दर्शनों के निमित्त खड़ा हुआ है। तब स्कन्द ने हँसकर उत्तर दिया—"नारद हमारा परम भक्त है, तुम उसे तुरन्त भीतर ले आओ।" अस्तु, नारद ने भीतर जाकर स्कन्द को प्रणाम किया, वेद के अनुसार स्तुति की तथा यह विनय की कि जो बकरा मैं यज्ञ के लिए लाया था, वह वहाँ से भाग गया है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आपके राज्य में रहकर इस प्रकार यज्ञ अधूरा रह जाएगा। अस्तु, आप मेरे इस दुःख का निवारण कीजिये। हे नारद ! ब्राह्मण के यह वचन सुनकर स्कन्द ने अपने गण वीरबाहु को बुलाया तथा कहा कि तुम तुरन्त नारद के बकरे को ढूँढ़ कर दो। जहाँ कहीं भी तुमको वह बकरा मिले, उसे पकड़कर तुरन्त यहाँ ले आओ। स्कन्द की आज्ञा पाकर वीरबाहु अपनी सेना सहित बकरे की खोज में, उसी समय वहाँ से चला। उसने उस बकरे को तीनों भुवनों तथा नीचे के लोकों में ढूँढ़ने के पश्चात् विष्णु लोक में उत्पात मचाते हुए देखा। वीरबाहु उसके सींगों को पकड़कर घसीट लाया तथा स्कन्द को सौंप दिया। स्कन्द उस बकरे को देखकर हँसे और उस पर आरूढ़ हुए फिर उन्होंने अपने वाहन के बल को दिखलाने के लिए उसको इतना बल दिया कि वह मन के समान गति से अनायास तीनों भुवनों में घुमा तथा एक मुहूर्त्त भर में तीनों लोकों में घूमकर लौट आया। जब स्कन्द लौटकर घर पहुँचे तो प्रसन्न होकर, उससे उतर कर भीतर गये। तब नारद ब्राह्मण ने स्कन्द से कहा—"हे महाराज ! अब मेरे यज्ञ का समय आ गया है, सो आप बकरे को दे दीजिये।"

हे नारद ! ब्राह्मण नारद के इस प्रकार के वचन सुनकर स्कन्द ने कहा—"हे ब्राह्मण ! यह बकरा बलि के योग्य नहीं है, क्योंकि यह हमारा वाहन है। तुम जो फल यज्ञ करके प्राप्त करना चाहते हो, हम वह तुमको बिना यज्ञ के ही देते हैं।" नारद ब्राह्मण यह सुन, हाथ जोड़कर स्तुति करने लगा तथा स्कन्द जी का यशो गान करता हुआ अपने घर लौट गया। तब देवताओं तथा मुनियों आदि ने स्कन्द की

स्तुति करने के पश्चात् निवेदन किया—"स्वामी ! हमारे ऊपर जो अनेक कष्ट हैं, आप उनको दूर कीजिये।" स्कन्द ने हँसकर उत्तर दिया—"हे देवताओ ! तुमको जिसने इतना दुःख पहुँचाया है, हम अपने गणों सहित जाकर उसका वध करेंगे तथा एक निमेष में ही दैत्यों की सेना नष्ट कर डालेंगे। तुमने शिवजी की जो सेवा की है, उसका फल हम तुम्हें अवश्य देंगे। अब तक जो कुछ भी हुआ है, उसे तुम शिवजी की लीला ही समझो। शिवजी अपने भक्तों को सदैव आनन्द प्रदान करते हैं, परन्तु दुष्टों के लिए वे बहुत भयानक हैं।" इस प्रकार स्कन्द के मुख से शिवजी की लीला का वर्णन सुनकर देवता लोग अत्यन्त प्रसन्न हो, जय-जयकार करने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! स्कन्द के मुख से यह वचन सुनकर विष्णु जी ने देवताओं सहित कहा—"हे स्कन्द ! आप शिवजी के पुत्र अर्थात् शिवजी हैं। आप असुर रूपी वन के लिए दावाग्नि के समान हैं।" इसी प्रकार सबने स्तुति की। उस समय गिरिजा, गंगा, बलि तथा मुनि-पत्नियाँ आदि स्कन्द की माताएँ अपने पुत्र की इतनी शक्ति देखकर परस्पर लड़ने लगीं और वे सब उनको अपना-अपना पुत्र कहने लगीं। हे नारद ! तब तुमने उन सबको जाकर समझाया। तुम्हीं ने शिवजी की इच्छानुसार स्कन्द के जन्म का ठीक-ठीक वर्णन किया तथा कहा कि ये शिवजी एवं गिरिजा के ही पुत्र हैं। इन्होंने देवताओं के मनोरथ पूर्ण करने के लिए ही अवतार लिया है। यह सुनकर गिरिजा के सिवाय सब अत्यन्त दुःखी हुईं। तब स्कन्द ने प्रसन्न होकर गंगा से कहा—"हे माता ! तुम तो संसार की माता हो तथा शिवजी की पत्नी हो। अस्तु, मैं तुम्हारा पुत्र सदैव कहलाऊँगा।" उसी प्रकार स्कन्द ने सबको समझा दिया। तत्पश्चात् स्कन्द ने विष्णु जी तथा ब्रह्मा जी से कहा—"हम दैत्यों का क्षण भर में नाश कर देंगे, आप लोग किसी

प्रकार की चिन्ता मत करें। आप सब लोग तत्पर होकर शिवजी की सेवा करो। जो भी कार्य या उत्सव करें, उसमें प्रसन्न होकर शिवजी का जय-जयकार करते रहें।'' यह आज्ञा पाकर समस्त देवता आदि एक साथ शिवजी का जय-जयकार करने लगे।

हे नारद ! इसके पश्चात् समस्त देवता आदि सेना सहित सज्जित होकर स्कन्द के साथ चले। शिवजी, गिरिजा एवं गणों के साथ कैलाश को चले गये। उस समय तारक ने यह सुनकर तथा देवताओं के सब उपाय का परिणाम जान कर, बड़े क्रोध से देवताओं पर आक्रमण किया तथा उनका सामना करने के लिए चतुरंगिणी सेना सजाकर, करोड़ों सैनिकों को अपने साथ लेकर चला। उस समय युद्ध के बाजे बजने लगे। हे नारद ! उस समय तुमने तारक के पास जाकर यह कहा—''हे असुरराज ! अब तुम्हारे लिए बड़ी विपत्ति आ पहुँची है, क्योंकि देवता आदि ने शिवजी की सेवा एवं भक्ति करके तुम्हें मार डालने का उपाय किया है।'' तुमने तारक को सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया कि शिवजी को कल्पवृक्ष के समान समझो। वे सबको समान दृष्टि से देखते हैं तथा भक्ति एवं सेवा के आधीन रहते हैं। इसलिए, अब तुमको यही उचित है कि तुम भी कोई उपाय करो, तदुपरान्त देवताओं के साथ युद्ध करो। यदि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो तो हमारा कहना मानो। यदि तुम हमारी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारा इसी समय अवश्य ही नाश हो जाएगा। हे नारद ! मृत्यु के वशीभूत होकर तारकासुर ने तुम्हारी इन बातों पर कोई ध्यान न दिया तथा हँसकर बोला—''हे नारद ! तुम विष्णु जी के पास जाकर कह दो कि तुम जिस प्रकार भी वीरतापूर्वक युद्ध कर सकते हो, करो, उसमें किसी प्रकार की कोई कमी न करना। तुम इस दूध पीते बच्चे को अपना अगुआ बनाकर लड़ाई करना चाहते हो, इससे मालूम होता है कि तुम इस युक्ति द्वारा अपनी मृत्यु चाहते हो। हमने तुम्हारी वीरता कई बार देखी है। तुम दूसरों पर भरोसा करते हो, परन्तु दूसरे के बल से विजय नहीं मिलती। एक मुचुकुन्द के बल से भी तुमने चाहा था कि

हम पर प्रबल हो सको, सो हमने उसकी भी वीरता देख ली और सब देवताओं को उसके साथ ही बन्दी बना लिया। अब तुम इस छोटे से लड़के को साथ लेकर हमसे युद्ध करना चाहते हो, सो मैं तुम को दिक्पति सहित मारकर त्रिभुवन पर निष्कंटक राज्य करूँगा।''

हे नारद ! तारकासुर के ऐसे गर्वपूर्ण वाक्य सुनकर तुमने क्रोधित होकर उत्तर दिया—''हे तारक ! अहंकार सदैव दुःखदायी होता है। तुमने जिस मुचुकुन्द का वर्णन किया, वह शिवजी का परम भक्त है। शिवजी उसके सहायक हैं। जिसके ऊपर शिवजी कृपा करते हैं, वह देवताओं, मुनीश्वरों तथा मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली होता है। तुम जिसको दूध-पीता बालक समझते हो, वह तो प्रलयकारी शिव का ही स्वरूप है।'' तब तारक ने क्रोधित होकर तुमसे फिर कहा—''हे नारद ! तुम वीरों के बल के विषय में क्या जानते हो?'' तुम तारक के मुख से यह वचन सुनकर तुरन्त ही उसकी सभा से उठकर मेरे यहाँ चले आये तथा विष्णु जी और मुझसे यह सब बातें कहीं। तुमने यह भी कहा कि यह बालक तारकासुर पर अवश्य विजय प्राप्त करेगा तथा मेरा यह वचन सत्य है कि शिवजी का यह लड़का तीनों लोकों में निर्भय है। हे नारद ! तुम्हारे इस वचन को सुनकर हम सब अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा युद्ध की इच्छा से शिवजी का ध्यान कर उठ खड़े हुए। स्कन्द को सेनापति बनाकर इन्द्र के हाथी पर चढ़ाया तथा सब लोकपाल एकत्र हो गये। रणभेरी, दुन्दुभी, मृदंग, वीणा, बीन आदि युद्ध के बाजे बजने लगे तथा नृत्य-गायन होने लगा। स्कन्द इन्द्र को हाथी सौंपकर, स्वयं विमान पर सवार हुए। तब चारों ओर से शिवजी के पुत्र का जय-जयकार हुआ। वरुण, इन्द्र, अनल, यमराज, कुबेर, ईशान आदि आठों दिक्पति अपनी सेना सहित युद्ध के लिए तत्पर हो गये। विष्णु जी ने शिवजी का ध्यान कर आनन्द प्राप्त किया। उनकी सेना का वर्णन करना कठिन है, क्योंकि वे त्रिभुवन के स्वामी हैं। इसके पश्चात् पूरी सेना त्रिभुवनपति को सबसे आगे करके चली तथा स्कन्द पर्वत से नीचे उतरकर, अन्तवेद में स्थित हुई। फिर, उसके मध्य

भाग को जो 'हरविनया' के नाम से प्रसिद्ध हैं, युद्ध स्थल निश्चित कर तारकासुर को युद्ध का सन्देश भेजा गया।

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! तारकासुर भी एक अच्छे विमान में छत्र-चँवर के साथ आरूढ़ होकर अपनी विशाल सेना सहित रणभूमि में आ पहुँचा। इस प्रकार दोनों सेनाएँ अन्तवेद में आ पहुँचीं। दोनों ओर से गढ़ी बनायी गयी। पहली पंक्ति हाथियों की, दूसरी घोड़ों की, तीसरी रथों की तथा चौथी प्यादों की—इस प्रकार क्रम से सेना सजायी गयी। दोनों ओर के वीर साँग, शूल, परशु, पाश, कृपाण, भिण्डपाल, तोमर, मुग्दर, चक्र, भुशुण्डी, नारा आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध स्थल में अपनी वीरता दिखलाने के लिए आ पहुँचे। तभी दोनों ओर वीरों के बड़े वेग से युद्ध-रचना की। फिर देवता तथा दैत्यों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों ओर की चतुरंगिणी सेना नष्ट हुई। यहाँ तक कि थोड़ी ही देर में ही यह युद्ध स्थल सैनिकों के मृत-शरीरों से भरकर भयानक हो गया। अनेक वीर पृथ्वी पर गिरकर 'मार-मार' शब्द क उच्चारण करते थे। कोई तलवार से घायल, कोई मुग्दर तथा कोई गदा से मूर्च्छित था। रक्त की नदी बह चली। भूत, प्रेत, पिशाच आदि ने रक्त पीकर तृप्ति प्राप्त की। वैतालों ने आकर हाथियों के सिर उछाले। इसी प्रकार धीरे-धीरे देवता एवं दैत्य मरे ; परन्तु कुछ समय के पश्चात् युद्ध भूमि प्रलय के समान दिखाई देने लगी। तारक स्वयं इन्द्र से युद्ध करने लगा। अग्नि संह्लद परस्पर युद्ध करने लगे। यमराज के साथ जुम्भ ने युद्ध किया, निर्ऋति के साथ सम्बल, तथा पवन के साथ पवमान, धनपति के साथ बृहतसेन, उशना के साथ धननाद, सूर्य के साथ सुनाई तथा चन्द्रमा के साथ सुलग द्वन्द्व युद्ध करने लगे। इन सब ने घोर युद्ध किया। दोनों दल अपनी-अपनी विजय की इच्छा करते थे; परन्तु कोई भी परास्त न हुआ। उस समय युद्ध स्थल अग्नि से

जले हुए वृक्षों के समान भयानक दिखाई देता था।

हे नारद ! युद्ध भूमि का ऐसा दृश्य देखकर तारकासुर ने बड़े वेग से इन्द्र के ऊपर आक्रमण किया तथा उनके हृदय में साँग मारी। साँग के आघात से इन्द्र हाथी से धरती पर गिर पड़े। इसी प्रकार दिक्पति भी दैत्यों से पराजित होकर भाग चले। कोई भी युद्ध में दैत्यों के सम्मुख खड़ा न रह सका। इस प्रकार देवताओं की पराजय देखकर मुचुकुन्द ने सोचा कि अब मुझे देवताओं की सहायता करनी चाहिए। मैं शिवजी का उपासक हूँ और वह मेरे सहायक हैं। यह सोचकर मुचकुन्द तारक दैत्य के सम्मुख आया। फिर बड़ी देर तक वे युद्ध करते रहे, परन्तु दोनों में से कोई किसी को परास्त न कर सका। अन्त में कोई उपाय न देख मुचुकुन्द ने तलवार हाथ में लेकर तारक दैत्य के हृदय पर प्रहार किया। यह देख तारक ने हँसकर कहा—"हे मुचुकुन्द ! तुम मनुष्य हो, मुझे तुम्हारे साथ युद्ध करने में लज्जा आती है। मुझे बड़ा खेद है कि तुमने मेरे ऊपर जिस शस्त्र का प्रहार किया, उसका मुझ पर कोई प्रभाव न पड़ा।" तब मुचुकुन्द ने उत्तर दिया—"हे असुरराज ! मैं अब शिवजी की कृपा से तुझको जीवित नहीं छोड़ूँगा। ऐसा कौन सा दैत्य है जो मेरे सम्मुख खड़ा होकर मेरे प्रहार को सह सके?" यह कहकर मुचुकुन्द ने तारक के ऊपर एक और असि मारी। अभी वह असि तारक के लगी तक न थी कि उसने तुरन्त साँग मारकर मुचुकुन्द को घायल कर पृथ्वी पर गिरा दिया। यह देख मुचुकुन्द ने पृथ्वी से उठ, अत्यन्त क्रोधित हो, तारक के वध का विचार कर, अपने धनुष को हाथ में लिया और ब्रह्मास्त्र चलाया।"

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! यह देखकर तुमने मुचुकुन्द को मना किया और समझाया कि यह तुम्हारे हाथ से नहीं मरेगा। इसकी मृत्यु मनुष्य के हाथ से नहीं है। इसको तो केवल स्कन्द ही मारेंगे। जहाँ अपना कोई वश न चले, वहाँ शान्त रहना ही उत्तम है।" यह कहकर तुम सब देवताओं सहित स्कन्द जी की सेवा में पहुँचे तथा उनकी स्तुति एवं पूजा करने लगे। देवताओं को ऐसा करते देख, दैत्यों ने अत्यन्त

क्रोधित होकर ; घोर नाद के साथ बाणों की वर्षा की। तब वीरभद्र क्रोधावेष में भरकर युद्ध भूमि में आ उपस्थित हुए।''

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! वीरभद्र अपने गणों को साथ लिये हुए युद्ध करने लगे। दोनों ओर से बड़े जोर से आक्रमण हुआ और नाना प्रकार के शस्त्र प्रयोग में लाये गये। वीरभद्र ने क्रोधित होकर त्रिशूल हाथ में लिया तथा उसको तारक के शरीर में मारकर, उसे धरती पर गिरा दिया। तारक उस आक्रमण से अचेत हो गया। कुछ समय पश्चात् जब उसे चेत हुआ, तब उसने वीरभद्र पर साँग से आक्रमण किया। वीरभद्र ने तारक पर पुनः त्रिशूल का वार किया। जब बहुत देर तक दोनों में से कोई परास्त न हुआ तो हे नारद ! तुमने वीरभद्र से जाकर यह कहा—''हे वीरभद्र ! तुम हमारी बात मानकर लड़ाई बन्द कर दो। तारक की मृत्यु तुम्हारे हाथों नहीं होगी। जब शिवजी स्वयं उसके साथ युद्ध करेंगे तभी इसकी मृत्यु होगी।'' वीरभद्र ने यह सुनकर तुम से क्रोधित होकर कहा—''हे नारद ! तुम युद्ध तथा वीरता की बात क्या जानो? तुम केवल तप करना ही जानते हो। मैं तुमको वीरों के विषय में बताता हूँ कि उनके चार धर्म होते हैं। जो स्वामी के बिना युद्ध करते हैं तथा अपने प्राणों का मोह न करके, भलीभाँति लड़ते हैं। वे प्रथम प्रकार के वीर हैं। जो स्वामी के साथ रणभूमि में संसार की लज्जा से मर जाते हैं, वे दूसरे प्रकार के हैं, उनको शूर कहते हैं। तीसरे जो अपने स्वामी के साथ युद्ध स्थल त्यागकर भाग जाते हैं, उन्हें क्रूर कहते हैं। चौथे वे हैं जो निकम्मे होकर घर में बैठे रहते हैं तथा उनका स्वामी युद्ध क्षेत्र में मारा जाता है। वे कायर हैं, उनको कहीं भी सुख नहीं मिलता। मैं सत्य कहता हूँ कि यदि शिवजी इस समय मेरे पास आकर मुझको तारक के वध से रोकें तब तो असमर्थता है, नहीं तो आज मैं तारक को पृथ्वी से नष्ट कर दूँगा।''

यह कहकर वीरभद्र ने तारक के ऊपर अपने त्रिशूल का वार किया। दोनों फिर परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों ओर की सेनाएँ भी आपस में भिड़ गयीं। इस बार दैत्यों को देवताओं ने बड़ी वीरता से परास्त किया तथा दैत्य अपनी बहुत-सी सेना मरी हुई देख, युद्ध स्थल से भाग चले।

हे नारद ! युद्ध भूमि की यह दशा देखकर तारक महाक्रोधित हुआ। वह एक करोड़ हाथ निकालकर, हाथी पर सवार हो, देवताओं के पकड़ने को उनकी सेना के भीतर घुस गया तथा उसने असंख्य देवताओं को मार डाला। उसने अपने हाथी को छोड़ दिया, जिसे देखकर सब हाथी भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार तारक ने देवताओं पर विजय प्राप्त की। उस समय तारक का तेज कोई न सह सका और सब लोग बड़े दुःखी हुए। उनके हाथी ने सब हाथी आदि को मार डाला। यह दशा देखकर विष्णु जी से न रहा गया। उन्होंने तुरन्त चक्र उठाकर तारक के साथ युद्ध कर, देवताओं को आनन्दित किया। विष्णु जी तथा तारक में घोर युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ओर से अनेक लोग मारे गये। तारक ने अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से देवताओं को फिर भयभीत कर दिया। तब विष्णु जी ने देवताओं को इस प्रकार भयभीत देखकर, क्रोधित हो, तारक के ऊपर अपना चक्र चलाया। उस समय पृथ्वी काँप उठी ; परन्तु चक्र को तारक के शरीर पर जमने का कोई स्थान नहीं मिला। तारक ने अपने गुरु का स्मरण कर उन्हें प्रणाम किया तथा अनेक प्रकार की माया दिखलाई, अनेक राक्षस हाथियों के समान चिग्घाड़ते हुए उत्पन्न हुए। तारक की यह माया कोई न जान पाया। अतः वे युद्ध स्थल से भाग कर स्कन्द के पास जा पहुँचे तथा विनय के साथ भयभीत हो इस प्रकार बोले—"हे स्वामी ! हम आपकी शरण में आए हैं। आप अब शीघ्र ही तारक का वध कीजिये, क्योंकि आपका अवतार इसी निमित्त हुआ है। आपके बिना और कोई तारक को नहीं मार सकता है।"

हे नारद ! देवताओं को इस प्रकार भयभीत देखकर स्कन्द ने हँसकर कहा—"हे देवताओ ! मुझको अपना-पराया कुछ भी नहीं

पता है। मैं तो अभी लड़का हूँ। अभी तक मैं इस बात की परीक्षा करता रहा कि मैं किसके साथ युद्ध करूँ, यद्यपि मैं धनुर्विद्या बिल्कुल नहीं जानता।'' हे नारद ! तुमने स्कन्द के ऐसे वचन सुनकर कहा—''हे महाराज ! आप तो शिव से उत्पन्न हुए हैं। सृष्टि के रक्षक देवताओं को आप ही से सुख की प्राप्ति होगी। आप बालक, युवा या वृद्ध नहीं हैं। तारक ने देवताओं को जीतकर उन्हें बड़े-बड़े दुःख पहुँचाये हैं, इसलिए अब आपको तारक का वध शीघ्र कर डालना चाहिए।'' स्कन्द पहले तो हँसे, परन्तु बाद में क्रोधित हुए। तब वे विमान छोड़ अपनी शक्ति सहित तारक की ओर पैदल ही दौड़ पड़े। यह देखकर तारक ने हँसकर इस प्रकार कहा कि देवताओं ने इस बालक की आशा पर ही अपने बल को नष्ट कर दिया है। वास्तव में यह सब बुद्धिहीन हैं। मुझको निश्चय है कि मैं समस्त देवताओं को मारकर नष्ट कर डालूँगा। ऐसा कहकर तारक हाथ में शक्ति लिये हुए स्कन्द से युद्ध करने के लिए चला। वह देवताओं से बोला—''हे देवताओ ! तुमने इस बालक को युद्ध स्थल में अगुआ बनाया है। अब मैं तुमको इसका फल देता हूँ। तुम सब जिसकी आशा पर निर्भर करते हो, वह मेरे भय से यहाँ से भाग जायेगा। छोटा भाई (विष्णु) तो छल में अद्वितीय एवं माया दिखाने में विख्यात है। इसने बलि के साथ वामन रूप में बड़ा छल किया तथा मधुकैटभ का शीश छल करके काट डाला। फिर अमृत बाँटने के समय भी मोहिनी रूप में इसने छल किया। इसने वेद के विरुद्ध स्त्रियों को मार डाला तथा बालि के वध में भी रामचन्द्र रूप में इसने धर्म का कुछ विचार नहीं किया। रावण को जो ब्राह्मण जाति का था और जिसको मारना वेद में निषिद्ध है, इसी ने मार डाला तथा अपनी स्त्री सीता को निष्पाप त्याग दिया इसने कृष्ण रूप में पर-स्त्रियों के साथ भोग करके वेद की रीति को त्याग दिया और अनुचित रीति से विवाह कर, कलियुग की चाल चलकर बड़ा अधर्म किया। इसी प्रकार बुद्धि रूप में सब वेदों की निन्दा करके इस विष्णु ने कुछ भी विचार नहीं किया। मुझे आश्चर्य है कि ऐसे

मनुष्य के बल पर तुम देवताओं ने युद्ध करने का प्रयत्न किया है।''

हे नारद ! इसके पश्चात् तारक इन्द्र की निन्दा करते हुए बोला— ''हे देवताओ ! इन्द्र तो बहुत ही बुरा एवं अनाचारी है। उसने अपने पिता के लड़के को दिति के गर्भ से गिरा दिया तथा केवल सांसारिक आनन्द के निमित्त ऐसे कार्य करते हुए धर्म का ज्ञान विचार न किया। इसने गौतम की स्त्री से भोग किया तथा व्रत नामक ब्राह्मण का वध कर डाला। सांसारिक आनन्द के निमित्त इसने कौन-कौन से अधर्म नहीं किये? इस समय भी इसने इस छोटे-से लड़के को युद्ध भूमि में अगुआ बनाया है, जो अभी मेरे हाथों से मारा जायेगा। यह पाप भी इसी पर पड़ेगा अन्यथा यह लड़का भाग जायेगा।'' इस प्रकार देवताओं से उनकी निन्दा करते हुए तारक फिर स्कन्द से बोला—''हे बालक ! तुम व्यर्थ अहंकार मत करो। यहाँ तुम्हारी कुछ न चलेगी। जो मनुष्य ब्राह्मण का अपमान करता है। उसके धन, धर्म, बल आदि कुछ शेष नहीं रहते।'' यह कहकर उसने अपनी साँग उठायी।

हे नारद ! इस प्रकार कहते हुए तारक की शक्ति क्षीण हो गयी, क्योंकि बड़ों की निन्दा तथा उनके कर्म कहने में तुरन्त ही शक्ति क्षीण हो जाती है। हे नारद ! होता वही है, जो सदाशिव की इच्छा होती है। संसार में ऐसा कौन है, जिसकी बुद्धि शिवजी की माया के सम्मुख ठीक रह सकती है? निदान तारक ने अपने चुने हुए श्रेष्ठ वीरों को सेनाध्यक्ष बनाकर, सेना को पीछे रखा तथा वह स्वयं स्कन्द तथा इन्द्र के सम्मुख आ गया।''

ॐ ॐ ॐ

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जब इन्द्र ने तारक को ऐसी शक्ति दिखाते हुए देखा तो क्रोधित होकर अपने वज्र द्वारा उसको पृथ्वी पर गिरा दिया ; परन्तु तारक ने तुरन्त ही धरती से उठकर इन्द्र को साँग मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। यह देखकर देवताओं की सेना में बड़ा

हाहाकार मचा। तारक ने इन्द्र को पृथ्वी पर पड़ा हुआ देख, उनके पेट को अपनी लात से दबाया और उनके हाथ से वज्र छीन लिया। फिर उसने उसी वज्र से इन्द्र पर आक्रमण किया। इन्द्र की यह दशा देख स्कन्द को क्रोध हो आया तथा उन्होंने अपना त्रिशूल उठाकर तारक पर मारा। तारक उस त्रिशूल की ताड़ना न सहकर, धरती से उठकर आकाश में खड़ा हो गया। फिर उसने स्कन्द पर आक्रमण किया। उसके प्रहार से स्कन्द घायल होकर धरती पर गिर पड़े। उन्होंने पुनः त्रिशूल अपने हाथ में ले लिया। वह त्रिशूल विद्युत् भाँति चमक उठा तथा सब दिशाएँ प्रकाश में पूर्ण हो गयीं। तब तारक पुनः साँग लेकर स्कन्द के सम्मुख आ खड़ा हुआ। उस समय देवताओं ने हर्ष ध्वनि की। फिर तारक तथा स्कन्द परस्पर युद्ध करने लगे। उस समय घोर युद्ध हुआ। दोनों मस्तक, कण्ठ, कटि, जंघा, पीठ तथा हृदय में शस्त्र मारते थे। दोनों ओर की सेनाएँ ऐसा भयंकर युद्ध देखकर आश्चर्य में पड़ गयीं। उस समय देवताओं की आशा टूट गयी और वे निराश होकर सोचने लगे कि स्कन्द तारक को नहीं मार सकेंगे। उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि, "हे देवताओं ! स्कन्द अभी तारक का वध करेंगे।"

हे नारद ! इस आकाशवाणी के पश्चात् ही स्कन्द ने अपनी साँग तारक की भुजाओं में मारी ; परन्तु तारक ने उस पर कुछ ध्यान न देकर अपनी साँग से स्कन्द को घायल कर पृथ्वी पर गिरा दिया। स्कन्द ने सचेत होकर पुनः तारक पर वार किया। इसी प्रकार दोनों युद्ध करने लगे। इस समय देवता चिन्तित होने लगे, सूर्य का प्रकाश क्षीण हुआ, वायु थम गयी, नदी-पर्वत तथा वनों से भयानक शब्द होने लगा, पृथ्वी काँपने लगी—जैसे भूकम्प आ गया है, तथा अग्नि-देवता शान्त हो गये। हिमगिरि, मेरु, श्वेतकोट, उदयाचल, अस्ताचल, मलयगिरि, कैलाश, गन्धमादन, मैनाक, विन्ध्याचल, महेंद्र, मन्दर तथा हिमाचल आदि पर्वत भी चिन्तित एवं दुःखी थे। तब सबको इस प्रकार चिन्तित तथा दुःखी देखकर स्कन्द बोले—"हे पर्वतो ! तुम कोई चिन्ता मत

करो।'' इसी प्रकार स्कन्द ने सब देवताओं को सान्त्वना देकर शिव-गिरिजा का ध्यान किया तथा तारक का वध करने को साँग अपने हाथ से उठायी। उस साँग में श्री गिरिजा-शंकर ने असंख्य तेज एवं बल डाल दिया। स्कन्द ने क्रोधित होकर साँग तारक के हृदय में मारी। तब तारक उसके अघात से निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा। तारक के शरीर में शिवजी का जो तेज था, वह स्कन्द के शरीर में प्रवेश कर गया। तारक की समस्त सेना यह देखकर भागकर पाताल को चली गयी। इसी प्रकार दैत्यों का पूरी तरह से वध हुआ, जिससे देवताओं को अपार प्रसन्नता हुई। उस समय सब देवता, मुनि एवं गण अति प्रसन्न होकर स्कन्द की स्तुति करने लगे। गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा आदि गाने-बजाने लगे। अनेक प्रकार के बाजे बजे तथा सब ने स्तुति करने के पश्चात् स्कन्द से यह प्रार्थना की कि, ''हे प्रभो ! हम सबकी प्रीति आप के चरणों में दिन-दिन बढ़े, हम आपसे यही वरदान माँगते हैं। देवताओं तथा पर्वतों की ऐसी स्तुति सुनकर स्कन्द ने कहा—''हमने तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होकर तारक का वध किया है, भविष्य में भी हम तुम्हारे दुःखों में हर तरह से सहायता करेंगे।'' इसके पश्चात् स्कन्द पर्वतों से बोले—''हे पर्वतो ! तुम सब प्रतिष्ठा के योग्य हो, समस्त मुनि और तपस्वी तुम्हारी सेवा करेंगे। तुम्हारे देखने मात्र से ही मनुष्यों के कष्ट दूर होंगे। जो तीर्थ, मन्दिर तथा तपोभूमि तुम पर स्थित होगी, वह सब आनन्द एवं सुखदायक होगी। जो पर्वत हमारी माता के समान उत्पत्ति स्थान हैं वह तपस्वियों को श्रेष्ठ फल देकर सब पर्वतों का अधिपति होगा, अन्य पर्वत भी शिवलिंग के समान पापों को नष्ट किया करेंगे। स्कन्द के इस वरदान को सुनकर चारों ओर से 'धन्य-धन्य' तथा जय-जयकार का शब्द गूँजने लगा।''

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें उन दैत्यों का वृत्तान्त सुनाता हूँ जो भागकर पाताल में छिप गये थे। उन दैत्यों में से एक वाण

नामक दैत्यों का स्वामी युद्ध क्षेत्र से भाग गया था, वह वहाँ से क्रौञ्च द्वीप में जाकर नाना प्रकार के उपद्रव करने लगा। उसने क्रौञ्च के सिर में अपना एक पैर इस प्रकार मारा कि वह पर्वत घबरा कर स्कन्द के पास आया और यह कहने लगा कि इस समय आप ने तारक का वध करके तो संसार को दुःखों से मुक्त कर दिया है, परन्तु केवल मैं ही अकेला सृष्टि भर में दुःखी हूँ। उसने अपना सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक स्कन्द को सुनाते हुए कहा—"हे प्रभो ! मुझको जिसने दुःख दिया है, उसके साथ आठ कोटि दैत्य हैं। यदि मैं आपकी शरण में मनुष्य रूप धारण करके न आता, तो न जाने वह क्या करता। आपके सिवाय अब मेरा इस संसार में कौन रक्षक है?" स्कन्द ने दैत्यराज की यह कथा तथा उसका उत्पात सुनकर, उसको मार डालने का विचार किया। तब उन्होंने साँग हाथ में लेकर शिवगिरिजा का ध्यान किया और वह साँग क्रोध में भरकर उस दैत्य की ओर चलायी। उस साँग के चलने से दशों दिशाओं में प्रकाश फैल गया। साँग ने क्षण भर में ही दैत्यों को, उनके अधिपति सहित जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार उन सब को समाप्त करके, वह साँग फिर स्कन्द के पास लौट आयी।

हे नारद ! इस प्रकार उन दैत्यों को नष्ट करके स्कन्द ने पर्वत से कहा कि अब तुम अपने घर को लौट जाओ और किसी प्रकार की चिन्ता मत करो ; क्योंकि हमने उस दैत्य को सेना सहित मारकर नष्ट कर दिया है। यह सुनकर क्रौञ्च ने स्कन्द की बड़ी स्तुति की तथा अपने घर को लौट गया। फिर देवताओं ने खूब उत्सव किये। तदुपरान्त स्कन्द ने उसी स्थान पर तीन शिवलिंगों की स्थापना की। उन तीनों के नाम यह रखे—पहला प्रतिज्ञेश्वर हुआ—जो कोई उसकी पूजा करेगा, उसके सब मनोरथ पूर्ण होंगे। इसी प्रकार दूसरे का नाम कपालेश्वर तथा तीसरे का नाम कुमारेश्वर रखा। इन शिवलिंगों के लिये यह वरदान भी दिया कि इनकी पूजा से दोनों लोकों में सुख प्राप्त होगा। इसके पश्चात् उसी स्थान के निकट स्कन्द ने एक जय स्तम्भ स्थापित कर, एक और शिवलिंग स्तम्भेश्वर की भी स्थापना की,

जिनकी पूजा करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त देवताओं तथा मुनिश्वरों ने एक और शिवलिंग की स्थापना की, जिसका नाम रामेश्वर रखा गया। उसकी पूजा से प्रजा की सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं।''

ॐ ॐ ॐ

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जिस समय सब देवता तथा दैत्य लड़ाई में व्यस्त थे तथा दैत्य स्कन्द जी का तेज न सहकर चारों ओर भागे, उनमें से वाण दैत्य का वृत्तान्त तो हम कह चुके हैं, अब हम प्रलम्ब नामक दैत्य के विषय में और बताते हैं। वह दैत्य शेषजी के घर में जाकर दस कोटि सेना सहित बड़ा उपद्रव मचाने लगा। उसने अनेक मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। शेषजी के पुत्र ने प्रलम्ब का सामना किया, परन्तु अन्त में उसने पराजय स्वीकार कर ली। तदुपरान्त शेषजी के पुत्र कुमुद ने स्कन्द की शरण में आकर स्तुति की तथा प्रलम्ब के उपद्रवों की कथा विस्तारपूर्वक कह सुनायी। उसने विनय की कि हे स्वामी ! आप उसको मारकर हमारे कष्टों को दूर कीजिए। मेरे कहने पर शेषजी ने उस दैत्य को नष्ट करने के लिए स्कन्द से विनती की। स्कन्द ने यह सुनकर अपनी शक्ति को उठा लिया तथा शिवजी एवं गिरिजा का ध्यान कर दैत्य की ओर फेंक दिया। उस शक्ति के प्रकाश से सम्पूर्ण संसार प्रकाशित हो गया तब उसने सातों पाताल लाँघ कर शीघ्र ही दस करोड़ दैत्यों को प्रलम्ब सहित मार कर भस्म कर दिया। वह शक्ति उन सब का नाश करके, फिर उसी प्रकार स्कन्द के हाथ में आ गयी। तब स्कन्द ने कुमुद से कहा कि हमने अपनी शक्ति द्वारा प्रलम्ब का नाश कर दिया, अब तुम निर्भय हो कर अपने घर को जाओ। शेषजी स्वयं तो स्कन्द की सेवा में तत्पर रहे तथा कुमुद उनका आदेश पाकर वहाँ से लौट गये। तब देवताओं ने विविध प्रकार उत्सव किये। मैंने तथा समस्त देवताओं ने स्कन्द की स्तुति करते हुए कहा—

"हे महाराज ! आप तो अभी केवल सात दिन के बालक हैं तो भी दैत्यों का नाश करते हैं यह बड़ा आश्चर्य है।" स्कन्द ने देवताओं सहित जिस स्थान पर युद्ध का विचार किया था, वह स्थान सप्ततीर्थ के नाम से बड़ा तीर्थ प्रसिद्ध हुआ तथा जिस मार्ग से कुमुदनाग धरती को फोड़कर पाताल में गया था, वह सिद्धकूल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो वहाँ स्नान करते हैं, उनके सब क्लेश मिट जाते हैं तथा अन्त में वे कैलाश पर्वत पर स्थान प्राप्त करते हैं। स्कन्द जी के चरित्र अत्यन्त पवित्र हैं, उनके सुनने-सुनाने से मोक्ष प्राप्त होती है।"

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! स्कन्द ने इसी प्रकार के अनेक चरित्रों से संसार को सुख प्रदान किया। कुछ समय बाद देवताओं ने स्कन्द से कहा—"हे देव ! आप कैलाश पर्वत पर चलकर रहिए, क्योंकि अब सब ने अपना मनोरथ प्राप्त कर लिया है।" स्कन्द जी ने इस बात को मान लिया तथा विष्णु जी और मुझको शुभ मुहूर्त्त देखने की आज्ञा दी। मैंने मुहूर्त्त देखकर देवताओं सहित स्कन्द से विनती की कि अब शुभ मुहूर्त्त आ गया है। यह सुनकर स्कन्द प्रसन्न हो, अपने माता-पिता का ध्यान धर, कैलाश पर्वत को चले। उस समय चारों ओर से 'जय शिव-गिरिजा', का शब्द सुनाई देने लगा। स्कन्द एक उत्तम विमान पर आरूढ़ होकर अपनी स्तुति सुनते हुए चले। उनके पीछे इन्द्र ऐरावत हाथी पर छत्र लेकर सवार हुए। सब दिक्पाल, सूर्य, चन्द्रमा सहित आगे-आगे जय-जयकार करते हुए चले। सबने शिवजी के पास पहुँचकर, उन्हें दूर से ही नम्रतापूर्वक खड़े होकर प्रणाम किया। स्कन्द ने शिव के निकट जाकर दंडवत् की। तब शिवजी ने उन्हें गोद में लेकर उनको हृदय से लगाया। गिरिजा अपने पुत्र के आगमन का समाचार सुनकर अपनी सखियों सहित मन्दिर से बाहर निकल आयीं। उन्होंने तुरन्त ही अपने पुत्र को गोद में उठा लिया। शिव-पार्वती की यह लीला

देखकर, सब देवता आदि अपने-अपने हाथ जोड़, सिर झुका, बड़ी स्तुति करते हुए बोले—"हे प्रभो ! आपने शिशु रूप से प्रकट होकर तारक का वध किया एवं वाण तथा प्रलम्ब भी अपनी समस्त सेना सहित मारे गये। इसी प्रकार उन्होंने गिरिजा एवं स्कन्द की अलग-अलग भी स्तुति की। फिर वे प्रणाम कर चुप हो गये।"

हे नारद ! शिवजी ने अपनी दया दृष्टि से सबको देखते हुए कहा—"मैंने केवल तुम्हारे लिए हर सगुण अवतार लेकर विवाह किया है। यह स्कन्द मुझे बहुत प्रिय है। इसने तारक का वध किया है। अब तुम अपने-अपने घरों में जाकर प्रसन्नतापूर्वक रहो। हम इसी प्रकार सदैव तुम्हारे आनन्द को चाहते रहेंगे, क्योंकि हम सदैव भक्ति के अधीन रहते हैं। तुम सब हमारा स्मरण करना नहीं भूलना। यह कहकर शिवजी ने सबको विदा किया। फिर स्कन्द ने कुशल-पूर्वक लौट आने के कारण उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत दान दिया तथा बहुत उत्सव किया। यह देखकर भैरव आदि गण बहुत प्रसन्न हुए। देवता आदि सब अपने-अपने घरों में पहुँचकर आनन्द के बाजे बजाने लगे तथा अपने-अपने कार्य में पूर्ववत् संलग्न हो गये। हे नारद ! हमने स्कन्द का वृत्तान्त जितना कि हमें मालूम है, यह कह सुनाया। यह चरित्र सब दुःखों को दूर करने वाला तथा आनन्ददायक है। इसके सुनने ने सब दुःख तथा विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस चरित्र को सुनने तथा सुनाने वाले भी परलोक में शुभगति को प्राप्त करते हैं। इसके सुनने से सौभाग्य बढ़ता है तथा शिव का सामीप्य प्राप्त होता है। गिरिजा तो अपने भक्तों की सदा सहायक हैं। हे नारद ! अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?"

ॐ ॐ ॐ

चौदहवाँ अध्याय

नारद जी बोले—"हे ब्रह्मा जी ! स्कन्द का चरित्र सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, अब आप शिव-गिरिजा के अन्य चरित्रों पर भी

प्रकाश डालिये। मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ, आशा है कि आप उसका प्रसन्नता से उत्तर देंगे। हे पिता ! आप मुझे गणपति का चरित्र सुनाइए तथा यह बताइए कि वे किसके पुत्र हैं? पंचदेव के पूजन की जो आज्ञा दी गयी है, उसमें एक गणपति जी भी हैं। उनकी किस समय से पूजा की गयी, तीनों लोकों को उन्होंने किस प्रकार जीता तथा उन्होंने किस प्रकार इतनी ख्यति प्राप्ति की, यह आप मुझे बताइए। मैंने कई बार यह भी सुना है कि गणपति जी भी गिरिजा के पुत्र हैं, परन्तु उनके विषय में विशेष कुछ नहीं जानता। शिवजी के विवाह में आपने कहा था कि गणपति की पूजा की गयी तथा शिवजी ने उन्हें नमस्कार किया। मुझे इसमें बड़ा संशय है कि दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं?'' यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! तुमने वास्तव में बहुत अच्छा प्रश्न किया है। हम तुम्हें गणपति की उत्पत्ति तथा उनके पद आदि से अवगत कराते हैं। गणपति विष्णु आदि के समान ही प्राचीन देवता हैं। वे अलग-अलग पाँचों देवताओं में बँटे हुए हैं।

हे नारद ! जब शिवजी गिरिजा के साथ विवाह करके अन्तःपुर में विहार करने लगे तब शिव एवं गिरिजा में ऐसा प्रेम बढ़ा कि उन्हें रात-दिन व्यतीत होते हुए कुछ भी न जान पड़े। यह दशा देखकर सब देवता मेरे पास आये तब मैं भी चिन्तित होकर उन सब को साथ लेकर विष्णु जी के पास पहुँचा और स्तुति करने के पश्चात् सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया, कि शिवजी एक सहस्त्र दिव्य वर्षों से विहार कर रहे हैं, पता नहीं ऐसे विहार से कैसा पुत्र उत्पन्न होगा; अस्तु आप ही इसके विषय में कुछ बताएँ। विष्णु जी यह सुनकर बोले—''हे ब्रह्मन् ! सब उचित तथा शुभ ही होगा। हमको ऐसी युक्ति करनी चाहिए कि शिवजी का वीर्य किसी प्रकार से पृथ्वी पर गिर पड़े, जिससे गिरिजा के पुत्र न उत्पन्न होने पावे, नहीं तो वह ब्राह्मण्ड भर को जलाकर भस्म कर देंगा।'' यह सुनने के पश्चात् मैं तो अपने घर चला गया तथा अन्य देवता कैलाश पर्वत पर गए। देवताओं ने शिवजी के द्वार पर जाकर उन्हें आवाजें दीं, तब शिवजी बाहर निकल कर आये। उस समय

देवताओं ने प्रणाम करके स्तुति की और कहा—"हे प्रभु ! आप संसार को पवित्र करें।" शिवजी देवताओं का आशय समझकर कहने लगे—"मैंने तुम्हारे मनोरथ को अच्छी तरह समझ लिया है। तुमने व्यर्थ ही मेरे आनन्द में विघ्न डाला, यह बहुत ही बुरा हुआ। अब मेरा वीर्य सिर से नीचे की ओर आता है, उसको तुम में कौन लेता है?" यह कहकर उन्होंने अपना वीर्य पृथ्वी पर गिरा दिया, जिसके तेज से सब ओर प्रकाश हो गया। उस समय अग्नि कपोत का रूप धारण कर उस वीर्य को खा गये। फिर जब वे उड़कर आकाश की ओर चले तो उस वीर्य को धारण करने की शक्ति न पाकर, उन्होंने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। उसके गिरने से पहाड़ भी काँप उठा। इस प्रकार स्कन्द की उत्पत्ति हुई, जिसके विषय में हम पहले बता चुके हैं।

हे नारद ! अब हम तुम्हें गणपति के विषय में बतलाते हैं। इस घटना के घटते समय शिवजी ने सब देवताओं से कहा कि तुम लोग शीघ्र ही हमारे पास से भाग जाओ। ऐसा न हो कि गिरिजा इस बात को जानकर तुम पर क्रोध करें। यह सुनकर देवता वहाँ से भाग गये तथा शिवजी उनके भागने का चरित्र देखते रहे। उसी समय गिरिजा ने आकर देवताओं पर महाक्रोध किया, जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अभी प्रलय हो जायेगा। तदुपरान्त गिरिजा ने देवताओं को शाप दिया। शाप दे चुकने के पश्चात् भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। उनका शरीर दुःख की अधिकता के कारण शिथिल हो गया शिवजी ने गिरिजा को इस प्रकार दुःखी देखकर गोद में उठा लिया तथा बहुत-सी प्रेम की बातें कीं। उन्होंने उन्हें समझाते हुए कहा—"हे गिरिजे ! तुम मुझ से इस प्रकार क्यों अप्रसन्न हो? मेरा कोई अपराध नहीं है। यदि अनजाने में कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करो। तुम्हारे बिना मानो हम अंगहीन हैं। तुम तो सब की माता हो। तुम्हारे अधीन तो तीनों लोकों के कार्य हैं। बिना तुम्हारे सब निर्बल हैं। अस्तु, अब प्रसन्न होकर तुम हमारे तथा सबके दुःख को दूर करो।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी के ऐसे वचन सुनकर गिरिजा बोली—"हे नाथ ! क्या आप मेरे दुःख को नहीं जानते? संसार में संतान-हीन होने के बराबर कोई दुःख नहीं है। मेरा पहला जन्म बिना सन्तान के ही व्यतीत हो गया, अब यह जन्म भी उसी प्रकार बीतना चाहता है। देवताओं ने मेरे साथ छल करके मुझे बाँझ बनाकर, बहुत दुःख पहुँचाया है। यदि पुत्र न हो तो संसार के सहस्त्रों ऐश्वर्यों पर धिक्कार है। जब गुणवान् पुत्र उत्पन्न होता है, तभी लोक में शुभ कर्मों का फल प्राप्त हुआ प्रतीत होता है।" यह कहकर गिरिजा बहुत रोईं। तब शिवजी ने गिरिजा को उठाकर हृदय से लगाते हुए कहा—"हे गिरिजे ! हम तुमको ऐसा उपाय बताते हैं, जिससे तीनों लोकों में सब कार्य पूर्ण होंगे। मैं, विष्णु तथा ब्रह्मा सब उसके वश में हैं। हम उनको अपना गुरु अर्थात् गणपति कहते हैं। वह हमारा मुख्य रूप है, जिसकी सेवा से समस्त दुःख दूर होकर सुख की प्राप्ति होती है। तुम एक वर्ष तक उनका व्रत करो तो तुम्हारा मनोरथ सफल हो जाएगा। उनका नाम ही समस्त कष्टों को दूर करने वाला तथा आनन्ददायक है। वह व्रत कृष्ण पक्ष की चौथ को किया जाता है। वह व्रत गणेश चौथ का व्रत कहलाता है। उस व्रत को रखकर, पवित्रतापूर्वक चन्द्रमा के उदय होते ही पूजा करे। वह व्रत समस्त व्रतों का राजा तथा प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करने वाला है। जिस प्रकार सब मन्त्रों में प्रणव, हमारे भक्तों में विष्णु, नदियों में गंगा, इन्द्रियों में मन, बड़ों में माता, पुरियों में काशी, सहायकों में भाई तथा पुत्र, नक्षत्रों में चन्द्रमा, मन्त्रगणों में पंचाक्षरी, बीजमन्त्रों में प्रणव, पुराणों में भारत तथा आश्रमों में संन्यास उत्तम हैं, उसी प्रकार सब देवताओं में शिव की भक्ति महान् है। इसी प्रकार गणेश चौथ का व्रत भी सब व्रतों में बड़ा है।"

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी गिरिजा को गणेश चौथ की महानता का वर्णन करते हुए बोले—"हे गिरिजे ! कलियुग में राजा शेषसेन ने

इस व्रत को करके बड़ा आनन्द प्राप्त किया। मनु की स्त्री शतरूपा ने यही व्रत करके दो पुत्र प्राप्त किया। कद्रम की पत्नी ने भी इसी व्रत द्वारा कपिल नाम विष्णु अवतार को प्राप्त किया। वशिष्ठ की स्त्री ने भी यह व्रत करके शक्ति नामक पुत्र को उत्पन्न किया। इसी प्रकार इसी व्रत के प्रभाव से अनेक मनुष्यों ने पुत्र प्राप्त किये हैं। गिरिजे ! तुम भी इसी व्रत के प्रभाव से अवश्य पुत्र प्राप्त करोगी।'' गिरिजा ने शिवजी के मुख से गणेश चौथ के व्रत की महिमा को सुन, प्रसन्न होकर बोली—''हे स्वामी ! मैं अवश्य ही व्रत करूँगी ; परन्तु आप इस व्रत के सब नियम-क्रिया आदि विस्तारपूर्वक कहें।'' शिवजी बोले—हे देवि ! कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को शुद्ध हृदय से प्रातःकाल उठकर स्नान करें तथा जो कुछ करना उचित है, वह सब करे। इसके पश्चात् व्रत की दृढ़ इच्छा कर, यह संकल्प करें—''हे गणेश ! हमारा व्रत भली प्रकार से पूर्ण हो जाए और हमारे सब दुःख दूर हो जाएँ। तुम सबको जानते हो, सब फलों के दाता हो तथा वेदों ने तुमको विघ्नहर्ता कहा है।'' इस प्रकार हृदय में संकल्प करके चतुर्थी के दिन गणपति की वार्ता में ही दिन व्यतीत करें। सूर्यास्त के समय स्नान कर अपने स्थान पर बैठे और कथा-पूजा की सब सामग्री इकट्‌ठी करें, फिर गणेश जी की पूजा के लिए अच्छा स्थान तैयार करे, जिसके चारों ओर केले के खम्भे लगाए गए हों। जब आकाश में चन्द्रमा उदय हो, तब तुरन्त अर्घ्य और गणेश की मूर्ति सोना-चांदी, ताँबे या गोबर की, जैसी सामर्थ्य हो, बनवावें। उसको शुभ स्थान पर रखकर कलश स्थापित करे, जिसके ऊपर दीपक रखा हो, इसके पश्चात् ध्यान लगाकर षोडशोपचार से उसका पूजन करे तथा लाल फूल, वस्त्र, चन्दन, कुश, दूध तथा पूए आदि आगे रखकर आचमन करा दें। अच्छी स्तुति करके, प्रेम मगन हो, उनको प्रणाम करें। तदुपरान्त वही पूआ पूजन कराने वाले ब्राह्मण को खिलाकर, दक्षिणा स्वरूप कुछ चाँदी दें, नहीं तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो चाहे सो दक्षिणा दें। तदुपरान्त स्वयं भी मीठा भोजन करे। इस प्रकार जो गणेश का व्रत

करते हैं, उनकी मनोकांक्षा पूर्ण होती है। हे गिरिजे ! इसलिए तुम भी इसी व्रत को करो।''

ॐ ॐ ॐ

सोहलवाँ अध्याय

शिवजी से यह सुनकर गिरिजा ने पूछा—''हे नाथ ! आपने गणपति के इस व्रत में चन्द्रमा को अर्घ्य देने का जो वर्णन किया है, उसका मुख्य कारण मेरी समझ में नहीं आता। इसलिए आप इस कथा को कहिए।'' शिवजी बोले—''हे गिरिजे ! जब ब्रह्मा ने हमारी आज्ञा को मानकर स्वर्ग जाने की इच्छा की तथा गणपति का एकाग्र चित्त होकर पूजन किया, तब गणपति ने उनकी पूजा से प्रसन्न होकर उनसे वरदान माँगने को कहा। उस समय ब्रह्मा ने यह कहा कि हम सृष्टि उत्पन्न करना चाहते हैं तथा निर्विघ्न उसकी वृद्धि की इच्छा रखते हैं।'' ब्रह्मा के वचन सुनकर गणपति ने कहा—''यही होगा।'' ऐसा कहकर गणपति धीरे-धीरे आकाश की ओर चल दिए। जब गणपति चन्द्रमा के मन्दिर में पहुँचे तो वहाँ पाँव फिसल जाने के कारण गिर पड़े। उनका उदर बहुत बड़ा तथा शरीर स्थूल था। चन्द्रमा यह देखकर हँस पड़े। चन्द्रमा को हँसते हुए देख गणपति बहुत क्रोधित हुए और उनके नेत्र लाल हो गये। तब उन्होंने उसी समय चन्द्रमा को यह शाप दिया कि हे कलंकी चन्द्रमा ! तू अपनी सुन्दरता पर गर्व करता है। अब तुझको इसका फल तुरन्त प्राप्त होगा। जो कोई तुझको आज से देखेगा उसको अवश्य ही कुछ-न-कुछ कलंक लग जाएगा।

हे गिरजे ! इस प्रकार चन्द्रमा को शाप देकर गणपति अन्तर्धान हो गए तथा चन्द्रमा क्षीणांग होकर तेजहीन हो गया। उस समय सब देवता एवं इन्द्र दुःखी होकर ब्रह्मा के पास गए तथा उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया। ब्रह्मा ने उनसे कहा—''हे देवताओ ! इसमें कोई बुरी बात नहीं है। चन्द्रमा ने जो कुछ किया उसने उसी का फल प्राप्त किया है। गणपति का शाप कभी झूठा नहीं हो सकता। इसलिए तुम सब लोग

गणपति की शरण में जाओ। निश्चय ही वे अपने शाप को शान्त करेंगे।'' तब देवताओं ने ब्रह्मा से विनय की—''हे ब्रह्मा जी ! आप हमको वह उपाय बताएँ, जिससे गणपति प्रसन्न होकर उस शाप को शान्त करें।'' यह सुनकर ब्रह्मा बोले—''हे देवताओ ! गणपति का व्रत कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को है। जो कोई उसको करता है, उस पर गणपति प्रसन्न होते हैं।'' ब्रह्मा के ऐसे वचन सुनकर देवताओं ने बृहस्पति को चन्द्रमा के पास भेजा तथा उसे गणेश चतुर्थी का व्रत करने के लिए कहा। तब चन्द्रमा ने बृहस्पति द्वारा बताई हुई रीति के अनुसार गणपति के व्रत को आरंभ किया। उस व्रत के प्रताप से गणपति चन्द्रमा को क्रीड़ा करते हुए शिशु रूप में दिखाई दिये। चन्द्रमा ने उन्हें देखकर प्रणाम करके, बहुत स्तुति की। तब गणपति ने प्रसन्न होकर कहा—''हे चन्द्रमा ! हम तुम से प्रसन्न हैं, तुम जो वरदान चाहो, हम से माँगो।'' उस समय चन्द्रमा ने यह निवेदन किया—''हे गणपित ! मैं केवल यही चाहता हूँ कि आपके शाप से मुक्ति पाकर सबके दर्शन के योग्य हो जाऊँ।'' गणपति बोले—''हे चन्द्रमा ! मैं तुमको इसका उपाय बताता हूँ, जिससे तुम्हारा शाप से उद्धार हो जाएगा। आज से प्रतिमास शुक्ल पक्ष की चौथ को हमारा शाप तुमको लगा रहेगा तथा अन्य तिथियों में तुम्हें देखने से किसी को कलंक नहीं लगेगा, परन्तु जो मनुष्य पहले दूज तथा तीज में तुमको देखेगा, उस पर कुछ चतुर्थी को देखने का भी प्रभाव न होगा, परन्तु साथ ही हम तुमसे यह भी कहते हैं कि हमारा पहला वचन भी झूठा न होगा अर्थात् जो मनुष्य भादों के शुक्ल पक्ष की चौथ को तुम्हारे दर्शन करेगा, उनको बराबर वर्ष भर कलंक लगा करेंगे।''

हे गिरिजे ! गणपति के मुख से ऐसे वचन सुनकर चन्द्रमा ने कहा—''हे गणपति ! अब मुझे इस शाप से भी दूर होने की कोई युक्ति बताइए?'' तब गणपति बोले—''हे चन्द्रमा ! जो मनुष्य प्रति मास की कृष्ण पक्ष की चौथ को तुम्हारे उदय होने के समय मेरी तथा रोहिणी सहित तुम्हारी पूजा करेगा, तुमको अर्घ्य देगा, हमारी कथा

सुनकर ब्रह्मभोज करेगा तथा स्वयं नमक आदि त्याग कर केवल मीठा ही भोजन करेगा, उसको चौथ का दोष जो वर्णन किया है, वह प्राप्त न होगा। जब भादों मास का आरम्भ हो, तो शुक्ल पक्ष की चौथ को हमारी पूजा करें। उस व्रत से सब प्रकार के क्लेश दूर हो जाएंगे, तथा उस मनुष्य को चौथ का कुछ कलंक नहीं लगेगा।'' चन्द्रमा से इतना कहकर गणपति अन्तर्धान हो गये और चन्द्रमा फिर अपना तेज प्राप्त कर प्रसन्न हुआ। हे गिरिजे ! इस कथा के सुनने से भी पाप समूल नष्ट हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस व्रत को करने से पुत्र के अतिरिक्त जो भी मनोरथ हों, वे प्राप्त होते हैं।''

ॐ ॐ ॐ

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिवजी के ऐसे वचन सुनकर गिरिजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर शुद्ध मन से नियमानुसार व्रत का आरम्भ किया तथा अनेक प्रकार की वस्तुएँ चढ़ाकर, पूए भी गणपति को भेंट किये। फिर उन्होंने उत्तम रीति से ब्रह्म भोज कर, स्वयं भी भोजन किया। इसी प्रकार गिरिजा प्रति मास व्रत रखकर, भली प्रकार दान-दक्षिणा देती रहीं। जब एक वर्ष पूरा हो गया तो उन्होंने दान-दक्षिणा आदि देकर एक वृहत् उत्सव का आयोजन किया जिसमें बहुत गाना-बजाना हुआ। व्रत पूर्ण होने के पश्चात् गिरिजा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने शिवजी की ओर बारम्बार देखा, तब शिवजी ने उन्हें अपनी माया जानकर, अपने हृदय से लगा लिया। फिर गिरिजा का मनोरथ समझकर शिवजी ने चन्दन के एक वन में, जो उस पर्वत पर ही था और जहाँ सुख की सम्पूर्ण सामग्री उपलब्ध थी, जाकर गिरिजा के साथ विहार किया। तब गणपति उस स्थान पर ऐसा स्वरूप बनाकर आये कि वे बहुत भूखे-प्यासे, नंगे, दरिद्री, श्वेत, केश, मस्तक पर श्वेत तिलक लगाये, महादीन, कौए का शब्द बोलते हुए, दाँत मैले-कुचैले, हाथ में डण्डा लिये तथा बहुत ही दुर्बल थे। वे दुखियाते हुए

शिवजी से बोले—"हे शिव ! तुम क्या करते हो? सात दिन से हमने कुछ नहीं खाया है सो हम बहुत भूखे हैं। हमें भोजन चाहिए। तुम हमें भोजन कराकर जल पिलाओ।" यह सुनकर शिवजी तुरन्त उठ खड़े हुए, जिससे उनका वीर्य उसी स्थान में गिर पड़ा। गिरिजा भी तुरन्त उठकर अपने वस्त्र पहन, शिवजी के साथ द्वार पर आयीं। उन्होंने ब्राह्मण को प्रणाम किया तथा बड़ी स्तुति की। शिवजी उससे इस प्रकार बोले—"हे ब्राह्मण ! तुम्हारा नाम क्या है? हमारा सौभाग्य है जो तुम यहाँ पधारे। इस समय तुम यहाँ अतिथि रूप में हमारे यहाँ आये हो। अतिथि की सेवा के सुख के बराबर अन्य कोई धर्म नहीं है।" गिरिजा ने भी कहा—"हे ब्राह्मण ! ऐसी धूप में तुम कहाँ से पधारे हो? जो गृहस्थ अतिथि के चरणों को जल से धोकर, उस चरणामृत को पीता है, उसे सब तीर्थों का फल प्राप्त होता है।" यह सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा—"हे गिरिजे ! तुम धन्य हो, मैं बहुत ही भूखा-प्यासा हूँ। कृपा कर तुम मुझको भोजन तथा जल दो।" गिरिजा ने उसी समय ब्राह्मण को उत्तमोत्तम भोजन करायी। भोजन करने के पश्चात् ब्राह्मण ने तृप्त होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—"हे गिरिजे ! तुम्हारी कामना पूर्ण हो, तुमको संसारी रीति के विरुद्ध ऐसे पुत्र की प्राप्ति हो, जो गर्भ से उत्पन्न न हुआ हो।" यह कहकर वह ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया। तदुपरान्त वे गणपति शिव-गिरिजा की शैय्या में, जहाँ वीर्य पड़ा हुआ था, मुख्य रूप से प्रकट हुए। बालकों के समान, करोड़ों सूर्यों की ज्योति धारण किये, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर शरीर धारण किये, चम्पा के समान हाथ-पाँव तथा कमलवत् कोमल अंगों वाले शैय्या में इधर-उधर फिर रहे थे।

हे नारद ! जब शिव एवं गिरिजा ने देखा कि वह ब्राह्मण एकदम अन्तर्धान हो गया, तो वे दोनों उसे चारों ओर ढूँढने लगे। उन्हें अपने मन में बहुत दुःख तथा कष्ट हुआ, इतने में यह आकाशवाणी हुई—"हे गिरिजे ! तुम संसार की माता हो, वह ब्राह्मण रूपधारी स्वयं गणपति थे। वे तुम्हारे व्रत से प्रसन्न होकर अब शिशु के समान तुम्हारे बिछौने

पर पड़े हैं। तुम उन्हें जाकर देखो। योगी जिनका ध्यान करते हैं, वे तुम्हारे पुत्र हुए हैं। अब घर में जाकर आनन्द मनाओ।" यह आकाशवाणी सुनकर गिरिजा प्रसन्न होकर मन्दिर में गयीं। वहाँ देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर बालक हँस-हँस कर शैय्या पर पड़ा खेल रहा है। गिरिजा ने तुरन्त ही यह सब वृत्तान्त शिवजी को जा सुनाया और कहा—"हे स्वामी ! आप शीघ्र चलकर देखें, गणपति के व्रत का फल प्राप्त हो गया है।" यह सुनकर शिवजी ने भी अन्दर आकर उस बालक को देखा।

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! गिरिजा ने बालक को दूध पिलाया। जिस प्रकार एक दरिद्री अतुल सम्पत्ति पाकर प्रसन्न होता है, उससे कई लाख गुना अधिक आनन्द गिरिजा को प्राप्त हुआ।"

हे नारद ! जब गणपति दूध पी चुके, तब शिवजी ने उन्हें अपनी गोद में उठाकर, उनके सिर तथा हाथ चूमे और नाना प्रकार के आशीर्वाद दिये। फिर सब ब्राह्मणों को बुलाकर रत्न-मोती आदि दान किये। तदुपरान्त विष्णु जी तथा देवता, मुनि आदि सब शिव के उस पुत्र को देखने के लिए वहाँ गये। हिमाचल भी अत्यन्त प्रसन्नता के साथ रत्न आदि लिये हुए जा पहुँचे। एक लाख अमूल्य रत्न, पाँच लाख भर सोना, तीन लाख घोड़े, एक सहस्त्र हाथी तथा वस्त्र आभूषणों को दान में दिये। देवता, शेषनाग, गन्धर्व आदि ने भी एक सहस्त्र अच्छे बर्तन, एक सहस्त्रमणि, एक सहस्त्र माणिक्य, असंख्य अग्नि में न जलने वाले शुद्ध वस्त्र दान में दिये। लक्ष्मी ने कौस्तुभ मणि तथा सरस्वती ने हार ब्राह्मणों को दान दिये। विष्णु तथा मैंने लड़के को देखकर, प्रसन्नतापूर्वक अनेक आशीर्वाद दिये। उस समय विष्णु जी बोले—"हे बालक ! तुमने शिवजी को बहुत प्रसन्न किया है। तुम्हारा बल पवन के समान होगा और सब सिद्धियाँ तुम्हारे आधीन होंगी।"

मैंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हें सब लोग पूजेंगे, तुम्हारा तेज एवं कीर्ति किसी समय कम न होगी, तुम तीक्ष्ण बुद्धि वाले तथा बड़े विद्वान् होगे। तुम हमारे समान सबका उपकार करोगे और तीनों भुवन के विघ्न तुम्हारे स्मरण मात्र से ही दूर हो जायेंगे।''

हे नारद ! मेरे इस प्रकार आशीर्वाद देने के पश्चात् लक्ष्मी ने कहा—''हे बालक ! तुम जहां पर रहोगे, हम भी वहाँ अवश्य ही होंगी। वहाँ ऋद्धि-सिद्धियाँ भी प्रेमपूर्वक स्थित रहेंगी।'' सरस्वती ने कहा—''तुम्हारी कविता में महान् शक्ति होगी। तुम्हारे स्मरण मात्र से ही कवित्व शक्ति शीघ्र प्राप्त होगी। सावित्री ने आशीर्वाद देते हुए कहा—''हम सब वेदों की जननी हैं, हमारी कृपा से तुम सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता होगे।'' हिमाचल बोले—''तुमको शिव के चरणों में बड़ी भक्ति प्राप्त हो तथा तुम में विष्णु के समान अपार बल हो।'' मैनाक ने कहा—''हे गिरिजा पुत्र ! तुम कामदेव के समान सुन्दर, समुद्र के समान गंभीर तथा विष्णु एवं शिव के समान धर्म निष्ठ होंगे।'' वसुन्धरा ने कहा—''तुम्हारे आधीन समस्त पृथ्वी के रत्न एवं मणि रहेंगे। तुम्हारी कृपा द्वारा सब प्रकार के विघ्न नष्ट होंगे।'' पार्वती ने कहा—''हे पुत्र ! तुम सिद्धि को देने वाले, सिद्ध योगी के समान मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले, सबसे निराले तथा अपने पिता के समान होगे।'' शिवजी ने कहा—''तुम सबको आनन्द प्रदान करने वाले, सबकी पूजा के योग्य तथा मुझको बहुत प्रिय होगे।'' इस प्रकार सब ने मिल कर गणपति को आशीर्वाद दिये। हे नारद ! गणपति की इस उत्पत्ति कथा को जो कोई सुनेगा तथा कहेगा, उसके सब मनोरथ पूर्ण होंगे।''

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! गणपति के जन्म की प्रसन्नता में शिवजी ने बड़ा भारी उत्सव किया। वे स्वयं रत्न जड़ित आसन पर

बैठे, दाहिनी ओर विष्णु तथा बायीं ओर मैं स्वयं बैठा। विष्णु के पार्षद् चन्द्रमा, दिक्पति तथा धर्मराज आदि अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। नृत्य-गायन का समारोह आरम्भ हुआ। उस समय वेद, पुराण, आगम, निगम ने शिवजी की स्तुति की तथा बाजे बजने लगे। इसी समय सूर्य के पुत्र शनिश्चर गणपति को देखने को आये। शिव, विष्णु, ब्रह्मा, धर्मराज तथा चन्द्रमा की स्तुति कर, उनसे आज्ञा ले शनिदेव मन्दिर के अन्दर गये तथा प्रथम द्वार पर पहुँचे। वहाँ द्वारपालों ने उन्हें जाने से रोक दिया। तब शनिश्चर ने द्वारपालों से कहा—"तुम हमको मत रोको, हम लड़के को देखने के लिए जाते हैं।" द्वारपालों ने उत्तर दिया—"हम गिरिजा की आज्ञा बिना तुम्हें अन्दर नहीं जाने देंगे। हमको शिवजी की शपथ है। अस्तु तुम यही खड़े हो। तब तक हम गिरिजा से आज्ञा लिये आते हैं।" यह कहकर एक द्वारपाल गिरिजा से आज्ञा लेने अन्दर गया। कुछ समय पश्चात् गिरिजा की आज्ञा से शनिश्चर अन्दर गये। शनिश्चर ने गिरिजा की स्तुति की तथा गिरिजा ने आशीर्वाद दिया और यह पूछा—"हे शनिश्चर ! इसका क्या कारण है कि तुम आधा सिर झुकाकर देखते हो, तुम लड़के को अच्छी तरह क्यों नहीं देखते? क्या तुमको हमारा यह आनन्द अच्छा नहीं लगा?"

हे नारद ! शनिश्चर ने गिरिजा के ऐसे वचन सुनकर कहा—"हे गिरिजे ! भाग्य अत्यन्त बलवान् है। सब मनुष्य संस्कार के आधीन हैं तथा शुभ-अशुभ कर्म दोनों लोकों से दूर नहीं किये जा सकते। स्वर्ग-नरक, जन्म-मरण, आकाश-पाताल, देवता-मनुष्य, आवागमन, धन की पूर्णता, दरिद्रता, कुल-अकुल, पुत्रहीन, सपुत्र आदि सब भाग्य के ही व्यवहार हैं। इसी प्रकार हम भी अपने भाग्य द्वारा आधे देखने वाले हो गये हैं। हम जिस कारण ऊपर दृष्टि नहीं कर सकते, उसकी कथा सुनिये। यद्यपि वह कथा इस योग्य नहीं है कि ढिठाई से सुनायी जाए, फिर भी आप मेरी माता हैं तथा मैं आपका पुत्र हूँ। मैं बचपन से ही शिवजी का भक्त होकर उन्हीं के ध्यान एवं तप में संलगन रहकर, उन्हीं के नाम का जप करता था। जब मैं यौवनावस्था को प्राप्त हुआ, तब

मेरे पिता ने मेरा विवाह कर दिया। चित्ररथ की कन्या ने, जो मेरी पत्नी थी, मेरी बड़ी सेवा की। संयोग से ऋतु के दिनों से निश्‍चिंत होकर उसने स्नान तथा श्रृंगार किया और तिरछी चितवन किये, हँसती हुई मेरे पास आयी और बोली कि मुझको देखो और मेरी इच्छा की पूर्ति करो। मैंने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया तथा उसी प्रकार शिवजी के ध्यान में लगा रहा। उस समय मैं बहुत बुद्धिहीन था। मैंने उसके गूढ़ शब्द को न सुना। जब उसने अपने मनोरथ को सिद्ध होता हुआ न देखा, तब उसने मुझे यह शाप दिया—''तुमने बुद्धिमान् होते हुए भी अपना धर्म न जानकर ऐसा भारी पाप किया है जो अपराध तुमने किया, उस पर विचार तक नहीं किया। इसलिए मैं तुमको शाप देती हूँ कि तुम शुभ न होगे। तुम जिसको नेत्रों से अच्छी तरह देखोगे, वह जड़-मूल से जलकर भस्म हो जाएगा।'' यह कहकर वह मेरे पास खड़ी रही। तब मैंने शिवजी का ध्यान छोड़कर उसे उत्तर देते हुए कहा—''हे प्रिय ! मैं ऐसे शाप को सहन नहीं कर सकता।'' यह वचन सुनकर मेरी पत्नी दुःख एवं नम्रता से अत्यन्त लज्जित हुई, परन्तु मेरे मन में किसी प्रकार का खेद न हुआ। मैंने यह शाप धारण कर लिया। मैं उसी दिन से किसी वस्तु को अच्छी प्रकार आँख उठाकर नहीं देखता; क्योंकि मुझे जीव के निर्जीव होने का भय हर समय बना रहता है?''

हे नारद ! शनिश्चर के यह वचन सुनकर गिरिजा अपनी सखियों सहित बहुत हँस कर बोली—''हे शनिश्चर ! तुम हमारे पुत्र को भली-भाँति देखो।'' शनिश्चर यह सुनकर दुविधा में पड़े कि गिरिजा के पुत्र को देखूँ या न देखूँ ; यह विचार करते हुए उन्होंने दाहिने नेत्र के कोने से बालक की ओर देखा। उसी समय गिरिजा के पुत्र का सिर उड़ गया। पार्वती यह दशा देख रोने-बिलखने लगीं तथा शनिश्चर को बुरा-भला कहने लगीं। उन्होंने लड़के का शरीर हृदय से लगा लिया और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यह दशा देखकर सब स्त्रियाँ भी रोने लगीं। रोने-पीटने का यह शब्द सुनकर विष्णु आदि देवता

आश्चर्य के साथ मन्दिर के अन्दर गये तथा वहाँ सब दृश्य देखा। शिवजी भी संसारी मनुष्यों के समान रुदन करने लगे।''

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! गिरिजा चैतन्य होकर पुनः खेद एवं दुःख से मूर्च्छित हो गयीं। हम सबने उन्हें फिर किसी उपाय से सचेत किया। तब विष्णु तथा मैंने हर प्रकार से गिरिजा को समझाते हुए यह कहा कि संसार का सम्बन्ध ही क्या है? यह सब सम्बन्ध केवल मोह के ही कारण हैं।'' यह सुनकर गिरिजा ने दुखित होकर कहा—''अब मेरा जीवित रहना कठिन है। मैंने देवताओं की युक्ति को कुछ भी न समझा। मैं अभी तीनों लोकों को जलाकर भस्म कर दूँगी, क्योंकि मेरे दुःखी रहते कोई सुखी नहीं रह सकता। यदि मेरा पुत्र सजीव होकर नहीं उठेगा तो संसार भर को सुख न मिलेगा।'' यह कहकर गिरिजा पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ीं तथा अचेत हो गयीं। उस समय सब चित्र लिखे के समान चुप हो गये तथा शिव के पास पहुँचकर बहुत ही लज्जा से बोले—''हे प्रभो ! यह क्या हुआ, जिससे हम सबको दुःख प्राप्त हुआ है? अब आप ऐसा कोई उपाय बताइए, जिससे बालक पुनः जीवित हो उठे तथा उससे तीनों लोकों को आनन्द प्राप्त हो।'' यह सुनकर शिवजी बोले—''हे देवताओ ! जो होनहार है, वह रुक नहीं सकता।'' फिर वे विष्णु से बोले—''हे विष्णु ! तुम हमारे मुख्य रूप हो। वेदों ने हमारी तुम्हारी समानता बतायी है। अब तुम किसी और का शीश काटकर बालक को लगा दो, तो बालक जीवित हो उठेगा।''

हे नारद ! शिवजी का आदेश पाकर विष्णु जी तुरन्त गरुड़ पर चढ़कर चले तथा उत्तर दिशा की ओर चक्र लिये हुए पहुँचे। उन्होंने पुष्पभद्रा नदी के तट पर वन में एक हाथी को हथिनी तथा बच्चों सहित देखा। हाथी अपने परिवार सहित उत्तर की ओर सिर किये सो रहा था। अस्तु, विष्णु ने तुरन्त ही उस हाथी का सिर चक्र से काट कर

गरुड़ पर रख लिया। जब विष्णु जी ने वहां से चलना चाहा, तभी हथिनी जग पड़ी। उसने चिल्लाकर अपने बच्चों को जगाया तथा विलाप करने लगी। सबने जागकर विष्णु जी को चारों ओर से घेर लिया तथा उत्तम रीति से उनकी स्तुति करके कहा—"हे विष्णु ! यह आपने क्या किया? आप तो धर्म स्वरूप हैं। यदि आप हमारे स्वामी गजराज को जीवित नहीं करते तो हम सबके मारने का अपराध आप पर लगेगा।" तब विष्णु जी ने प्रसन्न होकर हाथी के धड़ से एक और शीश लगा कर उसे जीवित कर दिया और कहा—"तुम एक कल्प तक जीवित रहोगे।" इस प्रकार विष्णु जी वहाँ से हाथी का सिर लेकर लौटे तथा गिरिजा के पास जाकर वह सिर दे दिया। गिरिजा ने इस शिश को युक्तिपूर्वक गणेश जी के धड़ से जोड़ दिया तथा शिवजी ने अपनी दया दृष्टि से उन्हें जीवित कर दिया। यह देखकर गिरिजा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने तुरन्त ही उस बालक को दूध पिलाया तथा बहुत प्यार करके विष्णु जी की प्रशंसा की। वे बोलीं—"हे विष्णु ! तुम शिव रूप तथा तीनों लोकों को आनन्द प्रदान करने वाले हो।" तब विष्णु जी ने प्रसन्न होकर अपने गले की कौस्तुभ मणि निकाल कर उस लड़के को पहना दी। इसी प्रकार हिमाचल, देवता, मुनि आदि सब लोगों ने अनेक आशीर्वाद दिये। उस समय ऐसा बड़ा उत्सव किया गया, जिसे देखकर सारी सृष्टि प्रसन्न हो गयी। देवताओं ने दुन्दुभी बजायी। गिरिजा भी अपने लड़के को खिलाने तथा प्यार करने में मग्न होकर, आनन्द सागर में डूब गयीं।"

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शनिश्चर लज्जा के कारण चुपचाप चिन्तायुक्त एक कोने में बैठा था। संयोग से गिरिजा ने उसे देख लिया।" तब वे बोलीं—"हे शनिश्चर ! तुमने अपनी दृष्टि से हमारे पुत्र का सिर उड़ा दिया, इसलिए मैं तुमको यह शाप देती हूँ कि तुम भी

अंगहीन हो जाओगे।'' यह सुनकर सूर्य, कश्यप तथा यमराज को क्रोध आ गया। उन्होंने क्रोधावेश में गिरिजा को शाप देना चाहा। उसी समय विष्णु ने मुझसे तथा अन्य देवताओं से ये कहा कि तुम लोग इनकी सेवा करके, इन्हें शान्त करो। तब मैं अन्य देवताओं के साथ उनको समझाने का प्रयत्न करने लगा। उस समय कश्यप ने कहा— ''मेरा पोता शनिश्चर निर्दोष है। गिरिजा ने इसके मना करने पर भी स्वयं अपने लड़के को दिखलाया था। इसमें शनिश्चर का क्या अपराध है? मैं भी अब गिरिजा को अपना ब्रह्म तेज़ दिखलाता हूँ, जिससे गिरिजा के पुत्र का अंग-भंग होगा।'' यमराज ने कहा— ''शनिश्चर को गिरिजा ने किस अपराध में शापित किया है? हम भी गिरिजा को शाप देते हैं, क्योंकि शत्रु के मारने में कोई दोष नहीं।'' यह सुनकर मैंने यमराज को समझाते हुए कहा कि ऐसा मत करो। मेरे ऐसे वचन सुनकर यमराज का क्रोध शान्त हो गया। तब गिरिजा ने भी शान्त होकर शनिश्चर से कहा कि तुम सब ग्रहों के अधिपति होकर शिव के प्यारे तथा अमर हो जाओ। हमारे वर से तुम शिव के अनन्य भक्त होगे। यद्यपि हमारे अपराध से खण्डित अवश्य हो जाओगे, परन्तु तुमको कोई दुःख एवं कष्ट न होगा। यह कहकर गिरिजा भीतर चली गयीं।

हे नारद ! जब विष्णु ने गणेश के नया सिर लगा दिया और वे पुनः जीवित हो गये, उस समय आनन्द-मंगल तथा नृत्य-गायन होने लगे। सब ने गणपति को अपने भूषण दिये। तब तीनों देवता एक साथ बोले—''हे पुत्र ! सर्वप्रथम तुम्हारी ही पूजा हुआ करेगी, जिससे वह कार्य बिना किसी विघ्न-बाधा के पूर्ण होगा। तुमको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा तथा तुम परम सिद्धि देने वाले होगे।'' हे नारद ! इस प्रकार हमने अति कृपा करके गणेश को अपने समान कर लिया। फिर समस्त देवताओं की सम्पत्ति से गणपति के ये नाम रखे गये। लम्बोदर, एकदन्त, विघ्नेश, शूपकर्ण, हेरम्ब, गणेश, गजवदन तथा विनायक। इस प्रकार उनके अनेक नाम हैं। फिर सबने गणेश जी को बहुत सी वस्तुएं भेंट कीं। शिवजी ने योग तथा ब्रह्म ज्ञान दिया, जो हर समय

प्रसन्नता प्रदान करता है। विष्णु जी ने देवताओं सहित गणपति की बड़ी स्तुति की। इस कथा को जो मनुष्य त्रिकाल में पढ़े तो उस पर कभी भी किसी प्रकार की आपत्ति न पड़े, न उसे किसी समय भय प्राप्त हो और यदि विदेश यात्रा के समय पढ़े तो उसका उद्योग सफल हो और उसके सब कष्ट दूर हो जाएँ। यह कथा बड़ी फलदायक है।

हे नारद ! इसके पश्चात् शनिश्चर ने विष्णु जी से निवेदन किया कि आप गणपति के तेज के विषय में वर्णन करें। विष्णु ने शनिश्चर की यह विनती सुनकर गणपति का कवच कह सुनाया। हे नारद ! गणपति का यह कवच अत्यन्त गुप्त एवं सिद्ध है। फिर विष्णु जी तथा मैं दोनों वहाँ से विदा होकर घर को गये। इतनी कथा कहकर सूत जी बोले कि हे शौनक ! नारद जी ने यह कथा सुनकर सन्देह करते हुए कहा—"हे पिता ! मैंने गणपति की कथा और प्रकार से सुनी है तथा आपने और ही रीति से इसका वर्णन किया है। मैंने सुना था कि गणेश जी को गिरिजा ने अपने शरीर के मैल से उत्पन्न किया था तथा शिवजी ने स्वयं ही उनका सिर काट डाला था। अस्तु, आप मुझे यह बतावें कि यह कहाँ तक सत्य है?"

ॐ ॐ ॐ

बाईसवाँ अध्याय

नारद की इस शंका को सुनकर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! कल्प भेद से दूसरी रीति से गणपति ने जिस प्रकार जन्म लिया, उस कथा को मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जब शिव ने गिरिजा के साथ विवाह किया तथा उनको घर ले आये और दैत्यों का वध करने के पश्चात् विहार में संलग्न हुए, तब संयोग से एक दिन गिरिजा की सहेलियों ने उनसे यह कहा कि देखो शिवजी के असंख्य गण हैं ; परन्तु तुम्हारे एक भी नहीं है। यद्यपि शिवजी के गण तुम्हारे अधीन हैं ; परन्तु तुम भी कोई गण उत्पन्न कर, उनको अपने द्वार का द्वारपाल बनाओ, जिससे उस गण की रक्षा के द्वारा किसी अन्य गण का अन्दर आने-जाने का कोई भय

न रहे। तब गिरिजा ने प्रसन्न होकर यह कहा—"सखियो ! समय आने पर ऐसा ही होगा।" हे नारद ! एक बार गिरिजा नन्दी को द्वार पर रक्षा के निमित्त बैठा, आप स्नान करने गयीं। उस समय शिवजी लीला करके द्वार पर आये तथा इच्छी की कि हम अन्दर जाएं, परन्तु नन्दी ने उन्हें अन्दर जाने से रोक दिया। तब शिवजी नन्दी को धमकाकर अन्दर चले गये। गिरिजा शिवजी की ऐसी दशा देख अन्य स्त्रियों की भाँति अत्यन्त लज्जित हुईं तथा लज्जावश अपने शरीर को छिपाती हुई भाग गयीं। उस समय उन्होंने अपनी सहेलियों के वचन का स्मरण किया। फिर कई दिनों के पश्चात् गिरिजा ने इच्छा की कि एक ऐसा गण उत्पन्न होना चाहिए, जो मेरे अधीन हो तथा अत्यन्त बलवान्, पराक्रमी और शिव के गणों से भी अधिक तेजस्वी हो। यह विचार कर गिरिजा ने अपने शरीर से मैल निकाल, एक मूर्ति स्थापित की तथा उसे गणपति नाम देकर जीवन दान दिया। वह बालक अत्यन्त सुन्दर, रूप के सागर के समान उत्पन्न हुआ। उस समय गिरिजा अत्यन्त प्रसन्न होते हुए बोलीं कि तुम हमारे पुत्र तथा श्रेष्ठ गण हो। फिर उसके साथ लाड़-प्यार किया तथा अत्यन्त प्रसन्न होकर आभूषण एवं वस्त्र दिए। तब गणपति ने गिरिजा को प्रणाम करते हुए कहा—"हे माता ! आप जो काम मुझे सौंपेंगी, मैं उसे भली-भाँति पूरा करूँगा।" यह सुनकर गिरिजा ने कहा—"हे पुत्र ! तुम हमारे द्वारपाल हो जाओ। हमारी आज्ञा बिना कोई भी अन्दर न आने पावे।" इतना कहकर गिरिजा ने गणपति को हृदय से लगाकर द्वार पर बैठा दिया।

हे नारद ! गणेश जी गिरिजा के आदेशानुसार हाथ में डंडा लेकर द्वार पर बैठे। तदुपरान्त गिरिजा ने स्नान का विचार कर, सब सेवकों से सामग्री एकत्र करने को कहा तथा स्नान करने के लिए बैठीं। इतने में ही शिवजी गणों सहित वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने गणों को बाहर छोड़कर अन्दर जाने की इच्छा की ; परन्तु गणपति ने उनको रोकते हुए कहा कि अभी अन्दर जाने का समय नहीं है, क्योंकि इस समय मेरी माता स्नान कर रही हैं। यह कहकर उन्होंने अपने डंडे को आगे कर, शिवजी को आगे बढ़ने से रोक दिया। तब शिवजी ने उनसे कहा कि तुम कौन

हो जो मुझे नहीं पहचानते तथा मुझको भीतर नहीं जाने देते। हम गिरिजा के पति शिव इस मन्दिर के स्वामी हैं। तुम किसके पुत्र हो? यह कहकर शिवजी अन्दर को चले। यह देखकर गणपति ने तुरन्त ही अपना डंडा शिवजी को मारा तथा कहा—"तुम कौन शिव हो और किस कार्य के लिए हमारी माता के पास जाते हो? हम बिना अपनी माता की आज्ञा के किसी को भी, चाहे वह कोई भी क्यों न हो, अन्दर नहीं जाने देंगे।" परन्तु शिवजी इन शब्दों की कोई भी चिन्ता न कर कर अन्दर जाने लगे, तब गणपति ने पुनः उनको डंडा मारा। तब उन्होंने अपने सब गणों को बुलाया और कहा कि तुम जाकर इससे पूछो कि यह कौन है? शिवजी की आज्ञानुसार गणों ने आकर गणपति से पूछा तो गणपति ने उत्तर दिया कि हम गिरिजा के पुत्र हैं, तुम लोग कौन हो जो हमसे यह पूछने आये हो? यह सुनकर गणों ने शिवजी से सारा वृत्तान्त कहते हुए कहा—"हे प्रभो ! वह वहाँ से नहीं उठता।" तब शिवजी ने गणों को यह आज्ञा दी कि तुम इसे द्वार से हटा दो। उस समय गणों ने गणपति को उठाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वे न उठे। परस्पर झगड़ा होने लगे। इसी समय शिवजी वहाँ आ गये तथा भीतर से गिरिजा ने भी यह कोलाहल सुनकर अपनी सहेलियों को भेजते हुए कहा कि तुम बाहर जाकर देखो कि वहाँ क्या हो रहा है।"

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! वहाँ से लौटकर सहेलियों ने आँखों देखा सब हाल गिरिजा को सुना दिया और कहा—"न जाने शिवजी की क्या आदत है कि वे सदैव कुसमय आया करते हैं।" यह सुनकर गिरिजा ने अपनी सहेलियों से कहा कि तुम गणपति से जाकर कह दो कि शिव इस समय किसी प्रकार भी भीतर न आने पावें। सहेली ने तुरन्त ही यह आज्ञा गणपति को जाकर सुना दी। तब गणपति ने शिवजी के गणों से कहा कि मेरी आज्ञा के बिना बलपूर्वक तुम्हारा भीतर जाना असम्भव है, मैं सब तरह से तैयार हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो

वह करो। शिवजी के गण गणपति के ऐसे शब्द सुनकर दुःखी हुए तथा शिवजी के पास जाकर उन्होंने सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब शिवजी ने कहा कि वह तो अकेला और तुम इतने हो, सब एकत्र होकर उससे युद्ध क्यों नहीं करते? शिवजी इतना कहकर चुप हो गये।

हे नारद ! शिवजी की लीला कैसी अद्भुत है कि जो शिवजी केवल एक बाण द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि को नष्ट कर सकते हैं, वही शिव अपने पुत्र के साथ लीला करके युद्ध की इच्छा रखते हैं। अस्तु, शिवजी की आज्ञा पाकर सब गण शस्त्र आदि लेकर गणपति के समीप पहुँचे और बोले—"हे बालक ! तू क्या चाहता है, अब तू जलकर भस्म हो जाएगा। अब तक हमने तेरी ढिठाई सहन की है, परन्तु अब सहन नहीं कर सकते।" यह सुनकर गणपति ने सहनशीलतापूर्वक उत्तर दिया—"तुम ऐसी बढ़-चढ़ कर बातें क्यों करते हो? तुम तो बड़े वीर मालूम होते हो, मैं तो एक अज्ञान बालक हूँ। मैंने कभी किसी युद्ध को आँखों से देखा तक नहीं है और तुम अनेक युद्धों में भाग ले चुके हो, फिर भी मैं युद्ध से मुख न मोड़ूँगा।" शिवजी गिरिजा-पुत्र के इस बल एवं धीरता को देखकर धन्य-धन्य कहने लगे, परन्तु शिव के गणों ने यह सुनकर गणपति पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से घोर युद्ध होने लगा। शिवजी के गणों ने शूल, बाण आदि सब शस्त्र गणपति के ऊपर चलाये, परन्तु गणपति ने उन्हें अपने दंडे से ही काट डाला तथा सब को युद्ध भूमि से भगा दिया। शिवजी के गणों ने कहा—न जाने इस छोटे-से बालक ने यह वीरता कहाँ से प्राप्त की है? इसके पश्चात् उन सब ने गणपति को पुकारकर कहा कि अब तक तो हमने तुमको बच्चा समझकर छोड़ दिया, परन्तु अब नहीं छोड़ेंगे। यह कहकर उन्होंने गणपति पर अनेक शस्त्रों द्वारा आक्रमण किया। गणपति ने भी उनके आक्रमणों का उत्तर दिया। तब दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ, परन्तु वे पराजित होकर वहाँ से भाग गये तथा गणपति उसी प्रकार द्वार पर बने रहे।"

❁❁❁

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी ने ऐसी विचित्र लीला करके अपने गणों का गर्व दूर कर दिया तथा अपनी शक्ति प्रकट करके दिखायी कि तीनों भुवन उनकी शक्ति के आधीन हैं। हे नारद ! तब इसके पश्चात् जब तुमने यह हाल विष्णु लोक में जाकर विष्णु से कहा तो इस पर विष्णु जी आश्चर्य करने लगे। फिर मैं, देवता तथा विष्णु जी आदि ने शिवजी के समीप पहुँच कर उन्हें प्रणाम किया तथा विनय के साथ कहा—"हे सदाशिव ! इस समय आपने कौन-सी लीला कर रखी है?" तब शिवजी ने उत्तर दिया—"हमारे द्वार पर एक विकट बालक खड़ा है, वह प्रलय कर देगा। इसलिए तुम जाकर किसी प्रकार उसको प्रसन्न करो।" यह सुनकर हम सबने कहा—"हे प्रभो ! यह सब आपकी ही लीला है कि एक बालक इस प्रकार युद्ध कर रहा है।" यह कहकर सब लोग गणपति के पास गये। गणपति ने हम सबको आते हुए देख एक बाल उखाड़ लिया और उससे हमें मारने की इच्छा प्रकट की। यह देखकर हम लोगों ने उनके पास जाकर यह कहा कि आप हमें क्षमा कर दें, हम में से कोई भी आपसे युद्ध करने की इच्छा नहीं रखते। मैंने इतना ही कहा था कि गणपति ने तुरन्त अपने दंडे को सम्हाल लिया। उस समय हम सब लोग वहाँ से लौट कर शिवजी के पास गये। तब शिवजी ने क्रोधित होकर इन्द्रादि से कहा कि तुम जाकर उस बालक का वध करो, जिससे तुम्हें यश प्राप्त होगा। शिवजी की आज्ञा पाकर इन्द्र आदि देवताओं ने युद्ध के लिए तत्पर होकर गणपति के ऊपर बाण तथा अन्य शस्त्रों की वर्षा की। उसी समय शिव तथा गिरिजा ने दो शक्तियाँ उत्पन्न कीं ; जो तुरन्त युद्ध स्थल में पहुँचकर दोनों ओर के शस्त्र अपना मुँह खोलकर निगल जाती थीं। जिस प्रकार पर्वत समुद्र के बीच में स्थिर रहता है, उसी प्रकार अकेले गणपति ने समस्त सेना को दुःखी कर दिया। तब सब देवता निःशस्त्र हो, खाली हाथ युद्ध स्थल में खड़े रहे और बोले कि अब हम क्या करें, हमारे पास तो कोई शस्त्र भी नहीं रहा। उस समय केवल

वीरभद्र को यह दिखाई देता था कि दोनों शक्तियों ने प्रकट हो कर देवताओं को इस प्रकार दुःखी किया है।

हे नारद ! अन्त में तुमने देवताओं सहित शिवजी के पास जाकर कहा—"हे प्रभो ! हमको ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब लीला आपकी ही है। यदि आप इस समय कुछ नहीं करते तो अवश्य ही प्रलय हो जाएगा।" तब शिवजी की आज्ञानुसार इन्द्र, वरुण, यमराज आदि ने पहुँचकर गणपति के ऊपर अपने शस्त्रों से आक्रमण किया ; परन्तु वे सब व्यर्थ हो गये। तब सब देवताओं ने वहाँ से भागकर शिवजी के चरणों में शरण पायी। हे नारद ! उस समय तुमने शिवजी से कहा—"हे शिवशंकर ! आप संसार को उत्पन्न करने वाले हैं। यदि गिरिजा का यह गण जीवित रहा तो प्रलय कर देगा। इसलिए आप इस गण का सिर काट लीजिए। यह कहकर तुम चुप हो गये तथा शिवजी यह सुनकर हँसने लगे।"

पच्चीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी तुम्हारे यह वचन सुनकर युद्ध के लिए अपने उत्तमोत्तम शस्त्र लेकर तैयार हुए। उन्होंने अत्यन्त क्रोधित होकर विष्णु तथा अन्य प्रसिद्ध गणों को साथ लेकर अपना डमरू बजा दिया। डमरू की ध्वनि सुनकर वे समस्त देवता, जो कई बार युद्ध भूमि से पराजित होकर भाग गए थे, पुनः वीरता से गर्जन करने लगे। विष्णु जी ने स्वयं भी गणेश से युद्ध किया। जो शस्त्र विष्णु ने गणपति के ऊपर प्रलय की अग्नि के समान चलाया, उसे गणेश जी ने अपने डंडे से दो खंडित कर डाला। तब विष्णु जी ने देर तक युद्ध करने के पश्चात् शिवजी से कहा—"हे प्रभो ! अब मैं इस गण का वध कर डालता हूँ।" शिवजी बोले—"बहुत अच्छा।" तब गणपति ने उस समय इतनी वीरता दिखायी कि सब देवता युद्ध भूमि से पीठ दिखाकर भाग गये। ये देखकर विष्णु जी ने अपने मुख से

गणेश की प्रशंसा करते हुए कहा कि तुम्हें अनेक धन्यवाद हैं, क्योंकि आज तक कोई भी इतनी वीरता से हमारे साथ नहीं लड़ा है। विष्णु जी ने यह कह ही रहे थे कि गणपति ने अपना परिघ उठाकर मारा, परन्तु विष्णु जी ने अपने परिध से उसे काट डाला। फिर गणपति ने एक शस्त्र विष्णु जी के छाती में मारा, जिसको विष्णु जी सहन न कर सके तथा धरती पर अचेत होकर गिर पड़े। उस समय चारों ओर हाहाकार मच गया; परन्तु थोड़ी देर पश्चात् विष्णु जी शिवजी की कृपा से पुनः उठ खड़े हुए। इसी प्रकार बहुत देर तक दोनों में युद्ध होता रहा, परन्तु दोनों में से कोई किसी को परास्त न कर सका। निदान विष्णु जी ने गणपति पर एक साथ असंख्य बाणों की वर्षा की तथा अपनी विजय के विचार से अपना शंख बजाया। इनके शंख की ध्वनि सुनकर सब देवता लौटकर फिर युद्ध करने लगे। फिर एक साथ सब देवताओं ने गणपति पर आक्रमण कर दिया, परन्तु गणपति ने गिरिजा का स्मरण करके अपनी मुष्टिका द्वारा सब देवताओं के शस्त्र व्यर्थ कर डाले तथा इतने वेग से अपने शस्त्र चलाये, जो किसी को दिखाई न देते थे। उस समय समस्त देवता आश्चर्यचकित हुए, पृथ्वी काँपने लगी तथा पर्वत हिलने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि अब प्रलय होने ही वाला है। तब विष्णु जी सबको दुःखी देख तथा प्रलय के चिह्न देखकर तुरन्त गणपति पर कूद पड़े तथा वेग से दौड़कर गणपति का सिर चक्र से काट डाला। यह देखकर मैं तथा अन्य सभी देवता आदि निर्भय होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा शिवजी की स्तुति करने लगे।''

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! तब तुमने युद्ध का विस्तार इस प्रकार से प्रकट कर कहा—''हे गिरिजे ! देवता कितने दुष्ट हैं कि उन्होंने आपके पुत्र का वध निर्दयता के साथ कर डाला है। उन्होंने आपके प्रताप एवं तेज का कोई विचार नहीं किया। अस्तु, आपको अब यही उचित है कि आप अपना तेज देवताओं को दिखा दें, जिससे

वे अपने कर्मों का फल पावें तथा आपकी भी कीर्ति बनी रहे।'' यह कहकर तुम वहाँ से चले गये। अस्तु, गिरिजा तुम्हारे मुख से अपने गण की यह दुर्दशा सुन रो उठीं तथा शोकाकुल हो मूर्च्छित हो गयीं। फिर अपने शरीर से उन्होंने सौ शक्तियाँ उत्पन्न कीं और सोचा कि उन शक्तियों के द्वारा समस्त सेना को नष्ट कर डालें। उन शक्तियों का स्वरूप बहुत ही उग्र था, शरीर महाविकराल तथा अंग-वदन बहुत ही भयानक थे। उन्होंने हाथ जोड़कर गिरिजा से निवेदन किया कि आप हमें जो आज्ञा दें, हम उसे पूरा करेंगे। तब गिरिजा ने क्रोधावेश में उनसे कहा कि जितने देवता सेना में हैं, तुम उन सबको खा जाओ, एक भी शेष न बचने पावे, क्योंकि उन्होंने हमारे पुत्र को मारा है। अस्तु, गिरिजा के आदेशानुसार वे सब शक्तियाँ युद्ध स्थल में पहुँचकर देवताओं का भक्षण करने लगे। उस समय विष्णु जी, मैं तथा समस्त देवता दुःखी होकर कहने लगे कि वास्तव में प्रलय काल आ गया है अथवा शिवजी ने अपनी शक्ति प्रकट की है। यह कहकर हम सब ने शिवजी की ओर दृष्टिपात किया।

हे नारद ! उस समय तुमने शिवजी की आज्ञा से सब लोगों से यह कहा कि जब तक गिरिजा को प्रसन्न न किया जायेगा, तब तक यह प्रलय रूपी कष्ट किसी प्रकार भी दूर न होगा। यह सुनकर हम तथा सब देवता गिरिजा के समीप जाकर ; हाथ जोड़ मस्तक झुका; स्तुति करने लगे तथा यह निवेदन किया—''हे गिरिजे ! वास्तव में हम सब अपराधी हैं। अब आप हम सबको क्षमा करें।'' यह सुनकर गिरिजा ने उत्तर दिया—''हे देवताओ ! यदि हमारा पुत्र जीवित हो जाए तथा समस्त देवता पहले उसकी पूजा करें तब हम प्रलय नहीं होने देंगे। यह सुनकर देवताओं ने यह हाल शिवजी से जाकर कहा। उसे सुनकर शिवजी ने गणपति के शरीर को अच्छी तरह धोकर कहा कि उत्तर की ओर जाओ और जो जीव सर्वप्रथम मिले, उसी का सिर काट कर इसके शरीर में जोड़ दो, तब यह जीवित हो जाएगा। शिवजी की आज्ञानुसार विष्णु जी ने जाकर प्रशूलभद्रा नदी के वन में एक हाथी को अपने बच्चे सहित हथिनी के साथ सोते हुए देखा। उन्होंने तुरन्त

हाथी का सिर काट लिया तथा अपने गरुड़ पर रखकर जैसे ही चलना चाहा, उसी समय हथिनी जाग उठी। उसने विष्णु जी की बहुत स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर विष्णु जी ने दूसरा सिर उत्पन्न कर उस हाथी के धड़ से जोड़ दिया, तब वह हाथी भी पुनः जीवित हो उठा। फिर विष्णु जी ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम एक कल्प तक जीवित रहोगे। इसके पश्चात् विष्णु जी हाथी के सिर को लेकर शिवजी के पास पहुँचे तथा उसे गणपति के धड़ से जोड़ दिया। उस समय शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें जीवन दान दिया। इस प्रकार सबके दुःख दूर हो गये तथा आनन्द प्राप्त हुआ।''

ॐ ॐ ॐ

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! गिरिजा ने अपने पुत्र को पुनः जीवित देखकर आनन्दोत्सव मनाया और उन्हें अनेक प्रकार के वस्त्र देकर कहा—''हे पुत्र ! इस समय हम तुम्हारे मस्तक पर सिन्दूर देखती हैं, इसलिए तुम्हारी पूजा सिन्दूर से हुआ करेगी। जो तुम्हारी पूजा करेगा, उसके पास सिद्धियाँ बनी रहेंगी।'' शिवजी ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—''हे देवताओ ! यह हमारा ही पुत्र है, इसका नाम गणपति है।'' गणपति ने भी उठकर सबको प्रणाम किया तथा कहा—''हे देवताओ ! आप मेरा अपराध क्षमा करें।'' तब तीनों देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा—''हे गणपति ! तुम्हारी पूजा हम तीनों देवताओं के समान ही होगी। जो सर्वप्रथम तुम्हारी पूजा न करेगा, उसको पूजा का कुछ भी फल प्राप्त न होगा।'' यह कहकर सबने प्रथम गणपति की पूजा की तथा प्रणाम कर यह वरदान दिया कि तुम भाद्र कृष्ण चतुर्थी को उत्पन्न हुए हो, इसलिए तुम्हारा व्रत चौथ को हुआ करेगा। तुम्हारा व्रत करने वाले भक्त सुखी एवं प्रसन्न रहेंगे। सबको तुम्हारी सेवा से आनन्द प्राप्त होगा और सबको तुम्हारी पूजा आदि करनी चाहिए। इसके पश्चात् विष्णु जी तथा अन्य सब देवताओं ने गणपति की अत्यन्त उत्तम एवं पवित्र स्तुति की।'' इतनी कथा सुनाकर सूत जी

बोले—"हे मुनियो ! जब ब्रह्मा जी इतना कह चुके तो वे अत्यन्त आनन्द में मगन हो गये। उसी आनन्द में उन्होंने गणेश की एक स्तुति बना कर नारद को सुनायी। फिर कहा—"हे नारद ! इसके पश्चात् शिवजी से विदा होकर समस्त देवता वहाँ से चले गये।"

ॐ ॐ ॐ

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! गिरिजा के दोनों पुत्र स्कन्द तथा गणपति नित्य प्रातःकाल उठकर शिवजी तथा गिरिजा को प्रणाम करते थे। दोनों भाइयों का दिन-प्रतिदिन प्रेम बढ़ने लगा। एक दिन शिवजी गिरिजा से बोले—"हे गिरिजा ! हमारी यह प्रबल इच्छा है कि अब हमारे पुत्रों के विवाह हो जाएं। हमको स्कन्द एवं गणपति दोनों समान रूप से प्रिय हैं। अस्तु, पहले हम किसका विवाह करें?" उस समय माता-पिता से विवाह की चर्चा सुनकर स्कन्द एवं गणपति दोनों परस्पर झगड़ने लगे। स्कन्द कहने लगे कि पहले हमारा विवाह होना चाहिए और गणपति कहते थे कि पहले हमारा। यह देखकर शिव एवं गिरिजा ने दोनों को बुलाकर कहा कि तुम दोनों समवयस्क हो। हम तुमसे इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि तुम दोनों में से जो सर्वप्रथम सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके लौट आएगा, उसी का विवाह हम पहले कर देंगे। यह सुनकर दोनों भाई पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए चल दिये। तभी गणपति ने यह सोचा कि मुझ में इतनी शक्ति नहीं है कि मैं संसार भर की शीघ्र परिक्रमा कर सकूँ, तब मैं क्या करूँ? उसी समय उन्हें एक युक्ति सूझी। वे स्नान कर माता-पिता के सम्मुख खड़े हुए तथा विनती की कि हम आपकी पूजा करेंगे। अस्तु, आप पूजन के स्थान पर बैठिये। यह सुनकर शिवजी एवं गिरिजा दोनों पूजा के आसन पर बैठ गये। तब गणपति ने उनकी परिक्रमा कर, उन दोनों की यथा विधि पूजा की। उस समय माता-पिता ने कहा—"हे गणपति ! स्कन्द तो संसार की परिक्रमा करने के लिए जा चुके, अब तुम भी परिक्रमा के लिए जाओ।" यह सुनकर गणपति ने विनय की

कि हे माता-पिता क्या मैंने पृथ्वी की परिक्रमा नहीं कर ली? आप धर्म मूर्ति होकर ऐसा क्यों कहते हैं। शिव-गिरिजा ने गणपति के मुख से ऐसे वचन सुनकर आश्चर्यचकित होकर कहा—"हे गणपति ! तुम संसार की परिक्रमा कब कर आये?" तब गणपति ने यह उत्तर दिया—"आपको वेद त्रिभुवन का रूप मानते हैं, सो मैंने आपकी परिक्रमा कर क्या तीनों लोकों की परिक्रमा नहीं की? इसके सिवाय वेद लिखते हैं कि जो मनुष्य माता या पिता की परिक्रमा करता है, उसको संसार भर की परिक्रमा का फल प्राप्त होता है। पुत्र के लिए माता-पिता के चरण ही सबसे बड़े तीर्थ हैं। अब आप या तो वेद के मार्ग को ही त्याग दें, नहीं तो मेरा विवाह कर दें।"

हे नारद ! शिव एवं गिरिजा गणेश के ऐसे चातुर्यपूर्ण वचन सुनकर अत्यन्त चिन्तित हुए तथा उनकी यह चतुराई देखकर प्रसन्नता भी हुई। तब उन्होंने कहा—"हे गणेश ! तुमको शुभ मति उत्पन्न हुई है, इसीलिए तुमने ऐसा धर्म का वाक्य कहा। हम तुमसे कहते हैं कि तुम्हारा यह कथन वेद, पुराण एवं शास्त्रों के समान विश्वास के योग्य प्रमाणित माना जायेगा। इसके अनुसार हम पहले तुम्हारा ही विवाह करेंगे।" तब शिवजी की इच्छा जानकर विश्व रूप ने अपनी दो पुत्रियों को, जिनका नाम सिद्धि एवं ऋद्धि था, गणपति के साथ विवाह किया। विवाह में उसी प्रकार सब बातें हुईं, जिस प्रकार शिवजी के विवाह में हिमाचल की ओर से हुई थीं। ऐसी सुन्दर तथा कुशल स्त्रियाँ पाकर गणपति अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ समय के पश्चात् गणपति के दो पुत्र उत्पन्न हुए। सिद्धि से क्षेम तथा ऋद्धि से लाभ उत्पन्न हुए। समस्त संसार में उनके समान कोई पंडित तथा कलाकार न हुआ। इतने ही में स्कन्द भी सम्पूर्ण संसार की परिक्रमा पूरी कर लौट आये। हे नारद ! उस समय तुमने पहले स्कन्द को बहुत भड़काया तथा यह कहा—"हे स्कन्द ! देखो, तुमको माता-पिता ने बहकाकर तुम्हारे पीछे गणपति का विवाह कर दिया। गणपति ने दो स्त्रियों से दो पुत्र भी उत्पन्न किये हैं। मेरी समझ में तो उन्होंने यह काम

उचित नहीं किया। जो माता-पिता स्वयं ही अपनी सन्तान को बेचें या विष दें या उसका राज्य, धन, द्रव्य आदि लूट लें, तब मनुष्य किसके पास जाकर अपना दुःख कहे? इसमें पुत्र को यही उत्तम है कि वह फिर ऐसे माता-पिता का मुँह न देखे।"

हे नारद ! इस प्रकार की बातें करने से तुम्हारा तेज घट गया। तब स्कन्द अपने माता-पिता के पास गया। वहाँ माता-पिता की स्तुति करने के पश्चात् वे अत्यन्त दुःखी होकर क्रौंच पर्वत पर चले गये। यद्यपि उन्हें वहाँ जाने से माता-पिता ने बहुत रोका, परन्तु स्कन्द जी नहीं लौटे। हे नारद ! शिवजी के चरित्र ऐसे आश्चर्यजनक हैं कि उनको कोई नहीं जान पाता। हे नारद ! स्कन्द जी क्रौंच पर्वत पर जब से स्थित हुए, तब से वहाँ की दशा ही बदल गयी। वह पर्वत यश में वृद्धि करने वाला, पापों को घटाने वाला तथा अत्यन्त आनन्ददायक हो गया। स्कन्द जी तब से उसी पर्वत पर वास करते हैं। उनके दर्शनों से समूल पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक मास की पूर्णमासी के दिन समस्त देवता एवं मुनि एक-साथ वहाँ जाकर स्कन्द के दर्शन करके कृतार्थ होते हैं। जो कोई उस दिन मल्लिकार्जुन के दर्शन करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि शिव एवं गिरिजा ने कई बार क्रौंच पर्वत पर जाकर स्कन्द को मनाकर लौट लाने का प्रयत्न किया, परन्तु स्कन्द जी वहाँ से लौटकर नहीं आए, वरन् शिवजी के आने का समाचार जानकर उन्होंने यही इच्छा की कि वहाँ से कहीं और दूर जाकर वास करें। इसीलिए वे वहाँ से तीन योजन दूर जाकर स्थित हुए। शिवजी वहाँ पर हर पूर्णमासी को जाते हैं। हे नारद ! हमने तुमको स्कन्द तथा गणपति का यह चरित्र सुनाया, जिसके सुनने एवं कहने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। मल्लिकार्जुन स्थान का यश वेद गाते हैं। गणपति के इस चरित्र को जो कोई सुनेगा, वह संसार में आनन्द तथा अन्त में शिवजी के धाम को प्राप्त करेगा।"

इति श्री शिवपुराणे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां चतुर्थो खण्डस्समाप्तः ॥ ४ ॥

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

पाँचवां खण्ड (युद्ध खण्ड)

पहला अध्याय

सूत जी बोले—हे शौनक ! नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—"हे पिता ! अब आप मुझे यह बताइये कि सदाशिव जी ने दैत्यों का किस प्रकार नाश किया?" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जब स्कन्द ने तारकासुर का वध करके देवताओं को आनन्द प्रदान किया, उस समय तडिम्माली, तारकाक्ष तथा कमलाक्ष नाम तारक के तीनों पुत्र कठिन तपस्या में प्रवृत्त हो गये। वे मेरे ध्यान में पहले एक पाँव से खड़े रहे, फिर सौ वर्ष तक केवल जल पीकर तप करते रहे। एक सहस्त्र वर्ष तक वे अंगूठे के बल खड़े रहे। उस समय मैंने उनसे जाकर कहा—"हे तारक के पुत्रो ! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छानुसार वर माँगो।" तब तीनों दैत्यों ने मुझसे यह कहा—"हे ब्रह्मन् ! यदि आप हमसे प्रसन्न हैं तो हमको यह वर दीजिये कि हम किसी के हाथ से न मारे जाएँ।" तब मैं उनसे बोला कि तुम मुझसे यह वरदान मत माँगो; इसके अतिरिक्त अपनी इच्छानुसार कोई भी वस्तु माँगो। यह सुनकर उन तीनों दैत्य-पुत्रों ने विचार कर कहा कि आपकी यदि यही इच्छा है तो इसी स्थान पर एक नगर की स्थापना हो, जहाँ आपकी मूर्ति स्थित हो। इसके अतिरिक्त हम तीनों के लिए अलग-अलग एक-एक नगर और तैयार हो जाए, जो एक-एक सहस्त्र कोस के अन्तर पर हो। वे तीनों नगर हर प्रकार से समान हों। जो कोई उन तीनों नगरों को एक ही बाण से नष्ट करे, वही हमारा वध करने में समर्थ हो। मैंने यह सुनकर कहा—"अच्छा, तुम्हारी इच्छानुसार यही

होगा।'' फिर मैंने उसी समय मयदानव को बुलाकर एक से तीन नगर निर्माण करने की आज्ञा दी और वहाँ से चला गया।

हे नारद ! मयदानव ने मेरी आज्ञानुसार तीनों नगरों का निर्माण किया। प्रत्येक नगर सौ-सौ योजन बड़ा था। उनमें स्वर्ग से भी अधिक आनन्द था। मैंने क्रम से तीनों भाइयों को तीनों नगर बाँट दिये। वे तीनों अपने-अपने नगर में आनन्दपूर्वक निवास करने लगे। तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु न थी, जो उन लोगों को उपलब्ध न हो। उनके पास असंख्य सेना थी। प्रत्येक के घर में शिवालय बने हुए थे, जिनमें सब लोग शिवजी का पूजन करते थे। प्रतिदिन हवन एवं यज्ञ हुआ करते थे। वे तीनों दैत्य भी शिवजी के परम भक्त थे। वहाँ यह नियम था कि कोई भी व्यक्ति बिना शिवजी की पूजा किये भोजन नहीं कर सकता था, क्योंकि उन तीनों दैत्यों ने वहाँ इस बात की घोषणा करवा दी कि सब लोग नित्य नियम से शिवजी का पूजन करें। इसके अतिरिक्त उन नगरों में वेद, पुराण के मत के प्रतिकूल कभी कोई भी बात धर्म के विरुद्ध नहीं होने पाती थी। वहाँ ब्राह्मण रात-दिन शिव के नाम का जप किया करते थे। जब उन दैत्यों का तेज बढ़ने लगा, तब देवता लोग घबराकर बहुत दुःखी हुए। उनके शरीर में जैसे आग लग गयी। उस समय सब मिलकर मेरी शरण में आये तथा बोले—''हे ब्रह्मन् ! अब सब देवता त्रिपुर के तेज से जले जा रहे हैं।''

हे नारद ! मैंने देवताओं के ऐसे वचन सुनकर कहा—''हे देवताओ ! उन्होंने मेरी आराधना तथा कठोर तप करके मुझसे इस प्रकार का वरदान प्राप्त किया है। मैं उनको वेद के विरुद्ध कैसे मार सकता हूँ। वे शिवजी की कृपा द्वारा अनेक प्रकार के आनन्द प्राप्त करते हैं। शिवजी के भक्तों पर किसी भी शस्त्र का प्रभाव नहीं हो सकता। उनकी आराधना को त्यागने से प्रत्येक व्यक्ति नष्ट हो जाता है। मैं तुम लोगों को इसी वर्णन के अनुसार एक इतिहास सुनाता हूँ। हे देवताओ ! रावण तो शिवजी का परम भक्त हुआ है, उसका कोई भी वध न कर सका, विष्णु जी का चक्र भी कुंठित होकर रावण का सिर काटने में असमर्थ रहा, उस समय आकाशवाणी हुई कि हे विष्णु ! यदि रावण

किसी कारणवश शिवजी की सेवा छोड़कर उनके विरुद्ध हो जाए, तो निःसन्देह शिवजी उसकी सहायता न करेंगे। इसलिए तुमको यही उचित है कि अवतार लेकर शिवजी का नाम जपो। जब शिवजी प्रसन्न होकर तुमको अपना बाण देंगे, तब उसी बाण से तुम्हारे हाथों रावण की मृत्यु होगी। यह सुनकर विष्णु जी ने शिवजी की बड़ी पूजा की। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर रावण की उत्तम बुद्धि को नष्ट कर दिया। उस समय विष्णु जी ने भी रामचन्द्र का अवतार लेकर शिवजी की तपस्या की तथा शिवजी से वह बाण प्राप्त किया, जो प्रलय करने वाला था। इस प्रकार उसी बाण द्वारा रावण का वध करके उन्होंने सीता को प्राप्त किया। इसका तात्पर्य यह है कि हम सब मिलकर शिवजी की शरण में चलें और उनके चरण पकड़कर उन्हें प्रसन्न करें तथा उनकी महिमा का वर्णन करें।'' यह निश्चय कर मैं, समस्त देवताओं सहित शिवजी के पास पहुँचे। हम सबने पग-पग पर जय-जयकार तथा बड़ी स्तुति की और यह कहा—''हे प्रभो ! जब-जब देवताओं पर कोई संकट पड़ा है, तब-तब आपने ही उनका दुःख दूर किया है। अब आप हम पर पुनः दया-दृष्टि कीजिए।''

ॐ ॐ ॐ

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! देवताओं ने शिवजी से कहा—''हे सदाशिव ! आप हमारे दुःखों को दूर कीजिये। इस समय दैत्यों ने अत्यन्त बल एवं तेज प्राप्त कर, हम सबको बहुत दुःखी कर रखा है। अब हमसे यह कष्ट सहे नहीं जाते, इसीलिए हम आपकी शरण में आये हैं।'' यह सुनकर शिवजी बोले—''हे देवताओ ! मुझे तुम्हारा सब दुःख कष्ट मालूम हो गया है ; परन्तु त्रिपुर का असुर बड़ा धर्मात्मा एवं दाता है। इन्हीं गुणों के कारण वे सब आनन्दापूर्वक रहते हैं। संसार में पुण्य के समान और कोई अन्य वस्तु इतनी आनन्ददायक नहीं है। जब तक उनका पुण्य वृद्धि पर है, तब तक वे मारे नहीं जायेंगे। हमको

यह उचित नहीं है कि हम अपने भक्तों को व्यर्थ ही नष्ट कर दें। इसके साथ ही हमसे तुम्हारा कष्ट भी नहीं देखा जाता; क्योंकि जो हमारी शरण में आता है, हम उसकी अवश्य ही रक्षा करते हैं। इससे तुमको अब यही उचित है कि तुम विष्णु के पास जाकर अपने सब दुःखों को कहो।

हे नारद ! यह सुनकर सब देवता शिवजी के आदेशानुसार विष्णु जी के पास गए। उन्होंने स्तुति करने के पश्चात् अपने दुःख उनसे कहे तथा हर प्रकार से विष्णु जी की पूजा में प्रवृत्त हुए। तब विष्णु जी ने देवताओं की विनती सुनकर वेद एवं शास्त्रों के अनुसार यह उत्तर दिया—"हे देवताओ ! सनातन से शिवजी की भक्ति एवं पूजा पुण्य प्रदान करने वाली है। शिवजी की पूजा होने वाले स्थान पर कोई दुःख या कष्ट नहीं रह सकता।" देवताओं ने यह सुनकर दुःखी हो, निवेदन किया—"हे देवताओं के स्वामी ! इस समय हम सब दुःखी तथा अधीर हैं। यह बात स्पष्ट है कि जब तक त्रिपुर के असुर जीवित रहेंगे, हमको कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी। अब आप ही बताइये कि हम सब कहाँ जाएँ या तो आप हम सबको बिना मृत्यु के मार डालिए या त्रिपुर का नाश कीजिए। इन दोनों कामों में से एक काम करके आप हमारे कष्टों को दूर कीजिए, जिससे आपको भी प्रसन्नता हो। हम सब शिवजी के आदेशानुसार ही प्रसन्न होकर आपके पास आए थे।" यह कहकर सब देवता चुप हो गए। तब विष्णु जी ने शिवजी की आज्ञा का विचार कर सोचा कि किसी न किसी प्रकार इन देवताओं का दुःख अवश्य दूर करना चाहिए। फिर शिवजी का ध्यान धरकर उन्होंने यज्ञगणों का स्मरण किया। तब यज्ञ के भीतर से मखपति उत्पन्न होकर विष्णु जी स्तुति करने लगे। उस समय विष्णु जी देवताओं से बोले—"हे देवताओ ! अब तुम सब इनकी पूजा करो।" देवताओं ने उसी समय प्रसन्न होकर शंखनाद किया तथा मख अर्थात् यज्ञ करके मखपति का ध्यान धरते हुए उनकी पवित्र स्तुति की। तब मखपति प्रसन्न होकर विष्णु जी की स्तुति करने लगे। उस समय विष्णु जी ने

देवताओं से कहा—"हे देवताओ ! त्रिपुरासुर तुम्हारे ऐसे प्रयत्नों द्वारा नहीं मारे जा सकते।" जिनके दर्शनमात्र से ही पाप नष्ट हो जाते हैं, मखपति उनका क्या कर सकता है? वे शिवजी के वरदान द्वारा ही संसार में सबसे अधिक आनन्द भोग कर रहे हैं। हे देवताओ ! संसार में ऐसा कौन है, जो शिवजी के भक्त का नाश कर सके? शिवजी ने केवल संसार की भलाई के निमित्त ही अवतार लिया है। उनके एक ही अंश की पूजा के फलस्वरूप देवताओं ने कैसा पद प्राप्त किया है, इसे तुम जानते हो। ब्रह्मा ने भी उनकी सेवा करके ही यह पद पाया है तथा मुझको भी पालन करने की शक्ति तथा बड़ाई उन्होंने प्रसन्न होकर प्रदान की है। इसीलिए हम कहते हैं कि त्रिपुरासुर केवल शिवजी की पूजा करने से ही मारे जा सकते हैं।"

"हे नारद ! विष्णु जी ने यह कहकर समस्त देवताओं सहित शिवजी के पूजन का आयोजन किया। उसी समय एक करोड़ पार्थिव लिंग मिट्टी से बनाकर प्रथम प्राण प्रतिष्ठा एवं आवाहन करने के पश्चात् उनकी अक्षत, चन्दन, सुगन्ध, पुष्प एवं बेल-पत्रों से पूजा की। इस प्रकार विष्णु जी शिवजी के ध्यान में मग्न हुए। तब शिवजी के प्रसन्न होने से त्रिशूल, गदा आदि लिये हुए असंख्य भूत-प्रेतों की सेना प्रकट हुई। उस समय विष्णु जी ने उन्हें देखकर कहा कि तुम सब तुरन्त त्रिपुर का नाश कर दो अर्थात् तीनों नगरों को जलाकर भस्म कर डालो। इस प्रकार संसार में तुम्हारी कीर्ति फैलेगी। विष्णु जी का ऐसा आदेश सुनकर भूतों की सेना वायु वेग से चली तथा त्रिपुर में पहुँचकर चारों ओर फैल गयी; परन्तु जब वह नगर के भीतर पहुँची, तब शिवजी की लीला से जलकर तुरन्त भस्म हो गयी। हे नारद ! जिनके मन में शिवजी की दृढ़ भक्ति है, उनके निकट संकट आकर स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। देवताओं ने यह हाल देखकर विष्णु जी के पास जाकर सब वृत्तान्त सुनाया तथा वे यह सोचने लगे कि किस उपाय से त्रिपुर का नाश किया जाए ; क्योंकि अभिचार अर्थात् हठधर्मी से भी शिवजी के भक्तों को कोई कष्ट नहीं पहुँचाया जा सकता। वास्तव में शिव की

भक्ति के ही कारण वे सब दैत्य बच गये हैं। यदि शिवजी हमारी सहायता करें, तब हम शत्रुओं के इन अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए हमें कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे ये दैत्य धर्म से भ्रष्ट हो जाएँ। उस स्थिति में शिवजी स्वयं ही उनको नष्ट कर देंगे। विष्णु जी ने यह विचारकर देवताओं से कहा—"हे देवताओ ! अब तुम सब लोग अपने घरों में जाकर शिवजी का नाम का जप करो तथा दिन-रात पार्थिव पूजन करके उनकी स्तुति करो।" विष्णु जी के ऐसे वचन सुनकर समस्त देवता अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने-अपने घरों को गये।"

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! देवताओं को विदा करने के पश्चात् विष्णु जी ने शिव-पूजन किया। फिर माया द्वारा अपने शरीर से एक ऐसा मनुष्य उत्पन्न किया, जिसका सिर मुड़ा हुआ था। वह मैले वस्त्र पहने तथा वस्त्र से अपने मुख को ढँके हुए धर्म-धर्म कहता हुआ विष्णु के सम्मुख आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ अर्हण वचन बोला। उसने कहा—"मुझको क्या आज्ञा है?" तब विष्णु जी बोले—"तुम हमारे शरीर से उत्पन्न हुए हो, इसलिए हमारा काम भली-भाँति पूर्ण करो। तुम हमारे रूप हो।" विष्णु ने यह कहकर एक बहुत बड़ा ग्रंथ जिसमें सोलह सहस्त्र श्लोक थे, की रचना की। उसमें निम्नलिखित बातें थीं—

वह ग्रन्थ छल एवं झूठ से भरा हुआ था। उसमें कोई ठीक धर्म नहीं लिखा था। वह वेद, शास्त्र एवं पुराणों के विरुद्ध था, जिसको पढ़कर किसी प्रकार का आनन्द प्राप्त नहीं होता था। उसमें वेद, पुराण एंव शास्त्रों की बहुत ही निन्दा लिखी हुई थी। उसमें वर्णाश्रम धर्म का भी खूब खण्डन किया गया था, जिसके अनुसार चलने से नरक में स्थान मिलने में कुछ भी देर न लगे। उसमें सब बातें कुमति एवं संशय की

थीं। उसके मानने से शौच, तप आदि सब नष्ट हो जाते थे। विष्णु ने उस पुस्तक को उसे देकर कहा कि तुम त्रिपुर में जाकर सबको यह पुस्तक पढ़ा दो। वहाँ के निवासी वेद एवं पुराण के समान ही सब कार्य करते हैं। इसलिए तुम वहाँ जाकर इस मत का सबको उपदेश दो, जिससे वे सब धर्म भ्रष्ट होकर, शिवजी की पूजा करना छोड़ दें। जब तुम अपना यह काम पूर्ण कर लो, तब अपने शिष्यों सहित तब तक मरुस्थल में वास करो जब तक कि कलियुग न आए। तुम वहाँ गुप्त रूप से रहा करना। जब कलियुग शुरू हो जाए तब तुम मेरे इस उपदेश को भली-भाँति प्रचार करना। तुम्हारा पद निश्चय ही ऊँचा बना रहेगा।''

हे नारद ! मुण्डी ने विष्णु जी की यह आज्ञा प्राप्त कर अपने बहुत-से शिष्य किये। तब विष्णु जी ने कहा—''अब तुम वहाँ से विदा हो जाओ। हमारा एक नाम 'अर्हण' है, तुम उसका स्मरण करते रहना। फिर तुमको कोई भय न रहेगा।'' इस प्रकार विष्णु जी के आदेशानुसार मुण्डी अपने शिष्यों सहित वहाँ से चलकर त्रिपुर पहुँचा। वहाँ उसने अनेक चेटक दिखाकर बहुत-से लोगों को अपना शिष्य बना लिया। वहाँ ऐसा कोई भी न था जो मुण्डी के पास जाकर शिष्य बने बिना अपना पुराना धर्म-विश्वास लेकर घर लौट आए। हे नारद ! तुम भी शिवजी की लीला से मुण्डी के शिष्य हुए ; क्योंकि उसमें देवताओं का कार्य बनता था। फिर तुमने त्रिपुरासुर के पास जाकर मुण्डी की ऐसी प्रशंसा की कि त्रिपुर भी मुण्डी के शिष्य हो गये। मुण्डी ने त्रिपुरासुरों से यह प्रण करा लिया कि हमारी आज्ञा किसी दशा में भी अमान्य न की जाए। यह बात मान लेने के पश्चात् मुण्डी ने अपने मुख पर से वस्त्र हटाकर त्रिपुर को अपना शिष्य बनाया तथा मंत्र दिया। फिर अनेक प्रकार के कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य कार्य बता दिये। त्रिपुरा के शिष्य बन जाने के पश्चात् फिर कोई ऐसा व्यक्ति न रहा, जो मुण्डी का शिष्य न बना हो।''

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! त्रिपुरा को चेला बनाने के पश्चात् मुण्डी ने उन्हें कई आदेश देते हुए कहा—"हे त्रिपुर ! हमारा मत सब मतों से उत्तम है, जिसको नारद ने भी माना है। इस मत के ये मार्ग हैं कि यह संसार असाध्य है, इसका आदि अन्त कुछ भी नहीं, न तो इसका कोई कर्त्ता ही है और न बोलने वाला ही। सनातन से यह इसी प्रकार चला आ रहा है। समय आने पर वह स्वयं ही प्रकट होता है तथा इसी प्रकार समयानुसार अदृश्य हो जाता है। समय पाकर ही अच्छा-बुरा कार्य हो जाता है। ब्रह्म से लेकर घास-मिट्टी तक, जितने प्राणी हैं, वे सब मृत्यु के समान हैं। जीव ही ईश्वर है, जो अपने इस शरीर में वर्तमान है। इसके अतिरिक्त संसार का और कोई स्वामी नहीं है। ब्रह्म आदि जो देवता बहुत प्राचीन हैं, वे भी अमर नहीं हैं। वे सब मृत्यु के वश में हैं। इनमें से कोई तो विलम्ब में तथा कोई शीघ्र मरता है, परन्तु सबकी मृत्यु निश्चत है। यह निश्चत है कि समस्त शरीरधारी नष्ट हो जाएंगे। वे दुःख-सुख भोगकर पुनः जन्म लेंगे। समस्त जीव एक ही समान बराबरी का पद रखते हैं। उनमें न तो कोई छोटा है, न कोई बड़ा। भोग एवं भोजन आदि समस्त कार्यों में सब समान हैं। सवारी चाहे किसी प्रकार की हो, समान है। जिस प्रकार हम मृत्यु का भय करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को भी मृत्यु का भय है। समय के चक्र से कोई न बचेगा। इसलिए हे त्रिपुर ! तुम यह सत्य मानो कि हममें तथा उनमें कुछ बड़ाई-छोटाई नहीं है। हम सब ही समान हैं। इसी प्रकार जाति की बड़ाई-छोटाई का विवाद है। वेद एवं शास्त्र आदि सब झूठे तथा निष्फल हैं। केवल सब धर्मों से उत्तम धर्म हिंसा का त्याग कर अहिंसा को अपनाना है। उससे बढ़कर दूसरा कोई और धर्म नहीं है। दूसरों को दुःख पहुँचाने से बड़ा पाप संसार में कोई और नहीं है।"

हे त्रिपुर ! चार प्रकार के दान सब दानों से बड़े हैं। एक रोगी को

औषध देना, दूसरा भयभीत को अपनी शरण में लेकर अभयदान देना, तीसरा भूखों को भोजन कराना और चौथा विद्यार्थी को विद्यादान देना। शरीर को उत्तम औषधियों से आरोग्य बनाये रखना चाहिए। नरक तथा स्वर्ग सब इसी संसार में हैं। जहाँ आनन्द प्राप्त होता है, वह सब स्वर्ग है तथा जहाँ दुःख मिलता है, वही नरक है। दुःखों से वासनारहित मुक्त हो जाना ही परम मोक्ष है। वेदों ने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के दो मार्ग कहे हैं। उनका तात्पर्य यह है कि जीवों को दुःख पहुँचाना प्रवृत्ति धर्म है तथा उन पर दया एवं कृपा रखना निवृत्ति धर्म है। जो जीवों को मारकर तथा तिल, यव एवं घृत अग्नि में डालकर स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वह उनकी सबसे बड़ी मूर्खता है।'' हे नारद ! इस प्रकार मुण्डी ने त्रिपुर को अपने धर्म के विषय में बताया, जिसको त्रिपुरासुरों ने ठीक समझा। तब वे सब अपने नये गुरु की आज्ञानुसार पुराने मत को छोड़ नये मत में प्रवृत्त हुए। फिर मुण्डी ने अपने मत की आज्ञा सुनाते हुए कहा—''हे त्रिपुर ! जब तक मृत्यु न आवे, तब तक आनन्दपूर्वक खूब मौज से विहार करो। यदि कोई भिक्षुक या याचक कोई वस्तु माँगे तथा उसको वह वस्तु न दी जाए अथवा यदि कोई भिखारी अपना मनोरथ पूर्ण किये बिना लौट जाए तो उसे न देने वाले का सब धन द्रव्य नष्ट हो जाता है। अपने शरीर का, जो गीदड़ तथा कुत्ते आदि के ग्रास से अधिक नहीं, कोई भी लोभ या मोह नहीं करना चाहिए। मृत्यु के पश्चात् जिस शरीर को कीड़े आदि खा डालेंगे उसी शरीर के भोग के लिए इतनी सामग्री एकत्र करना व्यर्थ ही है। देखो, जब ब्रह्मा आदि ने परस्पर एक-दूसरे की सन्तान से विवाह कर लिया, तब तो उनका धर्म उसी प्रकार बना रहा ; परन्तु अन्य लोगों के लिए गोत्र में विवाह करना बहुत बड़ा पाप ठहराया गया है और चार वर्ण बनाकर भाइयों के अलग अलग वर्ण कहे गये हैं, यह बुद्धि के विरुद्ध बात है। तुमको यही उचित है कि सबके साथ बराबर का व्यवहार रखो।''

हे नारद ! सब असुर इसी प्रकार की अनेक बातें सुनकर वेद के

विरुद्ध हो गये और सब स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म त्याग, स्वतन्त्र एवं कुपथगामिनी हो गयीं। जिसने जिसके साथ इच्छा की, भोग-विलास किया। सब कर्मों से अधिक चेटक ने प्रचार प्राप्त किया। किसी स्त्री को बाँझ से सन्तानवती कर दिया और किसी स्त्री के पति को जीवित कर दिया, किसी की आँखों में सिद्ध अञ्जन आदि लगाकर पृथ्वी के नीचे की सब वस्तुएँ दिखा दीं तथा कभी सिद्धों के देश को प्रकट करके दिखाया। इस प्रकार मुण्डी ने माया एवं छल द्वारा सब नर-नारियों को अपने वश में कर लिया। यहाँ तक कि त्रिपुर से लेकर छोटे-छोटे असुर तक प्राचीन धर्म का त्याग कर, अर्हण के धर्म को अपना धर्म समझने लगे। वे देव-पूजन तथा पितृ-कर्म सब कुछ भूल गये। केवल यही एक धर्म शेष रह गया कि सबने रात्रि को भोजन करना बन्द कर दिया।''

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! इस प्रकार त्रिपुर में वेद के विरुद्ध नास्तिक मत स्थापित हो गया। इस कारण वहाँ के निवासियों से लक्ष्मी रुष्ट हो गयीं तथा चारों ओर दरिद्रता ही दरिद्रता फैल गयी। हे नारद ! इन सब बातों के मूल कारण तुम्हीं थे। उन तीनों भाइयों ने शिवजी की पूजा को छोड़ दिया, जिससे देश में उपद्रव होने लगे। सब देवताओं ने उन सबकी यह दशा देख, आनन्द में मग्न हो, इन्द्र को साथ ले, मेरे पास आकर सब वृत्तान्त कहा। तब मैं भी सब लोगों को लेकर विष्णु जी के निकट गया। वहाँ पहुँचकर स्तुति करने के पश्चात् उनसे यह कहा—''हे विष्णु जी ! आपके बताये हुए उपाय से बहुत लाभ हुआ अर्थात् आपके रूप अर्हण ने शिष्यों सहित त्रिपुर में जाकर, नारद को शिष्य बनाने के उपरान्त, सबको अपने मत में मिला लिया है। अब यह निश्चित है कि आप त्रिपुर को अवश्य जला देंगे।'' तब विष्णु जी बोले—''हे देवताओ ! शिवजी देवताओं के इस कार्य को अवश्य पूरा

करेंगे।'' यह कहकर तथा हम सबको साथ लेकर विष्णु जी शिवजी के पास गये तथा देवताओं सहित उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने विनय की—''हे प्रभु ! अब आप देवताओं को आनन्द प्रदान कर, दैत्यों का विनाश करें।'' यह सुनकर शिवजी बोले—''हे देवताओ ! हम तुम्हारे कार्य को समझ गये हैं। अब त्रिपुर शीघ्र ही नष्ट हो जाएंगे। शिवजी के ऐसे आश्चर्यजनक वचन सुनकर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे नारद ! जो इस चरित्र का पाठ करेगा या सुनेगा, उसके भी सब मनोरथ पूर्ण होंगे।''

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! तब उसी समय गिरिजा अपने पुत्र को दिखाती हुई, जय-जय शिव, जय शम्भु स्तुति करती हुई, शिवजी के पास आयीं और बोलीं—''हे स्वामी ! अपने पुत्र षडानन का खेल देखिये।'' शिवजी ने गिरिजा से लेकर लड़के को गोद में बैठा लिया तथा प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे। यहाँ तक कि सब देवता भी इतने मग्न हो गये कि वे शिवजी के साथ नृत्य करने लगे। इसके पश्चात् गिरिजा षडानन को साथ लिये हुए भीतर घर में चली गयीं। देवताओं ने अनेक प्रकार से स्तुति की तथा सब कष्ट कह सुनाये, परन्तु शिवजी ने कुछ न सुना। तब मैं तथा विष्णु जी आदि सब लोग शिवजी के द्वार पर बैठकर परस्पर कहने लगे कि हम क्या करें, कहाँ जाएँ और किससे कहें? अब हमारी नौका को कौन पार लगायेंगे? शिवजी से थोड़ी-सी आशा थी, परन्तु वे हमारे कष्टों पर कोई ध्यान न देकर घर में चले गये। शायद हमसे उनकी सेवा में कोई अपराध हो गया है। इसके पश्चात् देवताओं ने निश्चय किया कि हम लोग यहाँ से चलकर अपनी स्त्रियों सहित शिवजी के घर में चलें। शिवजी देवताओं का यह विचार जान गये। अस्तु, उन्होंने तुरन्त गणपति को वहाँ भेज दिया, उन्होंने डंडे से मारकर सब लोगों को बाहर निकाल दिया। यह देखकर

कश्यप मुनि ने धैर्यपूर्वक कहा कि शिवजी ने यह क्या किया जो दया को त्यागकर, हमें ऐसा दंड दिया है? फिर उन्होंने जाकर विष्णु जी से सब वृत्तान्त कहा कि हमारा मनोरथ किसी प्रकार पूरा न हुआ तथा अब तक का सब परिश्रम व्यर्थ ही गया। उस समय विष्णु जी ने यह कहा—"तुम सब लोग धैर्य रखो, शिवजी अवश्य ही तुम्हारे दुःखों को दूर करेंगे। तदुपरान्त विष्णु जी ने सबको शिवजी का एक मन्त्र, जिसमें दस सहस्त्र अक्षर हैं, बताकर कहा कि इसका चौदह करोड़ बार जाप करो। इससे शिवजी प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे।"

हे नारद ! सब देवता विष्णु जी से वह मन्त्र लेकर जप करने लगे तथा शिवजी के प्रकट होने की बाट देखने लगे। तब शिवजी देवताओं के उस जप से प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—"हे विष्णु एवं हे ब्रह्मा ! हम तुम्हारी दृढ़ता से प्रसन्न हैं। तुम अपनी इच्छानुसार हमसे वर माँगो।" तब सब ने प्रसन्न होकर शिवजी की स्तुति की तथा यह कहा—"हे सदाशिवजी ! आप त्रिपुरासुर के तीनों पुरों का नाश करें।" देवता यह कहकर पुनः स्तुति करने लगे। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—"ऐसा ही होगा। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।" यों कहकर शिवजी ने असुरों पर कुपित होकर अपना बाण छोड़ दिया। उस बाण ने सूर्य के समान प्रकाशवान् होकर सब दैत्यों को नष्ट कर डाला, परन्तु जो शेष बचे, उन सबको त्रिपुरासुर ने अमृत कुण्ड में, जो वहाँ था, डाल दिया, जिससे वे पुनः जीवित हो उठे तथा लौह शरीर होकर बादल के समान गरजने एवं बिजली के समान चमकने लगे। तब शिवजी ने विष्णु से तथा मुझसे यह कहा कि तुम दोनों बछड़ों का रूप धारण कर, वहाँ जाकर सब अमृत को पी लो, दैत्य तुमको नहीं जान पाएंगे। शिवजी की ऐसी आज्ञा पाकर मैं तथा विष्णु बछड़े बन, दोपहर दिन चढ़े, वहाँ जा पहुँचे। वहाँ हमको किसी ने नहीं देखा। तब वहाँ से विष्णु तथा मैं दोनों लौटकर, शिवजी की स्तुति करने लगे उस समय सब असुर शिवजी की लीला से अन्धे हो गये। हमने शिवजी की स्तुति में उनका विराट् रूप का वर्णन किया। उस समय शिवजी

बोले—"हे देवताओ ! अब तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। तुम शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त करोगे।"

हे नारद ! शिवजी यह कहकर चुप हो गये और हम लोग वहीं बने रहे। इतने ही में गणों के राजा नन्दी अपने गणों सहित वहाँ आये। देवताओं ने उन्हें वहाँ देखर अत्यन्त शुभ माना तथा उनसे विनय की—"हे शिलादि मुनि के पुत्र नन्दी ! तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे त्रिपुर एक में मिल जाएँ।" यह सुनकर नन्दी ने उत्तर दिया—"हे देवताओ ! शिवजी ने तुमको आज्ञा दी है कि तुरन्त एक रथ बनाओ तथा सारथी, बाण, धनुष आदि सब ठीक करके रखो। मुझको निश्चय है कि शिवजी अवश्य शीघ्र ही त्रिपुर का नाश करेंगे।" यह कहकर नन्दी अपने घर चले गये। तब देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवजी का जय-जयकार किया। इन्द्र ने तुरन्त ही विश्वकर्मा को बुलाकर शिवजी की आज्ञा सुनायी। फिर विष्णु तथा मैंने विश्वकर्मा का आदर करते हुए कहा कि तुम शिवजी के सारथी होना। इसके अतिरिक्त तुम शीघ्र ही धनुष एवं बाण भी तैयार कर दो। विश्वकर्मा ने यह सुनकर सदाशिव जी का ध्यान किया तो उनके मन में रथ निर्माण करने की युक्ति बैठ गयी।"

ॐ ॐ ॐ

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित उस रथ का विस्तार मानो सम्पूर्ण सृष्टि भर के समान था। उसमें सूर्य दाहिना चक्र तथा चन्द्रमा बायाँ चक्र इसी प्रकार बारहों सूर्य तथा सोलहों कला वर्तमान थीं। सभी पर्वत एवं वर्ष, मास, तिथि रथ के खण्ड बने। चारों वेद उस रथ के घोड़े तथा व्यास आदि घोड़ों को चलाने वाले हुए। धर्म-कर्म के शास्त्र, पुराण एवं न्याय शास्त्र ये सब उसके मुख हुए। आश्रम, वर्ण आदि उसके अंग हुए। गंगा आदि नदियाँ तथा चारों सागर चँवर लेकर रथ के चारों ओर खड़े हुए। लोकालोक पर्वत आदि

उसकी सीढ़ियाँ हुए। प्रणव चाबुक, विष्णु जी बाण तथा हिमाचल धनुष हुए। यहाँ तक कि ब्रह्मा से लेकर तृण तक सब उस रथ में विद्यमान थे। इस प्रकार वह सब सामग्री पूर्णरूप से तैयार हो गयी, तब वह रथ शिवजी के द्वार पर ले जाकर खड़ा किया गया। उस समय शिवजी बाहर आये। उनको देखकर सबने विनती की—"हे महाराज ! अब आप रथ में आरूढ़ हों तथा त्रिपुर का नाश करके तीनों लोकों को आनन्द प्रदान करें।" तब शिवजी ने तुरन्त गणपति को बुलाकर उनकी पूजा की। फिर वे रथ पर आरूढ़ होकर आकाश एवं पृथ्वी को कँपाते हुए चल दिये। सब ने जय-जयकार किया। पृथ्वी उस रथ का भार न सहकर काँपने लगी। इस प्रकार शिवजी अपनी सेना सहित देवताओं को आनन्दित करते हुए वहाँ से चले। उस समय शिवजी के इस आश्चर्यजनक चरित्र से त्रिपुर एकत्र हुए। तब शिवजी ने उचित समय जानकर अपने धनुष में विष्णुपति अस्त्र को लगाकर तथा अपने तेज को उसी अस्त्र में स्थापित कर दिया, जिससे धनुष-बाण दोनों ही प्रकाशवान् हुए। सृष्टि भर में प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। तब शिवजी ने उस समय मन में यह विचार किया कि मैं तीनों पुरों को जला दूँ। उस समय विलम्ब हुआ जानकर विष्णु जी, मैं तथा इन्द्र ने उनकी बहुत प्रकार से विनती की।"

ॐ ॐ ॐ

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! तब देवताओं ने कहा—"हे शिवजी ! अब आप त्रिपुरों को नष्ट करने में विलम्ब मत कीजिये। आपके इस तेज से तीनों लोक जले जाते हैं।" यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्न हो, तुरन्त वही अस्त्र त्रिपुर को लक्ष्य करके छोड़ दिया। उसके छोड़ने से भीषण शब्द हुआ। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे प्रलयकाल के बादल गरज रहे हों। उस अस्त्र में से निकली हुई अग्नि से तीनों लोक जलन लगे धरती काँपने लगी, पर्वत जल उठे, शेषनाग पृथ्वी को सिर पर न

रख सके, नदियों का जल सूख गया, दिग्पाल एवं कूर्म—जो पृथ्वी का भार सँभाले हुए हैं, बलहीन हो गये तथा सब मुनि एवं सिद्ध ध्यान छोड़कर आश्चर्य चकित हुए। उसी समय शिवजी द्वारा छोड़े गये बाण के पहुँचते ही वे तीनों पुर जलकर भस्म हो गये। तदुपरान्त वह बाण उन सबको जलाकर, शिवजी के पास लौट आया। इस प्रकार बाण के उसी भीषण प्रहार से त्रिपुर में कोई प्राणी जीवित न रहा। सब दैत्य शिवजी के हाथ से मरकर मुक्ति पा गये। वे सभी शिवजी के गण हुए ; क्योंकि उनमें भक्ति का बीज शेष था और भक्ति का बीज कभी नष्ट नहीं होता। उस समय शिवजी का स्वरूप ऐसा भयानक था, जिसे देखकर प्रतीत होता था कि प्रलय होने में अब कोई देर नहीं है। मैं तथा विष्णु जी उस महातेज के कारण शिवजी को अच्छी प्रकार नहीं देख सकते थे। यह देख मैंने तथा विष्णु जी ने दूर से ही उनकी स्तुति की।

हे नारद ! सबसे पहले विष्णु जी ने शिवजी की स्तुति की तथा कहा—"हे शिवजी ! अब आप क्रोध को शान्त करें।" फिर मैंने भी उनकी स्तुति की। इसके पश्चात् लोकपाल, देवता, सिद्ध, नाग, मुनि तथा वेदों ने अपनी-अपनी स्तुति को युक्ति के अनुसार काव्य रूप में गाया तब ऐसी अनेक प्रकार की स्तुति सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए। इस प्रकार हम सब शिवजी को प्रसन्न पाकर, उनकी सेवा करने लगे।

ॐ ॐ ॐ

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! उस समय शिवजी हम सब पर अत्यंत प्रसन्न होकर बोले कि तुम सब लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार वर माँग लो। तब देवताओं ने यह कहा—"हे महाराज ! आपने त्रिपुर को नष्ट करके हम सबको बड़ा आनन्द प्रदान किया। हम सब आपकी कृपा से कृतार्थ हो गये। हे शिवजी ! इसी प्रकार जब-जब हम पर कोई कष्ट पड़े, तब-तब आप उसे दूर किया कीजिए तथा अपनी भक्ति हम सबको प्रदान कीजिए। यह सुनकर शिवजी ने ॐ कहकर, हम सबको

प्रसन्न किया। उस समय नृत्य एवं गायन का बहुत बड़ा उत्सव हुआ। उसी समय अर्हण ने भी अपने चारों शिष्यों सहित वहाँ उपस्थित होकर शिवजी को प्रणाम किया तथा अन्य सब देवताओं को भी दंडवत् की। फिर नम्र होकर शिवजी से इस प्रकार कहा—"मैंने आपकी आज्ञानुसार ही बिना सोचे-विचारे इस मत का प्रचार किया, सो मुझ पर आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे ऐसे दुष्कर्म का कोई पाप न लगे। अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूँ, तथा किस स्थान पर वास करूँ। यह भी बताइये कि अपनी इस पुस्तक का, जिसमें कि सोलह सहस्त्र श्लोक हैं, क्या करूँ? मेरे शिष्यों के लिए आपकी क्या आज्ञा है?" यह सुनकर विष्णु जी ने शिवजी की आज्ञानुसार यह कहा—"हे अर्हण ! तुम शिष्यों सहित मरुस्थल में जाकर वास करो। कलियुग के आने तक अपना मत किसी पर प्रकट मत करना। तुमको कोई पाप नहीं लगेगा। जब कलियुग का आरम्भ हो, तब तुम इधर-उधर अपने मत का प्रचार करना तथा समस्त स्त्री-पुरषों का मन अपने अधीन करना; जिससे सब लोग महापापी हो जाएं। कलियुग पापों का बीज है, इसलिए तुम्हारा यह मत कलियुग में अच्छी प्रकार चलेगा और उस समय सबलोग सन्मार्ग त्याग कर, कुमार्ग पर चलने लगेंगे।" यह कहकर विष्णु जी ने शिष्यों सहित अर्हण को वहाँ से विदा किया।

हे नारद ! इस प्रकार जब कलियुग आएगा, तब अर्हण मरुस्थल से निकलकर अपने मत को प्रकट करेगा। हे नारद ! मयादानव भी यद्यपि त्रिपुर में था, परन्तु वह शिवजी की कृपा से जीवित ही बचा रहा। अस्तु, उसने भी शिवजी की स्तुति कर, हम सबको भी प्रणाम किया। तब शिवजी ने मयदानव की स्तुति सुनकर कहा—"हे मयदानव ! तुम निर्भय होकर रसातल में वास करो। शिवजी की आज्ञानुसार मयदानव वहाँ जाकर रहने लगा। सब देवता मयदानव पर शिवजी की यह कृपा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे नारद ! जो मनुष्य इस चरित्र को सुनेगा या सुनाएगा, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।"

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी के मुख से त्रिपुर की कथा सुनने के पश्चात् नारद जी बोले—"हे ब्रह्मा जी ! अब आप कृपा करके यह बताइए कि मयदानव त्रिपुर के साथ क्यों नहीं जला?" यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! मयदानव शिवजी का परम भक्त था, इसीलिए वह इस अग्नि से न जलकर बचा रहा। अब मैं तुम्हें इसके विषय में बताता हूँ। कश्यप की स्त्रियों में एक दनु नाम की स्त्री थी। उसके गर्भ से साठ लड़के, जो बड़े वीर-धीर थे, उत्पन्न हुए। वे तीनों लोकों में बहुत ही बुद्धिमान् थे। उनमें से एक मय भी था। उसने शिवजी का भक्तिपूर्वक बड़ा तप किया तथा अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, पंचाक्षरी मंत्र का भली-भाँति ध्यानपूर्वक जाप किया। वह गर्मियों में अग्नि में तपकर, वर्षा में खुले वन में रहकर तथा शीतकाल में जल के भीतर बैठकर कठिन तपस्या करता रहा। उसने शिवजी की मृत्तिका की मूर्त्ति बनाकर उसकी पूजा की तथा उसी के प्रमाण चावल, बिल्वपत्र और प्रत्येक रंग के सुगन्धित पुष्प चढ़ाए। वह स्थिर होकर दृढ़ आसन एवं ध्यान से श्वास रोक कर बैठ गया। तब शिवजी ने प्रकट होकर उससे वर माँगने के लिए कहा; परन्तु उसने शिवजी के इस वचन को नहीं सुना। यह देखकर शिवजी ने अपनी मूर्त्ति को मय के ध्यान से खींच लिया। उस समय मय ने आश्चर्यचकित होकर नेत्र खोल दिये तो देखा कि सामने शिवजी खड़े हैं। उनका महागौर शरीर, भस्म लगाये, भाल पर चन्द्रमा विराजमान एवं अपने मुख्य स्वरूप तथा मुख्य लक्षणों से सुशोभित है। ऐसा सुन्दर स्वरूप देखकर मयदानव उठ खड़ा हुआ तथा सिर झुका, शिवजी को प्रणाम कर, स्तुति करते हुए बोला—"हे नाथ ! मैं क्या वरदान माँगू? आप तो स्वयं ही सब कुछ जानते हैं।"

हे नारद ! शिवजी ने मय के मुख से, ऐसे वचन सुनकर कहा—"हे मय ! हम तुमको तुम्हारे हृदय की इच्छानुसार ही यह वरदान देते हैं

कि तुम सब दैत्यों के आचार्य होकर सदैव निर्दोष रहोगे। जिस प्रकार देवताओं में विश्वकर्मा हैं, उसी प्रकार दैत्यों में तुम होगे। तुमको जरा-मृत्यु प्राप्त न होगी। हम तुमको कभी नष्ट न करेंगे।'' यह कहकर शिवजी ने मय के शरीर को स्पर्श किया जिससे उसे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। मय भी उनको प्रणाम कर अपने घर लौट आया। तब समस्त दैत्यों ने शिवजी के वरदान के कारण मय को अपना आचार्य बनाया। हे नारद ! मयदानव का यह चरित्र अत्यन्त पवित्र है। यह सुनने तथा सुनाने वाले को मय के समान ही कर देता है। उसकी बुद्धि कभी नष्ट नहीं होती। जो मनुष्य इसका पाठ करता है, उससे कभी कोई पाप नहीं होता तथा अन्त में वह मुक्ति प्राप्त करता है।''

ॐ ॐ ॐ

ग्यारहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाकर सूत जी बोले—हे शौनक ! इस चरित्र के सुनने के पश्चात् नारद ने ब्रह्मा जी से कहा—''हे पिता ! अब आप मुझे शिवजी के अन्य चरित्रों के विषय में बताइए।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! तुमको तथा तुम्हारी बुद्धि को धन्य है, जो तुम्हें शिवजी में इतनी भक्ति है। मैंने वेदों को बहुत ही छाना है तथा उनसे जो कुछ भी शिक्षा प्राप्त की है, उसका मूल तुमसे वर्णन करता हूँ। हे नारद ! पहले प्रत्येक मनुष्य असंख्य जन्म-पर्यन्त हमारी पूजा करके विष्णु जी की भक्ति प्राप्त करता है। फिर, बहुत जन्मों तक विष्णु जी की उपासना करने के पश्चात् शिवजी की प्रीति उत्पन्न होती है। तुम निःसन्देह शिवजी के परम भक्त हो। अब मैं तुम्हें शिवजी का चरित्र सुनाता हूँ। तुम ध्यानपूर्वक सुनो। किसी समय एक बार इन्द्र एवं समस्त देवताओं ने शिवजी के दर्शन के लिए एक सभा की। उसमें ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, आठ वसु, तेरह विश्वेदेवा, उनचास पवन, समस्त दिग्पाल तथा उपदेव आदि उपस्थित थे। ऐसे समाज को अपने साथ लेकर इन्द्र बड़े उत्सव के साथ, रजोगुण धारण किए हुए, शिवजी के दर्शनार्थ चले।

उनको संसार में केवल शिवजी के दर्शन से ही यश प्राप्त करना स्वीकार था। उस समय शिवजी ने अपनी लीला द्वारा अपना भयंकर रूप बनाया तथा अवधूतों के समान होकर वे इन्द्र के नगर में प्रकट हुए। उन्हें देखकर इन्द्र ने कहा—"तुम कौन हो? ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे तुम शिवजी के सेवकों में से कोई हो। यदि यह सत्य है, तो तुम हम को शिवजी के निवास-स्थान का पता बताओ।" इस प्रकार इन्द्र ने कई बार पूछा परन्तु उन्हें कोई उत्तर न मिला। यह देखकर इन्द्र बहुत क्रोधित हुए तथा शिवजी को धमकाते हुए बोले—"अरे, तू भूत तो नहीं है, जो उत्तर नहीं देता? अब मैं तुझे वज्र से मार डालता हूँ।" यह कहकर इन्द्र ने अपना वज्र शिवजी पर चलाया, जो शिवजी की गर्दन में जा लगा। शिवजी वज्र की शक्ति एवं प्रभाव को स्थिर रखने के लिए नीलकंठ हो गए अर्थात् उन्होंने अपने कण्ठ में श्याम-चिह्न धारण कर लिया। उस समय वज्र भी जलकर भस्म हो गया तदुपरान्त शिवजी का तेज इतना भभक उठा कि चारों ओर दाह फैल गया और सब देवता स्त्रियों सहित जलने लगे। यह दशा देखकर सब कंपित हुए। तब बृहस्पति ने सदाशिव का ध्यान किया और पहचाना कि ये शिवजी ही हैं। उस समय वे शिवजी की स्तुति करते हुए इन्द्र से बोले—"हे इन्द्रदेव ! यह जो सम्मुख खड़े हैं, वे स्वयं सदाशिव ही हैं। तुम दंडवत् कर इनकी स्तुति करो।"

हे नारद ! तब इन्द्र, बृहस्पति तथा समस्त देवता शिवजी की स्तुति करते हुए इस प्रकार बोले—"हे महाराज ! आप हमारा यह अपराध क्षमा करें। हम तो आपके दर्शनों के लिए ही जा रहे थे, परन्तु आपने स्वयं कृपा करके गुप्त-रीति से, बिना किसी परिश्रम के हम सबको दर्शन दिये।" शिवजी ऐसी उत्तम एवं बृहत् स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—"हे देवताओ ! हम बहुत प्रसन्न हैं। अब तुम अपनी इच्छानुसार वरदान माँगो।" शिवजी के ऐसे वचन सुनकर देवगुरु ने कहा—"हे शिवजी ! अब आप क्रोध दूर करके इन्द्र की रक्षा करें तथा आपके भाल पर जो तेज रूप नेत्र है, उसकी तीक्ष्णता दूर

हो जाए।'' यह वचन सुनकर शिवजी बोले—''हे बृहस्पति ! उस अग्नि को जो हमारे नेत्र से निकल गयी है, अब हम किसी प्रकार अपने भाल में स्थान नहीं दे सकते। हम इस तेज को बहुत दूर फेंक देंगे, जिससे इन्द्र को कष्ट नहीं होगा। तुमने इन्द्र को जीवनदान दिया है, इसलिए आज से तुम्हारा नाम जीव प्रसिद्ध होगा।'' यह सुनकर बृहस्पति एवं इन्द्र आदि अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब शिवजी ने उस तेज को अपने हाथ से समुद्र में फेंक दिया तथा अन्तर्धान हो गए।

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जब शिवजी ने अपने नेत्र के तेज को दूर फेंक दिया, तब वह सुरनदी सागर में गिर पड़ा तथा एक बालक के रूप में प्रकट होकर अत्यनत भयानक रुदन करने लगा। उसके शब्द से पृथ्वी काँपने लगी। वह शब्द चारों ओर फैल गया। सब लोग आश्चर्य करने लगे। पर्वत चलायमान हुए तथा समुद्र सुख गए। तब सब देवता एवं मुनि आश्चर्यचकित हो, मेरे पास आकर बोले—''हे ब्रह्मन् ! यह कैसा शब्द है और कहाँ से आ रहा है? आप इसको दूर कर, देवताओं को आनन्द प्रदान कीजिये।'' मैंने उनसे कहा—''हे देवताओ ! मैं स्वयं भी इस शब्द को सुनकर आश्चर्यचकित हूँ, तुम सब लोग अब अपने-अपने घर को जाओ। जहाँ से यह शब्द आता है, मैं वहाँ जाकर पता लगाता हूँ।'' इस प्रकार समझाकर मैंने उन सबको विदा कर दिया तथा स्वयं उस शब्द को ढूँढते हुए समुद्र तट पर आया। वहाँ मैंने यह देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर बालक पड़ा हुआ है। उसे देखकर मैंने निश्चय किया कि वह शब्द अवश्य ही इस बालक का है। अस्तु, मुझको आते हुए देखकर सागर अपने उस पुत्र सहित मेरे पास आया तथा प्रणाम करने के पश्चात् उसने उस लड़के को मेरी गोद में डाल दिया और स्वयं खड़ा रहा। मैंने उससे पूछा—''हे सागर ! यह पुत्र किसका है?'' सागर ने उत्तर दिया—''हे ब्रह्मन् ! यह बालक

मुझमें उत्पन्न होने से मेरा ही है। अब आप इसका नामकरण संस्कार कीजिये।'' हम दोनों में परस्पर यह वार्ता हो ही रही थी कि उस लड़के ने मेरी दाढ़ी पकड़ कर इस प्रकार खींचा कि मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े। तब मैंने समुद्र से कहा—''हे समुद्र ! तेरा यह पुत्र अत्यन्त बलशाली होकर तेरे यश को समस्त संसार में फैलायेगा। इसने मेरी दाढ़ी को इतनी जोर से पकड़ा है कि मेरी आँखों से आँसू बहने लगे, इसलिए इसका नाम जलन्धर होगा। अब यह जहाँ से उत्पन्न हुआ है, वहीं चला जाए।''

हे नारद ! यह कहकर मैंने शुक्र को बुलाया तथा एक बड़े उत्सव का आयोजन किया। फिर उसका राज्याभिषेक करके ब्राह्मणों को बहुत दान दिया। जालन्धरी नगरी उसकी राजधानी हुई। उस समय समुद्र ने बड़ी धूमधाम से उत्सव की रीतियाँ पूर्ण कीं। इसके पश्चात् मैंने जलन्धर से कहा—''हे जलन्धर ! तुम्हारे कुल के गुरु शुक्र होंगे।'' इतना कहकर वहाँ से मैं अन्तर्धान हो गया। तब जलन्धर जालन्धरी नगरी को बसाकर वहीं निवास करने लगा। समुद्र उसे देखकर बहुत प्रसन्न था। अस्तु, उसने दैत्यों के राजा कालनेमि को बुलाकर अपने पुत्र की शक्ति का वर्णन किया। कालनेमि उसे सुनकर कुल सहित अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा अपनी पुत्री का विवाह जलन्धर के साथ करने की इच्छा की। तदुपरान्त शुक्र की सम्मति से दोनों का विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। जलन्धर वैसे तो स्वयं ही बहुत बलवान् था, उस पर शुक्र की सहायता मिलने पर उसने सब लोकों को जीतकर आधीन कर लिया। उसने पुत्रवत् प्रजा का भली-भाँति पालन किया। जो दैत्य पाताल लोक में भाग गये थे, वह सब भी जलन्धर की आज्ञा पाकर निर्भय हो, उसके समीप आ पहुँचे। जलन्धर ऐसा राजा हुआ कि उसके राज्य में कभी कोई पाप नहीं होता था। तीनों लोकों में कभी किसी ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। उसने सब लोगों से अपने-अपने वर्ण के अनुसार धर्म-कर्म कराया, जिससे

४०१ कोई कुमार्ग पर अग्रसर न हुआ। इस प्रकार उसका प्रताप एवं तेज तीनों भुवनों में फैल गया।''

ॐ ॐ ॐ

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! एक बार जलन्धर अपनी सभा में बैठा हुआ था। सब वीर, दैत्यों के अधिपति तथा समस्त देवता आदि उसके चारों ओर अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे, इतने में बिना शीश का राहु उस सभा में आ उपस्थित हुआ। उसको देखकर जलन्धर ने शुक्र से अत्यन्त आश्चर्य के साथ पूछा—''हे गुरु ! इसका सिर किसने काटा है?'' शुक्र बोले—''हे जलन्धर ! इसके विषय में, मैं तुम्हें एक पुरातन कथा सुनाता हूँ। जब देवता एवं दैत्यों ने परस्पर युद्ध किया तथा देवता परास्त हुए, उस समय दैत्यों के राजा बलि थे। राजा बलि शिवजी के अनन्य भक्त थे। उस समय सब देवता दैत्यों से हार कर, विष्णु जी की शरण में गये। विष्णु जी ने देवताओं पर कृपा करके यह कहा—''हे देवताओ ! तुम सब जाकर दैत्यों से मेल कर लो तथा समुद्र के दोनों किनारे का भली-भाँति मन्थन करो। जब उस समुद्र में से अमृत की उत्पत्ति होगी, तब ही अमृत को तुम सबको पिलाकर, दैत्यों के साथ छल करेंगे। इस प्रकार जब तुम अमृतपान कर लोगे तब दैत्यों पर प्रबल हो जाओगे।'' यह सुनकर देवताओं ने दैत्यों के राजा बलि के पास आकर मित्रता स्थापित की। तदुपरान्त दैत्य एवं देवता—दोनों मन्दर गिरि को उखाड़कर समुद्र तट पर ले गये। वहाँ वासुकि नाग को मन्दर गिरि में डालकर, मन्दर गिरि को मथानी बनाया गया। फिर वे सब समुद्र का मन्थन करने लगे। उस समय इन्द्र के परम हितैषी विष्णु जी ने एक उपाय किया। उन्होंने देवताओं को पहले वासुकि नाग के सिर की ओर खींचने के लिए कहा। उस समय दैत्यों ने विष्णु जी के मतलब को न समझकर कहा कि नहीं, हम सिर की ओर खीचेंगे, हम पूँछ की ओर क्यों लगें? तब सब दैत्य सिर की ओर तथा

देवता पूँछ की ओर लगकर वासुकि नाग को मन्दर गिरि से लपेट कर, समुद्र-मन्थन करने लगे। विष्णु जी स्वयं भी देवताओं के साथ मथने लगे। दोनों पक्ष पहले गणपति की पूजा करना भूल गये थे, इसलिए सर्वप्रथम उस मन्थन से हलाहल विष निकला। उसके निकलने से सब लोग जलने लगे। यह देखकर देवता तथा दैत्य दुःखी होकर भाग चले। तब इन्द्र तथा विष्णु जी देवताओं सहित शिवजी की शरण में गये और उनकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। तब शिवजी प्रकट होकर उस हलाहल विष को स्वयं पी गये, जिससे चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी।

हे नारद ! इसके पश्चात् देवताओं तथा दैत्यों ने धीरे-धीरे मन्थन करके समुद्र से सब रत्न निकाल लिये। विष्णु जी ने कौशल से उत्तम-उत्तम रत्न देवताओं को दिये तथा वारुणी मद्य दैत्यों को देकर अमृत देवताओं को पिला दिया। उस समय राहु भी देवताओं के साथ बैठा हुआ था। वह उन सबको धोखा देकर अमृत पी गया। विष्णु जी ने यह देखकर उसका सिर अपने चक्र से काट डाला। इसके पश्चात् उस स्थान पर देवताओं और दैत्यों में भयानक युद्ध हुआ। उसमें करोड़ों दैत्यों के स्वामी मारे गये। जो शेष बचे, वे पाताल में भाग गये। उस समय से सभी दैत्य भयभीत थे; परन्तु अब जब से आपका अवतार हुआ है तथा आप राजा हुए हैं, तब से दैत्यों को पाताल से प्रकट होने का अवसर प्राप्त हुआ है।'' जलन्धर यह सुनकर कि उसके पिता समुद्र को देवताओं तथा दैत्यों ने मिलकर मथा था, अत्यन्त क्रोधित हुआ। वह अग्नि के समान प्रज्वलित होकर, नेत्र लाल कर, दाँतों से अपने ओठ चबाने लगा। फिर उसने घम्मर नामक दूत को बुलाकर यह कहा कि तुम इन्द्र के पास निर्भय हो जाओ और उससे यह कहो कि तुमने हमारे पिता समुद्र को क्यों मथा था? तुमने उसमें से सब रत्न क्यों निकाल लिये तथा स्वयं देवताओं सहित अमृत पानकर, दैत्यों को मद्यपान क्यों कराया? तुमने धोखे से दैत्यों को परास्त किया, यह अच्छा नहीं हुआ। अब तुम इसका फल अवश्य भोगोगे। जलन्धर की

यह आज्ञा पाकर घम्मर दूत वहाँ से चलकर इन्द्र की सभा में जा पहुँचा। वहाँ उसने अहंकार में भरकर इन्द्र के सम्मुख अपना मस्तक नत नहीं किया तथा इस प्रकार कहने लगा—"हे इन्द्र ! समुद्र के पुत्र जलन्धर ने तुमको यह सन्देशा भेजा है कि तुमने समुद्र से जो रत्न निकाल लिये हैं, उन सबको हमें सौंप दो तो सब बात ठीक हो जायेगी; क्योंकि दिन का भूला हुआ यदि रात को लौट आवे तो वह भूला नहीं कहाता है। इसलिए तुम शीघ्र ही हमारी शरण में आओ। अन्यथा तुम इसका फल शीघ्र ही प्राप्त करोगे।" यह सन्देश सुनकर इन्द्र जलन्धर को बड़ा बलवान एवं पराक्रमी समझ, मन में भयभीत हुए, परन्तु ऊपर से क्रोधित होकर बोले—"हे दूत ! तुम हमारी ओर से जलन्धर को यह उत्तर देना कि पहले किसी समय पहाड़ों ने हमारे लोक में उड़कर उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था तथा यहाँ के असंख्य निवासियों को मार डाला था। उस समय हमने पर्वतों के पंख काट डाले तथा जो शेष रह गये थे, वे डूबकर समुद्र में छिप गये थे। समुद्र ने शरण देकर उनकी रक्षा की थी। इसके अतिरिक्त समुद्र ने हमारे शत्रुओं को अनेक बार अपनी शरण दी है। दैत्यों को भी समुद्र ने ही छिपाया था। इसी अपराध के कारण हमने समुद्र का मन्थन किया तथा उसके रत्न निकाल लिए। पहले भी देवताओं का एक और शत्रु उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम शंखासुर था। उसकी रक्षा समुद्र भी न कर सका। इसलिए जलन्धर को चाहिए कि वह इस प्रकार बुद्धिहीन होकर दुर्विचार में न पड़े। संसार में ऐसा कौन देवता या दैत्य है जो हमसे शत्रुता करके पार पावे? संभवतः उसने अभी हमारे बल एवं प्रताप के विषय में किसी से सुना नहीं है। हमने बड़े-बड़े अनेक दैत्यों को अपने छोटे भाई की सहायता से मार डाला है। यदि जलन्धर अपनी भलाई चाहे तो वह इतने हाथ-पैर न फैलावे। यदि वह इस बात को नहीं मानेगा तो उसके हाथ दुःख एवं लज्जा के अतिरिक्त और कुछ न लगेगा।"

हे नारद ! दूत ने इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर कहा—"हे इन्द्र ! तुम व्यर्थ ही अहंकार मत करो, क्योंकि जलन्धर ने संसार भर का राज्य

प्राप्त किया है। अब तुमको उचित है कि गर्व त्यागकर, सब रत्न जलन्धर को अभी सौंप दो तथा स्वयं चलकर, जलन्धर की छाया में आनन्दपूर्वक रहो। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो तुमको बहुत ही कष्ट उठाना पड़ेगा।'' दूत के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र ने क्रोधित होकर उत्तर दिया—''हे दूत ! हमने जो तुमसे पहले कहा है, तुम वही जाकर जलन्धर से कह दो फिर जो ईश्वर करेगा, उसे देखा जायेगा।'' इन्द्र ने यह कहकर दूत को वहाँ से विदा कर दिया तथा स्वयं क्रोध एवं भय की दशा में चिन्तारूपी समुद्र में डूब गये। उधर दूत ने जलन्धर के पास पहुँचकर इन्द्र के कहे हुए शब्द विस्तारपूर्वक कह सुनाये। उन्हें सुनकर जलन्धर क्रोधाग्नि से जल उठा तथा आवेश में उसके होंठ फड़कने लगे।''

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अपने दूत द्वारा इन्द्र के वचन सुनकर, जलन्धर ने अत्यन्त क्रोधित होकर समस्त देवताओं को परास्त करने का उद्योग किया। उसने दैत्यों की एक विशाल सेना एकत्र की। उसमें राक्षस, दैत्य एवं दानव करोड़ों की संख्या में एकत्र हो गये। शुम्भ, निशुम्भ के समान उस वीरों की सेना में अनेक यूथप थे। कालनेमि भी अन्य यूथपों सहित उसमें सम्मिलित हुआ। ऐसी बलशाली अपार सेना लेकर जलन्धर देवलोक जीतने को चल दिया। उस समय पृथ्वी काँपने लगी। वे दैत्य मार्ग से गरजते हुए देवलोक में जा पहुँचे। उन्होंने देवलोक को चारों ओर से घेर लिया। जलन्धर नन्दन वन में जाकर ठहर गया। उस समय इन्द्र जलन्धर की उस विशाल सेना को देखकर अत्यन्त क्रोधित हुए। तदुपरान्त वे अपने गुरु बृहस्पति की आज्ञा लेकर, देवताओं की सेना लिये हुए नगर से बाहर निकल आए। तब दोनों सेनाओं में परस्पर युद्ध होने लगा, अनेक प्रकार के शस्त्र चलने लगे और देवता एवं दैत्य बड़े उत्साह के साथ एक दूसरे पर प्रहार करने

लगे। रक्त की नदियाँ बहने लगीं, दोनों ओर के बड़े-बड़े वीर योद्धा कट मरे, युद्ध स्थल में उनके शवों का ढेर लग गया। हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, देवता एवं दैत्य मरने लगे। देवताओं के हाथ से जिन दैत्यों की मृत्यु हुई, उनको असुर गुरु शुक्र जी अपनी मृतसंजीवनी विद्या की शक्ति द्वारा जीवित कर देते थे अर्थात् शुक्र मंत्र से जल पढ़कर मरे हुए दैत्यों के मस्तक पर छिड़कते थे जिससे वे जीवित हो उठते थे। इसी प्रकार बृहस्पति भी द्रोणाचल से जीवनदान देने वाली औषधि लाकर देवताओं को जीवित कर देते थे। निदान देवता तथा दैत्य पुनः युद्ध करने लगते थे। इस प्रकार कोई विजय प्राप्त नहीं कर सका। जब जलन्धर ने यह देखा कि देवता मरकर पुनः जीवित हो जाते हैं तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ। उसने शुक्राचार्य से बहुत विनती करके पूछा—"हे गुरु ! हमने अनेक देवताओं को मारा, परन्तु वे सब जीवित हो उठे। हम तो अब तक यही जानते थे कि संजीवनी विद्या का ज्ञान केवल आप ही रखते हैं, अन्य कोई नहीं जानता।" यह सुनकर शुक्र ने कहा—"हे जलन्धर ! एक मृतकों को जीवित करने वाली परम औषधि द्रोणगिरि पर है। बृहस्पति उसे लाकर देवताओं को जीवित कर देते हैं। यदि तुमको विजय की इच्छा है, तो द्रोणगिरि को जड़ से उखाड़कर समुद्र में डलवा दो।" यह सुनकर जलन्धर ने प्रसन्न होकर, द्रोणागिरि को जड़ से उखाड़कर समुद्र में डाल दिया। फिर युद्ध क्षेत्र में आकर घनघोर युद्ध करने लगा। उस समय उसने अपने हस्त कौशल एवं वीरता से शत्रुओं को परास्त कर दिया।

हे नारद ! इस प्रकार युद्ध में जो दैत्य मारे जाते थे, उनको शुक्र तुरन्त जीवित करने लगे ; परन्तु बृहस्पति जब देवताओं को मरा हुआ देखकर पुनः द्रोणगिरि पर औषधि लेने गये, जो वहाँ उन्होंने पर्वत को ही नहीं देखा। यह देखकर बृहस्पति ने अत्यन्त चिन्तित होकर समझा कि जलन्धर ने उस पर्वत को नष्ट कर दिया है। तब वे लौटकर देवताओं से बोले—"हे देवताओ ! अब तुम युद्ध करना बन्द कर दो। जलन्धर महापराक्रमी है। देखो, इसने द्रोणगिरि को मूल से खोद डाला

है। अब तुम समय को देखते रहो और इसकी अधीनता स्वीकार कर लो। गुरु के ऐसे वचन सुनकर समस्त देवता युद्ध स्थल से भाग चले। जिसको जहाँ स्थान मिला, वह वहीं जा छिपा। जब दैत्यों ने देवताओं को इस प्रकार भागते हुए देखा, तो प्रसन्नता से भरकर घोर सिंहनाद किया और विजय के बाजे बजने लगे। तदुपरान्त जलन्धर देवताओं के नगर में चला गया। यह देखकर इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता सिमटकर एक कुन्तल में जा छिपे, परन्तु वहाँ भी उनका भय दूर न हुआ। इस प्रकार उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाए। जलन्धर देवताओं को अपने वश में करने के पश्चात् आनन्दपूर्वक राज्य करने लगा। जिस स्थान पर कभी देवताओं की राजधानी थी, वहाँ सब दैत्यों की राजधानी बनायी। जलन्धर ने चन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, सूर्य, पवन आदि समस्त देवताओं के अलग-अलग पदों पर दैत्यों की नियुक्ति की। वह ऐसा प्रतापी एवं शक्तिशाली हुआ, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात् वह शुम्भ आदि को राज्य कार्य सौंपकर, सेना सहित देवताओं की खोज करने के लिए सुमेरु पर्वत की ओर चल दिया।''

ॐ ॐ ॐ

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! देवताओं ने जब जलन्धर को आते हुए देखा तो उन सब ने घबराकर विष्णु जी का स्मरण किया। वे सब हाथ जोड़, नत-मस्तक हो, स्तुति करते हुए 'जय-विष्णु, जय-विष्णु' कहने लगे तथा इस प्रकार बोले—''हे विष्णु जी ! आप प्रकट होकर दैत्यों का नाश करें। हमारे सम्मुख जलन्धर चला आ रहा है, इसलिए आप जो उचित समझें, वही करें। आपने देवताओं को दुःखी देखकर मत्स्य अवतार लिया था तथा मुनियों के समस्त दुःखों को दूरकर प्रलय में विराजमान हुए थे। फिर आपने देवताओं के लिए कूर्मावतार लेकर पर्वत को अपनी पीठ पर उठाकर रखा। जब हिरण्याक्ष बहुत बलवान्

देवताओं को कष्ट पहुँचाने लगा, उस समय भी आपने वाराह होकर अवतार लेकर उसको नष्ट कर दिया था। जब उसके भाई हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के साथ अन्याय किया, तब आपने नृसिंह का अवतार धारण कर उसका हृदय विदीर्ण किया था। आपने केवल देवताओं के कार्य को पूर्ण करने के लिए ही वामन अवतार लेकर बलि के साथ छल किया था तथा सम्पूर्ण पृथ्वी उससे निकालकर हम सबको दे दी थी। आप शिवजी की भक्ति में स्थित होकर समस्त संसार का उपकार करते रहे हैं। जिस समय रावण ने शिवजी के वरदान से ऊँची पदवी पर पहुँचकर सबको दुःख पहुँचाया। उस समय आपने रामचन्द्र के रूप में अवतरित होकर शिवजी से बाण प्राप्त किया था तथा उसी बाण द्वारा रावण को मार डाला था। फिर आपने कृष्ण अवतार लेकर पृथ्वी के भार को उतारा। हे विष्णु जी ! आप कलियुग में कल्कि अवतार लेकर सब म्लेच्छों को नष्ट करेंगे। इस समय अब आप हमें अपने पीत वसन की झलक क्यों नहीं दिखाते? आप शीघ्र ही हमारे दुःखों को दूर कीजिये, क्योंकि आप स्वयं कष्ट सहकर भक्तों को आनन्दित करते हैं।'' इसी प्रकार देवताओं ने विष्णु जी की बड़ी स्तुति की। जो कोई इस स्तुति को सुनता है वह कभी कष्ट नहीं पाता।''

हे नारद ! विष्णु जी ने देवताओं की ऐसी स्तुति सुनकर अब यह जाना कि देवताओं पर इस समय कुछ दुःख पड़ा है तो वे तुरन्त उठकर गरुड़ पर आरूढ़ हुए। उस समय लक्ष्मी ने विष्णु जी की ऐसी शीघ्रता देखकर पूछा—''हे नाथ ! इस समय इतनी शीघ्रता से आप कहाँ जा रहे हैं?'' तब विष्णु जी ने उन्हें यह उत्तर दिया—''हे लक्ष्मी ! तुम्हारे भाई जलन्धर ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया है। इसलिए हम उनकी रक्षा तथा दैत्यों से युद्ध करने के लिए जा रहे हैं।'' लक्ष्मी ने यह सुनकर, जलन्धर के प्रेम के कारण कहा—''हे प्रभो ! आप मेरे भाई जलन्धर को किस प्रकार मारेंगे?'' विष्णु जी ने कहा—''जलन्धर बहुत बलवान् एवं पराक्रमी है, वह हमारे मारने से नहीं मारेगा। वह रुद्र का अंश है तथा ब्रह्मा के वरदान से देवताओं को कष्ट दे रहा है, परन्तु

इस समय यदि हम वहाँ नहीं जाएँ तो हमारा भक्त वत्सल नाम मिट जायेगा।'' यह कहकर विष्णु जी वहाँ से चल दिये। उन्होंने शंख, चक्र, गदा, असि एवं बाण धारण किये तथा गरुड़ को तैयार कर, शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचे जहाँ जलन्धर था। उस समय गरुड़ ने अपने पैरों को इस प्रकार हिलाया, जैसे वायु मेघों को उड़ा देती है। उससे असंख्य दैत्य उड़ गये। तब जलन्धर ने वायु द्वारा दैत्यों को दुखी देखकर अत्यन्त क्रोध किया और सिंह के समान गरजता हुआ विष्णु जी के पास जा पहुँचा। अस्तु, विष्णु जी तथा जलन्धर में युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों ओर से असंख्य बाण चले। वे बाण आकाश में इस प्रकार छा गये, जिससे कुछ भी दिखाई नहीं देता था। विष्णु जी ने जलन्धर के रथ के घोड़े, छत्र, ध्वजा तथा धनुष को काटकर शंखध्वनि की और क्रोध में भरकर एक बाण जलन्धर के हृदय में मारा। यह देखकर जलन्धर ने अपनी गदा गरुड़ के सिर पर दे मारी। गरुड़ उस गदा की चोट न सह सके और धरती पर गिर पड़े। तब विष्णु जी ने निर्भय होकर अपनी असि द्वारा उस गदा को काट दिया। यह देखकर जलन्धर ने क्रोधित होकर विष्णु जी के हृदय पर अपने घूँसे का प्रहार किया। अनेक प्रकार के दाँव-पेंच हुए, परन्तु दोनों में से कोई भी नहीं हारा। तब विष्णु जी ने बादल के समान गरजते हुए कहा—''हे जलन्धर! हमने तेरे समान वीर तीनों लोकों में नहीं देखा। तेरे इस पराक्रम से हम अत्यन्त प्रसन्न हैं, इसलिए हम से इच्छानुसार वरदान माँग लें।''

हे नारद ! राजनीति का यही मुख्य तात्पर्य है कि किसी भी युक्ति से अपना मनोरथ पूर्ण किया जाए। अस्तु, जलन्धर यह सुनकर विष्णु जी से बोला—''हे विष्णु ! मैं आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि आप मेरी बहन लक्ष्मी सहित मेरे घर में आकर रहें। इसी प्रकार समस्त देवता भी मेरे आधीन होकर मेरे घर में वास करें। जलन्धर का यह वर माँगना सुनकर विष्णु जी अत्यन्त दुःखी हुए तथा उसका कहना मानकर लक्ष्मी सहित उसके घर में निवास करने लगे।''

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जलन्धर ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर, देवताओं के स्थान पर दैत्यों को नियुक्ति कर दिया तथा समस्त राजाओं को जीतकर अपने आधीन कर लिया। उसने संसार के सम्पूर्ण बहुमूल्य रत्न तथा अद्भुत वस्तुओं को अपने अधिकार में कर लिया। फिर उसने सब दिग्पालों को बुलाकर, अपने नगर में प्रजा के समान बसा दिया। उसने इन्द्र के ऐरावत हाथी छीन लिया तथा उच्चैःश्रवा अवश्य भी उसकी अश्वशाला में आ पहुँचा। कल्पवृक्ष भी उसके आँगन की शोभा बढ़ाने लगा। इस प्रकार जो मुख्य-मुख्य वस्तुएँ थीं, जैसे—वरुण का छत्र, प्रजापति का रथ तथा अनल का अंकुश उन सबको छीनकर, उसने अपने आधीन कर लिया। इसके पश्चात् उसने दया एवं धर्म पूर्वक सम्पूर्ण प्रजा का पुत्र के समान पालन किया। इसीलिए वह दैत्यों में अद्वितीय गिना गया। उसके राज्य में किसी को कोई कष्ट नहीं था। चारों वर्ण अपने-अपने धर्म तथा आश्रम में स्थित थे। कोई मनुष्य अधर्मी न था। किसी को तीनों प्रकार के दुःखों में से एक भी दुःख न था। कोई मनुष्य अकाल मृत्यु नहीं पाता था और न वहाँ किसी मनुष्य के हृदय में पाप ही उत्पन्न होता था। स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पूरी तरह से पालन करती थीं। ब्राह्मण धर्म कथाएँ कहते थे। कोई भी दरिद्र न था।"

हे नारद ! उस समय जलन्धर के राज्य में देवताओं के अतिरिक्त और किसी के मन में न तो किसी प्रकार का भय था और न कोई कष्ट ही। अस्तु, एक दिन सब देवता एकत्र होकर शिवजी का स्मरण एवं ध्यानकर स्तुति करने लगे। देवताओं ने कहा—"हे शिवजी ! आपकी ही कृपा होनी चाहिए। हमको विष्णु जी का बड़ा भरोसा था, परन्तु उन्होंने अपनी पत्नी लक्ष्मी सहित जलन्धर के घर में निवास कर लिया है। जब तक हमारा काम विष्णु जी से निकलता था, तब तक हम आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं देते थे।" तब देवताओं की

प्रार्थना सुनकर शिवजी ने आकाशवाणी द्वारा कहा—"हे देवताओ ! तुम कुछ चिन्ता मत करो। हम तुम्हारी मनोकांक्षा अवश्य पूर्ण करेंगे।" देवताओं ने उस आकाशवाणी को सुनकर बड़ा आनन्द प्राप्त किया। हे नारद ! उस समय तुमने जलन्धर के राज्य में जाकर विष्णु जी आदि को देखा। जलन्धर ने तुम्हारी भली प्रकार अगवानी की तथा पूर्णरूप से पूजा की। कुशल-क्षेम के पश्चात् उसने तुम्हारे आगमन का कारण पूछा तथा यह कहा कि आपने संसार में जो कुछ आश्चर्यजनक चरित्र देखा हो तो उसका वर्णन कीजिए। तब तुमने जलन्धर को यह उत्तर दिया—"हे जलन्धर ! एक दिन हम कैलाश में गये जो सृष्टि भर में सबसे श्रेष्ठ है। शिवजी को स्तुति एवं प्रणाम करने के पश्चात् मैं वहाँ की सामग्री को देखकर आश्चर्य में पड़ गया तथा विचारने लगा कि इतनी असंख्य सामग्री किसी के यहाँ न होगी। इसलिए, अब मैं तुम्हारी सामग्री देखने को यहाँ आया हूँ।" जलन्धर ने तुम्हारी यह इच्छा जानकर अपनी सम्पूर्ण सामग्री दिखाते हुए पूछा—"हे नारद ! सत्य कहना कि दोनों स्थानों से कहाँ अधिक सामग्री है?" तब तुमने उसे यह उत्तर दिया—"हे जलन्धर ! वास्तव में तुम्हारे घर में बहुत सामग्री है, परन्तु एक दारा-रत्न की कमी है। शिवजी के घर में ऐसी स्त्री है, जिसके समान संसार में कोई अन्य स्त्री नहीं है। उसकी सुन्दरता पर ब्रह्मा तक मोहित हो गये थे। वह इतनी सुन्दर है कि उसने कामदेव के शत्रु शिवजी को भी अपने वश में कर लिया है। ब्रह्मा ने बहुत प्रयत्न किया कि वे शिवरानी के समान दूसरी स्त्री बनावें, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी।"

इतनी कथा कहकर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! तुम जलन्धर से इतना कहकर वहाँ से चले गये। तुम्हारे जाने के पश्चात् जलन्धर काम-ज्वर में पीड़ित होकर रोगियों के समान दुःख-सागर में डूब गया तथा काम-वश हो, शिवजी को अन्य देवताओं के समान समझ, राहु को उनके पास भेज दिया। हे नारद ! उन्होंने जलन्धर की ऐसी भावना देखकर, उसके ज्ञान को खींच लिया था। अस्तु, अपने स्वामी जलन्धर

की आज्ञानुसार राहु शिवजी के पास चल दिया। वह छः ड्योढ़ी तो पार कर गया, परन्तु जब सातवें द्वार पर पहुँचा, जहाँ गणों के राजा नन्दी द्वारपाल बनकर बैठे हुए थे, तब नन्दी ने उसको रोक दिया। तदुपरान्त वे शिवजी की आज्ञा लेकर उसे अपने साथ ही शिवजी के पास ले गये। उस समय शिवजी ने भौंह का संकेत करते हुए राहु से पूछा—"कहो, तुम क्या चाहते हो?" राहु ने उत्तर दिया—"हे शिवजी ! जलन्धर जो सबसे श्रेष्ठ है तथा जिसके अधीन देवता एवं विष्णु जी भी हैं, उसने यह कहा है कि तुम तो तपस्वी, योगी, दिगम्बर और मरघटों में पड़े रहने वाले हो। तुम्हें भोग-विलास से कोई प्रयोजन नहीं है। अस्तु तुमको ऐसी कोमलांगी स्त्री से क्या प्रयोजन है? ऐसी सुन्दर स्त्री तो हमको चाहिए। इसलिए तुमको उचित है कि उस परम सुन्दर स्त्री को हमें दे दो।" राहु के ऐसे वचन सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित हुए। तब तुरन्त ही उनकी भौंहों से एक मनुष्य उत्पन्न होकर आगे आ खड़ा हुआ। उसका शरीर अत्यन्त भयानक तथा वज्र के समान दृढ़ था। उसका सिंह का-सा स्वरूप, तीक्ष्ण जिह्वा, जलती हुई अग्नि के समान नेत्र, सब बाल खड़े हुए तथा इसी प्रकार अत्यन्त भयानक डीलडौल था। वह विष्णु जी के चौथे अवतार नृसिंह के समान जान पड़ता था। अस्तु, वह शिवजी की इच्छा जानकर राहु को खाने के लिए आगे बढ़ा। यह देखकर राहु भयभीत हो वहाँ से भाग चला, परन्तु शिवजी के उस गण ने उसे न जाने दिया और वहीं पकड़ लिया। यह देखकर राहु अत्यन्त कम्पित होकर शिवजी से बोला—"हे शिवजी ! आप मुझको ब्राह्मण जानकर मेरी इसके द्वारा रक्षा कीजिये। यह मुझको खाये ही डालता है। शिवजी ने राहु के ऐसे विनयपूर्ण वचन सुनकर, उस गण से उसे छुड़वा दिया। उस समय गण ने राहु को छोड़, शिवजी के पास जाकर यह विनय की—"हे प्रभो ! मैं बहुत भूखा हूँ। अस्तु, आप मेरे लिए कुछ भोजन बतला दीजिए। मैं भूख की आग से जला जाता हूँ।" यह सुनकर शिवजी ने कहा—"यदि तुम इतने ही भूखे हो तो अपने हाथ एवं पाँव को खा डालो। गण ने शिवजी

की आज्ञानुसार यही कार्य किया। उसने अपने सिर के अतिरिक्त सब अंग खा डाले।

हे नारद ! यह दशा देखकर शिवजी आश्चर्यचकित हुए। तब उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर गण से कहा—"हम तुम्हारी आज्ञा-पालन से प्रसन्न होकर तुम्हारा नाम कीर्तिमुख रखते हैं। अब तुम्हीं हमारे द्वारपाल होगे। जो व्यक्ति पहले तुम्हारी पूजा न कर लेगा, उसको हम स्वप्न में भी दर्शन नहीं देंगे।" "हे नारद ! उस दिन से कीर्तिमुख गण शिवजी के द्वार पर द्वारपाल के रूप में रहते हैं। कीर्तिमुख की पूजा किए बिना शिवजी की सब पूजा व्यर्थ हो जाती है। अस्तु, राहु जब कीर्तिमुख के हाथ से छूटकर भागा तो वह कैलाश पर्वत के एक गड्ढ़े में ऐसा गिरा, जिससे उसका अंग-भंग हो गया। तदुपरान्त राहु ने जलन्धर के समीप पहुँचकर सब हाल कह सुनाया।"

ॐ ॐ ॐ

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! दूत के यह वचन सुनकर जलन्धर अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा उसने दैत्यों को आज्ञा दी कि सब एकत्र होकर इसी समय शिवजी के कैलाश पर्वत पर आक्रमण करें। यह सुनकर समस्त सरदार एवं सेनाध्यक्ष अपने-अपने शस्त्र लिए, चतुरंगिणी सेना के साथ चल दिए। उस सेना में एक करोड़ दैत्य, पाँच सौ कबन्ध तथा सौ कुलधूम्र चल ; कालक, ध्रुव, मुरज और कालनेमि आदि को आज्ञा देकर जलन्धर स्वयं भी घर से जलता-भुनता हुआ निकला। उस समय उसकी पत्नी ने उसे बहुत समझाया तथा हाथ जोड़कर उसे मना करते हुए यह कहा कि हे स्वामी ! शिवजी से युद्ध करके अब तक कोई नहीं जीता है। देवताओं के सब से बड़े सहायक विष्णु जी तुम्हारे घर में ही हैं, अतः तुम वहाँ न जाओ ; परन्तु जलन्धर ने मृत्यु के वशीभूत होने से उसकी एक भी बात नहीं मानी और वह उसी प्रकार क्रोध से भरा हुआ चल दिया।"

हे नारद ! जब मृत्यु आती है तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जो मनुष्य चलने के समय स्त्री, ब्राह्मण आदि का आदर नहीं करता, वह फिर लौटकर नहीं आता। अस्तु, सब के आगे शुक्र, फिर जलन्धर तथा उसके पीछे समस्त सेना चली। पहले तो जलन्धर को राहु दिखाई दिया, फिर मुकुट सिर से गिर गया। शुम्भ-निशुम्भ दोनों को सेनापति नियुक्त किया गया तथा कालनेमि भी जलन्धर की आज्ञा पाकर सेना सहित चला। इसी प्रकार और भी अनेक दैत्यवंशी राजा कैलाश पर्वत पर चले। जब जलन्धर सेना सहित नगर से कुछ दूर बाहर पहुँचा तब विष्णु जी ने देवताओं को बुलाकर यह कहा कि अब हमारे कष्ट दूर होने का समय आ गया है, इसलिए तुम सब गुप्त रूप से शिवजी के पास जाकर, जलन्धर के आक्रमण का समाचार कहो। विष्णु जी के उस आदेशानुसार देवता छिपे-छिपते शिवजी के पास पहुँचे तथा स्तुति करने के उपरान्त उन्होंने शिवजी से जलन्धर के आक्रमण का समाचार पूरा-पूरा कह सुनाया तथा जलन्धर के वध की इच्छा प्रकट की। शिवजी ने सब देवताओं के मुख से यह समाचार सुना तो हँसते हुए कहा—"हे देवताओ ! अब तुम सब लोग धैर्य धारण करो। तुम्हें कोई कष्ट न होगा।" यह कह उन्होंने विष्णु को बुलाकर पूछा—"हे विष्णु जी ! तुमने जलन्धर को क्यों नहीं मारा तथा वैकुण्ठ छोड़कर उसके घर में वास क्यों किया?" शिवजी के ऐसे वचन सुनकर विष्णु जी ने उत्तर दिया—"हे शिवजी जलन्धर बहुत बलवान् है, वह कोटि यत्नों से भी नहीं मर सकता। वह आपका अंश है, इसलिए उस पर किसी भी शस्त्र का प्रभाव नहीं होता। मैंने उसके साथ बहुत युद्ध किया, परन्तु वह किसी प्रकार भी न मारा। उसकी मृत्यु आप ही के द्वारा होगी। अस्तु, अब आप ही कृपा करके उसको मारें। आप आकाश से लेकर पृथ्वी तक के स्वामी तथा तीनों गुणों से पूर्ण हैं।" यह सुनकर शिवजी बोले—"हे विष्णु ! जलन्धर हमारे अंश से उत्पन्न हुआ है, इसलिए हम उस पर त्रिशूल नहीं चला सकते तथा त्रिशूल के अतिरिक्त जो भी हमारे पास अस्त्र हैं, उनका जलन्धर पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। इसलिए

हमने एक उपाय सोचा है कि तुम सब अपना-अपना तेज हमको देते जाओ। उस तेज से हम एक शस्त्र का निर्माण करेंगे और उसी शस्त्र द्वारा जलन्धर को जलाकर भस्म कर देंगे।'' यह सुनकर मैंने, विष्णु जी ने, इन्द्र ने तथा समस्त देवताओं ने शिवजी को अपना-अपना तेज दे दिया। हम सबका वह तेज एकत्र होकर अत्यन्त प्रज्वलित हुआ। तब शिवजी ने उसमें से एक शस्त्र बनाया। उसका नाम सुदर्शन चक्र रक्खा। वह चक्र कोटि सूर्यों के समान प्रकाशवान् एवं अग्नि के समान प्रज्वलित था। सुदर्शन चक्र के बनाने से जो तेज शेष रह गया, उससे शिवजी ने वज्र बनाया। यह देखकर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

हे नारद ! इतने में ही जलन्धर कैलाश पर्वत के समीप पहुँच गया। उसने पर्वत की एक कन्दरा में सेना सहित डेरा डाल दिया। तब सब देवता उसे देखकर छिपे-छिपे अपने स्थानों को, जहाँ वे पहले वास करते थे, चले गए। शिवजी के गणों ने दैत्यों की सेना के आगमन के पूर्व ही शिवजी को समाचार दे दिया था कि दैत्य-सेना अब आना ही चाहती है। इसलिए शिवजी ने अपने नन्दी, गणपति एवं वीरभद्र को यह आज्ञा दी कि तुम अन्य गणों सहित जाकर दैत्यों से भली-भाँति युद्ध करो। शिवजी के गण यह आज्ञा पाकर वहाँ से चल दिए तथा पर्वत के नीचे उतर आए।''

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! शिवजी के गण उनकी आज्ञा पाकर 'जय-शिव, जय-मृत्युञ्जय' कहते हुए प्रसन्नतापूर्वक गाते-बजाते हुए दैत्य सेना से लड़ने को चल दिए। वहाँ पहुँचकर दोनों ओर से भयंकर मार-काट शुरू हो गयी, जिससे पृथ्वी काँपने लगी। दोनों ओर से हर प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग किया गया। युद्ध स्थल अस्थि, माँस तथा रुधिर से पूर्ण हो गया। जो दैत्य गणों के हाथ मारे गए,

उनको शुक्र ने पुनः जीवित कर दिया। जब गणों ने दैत्यों की सेना का वध किया तो शुक्र जी ने उन्हें फिर जिला दिया। इसी प्रकार गणों ने अनेक बार दैत्यों का वध किया, परन्तु शुक्र ने फिर-फिर उनको जीवित कर दिया। निदान गणों ने कोई उपाय न देख, दुःखी होकर शिवजी के पास जा सब वृत्तान्त कह सुनाया और बोले कि अब हम दैत्यों से युद्ध न करेंगे, क्योंकि हम दैत्यों को मारने में असमर्थ हैं। हे शिवजी ! यह काम आप स्वयं ही करें। गणों के मुख से ऐसे वचन सुनकर शिवजी क्रोधित होकर बोले—"यह कार्य शुक्र मृत्युंजय-मन्त्र पाकर कर रहा है।" अस्तु, उसी समय शिवजी के मुख से कृत्यानाम की एक स्त्री प्रकट हुई। उसका स्वरूप अत्यन्त भयानक था। उसकी दाढ़ें बड़ी भयंकर, पर्वत के समान थीं। ऐसे स्वरूप से प्रकट होकर वह शिवजी की सेना के साथ युद्ध स्थान में आयी। वह महा भयंकर नाद करती हुई दैत्यों का भक्षण करने लगी। तब दैत्य उसके स्वरूप को देखकर तथा उसके पराक्रम से भयभीत होकर भागने लगे। इसके पश्चात् कृत्या शुक्र को अपने गुप्त अंग में दबाकर उड़ गयी तथा सबके देखते-देखते आँखों से ओझल हो गयी शुक्र को कृत्या द्वारा उड़ा ले जाने पर, दैत्य लोग बड़े भयभीत हुए और उनकी सेना में हाहाकर मच गया। उस समय वे इधर-उधर भागने लगे।

हे नारद ! तब शिवजी के गण प्रसन्न होकर, दैत्यों को चारों ओर से घेर कर, सिंह के समान गर्जना करने लगे। दैत्य भागकर चारों ओर फैल गये। दैत्यों की यह दशा देखकर शुम्भ-निशुम्भ तथा कालनेमि तीनों सेनापति अत्यन्त दृढ़ता के साथ गणों का सामना करने लगे। अन्त में, उन तीनों ने शिवजी के गणों को बहुत बुरी तरह से मार कर दुःखी कर दिया, जिससे वह हार मानकर वहाँ से भाग चले। इतने में गणपति, नन्दी, वीरभद्र आदि ने सब गणों को रोककर धैर्य देकर बुला लिया फिर दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया। कालनेमि तथा नन्दीगण, गणपति तथा शुम्भ और वीरभद्र तथा निशुम्भ परस्पर लड़ने लगे। वे सभी युद्ध भूमि में अपनी वीरता का प्रदर्शन करने लगे।

वीरभद्र ने निशुम्भ के हृदय में तीक्ष्ण बाण मारा, जिससे निशुम्भ धरती पर गिर पड़ा। वीरभद्र ने ज्योंही ये चाहा कि उसे सांग से मार डालें, इतने ही में शुम्भ ने उठकर वीरभद्र पर बड़े क्रोध से अपनी सांग का आक्रमण किया जिससे वीरभद्र घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। नन्दी ने कालनेमि के शरीर पर सात बाण मारे, जिनके लगने से उसके रथ के पहिए, घोड़े तथा सारथी कट-कट कर गिर गये। तब कालनेमि ने क्रोधित होकर नन्दी के धनुष को काट डाला। उस समय नन्दी ने धनुष फेंक कर त्रिशूल चलाया जिसके प्रहार से कालनेमि मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तब उसने नन्दी को उठाकर पर्वत के ऊपर फेंक दिया। अब गणपति तथा शुम्भ लड़ने लगे। अब गणपति तो मूषक पर चढ़े और शुम्भ रथ पर सवार हुआ। वे दोनों इतने लड़े कि कोई भी युद्ध से विमुख न हुआ। अन्त में गणपति ने एक बाण शुम्भ के हृदय में मारा तथा तीन बाणों से उसके सारथी को पृथ्वी पर गिरा दिय। तब शुम्भ ने क्रोधित होकर गणपति पर साठ बाण छोड़े और गणपति के मूषक वाहन का सिर धड़ से अलग कर दिया। तब वे बे-वाहन पैदल ही युद्ध करने लगे। उन्होंने अपनी सांग उठाकर शुम्भ के ऊपर चलायी। शुम्भ सांग के लगने से पृथ्वी पर गिर पड़ा और गणपति पुनः मूषक को जीवित कर उस पर सवार हुए। इस प्रकार गणपति विजयी हुए। तब चारों ओर विजय के बाजे बजने लगे और सब गण अत्यन्त प्रसन्न हो जय-जयकार करने लगे।

हे नारद ! यह देखकर वृन्द नामक शुम्भ का पितामह अत्यंत क्रोधित होकर गणपति के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा। तब गणेश जी तुरन्त दौड़कर वृन्द के पास जा पहुँचे। उनके साथ असंख्य भूत, प्रेत, कूष्माण्ड, पिशाच, भैरवगण, वैताल, शाकिनी, डाकिनी, योगिनी आदि किल-किल शब्द के अर्थात् सिंह एवं हाथियों के समान नाद कर रहे थे। उन्होंने वृन्द तथा शुम्भ को सेना सहित विकल कर दिया। वीरभद्र की सेना ने दैत्यों को अत्यन्त दुःखी किया। उन्होंने अनेक दैत्यों को खाकर उनका रक्तपान भी किया। इतने में नन्दी भी

वहाँ आ गए तथा उन्होंने बाणों की ऐसी वर्षा की, कि वे दैत्यों की ओर सर्प की भाँति चले। उन्होंने दैत्यों की बहुत-सी सेना नष्ट कर दी। कुछ दैत्य तो खा लिये गए, कुछ मारे गये, कुछ मूर्च्छित हुए, कुछ भाग गये तथा कुछ गिर पड़े।"

ॐॐॐ

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जलन्धर अपनी सेना की ऐसी दुरदशा देख, क्रोध में भरकर, रथ पर आरूढ़ हो, कटक सहित, गणों की ओर चल दिया, तब दैत्यों की सेना पुनः संभलकर युद्ध करने के लिए तैयार हुई। युद्ध के बाजे बजने लगे और दोनों सेनाओं में फिर घमासान युद्ध होने लगा। जलन्धर ने आते ही बाणों की वर्षा की तथा पाँच-पाँच बाण गणपति और नन्दी के तथा बीस बाण वीरभद्र के शरीर में मारकर सिंहनाद किया। उस समय वीरभद्र ने एक सांग जलन्धर पर ऐसी चलायी कि उसके लगने से जलन्धर मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर उसने उठकर, क्रोधित हो वीरभद्र के ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया, जिससे वीरभद्र व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। गणपति ने क्रोधित होकर अपनी सांग द्वारा जलन्धर की गदा को काट डाला तथा तीन बाण जलन्धर के हृदय में मारे। फिर सात बाण चलाकर उसके रथ के घोड़े, ध्वजा, पताका तथा छत्र आदि को काट दिया। यह देखकर जलन्धर ने अपनी सांग द्वारा गणपति को घायल कर दिया तथा दूसरे रथ पर चढ़कर, वीरभद्र के पास जा पहुँचा और उनसे युद्ध करने लगा। तब वीरभद्र ने जलन्धर का धनुष काटकर, उसके मस्तक पर परिघ से प्रहार किया। उस प्रहार से जलन्धर पृथ्वी पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद उसने सचेत होकर वीरभद्र के ऊपर परिघ से ऐसा प्रहार किया कि वीरभद्र मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वीरभद्र की ऐसी दशा देखकर सब गण वहाँ से भागकर शिवजी के पास पहुँचे तथा उन्हें सब वृत्तान्त सुनाकर बोले—" हे शिवजी ! दैत्यों ने अपनी

भीषण मारकाट से हम सबको व्याकुल कर दिया है।'' शिवजी गणों द्वारा यह समाचार सुनकर अपने बैल पर चढ़े तथा युद्ध क्षेत्र में पहुँच कर, त्रिशूल लेकर दैत्यों की सेना पर आक्रमण करने लगे। उस समय शिवजी ने अपना डमरू बजा दिया। जब गणों ने शिवजी को आते देखा, तब वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा पुनः लौटकर युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गये।

हे नारद ! उन गणों ने दैत्यों के साथ घोर युद्ध किया। शिवजी ने ऐसा भयंकर रूप धारण किया कि जिसको देखकर दैत्यों की सेना में हाहाकार मच गया और वह मैदान छोड़कर भागने लगी। दैत्याधिपति जलन्धर ने अपनी सेना की यह दुरदशा देखकर, शिवजी पर अनेक बाण छोड़े। शुम्भ, निशुम्भ, कालनेमि, हयमुख, असिलोमा, बलाहक, प्रचण्ड आदि सब दानव एक साथ शिवजी पर आक्रमण करके बाण-वर्षा करने लगे। परन्तु शिवजी ने उन बाणों के जाल को पल भर में काट डाला तथा अपने बाणों से आकाश को भर दिया। इसके पश्चात् शिवजी ने परशु द्वारा असिलोमा का सिर काट डाला। फिर बलाहक का वध करके, घर भर को पाव से बाँध लिया। हे नारद ! तदुपरान्त शिवजी ने अपना बैल दैत्यों की सेना में छोड़ दिया। उसने अपने सींगों से असंख्य दैत्यों को मार गिराया, जो दैत्य शेष रहे, वे भयभीत होकर भाग गए। जिस प्रकार सिंह के प्रहार से हाथी विकल होकर भाग जाता है, वही दशा उस समय दैत्यों की हुई। यह देखकर जलन्धर ने शुम्भ, निशुम्भ तथा कालनेमि को सम्बोधित करते हुए कहा—''देखो, जो संसार में उत्पन्न होते हैं, उनकी मृत्यु अवश्य होती है। मृत्यु से बचने का कोई भी उपाय नहीं है। ऐसी मृत्यु किसे भली न लगेगी, जिससे दोनों लोकों में यश एवं कीर्ति बढ़े? लोक में दो प्रकार की मृत्यु प्राप्त करने वाले सूर्य मंडल को भेद कर स्वर्ग को जाते हैं। उनमें एक योगी होता है तथा दूसरा योद्धा जो युद्ध में निर्भय होकर वीरतापूर्वक मारा जाता है। इसलिए अब तुम मृत्यु का भय त्यागकर भली-भाँति सामने डटकर युद्ध करो।'' यद्यपि जलन्धर ने ऐसी बातें कह-कहकर उन्हें बहुत

समझाया, पर उनकी समझ में कुछ भी न आया। तब जलन्धर ने उनको धिक्कारते हुए कहा—"तुमने इस पृथ्वी पर जन्म लेकर व्यर्थ ही अपनी माता को कष्ट दिया ; क्या तुमको युद्ध भूमि से इस प्रकार भागना उचित है? क्या तुम में से कोई भी मृत्यु के पंजे से बचा रहेगा?"

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! उस समय जलन्धर के शब्द से पृथ्वी काँप उठी तथा समुद्र और पर्वत थरथराने लगे। जो दैत्य पहले युद्ध-भूमि से डरकर भाग गये थे, वे सब जलन्धर का यह रूप देखकर पुनः लौट आए। उस समय जलन्धर ने शिवजी से कहा—"हे शिवजी ! मुझे प्रतीत हुआ कि तुम कुछ बल रखते हो, क्योंकि तुमने मेरे साथ युद्ध करने की इच्छा की है।" यह कहकर उसने शिवजी के ऊपर एक भयानक बाण चलाया। उसे शिवजी ने बीच ही में काट डाला फिर शिवजी ने सुगमतापूर्वक एक बाण चलाकर जलन्धर के रथ, सारथी, घोड़े, धनुष आदि सबको नष्ट कर डाला। तब जलन्धर ने शिवजी को मारने के लिए अपना घूंसा ताना तथा एक बाण छिपकर शिवजी को मारा। शिवजी ने यह देखकर अपने बाण से उसे एक कोस फेंक दिया। उस समय जलन्धर ने सोचा कि शिवजी वास्तव में बहुत बलवान् हैं। मैं उनसे इस प्रकार युद्ध करके विजय प्राप्त नहीं कर सकूँगा। अतः मुझे कोई ऐसी माया करनी चाहिए जिससे शिवजी मोहित हो जाएँ। शिवजी को नाद बहुत प्रिय है। अस्तु, उसी के द्वारा उनको मोहित किया जा सकता है। यह विचारकर जलन्धर ने ऐसी माया फैलायी, जिससे गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर आदि प्रकट होकर मनुष्यों के समान अनेक प्रकार नृत्य गान करने लगे। अतः शिवजी के मन में संगीत सुनने की इच्छा उत्पन्न हुई और वे उस आनन्ददायक नाद में मगन हो गए। जैसा कि नियम है कि नाद सुनने से बुद्धि जाती रहती

है, वही बात उनके साथ भी हुई। वास्तव में शिवजी ही ने राग की महिमा को प्रस्तुत किया। यह बात वेद भी कहते हैं कि शिवजी नाद के अतिरिक्त और किसी से मोहित नहीं किये जा सकते। उस समय शिवजी के हाथों से सब शस्त्र गिर पड़े। उन्होंने उस तुरीयावस्था में कुछ न जाना। उस समय जलन्धर ने कामवश शिवजी के समान अपना स्वरूप बनाया, जिसके दस भुजा, पाँच मुख तथा तीन नेत्र थे। फिर उसने अपनी माया से एक बैल बनाया और उस पर चढ़कर तथा शिवजी के जो-जो मुख्य चिह्न थे उन सबको धारण कर ; शुम्भ-निशुम्भ को युद्ध स्थल में छोड़कर, स्वयं गिरिजा के पास जा पहुँचा। गिरिजा ने भी पहले तो लोक-रीति से उसको शिवजी जाना, परन्तु जब वे सखियों के बीच में से उठीं और यह जाना कि यह छल से शिवजी का स्वरूप बनाकर आया है, तब वे वहाँ से तुरन्त अन्तर्धान हो गयीं।

हे नारद ! यह देखकर जलन्धर लज्जित होकर पुनः युद्ध स्थल को लौट आया। उस समय गिरिजा ने विष्णु जी का ध्यान किया, जिससे विष्णु जी तुरन्त प्रकट हुए। गिरिजा ने उनसे जलन्धर का सब वृत्तान्त कहा तथा पतिव्रत धर्म की बहुत कुछ प्रशंसा की। वे बोलीं—"हे विष्णु जी ! जलन्धर की स्त्री बड़ी पतिव्रता है, उसी के धर्म से जलन्धर आज तक जीवित बचा हुआ है, क्योंकि पतिव्रत स्त्री विधवा नहीं हो सकती। इससे तुमको यह उचित है कि अब तुम जलन्धर पुरी में जाकर उसकी स्त्री से पतिव्रत धर्म को नष्ट करो। वृन्दा जो जलन्धर की स्त्री है, उसके साथ तुम छल करो।" यह सुनकर विष्णु जी तुरन्त जलन्धर पुरी को गए। उधर जलन्धर ने युद्ध स्थल में लौटकर जब अपनी माया को दूर किया तो शिवजी ने चैतन्य होकर पुनः युद्ध का स्मरण किया। हे नारद ! यह सब भई शिवजी की माया थी, क्योंकि संसार में जो शिवजी के भक्त हैं, उनका भी माया कुछ नहीं कर सकती, तब शिवजी पर उसका क्या प्रभाव हो सकता था? निदान शिवजी अत्यन्त क्रोधित होकर जलन्धर के ऊपर दौड़े। उस समय जलन्धर ने भी बाण-वर्षा करके अपने बाणों से शिवजी को छिपा दिया। तब शिवजी ने भी

अपने बाणों से उसके बाणों को काटकर उसे बहुत दुःखी किया। जो दैत्य शिवजी के हाथों से मारे गए, वे सब मुक्त हो गये। उन दैत्यों का परम सौभाग्य था जो शिवजी के सम्मुख देखते हुए अपने प्राण त्यागते थे। हे नारद ! यह लीला जिस प्रकार हमने विष्णु जी से सुनी थी, उसी प्रकार तुम्हें कह सुनायी।''

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! गिरिजा की आज्ञा पाकर विष्णु जी जलन्धर पुरी में पहुँचे तथा यह सोचने लगे कि मैं किस प्रकार जलन्धर की पत्नी वृन्दा का पतिव्रत धर्म नष्ट करूँ। जब उन्होंने शिवजी का ध्यान किया तो उस ध्यान के करते ही विष्णु जी को एक उपाय सूझ गया। तब वे तपस्वी का रूप धारण कर, एक शिष्य को साथ लेकर वृन्दा के उपवन में जा पहुँचे। वृन्दा ने उसी रात को यह स्वप्न में देखा था कि मेरा पति जलन्धर युद्ध में मारा गया है तथा यह भी देखा था कि मेरा पति जलन्धर तेल लगाए हुए, भैंसे पर सवार, नंगा तथा सिर के अशुभ बाल बनवाये, काले पुष्पों की माला पहने, राक्षसों से घिरा हुआ, यमपुरी को चला जा रहा है। जब वह यह स्वप्न देखकर उठी तो उसने सूर्य को उदय होते समय राहु-ग्रस्त तथा प्रकाशहीन देखा। ऐसे अपशकुनों को देखकर वह एकाएक रोने, कलपने तथा घबराहट से इधर-उधर घुमने लगी। वह अपनी दो सखियों को साथ लेकर जलन्धर के उद्यान को गयी, परन्तु उसे वहाँ फल-फूल देखकर सन्तोष न हुआ। उसे वहाँ दो राक्षस ऐसे दिखाई दिए जो अत्यन्त भयानक थे। उनको देखकर रानी वृन्दा वहाँ से भाग आयी। आगे जाकर उसने शिष्यों सहित एक तपस्वी को देखा, जो मौन साधे हुए बैठा था। वृन्दा उसी समय दौड़कर उस तपस्वी के पास गयी तथा अपने हाथ उसकी गर्दन में डालकर लिपट गयी और बोली—''हे तपस्वी ! आप मेरी रक्षा करो।'' उस समय तपस्वी ने अपने दोनों नेत्र खोलकर बड़ा क्रोध

किया तथा हुँकार दी जिससे वे दोनों राक्षस वहाँ से भाग गए। यह देखकर जलन्धर की स्त्री अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा प्रणाम करके उनके तपोवन की प्रशंसा करने लगी। फिर वह तपस्वी से इस प्रकार बोली—"हे प्रभो ! आप मेरे पति का, जो शिवजी से युद्ध करने के लिए गये हैं, वृत्तान्त कहिये।"

हे नारद ! यह सुनकर तपस्वी रूपधारी विष्णु जी ने हँसकर ऊपर की ओर देखा, जिससे तुरन्त ही दो बन्दर वहाँ आ उपस्थित हुए तथा उन्हें प्रणाम करके बैठ गए। फिर वे दोनों बन्दर गुप्त हो गए। तदुपरान्त एक क्षण भी नहीं बीता कि वे दोनों बन्दर पुनः पहले की भाँति आकर बैठ गए। इस बार उनके हाथ में जलन्धर का शीश एवं धड़ था। उसे उन्होंने योगी के सम्मुख रख दिया तथा स्वयं दुःखी होकर बैठे रहे। उस समय वृन्दा अपने पति का सिर देखकर व्याकुल हो, पृथ्वी पर गिर पड़ी। तब तपस्वी ने पानी आदि छिड़क कर वृन्दा को सचेत किया। वृन्दा पुनः रो-रोकर अपने पति का सिर अपने सिर से लगाकर व्यथित होने लगी बोली—"हे नाथ ! मैंने तो आपसे शिवजी के साथ युद्ध करने के लिए पहले ही मना किया था, परन्तु आपने मेरी बात नहीं मानी।" इसी प्रकार वह अनेक बातें कह-कहकर रोती रही। फिर तपस्वी से बोली—"हे महाराज ! आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरे पति को जीवित कर दीजिए। मैं आपके प्रभाव को देख चुकी हूँ इसलिए मुझे विश्वास है कि आप इस योग्य हैं कि मेरे पति को जीवित कर देंगे।" यह सुनकर मुनिवेषधारी विष्णु जी ने कहा—"हे वृन्दा ! जो मनुष्य शिवजी की क्रोधाग्नि से मृत्यु को प्राप्त हुआ है, उसे हम जीवित नहीं कर सकते, परन्तु तुम्हारे दुःख को देखकर हम इसको जीवित करेंगे।" यह कहकर उन्होंने सिर को धड़ से जोड़ दिया तथा स्वयं अन्तर्धान होकर उस शरीर में प्रवेश कर गए और जलन्धर के समान उठकर बैठ गए। तदुपरान्त उन्होंने वृन्दा को गले लगाया, परन्तु वृन्दा यह सब कुछ न समझ सकी और उसने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ सहवास करके अपना धर्म नष्ट कर दिया। जब वह उत्तम रीति से

विहार कर चुकी तब विष्णु जी ने अपना शरीर प्रकट कर दिया, उसे देखकर वृन्दा ने उन्हें पहचान लिया। तब वह अपने कृत्य पर बहुत दुःखी हुई। उसे विष्णु जी के ऐसे छल पर बहुत क्रोध आया। वह बोली—"हे विष्णु ! तुमने वेद के विरुद्ध मेरे धर्म को नष्ट किया है। तुम मुनीश्वरों के समान स्वरूप धारण किये हुए बड़े अधर्मी हो।" यह कहकर वृन्दा ने विष्णु जी को यह शाप दिया कि "जो राक्षस तुमने मुझे दिखाये थे वे दोनों बड़े शक्तिशाली होकर तुम्हारी स्त्री को भगा ले जायेंगे, उस समय तुम दुःखी होकर वन-वन में फिरोगे और तुम्हें हर प्रकार के कष्ट प्राप्त होंगे तथा जो बन्दर तुमने मुझको दिखाए, वही तुम्हारे सहायक होंगे।" यह कहकर वृन्दा बहुत रोई तथा चिता बनाकर अपने पति के साथ सती होने की इच्छा करने लगी। यद्यपि विष्णु जी ने उसे बहुत समझाया, परन्तु उसने पतिव्रत धर्म दृढ़ करके कुछ नहीं माना। तदुपरान्त वह शिव-गिरिजा का ध्यान धरकर, सती हो गयी और उसका तेज सबके देखते-देखते गिरिजा के शरीर में प्रवेश कर गया।

हे नारद ! विष्णु जी यह दशा देखकर बारम्बार पछताते हुए, उसकी सुन्दरता के स्मरण में दुःखी हुए तथा उसकी चिता की भस्म को अपने शरीर में मलकर, उसी स्थान पर वास करने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवता तथा सिद्ध उनके निकट जा पहुँचे और विष्णु जी को बड़े-बड़े इतिहास तथा दृष्टान्त सुनाकर समझाने लगे कि "आप तो स्वयं हर समय धर्म का पालन करने वाले रहे हैं। अब आप यहाँ से चलिये तथा अपने वैकुण्ठ लोक में विहार कीजिये। जो पाप आपसे दुर्भाग्यवश हुआ है, वह सब शिवजी की कृपा से नष्ट हो जाएगा। आप किसी प्रकार का दुःख मत कीजिये तथा यहाँ से अपने स्थान को चलिये। आप हमें इन शब्दों के लिए क्षमा करें, क्योंकि हम तुच्छ आपको समझा रहे हैं।" उन लोगों के इस प्रकार समझाने पर भी विष्णु जी ने किसी को कोई उत्तर नहीं दिया तथा उसी प्रकार शोक में

बैठे रहे। हे नारद ! शिवजी की माया बड़ी विचित्र है और सब उसी के आधीन रहते हैं।"

ॐ ॐ ॐ

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! उधर युद्ध क्षेत्र में शिवजी को चेत हुआ, तब देवता उन्हें देखकर बहुत आनन्दित हुए। उस समय शिवजी की वीरता एवं पराक्रम को देखकर जलन्धर ने यह विचार किया कि अब मुझे माया करनी चाहिए, जिससे मैं शिवरानी को प्राप्त करने में सफल हो सकूँ। यह विचार कर उसने अपनी माया से एक कृत्रिम गिरिजा बनायी तथा उसको अपने रथ में बैठाकर शिवजी के सम्मुख ले आया। शुम्भ-निशुम्भ दोनों भाई उसे मारते जाते थे तथा वह गिरिजा रोती हुई 'मेरी रक्षा करो' आदि कहती थी। उस समय जलन्धर ने उच्च स्वर से कहा—"हे सदाशिव ! तुम अपनी स्त्री को देखो यदि तुम्हें अपनी स्त्री बहुत प्रिय है तो समझ लो कि अब उसको मैं पकड़ लाया हूँ तथा उसकी ऐसी दुरदशा कर रहा हूँ। क्या तुमको नहीं दिखाई देता? तुमको सहस्त्रों धिक्कार है, जो तुम अपने को अब भी बड़ा समझते हो?" शिवजी तो जलन्धर के यह वचन सुनकर तथा माया की गिरिजा को देखकर अत्यन्त दुःखी हुए और मौन साधकर बुद्धि को भूल बैठे। तब शिवजी ने भी लीला करके अपने को ऐसा शोकाकुल प्रदर्शित किया कि जलन्धर ने अपने धनुष को कानों तक खींचकर तीन बाण—एक शिवजी के सिर में, दूसरा वक्ष में तथा तीसरा उदर में मारे। उस समय शिवजी जलन्धर की माया को जानकर भयंकर रूप धारण कर अग्नि के समान प्रकट हुए। शुम्भ तथा निशुम्भ युद्ध से विमुख होकर भागे। जलन्धर की सारी माया उसी समय नष्ट हो गयी। तब शिवजी ने शुम्भ-निशुम्भ को यह शाप दिया कि तुमने छल करके गिरिजा को दुःख पहुँचाया है तथा युद्ध से मुख मोड़कर भागे जा रहे हो, इसलिए तुम्हारा धर्म नष्ट हो गया है।

हे नारद ! जलन्धर ने शिवजी का यह रूप देखकर अत्यन्त क्रोधित हो, बाणों की वर्षा कर, शिवजी को ढँक दिया। यह देखकर शिवजी ने क्रोधित हो, अपने बाणों द्वारा जलन्धर के बाणों को काट डाला। इतने में जलन्धर ने एक परिघ बैल को मारा, जिसके कारण बैल धर्म को भूलकर, युद्ध क्षेत्र से भाग गया। यद्यपि शिवजी ने उसको बहुत रोका, पर वह युद्ध स्थल में न ठहर सका। यह देखकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित हो, महाभयंकर हो गये। तब उन्होंने करोड़ों सूर्य के समान चमकते हुए सुदर्शन चक्र को अपने हाथ में उठा लिया और उसे जलन्धर के ऊपर छोड़ दिया। उस चक्र का तेज दसों दिशाओं में फैल गया। सम्पूर्ण पृथ्वी एवं आकाश उसके तेज से जलने लगे। चक्र ने जाकर जलन्धर का सिर धड़ से अलग कर दिया। उस समय बड़ा भारी शब्द हुआ। पृथ्वी थरथर काँपने लगी तथा पर्वत जलने लगे। जिस समय जलन्धर का तेज शिवजी के शरीर में प्रविष्ट हुआ, उस समय चारों ओर से जय-जय का नाद हुआ। हे नारद ! वे लोग बड़े सौभाग्यशाली हैं ; जिनकी ऐसी दशा होती है, क्योंकि देवता, मुनि आदि बड़े-बड़े उपाय करके भी शिवजी को इतना प्रसन्न नहीं कर सकते और न इस गति को ही प्राप्त कर सकते हैं। उस समय मैं, मुनि तथा देवता आदि शिवजी की अत्यन्त प्रशंसा करने लगे।

हम ने कहा—"हे शिवजी ! आप हर प्रकार से भक्तों के दुःख दूर करने वाले हैं। आपको मन, वाणी तथा वेद आदि भी नहीं प्राप्त कर सके। आपके एक निमेष में करोड़ों इन्द्र तथा विष्णु जी बीत जाते हैं। आप किसी से बनाये नहीं गये, अपितु परब्रह्म हैं। आपने यदुवंशी को मुक्ति प्रदान की तथा उसकी पत्नी कलावती ने भी आपकी भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त की। आपने दमयन्ती को मोक्षदान दिया तथा सौमुनि के पुत्र को श्रेष्ठ गति प्रदान की है। राजा तिमिरधन को आपने अपनाकर निरन्तर सात जन्मों तक आनन्दित किया। आपने चन्दसेन का मान रखा तथा श्रीकर गोप को अपनी शरण में लेकर, अपना भक्त बनाया और उसे इतना द्रव्य प्रदान किया, जो देवताओं को भी

उपलब्ध नहीं होता है। आपही ने सत्यरथ के कष्टों को दूर कर उसे आनन्दित किया तथा धर्म गुप्त आपका ही व्रत करके दरिद्रता से मुक्त हो गये। आपही ने चित्रधर्म के दुःखों को दूर किया तथा उसकी लड़की के डूबते हुए पति राजा चन्द्रांगद के जीवन की रक्षा कर, बहुत सुख पहुँचाया। आपके बल से ही तक्षक को किसी प्रकार की हानि एवं भय नहीं होने पाया। आपने ही मद्रदेश के ब्राह्मण को मोक्ष प्रदान कर, उसकी स्त्री चंचला का उद्धार किया तथा आपही ने भद्रामुख गिरि के कष्टों को दूर किया। आपने पिंगला की इच्छानुसार उसको धन आनन्द एवं सुख प्रदान किया और अपने भक्त भद्रामुख की इच्छा पूर्ण की। आपने ऋषभ को हर प्रकार से अपने में ही लीन कर लिया और आपकी सेवा द्वारा ही कामदेव शुभगति को प्राप्त हुआ।

"हे सदाशिव जी ! आपने शबरी एवं शूकर को उत्तम गति प्रदान करके भक्ति का माहात्म्य प्रकट किया तथा भद्रसेन के पुत्र सुधर्मा एवं मित्र के पुत्र तारक को उत्तम गति देकर रुद्राक्ष की बड़ाई प्रकट की। आपही ने गंगा को, जिसका नाम महानन्दा था, तार दिया तथा आपकी भक्ति से सुश्रुमान् अधिक काल तक जीवित रहा। आपने शारदा के पति को जीवित कर, उसके सौभाग्य को स्थिर रखा तथा बन्दिक नामक पापी ब्राह्मण को उत्तम गति आपने ही प्रदान की। उसकी स्त्री बीजुका को भी जो पुंश्चली थी, मुक्ति प्रदान की। आपही ने दक्ष के यज्ञ को विध्वन्स कर, उसके गर्व को चूर किया तथा काम को भस्म कर, शिवरानी का गर्व दूर किया। आपने बालक का रूप धारणकर तारक दैत्य को मार डाला तथा गणपति को अपना बल देकर, समस्त गणों से प्रबल कर दिया। आपने ही त्रिशूल से उनका सिर काटकर पुनः जीवित कर दिया था। दैत्यों को देवताओं सहित जलते हुए देखकर आपने हलाहल विष का पान कर लिया था। आपने पहले त्रिशूल द्वारा अन्धक के सिर को काट डाला, फिर उस पर कृपा करके, अपने गणों में सम्मिलित कर लिया। आपने विष्णु जी एवं ब्रह्मा के मोह को दूर कर मन्त्र शास्त्र को कील डाला तथा नृसिंह

अवतार के गर्व का नाशकर शरभ का अवतार ग्रहण किया। आपने अत्रि के पुत्र होकर कामरूप का वध किया तथा हनुमान का स्वरूप धारणकर, राम-लक्ष्मण को दुःखों से मुक्त कर दिया। आप तीनों गुणों से परे तथा निर्गुण हैं। आपकी महिमा का वर्णन कहाँ तक किया जाए?''

हे नारद ! इस प्रकार सब देवताओं ने शिवजी की स्तुति की। जो कोई इस स्तुति को सुनेगा अथवा दूसरों को सुनाएगा, वह दोनों लोकों में प्रसन्न होकर आनन्द प्राप्त करेगा। उसे किसी प्रकार का कष्ट न होगा तथा अन्त में शिवजी के लोक को प्राप्त करेगा।''

ॐ ॐ ॐ

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! देवताओं ने इस प्रकार स्तुति कर, शिवजी से विनती की—''हे शिवजी ! आपने जलन्धर को नष्ट करके हम लोगों के कष्टों को दूर करके अभयदान दिया है अब और कोई कंटक नहीं है ; परन्तु अचानक ही एक और दुःख हम लोगों को हुआ है अर्थात् विष्णु जी उस स्थान पर, जहाँ जलन्धर की स्त्री वृन्दा सती हो गयी है, भस्म लगाए लोट रहे हैं। आप ही कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे विष्णु जी अपने हठ को छोड़कर पुनः पुराना मार्ग ग्रहण करें। शिवजी ने हँसते हुए यह कहा—''हे देवताओ ! यह सब हमारी माया का ही परिणाम है। विष्णु जी हमको अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिए हमने इस लीला द्वारा उनके अहंकार को दूर कर दिया है। अब हम तुमको जो उपाय बताते हैं, वह तुम करो, उससे विष्णु जी का मोह दूर हो जाएगा। तुम सब लोग देवी की शरण में जाकर अपना दुःख सुनाओ, वे तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करेंगी और विष्णु जी पुनः अपने मुख्य स्वरूप पर आ जायेंगे।''

हे नारद ! तब शिवजी के बताए हुए उपाय के अनुसार सब देवता गिरिजा की स्तुति करने लगे। वे बोले—''हे मातेश्वरी ! हम आपकी

शरण में आए हैं। आप हमें इस दुःख से छुटकारा दिलाइये।'' देवता इस प्रकार स्तुति कर ही रहे थे कि उसी समय आकाश में एक अग्निकुण्ड दिखाई दिया तथा उस अग्निकुण्ड से यह शब्द निकला कि हे देवताओ ! हमने तीन रूपों से, अलग-अलग तीनों गुणों से अलंकृत होकर संसार में अवतार लिया है। वह रूप—एक गिरिजा, दूसरी—लक्ष्मी तथा तीसरी—सरस्वती का है। इसलिए हे देवताओ ! तुम हमारे इन तीनों स्वरूपों की शरण में जाओ, तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। यह सुनकर देवता पुनः स्तुति करने लगे। उस स्तुति के प्रत्येक श्लोक में 'जय-जय' शब्द था। तब देवताओं की उस स्तुति से प्रसन्न होकर तीनों देवियाँ प्रकट हुईं। फिर उन्होंने तीन बीज देकर यह कहा—''हे देवताओ ! जहाँ पर विष्णु जी बैठे हैं, वहीं तुम इन बीजों को बो दो। इस प्रकार तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।'' देवियों के ऐसे वचन सुनकर देवता उन बीजों को लेकर वहाँ जा पहुँचे, जहाँ विष्णु जी बैठे हुए थे। उन्होंने उन बीजों को वहाँ बो दिया। उनसे तीन प्रकार की वनस्पति उपजीं। उनका नाम धात्री, मालती तथा तुलसी हुआ। हे नारद ! धात्री मेरी स्त्री का नाम है, अतः उससे धात्री, लक्ष्मी से मालती तथा गिरिजा से तुलसी की उत्पत्ति हुई। वे तीनों वनस्पतियाँ रज, सत, तम् इन तीनों गुणों को धारण किए स्त्रियों के समान प्रकट होकर, वृन्दा से भी अधिक सुन्दर रूप रख, विष्णु जी के सम्मुख जा खड़ी हुईं। विष्णु जी उनको देखकर आश्चर्यचकित हुए।

हे नारद ! विष्णु जी को इस प्रकार कामवश होते देखकर धात्री तथा तुलसी ने तिरछी चितवन से विष्णु जी की ओर देखा। मालती उनकी यह दृष्टि सौतिया डाह से न सहकर अत्यन्त दुःखी हुई। इसीलिए वह शिवजी पर नहीं चढ़ायी जाती। अस्तु, विष्णु जी धात्री तथा तुलसी पर मोहित होकर, उन्हें अपने साथ लिए हुए वैकुण्ठ में लौट आये। वहाँ आकर उनका मोह दूर हो गया। हे नारद ! जो मनुष्य जलन्धर के वध की इस कथा का पाठ करता है अथवा सुनता है, वह शिवलोक में स्थान प्राप्त करता है।''

चौबीसवाँ अध्याय

सूत जी बोले कि—"हे ऋषियो ! इस कथा के सुनने के पश्चात् नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—"हे पिता ! अब आप मुझे उस सुदर्शन चक्र के विषय में बताइये, जो विष्णु जी का प्रसिद्ध शस्त्र है। मैं नहीं जानता कि यह वही सुदर्शन चक्र है जो शिवजी ने सब देवताओं से तेज लेकर जलन्धर के वध के लिए बनाया था अथवा कोई दूसरा है।" नारद जी के ऐसे वचन सुनकर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! सुदर्शन चक्र एक ही है, दूसरा नहीं। जब दैत्य अत्यन्त बल एवं द्रव्य प्राप्त कर देवताओं को दुःख पहुँचाने लगे तो विष्णु जी ने शिवजी की सेवा कर, उनसे सुदर्शन चक्र प्राप्त कर लिया। तब से वे उसी के द्वारा सब दैत्यों का वध करते हैं। कल्पभेद से शिव-चरित्र, लीला वर्णन, व्याख्यान, कथा तथा इतिहास में बहुत अन्तर है ; परन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि उसके हृदय में जो सन्देह उत्पन्न हो उसे पूछ ले, जिससे वह सत्य मार्ग से न भटक जाए। अस्तु, जलन्धर के वध के पश्चात् दिति के लड़के दैत्य बहुत बली होकर उपद्रव मचाने लगे, जिससे संसार में मनुष्यों को बहुत दुःख प्राप्त हुआ। तप, योग, यज्ञ, देवताओं की पूजा, ध्यान वर्णाश्रम तथा सब धर्मों में विघ्न पड़ने लगे। तब सब देवता तथा मुनि दुःखी होकर मेरे पास आये। उन्होंने मेरी स्तुति कर अपने कष्टों का वर्णन किया। तब मैं उन सबको लेकर विष्णु जी के पास गया और उनकी स्तुति कर यह विनय की कि अब दानव तथा दैत्य बहुत दुःख पहुँचा रहे हैं, सो हम सब आपकी शरण में आये हैं। हमारी यह प्रार्थना सुनकर विष्णु जी ने कहा—"हे देवताओ ! तुम सब लोग अपने-अपने घर जाओ, हम स्वयं दैत्यों से युद्ध करेंगे।" यह कहकर वे दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे परन्तु दैत्यों पर विजय प्राप्त न कर सके ; क्योंकि दैत्य महाबली थे। यह देखकर विष्णु जी ने सोचा कि शिवजी की सहायता के बिना हम दैत्यों पर विजय प्राप्त न कर पायेंगे। यह विचार कर विष्णु जी तुरन्त ही अन्तर्धान हो गए तथा कैलाश पर्वत के

निकट तपस्या करने के लिए बैठ गये। उन्होंने एक कुण्ड खोदकर उसमें एक अग्नि भरी तथा वहीं बैठकर कठिन तप करने लगे।

हे नारद ! इस प्रकार विष्णु जी ने पार्थिव पूजन, मन्त्र एवं ध्यान आदि से शिवजी का पूजन किया, परन्तु शिवजी प्रसन्न न हुए। यह देखकर विष्णु जी ने सोचा अब कि हम किस उपाय से शिवजी को प्रसन्न करें? अन्त में उन्हें यह विश्वास हुआ कि शिव सहस्त्र नाम का जप करने से ही शिवजी प्रसन्न होंगे। यह निश्चय कर, वे शिवजी के एक सहस्त्र नामों का जप करने लगे तथा कमल पुष्प चढ़ाने लगे। शिवजी ने परीक्षा के लिए सहस्त्र पुष्पों में से एक कमल का पुष्प अलक्षित कर दिया। अन्त में पूजा करते-करते जब एक फूल कम हुआ तो उनको बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उस समय कमल-पुष्प प्राप्त होने की कोई आशा न थी। साथ ही पुष्प के बिना पूजन में भी अन्तर पड़ता था। इसी चिन्ता में जब उन्होंने शिवजी का ध्यान किया तो ऐसा ज्ञान हुआ कि उनके नेत्र भी कमल-पुष्प से किसी प्रकार कम नहीं हैं। अतः उन्होंने तुरन्त ही अपने एक नेत्र को निकालकर, प्रसन्नतापूर्वक शिवजी को अर्पण कर दिया। यह देखकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उन्होंने विष्णु जी को दर्शन दिया तथा आम्रडितम् मन्त्र का उच्चारण करते हुए कृपा दृष्टि से देखा। उस समय विष्णु जी ने शिवजो को प्रणाम किया। तब शिवजी मुस्कुराते हुए बोले—"हे विष्णु जी ! तुम्हारी इच्छा जो हो वह माँग लो।" तब शिवजी के आदेशानुसार विष्णु जी ने अत्यन्त पवित्र स्तुति करते हुए यह प्रार्थना की—"हे सदाशिव जी ! हम दैत्यों से पराजित हो गए हैं और उन पर किसी प्रकार भी विजय प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए आप कोई ऐसा यत्न कीजिये, जिससे वे मारे जायें।"

हे नारद ! यह सुनकर शिवजी ने कृपा कर, विष्णु जी को अपना सुदर्शन चक्र दिया और यह कहा—"हे विष्णु जी ! हमारे इस समय के रूप का ध्यान कर इस सहस्त्र नाम तथा सुदर्शन चक्र से, जो हम तुमको प्रदान करते हैं, तुम शत्रुओं एवं दैत्यों को मारकर, उन पर

विजय प्राप्त कर लोगे। तुम्हें तीनों लोकों में कोई भी नहीं जीत सकेगा, परन्तु सुदर्शन चक्र का छोटे-छोटे कार्यों में प्रयोग मत करना। ब्राह्मणों के अतिरिक्त वह सबको जलाकर भस्म कर देगा।'' शिवजी यह कहकर अन्तर्धान हो गए तथा विष्णु जी सुदर्शन चक्र को लेकर प्रसन्नतापूर्वक लौट आये। वे दिन-रात सहस्त्र नाम का जप करते तथा अपने भक्तों को उसी की शिक्षा देते रहते थे। अब भी जो कोई शिव सहस्त्र नाम तथा विष्णु स्तुति का पाठ करता है, उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं। उसके शत्रुओं का विनाश होता है तथा वह दोनों लोकों में सुखी रहता है।''

पच्चीसवाँ अध्याय

नारद जी बोले—''हे ब्रह्मा जी ! अब आप मुझे शिवजी के उन चरित्रों के विषय में बताइए, जिसमें उन्होंने दैत्यों को नष्ट किया।'' तब ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें शंखचूड़ के मारने का वृत्तान्त बताता हूँ। शिवजी ने जिस उपाय से शंखचूड़ को मारा, उसको सुनने से शिव-भक्ति अधिक उत्पन्न होती है। सबसे पहले मेरे पुत्र मरीचि से कश्यप उत्पन्न हुआ। उसको मेरे पुत्र दक्ष प्रजापति ने अपनी तेरह पुत्रियाँ ब्याह दीं, जिससे बहुत सन्तानें उत्पन्न हुईं। मैं तुम्हारे समक्ष उनमें से केवल एक मनुष्य का इतिहास सुनाता हूँ जो भक्ति की वृद्धि करता है तथा इच्छित फल को देना वाला है। कश्यप की पुत्री अत्यन्त सुन्दर एवं पतिव्रता थी। उसके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो दैत्य तथा महाशक्तिशाली थे। उनमें से एक पुत्र विप्रचिति बहुत ही वीर एवं बलवान था। उनका एक पुत्र दम्भ था जो विष्णु जी का परम भक्त एवं सेवक था। उसके कोई पुत्र उत्पन्न न होने से, वह अपने बड़ों की इच्छा एवं विष्णु जी की आज्ञानुसार पुष्कर में तप करने चला गया तथा एक लाख वर्षों तक इस हेतु कठिन तपस्या करता रहा, जिससे उसके कोई पुत्र उत्पन्न हो। विष्णु जी ने उसकी ऐसी आराधना देखकर दर्शन दिया

तथा प्रसन्न होकर यह कहा कि तू हमसे कोई वरदान माँग ले। तब उसने कहा—"हे विष्णु जी ! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ जो महावीर हो और मेरे आधीन हो। वह सारे संसार पर विजय प्राप्त करे तथा बहुत बुद्धिमान् हो।" विष्णु जी यह प्रार्थना स्वीकार कर उसे वरदान देकर अन्तर्धान हो गए। तब दम्भासुर अपने घर लौट आया तथा उसने सब हाल अपनी पत्नी से कहा सुनाया। पत्नी उसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने भिक्षुकों को बहुत दान दिया। थोड़े दिनों बाद वह गर्भवती हो गयी।

हे नारद ! सुदामा नामक कृष्ण जी एक भक्त, जो राधा जी के शाप से वैकुण्ठ अर्थात् गो-लोक में था, उसके गर्भ में आया। जब नौ-दस महीने व्यतीत हुए, तब शुभ-दिन एवं शुभ-नक्षत्र में उनका जन्म हुआ। उस समय दम्भासुर ने बड़ी धूमधाम से जात-कर्म करके अपने भाई-बन्धुओं की अनेक प्रकार से सेवा की और आनन्द प्राप्त किया। उसने अपने लड़के का नाम शंखचूड़ रखा। शंखचूड़ सर्वगुण-सम्पन्न तथा सब विद्याओं में पारंगत था। वह अपने माता-पिता को हर प्रकार से सुखी रखने लगा। तदुपरान्त वह जैगीषव्य से उपदेश लेकर, तपस्या करने वन में गया तथा मेरे पाठ-पूजन में ऐसा लीन रहा कि उसे देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। इसलिए मैं उसे वरदान देने को प्रकट हुआ। उस समय शंखचूड़ ने मुझसे यह वरदान माँगा कि मैं देवताओं से कभी पराजित न होऊँ तथा तीनों लोकों में विजय प्राप्त कर, महावीर हो रहूँ। मैंने उसको मुँह माँगा वरदान देकर कृष्ण-कवच प्रदान किया। फिर उसे यह आज्ञा दी कि तुम बदरिकाश्रम में जाकर धर्मध्वज की पुत्री तुलसी से, जो तप कर रही है, अपना विवाह करो। यह वरदान देकर, मैं वहाँ से अन्तर्धान हो गया। शंखचूड़ ने कृष्ण कवच को सिद्ध कर अपने कंठ पर बाँध लिया तथा उस स्थान पर अर्थात् बदरिकाश्रम में, जहाँ तुलसी तपस्या करती थी, जा पहुँचा। वह तुलसी की सुन्दरता को देखकर मोहित हो गया तथा उससे बोला—"हे सुन्दरी ! तुम कौन हो? तुम किसकी कन्या हो और किसलिए ऐसा

तप कर रही हो? मैं तुम्हारा सेवक हूँ, इसलिए मुझसे सब बातें कहो।" यह सुनकर तुलसी ने कहा—"मैं धर्मध्वज की पुत्री हूँ तथा तप करने के लिए यहाँ बैठी हूँ। तुम इस प्रकार मेरी परीक्षा लेने वाले कौन हो?" यह सुनकर शंखचूड़ ने कहा—"हे सुन्दरी ! संसार में दो प्रकार के स्त्री-पुरुष होते हैं। एक तो बुरे तथा कामी, दूसरे भले और तपस्वी। मैं कामी और पापी नहीं हूँ, उसी प्रकार तुम भी इनसे रहित हो। मुझे यहाँ ब्रह्मा जी ने भेजा है। मैं तुम्हारे साथ गान्धर्व-विवाह करूँगा। मेरा नाम शंखचूड़ है, मैं तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला तथा दम्भासुर का पुत्र हूँ।"

हे नारद ! शंखचूड़ के ऐसे वचन सुनकर तुलसी ने कहा—"तुम बहुत भले एवं लोभ तथा काम से रहित हो। जो मनुष्य स्त्री के आधीन नहीं, वह बहुत भाग्यवान् है ; परन्तु जो मनुष्य स्त्री के वश में है, उससे बढ़कर संसार में कोई बुरा नहीं है। समस्त देवता, मुनि एवं पितर आदि स्त्री से घृणा करते हैं। स्त्रियों द्वारा दिये हुए पिण्ड पितरों को नहीं पहुँचते तथा उनके चढ़ाये हुए पुष्प देवता आदि स्वीकार नहीं करते हैं। जिसका हृदय स्त्री के आधीन है, उसका पूजा पाठ सब कुछ मिथ्या है और उसका जन्म भी मिथ्या है।"

हे नारद ! इस प्रकार उन दोनों में बातें हो ही रही थीं कि मैं उस स्थान पर जा पहुँचा तथा शंखचूड़ से बोला—"हे शंखचूड़ ! तुम दोनों इस प्रकार वार्तालाप क्यों करते हो, शीघ्र ही गान्धर्व-विवाह क्यों नहीं करते? तुम दोनों एक ही वर्ण के हो।" यह कहकर मैंने तुलसी को उसके कुल एवं जप-तप का हाल कहकर शंखचूड़ से विवाह करने की आज्ञा दी तथा कहा कि शंखचूड़ विष्णु जी का परम भक्त है। इसके साथ विवाह करने से कृष्ण जी तुमको बहुत चाहेंगे तथा वैकुण्ठ प्रदान करेंगे। यह कहकर गान्धर्व विवाह कर लिया। फिर शंखचूड़ तुलसी को लेकर अपने घर जा पहुँचा। वहाँ पहुंचकर उसने अपने माता-पिता को प्रणाम किया और सब समाचार कह सुनाया। वे दोनों

भी आनन्दित हुए। पश्चात् दम्भासुर शंखाचूड़ को राजकाज सौंपकर स्वयं तप करने चला गया।''

ॐ ॐ ॐ

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! असुरों के गुरु शुक्राचार्य यह समाचार सुनकर अनेक दैत्यों सहित शंखचूड़ के पास आये। शंखचूड़ ने उनकी भली प्रकार से सेवा की। शुक्राचार्य जी ने आशीर्वाद तथा प्रशंसा के पश्चात् देवता एवं दैत्यों की कथा का वर्णन किया। तदुपरान्त उन्होंने वह शत्रुता, जो दोनों में बहुत समय से चली आ रही थी कही, तथा देवताओं की जीत, दैत्यों की हार, बृहस्पति की सहायता एवं देवताओं के चरित्र सुनाकर, शंखचूड़ को सब दैत्यों का राजा बनाया। दैत्यों ने बहुत प्रसन्न होकर अनेक प्रकार की भेट दीं। तब शंखचूड़ ने अत्यन्त प्रसन्न होकर, दैत्यों तथा वीरों की एक विशाल सेना एकत्र कर, इन्द्रलोक पर आक्रमण कर दिया और नगर को चारों ओर से घेर लिया। इन्द्र भी देवताओं की सेना लेकर उससे लड़ने आये। उस समय दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में देवताओं ने बड़ी वीरता से दैत्यों को पराजित कर दिया। शंखचूड़ ऐसी हार देखकर बहुत दुःखी हुआ, तब उसने अपने बड़े-बड़े वीरों को युद्ध के लिए भेजा। वे देवताओं से कुशलतापूर्वक लड़े। देवता उनकी वीरतापूर्वक लड़ाई देखकर भाग गये और तितर-बितर हो गये। तब दसों दिग्पति दैत्यों के सम्मुख युद्ध करने आये। दोनों ओर से महायुद्ध हुआ। इन्द्र-वृषपर्वा, अनल-गौ, श्रुति-संहार, यम-कालिम्बिका, वरुण-चंचल, पवन-कल केय, कुवेर-दम्भ, ईश-विप्रचिति, ऋभु-राहु, चन्द्रमा-कनकाक्ष, मंगल-शुक्र, ब्रह्मपति-कालासुर, काल-यम, विश्वकर्मा-शनिश्चर, रक्ताक्ष-वसुगण, प्रगेशबण-धूम्रलोचन, नलकूबर-रत्नसार, इन्द्रपुत्र-किविट, मन्मथ-दीप्तिमान्, अश्विनी कुमार, सब दिग्पति, ग्रह, देवता तथा दैत्य, बड़े-बड़े वीर द्वन्द्व युद्ध करने

लगे। अन्त में दैत्यों ने शुक्राचार्य जी का ध्यान किया तथा एक बार देवताओं के सम्मुख होकर एक साथ आक्रमण कर दिया। यह देखकर देवता वहाँ से भाग गये।

हे नारद ! देवताओं को इस प्रकार भागते हुए देखकर ग्यारहों रुद्र दैत्यों के सम्मुख आ पहुँचे तथा त्रिशूलों से उन पर आक्रमण कर दिया। सब दैत्य उनके इस आक्रमण से भयभीत होकर भाग गये। जब शंखचूड़ ने दैत्यों की यह दुरदशा देखी तो उसने अनेक बाण चलाये, जिससे देवता भाग गये। परन्तु ग्यारहों रुद्र वहीं युद्ध स्थल में खड़े रहे। उस समय से आकाशवाणी हुई—"हे देवताओ ! शंखचूड़ को ग्यारहों रुद्र किसी प्रकार परास्त न कर सकेंगे और न इसे मारने में ही सफल होंगे, क्योंकि ब्रह्मा जी के वरदान से यह सम्पूर्ण लोकों का राजा होगा। तुम लोग यहाँ से चले जाओ तथा अवसर की प्रतीक्षा करो।" देवताओं ने इस आकाशवाणी को सुनकर युद्ध बन्द कर दिया। इस प्रकार दैत्य विजयी होकर आनन्द के साथ अपने घर लौट गये। तब शंखचूड़ सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा हुआ। उसने देवताओं का द्रव्य दैत्यों को दे दिया। उसने इन्द्र के पद को धारण किया। उसके राज्य में किसी को कोई दुःख न हुआ। सब लोग अपने-अपने वर्ण, धर्म, कर्म तथा आश्रम में भली प्रकार स्थित रहे। शंखचूड़ कृष्ण जी का परम भक्त था। यद्यपि वह राधा जी के शाप से दैत्य रूप में उत्पन्न हुआ था, परन्तु दैत्यों के समान उसमें कोई लक्षण न था।"

ॐ ॐ ॐ

सत्ताईसवाँ अध्याय

नारद जी बोले—"हे पिता ! शंखचूड़ को राधिका जी ने किस बात से रुष्ट होकर शाप दिया था, वह मुझे बताइये।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! कृष्ण जी गो-लोक में निवास करते हैं। वहाँ कृष्ण जी के परम मित्र सुदामा रहते थे। राधा जी ने उनका अनाचार देखकर ही उन्हें शाप दिया, जिससे उन्होंने दैत्य का शरीर धारण

किया।'' नारद जी बोले—''हे पिता ! गो-लोक कहाँ है? क्या उसी को गो-लोक कहते हैं, जहाँ श्री कृष्ण जी विराजमान हैं?'' ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—''हे पुत्र ! प्रथम मेरा लोक है, जहाँ मैं शिवजी के ध्यान में सदैव मग्न रहता हूँ। उसके ऊपर वैकुण्ठ है, जहाँ विष्णु भगवान् विराजमान् हैं। उसके ऊपर शिवजी का शासन है, जहाँ शिवजी के भक्त रहते हैं। उन्हें शिवजी के भजने से किसी प्रकार का खेद तथा शोक नहीं होता। उसके ऊपर वीरभद्र का लोक है, जहाँ स्कन्द अर्थात् स्वामी कार्तिकेय रहते हैं। उसके ऊपर उमा-लोक है, जहाँ शिवरानी विराजमान् हैं। उसके ऊपर शिव-लोक है, जहाँ शिवजी परब्रह्म, जगत् के स्वामी, अन्तर्यामी विराजमान हैं। उसको आनन्द वन तथा काशी भी कहते हैं। वहाँ के राजा शिवजी हैं, जो तीनों देवताओं को उत्पन्न करने वाले हैं। मैंने इस प्रकार के शिवलोक का जो वर्णन किया है, उसी के निकट गो-लोक है। वहाँ श्री कृष्ण जी विराजमान् हैं अर्थात् जहाँ शिवजी की गौ रहती है, वहाँ कृष्ण जी का स्थान है जिससे वे उनका पालन करें। वह गो-लोक ही कृष्ण-लोक कहलाता है। प्रथम उसे शिवजी ने विष्णु जी को दिया था ; परन्तु जब विष्णु जी ने कृष्ण जी का और लक्ष्मी जी ने राधा जी का अवतार लिया, तब शिवजी ने उनका अभिषेक करके उन्हें ब्रह्माण्ड का राज्य दिया तथा उन्हें सबसे बड़ी पदवी दी। उस समय शिवजी ने यह कहा—''हे कृष्ण जी ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, तुम वैसा ही करना। तुम्हारी महिमा तथा बड़ाई विष्णु जी से अधिक होगी। तुम गोपियों के साथ विहार किया करना।'' इसी कारण श्री कृष्ण जी राधा जी को लेकर गोपियों के नगर में आए तथा गौओं का पालन करने लगे। एक दिन श्रीकृष्ण जी ने राधा जी को कहीं भेज दिया तथा स्वयं विरजा के साथ विहार करने लगे। राधा जी से यह बात किसी सखी ने कह दी। राधा जी यह सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो, इस चरित्र को देखने के लिए आयी। वे विरजा के घर जाकर रथ से उतरीं और चाहा कि भीतर जाएँ, परन्तु सुदामा, जो एक लक्ष गोपों के साथ द्वार पर बैठा था, उसने राधा

जी को अन्दर जाने नहीं दिया। जब बहुत चिल्लाहट हुई, तब कृष्ण जी ने जाना कि राधा आयी हैं। इसलिए वे भयभीत होकर स्वयं तो वहाँ से अन्तर्धान हो गए तथा विरजा ने अपने शरीर को नदी बना लिया, जो चारों ओर मीठे जल से बह निकली। जब राधिका जी ने अन्दर जाकर दोनों में से किसी को न पाया, तब उन्होंने कृष्ण जी पर बहुत क्रोध किया।

"हे नारद ! राधा जी विरजा को नदी देखकर बहुत रोयीं। तदुपरान्त विरजा श्रीशिवजी की आज्ञानुसार कृष्ण जी के वियोग दुःख को देखकर प्रकट हुई। तब कृष्ण जी ने फिर राधा जी को भुला दिया और विरजा के साथ विहार करने लगे। जब राधा जी ने फिर यह सुना तो वे कोपभवन में गयीं और वस्त्र एवं गहने आदि शरीर से उतारकर, भूमि पर लोटने लगीं। यह सुनकर श्री कृष्ण जी कोपभवन में राधा जी के निकट आये तथा सुदामा भी उसी प्रकार एक लाख गोपों की सेना लेकर द्वार पर खड़ा रहा। राधा जी ने कृष्ण जी को अपने पास आता हुए देखकर कहा—"हे कृष्ण जी ! तुम यहाँ क्यों आये हो? तुम परस्त्री से सम्भोग करते हो तथा उसी में मग्न रहते हो। अस्तु, तुम यहाँ से चले जाओ और जहाँ भी चाहे, वहाँ रहो। मेरे जाने से विरजा नदी हो गयी थी, अब तुमको भी यही उचित है कि तुम नद होकर परस्पर मिलो तथा भोग-विलास करो। तुम्हारे सब कार्य मनुष्यों के समान हैं, इससे मैं तुमको शाप देती हूँ कि तुम भी मनुष्य रूप धारण कर, भरतखण्ड में निवास करोगे।" राधा जी ने ऐसा शाप देकर अपनी सखियों को आज्ञा दी कि इनको इस स्थान से निकाल दो। तब कृष्ण जी राधा जी के आदेश पर वहाँ से निकाल दिये गये, परन्तु वे गुप्त होकर वहीं बने रहे। जब सुदामा ने अपने स्वामी की ऐसी दशा देखी तो वे राधा जी से बोले—"हे राधा ! तुमने कृष्ण जी को शाप क्यों दिया? तुम सब गोपियाँ तो कृष्ण जी के आधीन हो।" यह सुनकर राधा जी ने क्रोध में भरकर कहा—"हे मूर्ख सुदामा ! तू नहीं जानता कि कृष्ण जी मेरे सेवक हैं। इसलिए मैं तुझ को भी यह शाप देती हूँ कि तू दानव का

जन्म ले। तूने कृष्ण जी का दैत्यों के समान मान किया तथा मेरा अपमान किया है। मेरे बिना तेरी कोई रक्षा न करेगा।''

हे नारद ! राधा जी का ऐसा शाप सुनकर सुदामा ने उत्तर दिया—''हे राधे ! अब तुम्हारी बुद्धि मनुष्यों के समान हो गयी है, इसलिए तुम भी मनुष्यों का शरीर प्राप्त कर, कलंकित हो गयी और कोई गोप तुम्हारे साथ विवाह नहीं करेगा। तुम कृष्ण जी को फिर पाकर सौ वर्ष तक दुःख भोगोगी।'' हे नारद ! शिवजी ने इस प्रकार के चरित्र किये, तदुपरान्त अपनी माया को खींच लिया। उस समय विष्णु भगवान् वहाँ उपस्थित हुए। उस समय दोनों को रुदन करते देखकर विष्णु जी ने सुदामा से यह कहा—''हे सुदामा ! तुम किसी प्रकार का दुःख मत करो तथा दानव होकर संसार का राज्य करो। शिवजी के अतिरिक्त तुम्हें कोई नहीं जीत सकेगा। तुम उन्हीं के हाथ से मरोगे तथा फिर यहाँ चले आओगे। मैं तथा राधा भी अवतार लेकर मनुष्यों के समान लीला करेंगे।'' यह कहकर विष्णु जी राधा जी को लेकर गो-लोक में रहने लगे तथा सुदामा दानव हुए। मैंने तुम्हें यह पुरातन कथा सुनायी है। अब बताओ तुम और क्या सुनना चाहते हो?''

ॐ ॐ ॐ

अट्ठाईसवाँ अध्याय

नारद जी बोले—''हे पिता ! अब आप मुझे यह बताइए कि शिवजी ने शंखचूड़ को किस प्रकार मारा?'' यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! शंखचूड़ ने सब देवताओं को निकाल दिया तथा अच्छी प्रकार राज्य करने लगा। तब सब देवता चिन्तामग्न होकर इन्द्र के पास गए तथा उनको आगे करके मुनीश्वरों सहित मेरे पास आए और शोकाकुल होकर शंखचूड़ का सब वृत्तान्त सुनाने लगे। उनकी यह दशा देखकर मैं सबको विष्णु जी के पास लेकर गया तथा स्तुति कर, शंखचूड़ का सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया।

हे नारद ! तब विष्णु जी ने प्रसन्न होकर यह कहा—''हे देवताओ !

शंखचूड़ हमारा परम भक्त है, इसलिए वह त्रिशूल के अतिरिक्त और किसी शस्त्र से नहीं मरेगा।" यह कहकर विष्णु जी हम सबको साथ लेकर शिव-लोक गये। वहाँ ड्योढ़ी पर पहुँचकर हम सब लोग शिवजी की आज्ञानुसार अन्दर गये तथा उनकी स्तुति करते हुए बोले—"हे सदाशिव जी ! हम दैत्यों के हाथ से मारे जाते हैं।" यह दशा देखकर शिवजी हम पर दयालु हुए।"

उन्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"हे देवताओ ! तुम निर्भय रहो। तुम्हारा सब प्रकार कल्याण होगा। शंखचूड़ ने अपने पहले जन्म में कृष्ण जी की पूजा की थी, परन्तु शाप राधा जी से पाया था।" इस प्रकार शिवजी आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह ही रहे थे कि उसी समय श्री कृष्ण जी राधिका जी सहित वहाँ जा पहुँचे और स्तुति करने के पश्चात् बोले—"हे शिवजी ! आपकी माया में फँसकर तथा स्वयं को भूलकर हमने ऐसा शाप पाया। अब आप हमें क्षमा करें।" यह सुनकर शिवजी ने कहा—"हे कृष्ण जी ! तुम्हारा अहंकार समाप्त करने के लिए ही हमने यह चरित्र किया था। अब तुम अपने घर जाओ तथा आनन्दपूर्वक रहो। जब तुम दोनों क्रीड़ाकल्प में मनुष्य का शरीर धारण कर अवतरित होगे, तब तुम्हारा पाप नष्ट हो जाएगा। तुम्हारा मित्र सुदामा दानव होकर इस समय शंखचूड़ कहलाता है। उसने देवताओं को बहुत दुःखी किया है। हम उनका भी दुःख दूर करेंगे।" कृष्ण जी से यह कहकर शिवजी ने देवताओं की ओर देखा तथा कहा—"हे देवताओ ! तुम कैलाश पर्वत पर जाकर, रुद्र से, जो कि अवतार हैं, सब वृत्तान्त कहो। वे तुम्हारे सब दुःख दूर करेंगे। वे केवल देवताओं के लिए ही अलग रूप धारण किये हैं। हमारा वहाँ सगुण रूप उपस्थित रहता है जो हम तथा रुद्र में भेद समझता है, वह कष्ट पाता है।"

हे नारद ! यह सुनकर हम सब अत्यन्त प्रसन्न हुए। जब राधा जी तथा कृष्ण जी गोप सहित वहाँ से चले गये, तब मैं भी इन्द्र आदि देवताओं सहित कैलाश पर्वत पर गया और रुद्र को प्रणाम करने के पश्चात् यह प्रार्थना की—"हे गिरिजापति ! हम सब आपकी शरण में आये हैं। आप हमारे दुःखों को दूर कीजिये।" रुद्र ने उत्तर दिया—"हे देवताओ ! तुम अपना कार्य सिद्ध समझो तथा अपने-अपने घर लौट जाओ। हम शंखचूड़ को सभी दैत्यों सहित मारकर, तुम्हारे मनोरथ को पूरा करेंगे।" शिवजी की ऐसी अमृतमयी वाणी सुनकर हम सब उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने घर लौट आये।"

ॐ ॐ ॐ

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी ने शंखचूड़ को मारने का उपाय सोचकर अपने भक्त पुष्पदन्त को बुलाया तथा यह कहा—"हे पुष्पदन्त ! तुम गन्धर्वों के राजा हो इसलिए शंखचूड़ के पास जाकर यह कहो कि तुमने देवताओं का राज्य छीन कर ठीक नहीं किया है। तुम माया के कारण अभिमानी एवं अहंकारी हो गये हो। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अस्तु, तुमको यही उचित है कि देवताओं का राज्य उनको लौटा दो तथा व्यर्थ का कोई झगड़ा न करो। यदि तुम अपनी मृत्यु नहीं चाहते हो तो पाताल में चले जाओ और वहाँ का राज्य करो ; अन्यथा हम तुम्हें तुरन्त ही मार डालेंगे।" पुष्पदन्त यह सुनकर शंखचूड़ के पास गया। उस समय वह एक ऊँची अटारी पर बैठा हुआ था तथा तीन करोड़ दैत्य उसकी सेवा कर रहे थे। ऐसी सेना देखकर पुष्पदन्त आश्चर्यचकित हुआ। अन्त में शंखचूड़ के पास बैठ गया। उस समय शंखचूड़ ने उससे यह पूछा—"तुम किसके दूत हो तथा इस प्रकार निडर क्यों बैठे हुए हो? तुम्हारे कर्म सेवकों के से दिखाई नहीं देते। अस्तु, तुम जिस काम के लिए आये हो, उसे तुरन्त कहो।" यह सुनकर पुष्पदन्त ने सब वृत्तान्त जो शिवजी ने उससे कहा था, शंखचूड़

को कह सुनाया तथा अपनी ओर से यह भी कहा कि या तो तुम देवताओं का राज्य लौटा दो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

हे नारद ! यह सुनकर शंखचूड़ ने कहा—"हे दूत ! हम शिवजी के भय के कारण देवताओं को राज्य नहीं देंगे। हम यह भली प्रकार जानते हैं कि पृथ्वी का यह राज्य दैत्यों तथा वीरों के लिए है। हम युद्ध करेंगे। हमें तो यह आश्चर्य है कि शिवजी ऐसे निःस्वार्थ महात्मा होकर भी देवताओं की रक्षा करते हैं। हम प्रातःकाल कैलाश पर्वत आयेंगे। तब शिवजी जो उचित समझें, वह करें।" यह सुनकर पुष्पदन्त ने मुस्कुराकर कहा—"हे शंखचूड़ ! शिवजी परम श्रेष्ठ हैं। तुम इतना अहंकार मत करो। उनसे युद्ध करके तुम मृत्यु को प्राप्त होगे। पहले तुम उनके गणों से ही लड़कर देख लो। उनका सामना करना तो बहुत ही कठिन है।" पुष्पदन्त ऐसे वचन कहकर चुप हो गया। तब शंखचूड़ ने कहा—"मैं शिवजी से लड़े बिना दुःखी रहूँगा। यह सम्पूर्ण सृष्टि काल से उत्पन्न होती है तथा काल से ही नष्ट हो जाती है। हे पुष्पदन्त ! तुम यह सारा वृत्तान्त जैसा कि मैंने तुमसे कहा है, शिवजी से कह देना।" यह सुनकर पुष्पदन्त वहाँ से उठकर शिवजी के पास आए तथा उन्हें सारा हाल कह सुनाया।"

ॐ ॐ ॐ

इकतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी पुष्पदन्त द्वारा शंखचूड़ के ऐसे कठोर वचन सुनकर, क्रोधित हुए तथा अपने गणों को आज्ञा दी कि तुम सब तैयार हो जाओ। फिर वे वीरभद्र, नन्दीगण, भृंगी, क्षेत्रपाल, भैरव तथा मुनिभद्र आदि को पुकार-पुकार कर बोले कि तुम सब लोग शस्त्र आदि लेकर चलो। शिवजी की ऐसी आज्ञा सुनकर सब लोग प्रसन्न हो, बाजे बजाने लगे तथा सेना सहित बाहर निकल आए। तब शिवजी ने यह कहा कि समस्त सेना तथा सेनापति हमारे साथ चलें, परन्तु गणपति अपनी सेना सहित यहाँ रह जाएँ। इतना

कहकर शिवजी शस्त्र आदि लेकर बैल पर चढ़कर चल दिए तथा कैलाश पर्वत के बाहर पहुँचकर ठहर गए। बड़े-बड़े सेनापति, गण, वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, बाण, सुभद्रक विकृत, पिंगलाक्ष, मणिभद्र, विरूपाक्ष, विशालाक्ष, वाष्कल, गतिहूत, वृष, दृष्टिदंष्ट्र, कालंजर, दुर्गम, विद्रुम, बलभद्र, कपिल, कूटाम्बर, ताम्रनयन, विकर्ण, कीचर, बितवल, सन्तद्रन, अभिलाषी, आठो भैरव, ग्यारहों रुद्र और क्षेत्रपाल आदि गणों के स्वामी तथा राजा भी शिवजी के सेना के साथ हुए।

हे नारद ! इतनी विशाल सेना के स्वामी वीरभद्र हुए। वीरभद्र की रक्षा के लिए भवानी सहस्त्र भुजा धारण किए, विमान पर चढ़कर आयीं। उनके वस्त्र लाल थे तथा वे मुण्डों की माला पहने थीं। उनके हाथ में खप्पर था तथा अनेक प्रकार के शस्त्र थे। उनके पीछे देवता आदि की सेना थी जिसमें इन्द्र, वरुण, कुबेर, पवन, सूर्य, चन्द्रमा आदि नवग्रह वसुकर्मा, अश्विनी कुमार, बृहस्पति, धर्म, आठों बसु आदि समस्त देवता थे। ये सभी शिवजी की सेना के साथ हुए। शिवजी ने सबको अलग-अलग बैठाया तथा कृपा दृष्टि से सबकी ओर देखा, जिससे उनको बड़ी शक्ति प्राप्त हुई। तदुपरान्त शिवजी विन्ध्यभागा नदीं के तटपट एक बरगद के वृक्ष के नीचे विराजमान हुए।''

ॐ ॐ ॐ

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जब पुष्पदन्त शंखचूड़ के पास चले आए, तब शंखचूड़ अपनी रानी के पास गया और प्रातःकाल शिवजी से युद्ध करने का वृत्तान्त उसे कह सुनाया। उसे सुनकर रानी शोकाकुल होकर रोने लगी तथा बोली—''हे नाथ ! शिवजी के सब आधीन हैं, आप उनसे युद्ध करते हैं। आपको यह उचित नहीं कि आप उनसे वैर करें।'' इस प्रकार शिवजी की महिमा का वर्णन करके वह बोली—''हे स्वामी ! कल रात्रि को मैंने एक बुरा स्वप्न देखा है

अर्थात् मेरा बायाँ अंग फड़का है। यह अपशकुन देखकर आपको शिवजी से युद्ध नहीं करना चाहिए।'' शंखचूड़ ने उसकी बातों पर कोई ध्यान न देते हुए कहा—''हे प्रिये ! दुःख की बात कोई नहीं है। तीनों लोकों में सब कार्य समयानुसार ही होते हैं। समय पर ही अच्छी तथा बुरी बातें, सुख-दुःख, वृक्षों एवं पुष्पों का फलना-फूलना, देवताओं तथा सृष्टि की उत्पत्ति, संसार का जीवन-मरण तथा अन्तकाल आदि सभी कार्य होते हैं।''

हे नारद ! शंखचूड़ ने इस प्रकार अपनी स्त्री को समझाकर उसके साथ सम्भोग किया और अपने धर्म को भूल गया। उसकी स्त्री को यह भोग करना अच्छा न लगा ; क्योंकि वह सदाशिव जी के साथ युद्ध करने जा रहा था, परन्तु शंखचूड़ उसे बहुत कुछ समझाकर भोग-विलास करता रहा। प्रातःकाल उठकर उसने अपने पुत्र को तिलक दे दिया। फिर अपनी रानी को रोते हुए देखकर, अपने पुत्र को उपदेश दिया तथा स्त्री को उसे सौंपकर, शिवजी के साथ युद्ध करने के लिए चल दिया। उसने सेनापति को बुलाकर कहा—''आप हमारी परीक्षा का दिन है, इसलिए तुम अपनी सम्पूर्ण सेना साथ ले चलो। शिवजी देवताओं को राज्य देने तथा मुझे अपने आधीन करने की इच्छा रखते हैं। इसलिए चलकर भली-भाँति युद्ध करो। छियासी कुल कम्बुदैत्य, पचास कुल असुर बन्दर, एक कोटि वीर्य तथा सात कुल दानव धौम्र—ये सब शस्त्र आदि लेकर चले तथा कालक भी अपनी सेना को साथ लेकर चले।'' यह आज्ञा देकर शंखचूड़ घर से निकला तथा सोने-चाँदी के विमान पर चढ़कर शिवजी के साथ युद्ध करने चल दिया। उस समय युद्ध के बाजे बजने लगे। सब सेना तथा सेनापति प्रसन्नतापूर्वक चले जा रहे थे। शंखचूड़ उस स्थान पर आ गया, जहाँ शिवजी विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर वह राजनीति का स्मरण कर, शिवजी की सेना से कुछ दूर पर ही ठहर गया।''

तैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! शंखचूड़ ने एक दूत भेजा। वह दूत वहाँ से शिवजी के पास चला, क्षिप्रा नदी के पास, जहाँ शिवजी विराजमान थे, पहुँचकर उसने शिवजी को प्रणाम किया और कहा—"शंखचूड़ ने यह पूछा है कि आपकी क्या इच्छा है?" शिवजी ने उत्तर दिया—"तुम शंखचूड़ से हमारी ओर से जाकर कह देना कि तुम मुरज के वंशज हो तथा सुदामा तुम्हारा नाम था। पिछले जन्म में तुम श्री कृष्ण जी के मित्र थे, परन्तु राधा जी के शाप से इस जन्म में दैत्य हुए हो। इसलिए तुमको उचित है कि पूर्व जन्म एवं धर्म का स्मरण कर, देवताओं के साथ शत्रुता न रखो। तुम योग्यतापूर्वक राज्य करो तथा देवताओं को हर प्रकार से सुख पहुँचाओ। तुम तथा समस्त देवता कश्यप मुनि द्वारा उत्पन्न किये हुए हो, इसलिए तुममें किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। सब से बड़ा पाप अपने बन्धु-बान्धवों से शत्रुता रखना है। हम किसी की ओर नहीं हैं, परन्तु हम सेवा से प्रसन्न रहते हैं और अपने सेवक की सदैव रक्षा करते हैं।" शिवजी ने इसी प्रकार बहुत से उपदेश देकर वेद तथा धर्म शास्त्र की नीति आदि का दूत से वर्णन किया।

हे नारद ! उसे सुनकर दूत ने उत्तर दिया—"हे शिवजी ! आपने जो यह कहा कि परस्पर की शत्रुता दुखदायी होती है, यह सत्य है, परन्तु विष्णु जी ने राजा बलि के साथ छल करके उसका नगर एवं राज्य छीन लिया तथा उनको पाताल भेज दिया। क्या उन्होंने यह उचित किया था? क्या उनको यह भी उचित था जो उन्होंने बलि के पिता को मार डाला? फिर जब देवताओं एवं दैत्यों ने सागर-मन्थन किया, तब देवताओं को अमृत क्यों मिला? महिषासुर को देवी जी ने बिना किसी दोष के क्यों मार डाला? फिर तारक तथा त्रिपुर भी मारे गये इसी प्रकार अन्धक, गज एवं जलन्धर आदि की मृत्यु हुई। क्या देवता बुद्धिहीन थे जो उन्हें यह नहीं मालूम था कि अपने भाइयों के साथ

शत्रुता करना पाप है? क्या आप इसको जाति-द्रोह नहीं कहेंगे? हे शिवजी ! आपको उचित है कि देवताओं तथा दैत्यों के युद्ध में आप ईश्वर होकर पक्षपात न करें, शत्रुता एवं मित्रता समान लोगों से होती है। आप जैसे ईश्वर तथा स्वामी को यह उचित नहीं है कि आप हमारे साथ युद्ध करें। क्या आपको ऐसे कार्य पर लज्जा नहीं आती?''

हे नारद ! दूत की ऐसी बातें सुनकर शिवजी ने हँसते हुए कहा—''हे दूत ! हम किसी का पक्षपात नहीं करते। अब हमारी उपस्थित होने का कारण यह है कि इन्द्र आदि देवता हमारी शरण में आये हैं। तुम शंखचूड़ से यह कहना कि तुम सब दैत्यों से बड़े हो तथा कृष्ण रूपी विष्णु जी के परम भक्त हो, इसलिए तुम भी उनके समान तथा परमोत्तम हो। इसलिए तुमसे युद्ध करते समय हम लज्जित नहीं हैं।'' तुमसे अधिक कहना व्यर्थ है। तुम देवताओं का राज्य उन्हें लौटा दो तथा स्वयं पाताल में जाकर राज्य करो। यदि तुम मेरे इन वचनों से असंतुष्ट एवं अप्रसन्न हो तो युद्ध स्थल में आकर हमारे साथ युद्ध करो। हे दूत ! तुम यह सब बातें अपने स्वामी शंखचूड़ से कह देना। फिर उसकी जो भी इच्छा हो, वह करे। हम देवताओं का मनोरथ अवश्य पूर्ण करेंगे।'' इसके पश्चात् दूत वहाँ से उठकर चला आया तथा उसने शंखचूड़ से सब वृत्तान्त कह सुनाया।''

चौंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! दूत के मुख से ऐसी बातें सुनकर शंखचूड़ अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा उसने युद्ध करना ही उत्तम समझा। फिर वह देवताओं से सन्धि न कर, युद्ध की तैयारी में लग गया। उसने अपनी सेना सजाकर तैयार की और युद्ध के बाजे बजवाये। तदुपरान्त वह युद्ध स्थल में जा खड़ा हुआ। उधर से शिवजी भी अपनी सेना सहित युद्ध स्थल में आ उपस्थित हुए। इस प्रकार देवता एवं दैत्यों में युद्ध होने लगा। इन्द्र पुरुष प्रिय के साथ, शुक्र

बृहस्पति के साथ तथा मृत्यु पुष्कर के साथ ; इसी प्रकार दोनों ओर के प्रसिद्ध सेनापति परस्पर युद्ध करने लगे। उस युद्ध में अनेक प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग किया गया, जिनके आघात से अनेक देवता, दैत्य तथा हाथी-घोड़े मारे गए। इसी प्रकार वह युद्ध बहुत दिनों तक चलता रहा। न किसी की विजय हुई और न किसी की हार ही। अन्त में, दैत्यों ने देवताओं पर बड़े ज़ोर का आक्रमण किया, जिससे भयभीत होकर देवता भागकर तितर-बितर हो गए। यह देखकर वीरभद्र तथा नंदी आदि शिवजी के गण युद्ध क्षेत्र में आ उपस्थित हुए। वीरभद्र ने अपने त्रिशूल द्वारा सब दैत्यों को कुरूप बना दिया। उस समय दैत्य भी युद्ध स्थल छोड़कर भागने लगे। शंखचूड़ ने जब अपनी सेना को इस प्रकार भागते हुए देखा, तो उसने अपनी भागती हुई सेना को साहस बँधाया तथा स्वयं युद्ध करने चला। फिर उसने ऐसी भीषण बाण-वर्षा की, जिससे शिवजी के सब गण भयभीत होकर भाग गये। केवल नन्दी तथा वीरभद्र, जो शिवजी के अंश से उत्पन्न हुए हैं, युद्ध स्थल में खड़े रहे तथा शंखचूड़ ने नन्दी को भी बाण मारकर उन्हें धरती पर गिरा दिया। परन्तु कुछ समय पश्चात् ही नन्दी पुनः उठकर युद्ध करने लगे। फिर शंखचूड़ के ऊपर वीरभद्र ने अपने त्रिशूल से आक्रमण किया, परन्तु शंखचूड़ ने उसे काट डाला तथा अपने शस्त्र से वीरभद्र पर ऐसा आक्रमण किया, जिससे वीरभद्र घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद ही वीरभद्र तुरन्त उठ बैठे तथा क्षेत्रपाल दैत्य से युद्ध करने लगे। फिर भैरव ने शंखचूड़ को अपने त्रिशूल से मारा, जिससे वह अचेत होकर गिर पड़ा। उस समय बड़ा भयानक युद्ध हुआ। तभी भैरव को यह आकाशवाणी सुनाई दी कि शंखचूड़ शिवजी के अतिरिक्त और किसी से नहीं मरेगा, इसलिए तुम लोग शिवजी के निकट जाओ और उनसे निवेदन करो कि वे शंखचूड़ को मार डालें। इस आकाशवाणी को सुनकर भैरव तथा अन्य सब गण शिवजी के पास गये तथा उन्हें युद्ध का सब पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।''

ॐ ॐ ॐ

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिवजी के गणों द्वारा देवताओं की पराजय तथा अपने गणों की दुर्गति का समाचार सुनकर, वीरभद्र को दैत्यों से युद्ध करने का आदेश दिया। वीरभद्र तुरन्त ही शिवजी की आज्ञानुसार सेना सहित युद्ध स्थल में गये। वहाँ पहुँचकर वीरभद्र ने शिवजी के समान शंख बजाया तथा क्रोध प्रकट किया। उस शंख की ध्वनि को सुनकर तथा वीरभद्र के क्रोध को देखकर दैत्य काँप गये। तदुपरान्त वीरभद्र ने अपने भयानक आक्रमण से एक अक्षौहिणी दैत्य सेना का नाश कर दिया। उस समय युद्ध क्षेत्र रक्त से लाल हो उठा। सहस्त्रों कबन्ध इधर-उधर फिरने लगे। फिर वीरभद्र ने भी क्रोधित होकर एक करोड़ दैत्यों को मार डाला। अन्त में विप्रचिति, वृषपर्वा, जृम्भासुर तथा वीर विकम्पन—ये चारों महाबली दैत्य वीरभद्र के सम्मुख हुए तथा अलग-अलग युद्ध करने लगे। यह देखकर महामारी ने जाकर दैत्यों को नष्ट कर दिया। फिर भैरव ने दैत्यों को खाना शुरू किया। उस समय सब दैत्य पराजित हो गये।

हे नारद ! अपनी सेना की इस प्रकार हार देखकर शंखचूड़ अपने कवच को कंठ में पहन, विमार पर चढ़, बहुत बड़ी सेना साथ ले, मारू बाजे बजवाता हुआ, युद्ध स्थल में आ पहुँचा तथा अपनी भागी हुई सेना को एकत्र किया। फिर उसने अपने धनुष को तानकर ऐसी बाण-वर्षा की जिससे आकाश बाणों से भर गया और चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छा गया। तब अनेक देवता हार मानकर भाग गये। अकेले वीरभद्र ही वहाँ खड़े रहे। तब शंखचूड़ ने अपनी माया से पर्वत,सर्प, अग्नि आदि को उत्पन्न किया तथा इनकी वर्षा आरम्भ कर दी, जिसमें वीरभद्र इस प्रकार छिप गया, जैसे सूर्य बदली में छिप जाता है। यह देखकर वीरभद्र ने आश्चर्यचकित हो शिवजी का स्मरण किया तथा महाशक्ति को छोड़ा। उस शक्ति ने दैत्यों की इस माया को

बिलकुल नष्ट कर दिया। तब शंखचूड़ ने क्रोधित होकर वीरभद्र के रथ तथा धनुष को अपने अत्यन्त पवित्र बाण से काट डाला। वीरभद्र के रथ के घोड़े मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब शंखचूड़ ने दूसरा बाण वीरभद्र पर छोड़ा, जिससे वीरभद्र मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जब वीरभद्र को चेतन हुआ, तब दूसरे रथ पर चढ़कर शंखचूड़ से युद्ध करने लगे। उन्होंने उसके रथ, सन्नाह, घोड़े, शक्ति आदि को काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर उसके सारथी को मारकर, अपनी शक्ति से शंखचूड़ को भी अचेत कर दिया। थोड़े समय के पश्चात् जब शंखचूड़ सचेत होकर उठा तथा गर्जन करने लगा, तब वीरभद्र ने उसे पुनः अपनी शक्ति से गिरा दिया। इसी प्रकार वीरभद्र ने कई बार उसे अचेत करके गिराया ; परन्तु शंखचूड़ ने उठकर अन्त में अपनी सांग से वीरभद्र पर आक्रमण कर ही दिया। वीरभद्र उसके प्रहार से पृथ्वी पर गिरकर मर गये।

हे नारद ! तब मृतक-वीरभद्र को महाकाली ने उठाकर शिवजी के पास ले जाकर रख दिया और सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया। उस समय शिवजी ने वीरभद्र को स्पर्श किया, जिससे वे पुनः जीवित हो उठे। पुनः जीवित होते ही वीरभद्र चिल्लाने लगे तथा फिर से युद्ध स्थल में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने त्रिशूल से शंखचूड़ पर आक्रमण किया तब शंखचूड़ उसके आघात से पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब वह सचेत हुआ, तब उसने वीरभद्र पर बाण-वर्षा की ; परन्तु वीरभद्र पर उन बाणों का कोई प्रभाव न हुआ। अन्त में, उसने अपनी बरछी वीरभद्र के हृदय में मारी, जिससे वे पृथ्वी पर गिर पड़े। परन्तु शंखचूड़ ने वीरभद्र को पुनः अपने त्रिशूल से मारना चाहा। उस समय महाकाली तथा समस्त गणों ने आकर उनकी रक्षा की। दैत्यों ने भी अपनी भागी हुई सेना को फिर एकत्र किया। अस्तु, दोनों सेनाएँ पुनः रणक्षेत्र में आ डटीं। अतः युद्ध पुनः आरम्भ हो गया।"

ॐ ॐ ॐ

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! इस बार युद्ध बहुत भयानक हुआ, जिससे दिन रात के समान दिखाई देने लगा। काली जी ने ऐसा भयंकर शब्द किया जिससे सब दैत्य अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर काली जी ने महामद का पानकर नृत्य करना आरम्भ कर दिया। यह देखकर दैत्यों को अत्यन्त दुःख एवं शोक हुआ ; परन्तु देवता प्रसन्न थे। तब शंखचूड़ फिर सब दैत्यों को एकत्र करके रणक्षेत्र में खड़ा हो, वीरभद्र से युद्ध करने लगा। लड़ते-लड़ते दोनों वीरों के शरीर इस प्रकार घायल हो गये, ज़िस प्रकार फूले हुए ढाक के वृक्ष हों। जब शंखचूड़ ने अग्नि बाण चलाकर चारों ओर अग्नि फैला दी, तब वीरभद्र ने वरुणास्त्र छोड़कर उस अग्नि को बुझा दिया। इसी प्रकार शंखचूड़ ने अनेक प्रकार के बाण छोड़े परन्तु वीरभद्र ने सबको अपने बाणों द्वारा नष्ट कर दिया। अन्त में, शंखचूड़ ने अपने बाणों का कोई प्रभाव न देख, नारायण बाण छोड़ा, परन्तु वीरभद्र ने उसको भी पाशुपात अस्त्र से दूर कर दिया। तब शंखचूड़ ने चक्र छोड़ा, उसे महाकाली ने तुरन्त निगल लिया तथा शंखचूड़ को किसी प्रकार विजय प्राप्त न करने दी। फिर काली जी ने अपने धनुष, जिसका शब्द अन्तकाल से कम न था, खींचकर अग्नि बाण छोड़ा परन्तु शंखचूड़ ने वैष्णवास्त्र द्वारा उसे दूर कर दिया। तब काली जी ने नारायणास्त्र छोड़ा, परन्तु शंखचूड़ ने अपने रथ से उतरकर उसे दंडवत् की, जिससे वह निष्फल होकर दूर हो गया। फिर शंखचूड़ ने दिव्यास्त्र शक्ति आदि काली जी पर चलाये, परन्तु वे सब भी निष्फल रहे। इसी प्रकार बहुत दिनों तक दोनों पक्ष लड़ते रहे। अन्त में, काली जी ने पाशुपत अस्त्र के छोड़ने का विचार किया, परन्तु उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि हे काली ! तुम यह अस्त्र किस लिए छोड़ती हो? यह शंखचूड़ तुमसे न मरेगा; क्योंकि यह कृष्ण जी का परम भक्त है।

हे नारद ! महाकाली ने उस आकाशवाणी को सुनकर, अस्त्र को न

छोड़ा। शंखचूड़ ने अपने खड्ग को छोड़ा परन्तु काली जी ने उसे खा लिया तथा मुख खोलकर शंखचूड़ को खाने के लिए चलीं, परन्तु वह अपनी माया से गुप्त हो गया। काली जी ने उसके रथ तथा सारथी को नष्ट कर डाला। तब शंखचूड़ फिर प्रकट हुआ। काली जी ने उसे उठा तथा घुमाकर आकाश की ओर फेंक दिया तथा एक करोड़ दैत्यों को मारकर रक्तपान किया। तब शंखचूड़ ने उठकर काली जी को प्रणाम किया तथा विमान पर चढ़कर, निर्भय हो, पुनः युद्ध करने लगा। महाकाली ने शंखचूड़ में ऐसा धैर्य देखकर, अपना महाभयंकर शरीर बनाया तथा रुद्र महाधनुष हाथ में लेकर सोचा कि अब इससे प्रलय करें, परन्तु तभी यह आकाशवाणी हुई कि हे काली ! इसकी मृत्यु तुम्हारे हाथ से नहीं होगी, तुम व्यर्थ ही युद्ध करती हो। तुम शिवजी के निकट जाओ, वे इसे मारेंगे।''

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! महाकाली जी युद्ध स्थल से हटकर शिवजी के पास गयीं तथा सेना को साथ ले जाकर, शिवजी को सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर शिवजी अत्यन्त चिन्तित हुए। फिर उन्होंने अपनी माया का स्मरण किया तथा शंखचूड़ के पहले जन्म का वृत्तान्त कहा। इसके पश्चात् शिवजी अपने गणों सहित बैल पर चढ़कर युद्ध क्षेत्र को चल दिए। क्षेत्रपाल, वीरभद्र, भैरव तथा नन्दीश्वर की ओर उन्होंने एक बार दृष्टिपात किया, जिससे उन सबको महाशक्ति प्राप्त हुई। तब वे सब अस्त्र-शस्त्र लिये तथा भयंकर रूप धारण किए, युद्ध स्थल में आ गये। दैत्यों ने उनको रुद्र कालान्तक के रूप में देखा तथा भयभीत हो गये। उस समय शंखचूड़ ने शिवजी को देखकर रथ से उतरकर प्रणाम किया। फिर वह शिवजी की आज्ञा के अनुसार, धनुष एवं बाण लेकर शिवजी से लड़ने लगा। सौ वर्ष तक वे दोनों लड़ते रहे।

हे नारद ! उस समय मैं अपने कुल सहित सभी वैकुण्ठ वासी आकाश में स्थित होकर इस युद्ध कौतुक को देखते रहे। शंखचूड़ ने जो बाण छोड़े, वे सब शिवजी ने तुरन्त काट डाले तथा जो शस्त्र शिवजी ने मारे, वे शंखचूड़ ने काट डाले। अन्त में शंखचूड़ ने क्रोधित होकर शिवजी को चक्र मारा। शिवजी ने उस चक्र को अपने घूँसे से चूर-चूर कर पृथ्वी पर फेंक दिया तथा शंखचूड़ को भी घायल कर पृथ्वी पर गिरा दिया। जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह पुनः रथ पर चढ़कर शिवजी के सम्मुख आया। उस समय शिवजी ने शंखचूड़ को आते हुए देखकर डमरू बजाया तथा श्रृंगीनाद करके अपना धनुष टंकारा, जिससे यह प्रतीत होता था कि अब अन्तकाल आ गया है। चारों दिशाओं में शिवगण गर्जना करने लगे। उस समय शंखचूड़ ने अपनी शक्ति चलायी जिसे क्षेत्रपाल ने तुरन्त निगल लिया। शिवजी तथा शंखचूड़ परस्पर इतने लड़े कि उस युद्ध को देखकर सब डर गये। अन्त में शिवजी ने उसकी समस्त भुजाएँ काट डालीं तब शंखचूड़ शिवजी की ओर झपटा। शिवजी ने तुरन्त त्रिशूल से शंखचूड़ के हृदय को फाड़ दिया। उदर के फटते ही उसमें से एक मनुष्य 'तिष्ठ-तिष्ठ' कहता हुआ निकला। शिवजी ने अपने अस्त्र से उसका भी सिर काट डाला। वह फिर कट कर काँपने लगा तथा भयंकर रूप धारण कर देवताओं को बहुत दुःख पहुँचाने लगा। तब सदाशिव जी की आज्ञा के अनुसार काली जी दैत्यों की सेना में घुस गयीं और दैत्यों को खाने लगीं। इस प्रकार उन्होंने अनेक पक्षियों आदि को खा डाला। महामारी ने भी सेना का ग्रास किया। क्षेत्रपाल, भैरव, नन्दी तथा वीरभद्र ने भी बहुत-से दैत्यों को खाया तथा अनेक को नष्ट कर दिया। शिवजी के सारे सेनापति दैत्यों को मारकर नष्ट करने लगे। योगिनी गण दैत्यों को खाने लगीं। ज्वर ने भी शरीर धारण कर दैत्यों को मार डाला। उस समय सब दैत्य ऐसी दुर्गति देखकर, वहाँ से भाग गये, क्योंकि सन्निपात ने भी अनेक दैत्यों को दुःखी किया था तथा नन्दी ने भी दैत्यों

को मार डाला था। अन्त में, इस प्रकार दैत्यों पर विजय प्राप्त करके शिवजी भी परम आनन्दित हुए।''

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! शंखचूड़ ने इस प्रकार अपनी सेना की दुर्गति देखकर भयंकर क्रोध किया तथा शिवगणों को डाँट-डपट कर बोला—''तुम लोग मेरे सम्मुख आकर लड़ो, इस प्रकार दैत्यों को मारने से क्या लाभ है? वीर निर्बलों से नहीं लड़ा करते।'' यह कहकर उसने शिवजी पर तीक्ष्ण बाण मारे, परन्तु शिवजी ने उन सबको काट डाला। तब शंखचूड़ ने एक माया को उत्पन्न किया, जिसको शिवजी ने महादिव्य बाणों से दूर कर दिया। तदुपरान्त शंखचूड़ पृथ्वी में लुप्त हो गया। उस समय मैंने तथा विष्णु जी ने शिवजी का जय-जयकार किया। तब शिवजी ने क्रोध करके यह चाहा कि शंखचूड़ को मार डालें। अस्तु, उन्होंने अपना त्रिशूल उठा लिया। उसी समय आकाशवाणी हुई—''हे शिवजी ! जब तक शंखचूड़ कृष्ण-कवच पहने रहेगा तथा इसकी पत्नी तुलसी पतिव्रता रहेगी, यह नहीं मरेगा, क्योंकि ब्रह्मा जी का ऐसा वरदान है।''

हे नारद ! इस आकाशवाणी को सुनकर शिवजी ने अपना त्रिशूल नहीं छोड़ा। उस समय विष्णु जी शिवजी की अभिलाषा जानकर उपस्थित हुए और बोले—''हे शिवजी ! आपकी जो आज्ञा हो बताइये, मैं उसे पूरा करूँगा। तब शिवजी ने यह कहा—''हे विष्णु ! तुम किसी प्रकार से शंखचूड़ के कंठ से कृष्ण-कवच उतार लो तथा उसकी स्त्री का पतिव्रत धर्म नष्ट कर डालो।'' शिवजी की ऐसी आज्ञा सुनकर विष्णु जी ब्राह्मण के रूप में शंखचूड़ के पास गये। शंखचूड़ ने उन ब्राह्मण रूपधारी विष्णु जी को प्रणाम किया। तब ब्राह्मण ने उसे आशीर्वाद देकर कहा—''हे शंखचूड़ ! तुम मुझे पानी पिलाओ। शंखचूड़ ने अत्यन्त आदर के साथ उस ब्राह्मण को पानी पिलवाया।''

तब ब्राह्मण ने कहा—"हे शंखचूड़ ! तुम हमको कृष्ण-कवच दे दो।" यद्यपि कृष्ण-कवच शंखचूड़ को अत्यन्त प्रिय था, फिर भी उसने उसे ब्राह्मण को दे दिया। हे नारद ! यदि शत्रु ब्राह्मण बन कर कोई वस्तु माँगे तो उसे निशंक दान कर दे दिया। चाहे प्राण भले ही चले जाएँ ; परन्तु ब्राह्मण विमुख न जाए। फिर, जिसके पास विष्णु जी भिक्षुक-ब्राह्मण बन कर जाएँ, उससे अधिक भाग्यशाली कौन होगा? जिसके यहाँ से भिक्षुक निराश होकर न लौटे, उसके धन्य भाग्य हैं। इसी उदारता पर राजा बलि, दधीचि, जरासन्ध, सांख्य आदि अत्यन्त कीर्तिवान हुए हैं। इसके पश्चात् विष्णु जी शंखचूड़ के रूप में उसके घर गये तथा बड़े चरित्रों से उसकी स्त्री का धर्म नष्ट किया। फिर उन्होंने लौट कर शिवजी से सब वृत्तान्त कहा। शिवजी ने उसे सुनकर अपने विजय-त्रिशूल को उठा लिया, जिसमें पृथ्वी एवं आकाश सब दिखाई देते थे। वह मध्याह्न-काल के सूर्य के समान तेजस्वी था। उसमें सब शस्त्र थे। फिर शिवजी ने उस त्रिशूल को छोड़ा, जिससे शंखचूड़ तुरन्त जलकर भस्म हो गया। त्रिशूल अपना काम करके पुनः शिवजी के पास लौट आया।

हे नारद ! शिवजी द्वारा शंखचूड़ का वध तथा दैत्यों पर अपनी विजय देखकर देवता बड़े प्रसन्न हुए। अस्तु, शंखचूड़ मरकर गो लोक में जा पहुँचा तथा शाप से छूटकर पूर्व के समान हो गया। उसकी हड्डियों के शंख बने, जो विष्णु जी को अत्यन्त प्रिय हैं। देवता एवं मुनि जो विष्णु जी के परिवार में हैं उन सबको भी शंख बहुत प्यारे लगते हैं, परन्तु वह शंख शिवजी को प्यारा नहीं है। उस समय मैं, इन्द्र तथा समस्त देवता शिवजी के पास गये और उनकी बहुत स्तुति कर बारम्बार प्रणाम एवं दंडवत् की। फिर शिवजी की आज्ञा पाकर सब देवता अपने-अपने घर चले गये। उस समय सब के दुःख दूर हो गये तथा सम्पूर्ण संसार में आनन्द छा गया। इसके पश्चात् शिवजी अपने गणों सहित कैलाश पर गये। जो मनुष्य शिवजी के इस चरित्र को सुने

अथवा पढ़ेगा, उसको किसी प्रकार का दुःख न होगा। सब के दुःख इस इतिहास को सुनकर भस्म हो जायेंगे।''

ॐ ॐ ॐ

उन्तालीसवाँ अध्याय

नारद जी बोले—''हे पिता ! अब आप मुझे यह बताइए कि विष्णु जी ने किस प्रकार तुलसी का पतिव्रत धर्म नष्ट किया था?'' यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! यह चरित्र शिवजी एवं विष्णु जी की भक्ति को अधिक बढ़ाता है, इसलिए तुम इसको मन लगाकर सुनो। विष्णु जी शंखचूड़ का वेष धारण कर तुलसी के घर गये तथा उसके द्वार पर पहुँचकर, अपनी विजय के बाजे बजवा दिये। यह देखकर तुलसी अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा उसने बहुत-सा धन आदि भिक्षुकों एवं ब्राह्मणों को दान में दिया। फिर वह अपना शृंगार करके पति के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। तब विष्णु जी शंखचूड़ के रूप में ही अन्दर घर में गये। तुलसी ने उनके चरण धोकर स्तुति की तथा चाँदी की चौकी पर बैठाकर ताम्बूल दिये। फिर हाथ जोड़कर बोलीं—''हे स्वामी ! मेरा धन्य भाग्य है जो आप विजय प्राप्त करके आये हैं।'' फिर तुलसी ने शिवजी की स्तुति करके पूछा कि आपने उन पर किस प्रकार विजय प्राप्त की? तब विष्णु जी ने कहा—''हे तुलसी ! हमने युद्ध स्थल में जाकर बहुत लड़ाई की। देवता हमारे पराक्रम से भयभीत होकर भाग गये। उस समय ब्रह्मा जी ने हम दोनों में सुलह करवा दी तथा हमने भी ब्रह्मा जी की आज्ञानुसार देवताओं को कुछ दे दिया। तदुपरान्त शिवजी अपने घर चले गये तथा देवता आदि भी अपने-अपने लोकों को लौट गये।''

हे नारद ! तुलसी को यह वृत्तान्त सुनाकर विष्णु जी सेज को सजा हुआ देखकर, तुलसी के साथ भोग-विलास करने लगे, परन्तु तभी तुलसी को कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कि कहीं यह मेरे पति के रूप में कोई अन्य मनुष्य न हो। यह सोचकर तुलसी ने विष्णु जी से

कहा—"तुम शंखचूड़ नहीं हो तुमने मेरे साथ छल किया है तथा मेरे पतिव्रत धर्म को नष्ट किया है। अब सत्य-सत्य बताओ कि तुम कौन हो?" तब विष्णु जी ने डरकर कहा—"हे तुलसी ! हम विष्णु हैं। हमने यह कार्य देवताओं की भलाई के लिए ही किया है।" यह कहकर विष्णु जी ने उसे अपने स्वरूप में दर्शन दिये। जब तुलसी ने विष्णु जी को इस प्रकार देखा तो वह क्रोधित होकर बोली—"हे विष्णु जी ! तुमने मेरे पतिव्रत धर्म को छल से नष्ट कर दिया तथा इसी प्रकार छल से मेरे स्वामी को मरवा डाला। इसलिए मैं तुम्हे शाप देती हूँ कि तुम पत्थर हो जाओ। जो लोग तुमको दया-सिन्धु कहते हैं, वे मूर्ख हैं।" यह कहकर तुलसी रोने लगी। यह देखकर विष्णु जी डरे तथा उन्होंने शिवजी का ध्यान किया। उस समय शिवजी ने तुलसी को दर्शन दिया तथा बोले—"हे तुलसी ! सब लोग अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। संसार में दुःख एवं सुख कोई वस्तु नहीं है। यह संसार समुद्र के समान है, जिसमें दोनों प्रकार का जल है। तृष्णा उसकी लहर है और बिना धर्म के कोई इसे पार नहीं कर सकता। तुम दोनों से हम यही कहते हैं कि तुमने प्रथम जो योग तथा तप किया था, वह किसी प्रकार निष्फल न होगा। तुम दोनों हमारे भक्त हो। तुम्हारा पति कृष्ण जी का मित्र सुदामा था। उसे राधिका जी ने शाप दिया था, इसीलिए वह यहाँ आ कर उत्पन्न हुआ। अब वह मारा गया तथा इस शरीर को त्यागकर, फिर वैसा ही शरीर धारण किया है। तुम भी इस शरीर का त्याग करो तथा विष्णु जी के साथ विहार करो। देवताओं की भलाई के लिए हमने तुम्हारे पति का वध किया था, इस पर क्रोध न करना। अब तुम नदी होकर गण्डकी नदी के नाम से प्रसिद्ध होगी तथा समुद्र, जो विष्णु जी के अंश से है, उसकी स्त्री होकर विहार किया करोगी। इसके अतिरिक्त तुम दोनों एक और रीति से इकट्ठे रहोगे अर्थात् तुम पृथ्वी में इसी नाम अर्थात् तुलसी के नाम से प्रसिद्ध होकर उत्पन्न होगी तथा विष्णु के शरीर पर चढ़ा करोगी, जिससे विष्णु अपने कर्मों का फल पावेंगे। विष्णु तुम्हारे शाप से पत्थर बनकर, गण्डकी

नदी के तीर पर स्थित रहेंगे। उस जगह बड़े-बड़े तीक्ष्ण दाँतों वाले भयानक जीव उत्पन्न होकर पत्थर को काटकर बहुत-से गोल सीधे टुकड़े बनाया करेंगे, वे टुकड़े शालिग्राम के नाम से प्रसिद्ध होंगे तथा जो टूटे-फूटे टुकड़े होंगे केवल पत्थर कहलायेंगे।

हे तुलसी ! वेद ने चक्र के भेद से शालिग्राम-शिला का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। तुम्हारी भेंट उस शालिग्राम-शिला के साथ सदैव हुआ करेगी, जो पुण्य को बढ़ाने वाली तथा पापों को नष्ट करने वाली समझी जायेगी। तुम शंखचूड़ की स्त्री हो तथा तुमने बहुत समय तक उससे विहार किया है, इससे तुम्हारा संयोग शंख के साथ भी हुआ करेगा।'' शिवजी तुलसी से यह बातें कहकर अन्तर्धान हो गये। तब तुलसी भी प्रसन्न हो, अपना शरीर त्याग, वैकुण्ठ को चली गयी। वह सुन्दर स्वरूप धारण कर विष्णु जी के साथ विमान पर चढ़ी। उस समय उसको हर प्रकार का आनन्द प्राप्त हुआ। तुलसी के प्रथम शरीर से गण्डकी नदी उत्पन्न होकर ऐसी तेजवती हुई कि जो कोई मनुष्य उसके जल को देखता तथा स्पर्श करता है तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके तट पर विष्णु जी पर्वत के आकार में स्थित हुए, जिनके दर्शन मात्र से ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ बड़े-बड़े कठोर दाँत वाले कीड़े इकट्ठे होकर शिलाओं में बड़े-बड़े छेद किया करते हैं। उनसे जो टुकड़े होकर गण्डकी नदी में गिरा करते हैं वही शालग्राम की मूर्तियां हैं, जो अत्यन्त पवित्र तथा दुःख दूर करने वाली हैं। उनमें जो चक्र सहित हों, वे पूजने के योग्य हैं। उनके लक्ष्मी नारायण आदि अनेक प्रकार हैं। जो टुकड़े नदी से बाहर मिलते हैं, वे पिंगलादि नामों से प्रसिद्ध हैं तथा गृहस्थ के पूजने योग्य नहीं हैं। जो मनुष्य चारों वर्णों के बाहर हैं, वे भी उन्हें पूजने के योग्य हैं। वे मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं—एक तो आनन्द देती हैं तथा दूसरी दुःख प्रदान करने वाली हैं। यह शालिग्राम-शिला शूद्र वर्ण के पूजने योग्य नहीं है। शालिग्राम-शिला की बहुत बड़ी बड़ाई है, जैसी कि नर्मदा के पत्थरों की महिमा है। शालिग्राम तथा नर्मदा की मूर्तियाँ स्वयं विष्णु जी एवं शिवजी का स्वरूप हैं।

हे नारद ! शालिग्राम-शिला को तुलसी पत्र अत्यन्त प्रिय हैं। कदाचित् यदि तुलसी पत्र से अलग शालिग्राम की मूर्ति रखी जाए तो बहुत ही दुःख प्राप्त होता है एवं स्त्री का वियोग होता है। इसी प्रकार शालिग्राम को शंख का वियोग भी अत्यन्त दुखदायी है। जब तुलसी, शंख, शालिग्राम एकत्र करें तथा एक ही स्थान पर रखे तो दोनों लोकों का सुख प्राप्त होता है। हे नारद ! विष्णु जी की यह कथा मुक्ति प्रदान करने वाली है। इसको सुनने अथवा सुनाने से आनन्द मिलता है। शंखचूड़ वध तथा शिवजी का चरित्र सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। इस कथा में विष्णु जी का यश भी कहा गया है, इसलिए यह और भी आनन्ददायक है। यह भक्तों को अधीन करने वाली हैं। शिवजी भक्तों के अधीन रहकर ऐसी ही अद्भुत लीलाएँ करते हैं।''

चालीसवाँ अध्याय

नारद जी बोले—''हे पिता ! अब मेरी अभिलाषा शिवजी द्वारा अन्धकासुर के वध की कथा सुनने की है। अस्तु, आप कृपा करके जिस प्रकार शिवजी ने अन्धकासुर का वध किया, उसका वर्णन कीजिए।'' यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जब विष्णु जी ने नृसिंह तथा वाराह अवतार लेकर दिति के पुत्रों को मारा, तब दिति ने बड़ा विलाप किया तथा कश्यप की शरण में जाकर उनकी सेवा करने लगी। वह अपने पति कश्यप को प्रसन्न करने के लिए सब श्रृंगार छोड़, ब्रह्मचर्य धारण कर रहने लगी। वह केवल कश्यप की इच्छा के अनुसार ही मीठे वचन कहती तथा अधिक बातचीत नहीं करती थी। तब एक दिन कश्यप ने प्रसन्न होकर यह कहा—''हे दिति ! हम तुम्हारी सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, अतः तुम हमसे कोई वरदान माँगो।'' इसके पश्चात् उन्होंने पतिव्रत धर्म का वर्णन करते हुए कहा—''हे दिति ! ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसको हम शिवजी की कृपा से नहीं दे सकें।'' अपने पति को इस प्रकार प्रसन्न देखकर दिति

ने कहा—"हे स्वामी ! देवताओं ने मेरे साथ शत्रुता करके विष्णु जी के द्वारा मेरे दोनों पुत्रों को मरवा डाला है तथा अनेक दैत्यों का वध करवा दिया है। मुझे इस बात का बहुत दुःख है, इसलिए मैं आपकी शरण में आयी हूँ। अब कृपा करके मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो देवताओं के हाथ से न मर सके।"

हे नारद ! कश्यप ने दिति की बातों को सुनकर उसे वरदान देते हुए कहा—"हे दिति ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। मृत्युञ्जय जो रुद्र हैं, उनके समान संसार में कोई दैत्य अथवा देवता नहीं है। उसके सामने विष्णु तथा ब्रह्मा की भी कुछ नहीं चलती। इसलिए जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो, तब तुम उसे यह भली-भांति समझा देना कि वह किसी प्रकार मृत्यञ्जय को क्रोधित न होने दे, क्योंकि शिवजी के क्रोधित होने पर फिर और कोई रक्षा करने वाला नहीं है।" इतना कहकर कश्यप चुप हो गए। तदुपरान्त दिति कश्यप के तेज से गर्भवती हुई। दिति का तेज इतना बढ़ा कि कोई मनुष्य उसके तेज के कारण उसकी ओर देख भी नहीं सकता था। दसवें मास में दिति के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका विचित्र स्वरूप था अर्थात् उसके एक सहस्त्र सिर, दो सहस्त्र आँखें, दो सहस्त्र पाँव तथा दो सहस्त्र भुजाएँ थीं। वह बहुत ही सुन्दर, तेजस्वी एवं हृष्ट-पुष्ट था। उसको यदि सब मुनि तथा देवता भी मिलकर उठावें तो भी वह नहीं उठ सकता था। वह अन्धों के समान इधर-उधर झुककर चलता था, इसलिए उसका नाम अन्धक रखा गया। जैसा उसका अन्धक नाम था, उसी प्रकार उसने सब कार्य भी किये। अन्धकासुर ने संसार में अनेक उपद्रव मचाये तथा देवताओं से समस्त रत्न आदि लात मारकर छीन लिए।

हे नारद ! इसी प्रकार अन्धक अन्य दैत्यों को अपने साथ लिये हुए तीनों लोकों में अनेक प्रकार के उपद्रव करता रहा। वह इन्द्र की सभा में जाकर इन्द्रासन पर बैठ, केवल देवताओं को ही नहीं, अपितु इन्द्र को भी आज्ञा प्रदान करता था। देवताओं को तो वह सेवकों के ही समान समझता था। एक दिन दैत्यों के अधिपति ने उसके पास आकर

प्रणाम करने के पश्चात् कहा—"हे अन्धक ! संसार में जितने देवता तथा मुनि हैं, वे तुम्हारे शत्रु हैं। उन्होंने बड़े छल-कपट से दैत्यों का वध किया है। इन्द्र भी दैत्यों का घोर शत्रु है। उसने पहले दैत्य को, जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ था मार डाला तथा देवताओं ने मुनीश्वरों की सम्मति से हम दैत्यों का बहुत बड़ा वन जला डाला। इसलिए तुम पुरानी शत्रुता का विचार करके देवताओं को पराजित करो और तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करो।" दैत्याधिपति की ऐसी बातें सुनकर अन्धक तुरन्त ही तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने के लिए तैयार हो गया। उसने एक बहुत बड़ी सेना एकत्र की। यह देखकर देवता तथा मुनि सब अत्यन्त दुःखी हुए। तब इन्द्र ने स्वयं कश्यप के पास जाकर, अत्यन्त विनयपूर्वक यह कहा—"हे पिता ! आपने देवताओं को बड़े आनन्द से रखा, परन्तु अब अन्धक सबको निकाले देता है। आप देवता तथा मुनियों के ऐसे दुःख को क्यों नहीं देखते? वह क्षण-क्षण पर हमको आज्ञा दिया करता है तथा हम से छोटा होते हुए भी हमें बड़ा नहीं मानता। हे पिता ! इस प्रकार का कार्य करने से बड़ा उपद्रव होगा तथा तीनों लोकों का काम बिगड़ जाएगा।"

ॐ ॐ ॐ

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! इन्द्र के मुख से ऐसे दुःख पूर्ण वचन सुनकर कश्यप अत्यन्त आश्चर्य करते हुए बोले—"हे इन्द्र ! अन्धक ने जो दुःख तुम लोगों को पहुँचाया है, उससे कुछ भय मत करो। हम तुम्हारे सब दुःखों को दूर कर देंगे।" यह कहकर कश्यप ने इन्द्र को वहाँ से विदा कर, अन्धक को बुलाया और कहा—"हे अन्धक ! अदिति तथा दिति हमारी स्त्री हैं, तथा उन्हीं से सब देवता और दैत्य उत्पन्न हुए हैं। वे बराबर हमारी सेवा करते हैं। हमें दोनों ही प्यारे हैं। अस्तु, तुम तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने का विचार त्याग दो, क्योंकि यह बड़ा दुःखदायी होगा। तुम और इन्द्र राज्य को आधा-

आधा बाँट कर शत्रुता दूर करो तथा एक ही मत से सुख एवं कुशलतापूर्वक राज्य करो। तुम देवताओं को इस प्रकार दुःखी बना कर मुझे तंग मत करो, नहीं तो तुम बड़ा दुःख पाओगे।'' यह कह कश्यप ने अन्धक को विदा किया।

हे नारद ! कश्यप के इस प्रकार समझाने पर अन्धक कुछ दिन तक तो शान्त बैठा रहा, परन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् वह पुनः दैत्यों की संगति से उपद्रव मचाने लगा और देवताओं को दुःख पहुँचाने वाली बातें करने लगा। वास्तव में संगति का प्रभाव बहुत शीघ्र ही पड़ता है। अपने पुत्र की यह दशा देखकर दिति को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उसने एक दिन अन्धक को बुलाकर इस प्रकार समझाया—''हे अन्धक ! तेरे कर्म देखकर मुझे बहुत दुःख मिलता है। मैं तुझे एक बात समझाती हूँ, तू उसी पर ध्यान धरकर काम कर।'' यह कहकर, उसने पहले कश्यप ने जो कही थी, वहीं बातें विचार कर कहा—''हे पुत्र ! तुम शिवजी की सेवा करो और उनसे किसी प्रकार की शत्रुता मत रखो ; क्योंकि उनसे शत्रुता रख कर कोई सुखी नहीं रहता।'' फिर शिवजी की बड़ी स्तुति करके वह बोली—''हे पुत्र ! तुम नित्य शिवजी की उपासना किया करो।'' तब अन्धक ने माता की आज्ञा मानकर, सब दैत्यों की संगति छोड़ दी तथा इन्द्रियों पर विजय पाकर कठिन तप करने लगा। उसने सर्वप्रथम वन और जल में बैठकर तप किया, फिर केवल वन के फल खाकर ही शिवजी की सेवा करने लगा। ऐसा करने से अन्धक के तेज में वृद्धि हुई। उस तेज के कारण उसकी ओर देखा भी नहीं जाता था। ऐसा कठिन तप करते हुए देखकर सब देवता भयभीत होकर मेरी शरण में आये। तब मैं उन सबको साथ लेकर विष्णु जी के पास गया और विष्णु जी सब हाल सुनकर हम सब को साथ लिये हुए, शिवजी के पास जा पहुँचे। वहाँ हम संबने उनकी पवित्र स्तुति की।''

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिवजी की स्तुति करने के उपरान्त सब देवता शान्त खड़े रहे। तब शिवजी बोले—''हे विष्णु, ब्रह्मा तथा समस्त देवताओ ! तुम लोगों की जो इच्छा हो, वह हम से कहो। हम तुम सबको वरदान देने के लिए तैयार हैं।'' यह सुनकर देवताओं ने कहा—''हे शिवजी ! हम लोग अन्धक के कठोर तप से अत्यन्त भयभीत हैं, इसलिए आप जाकर अन्धक को वरदान दें ; जिससे हमारे दुःख दूर हों। यद्यपि वह आपसे वरदान पाने के पश्चात् देवताओं का पूर्ण रूप से शत्रु हो जाएगा। हम सबकी इच्छा है कि इस समय कृपा करके आप अन्धक के कठिन तप की अग्नि को शीघ्र ही शान्त करें। तदुपरान्त हमारे लिए भिषक् के समान होकर, हमारी चिकित्सा कीजिएगा।'' यह सुनकर शिवजी अन्धक को वरदान देने के लिए चल दिये। वे अपने वाहन गिरिजा तथा गणों सहित वहाँ जा पहुँचे और बोले—''हे अन्धक ! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम हमसे वर माँगो।'' तब अन्धक ने प्रणाम एवं स्तुति करते हुए यह कहा—''हे प्रभो ! मैं आपसे केवल यही वरदान माँगता हूँ कि अपने पिता के वरदान के अनुसार मैं आपके अतिरिक्त किसी के हाथ से न मारा जाऊँ। आप कोई उपाय कीजिये, जिससे मेरे पिता का वचन सत्य हो।'' यह सुनकर शिवजी बोले—''अच्छा, हम तुमको यही वरदान देते हैं, परन्तु यदि तुम तीनों लोकों के राजा होकर अपना धर्म त्याग कर कुकर्मी हो जाओगे, तो तुम निःसन्देह तुम पर बड़ा क्रोध करेंगे ; जिससे तुम्हारे सब पुण्य नष्ट हो जायेंगे। ऐसी दशा में भी हम तुम पर दया करेंगे, जिससे तुम्हारा श्रम निष्फल न जाएगा।'' शिवजी इस प्रकार अन्धक को वरदान देकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। तब अन्धक ने प्रसन्नतापूर्वक अपने घर आकर अपने माता-पिता को वर प्राप्त करने का हाल कह सुनाया।

हे नारद ! जब देवताओं ने यह सुना कि शिवजी ने अन्धक को ऐसा

वरदान दिया है तो सब बहुत घबराये। फिर उन्होंने इन्द्र के पास जाकर अन्धक के वरदान पाने का सब हाल कह सुनाया। जिस समय सब देवता इन्द्र के पास जाकर सब हाल कह रहे थे, उसी समय चारों ओर से दैत्यों ने अन्धक के पास जाकर देवता तथा दैत्यों की पुरानी शत्रुता की कहानी कह सुनायी, परन्तु अन्धक ने कुछ नहीं कहा। वह केवल इन्द्रपुरी को देखने के लिए रथ पर चल दिया तथा कुछ समय के पश्चात् इन्द्रपुरी में पहुँच गया। अन्धक को वहाँ आते हुए देखकर अन्य देवताओं के साथ इन्द्र भी बहुत भयभीत हुए। उस समय इन्द्र ने तुरन्त उठकर अन्धक को बराबर एक ही आसन पर बैठाया। तदुपरान्त इन्द्र ने मन में दुःखी होकर अन्धक से आने का कारण पूछा तथा यह कहा कि आपने यहाँ आकर बड़ी कृपा की है। अब जो आज्ञा आप हमें देंगे, हम उसका पालन करेंगे। यह सुनकर अन्धक ने अहंकार से भरकर उत्तर दिया—"हे इन्द्र ! तुम केवल मुझे अपनी सब सम्पत्ति दिखला दो। मुझे किसी वस्तु को लेने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पास जो ऐरावत हाथी तथा उच्चैःश्रवा घोड़ा आदि उत्तम रत्न एवं उर्वशी आदि महास्वरूपवती स्त्रियाँ हैं, उन सबको मुझे दिखा दो। मैं उनको देखने मात्र से ही प्रसन्न हो जाऊँगा।" तब इन्द्र ने निरुपाय होकर अपनी समस्त सम्पत्ति उसे दिखा दी। इन्द्र की सम्पत्ति को देखकर अन्धक आश्चर्यचकित हो इन्द्र के आसन पर बैठ गया। उस समय अन्धक ने यह आज्ञा दी कि नृत्य आरम्भ किया जाए। इन्द्र ने यह सुनकर भयभीत हो, सब सेविकाओं, गन्धर्व और अप्सराओं से कहा कि तुम सब लोग अपने सुन्दर नृत्यों द्वारा अन्धक को प्रसन्न करो।"

हे नारद ! हर प्रकार के बाजे ताल-स्वर सहित बजने लगे। सातों स्वर, इक्कीस मूर्च्छना तथा तीन ग्राम के साथ गान होने लगा। अन्धक ने उस नृत्य गान से मोहित होकर यह चाहा कि मैं अप्सराओं को अपने वश में करूँ, परन्तु देवताओं ने यह स्वीकार नहीं किया। अन्धक ने जब देवताओं की ऐसी अवज्ञा देखी तो वह अत्यन्त क्रोधित होकर सिंहनाद करने लगा। उस समय इन्द्र ने देवताओं से कहा—"हे

देवताओ ! उठो, ईश्वर को स्मरण कर भली प्रकार निर्भय होकर युद्ध करो, क्योंकि अपनी स्त्रियों के देने से तो लड़कर मर जाना ही उत्तम है।" इन्द्र की यह आज्ञा पाकर देवता तुरन्त लड़ने को तैयार हो गये, उस समय अन्धक भी पाँच सौ धनुष अपने हज़ार हाथों में लेकर तथा प्रत्येक धनुष में अनेक बाण चढ़ाकर युद्ध करने लगा। जब इन्द्र ने सम्मुख आकर वज्र से अन्धक को मारा, तब अन्धक ने क्रोधित होकर अपने त्रिशूल, गदा आदि नाना प्रकार के शस्त्रों से प्रहार किया। उस समय देवताओं सहित इन्द्र युद्ध स्थल छोड़कर भाग गये। इसके पश्चात् अन्धक अपनी माता दिति को भी वहीं बुलाकर राज्य करने लगा तथा यह ढिंढ़ोड़ा पिटवा दी कि हमारे राज्य में सब प्रजा आनन्दपूर्वक रहे और किसी प्रकार का सन्देह न करे। इन्द्र का राज्य अब समाप्त हो गया। सब वर्ण अपने धर्म में स्थिर रहकर हमारी आज्ञा का पालन करें। जो कोई हमारी आज्ञा के विरुद्ध कार्य करेगा, वह हमारे हाथों से मारा जाएगा। इस प्रकार आज्ञा प्रसारित कर, अन्धक स्वयं इन्द्रपुरी पर शासन करने लगा।"

ॐ ॐ ॐ

तैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! देवता अत्यन्त दुःखी हो मेरे पास आये और मुझसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने यह भी कहा कि देवता अब अन्धक के भय से यज्ञ में भी भाग नहीं ले सकते। इधर-उधर छिपे रहते हैं। यह कहकर देवताओं ने मेरी बड़ी स्तुति की। तब मैंने उनसे यह कहा—"हे देवताओ ! तुम सब किसी प्रकार का दुःख मत करो, तुम्हारे सब दुःख दूर हो जायेंगे।" इस प्रकार अनेक पुरातन इतिहास कहकर सबको साथ लिये हुए मैं विष्णु जी के पास गया तथा बहुत स्तुति कर, उनसे अन्धक के अन्याय का वर्णन किया। उस समय विष्णु जी बोले तुम सब अपने-अपने घरों को लौट जाओ। हम शीघ्र ही दैत्यों के पास पहुँचकर उनको नष्ट कर देंगे।" यह सुनकर देवता

अपने-अपने घरों को लौट गये। तब विष्णु जी तुरन्त गरुड़ पर सवार होकर अपने शस्त्रों सहित अन्धक के पास पहुँचे। विष्णु जी बड़े-बड़े अस्त्र अन्धक पर चलाते रहे तथा अन्धक उनको नष्ट करता रहा। जब अन्धक ने विष्णु जी को अपने शस्त्रों से दुःखी कर दिया तो विष्णु जी ने क्रोधित होकर सुदर्शन चक्र को अपने हाथ से छोड़ा जिससे संसार जलने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे प्रलय हो रहा हो। अन्धक भी दैत्यों सहित भयभीत हो गया। तब उसने शिवजी का ध्यान धरकर, अपना त्रिशूल चलाकर सुदर्शन को व्यर्थ कर दिया। उस समय विष्णु जी ने शिवजी का ध्यान करके मन में स्तुति करते हुए कहा—"हे शिवजी ! मैं देवताओं के मनोरथ किस प्रकार पूर्ण करूँ? आप मुझे आज्ञा दीजिए।"

हे नारद ! शिवजी ने विष्णु जी के ऐसे दुःख पूर्ण वचन सुनकर कहा—"हे विष्णु जी ! मुझे तुम्हारे समान और कोई भी प्यारा नहीं है। जो मनुष्य, मेरी भक्ति चाहता है, उसे पहले तुम्हारी भक्ति करनी चाहिए। परन्तु इस समय तुम स्वयं ही कुरीति से देवताओं के पक्ष में उद्यत हुए हो। जब तक अन्धक ब्राह्मणों से शत्रुता न करेगा, तब तक मैं उसके ऊपर क्रोध न करूँगा ; क्योंकि ब्राह्मण मुझको गिरिजा से भी अधिक प्रिय हैं। इसलिए तुम कोई ऐसा उपाय करो कि अन्धक मेरी आराधना-भक्ति त्याग कर ब्राह्मणों से शत्रुता करे।" यह आज्ञा पाकर विष्णु जी ने अन्धक से कहा—"हे अन्धक ! तुम्हारी वीरता तथा बल देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। तुम हमसे वरदान माँगो।" यह सुनकर अन्धक ने गर्व में भरकर कहा—"हे विष्णु ! वरदान लेना छोटे मनुष्यों का कर्त्तव्य है। हमको किस बात की कमी है, जो हम तुमसे वरदान माँगें? तुमको जो इच्छा हो, वह तुम हमसे माँगो, हम तुमको देंगे।" विष्णु जी ने अन्धक के ऐसे गर्व पूर्ण वचन सुनकर, प्रसन्नता से कहा—"हे अन्धक ! हम तुमसे यह वरदान मांगते हैं कि तुम शिवजी की भक्ति छोड़कर, स्वयं शिव बनकर विहार किया करो।" अन्धक ने यह सुनकर विष्णु जी की माया में भूल, कहा—

"ऐसा ही होगा।" इसके पश्चात् विष्णु जी तथा अन्धक अपने-अपने स्थान को चले गये। तब अन्धक ने स्वयं अपने को शिव ठहरा कर तीनों लोकों को वश में कर लिया, जिससे सबको दुःख पहुँचा। उसने ब्राह्मणों के मान को भी स्थिर न रखा तथा स्वयं अपने को परब्रह्म सिद्ध किया। दैत्यों की सब रीतियाँ उसने चलायीं।"

चौवालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! उस समय देवताओं की दशा अत्यन्त खराब थी। वे सब दैत्यों के भय से इधर-उधर भागे फिरते थे, जब देवता तथा ब्राह्मण बहुत दुःखी होकर शाप देने लगे, तब अन्धक का तेज क्षीण हो गया। अस्तु, एक दिन सब देवताओं ने एकत्र होकर कहा कि अब तो अन्धक हमको कोई धर्म नहीं करने देता, न हम विष्णु जी तथा शिवजी की पूजा ही करने पाते हैं। सब प्रकार का दुःख हम लोगों को है। भला, वह किस उपाय से मारा जा सकता है? यह सुनकर बृहस्पति ने कहा—"हे देवताओ ! अन्धक शिवजी के अतिरिक्त संसार भर से अवध्य है। जब शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया था उस समय यह भी कहा था कि जब तुम पाप करने लगोगे, तब हम ऐसा क्रोध करेंगे, जिससे तुम्हारा तेज घट जाएगा। शिवजी ने सर्वप्रथम ब्राह्मणों को दुःख देने का निषेध किया था। हे देवताओ ! अब वह समय आ गया है हम सब चलकर शिवजी की सेवा करें। वे हमारे समस्त दुःखों को दूर करेंगे।"

हे नारद ! तब देवताओं ने यह वृत्तान्त कहने के लिए तुम्हें शिवजी के पास भेजा। तुम वहाँ से चलकर शिवजी को मन्दार के वन में देखकर, स्तुति करने लगे। शिवजी तुम्हारी स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"हे नारद ! तुम हमारे यहाँ किस कार्य से आये हो?" शिवजी की ऐसी इच्छा जानकर, तुमने अन्धक के अन्याय का सब हाल उनको कह सुनाया। उसे सुनकर शिवजी बोले—"हे

नारद ! तुम मन्दार के पुष्पों की माला पहनकर अन्धक के पास जाकर हमारी प्रशंसा करना तथा ऐसा उपाय करना जिससे वह क्रोधित होकर हमारे पास आवे।'' यह सुनकर तुम विदा हो, वन से मन्दार के पुष्प तोड़, उनकी माला कंठ में पहन, अन्धक के समीप पहुँचे। उस समय अन्धक सहित सभी दैत्यों को तुम्हारी माला को, जो अत्यन्त सुगन्धित थी, देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। तब अन्धक बोला—''हे नारद ! ये पुष्प कहाँ उत्पन्न होते हैं? उस उद्यान का कौन रक्षक है? मैं यह पुष्प अपने बाहुबल से प्राप्त करना चाहता हूँ।'' तब तुमने यह उत्तर दिया—''हे अन्धक ! मन्दराचल में वीरकाम्यक नामक एक वन है। उसमें यह पुष्प उत्पन्न होते हैं। वहाँ शिवजी के गण वन की रक्षा करते हैं। वे गण अत्यन्त बलवान् हैं। शिवजी अपनी पत्नी सहित उसी वन में विहार करते हैं। उनको जीतने वाला सृष्टि में कौन है, परन्तु उनकी सेवा करने से यह पुष्प प्राप्त हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त उस वन में और भी अनेक प्रकार के पुष्प हैं। बहुतों में इनसे भी अधिक सुगन्ध है। कई वृक्षों से रत्न तथा कुछ वृक्षों से चारों प्रकार का अन्न प्राप्त होता है। वहाँ किसी को किसी प्रकार का दुःख प्राप्त नहीं होता, न किसी को भूख, प्यास, चिन्ता तथा खेद प्राप्त होता है। उन शिवजी की कृपा से मनुष्य इन्द्र पर भी विजय प्राप्त कर लेता है।'' अन्धक से ऐसे उपदेश पूर्ण वचन कहकर, तुम वहाँ से विदा हुए। तब अन्धक ने दैत्यों की सभा बुलाकर मन्दार के पुष्पों की प्रशंसा करते हुए यह कहा—''तुम सब लोग तैयार होकर मेरे साथ मन्दार पुष्प लेने चलो, यहाँ कोई न रहे।'' यह कहकर अन्धक सेना सहित चल दिया तथा शिवजी की महिमा भूल गया।''

ॐ ॐ ॐ

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! वहाँ से चलकर अन्धक मन्दारचल पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि वह पर्वत अनेक प्रकार की

औषधि तथा जड़ी-बूटियों से सुशोभित है। सिद्ध, मुनीश्वर, देवता तथा गण उसकी रक्षा करते थे। चन्दन, अगरु, शाल, चम्पर, बेल तथा रुद्राक्ष आदि अनेक प्रकार के वृक्ष वहाँ वर्तमान थे। वहाँ गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा आदि नृत्य करते थे। हंस, चकोर, सिंह, बाघ आदि जीवों से वह स्थान भरा हुआ था। उस आनन्ददायक स्थान पर जब अन्धक ने देवताओं को देखा तो बड़े क्रोध से यह कहा—"हे मन्दराचल ! तुम मुझको भली-भाँति जानते हो। मैं अपने समान संसार में किसी को नहीं समझता हूँ तथा मुझे कोई भी नहीं मार सकता है। संसार भर मेरे वश में है। तुम भी मेरी प्रजा तथा मेरे अधीन हो। अस्तु, तुम मेरी आज्ञा को सुनो। आज से मैं तुम्हारे निकट के इस वन को अपने विहार तथा भोग-विलास के लिए नियत करता हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन न करोगे, तो बहुत दुःख उठाओगे।"

हे नारद ! इसी प्रकार अन्धक ने चारों प्रकार की राजनीति के वचन कहे, परन्तु शिवजी का वह मन्दराचल पर्वत बिल्कुल ही भयभीत न हुआ और वहाँ से उसी समय अन्तर्धान हो गया। अन्धक ने मन्दराचल को इस प्रकार अन्तर्धान होते हुए देखकर क्रोध से कहा—"आज मैं तुझे अपने क्रोध से भस्म किये देता हूँ।" यह कहकर उसने पर्वत को जड़ से उखाड़ कर मिट्टी के समान पीस डाला तथा उसे बहुत योजन की दूरी पर फेंक दिया। उस समय उस वन के रहने वाले सब प्राणी थर-थर काँपने लगे। तब वह पर्वत उठते-बैठते, काँपते भागते हुए शिवजी के समीप जा पहुँचा। हे नारद ! शिवजी उस समय गिरिजा के पास थे। गिरिजा ने जब पर्वत को काँपते हुए देखा तो यह कहा—"तू आज इस प्रकार क्यों काँप रहा है तथा पृथ्वी आकाश और पाताल भी क्यों काँप रहे हैं? भला आज किसने इतना क्रोध किया है?" तब शिवजी ने कहा—"हे गिरिजे ! तुम नहीं जानती की यह उपद्रव किसने मचाया है। देखें, आज कौन यमलोक को जाता है? यह कहकर शिवजी ने पर्वत को प्रसन्न किया। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी कृपा से पर्वत के टुकड़ों को जो टूट-टूट कर इधर-उधर गिर

पड़े थे, दैत्यों की सेना पर गिराना आरम्भ कर दिया। यह देखकर दैत्यों में हलचल मच गई। उस समय अन्धक क्रोधित होकर कहने लगा—"हे पर्वत ! मुझको नहीं जानता कि मैं परब्रह्म हूँ। तू मुझसे ऐसा छल क्यों करता है, प्रकट होकर क्यों नहीं लड़ता?" अन्धक के यह शब्द सुनकर शिवजी ने बड़ा क्रोध किया। इतने में, मैं स्वयं, इन्द्र तथा अन्य देवता आदि शिवजी की स्तुति करते हुए उनके पास जा पहुँचे। हे नारद ! शिवजी की वह स्तुति ऐसी है, जिसको सुनने तथा सुनाने से दोनों लोकों में मुक्ति मिलती है।"

छियालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी ने जब इस प्रकार स्तुति सुनी तो उन्होंने अन्धक पर अत्यन्त क्रोध प्रकट करते हुए अपने गणों से कहा कि तुम जाकर दैत्यों को नष्ट करो। उस समय समस्त गण शिवजी की आज्ञा प्राप्त कर नन्दी के सेनापतित्व में अन्धक से युद्ध करने चल दिये। युद्ध स्थल में पहुँचते ही घनघोर युद्ध होने लगा। गणों ने अनेक दैत्यों का नाना प्रकार के शस्त्रों से वध कर डाला। नन्दी ने हुण्ड, थुण्ड जृम्भासुर, कुञ्जासुर, पाकहारीत, मदन-मद्रन आदि दैत्यों के अधिपों को मारा, जिससे सब दैत्यों को बड़ा दुःख पहुँचा। अन्धक यह देखकर अत्यन्त शोकाकुल हो, भयभीत हुआ। फिर अपने गुरु शुक्र के पास जाकर स्तुति कर कहने लगा—"हे गुरुदेव ! आपने अनेक बार दैत्यों के दुःखों को दूर किया है। मैं इस समय आपकी शरण में आया हूँ। आपकी सेवा के बल पर दैत्य पर्वत के समान युद्ध क्षेत्र में स्थिर रहते हैं। हे भृगु ! इस समय शिलादि के पुत्र नन्दीगण ने असंख्य दैत्यों को युद्ध क्षेत्र में मार डाला है। हुण्ड, थुण्ड आदि अच्छे-अच्छे दैत्यों को उन्होंने मारकर पृथ्वी पर लिटा दिया है। अब आप जैसा उचित समझें वह उपाय करें। आपने जो विद्या प्राप्त की है, उसको प्रयोग में लाने का यही समय है। आप दैत्यों को जीवित करिये,

जिससे संसार में आपके यश की वृद्धि हो।"

हे नारद ! अन्धक के ऐसे वचन सुनकर भृगु ने हँसकर कहा—"हे अन्धक ! सहस्त्र वर्षों तक हमने केवल धान की भूसी का धुँआ पीकर जो विद्या प्राप्त की है, अब तुम उसकी सिद्धि देखो। हम मरे हुए दैत्यों को मृत्यु निद्रा से जगाते हैं तथा जिस प्रकार सूखे धानों को पानी हरा कर देता है, उसी प्रकार उस विद्या द्वारा दैत्यों को जीवन-दान देते हैं। यह कहकर भृगु ने अपना मंत्र पढ़ा, जिससे मरे हुए दैत्य तुरन्त जीवित हो गये और उस समय अन्धक अपने साथियों को जीवित देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। शिवजी के गणों ने नंदी से जब भृगु की इस सिद्धि की बात जाकर कही, तब नन्दी ने तुरन्त ही शिवजी के पास पहुँच कर यह विनय की—"हे शिवजी ! जो दैत्य हमारे हाथों से मारे जाते हैं, उनको भृगु बार-बार जीवित कर देते हैं। इस प्रकार हमारी विजय कैसे होगी?" यह सुनकर शिवजी का रूप अत्यन्त भयंकर हो गया। वे क्रोधित होकर नन्दी से बोले—"हे नन्दी ! ब्राह्मणों में जो अत्यन्त नीच भृगु है उसको तुम शीघ्र ही हमारे पास पकड़ कर ले आओ।" नन्दी यह सुनकर निर्भय हो, दैत्यों की सेना में प्रवेश कर गये। उन्होंने देखा कि भृगु की रक्षा अनेक दैत्य कर रहे हैं, फिर भी नन्दी ने सबको मोहित कर, भृगु को पकड़ लिया तथा उन्हें घसीटते हुए ले चले। यद्यपि भृगु ने शस्त्र चलाकर नन्दी से मुक्ति प्राप्त करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु नन्दी ने अपने शरीर से अग्नि उत्पन्न कर सभी शस्त्रों को जला दिया और शिवजी के पास उन्हें पकड़ कर ले गये। फिर उन्होंने भृगु को शिवजी के सम्मुख खड़ा करके कहा—"हे महाराज ! भृगु आपके सम्मुख खड़ा है। अब आप जो उचित समझें, वह करें।" शिवजी ने उत्तर में कुछ न कहा तथा भृगु को अपने उदर में डाल लिया। यह देखकर दैत्यों को अत्यन्त दुःख हुआ तथा उन्हें अपनी विजय की कोई आशा न रही। जब अन्धक ने यह हाल सुना तो वह दैत्यों को धिक्कारने लगा और बोला—"आज मैं नन्दी का वध अवश्य कर डालूँगा। भृगु तो योग शास्त्र में निपुण हैं, इसलिए उनके

मरने का मुझे भय नहीं है।'' यह कहकर वह पुनः गणों से युद्ध करने लगा। तब नन्दी ने गणों सहित ऐसा युद्ध किया कि दैत्यों की सेना पल भर में छिन्न-भिन्न होकर भागने लगी।''

ॐ ॐ ॐ

सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! इस प्रकार अपनी सेना को युद्ध क्षेत्र से भागते हुए देखकर अन्धक स्वयं रथ पर आरूढ़ हो, युद्ध स्थल में आ पहुँचा। तब बलभद्र, शाख, विशाख, गणेश, सोम तथा नंदीश्वर आदि शिवगण ने अन्धक के ऊपर एक साथ आक्रमण कर दिया। उधर भृगु ने शिवजी के उदर में पूरा ब्रह्माण्ड देखा। इसी प्रकार वे सौ वर्ष तक शिवजी के उदर में भ्रमण करते रहे, परन्तु उसमें से निकलने के लिए उन्हें कोई स्थान नहीं मिला। तब वे शिवजी की वन्दना करके उनके लिंग के छिद्र द्वारा, प्रकट होकर, शिवजी की स्तुति करने लगे। शिवजी भृगु की ऐसी चतुराई देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—''हे भृगु ! तुम शुक्र के मार्ग से प्रकट हुए हो इसलिए तुम्हारा नाम 'शुक्र' होगा। तुम हमारे पुत्र हो। अब अपने घर सुखपूर्वक चले जाओ।'' यह सुनकर शुक्र वहाँ से दैत्यों की सेना में लौट आये। उन्हें पुनः देखकर दैत्य अत्यन्त हर्षित हुए। तब अन्धक सावधानी के साथ शुक्र की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करके, किसी सुरक्षित स्थान पर उन्हें बैठाकर, स्वयं युद्ध करने लगा। उसने अपने भीषण प्रहारों से गणों को दुःखी कर दिया। यहाँ तक कि सभी गण युद्ध स्थल से भागकर शिवजी के पास जा पहुँचे तथा लज्जापूर्वक बोले—''हे शिवजी ! हमको दैत्यों की सेना मार डालती है, हम अत्यन्त दुःखी हैं।'' यह सुनकर शिवजी ने कहा—''तुम तुरन्त ही हमारा रथ सजाओ।'' तब उनकी आज्ञानुसार शीघ्र ही इस प्रकार, जैसा कि त्रिपुर का वध करने के लिए सजाया गया था, रथ तैयार किया गया। तदुपरान्त शिवजी अपने गणों के दुःख का स्मरण कर, क्रोधित हो उस रथ पर आरूढ़

हुए तथा रण-भूमि में पहुँचकर अन्धक से युद्ध करने लगे। अन्धक जो भी बाण एवं शस्त्र चलाता था, उनको शिवजी अपने तीक्ष्ण-बाणों तथा अन्य उत्तम शस्त्रों से काट देते थे तथा शिवजी जो शस्त्र छोड़ते थे, उनको अन्धक नष्ट कर देता था। अन्त में, अन्धक ने शिवजी पर अपनी मुष्टिका का प्रहार किया। शिवजी ने भी उत्तम स्वरूप प्रहार करके उसे पृथ्वी पर मूर्च्छित करके गिरा दिया। उस समय शिवजी की इच्छानुसार चामुण्डा देवी, जो दुर्गा का स्वरूप हैं, प्रकट हुईं। उनका शब्द घनगर्जन के समान महाभयंकर था। दाढ़ें विकराल, स्वरूप महाकठोर, लाल-लाल आँखें, लाल-लाल होंठ बहुत ही लम्बा कान, काली आँखें, ऐसे स्वरूप से चामुण्डा देवी दैत्य सेना में प्रवेश कर दैत्यों को विदीर्ण करने लगीं तथा अपने केशों को बिखराकर, रणभूमि में नृत्य करने लगीं।

हे नारद ! अन्धक ने चामुण्डा का ऐसा विकराल स्वरूप तथा दैत्यों को भयभीत देख, क्रोधित होकर अपना शूल चण्डी के सम्मुख कर दिया। उस समय शिवजी ने अन्धक की ऐसी ढिठाई देखकर बड़ा क्रोध किया तथा अपने त्रिशूल से अन्धक को छेद दिया ; जिससे रक्त की नदी बह निकली। केवल अन्धक के अस्थि तथा चर्म ही त्रिशूल पर रह गये, शेष रक्त निकल गया। वह कमल के समान त्रिशूल पर रह गया। उस समय शिवजी ने सब शत्रुता भुलाकर अन्धक को उत्तम बुद्धि प्रदान की, जिससे वह सतोगुण धारण कर, दैत्य भाव से छूट गया तथा शिवजी की स्तुति करने लगा।''

ॐ ॐ ॐ

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! उस समय अन्धक ने शिवजी की बहुत स्तुति करने के पश्चात् कहा—''हे शिवजी ! मैं आपकी शरणागत हूँ आप मेरी ओर दया दृष्टि कीजिये।'' अन्धक की यह स्तुति सुनकर शिवजी ने उसकी ओर दया की दृष्टि से देखा तथा

अत्यंत प्रशंसा करते हुए कहा—"हे अन्धक ! तुम धन्य हो। हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान हमसे माँग लो।" यह सुनकर अन्धक ने कहा—"हे शिवजी ! आप मुझको अपना गण करके, अपने निकट ही रखें तथा वीरभद्र के समान ही समझें।" यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे अन्धक ! तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।" हे नारद ! इस प्रकार शिवजी ने अन्धक को अपना गण बनाकर मुक्त किया तथा उसे अपने साथ ले जाकर कैलाश पर्वत पर वास करने लगे।" इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! उस समय विष्णु जी ने, मैंने तथा देवताओं ने कैलाश में पहुँचकर शिव शंकर को प्रणाम किया तथा सबने अलग-अलग स्तुति की। जो कोई उस स्तुति तथा चरित्र को सुनेगा अथवा सुनाएगा, वह अपने कुल सहित प्रसन्न रहेगा। परलोक में उसे शिवजी का सामीप्य प्राप्त होगा। स्तुति के पश्चात् देवता एवं शिवजी यथास्थान चले गये।"

ॐ ॐ ॐ

उन्चासवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी बोले—"हे पिता ! इस चरित्र के सुनने से वास्तव में मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब आप सदाशिव जी का अन्य चरित्र कहें।" नारद जी की ऐसी लालसा देखकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब हम तुम्हें शिवजी तथा विष्णु जी के युद्ध का वर्णन सुनाते हैं। मेरे पुत्र मरीचि के द्वारा कश्यप उत्पन्न हुए ; वे शिवजी के परम भक्त हैं। उनके तेरह पत्नियाँ थीं, जिनसे अनेक सन्तानें उत्पन्न हुईं। उनकी सबसे बड़ी पत्नी का नाम दिति था। दिति के गर्भ से बड़े वीर दैत्य उत्पन्न हुए। उनमें से दो का नाम हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष था। वे बहुत समय तक तप करते रहे। हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए। उनमें प्रह्लाद सबसे छोटा था। प्रह्लाद से विरोचन उत्पन्न हुआ जो शिवजी का अनन्य भक्त था। विरोचन से बलि उत्पन्न हुआ। बलि

शिवजी का भक्त, बड़ा उदार तथा देवताओं के साथ युद्ध करने में अत्यन्त बलवान् था। उसका एक पुत्र बाण नाम का उत्पन्न हुआ। बाण भी शिवजी का बड़ा भक्त था। वह सन्तों का मित्र, अपने नियम तथा व्रत में अत्यन्त दृढ़, निरहंकार तथा सहस्त्रबाहु था। उसने अत्यन्त उदारता के साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर राज्य किया। उसने अपनी राजधानी शोणितपुर में स्थापित कर, बड़ी धूमधाम के साथ राज्य किया। उसके राज्य में कोई भी दुःखी न था।

हे नारद ! एक दिन बाण शिवजी की भक्ति एवं प्रेम में मग्न होकर, अपनी सहस्त्रबाहुओं से बाजा बजा कर, शिवजी के सम्मुख ताण्डव-गति से नृत्य करने लगा। यह देखकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—"हे बाण ! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। तुम हमसे अपनी इच्छानुसार वरदान माँगो।" यह सुनकर बाणासुर ने विनती की "हे प्रभो ! सदैव मेरे सहायक रहा करें तथा मेरे दुःख दूर किया करें।" शिवजी बाणासुर की यह बात मानकर, अपने कुल सहित बाणासुर के घर में निवास करने लगे तथा अपनी सम्पूर्ण शक्ति सहित बाणासुर की रक्षा करने लगे। एक दिन समस्त देवताओं के राजा शिवजी देवताओं सहित नर्मदा नदी के तट पर एक उत्सव-विहार करने लगे। सब देवता, सिद्ध आदि शिवजी के उस उत्सव को देखने के लिए वहाँ आये। उस समय वहाँ नृत्य गायन तथा अनेक प्रकार की आनन्द की बातें होने लगीं। उससे शत्रुओं को दुःख तथा भक्तों को सुख प्राप्त हुआ। उस समय तीनों प्रकार की वायु बहने लगी, नाना प्रकार के पुष्प खिल उठे, पक्षी मधुर-वाणी में बोल उठे, मानो वे भी गायक बनकर गाने लगे हों तथा सम्पूर्ण वन फूल उठा। ऐसे समय में शिवजी ने इच्छानुसार विहार किया। फिरते-फिरते उन्होंने काम के वश हो नन्दीगण को बुलाकर यह कहा कि तुम तुरन्त कैलाश में जाकर गिरिजा को अपने साथ ले आओ। नन्दी ने यह सुनकर तुरन्त ही गिरिजा की सेवा में पहुँचकर, शिवजी का समाचार कह सुनाया। गिरिजा ने उत्तर दिया कि तुम चलो, हम श्रृंगार करके पीछे आती हैं। नन्दी यह

सुनकर वहाँ से चला गया तथा गिरिजा शृंगार करने लगीं। तब नन्दी ने यह सुनकर शिवजी के निकट पहुँचकर कहा कि गिरिजा पीछे आ रही हैं। यह सुनकर शिवजी बोले—"तुम फिर शीघ्र जाकर, उन्हें अपने साथ ले आओ।" नन्दी फिर गिरिजा के पास जा पहुँचे तथा उनसे शीघ्र चलने के लिए कहा। तब गिरिजा ने कहा—"अच्छा मैं अभी चलती हूँ तुम बैठो।" यह कहकर उन्होंने शृंगार करने में अपना बहुत समय लगाया। उधर शिवजी अप्सराओं के नृत्य तथा रंग को देखकर बहुत ही कामवश हो गये। जब गिरिजा ने आने में बहुत देर की तब सभा की स्त्रियों ने यह निश्चित किया कि हम सब स्त्रियाँ अपना-अपना और ही प्रकार का पवित्र रूप धारण करें। यह निश्चत कर सब स्त्रियाँ अपना-अपना अन्य स्वरूप धारण करने लगीं। उन्होंने यह सोचा था कि ऐसा करने से शिवजी किसी प्रकार भुलावे में आ जायेंगे। अस्तु, नन्दी ने उर्वशी का रूप, सुकेशी ने लक्ष्मी का स्वरूप, पृताची ने काली का स्वरूप, विश्वाची ने चण्डी का स्वरूप, प्रेमगोत्रा ने सावित्री का रूप, मैना ने गायत्री का रूप, पद्मावती ने विजय स्थला का रूप तथा जया ने सहजन्या का स्वरूप धारण किया।

हे नारद ! उषा ने, जो बाणासुर की कन्या थी, गिरिजा का स्वरूप धारण कर लिया। फिर उन्होंने यह निश्चय किया कि इस समय हम शिवजी को अपने वश में करके उनके साथ भली प्रकार भोग-विलास करें। जब शिवजी ने उषा को बुलाया तभी वहाँ गिरिजा आ पहुँचीं तथा हँसकर इस प्रकार कहा—"हे उषा ! तुमने काम-वश हो हमारा स्वरूप धारण किया है, इसलिए हमारा वचन सुनो। मधुमास की शुक्ल द्वादशी को सोते समय एक मनुष्य तुम्हें मिलेगा, तुम उसके साथ जी भरकर भोग-विलास करना। वही तुम्हारा पति होगा।" यह कहकर गिरिजा अत्यन्त प्रसन्नता के साथ शिवजी के पास जा पहुँची। शिवजी यह लीला करके अपनी सम्पूर्ण सभा सहित अन्तर्धान हो गये।"

ॐ ॐ ॐ

पचासवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! एक दिन बाणासुर ने अपने ताण्डव नृत्य से शिवजी को अत्यन्त प्रसन्न करके उनसे यह विनती की—"हे शिवजी ! मैं आपकी कृपा से अत्यन्त बलवान् हुआ हूँ, परन्तु आपने मुझे जो सहस्त्र भुजाएँ देने की कृपा की है, वे मेरे शरीर पर भार के समान हैं, क्योंकि उनके बल से आज तक मैंने कोई कार्य नहीं किया है। अब तीनों लोकों में कोई युद्ध भी मुझसे नहीं हुआ। मैं इस समय तीनों लोकों में केवल युद्ध के निमित्त फिरता हूँ। हे शिवजी ! मेरी भुजाएँ बल की अधिकता से खुजलाया करती हैं। सो अब आप ही कृपा करके मेरी यह खुजली दूर करें। मैंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जीत कर, सबको अपने अधीन कर लिया है, परन्तु मुझे युद्ध की अभी भी बहुत बड़ी इच्छा है। अस्तु, या तो कोई मेरी भुजाएँ काट डाले या मैं उसकी भुजाएँ काट दूँ।"

हे नारद ! शिवजी ने बाणासुर के मुख से ऐसे वचन सुनकर कहा—"हे बाणासुर ! मुझे धिक्कार है, जो तुझे अपने ऊपर इतना गर्व है। तू दैत्यों के कुल में महाअधम है। तू बलि का पुत्र तथा हमारा भक्त होकर भी ऐसी व्यर्थ की बातें करता है? यह तेरा अभिमान शीघ्र ही मिट जाएगा। हमारे समान ही एक मनुष्य तेरे पास आएगा वह तेरी अभिलाषा को भली-भाँति पूर्ण कर देगा। उस समय केवल हमारी कृपा द्वारा ही तेरे प्राणों की रक्षा होगी। हम तुझको वह समय भी बताते हैं, जब यह सब बातें प्रकट होंगी। जब तेरा यह ध्वज, जिसका सिर मनुष्य के सिर के समान तथा नीचे मोर का आकार है, बिना पवन के ही पृथ्वी पर गिर पड़े तथा नाना प्रकार के अपशकुन प्रकट हों, तब तुम यह निश्चय समझना कि अब वही समय आया है।" ये शब्द शिवजी ने प्रकट में क्रोध तथा भीतर से प्रसन्न होकर कहे।

हे नारद ! शिवजी के ऐसे वचन सुनकर बाणासुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ था उसने शिवजी की बड़ी पूजा की। फिर उसने घर जाकर अपनी

स्त्री से सब हाल कहा। उसकी स्त्री का नाम कन्दला था। जब उसने यह समाचार सुना तो वह अत्यन्त चिन्तित हुई और बोली—"हे नाथ! यह क्या आनन्द की बात है? यह तो बहुत बुरी बात हुई है। शिवजी सदैव अहंकार को नष्ट करते हैं। इस पर आपकी सब भुजाएँ कट जायेंगी। अब तक आप पराजित नहीं हुए थे, परन्तु अब अवश्य ही आपको पराजय मिलेगी। शिवजी ने आपको यह शाप दिया है, वरदान नहीं। इससे तो उत्तम है कि आप अब भी शिवजी को भली प्रकार प्रसन्न करके, उनकी ऐसी सेवा करें जिससे आपका भला हो।" कन्दला यह कहकर अत्यन्त दुःख के साथ शिवजी का स्मरण कर, बाणासुर के चरणों पर गिर पड़ी। तब यह आकाशवाणी हुई "हे कन्दला! तुम अपने मन में किसी प्रकार का दुःख मत करो। उस समय शिवजी ही तुम्हारे सहायक होंगे तथा बाणासुर का गर्व नष्ट करके उस पर कृपा करेंगे।" कन्दला इस आकाशवाणी को सुनकर कुछ प्रसन्न हुई; परन्तु इस बात को बाणासुर ने नहीं जाना। तदुपरन्त वह घर से निकलकर बाहर आया और अपने सभासदों को एकत्र कर युद्ध की सलाह करने लगा।"

ॐ ॐ ॐ

इक्यावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद! अब हम तुमको बाणासुर की पुत्री उषा का चरित्र सुनाते हैं, जो उस युद्ध का मूल है जिसमें बाणासुर की भुजाएँ कट गयी थीं। यह सब लीला भी तुम शिवजी की ही जानो। बाणासुर की कन्या उषा, जिसे गिरिजा ने यह वर दिया था कि तुमको रात्रि में पति मिलेगा, एक दिन वैशाख शुक्ल द्वादशी को जब, शिवजी की पूजा कर, अर्धरात्रि को सोने लगी, तब गिरिजा की इच्छा से श्री कृष्ण जी के पोते अनिरुद्ध ने वहाँ पहुँच कर उसके साथ भोग किया। उस समय उषा कुछ सकुचाई, परन्तु अनिरुद्ध गिरिजा की कृपा से तुरन्त कृतकार्य हो, अपने घर चला आया। तब उषा मृतक के समान

शिथिल होकर बहुत रोई। फिर उसने अपनी सखियों से सब हाल कह सुनाया। उसने अनिरुद्ध को पुनः प्राप्त करने की इच्छा करके, अपनी सखियों से उसकी बड़ी प्रशंसा की तथा गिरिजा का ध्यान किया। उस समय कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा ने जो उषा की सखी थी, उषा को बहुत समझाया तथा उसे पहले जन्म का सब हाल कह सुनाया। उसे सुनकर उषा अत्यन्त प्रसन्न हुई। तब उसने अत्यन्त विनय के साथ चित्रलेखा से कहा—"हे सखी ! जिस पति को गिरिजा ने मुझे रात्रि के समय दिखाया है, उसे तुम किसी प्रकार छिपाकर मेरे पास ले आओ तथा मुझसे भेंट करा दो। यह बात तुम्हारे लिए कुछ तो कठिन नहीं है।" इतना कहकर उषा फिर बोली—"तुम सब सखियाँ इस बात को सत्य समझ लो कि जिस मनुष्य के मिलने से रात्रि के समय मुझको बहुत सुख प्राप्त हुआ है, वह मनुष्य यदि फिर न मिला तो मेरी मृत्यु निश्चित है।" यह सुनकर चित्रलेखा ने हँसकर कहा—"हे सखी ! मैं तुम्हारे सब दुःख दूर कर दूँगी, जिससे तुम्हें परम आनन्द प्राप्त होगा। यदि वह मनुष्य तीनों भुवनों में कहीं होगा, तो उसे तुरन्त ही तुमसे मिला दूँगी।" यह कहकर चित्रलेखा कपड़े के ऊपर सब प्राणियों के स्वरूप खींचने लगी। उसने आदि से अन्त तक, जितने भी देवता आदि आकाश के निवासी थे, सबके रूप बनाए, परन्तु उषा ने उनमें से किसी को नहीं पहचाना। तब वह मनुष्यों के चित्र बना-बना कर दिखलाने लगी।

हे नारद ! जब मेरा चित्रलेखा यदुवंश को चित्रित करने लगी, तब उसने क्रमशः वसुदेव, राम, कृष्ण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के चित्र बनाकर उषा को दिखाये। उषा ने अनिरुद्ध के स्वरूप को देखकर पहचान लिया तथा यह कहा कि यही व्यक्ति वह है, जिसने मेरा मन चुराया है। तब चित्रलेखा यह जानकर कि उषा कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध पर मोहित है, शिवजी का ध्यान कर, योग माया के बल से ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी को कृष्ण जी के भवन में गयी। वहाँ उसने यह देखा कि अनिरुद्ध अपनी पत्नी के साथ मद्यपान कर रहे हैं। उनकी

किशोरावस्था, श्याम रंग तथा अत्यन्त सुन्दर स्वरूप को देखकर, चित्रलेखा ने तामसयोग को प्रकट कर, चारों ओर अँधेरा कर दिया तदुपरान्त वह उस शैय्या को जिस पर अनिरुद्ध बैठे हुए थे, अपने मस्तक पर रखकर योग-बल से उड़ चली और उसे उषा के पास लाकर रख दिया। उस समय उषा ने आश्चर्यचकित होकर अनिरुद्ध को देखा। तदुपरान्त अत्यन्त गुप्त रूप से भीतर ले जाकर यह इच्छा की कि मैं इनके साथ भोग-विलास करूँ। उस समय का यह हाल द्वारपालों तथा रक्षकों ने जान लिया। वे अत्यन्त आश्चर्य करके उषा के अपकर्म तथा छल पर पश्चात्ताप करने लगे। फिर जब उन्होंने उषा के घर जाकर अनिरुद्ध को इस प्रकार देखा कि वह भोग-विलास में लिप्त हैं, तो उन्होंने तुरन्त ही बाणासुर के पास जा, स्तुति करते हुए, यहा कहा—"हे स्वामी ! आप तीनों लोकों के ऐसे राजा हैं, जिनसे ब्रह्मा भी डरते हैं। प्रभो ! इस समय आपकी पुत्री के घर में एक अकेला मनुष्य बैठा है। आप स्वयं ही चलकर उसे देख लें तथा जो उचित समझे, करें।" यह सुनकर बाणासुर अत्यन्त दुःखी एवं क्रोधित हुआ। उसने वहाँ जाकर अनिरुद्ध को देखा तथा मन में विचार किया कि यह मनुष्य कोई बड़ा वीर, युद्ध करने वाला तथा प्रण का दृढ़ है। इसने मेरे कुल-धर्म को नष्ट कर दिया है। यह विचार कर बाणासुर ने अपने वीरों को आज्ञा दी कि इसको तुरन्त मार डालो।

हे नारद ! बाणासुर ने अपने सेवकों को यह आज्ञा देकर अनिरुद्ध को देखा। उस समय उनका तेजस्वी स्वरूप देखकर, उसे बहुत सन्देह हुआ। इसलिए दस सहस्त्र सेना अनिरुद्ध को मारने के लिए तैयार हुई। यह देखकर अनिरुद्ध भी निर्भय हो, उठ खड़े हुए। वे अपने एक हाथ में परिघ उठाकर, तुरन्त ही द्वार की ओर चले तथा उस सेना पर इस प्रकार आक्रमण किया कि एक भी सैनिक जीवित न बचा। इसके पश्चात् अनिरुद्ध से युद्ध करने के लिए जो और सेना आयी, उसको भी उन्होंने बुरी तरह मारा। फिर एक लाख वीर आकर अनिरुद्ध से लड़ने लगे। अनिरुद्ध ने उनको भी मारकर वहाँ से भगा दिया। जब

बाणासुर को युद्ध का समाचार मिला, तब वह स्वयं अपने रथ पर सवार होकर युद्ध करने के लिए चला। उसके रथ पर कुम्भाण्ड नामक मन्त्री सारथी के स्थान पर बैठा हुआ था। उस समय अनिरुद्ध ने अपनी तलवार द्वारा सारथी सहित बाणासुर को घायल कर दिया। तब बाणासुर ने अनिरुद्ध पर अपनी सांग चलायी। अनिरुद्ध ने बाणासुर के हाथ से सांग छीन ली और उसी से बाणासुर के ऊपर आक्रमण किया। उस युद्ध को देखकर दैत्य एवं देवता अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। तब बाणासुर अनिरुद्ध को अत्यन्त बलशाली समझकर, वहाँ से अन्तर्धान हो गया और माया युद्ध करके अनिरुद्ध को अपार कष्ट दिया। कुम्भाण्ड ने बाणासुर को अनेक प्रकार से समझाया तथा उसका क्रोध शान्त किया। फिर उसने अनिरुद्ध को अच्छे-अच्छे उपदेश देकर, भली प्रकार समझाते हुए कहा—"हे अनिरुद्ध ! अब तुम बाणासुर को हाथ जोड़कर, कहो कि हम तुमसे हार गये। अस्तु, तुम हमको प्राण दान दो।" यह सुनकर अनिरुद्ध ने कहा—"हे मूर्ख ! तू क्षत्रिय धर्म नहीं जानता। क्षत्रियों को युद्ध में सम्मुख होकर मरना अत्यन्त आनन्ददायी तथा मोक्ष प्रदान करने वाला होता है। जब धर्म ही न रहा तो जीना किस काम का ऐसा मनुष्य दोनों लोकों में आनन्द नहीं उठा सकता।" ऐसे वचन सुनकर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा उसने चाहा कि अनिरुद्ध का वध कर डालें। अस्तु, इस इच्छा से ज्योंही उसने अपना त्रिशूल उठाया, तभी आकाशवाणी हुई। उस आकाशवाणी को अनिरुद्ध सहित सबने सुना। वह यह थी—"हे बाणासुर ! तू ऐसा पाप क्यों करता है? तू बलि का पुत्र और शिव भक्त है। अस्तु, यह काम अच्छा नहीं। यह बालक मार डालने के योग्य नहीं है, इसके शिवजी रक्षक हैं। शिवजी सबके स्वामी हैं, जिनके आधीन तीनों लोक हैं। वह शिवजी सबका पालन करने वाले तथा प्रलय करने वाले हैं। तुझको यही उचित है कि तू ऐसे शिवजी की पूजा किया करे। जब शिवजी तेरे ऊपर कृपा करेंगे, उस समय तेरा गर्व नष्ट हो जाएगा।"

हे नारद ! इस आकाशवाणी को सुनकर, बाणासुर उस स्थान से उठकर अपने घर चला गया तब अनिरुद्ध ने भी देवी का स्मरण किया तथा मन में बड़ी स्तुति की, जिससे श्री महाकाली जी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। वह महाकाली गिरिजा का ही एक रूप हैं, उन्होंने अनिरुद्ध को आनन्द दिया तथा स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। तब अनिरुद्ध फिर उषा के पास चले गये।''

ॐ ॐ ॐ

बावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जिस समय चित्रलेखा अनिरुद्ध को लेकर आकाश को चली थी, उस समय अनिरुद्ध की पत्नी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी थी। उसके रुदन को सुनकर तथा अनिरुद्ध को न देखकर, कृष्ण-बलराम सहित समस्त यदुवंशियों को अत्यन्त चिन्ता हुई। उन सबने अनिरुद्ध को चारों ओर ढूँढा, परन्तु किसी भी प्रकार पता न चला। इसी प्रकार चार महीने व्यतीत हो गये और कोई यह न जान सका कि अनिरुद्ध को कौन ले गया है? हे नारद ! तब भगवान् सदाशिव की आज्ञा पाकर एक दिन तुम श्री कृष्ण जी के पास पहुँचे और उन्हें आदि से अन्त तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय गरुड़ भी श्री कृष्ण जी की सहायता के निमित्त उनके पास जा पहुँचे। शोणितपुर पहुँच कर श्री कृष्ण जी ने अपनी सेना द्वारा नगर के चारों ओर से घेर लिया। और यह देखकर बाणासुर युद्ध करने की इच्छा से श्रीकृष्ण जी के सामने आया तथा उसके संरक्षक भगवान् रुद्र भी युद्ध क्षेत्र में आ पहुँचे।

हे नारद ! उस समय दोनों सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा। रुद्र ने श्री कृष्णचन्द्र जी के साथ युद्ध ठाना, वीरभद्र प्रद्युम्न के साथ लड़ने लगे तथा कोपकर्ण और कुम्भाण्ड बलराम जी के साथ युद्ध करने लगे। बाणासुर के पुत्र ने साम्ब का सामना किया तथा शिवजी के वाहन नन्दीश्वर गरुड़ के साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार सभी योद्धा

अपना-अपना जोड़ देखकर एक-दूसरे से भिड़ गये। स्वयं बाणासुर अपने हाथ में साँग लेकर श्री कृष्ण जी की सेना से युद्ध करने लगा। उस महायुद्ध को देखने के लिए मैं तथा अन्य सब देवता युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचे। शिवजी के गणों ने यदुवंशियों के साथ युद्ध छेड़ रक्खा था। इस प्रकार उस युद्ध में एक ओर तो श्री कृष्णचन्द्र जी थे और दूसरी ओर भगवान् सदाशिव जी थे। उस युद्ध का वर्णन किस प्रकार किया जाए? कोई भी योद्धा अपने स्थान से तनिक भी विचलित नहीं होता था। जिस समय श्री कृष्ण जी और बलराम जी ने अपनी शस्त्र-वर्षा द्वारा दैत्यों तथा शिवगणों का मुँह फेर दिया, उस समय शिवजी ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी घोर-गर्जना द्वारा यदुवंशियों की सेना को भयभीत कर दिया, जिसके कारण वे लोग भी युद्ध क्षेत्र से भागने लगे। तब श्री कृष्णचन्द्र जी ने बहुत क्रोध करके शिवजी के ऊपर अपने पैने बाणों का प्रहार किया, परन्तु शिवजी ने उन सब बाणों को पल भर में ही काट डाला। तब श्री कृष्णचन्द्र जी ने क्रुद्ध होकर शिवजी के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उस ब्रह्मास्त्र को भी शिवजी ने अपने ब्रह्मास्त्र से निष्फल कर दिया। इस प्रकार श्री कृष्ण जी ने शिवजी के ऊपर जितने भी अस्त्र-शस्त्र चलाये, वे सब निष्फल हो गये। यह देखकर श्री कृष्णचन्द्र जी ने कोप में भरकर शिवजी के ऊपर शीत ज्वर का प्रयोग किया, जिसके कारण शिवजी की सेना के सभी योद्धा थर-थर करके काँपने लगे। तब शिवजी ने पित्त ज्वर को छोड़ा, जिसने शीत ज्वर को निष्फल कर दिया और वह शिवजी की स्तुति करता हुआ उनकी शरण में जा पहुँचा। उस समय शिवजी ने दोनों ज्वरों को यह आज्ञा दी कि तुम दोनों हमारे भक्तों को कभी न सताना। हम तुम्हें आज से अपना सेवक बनाये लेते हैं। अस्तु, अब तुम प्रसन्न होकर अपने घर को जाओ। यह सुनकर शीत ज्वर तथा पित्तज्वर अपने-अपने स्थान को चले गये।

हे नारद ! शिवजी के इस चरित्र को देखकर श्री कृष्ण जी को बहुत दुःख हुआ। अस्तु, वीरभद्र ने प्रद्युम्न के ऊपर उस शक्ति का

प्रयोग किया, जिसके द्वारा तारक का संहार किया था। उस शक्ति को आते देख प्रद्युम्न अत्यन्त व्याकुल हो युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े हुए। इसी प्रकार बलभद्र आदि सम्पूर्ण यदुवंशी योद्धा भी क्षेत्र को छोड़कर भाग गये। यह देखकर गरुड़ ने अपने पंखों को फैलाकर उपद्रव मचाना आरम्भ किया, तब नन्दीश्वर ने अपने सींगों द्वारा गरुड़ के पंखों को छेद किया और उन्हें उलझा लिया। उस समय गरुड़ बड़ी कठिनता से नन्दी के पंजे से निकलकर भाग खड़े हुए। जब श्री कृष्णचन्द्र जी ने अपनी सेना की यह दुरदशा देखी तो उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई। उस समय उन्होंने अपने सारथी दारुक से यह कहा—"हे दारुक ! देखो, यह कैसा आश्चर्य है कि शिवजी ने बाणासुर को यह शाप दिया था कि कृष्णचन्द्र जी तेरी भुजाओं को काटेंगे और उसी शाप के कारण हम बाणासुर की भुजाएँ काटने के लिए आ खड़े हुए हैं और शिवजी अपने वचन को मिथ्या सिद्ध कर रहे हैं। शिवजी के ऐसे व्यवहार से हमारी प्रतिष्ठा कम हो रही है। अस्तु हम शिवजी से मिलकर कुछ बातें करना चाहते हैं। तुम हमारा रथ उनके समीप ले चलो, जिससे हम बाणासुर के शाप की बात स्मरण करा सकें और यह कह सकें कि आप बाणासुर की सहायता करना बन्द कर दें।"

हे नारद ! श्री कृष्ण जी की यह आज्ञा सुनकर दारुक रथ को शिवजी के पास ले पहुँचा। तब श्री कृष्ण जी ने शिवजी के चरणों में प्रणाम कर, हाथ जोड़ स्तुति करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! आप ही की आज्ञानुसार मैं बाणासुर की भुजाएँ काटने के लिए यहाँ आया था, क्योंकि आपने उसे यह शाप दिया था कि तेरी भुजाओं को कृष्णचन्द्र काट डालेंगे। हे नाथ ! आप बाणासुर की रक्षा करना छोड़ दीजिये जिससे युद्ध में मुझे विजय प्राप्त हो और आपका वचन सत्य सिद्ध हो।" श्री कृष्ण जी के मुख से यह वचन सुनकर शिवजी बोले—"हे कृष्ण ! तुम सबसे बड़े, सबसे श्रेष्ठ तथा हमारे भक्त हो। तुम साक्षात् विष्णु के अवतार हो। इस समय तुम जो कुछ कह रहे हो, वह भी पूर्ण सत्य है, परन्तु तुम यह भी स्मरण रखो कि हम भक्ति के आधीन रहते

हैं। जब हम यहाँ रक्षक बनकर उपस्थित हैं, तब हमारे देखते हुए बाणासुर की भुजाएँ नहीं कट सकतीं। इसलिए हम तुम्हें एक उपाय बताते हैं, उसके करने से तुम्हें अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। वह उपाय यह है कि तुम हमारे ऊपर जृम्भणास्त्र का प्रयोग करो। उस अस्त्र के लगने पर निद्रा के वशीभूत हो सो जायेंगे। उस समय तुम अपनी मनोभिलाषा पूर्ण करना और संसार में यश प्राप्त करना।'' शिवजी की यह आज्ञा सुनकर श्री कृष्ण जी अपने स्थान पर लौट आये। तदुपरान्त उन्होंने जृम्भणास्त्र का प्रयोग करके शिवजी को सुला दिया।''

ॐ ॐ ॐ

तिरपनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जब बाणासुर ने अपनी सेना के बल में कमी देखी तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और सिंहनाद करता हुआ श्री कृष्ण जी के सामने आकर घोर युद्ध करने लगा। श्री श्यामसुन्दर ने अपने धनुष पर अनेक बाण चढ़ाकर बाणासुर के ऊपर चलाये, परन्तु बाणासुर ने भी उनके सब बाणों को काटते हुए अपने बाणों द्वारा उन्हें चारों ओर से ढक दिया। जिस समय कुम्भाण्ड ने अपने प्रहारों द्वारा यदुवंशी सेना को विचलित कर दिया, उस समय बलराम जी ने अपने हल-मूसल द्वारा कुम्भाण्ड के मस्तक को हिलाने की चेष्टा की। यह देखकर कुम्भाण्ड ने बलराम जी के हृदय पर अपने त्रिशूल का प्रहार किया और उन्हें मूर्च्छित करके पृथ्वी पर डाल दिया।

हे नारद ! गरुड़ जी भी रणक्षेत्र में लड़ने लगे। इनके पंख़-प्रहारों से व्याकुल होकर दैत्यों की सेना युद्ध क्षेत्र से भागने लगी यह देखकर बाणासुर ने अपने त्रिशूल द्वारा गरुड़ को मूर्च्छित करके पृथ्वी पर गिरा दिया। कुछ देर पश्चात् जब गरुड़ की मूर्च्छा टूटी तो फ़िर वे युद्ध क्षेत्र से भाग गये। तदुपरान्त बाणासुर व श्री कृष्ण जी में इस प्रकार का घोर युद्ध होने लगा कि सम्पूर्ण संसार में हाहाकार मच गया। उस युद्ध में दोनों ओर से इतने बाण चले कि उनसे सम्पूर्ण आकाश भर गया।

हे नारद ! तदुपरान्त बाणासुर ने श्री कृष्ण जी के साथ घोर युद्ध आरम्भ किया। तब श्री कृष्णचन्द्र जी ने अपनी बाण-वर्षा द्वारा बाणासुर के रथ के घोड़ों को मार गिराया। फिर उन्होंने एक बाण ऐसा छोड़ा कि उसके लगते ही बाणासुर घायल हो पृथ्वी पर गिर गया और मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद जब उसे होश हुआ, तब वह त्रिशूल हाथ में लेकर श्री कृष्ण जी से फिर युद्ध करने लगा। उसने अपने त्रिशूल द्वारा श्री कृष्ण जी को बहुत दुःख पहुँचाया। तब श्री कृष्ण जी ने अपने बाणों से उसके त्रिशूल एवं गदा को काट दिया तथा उसके अन्य शस्त्रों को भी बेकार कर दिया। यह देखकर बाणासुर ने श्री कृष्ण जी के धनुष को काट डाला। तब श्री कृष्ण जी ने शिवजी के शाप का स्मरण करते हुए बाणासुर को पकड़ लिया और अपने चक्र द्वारा उसकी सम्पूर्ण भुजाओं को काट डाला, केवल चार भुजाएँ शेष रहने दीं। शिवजी की कृपा से बाणासुर को भुजाओं के कटने का दुःख नहीं हुआ और उसके सभी घाव तुरन्त भर गये।

हे नारद ! उस समय श्री कृष्ण जी का क्रोध इतना बढ़ा कि उन्होंने बाणासुर के मस्तक को काट डालने की इच्छा प्रकट की। यह जानते ही श्री शिवजी जो एक ओर सोये पड़े थे, तुरन्त जग पड़े और श्री कृष्ण जी की ओर क्रोध पूर्वक देखते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे कृष्ण ! हमने जो आज्ञा दी थी, उसे तुम पूरी कर चुके ; अब बाणासुर के मस्तक को मत काटो। तुम्हें ज्ञात होगा कि तारक तथा रावण पर जब तुमने यह चक्र चलाया था, उस समय यह निष्फल सिद्ध हुआ था, क्योंकि वे दोनों हमारे भक्त थे। इसलिए हमारे भक्त बाणासुर पर तुम इतना क्रोध मत दिखाओ और इसके साथ प्रेम-संबंध स्थापित करके उषा सहित अनिरुद्ध को अपने घर ले जाओ तथा हमारा स्मरण करते रहो। शिवजी की इस आज्ञा को श्री कृष्ण जी ने स्वीकार कर लिया। तब शिवजी ने बाणासुर तथा श्री कृष्ण जी में मित्रता स्थापित करा दी। तदुपरान्त बाणासुर ने अनिरुद्ध के साथ उषा का विवाह करा दिया और श्री कृष्ण-बलराम आदि सभी लोगों को दान-मान से सन्तुष्ट

किया। सब रीतियाँ सम्पन्न हो जाने पर श्री कृष्ण जी अनिरुद्ध और उषा को साथ ले, बाणासुर से विदा हो, अपने नगर में जा पहुँचे। बाणासुर भी शिवजी का गण बनकर दैत्य पद त्याग, देवता हुआ।''

चौवनवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! जब श्री कृष्ण जी अनिरुद्ध और उषा को साथ लेकर द्वारका को चले गये, तब बाणासुर ने क्या किया, वह आप मुझे बताने की कृपा करें? शिवजी ने बाणासुर को अपना गण किस प्रकार बनाया वह वृत्तान्त भी मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये।'' यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! श्री कृष्ण चन्द्र के चले जाने के पश्चात् बाणासुर अपनी मूर्खता पर अत्यन्त लज्जित हुआ तथा अपने अहंकार को धिक्कारने लगा। उस समय नन्दीश्वर ने बाणासुर के पास पहुँचकर उसे समझाते हुए कहा—''हे बाणासुर ! तुमने शिवजी के सम्मुख अपने अहंकार का प्रदर्शन किया था, उसी का यह फल तुम्हें प्राप्त हुआ है। अब तुम शिवजी की शरण में जाओ। शिवजी की इच्छा से जो कार्य हो, तुम उसी में प्रसन्न रहा करो और सम्पूर्ण अहंकार को त्याग करके उन्हीं की सेवा में लगे रहो। तुम ताण्डव नृत्य द्वारा शिवजी को रिझाओ। तब वे प्रसन्न होकर तुम्हारी चिन्ताओं को नष्ट कर देंगे।''

हे नारद ! यह सुनकर बाणासुर अत्यन्त प्रसन्न हो, शिवजी के समीप जाकर रोने लगा और अपने अपराध की क्षमा माँगते हुए स्तुति करने लगा। तदुपरान्त उसने शिवजी के सम्मुख तांडव नृत्य करना आरम्भ किया। उस नृत्य में उसने पदगति, प्रत्यालीढ़, प्रमुखगति, मदनबाणगति तथा सरकंपा आदि सब प्रकार की गतियों एवं भावों का प्रदर्शन किया। उस नृत्य को देखकर शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर बाणासुर से यह कहा—''हे बाणासुर ! तेरे नृत्य एवं गायन द्वारा हम अत्यन्त प्रसन्न हैं। तू हमें अत्यन्त प्रिय है। इसलिए हमने अपनी

लीला द्वारा तेरे अहंकार तो नष्ट कर दिया है। अब तू जो चाहे, वरदान माँग ले।" यह सुनकर बाणासुर ने उत्तर दिया। "हे प्रभो ! आप मेरे ऊपर यही कृपा कीजिये कि मेरा शरीर दैत्यभाव से छूट जाए और मैं आपके गणों में स्थान प्राप्त करूँ। इसके साथ ही आप मुझे यह वरदान भी दीजिये कि मेरी पुत्री उषा द्वारा जिस बालक की उत्पत्ति हो, वही शोणितपुर का राज्य प्राप्त करें। वह बालक देवताओं से कभी भी शत्रुता न करें तथा मेरे वंश से दैत्य भाव सदा के लिए नष्ट हो जाए। मैं यह भी चाहता हूँ कि मुझे आपकी नवधा भक्ति की प्राप्ति हो और मैं आपके भक्तों से विशेष स्नेह रखूँ।"

हे नारद ! इतना कहकर बाणासुर शिवजी के चरणों पर गिर पड़ा। स्नेह की अधिकता के कारण उसके नेत्रों से अश्रु-धार बह निकली और कंठ गद्‌गद् हो गया। यह दशा देखकर, शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो, बाणासुर को अपने हाथों से उठा कर हृदय से लगाते हुए बोले— "हे बाणासुर ! तुम हमारे परम भक्त हो। तुमने हमसे जो वरदान मांगते हैं, हम उन सबको तुम्हें देते हैं। तुम हमारे गणों के स्वामी होकर महाकाल नाम से प्रसिद्ध होगे। तुम युद्ध में कभी भी किसी से परास्त न होगे और हमारी कृपा से सभी देवता तुम्हारे सेवक बने रहेंगे।"

इतना कह शिवजी ने बाणासुर को अत्यन्त स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा और उसके मस्तक पर अपना हाथ फेरने लगे। उस समय बाणासुर भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा महाकाल होकर शिवजी की सेवा में रहने लगा।"

ॐ ॐ ॐ

पचपनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब हम तुम्हें नागासुर अर्थात् गज के संहार का वृत्तान्त सुनाते हैं। जिस प्रकार शिवजी ने अपने त्रिशूल द्वारा उसका वध करके, उसे अपना गण बनाया था, वह कथा सुनो। जब भगवती जगदम्बा ने विष्णु जी तथा मुझ पर कृपा करते हुए

भगवान् सदाशिव की आज्ञानुसार देवताओं एवं ऋषि-मुनियों का उपकार करने के हेतु महिषासुर का संहार किया, तब उसका पुत्र गजासुर अत्यन्त दुःखी हो, अपने पिता के वध का स्मरण कर, देवताओं से बदला लेने की इच्छा करने लगा। इसी उद्देश्य से उसने वन में जाकर अत्यन्त परिश्रम पूर्वक हमारा तप करना आरम्भ किया। उसकी अभिलाषा यह थी कि जो स्त्री-पुरुष कामदेव से नहीं जीत पाये हैं, उनमें से कोई भी मेरा संहार न कर सके। अस्तु, वह हिमाचल के शिखर पर अँगूठे के बल खड़ा हो, आकाश की ओर आँखें उठाये, अपनी दोनों भुजाओं को ऊँचा किये, बहुत वर्षों तक तपस्या करता रहा।

हे नारद ! उसकी तपस्या के तेज के सम्मुख सूर्य का तेज भी मलिन पड़ गया। जब उसका तप पूर्णता को प्राप्त करने के निकट पहुँचा, उस समय उसके शरीर से अग्नि की ऐसी ज्वाला उठी कि वह अपने तेज द्वारा सम्पूर्ण संसार को भस्म करने लगी। उस समय सब देवता, ऋषि, मुनि आदि अत्यन्त दुःखी होकर मेरे पास आये और गजासुर के तप का वर्णन करते हुए कहने लगे—"हे प्रभो ! आप कृपा करके गजासुर के पास जाइये और उसे वरदान देकर सन्तुष्ट कीजिये, अन्यथा हमारा दुःख बढ़ता ही चला जाएगा। देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर मैं, भृगु तथा दक्ष आदि अपने पुत्रों को साथ ले गजासुर के पास पहुँचे। वहाँ उसे उग्र तप करते हुए देखकर मैं अत्यन्त आश्चर्य में भरकर बोला—"हे गजासुर ! हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं। तुम जो वरदान चाहो, माँग लो।"

हे नारद ! मेरे मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर गजासुर ने अपने नेत्र खोलकर मुझे प्रणाम किया। तदुपरान्त बहुत प्रकार से स्तुति करते हुए इस प्रकार बोला—"हे प्रभो ! मैं यह चाहता हूँ कि जो स्त्री-पुरुष कामदेव के आधीन रहते हैं, उनमें से कोई भी, मुझे किसी दशा में नहीं मार सके तथा मेरे ऊपर किसी भी शस्त्र का प्रहार अपना प्रभाव न डाल सके।" गजासुर की यह इच्छा सुनकर मैं 'एवमस्तु' कहकर

अपने स्थान को लौट आया। तब गजासुर भी अपने घर लौट गया। वहाँ जाकर उसने बहुत-सी सेनाएँ इकट्ठी कीं और तीनों भुवनों को अपने पराक्रम से जीत लिया। फिर वह अच्छी तरह से प्रजा का पालन करता हुआ निष्कंटक राज्य करने लगा। इस प्रकार कुछ समय तक तो उसने धर्मपूर्वक राज्य किया, परन्तु जब उसे राज्य-पद का अहंकार हुआ और यह विश्वास हो गया कि उसे कोई भी नहीं जीत सकता, तब वह अधर्म करने पर उतर आया। उस समय उसने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के कष्ट देने आरम्भ कर दिये तथा तपस्वियों एवं धर्मात्माओं को भी सताने लगा। एक दिन वह अहंकार में भर, शिवजी की राजधानी आनन्दवन अर्थात् काशी जा पहुँचा।

हे नारद ! उसके उत्पातों से भयभीत होकर आनन्दन वन अर्थात् काशी के निवासी शिवजी के समीप जा, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—"हे प्रभो ! तीनों लोकों को जीतने के पश्चात् गजासुर अब काशीपुरी में भी आ पहुँचा है। उसने अपने अत्याचारों से सब लोगों को दुःख पहुँचाया है। जिस समय वह हाथी के समान चाल से चलता है, उस समय पर्वत हिल उठते हैं तथा वृक्ष टूटकर गिर पड़ते हैं। बादल उसकी आज्ञा पाकर भी आकाश में उड़ सकते हैं तथा उसके भय से समुद्र भी सूख जाते हैं। इस समय वाराणसी क्षेत्र में जाकर उसने अपने भक्तों को बहुत दुःख पहुँचाया है। आपके अतिरिक्त उसे जीतने वाला अन्य कोई नहीं है। अतः आप उसका संहार करके सब लोगों को प्रसन्न कीजिए।"

हे नारद ! काशीवासियों की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी अपने हाथ में त्रिशूल लेकर काशी में जा पहुँचे। वहाँ गजासुर के सम्मुख पहुँचकर उन्होंने ऐसा भयानक नाद किया कि उसे सुनकर दैत्यों की सेना में हाहाकार मच गया। जिस समय गजासुर ने शिवजी को त्रिशूल लेकर अपनी ओर आते हुए देखा, उस समय वह भी गर्जन करता हुआ, उनके सम्मुख युद्ध करने के लिए चला आया। देखते-देखते शिवजी तथा गजासुर परस्पर घोर युद्ध करने लगे। उस समय शिवजी

ने गजासुर के सभी शस्त्रों को काटकर, उसकी सेना को विचलित कर दिया। यह दशा देखकर गजासुर अपने हाथ में नंगी तलवार लेकर, शिवजी को मारने के लिए दौड़ा और उन्हें ललकारते हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे शिव ! आज मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा।" इतना कहकर उसने सभी गणों को अपने शस्त्रों की चोट से व्याकुल कर दिया। यह देखकर शिवजी ने अपने मन में निश्चित किया कि अब बिना विलम्ब किये, मुझे इसका वध कर डालना चाहिए। अस्तु, शिवजी ने अपना त्रिशूल गजासुर के ऊपर छोड़ दिया। उस त्रिशूल का र्स्पश पाते ही गजासुर पवित्र हो गया तथा उसका दैत्यभाव नष्ट हो गया। उस समय वह अत्यन्त प्रसन्न हो, शिवजी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगा—"धन्य भाग्य हैं, जो मुझे आपके द्वारा मृत्यु प्राप्त हुई। अब मेरी यह प्रार्थना है कि आप मुझे परम पद प्रदान करने की कृपा करें। संसार में जो जन्म लेता है, उसे एक न एक दिन अवश्य मरना पड़ता है, परन्तु मुझे जो मृत्यु मिली है, उसे वेद भी अत्यन्त दुर्लभ कहते हैं।"

हे नारद ! गजासुर के ऐसे भक्तिपूर्ण वचन सुनकर, शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—"हे गजासुर ! तेरे अत्यन्त भक्तिपूर्ण वचन सुनकर, हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अब तेरी जो इच्छा हो, वह वर माँग ले। शिवजी के श्रीमुख से निकले हुए इन वचनों को सुनकर गजासुर बोला—"हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर इतने प्रसन्न हैं तो मुझे यह सौभाग्य प्रदान कीजिये कि आप मेरे शरीर के चमड़े को हर समय धारण किये रहें और आपके त्रिशूल से मेरे शरीर का प्रतिदिन स्पर्श हुआ करें। इसके साथ ही आप कृत्तिवासा के नाम से प्रसिद्ध हों। जो मनुष्य आपके इस नाम को मुख पर लावें, वे अपना सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त करें।"

हे नारद ! गजासुर की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। फिर इस प्रकार बोले—"हे गजासुर ! तेरा यह शरीर हमारा लिंग होकर कृत्तिवासेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होगा तथा जो इस लिंग

का दर्शन करेंगे, उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाएंगे। काशी में हमारे जितने भी लिंग हैं, उनमें इसे सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त होगा।'' यह कहकर शिवजी ने गजासुर को परमपद प्रदान किया। हम सब देवता भी उस स्थान पर जा पहुँचे और कृत्तिवासेश्वर का पूजन करके आनन्द मग्न हुए। हे नारद ! शिवजी का यह चरित्र आवागमन से छुड़ाने वाला है। जो व्यक्ति इस चरित्र को सुनता-सुनाता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।''

ॐ ॐ ॐ

छप्पनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें दुन्दुभि के संहार की कथा सुनाता हूँ। जिस प्रकार विष्णु जी ने नृसिंह का अवतार धारण कर देवताओं को आनन्द प्रदान करने के लिए दिति के दोनों पुत्रों को मारा था, वह अद्‌भुत वृत्तान्त तुम जानते ही हो। अब आगे की कथा सुनो। जब विष्णु जी ने नृसिंह तथा वाराह रूप धारण कर दिति के दोनों पुत्रों का संहार कर दिया, उस समय दिति ने अत्यन्त विलाप किया। तब दिति के भाई दुन्दुभि ने उसे समझाते हुए यह कहा कि तुम किसी प्रकार का शोक मत करो। परन्तु दिति का शोक दूर न हुआ। यह देखकर दुन्दुभि ने अपने मन में विचार किया कि देवताओं ने विष्णु के हाथ से मेरे बहनोई को अनायास मरवा डाला है, इसलिए मुझे उन्हें कष्ट पहुँचाना चाहिए। सबसे पहले मुझे यह पता लगाना चाहिए कि वे किस कारण अमर हैं और किसके बल का भरोसा रखते हैं तथा किस उपाय द्वारा उन्हें दुःख पहुँचाया जा सकता है। अस्तु, बहुत सोच-विचार करने के उपरान्त वह इस निश्चय पर पहुँचा कि ब्राह्मण, वेद द्वारा अपनी रक्षा करते हैं और देवता, ब्राह्मणों द्वारा पलते हैं। यदि ब्राह्मण नष्ट हो जाएँ तो वेद भी नष्ट हो जायेंगे और जब वेद नष्ट हो जायेंगे, तब देवता भी दुर्बल हो जायेंगे। इस प्रकार जब देवता दुर्बल हो जायेंगे, तब मैं उन्हें जीतकर उन पर राज्य करूँगा और आनन्द

को प्राप्त होऊँगा। अस्तु जिस प्रकार ब्राह्मण संसार में सबसे बड़े हैं और वेद के मार्ग पर चलते हैं, उसी प्रकार काशी ब्राह्मणों का सबसे बड़ा घर है। इसलिए मुझे सर्वप्रथम काशी में पहुँच कर ब्राह्मणों को मारना चाहिए, तदुपरान्त अन्य स्थानों में जाकर ब्राह्मणों को नष्ट करना चाहिए।

हे नारद ! यह विचार कर दुन्दुभि काशी में जा पहुँचा। वहाँ उसने सहस्त्रों ब्राह्मणों का वध कर डाला। जब ब्राह्मण उसके भय से भयभीत हो, अपने प्राणों की रक्षा करने के हेतु वन में भागने लगे, तब वह वन में जाकर उन सबको मारने लगा। वह अनेक प्रकार की माया करना जानता था, इसलिए कभी वन में जाकर पशु बन जाता, कभी जल में पहुँचकर मगर बन जाता और कभी पृथ्वी पर रहकर राक्षस रूप द्वारा ब्राह्मणों को खा लेता था। एक दिन की बात है कि रात्रि के समय एक शिवभक्त शिवजी के मन्दिर में बैठकर पूजा कर रहा था। उस समय दुन्दुभि ने उसे देखकर यह विचार किया कि मैं सिंह का स्वरूप धारण कर, इसे मार डालूँ ; परन्तु जब उसने यह देखा कि सिंह का रूप धारण करके मैं उसे नहीं खा सकता हूँ तब वह पर्वत के समान विशाल स्वरूप धारण कर, उसे स्पर्श करने में भी असमर्थ रहा। उसका यह अनाचार देखकर, शिवजी भक्त की रक्षा हेतु उसी क्षण व्याघ्र के रूप में प्रकट हो गये।

हे नारद ! जब उसने वहाँ शिवजी को उपस्थित देखा तो यह इच्छा प्रकट की कि मैं शिवजी को भी निगल जाऊँ। यह विचारकर वह जैसे ही शिवजी की ओर बढ़ा, वैसे ही शिवजी ने अत्यन्त क्रोध में भरकर उसे पकड़ लिया और अपनी मुष्टिका द्वारा उसे मार डाला। इस प्रकार शिव-भक्त के प्राण बच गये। दुन्दुभि के मारे जाने पर जो घोर-शब्द हुआ था, उसे सुनकर शिव भक्त की आँखें खुल गयीं। तब उसने शिवजी की अत्यन्त प्रशंसा की। उस समय सभी काशी वासी उस स्थान पर आकर एकत्र हो गये तथा दुन्दुभि को मरा हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो, शिवजी की स्तुति करने लगे। उन्होंने शिवजी को

प्रणाम करने के उपरान्त कहा—''हे प्रभो ! आप अब इसी स्वरूप में यहीं स्थित रहें तथा 'व्याघ्र' नाम से प्रसिद्ध होकर अपनी काशी नगरी की रक्षा करें। हम सब लोग आपके दर्शनों से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं।''

हे नारद ! उनकी प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा तदुपरान्त बोले—''हे भक्तो ! जो व्यक्ति निश्चयपूर्वक एवं विश्वासपूर्वक मेरे स्वरूप का ध्यान धरेगा, मैं उसके सम्पूर्ण दुःखों को दूर किया करूँगा। जो व्यक्ति मेरे इस चरित्र का स्मरण करके युद्ध करने के लिए जायेगा, उसे अवश्य ही विजय प्राप्त होगी।'' शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर सब लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसी समय मैं तथा विष्णु जी भी सब देवताओं सहित वहाँ जा पहुँचे और शिवजी की स्तुति करते हुए कहने लगे—''हे प्रभो ! दुन्दुभि को मारकर आपने तीनों लोकों तथा हमारी रक्षा की है। हम सब आपके सेवक हैं और आप हमारे स्वामी हैं।'' यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्न हो, हम लोगों को अभयदान दिया। तदुपरान्त वे अपने उसी लिंग में, जो 'व्याघ्रेश्वर' नाम से प्रसिद्ध है, प्रवेश करके अन्तर्धान हो गये। तब मैं, विष्णु जी तथा सभी देवता अपने-अपने लोक को लौट आये और काशीवासी भी अपने-अपने घर चले गये।''

ॐ ॐ ॐ

सत्तावनवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! एक उत्पल एवं विदल नामक दो महा बलवान् दैत्य उत्पन्न हुए। वे दोनों वन में पहुँचकर बहुत वर्षों तक उग्र तपस्या करते रहे। उन्होंने मेरा ध्यान धरते हुए, एक पाँव से खड़े होकर बहुत समय व्यतीत किया। उस समय मैं प्रसन्न होकर, वरदान देने के लिए बोला—''हे भक्तो ! मैं तुम्हारी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अब तुम मुझसे इच्छित वरदान माँग लो।'' यह सुनकर उन दोनों भाइयों ने कहा—''हे ब्रह्मन् ! आप हमें यह वरदान दीजिये कि हम किसी भी पुरुष के हाथ से न मारे जायँ।'' यह

सुनकर मैंने शिवजी का ध्यान धरते हुए "एवमस्तु" कहा तथा अपने स्थान को लौट आया। मुझसे वरदान प्राप्त कर लेने के कारण वे महाबली अजेय हो गये। अस्तु, उन्होंने अपने बल द्वारा तीनों लोकों को जीत लिया और देवताओं को बहुत दुःख दिया। उन्होंने देवताओं के अधिकार, धन एवं सब प्रकार की वस्तुओं को छीन लिया और निर्भय होकर तीनों लोकों पर अपना शासन करने लगे। जब उनके अत्याचार बहुत अधिक बढ़ गये, तब सब देवता और मुनि अत्यन्त दुःखी होकर मेरी शरण में आये और मुझसे यह कहने लगे कि "हे ब्रह्मन्! आप इन दुष्टों के हाथों से हमारी रक्षा करें अन्यथा हम लोग कहीं के भी नहीं रहेंगे।" यह सुनकर मैंने उन्हें उत्तर दिया—"हे देवताओ! वे दोनों दैत्य मेरे वरदान के कारण अजेय हैं। केवल शिवजी के द्वारा ही मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। अस्तु, तुम लोग शिवजी का ध्यान धरो।"

हे नारद! यह सुनकर सब देवता आदि अपने स्थान को चले गये। तदुपरान्त एक दिन तुम उन दैत्यों के पास जा पहुँचे तुमने उनकी बहुत प्रशंसा की और यह कहा कि गिरिजा परम सुन्दरी हैं, जब तक वे तुम्हें प्राप्त नहीं हो जातीं, तब तक तुम्हारा राज्य, कोष आदि सब कुछ निष्फल है। इतना कहकर तुम तो वहाँ से चले गये और उन दैत्यों ने यह विचार किया कि किसी-न-किसी प्रकार हम गिरिजी को अवश्य छीन लावें। बहुत समय तक वे यही विचार करते रहे कि हम किस उपाय का आश्रय लें, जिससे गिरिजा हमारे हाथ आ जाएँ। उनकी इस मनोभिलाषा को शिवजी भी जान गये। तब उन्होंने एक विचित्र लीला ऐसी रच दी, जिसके अनुसार उन दोनों दैत्यों की मृत्यु हो गयी। वह लीला यह थी कि एक दिन शिवजी अपने गणों के साथ कोई खेल खेलने लगे और गिरजा भी अपनी सखियों के साथ गेंद का खेल खेलने लगीं। उसी समय भाग्यवश वे दोनों दैत्य भी गिरिजा को प्राप्त करने की इच्छा से आकाश मार्ग द्वारा उस स्थान पर जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने अपना स्वरूप शिवगणों जैसा बनाया और गिरिजा के समीप पहुँच कर, यह इच्छा प्रकट की कि उन्हें वहाँ से भगा ले जाएं।

हे नारद ! उनकी इच्छा को जानकर, शिवजी ने संकेत द्वारा गिरिजा से यह कहा कि ये दोनों हमारे गण नहीं हैं। अपितु दैत्य हैं। ये किसी पुरुष द्वारा नहीं मारे जायेंगे, अतः तुम्हीं इनका संहार कर डालो। शिवजी के उस संकेत को समझकर गिरिजा ने उन दोनों को मारने का निश्चय किया और अपनी गेंद को उन दोनों के ऊपर फेंक दिया। गेंद के लगते ही वे दोनों दैत्य चक्कर खाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हो गये। उस समय विष्णु जी, मैं तथा अन्य सब देवता उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ ज्येष्ठेश्वर उपलिंग है। वहाँ हमने शिवजी तथा गिरिजा जी की स्तुति करते हुए कहा—"हे संसार के माता-पिता ! आप अपने भक्तों के निमित्त अनेक प्रकार की लीलाएँ किया करते हैं। इस समय भी यह 'गयन्दकेश' नामक आपका लिंग प्रकट हुआ है। आप सदैव इसी प्रकार हम लोगों पर कृपा बनाये रहें तथा दुष्टों का संहार करते रहें।" इस प्रकार प्रार्थना कर सब देवता अपने स्थानों को लौट गये और शिवजी का वह लिंग उसी स्थान पर स्थित रहा। हे नारद ! उस शिवलिंग की सेवा करने से दोनों लोकों में अपार आनन्द मिलता है। वह लिंग 'पुण्डलेश' के नाम से भी प्रसिद्ध है। शिवजी के इस चरित्र को जो कोई सुनता अथवा सुनाता है, उसे दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। जो लोग शिवजी के चरणों का ध्यान धरते हुए, उनकी लीलाओं को भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उनकी तीनों व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें अपार धन की प्राप्ति होती है।"

इति श्रीशिवपुराणे श्रीशिववलासे ब्रह्मा-नारद-सम्वादे दीक्षितकृत भाषायां पंचमो खण्ड समाप्तः ॥ ५ ॥

ॐ ॐ ॐ

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

छठा खण्ड

पहला अध्याय

इतनी कथा सुना कर श्री सूत जी ने कहा—''हे शौनकादि ऋषियो ! जब ब्रह्मा जी यह वृत्तान्त कह चुके तो नारद जी ने सन्देह से युक्त हो कर कहा—''हे पिता ! आपने अन्धकासुर की कथा मुझे सुनायी, परन्तु मुझे उसमें कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ है। अस्तु आप उसे दूर करने की कृपा करें। हे ब्रह्मन् ! आप मुझे यह बतावें की शिवजी कैलाश छोड़ कर मन्दराचल को कब गये?'' नारद के मुख से यह शब्द सुन कर ब्रह्मा जी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—''हे नारद ! प्राचीन काल में एक दिन श्री शिवजी तथा श्री गिरिजा जी अपने गणों के साथ काशीपुर गये। उस समय मैं, विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवता ऋषि-मुनि तथा सिद्धजन आदि भी अपने परिवार एवं गणों सहित शिवजी की सेवा करने के लिए वहाँ जा पहुँचे। वहाँ सब के पहुँच जाने पर, शिवजी की जो सभा विराजमान हुई, उसकी सुन्दरता का किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता।

हे नारद ! सर्वप्रथम हम लोगों ने मणिकर्णिका में स्नान किया, तदुपरान्त भगवान् विश्वनाथ का पूजन कर उनकी अनेक प्रकार से स्तुति-प्रशंसा की। तत्पश्चात् शिवजी के गणों ने भी बहुत प्रकार से पूजा-स्तुति की। कैलाशपति शिवजी ने भी जब हम लोगों के साथ भगवान् विश्वनाथ की पूजा की, उस समय काशीपति विश्वनाथ ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर अपनी दोनों भुजाएँ फैला कर गिरिजापति से भेंट करते हुए कहा—''हे कैलाशपति ! चन्द्रभाल, हम और आप

एक ही स्वरूप हैं। आप में और मुझ में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। मैं यहाँ पर मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित हूँ और आप संसार का उपकार करने के हेतु सगुण रूप धारण कर, गिरिजा के साथ कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं। आप ने यह बड़ी कृपा की, जो आप सब देवताओं के साथ यहाँ पधारे।''

हे नारद ! काशीवासी भगवान् विश्वनाथ के मुख से यह वचन सुन कर, कैलाशपति शिवजी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—''हे काशीपति ! वास्तव में मुझ में और आप में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं है। आप मुझे कैलाश पर्वत पर जाने की आज्ञा दीजिये, क्योंकि मैं यहाँ केवल आप के दर्शनों के निमित्त ही आया था।'' यह सुन कर श्री विश्वनाथ जी ने हँस कर कहा—''हे कैलाशपति ! मेरी इच्छा है कि अब आप देवताओं तथा मुनीश्वरों के साथ कुछ दिनों तक इसी काशी नगरी को अपनी राजधानी बना कर, गिरिजा एवं गणों सहित यहीं निवास करें तथा भरत खण्ड पर अनुग्रह करके संसार के मनुष्यों को कृतार्थ करें। जिस प्रकार आप कैलाश पर्वत को प्रिय समझते हैं, उसी प्रकार इस स्थान को भी प्रिय जान कर, यहीं स्थित हों। इस काशीपुरी में जो मनुष्य रहें आप उन्हें मोक्ष प्रदान किया करें। हे कैलाशपति ! तीनों लोक आपकी आज्ञा में रहते हैं। आप सबसे श्रेष्ठ और सब के स्वामी हैं। ब्रह्मा तथा विष्णु भी आपके अधीन हैं। आप ही उनकी रक्षा करते हैं और आपकी सेवा करके ही उन्होंने अत्यन्त उच्च पद को प्राप्त किया है। ब्रह्मा सृष्टि को उत्पन्न करते हैं और विष्णु उसका पालन करते हैं। इन दोनों की आज्ञा पा कर देवराज इन्द्र राज्य किया करते हैं। अस्तु, आप संसार का उपकार करने के निमित्त इन सब के ऊपर अपनी कृपा बनाये रहें।''

हे नारद ! काशीपति भगवान् विश्वनाथ जी के ऐसे वचन सुन कर कैलाशपति शिवजी ने कहा—''हे देवताओं के स्वामी ! यद्यपि मुझे कैलाश पर्वत अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि वहाँ मेरे भक्त निवास करते हैं, फिर भी मैं काशी को उससे भी अधिक प्रिय जान कर आपकी

आज्ञानुसार यहीं निवास करूँगा।'' कैलाशपति शिवजी के मुख से यह वचन सुन कर भगवान् विश्वनाथ अन्तर्धान हो गये तथा कैलाशपति शिवजी भगवान् विश्वनाथ के उसी स्थान पर अपने पूर्णांश द्वारा गुप्त हो कर निवास करने लगे। इस प्रकार काशी परम सिद्धपीठ के रूप में प्रसिद्ध हुई। भगवान् कैलाशपति के साथ गिरिजा जी भी वहीं निवास करने लगीं।

हे नारद ! उस काशीपुरी की महिमा ऐसी है कि जो मनुष्य वहाँ मरता है उसे श्री शिवजी तारक मन्त्र देकर मुक्ति प्रदान करने की कृपा करते हैं। वह काशी तीनों लोकों में सबसे श्रेष्ठ, सबसे पवित्र तथा प्रज्ञान क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। अब मैं तुम्हें वह कथा सुनाता हूँ, जिस प्रकार भगवान् विश्वनाथ की आज्ञा पा कर गिरिजापति शिवजी ने काशी में राज्य किया और मनुष्यों के कष्टों को दूर किया। जब शिवजी ने काशी को अपनी राजधानी बनायी, तो भगवती गिरिजा भी वहीं रह कर अन्नपूर्णेश्वरी देवी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। उन्हीं की कृपा से काशी में कोई जीव भूखा नहीं रहता है। वे अपनी प्रजा के सम्पूर्ण मनोरथों को पूरा करती हैं।

हे नारद ! यह कथा मैं तुम्हें पहले सुना चुका हूँ कि शिवजी ने अपने अंश से एक मूर्ति को उत्पन्न किया था, जिसका नाम भैरव था। उन भैरव ने मेरे पाँचवें मस्तक को त्रिशूल द्वारा काट डाला था, क्योंकि मैंने उस मुख से शिवजी की निन्दा की थी। मेरा मस्तक काट डालने के कारण भैरव को ब्रह्म हत्या का पाप लगा। अस्तु, उसे दूर करने के हेतु वे संसार में भ्रमण कर रहे थे। जब वे सब स्थानों में भ्रमण करते हुए काशीपुरी में पहुँचे तो उनकी हत्या का पाप तुरन्त नष्ट हो गया। जिस स्थान पर मेरा मस्तक गिरा था उस स्थान पर शिवजी ने बड़ा नृत्य किया था, अस्तु वह स्थान एक पवित्र तीर्थ के रूप में कपालमोचन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह तीर्थ सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है। हे नारद ! तुम्हें यह जान लेना चाहिए कि भैरव और कोई नहीं, अपितु शिवजी के ही एक स्वरूप हैं। अस्तु, काशी में निवास करने पर शिवजी ने भैरव को कोटिपाल का पद दिया और यह कहा कि ''हे

भैरव ! तुम्हारा सम्पूर्ण पाप अब नष्ट हो चुका है। अब तुम यहीं हमारे पास रह कर काशी जी की रक्षा किया करो तथा पापियों को दंड देते हुए, सब प्रजा को कृतार्थ करते रहो।''

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! एक दिन भगवान् गिरिजापति अपने गणों को साथ ले कर गिरिजा जी सहित नन्दी पर सवार हो, आनन्द वन देखने के लिए चले। आनन्द वन में पहुँच कर उन्होंने गिरिजा से उस क्षेत्र की अत्यन्त प्रशंसा की। वहाँ मन्दार, कनेर, केतकी, अनार, चमेली, कुन्द, मौलश्री, मालती, जुही, कमल आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प खिले हुए थे। श्रेष्ठ ताल-तमाल आदि के वृक्षों पर पक्षी बैठे हुए मधुर-स्वरों में गान करते थे तथा तीनों प्रकार की वायु हर समय चलती रहती थी। वहाँ ऋषि, मुनि, सिद्धजन आदि नदी किनारे बैठ कर अपने यम, नियम आदि का स्वछन्दतापूर्वक पालन किया करते थे। इस प्रकार वहाँ सर्वत्र आनन्द ही आनन्द था।

हे नारद ! उस उत्तम वन को देख कर भगवान् गिरिजापति ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर माली को बुलाया और उसे पारितोषिक आदि दे कर कृतार्थ कर दिया। तदुपरान्त वे वन के भीतर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने गिरिजा से कहा—''हे प्रिये ! जिस प्रकार तुम हमें अत्यन्त प्रिय हो, उसी प्रकार यह काशी तथा आनन्द वन भी हमें अत्यन्त पसन्द है। जो व्यक्ति यहाँ आ कर मृत्यु प्राप्त करता है, उसे हम मोक्ष प्रदान करते हैं। यहाँ के रहने वाले सदैव प्रसन्न रहते हैं और हम उनके ऊपर अपनी विशेष कृपा बनाये रहते हैं।''

हे नारद ! यह कह कर शिवजी गिरिजा के साथ कुछ आगे चले तो उन्होंने यह देखा कि हरिकेश जी एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठे हुए अत्यन्त प्रेमपूर्वक तपस्या कर रहे हैं और अपने मुख से विश्वनाथ का उच्चारण कर रहे हैं। उनके शरीर में केवल हड्डियाँ और नसें ही

दिखाई दे रही थीं। सिंह, सर्प आदि भयानक जीव अपने स्वाभाविक हिंसक भाव को त्याग कर उनकी रक्षा करने के लिए, उन्हें चारों ओर से घेरे खड़े थे। हरिकेश की यह दशा देख कर गिरिजा ने अत्यन्त दयालु हो कर शिवजी से कहा—"हे प्रभो ! यह आपका परम भक्त है और आपके भरोसे पर ही जीवित है, अतः यह जो भी वर माँगे, उसे देने की कृपा करें। आप इसके मस्तक पर अपना कर-कमल रखिये, जिससे यह चैतन्य हो!"

हे नारद ! गिरिजा के यह वचन सुन कर शिवजी ने बैल से उतर कर हरिकेश के शरीर को स्पर्श किया और उसे अपनी कृपा द्वारा कृतार्थ कर दिया। उस स्पर्श को पाते ही हरिकेश ने अपने नेत्र खोल दिये। उस समय उन्होंने यह देखा कि करोड़ों सूर्य की प्रभा के समान प्रकाशवान्, अपने शरीर पर भस्म रमाये हुए, पंचमुख, त्रिनेत्र, दस भुजाधारी भगवान् सदाशिव, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान है और वाम भाग में गिरिजा जी सुशोभित हैं, उनके नेत्रों के सम्मुख खड़े हुए हैं। भगवान् सदाशिव के उस स्वरूप को देख कर यक्षपति हरिकेश अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब वे शिवजी को प्रणाम करके उनकी स्तुति करते हुए बोले—"हे प्रभो ! आपने जो मेरे शरीर का स्पर्श किया, उससे मैं पूर्ण स्वस्थ हो चुका हूँ और मेरे सम्पूर्ण कष्ट पल भर में ही नष्ट हो गये हैं। हे नाथ ! मैं आपकी शरण में आया हूँ सो आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये।"

हे नारद ! हरिकेश की इस प्रार्थना को सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो, उसके बिना माँगे ही वरदान देने लगे। वे बोले—"हे हरिकेश ! तुम हमारे परम भक्त हो, अतः तुम्हें सब प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा। यह काशीपुरी हमें अत्यन्त प्रिय है, अतः हम यह चाहते हैं कि तुम इसकी रक्षा का भार स्वीकार करो। तुम शत्रुओं को दंड देना और हमारे भक्तों को पालना। दंडधर और दंडकर होने के कारण तुम दंडपाणि के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगे। हम तुम्हें संभ्रम तथा उद्भ्रम नामक दो गण, तुम्हारी आज्ञा का पालन करने के निमित्त देते

हैं। वे तुम्हारी आज्ञा पा कर पापियों को भली-भाँति दंड दिया करेंगे। हम तुम्हें यह भी आज्ञा देते हैं कि काशी में हमारे भक्तों के अतिरिक्त और किसी को मत रहने दो। तुम इस नगरी में रहने वालों को अन्न देने वाले, प्राण देने वाले, ज्ञान देने वाले तथा हमारी आज्ञा से मुक्ति प्रदान करने वाले भी होगे। जो मनुष्य तुम्हारी सेवा करके हमारी पूजा करेगा, वह मुक्ति को प्राप्त होगा। जिस मनुष्य को मोक्ष की अभिलाषा हो, उसे उचित है कि वह सर्व प्रथम तुम्हारी पूजा करे, तदुपरान्त इसी स्थान पर आ कर हमारी सेवा करे। तुम हमारे गणों में सर्वश्रेष्ठ हो।'' इतना कह कर शिवजी पार्वती सहित, अपने स्थान को चले गये।

हे नारद ! उसी दिन से दंडपाणि अथवा दंडविनायक काशी निवासियों को आनन्द प्रदान करते हुए वहाँ स्थित रहते हैं। वे दुष्टों के लिए अत्यन्त भयानक हैं तथा शिव-भक्तों के सम्पूर्ण दुःख दूर करने वाले हैं। संभ्रम तथा उद्भ्रम नामक उनके दोनों गण शिवजी के शत्रुओं को दंड तथा शिक्षा देते हैं। वे दंडपाणि शिवजी की इच्छानुसार ही सब कार्य करते हैं। वीरभद्र ने दंडपाणि का आदर नहीं किया, इसलिए उन्हें अप्रसन्न हो कर दूसरे स्थान पर रहना पड़ा अर्थात् दंडपाणि की सेवा न करने के कारण वीरभद्र को काशीवास प्राप्त न हो सका। अगस्त्य मुनि भी इसी कारण काशी में न रह सके। उनको भी दंडपाणि की सेवा न करने के कारण काशी त्याग देनी पड़ी।

हे नारद ! धनंजय नामक एक वैश्य बहुत धनवान् था। वह शिवजी की सेवा में कुछ भी ध्यान नहीं देता था, इसी प्रकार उसकी माता भी शिवजी के प्रति प्रेम नहीं रखती थी। अस्तु, जब धनंजय की माता मर गयी तो धनंजय उसकी हड्डियों को काशी में ले आया। यद्यपि उसे शिवजी से प्रेम नहीं था, फिर भी वह अपनी माता की मुक्ति की कामना करता था। यह देख कर दंडपाणि ने शिवजी की इच्छा से यह चरित्र किया कि धनंजय की माता की हड्डियों को उनके एक गण ने देख लिया, जिसके कारण वे तुरन्त ही अदृश्य हो गयीं। इस प्रकार जब वे हड्डियाँ गुप्त हो गयीं, तब धनंजय निरुपाय हो, अपने घर लौट

आया। अस्तु, काशी में पहुँच कर जो मनुष्य दंडपाणि की सेवा नहीं करता, उसे बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं और वह अधिक समय तक नहीं रहने पाता। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि यदि वह काशी में रहने की इच्छा रखे तो दंडपाणि की पूजा अवश्य करे और शिवजी की भक्ति द्वारा मुक्ति पद प्राप्त करे।''

तीसरा अध्याय

नारद जी ने कहा—''हे पिता ! हरिकेश का आदि से अन्त तक सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मुझे सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! किसी समय में रत्नभद्र मुनि नामक यक्षपति गन्धमादन पर्वत पर रहा करता था। उसका परिवार बहुत बड़ा था तथा सभी सुख-सामग्रियाँ उसके घर में उपस्थित थीं। वह सब यक्षों का राजा था। वह परम सुन्दर तथा महा तेजस्वी था। वह शिवजी की भक्ति में सदैव संलग्न रहता था। उसकी पत्नी परम पवित्र, परम पतिव्रता थी। रत्नभद्र भी उससे बहुत स्नेह करता था। दोनों पति-पत्नी संसार की भलाई के निमित्त शुभ-कार्य करते थे और उससे शिवजी को प्रसन्न रखते थे। वे साधु-संतों को शिवजी के समान समझ कर, उनकी सब प्रकार से सेवा किया करते थे। वे प्रतिदिन पार्थिव-पूजन करते, भस्म लगाते, रुद्राक्ष की माला धारण करते तथा शिवजी का भजन करते रहते थे।

हे नारद ! उनके पूर्णभद्र नामक एक पुत्र था। वह भी अपने माता-पिता के समान गुणी एवं शिवभक्त था। माता-पिता उसकी सेवा एवं शुभ-कर्मों से सदैव प्रसन्न रहा करते थे। जब रत्नभद्र मुनि और उसकी पत्नी को मृत्यु प्राप्त हुई, तो वे दोनों मुक्त हो कर शिवपुरी में जा पहुँचे। पूर्णभद्र ने उनका यथाविधि दाह संस्कार किया। फिर वह अपनी चतुरंगिनी सेना सहित आनन्दपूर्वक राज्य करने लगा। हे नारद ! भाग्यवश पूर्णभद्र के कोई सन्तान नहीं हुई। तब एक दिन उसने अपने मन में यह विचार किया कि पुत्र दोनों लोकों में आनन्द प्रदान करने

वाला होता है, गृहस्थाश्रम की शोभा उसी से है। वही अपने माता-पिता को स्वर्ग में पहुँचाता है और वही दुःख सागर में डूबे हुए माता-पिता को नाव के समान होता है। बिना पुत्र के किसी भी उपाय द्वारा वंश नहीं चलता। अस्तु, जब तक पुत्र की प्राप्ति न हो, तब तक मेरा जीवन व्यर्थ है।

हे नारद ! इस प्रकार पुत्र की चिन्ता में पड़ने से उसका सम्पूर्ण आनन्द दुःख में बदल गया और उसे सभी पदार्थ अशुभ तथा व्यर्थ से प्रतीत होने लगे। पूर्णभद्र की पत्नी कनक कन्दला पतिव्रता, शिव भक्तिनी तथा परम धर्मात्मा थी। एक दिन पूर्णभद्र ने उसे अपने समीप बुला कर कहा—"हे प्रिये ! घर में संसार की सम्पूर्ण वस्तुएँ उपस्थित हैं, परन्तु पुत्र के बिना वे सब मुझे अच्छी नहीं लगतीं। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किस प्रकार अपने दुःख को दूर करूँ, यह समझ में नहीं आता।" उस समय उसकी स्त्री ने धैर्य बँधाते हुए यह कहा—"हे स्वामी ! आप बुद्धिमान् हो कर भी इस प्रकार दुःख क्यों कर रहे हैं? उपाय करने से कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। मैं आपको एक उपाय बताती हूँ। जो लोग भगवान् सदाशिव के भक्त हैं, उन्हें संसार में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। अस्तु, आप अपने मनोरथ को पूर्ण करने के निमित्त श्री शिवजी की शरण में जाइये। शिवजी की भक्ति द्वारा ही विष्णु जी ने संसार के पालनकर्त्ता का पद प्राप्त किया है। शिवजी की भक्ति से ही इन्द्र आदि दिक्पाल तथा शिलादि मुनि ने, जिसका नाम मृत्युंजय और नन्दीश्वर प्रसिद्ध है तथा श्वेतकेतु, उपमन्यु आदि ने उच्च पद प्राप्त किया है। इस प्रकार जिसने भी शिवजी की सेवा की, उसी ने अपनी मनोभिलाषा को सब प्रकार से प्राप्त किया। हे स्वामी ! वेद और पुराण कहते हैं कि शिवजी अपने भक्तों पर शीघ्र ही प्रसन्न हो कर उन्हें इच्छित वरदान देते हैं। अस्तु, आप भी निश्चयपूर्वक उन्हीं श्री शिवजी की शरण में जाएं।"

हे नारद ! अपनी पत्नी की बात सुन कर पूर्णभद्र अत्यन्त आनन्दित हुआ। तब वह शिव भक्ति में संलग्न हो, शिवजी के समीप काशीपुरी

में जा पहुँचा। वह नादविद्या में अत्यन्त प्रवीण था। अस्तु, उसने भली-भाँति गाना गा कर शिवजी को प्रसन्न किया। उसने इक्कीस मूर्च्छना, पाँच सौ इक्यावन तानें तथा अनेक शाखाओं से युक्त बारह श्रुतिवेद शिवजी को सुनाये। उसके गायन को सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—"हे पूर्णभद्र ! हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान हमसे माँग लो।" यह सुन कर पूर्णभद्र शिवजी के चरणों का ध्यान धर कर, उनकी स्तुति प्रशंसा करने लगा।"

ॐ ॐ ॐ

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जब पूर्णभद्र की स्तुति सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उससे वरदान माँगने के लिए कहा, उस समय पूर्णभद्र ने प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो आप मुझे सन्तान दीजिये।" शिवजी यह सुन कर 'एवमस्तु' कहने के उपरान्त अन्तर्धान हो गये। तब पूर्णभद्र भी प्रसन्न हो कर अपने घर लौट आया और अपनी स्त्री से वर पाने का सब हाल कह सुनाया। कुछ समय बाद पूर्णभद्र की पत्नी गर्भवती हुई और उचित अवसर आने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उस बालक का नाम हरिकेश रखा गया। जब बालक की आयु आठ वर्ष की हुई, तभी से उसने अपना मन शिवजी के चरणों में लगा दिया। वह बालकों के साथ खेलते हुए मिट्टी का शिवलिंग बना कर, उत्तमोत्तम पुष्पों द्वारा उसका पूजन करता और अपने साथी अन्य बालकों से भी पूजन कराता। वह स्वयं शिव नाम का उच्चारण करता और दूसरों से भी कराता। शिव-चरित्र के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर वह ध्यान ही नहीं देता था। वह शिवजी के पूजन में तथा उसके पाँव शिव तीर्थों की यात्रा में लगे रहे। इस प्रकार वह रात-दिन शिवजी का ही ध्यान करता, उन्हीं को देखता और उन्हीं के यश का गान किया करता था। वह

अपने शरीर में भस्म लगाये रहता और रुद्राक्ष की माला पहने, हर समय शिव-नाम का जप किया करता था।

हे नारद ! उसकी इस अवस्था को देख कर पूर्णभद्र ने एक दिन यह कहा—"हे पुत्र ! तुम शिवजी की कठिन तपस्या द्वारा मेरे घर में उत्पन्न हुए हो, अतः तुमको उचित है कि तपस्वियों के मार्ग को छोड़कर गृहस्थ बनो। मेरे घर में सब प्रकार के रत्न तथा सुख के साधन उपस्थित हैं, अतः उनमें अपना मन लगा कर, राजनीति को सीखो; जिससे भविष्य में प्रजा का भली-भाँति पालन कर सको। तुमने जिस मार्ग को अपनाया है, वह दरिद्रियों का मार्ग है।"

हे नारद ! पिता की आज्ञा का पालन करने में असमर्थ होने के कारण, हरिकेश अपने घर को छोड़ कर भाग गया। जिस समय वह अपने नगर से बाहर निकल कर आया तो उसे दिशाभ्रम हो गया। उस समय वह अत्यन्त पछता कर इस प्रकार सोचने लगा कि अब मैं कहाँ जाऊँ? मुझे यह दुःख अपने पूर्व जन्मों के पापों से ही प्राप्त हुआ है। हाँ, एक बार मैंने अपने पिता के समीप आये हुए संत लोगों से यह अवश्य सुना था कि जिनको माता-पिता छोड़ देते हैं अथवा जिनका कोई सहायक नहीं होता तथा जो लोग अधर्मी, भयभीत, दुःखी तथा शरणहीन होते हैं, उन्हें शिवजी सहायता प्रदान करते हैं और ऐसे अनाथ मनुष्यों को शिवजी की पुरी काशी में जा कर निवास करना चाहिए।

हे नारद ! इस विचार के आते ही वह लोगों से काशी का मार्ग पूछता हुआ वहाँ जा पहुँचा। काशी में पहुँच कर उसने सर्वप्रथम मणिकर्णिका में स्नान किया, तदुपरान्त भगवान् विश्वनाथ की पूजा की। इसके पश्चात् वह आनन्द वन में जा कर दृढ़तापूर्वक कठिन तपस्या करने लगा। वहाँ कुछ समय बाद गिरिजा सहित शिवजी ने पहुँच कर उसे जो वरदान दिया, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है। शिवजी की भक्ति द्वारा हरिकेश ने अपने सम्पूर्ण कुल को तार दिया और उसके माता-पिता भी काशीवासी हो गये। हे नारद ! शिव-

भक्तों की महिमा वास्तव में ऐसी ही है। वे अकेले ही मुक्त नहीं होते, अपितु अपने कुल भर को मुक्त कर देते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इस प्रकार शिवजी जब काशी में राज्य कर रहे थे, उसी समय दुर्ग नामक एक महाबलवान् दैत्य देवताओं को अत्यन्त दुःख पहुँचाने लगा। उसे यह वरदान प्राप्त था कि वह किसी भी पुरुष के हाथ से नहीं मरेगा। उस वरदान के कारण उसने तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया और सम्पूर्ण धर्म-कर्मों को नष्ट कर डाला। उस दैत्य के अत्याचारों से दुःखी हो कर मैं, विष्णु जी तथा अन्य देवता ऋषि-मुनियों को साथ ले, शिवजी की शरण में गये और उनसे अपने कष्ट का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उस समाचार को सुन कर शिवजी ने भगवती गिरिजा को यह आज्ञा दी कि तुम उस दैत्य का वध कर डालो। भगवती गिरिजा ने शिवजी की आज्ञा सुन कर विन्ध्यवासिनी का स्वरूप धारण कर उस दुर्ग नामक दैत्य को मार डाला। तभी से वे 'दुर्गा' के नाम से प्रसिद्ध हुईं। उस दैत्य के मारे जाने से देवताओं को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ।

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी ने बहुत दिनों तक काशी में राज्य किया। जब राजा दिवोदास ने उन्हें कष्ट पहुँचाया, तब उन्होंने काशी को छोड़ दिया और मन्दराचल पर्वत पर अपनी राजधानी बना कर रहने लगे।'' इस कथा को सुन कर नारद जी ने अत्यन्त आश्चर्य में भर कर ब्रह्मा जी से पूछा—''हे पिता ! वह राजा दिवोदास कौन था, जिसने शिवजी को काशी ही छुड़ा दिया था? तदुपरान्त शिवजी ने किस उपाय द्वारा काशी को फिर प्राप्त किया, वह कथा भी आप मुझे सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! पहले पद्मकल्प में स्वायंभुव मन्वन्तर के मनु के वंश में दिवोदास नामक एक राजा उत्पन्न हुआ। वह राजा अपने नाम के अनुरूप ही क्षात्रधर्म में अत्यन्त दृढ़, परम ज्ञानी

और शिवजी का भक्त था। उसने अपना राज्य छोड़ कर, काशीपुरी में जा, अत्यन्त तप किया। उसके राज्य त्याग देने से संसार में बहुत अकाल पड़ा, जिसके कारण सब मनुष्य अत्यन्त दुःखी हुए। राजा न होने के कारण सब जगह चोरियाँ होने लगीं, धर्म भ्रष्ट हो गया, यज्ञ-कर्म नष्ट हो गये। सर्वत्र दुःख का साम्राज्य छा गया तथा सब लोग पापाचरण करने लगे।

हे नारद ! उस समय देवताओं ने मेरे पास आ कर यह कहा—"हे ब्रह्मन् ! राजा न होने के कारण संसार की दशा अत्यन्त खराब हो रही है। अस्तु, आप शीघ्र ही कोई उपाय कीजिए। यह सुन कर मैं देवताओं को साथ ले काशीपुरी में जा पहुँचा और जिस स्थान पर राजा दिवोदास तप कर रहा था, वहाँ पहुँच कर उससे बोला—"हे राजन् ! तुम अपना राज्य फिर से सम्भालो। जब तुम पुनः शासन कर उठोगे, तब तुम्हारे राज्य में वर्षा होगी, जिससे प्रजा को दुःखों से मुक्ति मिलेगी। उस समय बासुकि नामक नाग अपनी अनंग-मोहिनी नामक कन्या का विवाह तुम्हारे साथ कर देगा। वह कन्या अत्यन्त पतिव्रता तथा धर्मव्रत-धारिणी होगी। उसके द्वारा तुम अत्यन्त आनन्द प्राप्त करोगे।" यह सुन कर राजा दिवोदास ने मुझसे कहा—"हे प्रभो ! मैं केवल उसी शर्त पर राज्य करने के लिए तैयार हूँ कि अब से सभी देवता आकाश में स्थित रहें और नाग आदि पाताल में जा कर निवास करें। पृथ्वी पर मनुष्यों के अतिरिक्त और कोई नहीं रहे।"

हे नारद ! राजा दिवोदास की इस शर्त को मैंने अपने अहंकार में भर कर स्वीकार कर लिया। मुझे परिणाम का ध्यान नहीं रहा। अस्तु, राजा की शर्त के कारण हम तीनों देवताओं तथा इन्द्र आदि को पृथ्वी छोड़ देनी पड़ी। इसके पश्चात् जब मैं शिवजी के समीप पहुँचा, उस समय शिवजी ने मुझसे यह कहा—"हे ब्रह्मा ! मन्दराचल पर्वत तपस्या कर रहा है। हम उसे वरदान देने जा रहे हैं, सो तुम भी हमारे साथ वहाँ चलो।"

हे नारद ! शिवजी की आज्ञा सुन कर मैं उनके साथ चल दिया।

अब हम लोग वहाँ पहुँचे और शिवजी ने अपने भक्त से वरदान माँगने के लिए कहा, उस समय मन्दराचल पर्वत ने शिवजी से यह प्रार्थना की कि, ''हे प्रभो ! मैं काशी के समान होना चाहता हूँ। आप कृपा करके मेरे ऊपर निवास करें। मेरी यह अभिलाषा है कि आप गिरिजा जी तथा अन्य गणों सहित कुशद्वीप को पवित्र करें।'' मन्दराचल का यह प्रार्थना सुन कर शिवजी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस समय मैंने शिवजी से यह कहा—''हे प्रभो ! मैंने आपकी माया में मोहित हो कर राजा दिवोदास को वरदान दे दिया है कि अब से सभी देवता पृथ्वी पर वास न करके, आकाश में रहेंगे; इसलिए आप भी मन्दराचल की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लें।'' मेरे यह वचन सुन कर शिवजी ने अपना लिंग काशी में स्थित कर दिया और मन्दराचल को इच्छित वरदान दे अपने गणों सहित वहीं निवास करने लगे।

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी लिंग रूप हो कर काशी में रहे। उस लिंग का नाम 'अविमुक्त' प्रसिद्ध हुआ। उस लिंग का ध्यान करने से समस्त कार्य पूर्ण होते हैं। इस प्रकार शिवजी काशी को त्याग कर, मन्दर गिरि पर चले गये और विष्णु जी भी अपना धाम त्याग कर उसी पर्वत पर सुशोभित हुए। गिरिजा, गणपति, सूर्य आदि देवता तथा ऋषि-मुनि भी अपने-अपने स्थान को छोड़ कर वहीं विराजमान हुए। शेष जी आदि सभी नाग पाताल लोक को गये। उस समय जो देवता, नाग आदि पृथ्वी को छोड़ कर आकाश-पाताल को गये थे, उन्हें अपने मन में दुःख तो बहुत हुआ, परन्तु मेरे वरदान के कारण सभी विवश थे। जब हम सब लोग पृथ्वी से हट गये, तब राजा दिवोदास काशी को अपनी राजधानी बना कर, राज्य करने लगा। उसने अपनी विद्या तथा बल द्वारा ऐसे नियम प्रचलित किया कि उसके राज्य में कोई भी व्यक्ति, किसी भी प्रकार का कुकर्म नहीं कर पाता था। देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पति के समीप जा कर उनकी स्तुति करते हुए यह प्रार्थना की—''हे प्रभो ! आप हमें कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे राजा दिवोदास को कोई पाप लग जाए और वह अपने राज्य से निराश

हो कर प्रताप-हीन हो जाए। वेद कहते हैं कि पृथ्वी पर वास पाना परम दुर्लभ है। यदि किसी को पृथ्वी पर वास मिल जाए तो उसे परमपद प्राप्त होने में कोई सन्देह नहीं रहता विशेष कर काशी में, जहाँ साक्षात् भगवान् सदाशिव रहते हैं, मृत्यु होने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। जिसने काशी-वास त्यागा, उसने मानो अपना सर्वस्व नष्ट कर लिया। काशी का चांडाल भी अन्य स्थान के राजाओं से अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य स्थानों में आवागमन का भय बना रहता है और काशी में वह भय कहीं ढूँढ़े भी नहीं मिलता।''

देवताओं की यह प्रार्थना सुन कर बृहस्पति जी ने कहा—''हे देवताओ ! जब तक कोई राजा अपने धर्म को नहीं त्याग देता, तब तक उसका राज्य नष्ट नहीं हो सकता। राजा दिवोदास परम धार्मिक है। जब तक वह धर्म को नहीं छोड़ेगा, तब तक तुम्हें वह स्थान प्राप्त नहीं होगा। अस्तु, तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे राजा का धर्म नष्ट हो जाए। नल, दधीचि, शंख, ययाति, रावण तथा बाणासुर आदि बड़े-बड़े तेजस्वी, धर्मात्मा योद्धा भी तुम लोगों को दुःख पहुँचा कर सुखी नहीं हुए, फिर मनुष्य तो किस गिनती में है? अब तुम यह करो कि अग्नि को बुला कर यह आज्ञा दो कि वह पृथ्वी से अपना अंश खींच ले। जब पृथ्वी पर अग्नि का निवास नहीं रहेगा, तो वहाँ के सब कार्य नष्ट हो जायेंगे। उस समय राजा दिवोदास का राज्य भी स्वतः समाप्त हो जाएगा।''

हे नारद ! बृहस्पति द्वारा बताये गये इस उपाय को सुन कर, देवता प्रसन्न हो गये। तदुपरान्त इन्द्र ने अग्नि को बुला कर सब वृत्तान्त कह सुनाया। अग्नि ने इन्द्र की आज्ञा का पालन करते हुए, अपने प्रत्यक्ष, जलगत तथा उदरगत—इन तीनों प्रकार के रूपों को पृथ्वी से खींच लिया। अग्नि के इस प्रकार लोप होते ही पृथ्वी निवासी सभी जीव अत्यन्त दुःखी हो गये। उस समय सम्पूर्ण प्रजा एकत्र हो कर राजा के पास गयी और उनसे अपने दुःख का हाल कहने लगी। उस समाचार को सुन कर राजा दिवोदास को यह विश्वास हो गया कि इस प्रकार

देवताओं ने मेरे साथ शत्रुता की है। अपनी प्रजा को यह आश्वासन दे कर विदा किया तो तुम लोग किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, मैं अपनी शक्ति द्वारा तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दूँगा।

हे नारद ! प्रजा के चले जाने पर राजा ने अपने मन में यह विचार किया कि आज तो देवताओं ने अग्नि को बुला लिया है, कल को वे किसी दूसरे को बुला लेंगे। ऐसी अवस्था में प्रजा को और अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा। इसलिए मुझे उचित है कि देवताओं से किसी प्रकार की सहायता न ले कर मैं अपने बल पर ही राज्य करूँ। यह निश्चय कर उसने उन सब देवताओं को भी, जो पृथ्वी के प्राणियों के लिए आवश्यक कार्यों को करने के लिए नियुक्त थे, अपने यहाँ से विदा कर दिया। तदुपरान्त उसने स्वयं ही अग्नि का स्वरूप धारण कर अपनी प्रजा के कष्ट को दूर किया। इस प्रकार वह स्वयं वायु, जल, चन्द्रमा तथा सूर्य बन कर प्रजा को लाभ पहुँचाने लगा। जिस वस्तु द्वारा प्रजा का उपकार होता था, वह उसी का रूप धारण कर सब का दुःख दूर किया करता था। उसके इस पराक्रम को देख कर सभी देवता अत्यन्त लज्जित हुए और उनका कोई उपाय काम नहीं आया।''

ॐ ॐ ॐ

छठा अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! राजा दिवोदास से पूर्व ऐसा कोई राजा नहीं हुआ, जिसके ऊपर देवताओं की युक्ति भी निष्फल हो गयी हो। अतः मेरी यह इच्छा है कि ऐसे प्रतापी राजा का वृत्तान्त आप मुझे विस्तारपूर्वक सुनावें। मैं यह जानना चाहता हूँ कि जिस राजा ने अपनी प्रजा को दुःखी नहीं होने दिया, उसके ऊपर देवताओं ने फिर कोई युक्ति चलाई अथवा लज्जित हो कर बैठे रहे।''

इतनी कथा सुना कर सूत जी बोले—''हे ऋषियो ! जब ब्रह्मा जी ने नारद के मुख से यह वचन सुने तो अत्यन्त प्रसन्न हो कर इस प्रकार कहा—''हे नारद ! तुम परम धन्य हो, क्योंकि तुम शिवजी के चरित्र

रूपी कथामृत को बारम्बार पी कर भी तृप्त नहीं होते हो। भला, संसार में ऐसा कौन है, जो भगवान् सदाशिव को कष्ट पहुँचा सके? अब मैं तुमसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहता हूँ, उसे तुम मन लगा कर सुनो। राजा दिवोदास शिवजी का परम भक्त था। जब उसने यह देखा कि काशी जी शिवजी को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, तो उसने स्वयं भी काशी में ही रहना स्वीकार किया। वह काशी में रह कर अत्यन्त नम्रता-पूर्वक प्रजा का पालन करता था, इसलिए उसके सम्मुख देवताओं की कुछ भी नहीं चलती थी। वह किसी भी प्राणी को दुःख नहीं देता था, यद्यपि युद्ध के समय वह सिंह के समान महान् पराक्रम का प्रदर्शन करता था। सभी देवता उसकी आज्ञा का पालन करते थे। उसकी सभा में गन्धर्व और विद्याधर नृत्य करते थे।

हे नारद ! उस राजा दिवोदास ने सूर्य बन कर शत्रुओं को भस्म किया तथा चन्द्रमा रूप हो कर अपने मित्रों को सुख पहुँचाया। युद्ध-क्षेत्र में वह अपने धनुष द्वारा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता रहा, इसलिए लोग उसे इन्द्र भी कहते थे। धर्म-अधर्म का उचित विचार कर दंड देने के कारण उसे धर्मराज कहा गया। वह अपराधियों को दंड देता था तथा धर्मात्मा एवं सज्जनों को आनन्द प्रदान करता था। उसने याचकों को धन दे कर कुबेर का पद प्राप्त किया तथा सब का पालन करने के कारण शिवजी का पद पाया। सब को भाग्य का फल देने के कारण ग्रह तथा उपग्रह के रूप में उसे माना गया। सम्पूर्ण कला-कौशलों में वह अत्यन्त प्रवीण था, इसलिए उसे विश्वकर्मा की उपाधि दी गयी। सुन्दरता में वह अश्विनीकुमार से भी अधिक सुन्दर था तथा गान-विद्या में उसने विद्याधरों को भी पराजित किया था।

हे नारद ! उसने यक्षों को अनेक प्रकार के अधिकार सौंपे तथा नागों को भी विभिन्न प्रकार के उच्च पदों पर प्रतिष्ठित किया। राजा दिवोदास के प्रताप से प्रभावित हो कर इन्द्र ने अपना ऐरावत हाथी तथा सूर्य ने उच्चैःश्रवा घोड़ा उसे दे दिया। राजा दिवोदास की सेना के योद्धा कभी किसी से हारते नहीं थे। उस राजा के शासन-काल में

पृथ्वी का राज्य आकाश से भी अधिक बढ़ गया। आकाश पर केवल एक ही इन्द्र का साम्राज्य है और वे अपने वज्र द्वारा पर्वतों के पंख काटते हैं, परन्तु पृथ्वी पर राजा दिवोदास ने अनेक शत्रुओं के मस्तकों को चूर्ण कर दिया था और वह गोत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। आकाश में केवल एक ही चन्द्रमा है और वह पन्द्रह दिन के अन्तर से घटता-बढ़ता है, परन्तु पृथ्वी पर क्षीण होने वाला कोई भी नहीं था।

हे नारद ! आकाश पर केवल एक ही प्रकार के नवग्रह प्रसिद्ध हैं, परन्तु पृथ्वी पर सभी गृहों में नवग्रह विद्यमान रहते थे। आकाश में केवल एक ही सुवर्णगर्भ अर्थात् ब्रह्मा हैं, परन्तु पृथ्वी पर सभी भवन सुवर्णगर्भ अर्थात् स्वर्ण से भरे हुए थे।

हे नारद ! इस प्रकार राजा दिवोदास के राज्य में सभी आनन्द वर्तमान थे। कोई भी मनुष्य धर्मशास्त्र के विरुद्ध आचरण नहीं करता था। वहाँ की सभी स्त्रियाँ भी परम पतिव्रता थीं। उसके राज्य में कोई भी मनुष्य धनहीन, हिंसक अधर्मी, व्यभिचारी, निर्लज्ज, चुगलखोर, शीलरहित तथा असत्यवादी न था, अपने-अपने धर्म पर सब दृढ़ रहते थे। सभी बालक अपने माता-पिता की सेवा करते थे तथा सभी छोटे भाई निष्कपट भाव से अपने बड़े भाई की सेवा करते थे। सभी सेवक अपने स्वामी की सेवा करना परमधर्म समझते थे और विपत्ति पड़ने पर भी वे अपने स्वामी को नहीं छोड़ते थे।

हे नारद ! उस राजा के राज्य में स्थान-स्थान पर ब्रह्मभोज हुआ करते थे। राजा और प्रजा के सभी लोग ब्राह्मणों की सेवा करना अपना परम धर्म समझते थे। कुआँ, बावली, तालाब, फुलवारियाँ, उद्यान आदि चारों ओर पाये जाते थे। शिवभक्ति के अतिरिक्त किसी को अन्य कोई कार्य न था। सब स्त्री-पुरुष वेद की आज्ञा का पालन करते थे और उसी के अनुसार आचरण भी करते थे। वे सब शरीर से हृष्ट-पुष्ट तथा आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न थे। किसी को स्त्री, पुत्र, धन, वस्त्र, आभूषण आदि का कष्ट नहीं था। राजा दिवोदास उन सब में अधिक धनी था। वह अपनी प्रजा का पुत्र के समान पालन करता था।

हे नारद ! जिसके हृदय में रात-दिन भगवान् सदाशिव का निवास रहे, उसे आनन्द के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का कष्ट प्राप्त नहीं हो सकता। अस्तु, देवताओं ने उसके राज्य में बहुत कुछ ढूँढ़ने पर भी कोई दोष नहीं पाया, तब वे थक कर बैठ गये। राजा दिवोदास राजनीति तथा धर्म का महान् ज्ञाता था। वह सब का मित्र था तथा तीनों प्रकार की शक्तियाँ और सब प्रकार के गुणों को धारण करके, चारों उपायों का समयानुसार भली-भाँति प्रयोग किया करता था।

हे नारद ! जब देवता सब उपाय करके थक गये तथा राजा को किसी भी प्रकार नुकसान नहीं पहुँचा सके, तब वे इन्द्र को साथ ले कर मेरे पास आये और अपने दुःख का वर्णन करते हुए मुझसे इस प्रकार बोले—"हे ब्रह्मन् ! आप हमें वह उपाय बताने की कृपा कीजिये, जिसके द्वारा राजा दिवोदास को किसी प्रकार से पाप लग जाए और वह पृथ्वी के राज्य से वंचित हो जाए। जब तक हमें पृथ्वी नहीं मिलेगी, तब तक हमारा कष्ट दूर नहीं होगा। पृथ्वी का पद स्वर्ग से भी अधिक है। पृथ्वी में भी तीर्थों का पद ऊँचा है और सब तीर्थों में काशी का पद सर्वोत्तम है। काशी सेवन किए बिना सहज ही मुक्ति प्राप्ति नहीं होती। अस्तु, आप कोई ऐसा उपाय बताइए, जिससे हम लोग पुनः काशीवास प्राप्त कर सकें?"

हे नारद ! देवताओं की प्रार्थना सुन कर मैंने उनसे कहा—"हे देवताओ ! दिवोदास अत्यन्त धर्मात्मा है। वह अपने तप के कारण ही देवताओं को दुःख दे कर अभी तक बचा हुआ है। तुमने जो कष्ट उठाया है, वही कष्ट मुझे भी है; क्योंकि मुझे प्रयाग में रहना अत्यन्त प्रिय था; परन्तु उस राजा को वरदान देने के कारण अब मेरा भी प्रयाग में रहना असम्भव हो गया है। अस्तु, अब तुम सब लोग मेरे साथ विष्णु जी के पास चलो। वे ही इस समय हमारी सहायता करेंगे।" यह कह कर मैं सब देवताओं को अपने साथ ले कर श्री विष्णु जी के समीप जा पहुँचा और उनकी स्तुति करने के उपरान्त इस प्रकार बोला—"हे विष्णु जी ! आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मुझे तथा सब

देवताओं को आनन्द प्राप्त हो।'' हमारी प्रार्थना सुन कर विष्णु जी ने यह उत्तर दिया—''हे ब्रह्मन् ! राजा दिवोदास परम धार्मिक है। यद्यपि मैं स्वयं भी यह चाहता हूँ कि दिवोदास के हाथ से पृथ्वी का शासन छीन लिया जाए; क्योंकि उसके कारण मैं अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय वृन्दावन में नहीं जा सकता हूँ, परन्तु उस पर मेरा कोई वश नहीं चलता है। भगवान् सदाशिव भी काशी छूट जाने के कारण बहुत दुःखी हैं। वे अपना दुःख मुझसे कई बार कह चुके हैं, परन्तु बिना किसी अपराध के वे भी दिवोदास के राज्य में कोई विघ्न नहीं डाल सकते।

हे ब्रह्मन् ! राजा दिवोदास के ऊपर देवताओं की कोई भी युक्ति नहीं चल सकती। इसका कारण यही है कि वह उस काशी की सेवा करता है, जो साक्षात् शिवजी का ही एक स्वरूप है। अब तुम्हीं कहो कि उसके राज्य का नाश किस प्रकार किया जाए? हाँ, यदि स्वयं शिवजी ही हम पर कोई कृपा करें तो हमारी मनोकामना पूर्ण हो सकती है। अस्तु, अब यही उचित है कि हम सब लोग शिवजी के पास चलें और उन्हें अपना दुःख कह सुनायें।'' हे नारद ! इस प्रकार निश्चय करके विष्णु जी तथा मैं अन्य सब देवताओं सहित शिवजी के समीप जा पहुँचे। वहाँ हम ने भगवान् सदाशिव की बहुत प्रकार से स्तुति करते हुए यह कहा—''हे महाप्रभु ! आप हमारी रक्षा करने की कृपा करें।''

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! हम देवताओं की स्तुति सुन कर शिवजी ने कहा—''हे ब्रह्मा, हे विष्णु तथा अन्य सब देवताओ ! तुम लोग हमारे पास किस लिए आये हो? तुम हमें अपने दुःख का कारण सुनाओ।'' भगवान् सदाशिव के मुख से यह वचन सुन कर देवताओं ने कुछ सोच-विचार करके यह उत्तर दिया—''हे प्रभो ! राजा

दिवोदास धर्म पर आरूढ़ हो कर तथा सब प्रकार के पापों को त्याग कर, पृथ्वी पर शासन कर रहा है और उसके राज्य में सब लोग सुखी हैं। यद्यपि वह आपका भक्त है और हम सब देवताओं की सेवा में भी संलग्न रहता है, परन्तु उसने हठपूर्वक किसी भी देवता अथवा नाग आदि को पृथ्वी पर नहीं रहने दिया है। अस्तु, आपको यह उचित है कि किसी उपाय द्वारा आप राजा दिवोदास को राज्य से पदच्युत करने का प्रयत्न करें। राजा दिवोदास के राज्य-त्याग के पश्चात् ही हम लोग काशी को प्राप्त कर सकेंगे, अन्यथा नहीं।'' इतना कह कर सब देवता चुप हो गये।

हे नारद ! देवताओं की यह प्रार्थना सुन कर शिवजी ने कहा—''हे देवताओ ! राजा दिवोदास हमारा परम भक्त है। वह काशी का, जो हमारे दूसरे शरीर के समान है, रक्षक है। अस्तु, काशी के रक्षक को किसी प्रकार का दुःख प्राप्त नहीं हो सकता।'' इतना कह कर शिवजी चुप हो गये, परन्तु उसी समय काशी का स्मरण आ जाने के कारण, उनकी आँखें आँसुओं से भर गयीं। कुछ देर तक वे काशी के प्रेम में ऐसे मग्न रहे कि उनकी अवस्था मुर्च्छित के समान हो गयी। जब वे चैतन्य हुए तो उन्होंने काशी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—''हे आनन्दायिनी काशी ! अब तू मुझे कब प्राप्त होगी? यदि तू मुझे शीघ्र ही प्राप्त नहीं हुई, तो मेरा जीवन कठिन हो जाएगा।'' इतना कह कर, काशी के प्रेम में मग्न हो, शिवजी मूर्छित हो गये।

हे नारद ! शिवजी की यह दशा देख कर गिरिजा ने उन्हें चैतन्य करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। संयोग और वियोग सब आपकी ही लीला है। आपकी कोप दृष्टि से प्रलय हो जाता है। आप पूर्ण स्वाधीन हैं। यदि आप काशी में पहुँचेंगे तो राजा दिवोदास आपको किसी भी प्रकार नहीं रोक सकेगा। काशी के निवासी यमराज से भी भय नहीं खाते। पापियों की मुक्तिदायिनी होने के कारण वह मुझे भी अत्यन्त प्रिय है। आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे हमें काशी पुनः प्राप्त हो सके तथा सब को शान्ति मिले।''

हे नारद ! गिरिजा के यह वचन सुनकर शिवजी ने प्रसन्न हो कर कहा—"हे गिरिजे ! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, परन्तु काशी मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय है। इस समय तुम्हारे अमृत के समान वचन सुनकर मेरे हृदय को कुछ शान्ति प्राप्त हुई है, परन्तु तुम्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि मैं राजा दिवोदास का अत्यन्त आदर तथा सम्मान करता हूँ। उसने ब्रह्मा जी से आज्ञा लेकर ही काशी का राज्य प्राप्त किया है। उसने वरदान माँगते समय ब्रह्मा जी से यह स्पष्ट कहा था कि यदि देवता आदि पृथ्वी पर न रहें, तभी मैं राज्य को स्वीकार कर सकता हूँ, अन्यथा नहीं। तब मुझे ब्रह्मा जी के वचन का पालन करने हेतु काशी छोड़ देनी पड़ी। राजा दिवोदास उस समय से मेरी पुरी की भली-भाँति रक्षा कर रहा है, इसलिए मुझे वह अत्यन्त प्रिय है। भला ऐसी दशा में, मैं उसका राज्य किस प्रकार छीन सकता हूँ? तुम्हें यह बात भी अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि जो लोग धर्मात्मा होते हैं, मैं उनकी सदैव रक्षा किया करता हूँ। यदि कोई उन्हें कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करता भी है, तो स्वयं ही दुःख उठाता है। इसीलिए मैं ऐसा उपाय सोच रहा हूँ जिससे मुझे काशी पुनः प्राप्त हो सकती है।"

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी चिन्ता कर ही रहे थे कि उसी समय अचानक ही उन्होंने अपने सामने खड़ी हुई योगिनियों को देखा। तब शिवजी ने उन्हें अपने पास बुला कर बहुत आदर से बैठाया। फिर यह आज्ञा दी—"हे योगिनीगण ! तुम सब काशीपुरी में जाओ और वहाँ जा कर राजा दिवोदास के धर्म-कार्यों में कुछ ऐसा विघ्न डालो कि जिसके कारण वह काशी छोड़ कर हटने के तैयार हो जाए। ऐसा उपाय जब सफल हो जाएगा, तब मैं भी पुनः काशी में रह कर आनन्द प्राप्त करूँगा।" इस प्रकार आज्ञा दे कर शिवजी ने योगिनियों को काशी में भेज दिया और आप स्वयं समय की राह देखने के लिए वहीं स्थित रहे। उन योगिनियों ने काशी में पहुँच कर अपना स्वरूप बदल लिया। फिर वे तपस्विनियों के समान वेष धारण कर चारों ओर फैल गयीं। उनमें से कोई मालिन बनी, कोई दाई, कोई रसोई बनाने वाली,

कोई गाने वाली, कोई बाजा बजाने वाली, कोई मूर्ति बनाने वाली, कोई सामुद्रिक जानने वाली और कोई पुत्र देने वाली। इस प्रकार उन्होंने अनेक युक्तियाँ कीं, परन्तु राजा दिवोदास के नगर का कोई भी मनुष्य अपने धर्म को त्याग कर, पाप-कर्म में प्रवृत्त नहीं हुआ। तब वे सब एकत्र हो कर आपस में यह कहने लगीं कि हम मन्दराचल पर्वत पर जा कर शिवजी को किस प्रकार अपना मुँह दिखावें? अस्तु, वे चौंसठ योगिनियाँ मणिकर्णिका के आगे स्थित हो गयीं और लज्जा के कारण शिवजी के पास नहीं पहुँचीं। हे नारद ! जो मनुष्य उन योगिनियों को प्रणाम करता है, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं होता।''

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! योगिनियों के लौटने में जब विलम्ब हुआ, तब शिवजी ने चिन्तित हो कर सूर्य को यह आज्ञा दी ! ''हे सूर्य ! अब तुम काशी में जा कर यह समाचार लाओ कि योगिनीगण अब तक क्यों नहीं लौटी हैं? इसके साथ ही तुम किसी उपाय द्वारा राजा दिवोदास को धर्म-भ्रष्ट करने का भी प्रयत्न करना, जिससे वह राज्य-हीन हो जाए; परन्तु यह ध्यान रखना कि राजा दिवोदास परम धार्मिक है, उसकी किसी प्रकार अप्रतिष्ठा नहीं होने पाये। हे सूर्य ! तुम त्रिभुवन में श्रेष्ठ हो तथा तुम्हारा नाम 'जगच्चक्षु' प्रसिद्ध है। अस्तु, तुम अपनी बुद्धिमानी से राजा दिवोदास को धर्म-मार्ग से हटा कर यहाँ लौट आओ।''

हे नारद ! भगवान् सदाशिव की आज्ञा पा कर सूर्य भी अपने स्वरूप को बदल कर काशी में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने भिखारी, ज्योतिषी, दरिद्री, योगी, जटाधारी, परमहंस, दिगम्बर, छली तथा मतिहीन आदि अनेक प्रकार के रूप धारण किये। कहीं उन्होंने इन्द्रजाल को फैलाया, कहीं ब्रह्मज्ञान को प्रकट किया, कहीं वेद के

विरुद्ध प्रचार किया, कहीं मीमांसा शास्त्र की व्याख्या की, कहीं ब्राह्मण बने, कहीं राजकुमार हुए, कहीं सर्व ज्ञाता बने और कहीं अपने को तत्वज्ञानी के रूप में प्रकट किया; परन्तु तो भी वे राजा दिवोदास के राज्य में किसी को भी अधर्मी न बना सके। इस प्रकार जब एक वर्ष बीत गया और उनके किये कुछ न हो सका, तो उन्होंने मन में विचार किया कि मेरा यहाँ आ कर कुछ भी वश नहीं चल सका। अब यदि मैं विफल-मनोरथ हो कर शिवजी के पास लौटूँ तो वे मुझे अपने क्रोध से भस्म कर डालेंगे। उस समय ब्रह्मा और विष्णु भी मुझे नहीं बचा सकेंगे। इसलिए मुझे उचित है कि मैं शिवजी की आज्ञा उल्लंघन के पाप से बचने के लिए यहीं काशी में रह जाऊँ। काशी शिवजी का ही स्वरूप है और इसके सेवन का बड़ा धर्म कहा गया है। इसलिए मुझे सब ओर से अपना मन हटा कर, यहीं निवास करना चाहिए।

हे नारद ! इसके उपरान्त सूर्य ने यह विचार किया कि शिवजी की आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म था, उसे पालन करने में असमर्थ रहने के कारण मुझे पाप लग सकता है। इसलिए यही उचित है कि मैं यहाँ से लौट कर नहीं जाऊँ। धर्म के विपरीत अर्थ और काम का सेवन नहीं करना चाहिए। कुछ लोग यह कहते हैं कि अर्थ रक्षा करना धर्म है, वह उचित नहीं है; क्योंकि राजा हरिश्चन्द्र, कुश तथा ययाति ने धर्म को न छोड़ते हुए, अपने शरीर को त्याग देना स्वीकार किया, जिसके कारण उन्हें मोक्षपद प्राप्त हुआ। इसके साथ ही राजा बलि, विरोचन तथा प्रह्लाद ने भी धर्म की रक्षा के लिए दुःख उठाये। अतः सब को त्याग कर, धर्म की रक्षा करना ही उचित है। काशी-सेवन करने से बढ़ कर और कोई धर्म नहीं है।

हे नारद ! इस प्रकार निश्चय करके सूर्य ने बारह शरीर धारण किये और उन सब शरीरों द्वारा वहीं काशी में स्थित हो गये। वे बारहों सूर्य सेवा करने पर मनुष्यों की सम्पूर्ण मनोकामनाओं को सिद्ध करते हैं। उसके नाम इस प्रकार हैं—पहले सूर्य 'लोलार्क' नाम से अस्सी-संगम पर स्थित हैं, वह स्थान सब तीर्थों का शिरोमणि माना जाता है। दूसरे

सूर्य 'उत्तरार्क' नाम से उस स्थान पर स्थित हैं, जहाँ पहले राजा प्रियव्रत ने स्त्री का शरीर पा कर तपस्या की थी और शिव-गिरिजा से वरदान पा कर, अन्त में गिरिजा की सखी बन गये थे। उसी स्थान पर एक बकरी ने राजकन्या के रूप में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त की थी। वे भी अपने भक्तों को उत्तम फल प्रदान करने वाले हैं। तीसरे सूर्य 'आदित्य' नाम से साम्बपुर में उपस्थित हैं, वहाँ साम्ब का कुष्ठ रोग दूर हुआ था। पाँचवें सूर्य 'मयूषादित्य' नामक हैं, जो शिवजी तथा गिरिजा की सेवा द्वारा शिवजी के दाहिने नेत्र बन कर प्रतिष्ठित हुए। उनकी गणना आठ वसुओं में से एक वसु के रूप में की जाती है। छठे सूर्य 'खखोलादित्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिस समय कद्रू और विनता में विवाद हुआ था तथा उसमें विनता हार कर कद्रू की सेविका बनी थी, उस समय अपनी माता की दुरावस्था को देख कर गरुड़ को अत्यन्त कष्ट हुआ था। तब गरुड़ अमृत लेने के लिए देव लोक में गये और वहाँ देवताओं पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अमृत लेकर अपनी माता विनता के पास चल दिये। कश्यप के पुत्र गरुड़ जिस समय अमृत लेकर लौट रहे थे, उसी समय मार्ग में विष्णु जी ने उन्हें रोक कर बड़ा भारी युद्ध किया। उस युद्ध में विष्णु जी गरुड़ को नहीं जीत सके। तब उन्होंने छल करके गरुड़ से यह वरदान माँगा कि तुम हमें अमृत दे दो और हमारे वाहन भी हो जाओ। तब गरुड़ ने विष्णु जी की बात स्वीकार कर उन्हें अमृत दे दिया और उनके वाहन भी बन गये। उस समय विनता ने युद्ध स्थल पर खखोलादित्य सूर्य की स्थापना की थी, जिनकी उपासना से विनता की लज्जा दूर हुई ! वे खखोलादित्य अपने भक्तों की सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूरा करने वाले हैं।

हे नारद ! सातवें 'अरुण' नामक सूर्य शिवजी से उत्तर दिशा की ओर विराजमान हैं। वे विनता के पुत्र अरुण नाम से प्रसिद्ध हुए थे। उनकी सेवा करने से भी सम्पूर्ण कष्ट दूर होते हैं। आठवें 'बृहदादित्य' नामक सूर्य विशालाक्षी देवी के दक्षिण ओर स्थित हैं। उनकी सेवा करके अल्पायु हारीत नामक मुनि युवा हो गये थे। वे सम्पूर्ण रोगों को

दूर करने वाले तथा आनन्द प्रदान करने वाले हैं। नौवें सूर्य का नाम 'केशवादित्य' है। उन्होंने विष्णु जी से उपदेश प्राप्त किया था। एक दिन जब सूर्य ने यह देखा कि विष्णु जी पादोदक तीर्थ पर शिवलिंग की पूजा कर रहे हैं, तो उन्होंने उनके पास जा कर यह पूछा कि हे विष्णु जी ! आप तो सब से अधिक श्रेष्ठ हैं, फिर आप यहाँ किनकी पूजा कर रहे हैं? उस समय विष्णु जी ने उन्हें यह उत्तर दिया—"हे सूर्य ! भगवान् सदाशिव हम से बड़े हैं, अतः हम यहाँ पर उन्हीं का पूजन कर रहे हैं। तुम भी शिवलिंग का पूजन करो, तो तुमको उच्च पद की प्राप्ति होगी। यह सुन कर सूर्य उसी दिन से शिवलिंग का पूजन करने लगे और विष्णु जी को अपना गुरु जान कर वहीं स्थित हो गये। दसवें 'विमलादित्य' नामक सूर्य को हरिकेश ने वन में स्थापित किया था। प्रबाहु का पुत्र, जो उच्च देश का निवासी था, दुर्भाग्यवश कोढ़ी हो गया; तब वह अपने स्त्री-पुरुष, घर-बार आदि को छोड़ कर काशी में चला आया और इन्हीं विमलादित्य सूर्य की पूजा करके अच्छा हो गया। तभी से वे सूर्य कुष्ठ-रोग को दूर करने में विशेष प्रसिद्ध हैं।

हे नारद ! ग्यारहवें सूर्य का नाम 'कनकादित्य' है। वे भगवान् विश्वनाथ के दक्षिण की ओर स्थित हैं। वे प्रतिदिन गंगा की स्तुति किया करते हैं, इसी से उनका मुख गंगा की ओर है। बारहवें 'यमादित्य' नामक सूर्य उस स्थान पर स्थित हैं, जहाँ बैठ कर यमराज ने कठिन तपस्या की थी। उनके दर्शन से यमपुर में नहीं जाना पड़ता। उनकी स्थापना स्वयं यमराज ने की थी। जो मनुष्य चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में, उस स्थान में जा कर श्राद्ध करते हैं, उन्हें गया में श्राद्ध करने के समान फल प्राप्त होता है।

हे नारद ! काशी में स्थित बारहों सूर्यों का वर्णन सुनने से रोग तथा पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य इनकी सेवा करता है, वह अत्यन्त आनन्द प्राप्त करता है तथा उस पर शिवजी भी प्रसन्न होते हैं। यह बारहों सूर्य शिवजी के परम भक्त हैं तथा शिवजी के मुख्य सेवक के रूप में स्मरण किये जाते हैं। हे नारद ! इसके अतिरिक्त पाँचों देवता

भी शिवजी के अनन्य सेवक हैं। जो मनुष्य शिव-भक्ति को त्याग कर किसी अन्य देवता की पूजा करता है तथा जो यह समझता है कि अन्य देवता शिवजी से भिन्न हैं, वह पशु के समान महामूर्ख है। वेद का कथन है कि शिवजी सब में सन्निहित हैं। वे परब्रह्म, निर्गुण, आनन्दस्वरूप तथा सब को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हैं। अतः एकमात्र उन्हीं का पूजा श्रेयस्कर है।''

नौवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! अब आप मुझे यह बताइये कि जब ये बारहों सूर्य अपना स्वरूप धारण करके काशी में स्थित हो गये, तदुपरान्त क्या हुआ?'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! जब सूर्य काशी में रह गये और शिवजी के पास लौट कर नहीं पहुँचे, उस समय शिवजी अत्यन्त व्याकुल हो कर इस प्रकार कहने लगे—''हाय ! सूर्य भी अब तक लौट कर नहीं आये। इस भाँति शिवजी बहुत समय तक काशी का स्मरण कर व्याकुल होते रहे। तदुपरान्त उन्होंने यह विचार किया कि वेदज्ञ ब्रह्मा वहाँ जा कर सब समाचार ला सकते हैं। अस्तु, यह निश्चय करने के उपरान्त उन्होंने मुझसे यह कहा—''हे ब्रह्मन् ! हमने योगिनीगण तथा सूर्य को काशी में भेजा था, परन्तु वे लोग अभी तक लौट कर नहीं आये। पता नहीं, इसका क्या कारण है? काशी हमारे हृदय में बसी हुई है। यद्यपि हमारे मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान है, फिर भी काशी का वियोग रूपी दाह हमारे हृदय से नहीं जाता है। अस्तु, अब तुम स्वयं काशी जाओ। वहाँ जाने से तुम्हें अत्यन्त पुण्य प्राप्त होगा और हमारा भी शोक दूर होगा।''

हे नारद ! शिवजी की यह आज्ञा सुनकर मैं हंस पर चढ़कर काशीपुरी चल दिया। वहाँ पहुँच कर मैंने एक दुर्बल ब्राह्मण का रूप बनाया और राजा दिवोदास के पास जा पहुँचा। राजा दिवोदास मुझे देखते ही अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। तत्पश्चात् उसने मेरा बहुत

स्वागत सम्मान करते हुए तथा उचित आसन पर बैठाते हुए यह पूछा कि "हे प्रभो ! आपके आगमन का कारण क्या है?" उस समय मैंने राजा को यह उत्तर दिया—"हे राजन् ! मैं तुम्हारी नगरी में बहुत दिनों से रहता हूँ और तुमको भली-भाँति जानता हूँ। तुम्हारे समान धर्मात्मा राजा संसार में कोई और नहीं है। तुम्हारी प्रजा, सन्तान, भाई-बन्धु आदि तो अच्छी तरह है? हे नृपश्रेष्ठ ! अच्छा, अब मैं तुम्हें अपने आगमन का कारण बताता हूँ। हे राजन् ! मेरे पास शुद्ध धन तथा देवता आदि सभी उपस्थित हैं। अस्तु, मैं तुम्हारी काशीपुरी में यज्ञ करना चाहता हूँ। तुम्हारी इस राजधानी से अधिक उत्तम तीर्थ अन्य कोई नहीं है। वेदों का भी यही कहना है कि काशी शिवजी का दूसरा स्वरूप है।

हे राजन् ! तुम शिवजी की प्रसन्नता के निमित्त काशी का पालन करते हो, इसीलिए तुम्हारे ऊपर किसी की कोई युक्ति नहीं चल पाती। तुम अन्य देवताओं को शिवजी के समान मत समझना। शिवजी सब से श्रेष्ठ और सब का मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं। हे राजन् ! जो ब्राह्मण पराये हित-चिन्तक होते हैं, वह इसी प्रकार का उपदेश दिया करते हैं। इसीलिए मैंने भी तुम्हें यह उपदेश दिया है। इन बातों पर ध्यान देने से तुम्हारी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। अब तुम मुझे यज्ञ में सहायता प्रदान करो।"

हे नारद ! इतना कह कर जब मैं चुप हो गया, तब राजा ने हाथ जोड़ कर मुझ से इस प्रकार कहा—"हे ब्राह्मण ! आप यहाँ आनन्दपूर्वक यज्ञ करें और जिस वस्तु की इच्छा हो, वह मुझसे ले लें। मैं सब प्रकार से आपका सेवक हूँ तथा मेरे घर में जो भी सामग्री है, वह सब आपके लिए ही है। वेद में प्रजा का पालन राजा का सब से बड़ा धर्म कहा गया है। जिस देश में प्रजा दुःखी होती है, वहाँ वज्र से भी अधिक प्रभाव रखने वाली तीक्ष्ण अग्नि उत्पन्न होती है। वह अग्नि सब को भस्म कर डालती है। हे विप्र ! मेरा यह नियम है कि मैं सभी ब्राह्मणों का चरण-सेवक हूँ। उन्हीं की कृपा से मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होते हैं। जब मुझे

स्नान करने की इच्छा होती है तब मैं ब्राह्मण के चरण धो कर, उस जल को अपने शरीर पर डाल लेता हूँ, और जब मैं ब्रह्मभोज करता हूँ, उस समय उसे सौ यज्ञों से कम नहीं समझता। मेरी रात-दिन यही अभिलाषा बनी रहती है कि कोई अतिथि मेरे घर पधारे और मुझे अपनी सेवा करने का अवसर प्रदान करे। अस्तु, आप प्रसन्नतापूर्वक यहाँ यज्ञ कीजिये। मैं आपकी सब प्रकार से सेवा करूँगा।''

हे नारद ! यह सुन कर मैं प्रसन्न हो कर 'हरिसर' नामक स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ मैंने राजा दिवोदास की सहायता से दस अश्वमेध यज्ञ किये। तब से वह स्थान 'दशाश्वमेध तीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गंगा के समीप होने के कारण वह स्थान और अधिक पवित्र माना गया। तदुपरान्त मैंने वहाँ शिवलिङ्ग की स्थापना की और स्वयं भी वहीं स्थित हो गया। यद्यपि मैंने अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उस राजा में किसी भी प्रकार का दोष निकालने में मुझे सफलता नहीं मिली। अस्तु, काशी को सर्वगुण सम्पन्न जान कर, मैंने शिवजी के पास लौटना उचित नहीं समझा। यद्यपि मैंने शिवजी की अवज्ञा की थी, तो भी मुझे इसलिए भय नहीं था; क्योंकि मैं यह जानता था कि जो व्यक्ति काशी का सेवन करता है, उसके ऊपर शिवजी कभी क्रोध नहीं करते। वहाँ शिवजी के भक्त स्वच्छन्द विचरण करते हैं। बड़े-बड़े पापियों के पाप भी काशी में आ कर नष्ट हो जाते हैं। वहाँ अन्य किसी देवता की आज्ञा नहीं चलती। वहाँ का कोई भी प्राणी यमराज से भयभीत नहीं होता। पापियों को तो काशी में रह कर जो आनन्द मिलता है, वह वैकुण्ठ में भी कभी प्राप्त नहीं होता। जो मनुष्य काशी में शिवलिङ्ग की स्थापना करता है, वह अपने मन में किसी भी बड़े पाप से नहीं डरता। यही जान कर मैंने अपने स्थान पर शिवलिङ्ग की स्थापना की थी। जिस लिङ्ग को मैंने वहाँ स्थापित किया था उसका नाम 'ब्रह्मेश्वर' है। वह लिङ्ग सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला तथा सम्पूर्ण चिन्ताओं को दूर करने वाला है। हे नारद ! जो मनुष्य इस

कथा को सुनता है अथवा किसी दूसरे को सुनाता है, उसके भी सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।''

दसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—''हे ब्रह्मन् ! जब आप भी काशीपुरी में स्थित हो गये, तब भगवान् सदाशिव ने क्या किया, वह वृत्तान्त आप मुझे सुनाने की कृपा करें?'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिवजी निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी अपने भक्तों की प्रसन्नता के निमित्त मनुष्य के समान लीला-चरित्रों को किया करते हैं। जब मेरे आने से अधिक विलम्ब हुआ, उस समय शिवजी अत्यन्त चिन्तित हो कर विलाप करने लगे। काशीपुरी की याद करके उनके नेत्रों से आँसू बह निकले और वे इस प्रकार कहने लगे कि कैसा आश्चर्य है कि जिसे भी हम काशी में भेजते हैं, वह वहीं रह जाता है। इस प्रकार बहुत कुछ सोच विचार करने के उपरान्त शिवजी ने अपने मुख्य गणों को पास बुलाया।

हे नारद ! उन गणों में कुछ के नाम इस प्रकार—शंकुकर्ण, महाकाल, घण्टाकर्ण, महोदर, सोमनन्द, नन्दसेन, सुरतदर्भ, चण्डकेश, विन्दक, छाग, कपर्दी, पिंगलाक्ष, वीरभद्र, किरात, चतुररत्न, निकुंभ, तेजाक्ष, भारभूत, लांगल, सुखादि, दुखादि—आदि। ये गण शिवजी को अत्यन्त प्रिय हैं। जब ये लोग आ गये, तब शिवजी ने इन सब को आज्ञा दी कि ''तुम सब काशी में जा कर हमारे कार्य को सिद्ध करो। जिस प्रकार हमें स्कन्द, गणपति, शाख, विशाख, नैगमेयी, नन्दी तथा भृङ्गी प्रिय हैं, उसी प्रकार तुम सब भी मुझे अत्यन्त प्रिय हो। तुम्हें देख कर काल भी भयभीत हो जाता है। तुम सब कार्य करने में अत्यन्त कुशल हो। अस्तु, काशी में जा कर शीघ्र ही हमारा काम बनाओ। देखो, तुमसे पूर्व योगिनी, सूर्य तथा ब्रह्मा जी को भी हमने काशी में भेजा था; परन्तु उन्होंने लौट कर हमें कोई समाचार नहीं दिया और वे

स्वयं वहीं पर स्थित हो गये। इसलिए तुम वहाँ पहुँच कर बहुत सावधानी से कार्य करना और हमारी आज्ञा का भली-भाँति पालन करना। सबसे पहले तुम में से दो गण काशी जायें और वहाँ का समाचार ले कर लौटें, तदुपरान्त आवश्यकतानुसार और लोग जायें।"

हे नारद ! शिवजी की यह आज्ञा पा कर उनमें से शंकुकर्ण तथा महाकाल नामक दो गण काशी जी को चल दिये। इन्द्रजाल की माया से गुप्त हो कर वे दोनों शीघ्र ही काशी में जा पहुँचे, परन्तु जिस समय वे वहाँ पहुँचे तो उस पुरी की शोभा को देख कर उनका भी मन लौटने को न हुआ। फलस्वरूप सूर्य आदि की भाँति वे भी वहीं रह गये। उन्होंने भी वहाँ शिवलिङ्ग की स्थापना की। शिवजी की अवज्ञा करने का पाप, काशी निवास करने के कारण उन्हें भी पाप नहीं लगा। हे नारद ! सच बात तो यह है कि जो लोग एक बार काशी को प्राप्त करके, फिर उसे किसी प्रकार छोड़ देते हैं, वे मानो हाथ में आयी हुई मुक्ति को त्याग देते हैं। अस्तु, उन गणों को न लौटते देख कर शिवजी ने दो गण और भेजे, परन्तु वे भी पहले गणों की ही भाँति शिवलिङ्ग स्थापित करके काशी में ही रह गये और लौट कर शिवजी के पास नहीं पहुँचे। उस समय शिवजी को अत्यन्त चिन्ता हुई।

हे नारद ! इस अद्भुत गति को देख कर शिवजी ने चिन्ता करते हुए, अपने मन में यह विचार किया कि वास्तव में काशी परम मनोहर है, वहाँ मैं जिसे भी भेजता हूँ, वही लौट कर नहीं आता। यद्यपि अब मैं यह भली-भाँति जान गया हूँ कि जिसे भी काशी में भेजा जायेगा, वही वहाँ स्थित हो जाएगा, तो भी मैं और गणों को भेजने में नहीं चूकूँगा; क्योंकि चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण लगने पर भी अपने कार्य को नहीं छोड़ते। पूर्व जन्म के कार्यों को ही इस जन्म में संस्कार कह कर पुकारा जाता है। अस्तु, उस संस्कार को दूर करने के लिए उपाय करना ही श्रेष्ठ कहा गया है। संस्कार के बल से भोजन बनाने आदि के सब उपकरण उपस्थित हो सकते हैं और भोजन भी तैयार हो कर आ सकता है, परन्तु जब तक उपाय द्वारा उसे हाथ के आश्रय से मुँह में

नहीं डाला जाता, तब तक क्षुधा की निवृत्ति नहीं होती। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि वह उपाय से अपना मुँह कभी न मोड़े।

हे नारद ! यह निश्चय करके शिवजी ने पाँच गणों को और भेजा, परन्तु वे भी काशी में पहुँच कर फिर वहाँ से लौट कर नहीं आये। उन्होंने भी शिवलिङ्ग स्थापित करके काशी में रहना स्वीकार कर लिया। जब शिवजी ने उन्हें भी काशी में स्थित होते हुए अनुमाना, उस समय अपने मन में यह विचार किया कि यह भी अच्छी ही बात है कि हमारे गण काशी में जा-जा कर स्थित हो रहे हैं। हमारे गणों को वहाँ रहना हमारे रहने के समान ही है। जब ये सब लोग वहाँ पहुँच जायेंगे, तब पीछे से हम भी वहीं निवास करेंगे। यह विचार कर सदाशिव जी ने कण्डू आदि चार गण और भेजे। वे भी शिवलिंग स्थापित करके काशी में ठहर गये। उन चारों गणों ने जो चार शिवलिङ्ग स्थापित किये थे, उनकी महिमा संसार में प्रसिद्ध है। वे समस्त पापों को नष्ट करने वाले तथा अपने भक्तों को सम्पूर्ण आनन्द प्रदान करने वाले हैं। अस्तु, इसके उपरान्त शिवजी ने तारक आदि बाईस गणों को और भेजा। वे सब जब काशी में पहुँचे तो उन्होंने अनेक उपायों द्वारा राजा दिवोदास को धर्म-भ्रष्ट करना चाहा; परन्तु उन्हें किसी भी प्रकार अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब उन्होंने एकत्र हो कर परस्पर इस प्रकार विचार किया कि हमें सहस्त्रों बार धिक्कार है, जो हम शिवजी के गण होते हुए उनके कार्य को पूरा नहीं कर सके।

हे नारद ! उन गणों ने आपस में विचार करने के उपरान्त यह कहा कि हम शिवजी का आदेश पालन नहीं कर सके, इससे यह प्रतीत होता है मानो हम उनके शत्रु हों, इस अवज्ञा के कारण हम सब को नरक प्राप्त होगा। करोड़ों शुभ-कार्य किये जाने पर भी उन्हें आनन्द प्राप्त नहीं होता, जो लोग भगवान् सदाशिव की आज्ञा पालन करने में असमर्थ रहते हैं, उन्हें दुःख-रूप समझना चाहिए। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए जब शिव-गणों ने भगवान् सदाशिव का ध्यान किया तो उन्हें श्रेष्ठ बुद्धि की प्राप्ति हुई। वे सब गण भी राजा से छिपकर,

काशी में स्थित हो गये। उन्होंने भी अपने-अपने नाम से शिवलिङ्गों की स्थापना की। उन शिव लिङ्गों की सेवा करके सब लोग अपने-अपने मनोरथ को प्राप्त करते हैं।

हे नारद ! उन शिव लिङ्गों में 'कपर्देश्वर' लिङ्ग की महिमा सर्व प्रसिद्ध है। उसी स्थान पर विमलोदक नामक सरोवर है, जिसका जल स्पर्श करने से मनुष्य शिव के समान हो जाता है। उस कुण्ड का इतिहास भी अत्यन्त आनन्ददायक है। संक्षेप में वह इतिहास इस प्रकार है कि त्रेतायुग में एक वाल्मीकि नामक व्यक्ति परम शैव तथा जितेन्द्रिय थे। वे प्रतिदिन उसी कुण्ड में स्नान करते और उसी के तट पर बैठ कर तपस्या करते थे। एक दिन उन्होंने एक भयानक पिशाच को देखा। ऋषि ने उसे दुःखी देख कर दुःख का कारण पूछा, तदुपरान्त उसे कुण्ड के भीतर ले जा कर शिवलिङ्ग के दर्शन कराये और उसी में स्नान भी करा दिया। फिर उसके सम्पूर्ण शरीर में उन्होंने भस्म भी लगा दी। इन सब क्रियाओं के कारण वह पिशाच पाप-मुक्त हो, सुन्दर शरीर धारण कर, शिवपुरी को चला गया। उसी समय से उस कुण्ड का नाम 'पिशाचमोचन' भी प्रसिद्ध हुआ है। वहाँ एक शिवभक्त को भोजन कराने से एक करोड़ ब्रह्मभोज का फल प्राप्त होता है। इस कपर्देश्वर शिवलिङ्ग के अतिरिक्त गणों द्वारा स्थापित किये हुए लिङ्ग भी वहाँ अत्यन्त प्रतिष्ठित हैं। उन सब की सेवा भी आनन्द प्रदान करने वाली है। जो लोग उन शिवलिङ्गों की पूजा करते हैं, वे अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करते हैं। हे नारद ! जो लोग इस कथा को सुनते तथा पढ़ते हैं, उन्हें कभी दुःख प्राप्त नहीं होता और भूत-पिशाचों का भय सदा के लिए छूट जाता है। यह कथा निःसन्देह महान् आनन्द देने वाली है।"

ॐ ॐ ॐ

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! इस प्रकार अपने गणों के न लौटने पर शिवजी अत्यन्त चिन्तित हुए और विचार करने लगे कि अब वहाँ

किसे भेजा जाए। राजा दिवोदास ने मुझे अत्यन्त दुःख पहुँचाया है, जो उसने मेरा काशीवास छुड़ा दिया। अब इस समय मुझे अपना कोई भी मित्र दिखाई नहीं देता। इस प्रकार चिन्ता करने के उपरान्त शिवजी ने काशी का स्मरण किया और कहा—"जो लोग काशी में निवास करते हैं वे मानो हमारे ही उदर में स्थित हैं। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहता। जिस प्रकार हव्य को यज्ञ में जलते समय कोई भय नहीं होता, उसी प्रकार काशी में रहने वाले पापियों को भी किसी की चिन्ता नहीं रहती है। जो लोग वहाँ रह कर हमारी कथा को सुनते हैं और अपने मुख पर शिव-काशी शब्द लाते हैं, वे उच्च गति को प्राप्त करते हैं। काशी का विस्तार पाँच कोस का है। वह हमारे शरीर के ही समान है। जो लोग काशी का सेवन करते हैं, उन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। वे किसी भी प्रकार हमारे शत्रु तथा पापी नहीं हैं। जो लोग शुद्ध हृदय से हमारी भक्ति करते हैं, उन्हें काशी की महिमा भली-भाँति विदित है। यही कारण है कि हमारे गणों ने काशी में पहुँच कर, वहीं अपना निवास बना लिया, अन्यथा वे हमें छोड़ कर कहीं भी नहीं रह सकते हैं। निश्चय ही उनके भाग्य बहुत उत्तम हैं। अस्तु, अब हमें कुछ और लोगों को भी वहाँ भेज देना चाहिए।"

हे नारद ! यह विचार करके शिवजी ने गणपति को बुलाया। फिर उन्हें आदर-प्यार सहित अपनी गोद में बैठा कर इस प्रकार कहा—"हे गणपति ! काशी का राजा दिवोदास मुझे बहुत दुःख पहुँचा रहा है, क्योंकि उसके कारण मेरा काशीवास छूट गया है। उसके इस व्यवहार से देवता भी अत्यन्त दुःखी हैं। जब तक वह वहाँ राज्य कर रहा है, तब तक मैं काशी नहीं जा सकता। जिन्हें मैंने उस राजा को धर्म से पतित करने के लिए भेजे थे, वे सब भी वहीं जा कर रह गये तथा अभी तक किसी ने भी लौट कर कोई समाचार नहीं दिया है। मेरे जितने भी गण हैं, वे सब युद्ध में तो प्रवीण हैं; परन्तु उनमें तुम्हारे जैसा बुद्धिमान् कोई नहीं है। तुम्हारे भाई स्कन्द ने भी अनेक बार अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया है, परन्तु तुम प्रत्येक कार्य बुद्धि के बल से करते हो। अतः मेरी

यह इच्छा है कि अब तुम स्वयं काशी में जाओ और मेरे कार्य को पूरा करो। तुम काशी में जा कर स्थित हो जाना तथा छिपे रह कर सब गणों सहित राजा को दुःख पहुँचाना, जिससे मेरा मनोरथ सिद्ध हो सके।''

हे नारद ! इतना कह कर शिवजी तथा गिरिजा जी ने गणपति को आशीर्वाद दिया। तब वे अनेक प्रकार के उपाय सोचते हुए, काशीपुर में जा पहुँचे। वहाँ वे ज्योतिषी, ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर, नगर में घूमने लगे। जब काशीवासियों ने उन्हें देखा तो वे सब उनका बहुत आदर-सत्कार करने लगे। इस प्रकार कुछ दिनों में जब सब काशीवासी उनसे परिचित हो गये तथा आदर-सम्मान करने लगे, तब उन्होंने यह युक्ति निकाली कि वे स्वयं सब लोगों के अन्तःकारण में प्रवेश करके, उन्हें बुरे स्वप्न दिखाने लगे। इस प्रकार रात्रि में तो वे लोगों को स्वप्न दिखाते और सबेरा होते ही उनके पास जा कर स्वप्न का फल बताते थे। जितने भी दुस्वप्न हो सकते थे, वे उन सब को गणेश जी ने काशीवासियों को दिखाया तथा उनका फल भी प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया। इस प्रकार लोग भयभीत हो कर काशी छोड़ कर भागने लगे। गणपति ने किसी के ग्रहों को बुरा बताया तो किसी के भाग्य को खोटा कहा। वे कभी किसी के घर में घुस जाते और अनेक प्रकार की माया करके स्त्रियों के हृदय में सन्देह उत्पन्न किया करते थे। इसी प्रकार की बातें देख-सुन कर सब स्त्री-पुरुष गणेश जी पर विश्वास करने लगे और उन पर प्रेम भी रखने लगे। यहाँ तक कि राजा दिवोदास की पत्नी भी गणेश जी की भक्त बन गयी।

हे नारद ! काशी की स्त्रियाँ गणेश जी की प्रशंसा करती हुई परस्पर इस प्रकार कहती थीं कि जैसा ब्राह्मण यह है, वैसा हमने आज तक कहीं नहीं देखा है। यह जो कुछ भी कहता है, वह कभी मिथ्या नहीं होता। यह ब्राह्मण परम बुद्धिमान् तथा शीलवान् है। यह थोड़ा-सा जल पी कर ही प्रसन्न हो जाता है। इसके सभी कार्य अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। यह पवित्र, विचारशील, उदार तथा दयालु है। यह ज्योतिष-विद्या को भली-भाँति जानता है और सभी श्रेष्ठ गुणों की खान के समान है। इस


प्रदीप पब्लिशर्ज़



प्रकार की बातें करके वे उन्हें अपने घरों में ठहरातीं और बहुत प्रकार से आदर-सत्कार करती थीं।

हे नारद ! एक दिन राजा दिवोदास की पत्नी लीलावती ने उचित अवसर जान कर अपने पति से यह कहा—''हे स्वामिन् ! इन दिनों काशीपुरी में एक ब्राह्मण आया हुआ है। वह सम्पूर्ण विद्याओं की खान है। हे पति ! वह ब्राह्मण दर्शन करने के योग्य है। अस्तु, मेरी यह इच्छा है कि आप भी उसका दर्शन प्राप्त करें।'' रानी के मुख से यह शब्द सुन कर राजा ने प्रसन्न हो कर कहा—''हे प्रिये ! मैं अवश्य ही ऐसे ब्राह्मण का दर्शन प्राप्त करना चाहूँगा। तुम उसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ।'' यह सुन कर रानी ने अपनी एक सखी को भेज कर गणेश जी को बुला लिया। जिस समय गणेश जी राजा के समीप पहुँचे, उस समय राजा को ऐसा अनुभव हुआ मानो साक्षात् ब्रह्मतेज ही शरीर धारण किये चला आया हो। राजा ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया तथा गणपति ने भी वेद मन्त्रों द्वारा उसे आशीर्वाद दिया। दोनों ओर से कुशल-प्रश्न होने के बाद वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। दोनों ही धर्मज्ञ तथा बुद्धिमान् थे. अस्तु, गणेश जी से परिचय प्राप्त करके राजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जब गणेश जी विदा हो कर चले गये, उस समय राजा ने रानी की प्रशंसा करते हुए कहा—''हे प्रिये ! तुम ने इस ब्राह्मण के सम्बन्ध में जो प्रशंसा की थी, वास्तव में वह सर्वथा सत्य थी। यह ब्राह्मण निश्चय ही त्रिकालदर्शी है। अब मैं प्रातःकाल इस ब्राह्मण को फिर बुला कर अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न करूँगा।''

हे नारद ! प्रातःकाल होते ही राजा दिवोदास ने गणेश जी को फिर बुला भेजा और उन्हें रत्न आदि की बहुमूल्य भेंट दे कर इस प्रकार कहने लगा—''हे विप्रश्रेष्ठ ! मैंने अपने देश का धर्म पूर्वक राज्य किया है और अपनी प्रजा को पुत्र के समान पाला है। अपने धर्म के कारण मैंने अनेक प्रकार के सांसारिक भोग भी प्राप्त किये हैं तथा बहुत प्रकार के दान भी दिये हैं। ब्राह्मणों से अधिक श्रेष्ठ मैं देवताओं

को भी नहीं मानता। देवताओं ने मुझे पदच्युत करने के लिए अनेक जघन्य कार्य किये, परन्तु ब्राह्मणों का सेवक होने के कारण वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। मैंने अब तक अपने धर्म को एक पल के लिए भी नहीं छोड़ा है। इसलिए मेरी लोक में कभी निन्दा नहीं हुई है। मेरे हृदय में किसी प्रकार की अभिलाषा शेष नहीं रही है और न किसी वस्तु की इच्छा होती है। मेरा हृदय त्यागवृत्ति की ओर झुकता चला जा रहा है। न जाने मुझे यह क्या हो गया है, सो नहीं कह सकता। अब आप भली-भाँति विचार करके, मुझे इस सब का कारण बताने की कृपा करें।''

हे नारद ! राजा के इन वचनों को सुन कर ब्राह्मण रूपधारी गणेश जी ने उत्तर दिया—''हे राजन् ! तुमने जब मुझ से यह बात पूछी ही है, तो मैं इसका अवश्य उत्तर दूँगा। राजनीति तथा वेद का कथन है कि राजाओं के सम्मुख बिना पूछे कोई बात नहीं कहनी चाहिए, अस्तु, अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि तुम्हारे मन न लगने का कारण क्या है? हे नृपश्रेष्ठ ! तुम वास्तव में बड़े भाग्यशाली हो, क्योंकि ब्राह्मणों के चरण-कमलों में तुम्हारा अगाध प्रेम है। तुम्हारा शरीर यश, कीर्ति एवं विद्या से अलंकृत है। तुम्हारा तेज अग्नि के समान है और सत्य पालन में तुम साक्षात् धर्मराज के तुल्य हो।''

हे राजन् ! तुम ऊँचाई में हिमाचल पर्वत के समान और राजाओं में मनु के समान हो। इसके साथ ही पवित्रता में गंगा के समान, मुक्ति देने में काशी के समान, दाह दूर करने में मेघ के समान, संहार करने में शिव के समान, पालन करने में विष्णु जी के समान, यज्ञ करने में ब्रह्मा जी के समान, वाचालता में सरस्वती के समान तथा सुन्दरता में कामदेव के समान हो। लक्ष्मी तुम्हारे हाथ में निवास करती है। तुम्हारे मुख को देख कर जो लक्षण प्रतीत होते हैं, वह हमने तुमसे कहे हैं। अब तुम हमारी एक बात और सुनो। वह बात यह है कि आज से अठारहवें दिन उत्तर दिशा से एक ब्राह्मण तुम्हारे पास आयेगा। वह तुम्हें जिस बात का उपदेश करे, तुम उसे सत्य समझना और उसी के

अनुसार आचरण भी करना। उसकी आज्ञा मानने से तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होंगे।'' इतना कह कर ब्राह्मण रूपधारी गणपति अपने स्थान को लौट आये।

''हे नारद ! राजा दिवोदास गणपति द्वारा कहे हुए इन वचनों को अत्यन्त गुप्त रख कर समय की प्रतीक्षा करने लगा। इस प्रकार गणपति भी अपने पिता की आज्ञा का पालन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त वे अनेक स्वरूप धारण कर काशी में स्थित हो गये। जिस समय काशीपुरी राजा दिवोदास के आधीन न थी, उस समय भी गणेश जी वहाँ अनेक स्थानों पर विराजमान थे। उन्हीं सब स्थानों पर जा कर वे पुनः प्रतिष्ठित हो गये। वे सभी स्थान सिद्ध क्षेत्र हैं। जिस समय विष्णु जी ने आ कर राजा दिवोदास को काशी से भगाया और शिवजी ने मन्दराचल पर्वत से उतर कर पुनः काशी को बसाया, उस समय सर्वप्रथम शिवजी ने गणेश जी की ही प्रशंसा की थी। तदुपरान्त गणेश जी सर्वप्रथम हो कर वहीं सुख से निवास करने लगे। शिवजी ने अपनी काशीपुरी की रक्षा के निमित्त चारों ओर योगिनियों को स्थापित किया था। फिर उन्होंने सात ओर गणों को, आठवीं ओर ब्रह्मा को तथा सब ओर रक्षा करने के हेतु विष्णु जी को स्थापित किया। यह सभी गण तथा देवता अपने-अपने भक्तों को अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले हैं। शिवजी का यह चरित्र दोनों लोकों में प्रशंसनीय तथा सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूरा करने वाला है। जो लोग इस चरित्र को ध्यानपूर्वक सुनते हैं, वे दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त करते हैं।''

ॐ ॐ ॐ

बारहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! राजा दिवोदास ने अपना राज्य किस प्रकार छोड़ा तथा शिवजी मन्दराचल पर्वत से उतर कर किस प्रकार काशी जी में पहुँचे और वहाँ उन्होंने क्या-क्या चरित्र किये, यह सब आप मुझे विस्तारपूर्वक सुनाने की

कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! जब शिवजी ने यह देखा कि गणेश जी भी काशी से लौट कर नहीं आये तो उन्हें अत्यन्त चिन्ता हुई। फिर उन्होंने विष्णु जी की ओर देखते हुए यह कहा—''हे विष्णु जी ! तुम सम्पूर्ण संसार को आनन्द प्रदान करने वाले तथा सब का पालन करने वाले हो। हम तुम्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते हैं। देखो, अब तक हमने बहुत-से लोगों को काशी भेजा, परन्तु वे सबके सब वहीं स्थित हो गये। न तो उन्होंने हमारा काम ही पूरा किया और न लौट कर ही आये। पता नहीं उन्हें किस विपत्ति ने घेर लिया। अस्तु, हम तुमसे यह कहते हैं कि अब तुम्हीं जा कर हमारे कार्य को पूर्ण करो। तुम अन्य लोगों के समान वहीं मत रह जाना। अब तुम वह उपाय करो, जिससे हमारा यह कार्य भी सिद्ध हो जाए। तुम स्वयं ही बुद्धिमान् हो, अतः तुम्हें अधिक क्या समझाया जाए?''

हे नारद ! भगवान् सदाशिव के मुख से निकले हुए इन वचनों को सुन कर विष्णु जी ने कहा—''हे प्रभो ! आप परब्रह्म हैं। हमारा तो यह विश्वास है कि सम्पूर्ण यश और अपयशों को दिलाने वाले आप ही हैं। आप यदि किसी को कोई सेवा करने की आज्ञा देते हैं तो उसका सौभाग्य ही समझना चाहिए। सब लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक उपाय करते हैं, परन्तु उनकी सिद्धि आपके ही हाथ में रहती है। सभी सांसारिक कार्य आपकी कृपा के बिना निष्फल हैं। आप ही सब कर्मों के साक्षी तथा सब को जीवन-दान देने वाले हैं। सम्पूर्ण मन्त्र आप के ही अधीन रहते हैं तथा आप की कृपा से ही सब कार्यों की पूर्ति होती है। आपकी शुभ दृष्टि द्वारा ही जीव को आनन्द प्राप्त होता है। आपकी प्रदक्षिणा करके यदि किसी कार्य को किया जाए तो वह अवश्य ही सफल होता है। अब यदि आप स्वयं आज्ञा देकर इस कार्य को करने के लिए भेज रहे हैं तो मैं भी अपनी माया के बल द्वारा इसे पूर्ण करूँगा। मुझे मुहूर्त्त देखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जिस समय आपने मुझे आज्ञा दी, वह समय ही मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ है। मैं अब शीघ्र ही काशी में पहुँचता हूँ और आप

विश्वास रखें कि प्राण चले जाने पर भी मैं इस कार्य को पूर्ण करूँगा।''

हे नारद ! इतना कह कर विष्णु जी ने शिवजी को बारम्बार प्रणाम किया। तदुपरान्त वे उनकी स्तुति करते हुए काशीपुरी चल दिये। जिस समय वे काशी में पहुँचे तो वहाँ की सुन्दरता देख कर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने मस्तक नवा कर सर्वप्रथम काशी को प्रणाम किया, फिर उस स्थान को गये, जहाँ गंगा तथा वरुणा नदी परस्पर मिली हैं। उन्होंने वहाँ हाथ-पाँव धो कर आचमन किया तथा स्नान करके शिवजी का पूजा किया। जिस स्थान पर उन्होंने स्नान किया था, वह स्थान उसी दिन से पादोदक तीर्थ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जो व्यक्ति भगवान् विष्णु जी की पूजा करते हैं, उन्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्ति प्राप्त होती है। विष्णु जी ने वहाँ आदिकेशव नामक अपने स्वरूप का भी पूजन किया। जिस स्थान पर वह मूर्ति प्रतिष्ठित है, उसे श्वेतद्वीप कह कर पुकारा जाता है। वहीं क्षीरोदधि आदि अनेक तीर्थ और भी हैं। वहाँ स्नान करने से मनुष्य के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। उस तीर्थ से दक्षिण की ओर चक्रतीर्थ, गदातीर्थ, पद्मतीर्थ, रमातीर्थ, गरुड़तीर्थ, नारदतीर्थ तथा प्रह्लादतीर्थ आदि अनेक तीर्थ हैं। उन सब में स्नान करने से मनोकामना की प्राप्ति होती है और मनुष्य समस्त पापों से छूट कर मुक्ति-पद को प्राप्त करता है।''

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! विष्णु जी अपनी आदि केशव मूर्ति में प्रविष्ट हो कर काशी में स्थापित हुए और कुछ अंशों में निकल कर शिवजी के कार्य में प्रवृत्त हुए।'' यह सुन कर नारद जी बोले—''हे पिता ! विष्णु जी कुछ अंश से क्यों निकले और कहाँ गये, यह आप मुझे सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—''हे नारद ! जिस कारण से विष्णु जी का सम्पूर्ण अंश उस आदि केशव मूर्ति से

बाहर नहीं निकला, वह यह है कि जब पूर्वजन्म के पुण्य उदय होते हैं, तभी काशी का वास मिलता है। जिस प्राणी पर शिवजी की कृपा नहीं होती, वह काशी में नहीं रह पाता। जो मनुष्य काशी में नहीं रहते, उनके जन्म को व्यर्थ समझना चाहिए। संसार के सभी तीर्थसेवकों के समान काशी की सेवा किया करते हैं। काशी परमश्रेष्ठ और तीनों लोकों से न्यारी है। काशी में मृत्यु होने पर स्वर्ग से भी अधिक आनन्द प्राप्त होता है।

हे नारद ! यही कारण था कि विष्णु जी अपने पूर्ण अंश से आदि केशव रूप धारण कर काशी में स्थित हुए और अपने छोटे-से अंश से उस मूर्ति से निकल कर, काशी में भ्रमण करने लगे। गरुड़ और लक्ष्मी भी उनकी मूर्ति से कुछ दूर उत्तर की ओर स्थित हुईं। जिस स्थान पर गरुड़ तथा लक्ष्मी स्थित हुईं, उसे धर्म क्षेत्र कहा जाता है। उसके दर्शन से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। अस्तु, विष्णु जी ने अपना स्वरूप इस प्रकार का धारण किया जो तीनों लोकों को मोहित करने वाला था। उन्होंने श्रेष्ठ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो, अपने को पुण्यकीर्ति नाम से प्रसिद्ध किया। गरुड़ भी उनके शिष्य बन कर विनयकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुए। लक्ष्मी जी भी मनुष्यों के समान स्वरूप धारण कर गोमोक्ष नाम से विख्यात हुईं। सब लोग इन तीनों के सुन्दर स्वरूप को देख कर मोहित होने लगे। फिर विष्णु जी विभिन्न प्रकार के चरित्रों द्वारा काशीवासियों को मोहित करने लगे।

हे नारद ! जिस समय काशीवासी झुण्ड के झुण्ड विष्णु जी का दर्शन करने के लिए आते, उस समय विष्णु जी और गरुड़ जी, गुरु-शिष्य की भाँति आपस में इस प्रकार वार्तालाप करने लगते थे। शिष्य गरुड़ जी, जिन्होंने अपना नाम विनयकीर्ति रख छोड़ा था, पुण्यकीर्ति नामक विष्णु जी की स्तुति करते हुए कहते—"हे गुरु जी ! आप उस धर्म का वर्णन करने की कृपा कीजिये, जिससे संसार को आनन्द प्राप्त हो।" गरुड़ की बात को सुन कर विष्णु जी मन ही मन मुस्कुराकर तथा उच्च-स्वर से सब लोगों को सुना कर इस प्रकार उत्तर देते—हे

शिष्य ! यह सृष्टि अनादि है, पुरातन काल से यह इसी प्रकार चली आती है। इसे उत्पन्न करने वाला कोई नहीं है। यह स्वयं ही प्रकट होती है और स्वयं ही नष्ट हो जाती है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी जीव बारम्बार जन्म लेते हैं और बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं। आत्मा को ही ईश्वर समझना चाहिए। आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई किसी का स्वामी नहीं है। ब्रह्मा आदि बड़े देवताओं को भी काल ने नहीं छोड़ा। इस बात पर जो विश्वास रखता है, उसी को बुद्धिमान् समझना चाहिए। हे शिष्य ! संसार में न कोई बड़ा है और न कोई छोटा। न कोई सुखी है और न कोई दुःखी आहार-विहार में सब एक समान हैं। अच्छा-बुरा भी कोई नहीं है। किसी को न तो पाप लगता है और न कोई निष्पाप रहता है। भोजन सब को तृप्त करता है और पानी सब की प्यास बुझाता है। मृत्यु का भय ऐसा है जो देवताओं को भी लगा रहता है। ब्रह्मा और विष्णु जी भी उससे भयभीत रहते हैं। जितने भी शरीरधारी हैं, वे सब विद्या, बुद्धि और ज्ञान के कारण एक से हैं। संसार में मनुष्य को केवल एक ही बात का ध्यान रखना चाहिए और वह बात यह है कि किसी भी जीव को दुःख देना पाप है। प्राणियों पर दया करने के समान अन्य कोई धर्म नहीं है।

"हे शिष्य ! दान चार प्रकार के होते हैं—रोगी को औषध देना, भयभीत का भय छुड़ाना, भूखे को भोजन कराना तथा विद्यार्थी को विद्यादान देना। औषध और मन्त्र के प्रभाव से धन एकत्र करना चाहिए और उससे अपने शरीर का पालन करना चाहिए। सुख को स्वर्ग और दुःख को नरक समझना चाहिए। वेद में प्रवृत्ति और निवृत्ति नामक जो दो प्रकार की मान्यताएँ हैं, उनका ठीक आशय यही है कि जीव-हिंसा प्रवृत्ति और जीवों पर दया निवृत्ति है। वेदान्त का यह वचन है कि प्रत्यक्ष से बढ़ कर प्रमाण योग्य और कोई बात नहीं है। तुम अपने मन में विचार करके स्वयं देखो कि जो लोग यज्ञ में जीवों को बलिदान करके उन्हें मार डालते हैं और स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से अग्नि में तिल, घी आदि को जलाते हैं, भला इस सब से बढ़ कर आश्चर्य और

क्या होगा? यह तो बिल्कुल व्यर्थ की बातें हैं।''

हे नारद ! इस प्रकार पुण्यकीर्ति नामक विष्णु ने धर्म के विपरीत बहुत-सी बातें कहीं। उन बातों को सुन कर काशी-निवासी मोहित हो गये और पुराने धर्म से उनका चित्त उचटने लगा। जिस प्रकार विष्णु जी ने पुरुषों को मोहित किया, उसी प्रकार लक्ष्मी जी ने भी स्त्रियों को बौद्धधर्म का उपदेश करके उन्हें उल्टी बातें सिखा दीं तथा उन्हें अपने अधीन कर लिया। उन्होंने स्त्रियों को केवल शरीर पालन करने की शिक्षा दी तथा अपने उपदेश से पातिव्रत धर्म को व्यर्थ सिद्ध कर दिया। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म को समाप्त कर देने वाले अनेक उपदेश किये। हे नारद ! उनके उपदेश का सारांश यह था—

वेद जिसे आनन्द स्वरूप ब्रह्म कहते हैं, वह अन्यत्र नहीं है, अपितु उसका तात्पर्य यह है कि जब तक इस शरीर की इन्द्रियाँ शिथिल नहीं होतीं, तब तक खूब आनन्द उपभोग करना चाहिए। परोपकार के लिए इस प्रकार तैयार रहना चाहिए कि यदि कोई मनुष्य अपना शरीर माँगे तो उसे भी दान कर देना चाहिये। उसकी उत्पत्ति पर भी धिक्कार है। कौए, कुत्ते, सियार, कीड़े आदि इसे अपना भक्ष्य बनाते हैं। यह एक न एक दिन अवश्य ही जल जाता है। तब इसे रखने से भी क्या लाभ? यदि अन्य जीवों को इसके द्वारा कोई लाभ पहुँच सके तो वह उत्तम है। यदि सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाला ब्रह्मा जी को माना जाए तो सब लोग आपस में भाई के समान हैं। फिर उन्होंने परस्पर विवाह करके अधर्म क्यों किया है? इससे सिद्ध होता है कि इस सृष्टि को उत्पन्न करने वाला ब्रह्मा नहीं है। इस संबन्ध में वेद जो कहते हैं, वह मिथ्या है। वेदों के कहने पर कभी नहीं चलना चाहिए। जिन चार वर्णों का वर्णन किया जाता है, यदि उन पर विचार किया जाए तो वह भी मिथ्या प्रतीत होता है; क्योंकि यह शरीर पंच-तत्त्वों से उत्पन्न होता है और उसी में मिल जाता है। इस प्रकार जब सभी लोग पंच-तत्त्वों से उत्पन्न हुए हैं, तब उनमें अलग-अलग वर्ण किस प्रकार हो सकते हैं? अस्तु, जाति के विचार को झूठा समझना चाहिए और यह जानना

चाहिए कि सब मनुष्य परस्पर एक समान हैं।

हे नारद ! इस प्रकार बहुत-सी बातें करके लक्ष्मी ने स्त्रियों के पातिव्रत धर्म को छुड़ा दिया। विष्णु जी और लक्ष्मी के इन उपदेशों का काशी की प्रजा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सब लोग अपने धर्म को त्याग कर अपनी इच्छानुसार भोग-विलास करने लगे। सब पुरुष स्त्रियों के कहने में चल उठे। स्त्रियाँ जो कहतीं उसी के अनुसार वे आचरण करते थे। इस प्रकार धर्म-विरुद्ध आचरण करने से सब ओर पाप फैल गया। उस समय राजा दिवोदास ने ब्राह्मणरूपी गणपति का स्मरण कर, राज्य-कार्य से अपना हाथ खींच लिया। अपनी प्रजा की ऐसी दशा देख कर, उनकी बात को सत्य समझ कर वह इस प्रतीक्षा में रहने लगा कि कब दूसरा ब्राह्मण आवे और मेरे मन के दुःख को दूर करें। इसी चिन्ता में वह दिन-रात निमग्न रहता था।''

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—हे नारद ! जब अठारहवाँ दिन आया तो राजा दिवोदास नित्यकर्म से निवृत्त हो कर गणपति जी द्वारा बताये गये ब्राह्मण की बाट देखने लगा। उसी दिन मध्याह्नकाल में विष्णु जी ब्राह्मण का स्वरूप बनाये हुए, अन्य कई ब्राह्मणों को अपने साथ लिये, अग्नि के समान तेज धारण कर, उसके पास जा पहुँचे। राजा ने जब दूर से उन्हें आते हुए देखा तो यह समझ कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि वही उपदेश करने वाले ब्राह्मण चले आ रहे हैं। अस्तु, राजा ने अगवानी कर उन्हें प्रणाम किया। तदुपरान्त उन्हें अपने अन्तःपुर में ले जा कर पूजन, भजन तथा सेवन के उपरान्त अत्यन्त सम्मानपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठाया एवं उत्तमोत्तम वस्तुएँ भेंट दे-दे कर उनकी अनेक प्रकार से स्तुति प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहने लगा।

राजा बोला—''हे महात्मन् ! मैं कुछ दिनों से बहुत दुःखी रहा करता हूँ। इस दुःख का कारण मेरी समझ में नहीं आता। आप मुझे

कोई ऐसा उपाय बताइये, जिसके करने से मेरे मन का दुःख दूर हो और आनन्द की प्राप्ति हो। इसी चिन्ता में मुझे एक मास का समय व्यतीत हो गया है, परन्तु मेरा कष्ट कुछ भी दूर नहीं हुआ है।'' इतना कह कर राजा दिवोदास ने अपने राज्य-पालन, प्रताप, ब्राह्मणों की सेवा आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। फिर कहा—''हे प्रभो ! मुझे अपने दुःख का कारण यह जान पड़ता है कि मैंने अपने तपोबल के गर्व में भर कर सभी देवताओं को तृण के समान समझा है। अब मेरी यह दशा है कि मैंने जिन भोगों को आनन्दपूर्वक भोगा, वे ही मुझे रोग के समान प्रतीत होते हैं। वैसे तो यह नियम है कि यदि मनुष्य एक कल्पतक भी जीवित रहे, तो भी भोगों से तृप्त नहीं होता, परन्तु मेरी अभी से यह दशा हो गयी है कि मुझे राज्य चलाना चक्की चलाने के समान भार स्वरूप लगता है। अस्तु, आप कृपा करके कोई ऐसा उपदेश कीजिये, जिससे मैं इस आवागमन के चक्कर से छूट जाऊँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप जो भी उपदेश मुझे करेंगे, उसे मैं श्रद्धापूर्वक अवश्य स्वीकार करूँगा। मुझे आपके दर्शनों से अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है। अब आप मुझे वास्तविक आनन्द प्रदान करने की कृपा करें।

''हे प्रभो ! मुझे यह भी अनुभव होता है कि देवताओं से विरोध करके आज तक किसी ने आनन्द प्राप्त नहीं किया है। राजा बलि, त्रिपुर, वृत्रासुर, उपव्रत, दधीचि तथा सहस्त्रबाहु आदि की कथाएँ इसका प्रमाण हैं। परन्तु मुझे देवताओं के विरोध का इसलिए कोई भय नहीं है कि मैंने ब्राह्मणों की सेवा करके अत्यन्त सम्मान पाया है। जिस प्रशंसा को देवताओं ने यज्ञ, जप, तप आदि द्वारा प्राप्त किया है, उसी प्रशंसा को मैंने ब्राह्मणों की सेवा द्वारा सहज ही प्राप्त कर लिया है। अस्तु, ब्राह्मणों का कृपा पात्र होने के कारण मैं देवताओं से किसी भी प्रकार कम नहीं हूँ। अब मेरी यह इच्छा है कि आप मुझे उचित उपदेश देकर आवागमन से छुड़ा दें।''

हे नारद ! राजा दिवोदास की बातें सुन कर ब्राह्मण रूपी विष्णु जी

ने उसकी बहुत प्रशंसा करते हुए कहा—"हे राजन्! हमें जो कुछ कहना था, उसे तुम स्वयं ही कह चुके हो। तुम्हारा कथन पूर्णतया सत्य है। हम तुम्हारे प्रताप को अच्छी तरह जानते हैं। तुम्हारे समान न तो कोई राजा हुआ है और न होगा ही। तुमने देवताओं के साथ भी कोई शत्रुता नहीं की है; क्योंकि तुमने अपनी प्रजा का पालन इस श्रेष्ठ प्रकार से किया है कि उससे देवता भी अत्यन्त आनन्दित हैं, परन्तु हमें तुम्हारा एक ही पाप मालूम होता है। तुमने शिवजी को काशी जी से दूर कर दिया, यह तुमसे बड़ा भारी पाप हो गया है। यदि इस पाप को तुम किसी प्रकार नष्ट कर दो तो, तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायेंगे। इसका केवल एक ही उपाय है, वह हम तुम्हें बताते हैं। वेद का कथन है कि जो मनुष्य शिवलिंग की स्थापना करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य के शरीर में जितने रोम हैं, उतने पाप एक शिवलिंग की स्थापना करने से नष्ट हो जाते हैं। विशेष करके काशी में शिवलिंग की स्थापना करने वाले को किसी पाप से स्वप्न में भी भयभीत नहीं होना चाहिए। जो प्राणी काशी में शिवजी का एक भी लिंग स्थापित कर दे, उसके सम्बन्ध में यह समझना चाहिए, मानो उसने बहुत-से देशों में शिवलिंग स्थापित किये हैं। इसलिए तुम्हें यह उचित है कि तुम भी काशी जी में शिवलिंग की स्थापना करो। इससे तीनों लोकों में तुम्हारा यश फैलेगा और तुम अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करोगे।"

हे नारद! इतना कह कर विष्णु जी कुछ देर के लिए चुप हो गये। फिर कुछ मन्त्रों का पाठ करके, राजा के शरीर को अपने हाथ से स्पर्श करते हुए इस प्रकार बोले—"हे राजन्! हमने ज्ञान दृष्टि से जो कुछ देखा है, अब उसे तुम्हें बताते हैं। तुम अत्यन्त ज्ञानी तथा सर्वगुणसम्पन्न हो। जिस मनुष्य को धन अथवा देश प्राप्त करने की इच्छा हो, उसे प्रातःकाल प्रतिदिन तुम्हारा नाम लेना चाहिए। तुम्हारे पास आकर हमें भी बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है।" इतना कह कर ब्राह्मण वेषधारी विष्णु जी बारम्बार हँसने तथा मस्तक हिलाने लगे। तदुपरान्त मन ही

मन गुनगुनाते हुए बोले—"इस राजा के बड़े भाग्य हैं। यह अब निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करेगा क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदि देवता और ऋषि-मुनि जिन शिवजी का हर समय ध्यान करते हैं, वे शिवजी स्वयं प्रतिदिन इस राजा का स्मरण करते हैं। तीनों लोकों में इसके समान भाग्यशाली अन्य कोई नहीं है।"

हे नारद ! इस प्रकार मन ही मन गुनगुनाने के पश्चात् विष्णु जी ने राजा से फिर कहा—"हे राजन् ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तुम इसी शरीर से परमपद को प्राप्त करोगे। जिस समय तुम शिवजी का लिंग स्थापित करोगे, उस समय तुम आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाओगे। आज के सातवें दिन शिवजी के गण तुम्हें लेने के लिए आवेंगे। तुम भले ही इस लाभ को किसी अन्य पुण्य का फल समझो, परन्तु हम तो इसे काशी-सेवन का ही माहात्म्य समझते हैं। काशी में निवास करने के कारण ही तुमने इस उच्च पद को प्राप्त किया है। तुम्हारे दर्शन का बड़ा फल है।" उनकी बात सुन कर राजा दिवोदास अत्यन्त प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़ कर कहने लगा—"हे प्रभो ! आपने मुझे भवसागर से पार उतार दिया। अब यदि मैं आपको कुछ भेंट करूँ तो वह सब इस उपकार के देखते हुए अत्यन्त तुच्छ होगा।" राजा के ऐसे वचन सुन कर विष्णु जी उसे आशीर्वाद देने के उपरान्त विदा हो गये और अपने काशी के स्थान में स्थित हुए। तदुपरान्त उन्होंने गरुड़ को शिवजी के समीप भेजा और उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। फिर अग्निबिन्दु ब्राह्मण पर कृपा करके, उन्होंने उस देश का राज्य उसे दे दिया और स्वयं पंचनद के ऊपर बैठ कर, प्रेमपूर्वक शिवजी का ध्यान करने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

पन्द्रहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! आप मुझे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनाइये।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद !

सुनो, ब्राह्मणरूपी विष्णु जी से उपदेश प्राप्त कर राजा दिवोदास ने अपने सेवकों द्वारा सभी राजा, प्रजा, मन्त्री मण्डलेश्वर, पारिवारिक-जन, पुरोहित, सेनापति, वेदपाठी, यज्ञ कराने वाले तथा राजकुमारों को बुलाया। तदुपरान्त उसने अपने बड़े पुत्र रिपुंजय एवं सब स्त्रियों को भी बुलाया। जब सब लोग आ गये, तब राजा ने ब्राह्मण वेषधारी विष्णु जी की कही हुई सब बातों को सुना कर, उनसे इस प्रकार कहा—''हे स्वजनो ! अब हम इस पृथ्वी पर सात दिन तक और हैं, तदुपरान्त शिवलोक को चले जायेंगे। इसलिए आप मेरे बड़े पुत्र रिपुंजय को राज्य पद पर आसीन कर दीजिये और मुझे अपनी सेवा से निवृत्त कीजिये।''

हे नारद ! राजा दिवोदास की यह बात सुन कर सब लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, परन्तु भय के कारण किसी ने कुछ नहीं पूछा। तदुपरान्त राजा ने सम्पूर्ण सामग्री एकत्र करवा कर, शुभ-लग्न में अपने पुत्र रिपुंजय का अभिषेक कर दिया। इसके पश्चात् राजा ने गंगा के पश्चिम की ओर एक विशाल शिव मन्दिर का निर्माण कराया। उसने अन्य देशों को जीत कर जितना धन एकत्र किया था और जो धन श्रेष्ठ रीति-नीति द्वारा संग्रह हुआ, उस धन को शिवालय बनवाने में व्यय कर दिया। फिर उसने उस मन्दिर में नरेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की। उसका स्मरण करने मात्र से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। शिवलिंग स्थापना करने पर राजा के हृदय में प्रसन्नता भर गयी और उसका मुख सूर्य की भाँति चमकने लगा। सम्पूर्ण सामग्री एकत्र करके शिवलिंग की षोडषोपचार विधि से पूजा की। उस पूजन के कारण राजा के हृदय में जो थोड़ा बहुत दुःख अथवा विरक्ति का भाव बच गया था, वह भी नष्ट हो गया। उसने काशी में स्थापित अन्य शिवलिंगों की भी पूजा की। पूजन और प्रणाम करने के उपरान्त वह एक स्थान पर ध्यान मग्न हो कर बैठ गया।

हे नारद ! विष्णु जी के बताये अनुसार जब सातवाँ दिन आया उस दिन एक अत्यन्त श्रेष्ठ विमान आकाश से उतर कर उस स्थान पर आ

पहुँचा, जहाँ राजा दिवोदास बैठा हुआ था। उस विमान में चारों ओर शिवजी के गण बैठे हुए थे। उन सब गणों की चार-चार भुजाएँ थीं और उनके शरीर से निकलने वाला सूर्य के समान प्रकाश सब ओर फैल रहा था। वे सब अपने हाथ में त्रिशूल लिये हुए थे। देखने में साक्षात् शिवजी के समान ही प्रतीत होते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि सम्पूर्ण संसार की सुन्दरता उस विमान में हो।

हे नारद ! उन शिवगणों ने विमान से उतर कर राजा के शरीर को स्पर्श किया, जिसके कारण उसका शरीर दिव्य हो गया और शिवगणों के समान ही उसके शरीर में भी वे ही सब चिह्न प्रकट हो गये। तदुपरान्त वह विमान पर बैठ कर समस्त गणों के साथ शिवजी के लोक को चला गया। इस प्रकार वह शिवगणों में गिना गया और उसे मोक्ष की प्राप्ति हुई। जिस स्थान से शिवजी के गण राजा को विमान में बैठा कर शिवलोक ले गये थे, वह स्थान भूपश्री के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। जिस लिंग की राजा दिवोदास ने स्थापना की थी, वह दिवोदासेश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है। उस शिवलिंग की पूजा करने से आवागमन का भय नष्ट हो जाता है तथा मनुष्यों को अपनी सम्पूर्ण मनोकामनाएँ प्राप्त होती हैं। हे नारद ! जो कोई इस कथा को सुनता अथवा दूसरे को सुनाता है, उसे भी इस लोग में सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं तथा परलोक में शुभगति मिलती है।''

ॐ ॐ ॐ

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! विष्णु जी की आज्ञानुसार गरुड़ शिवजी के समीप पहुँचे। उस समय शिवजी ने उनसे पूछा—''हे गरुड़ ! तुम कहाँ से आ रहे हो?'' गरुड़ बोले—''हे प्रभो ! आप सब कुछ जानते हुए भी संसारी रीति के अनुसार जो यह बात मुझ से पूछ रहे हैं, वह भी आपकी लीला ही है। इतना कह कर गरुड़ ने योगिनीगण, गणेश जी, ब्रह्मा एवं विष्णु जी की सब कथा शिवजी को कह सुनायी

और बताया कि इस समय मुझे विष्णु जी ने आपके पास भेजा है।

हे नारद ! गरुड़ की बात सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा गिरिजा भी आनन्दमग्न हो गयीं। शिवजी के सब गण परम प्रसन्न हुए। तदुपरान्त शिवजी ने गरुड़ से इस प्रकार कहा—"हे गरुड़ ! तुम हमारे परम हितैषी हो। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह हम से वर माँग लो।" श्री शिवजी के श्रीमुख से ऐसे वचन सुन कर गरुड़ ने कहा—"हे प्रभो ! मैंने आपके चरणों के दर्शन प्राप्त किये, इससे बढ़ कर अन्य किसी भी वस्तु की मुझे इच्छा नहीं है। जब आप मुझ पर इतने प्रसन्न हैं तो मुझे यह निश्चय हो गया है कि मैं आपकी माया के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर चुका हूँ। मेरे लिए यही सब से बड़ा वरदान है। हे स्वामी ! यदि आप प्रसन्न हो कर मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यही माँगता हूँ कि मुझे आपके चरण-कमलों की भक्ति प्राप्त हो।"

हे नारद ! गरुड़ के ऐसे श्रेष्ठ वचन सुन कर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहते हुए, उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। तदुपरान्त शिवजी ने सब लोगों को बुला कर काशी चलने की तैयारी की। उस समय मन्दराचल पर्वत अत्यन्त दुःखी हो कर शिवजी के चरणों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़ कर कहने लगा—"हे प्रभो ! आप मुझे इस प्रकार त्याग कर मत जाइये।" मन्दराचल की प्रार्थना सुन कर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुम अपने मन में चिन्ता मत करो। हम तुमसे अत्यन्त स्नेह करते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हें कभी क्षण भर के लिए भी नहीं भूलेंगे तथा लिंग रूप हो कर यहां सदैव स्थित रहेंगे।" इस प्रकार बहुत कुछ समझा-बुझा कर शिवजी ने मन्दराचल के हृदय का दुःख दूर किया और लिंग रूप धारण कर अपने एक अंश से स्थित हो गये। तदुपरान्त शुभ लग्न का विचार कर शिवजी, गिरिजा तथा अन्य गणों सहित काशीपुरी को चले। चलने के पूर्व शिवजी ने गरुड़ को यह आज्ञा दी कि तुम आगे जा कर विष्णु जी को हमारे आगमन का समाचार दो। अस्तु, गरुड़ वहाँ से चल कर सीधे विष्णु जी के समीप

जा पहुँचे। जिस समय विष्णु जी अग्निविन्दु को उपदेश दे रहे थे, उसी समय गरुड़ ने पहुँच कर उनके चरण-कमलों में अपना मस्तक झुकाया।"

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! विष्णु जी को प्रणाम करने के उपरान्त गरुड़ ने उन्हें यह शुभ समाचार दिया कि शिवजी, गिरिजा जी तथा अन्य गणों सहित यहाँ पधार रहे हैं। इस सन्देश को सुन कर विष्णु जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसी समय उन्होंने यह देखा कि शिवजी अपनी सेना सहित काशीपुरी में प्रवेश कर रहे हैं। उनकी भुजाएँ सहस्त्रों सूर्यों के समान चमक रही थीं, जिनसे चारों ओर प्रकाश फैल रहा था। अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे तथा जय-जयकार का शब्द हो रहा था। विष्णु जी ने उस दृश्य को देख कर 'जय शिव, जय शिव' शब्द का उच्चारण किया। तदुपरान्त अग्निविन्दु से यह कहा कि तुम हमारे चक्र को स्पर्श कर लो, इससे तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जाएगी। विष्णु जी की आज्ञानुसार अग्निविन्दु ने जब चक्र का स्पर्श किया तो उसे मुक्ति प्राप्त हुई। तत्पश्चात् विष्णु जी ने गरुड़ को भेज कर ब्रह्मा को बुलाया, साथ ही योगिनीगण, सूर्य तथा गणेश को भी ले आने की आज्ञा दी। कुछ देर में जब ये सब लोग आ गये, उस समय विष्णु जी प्रसन्नतापूर्वक शिवजी की अगवानी करने के लिए चले।

हे नारद ! जिस समय शिवजी ने काशीपुरी में प्रवेश किया, उसी समय विष्णु जी, ब्रह्मा, गणपति आदि ने उनके समीप पहुँच कर दण्डवत्-प्रणाम किया। शिवजी ने उन सब को आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया तथा गणपति का मस्तक सूँघ कर उन्हें अपने आसन पर बैठा लिया। उस समय शिवजी की इच्छानुसार योगिनीगण मंगल गान करने लगीं तथा बारहों सूर्य स्तुति गान करने लगे। शिवजी ने विष्णु जी को आसन पर बायीं ओर तथा मुझे दाहिनी ओर बैठाया। और गणों

की ओर कृपा-दृष्टि करके, उन्हें भी प्रसन्नता प्रदान की। फिर योगिनीगण एवं सूर्य को बैठने की आज्ञा दे कर हर्षित किया।

हे नारद ! उस समय मैंने शिवजी को प्रसन्न देख कर यह कहा— "हे प्रभो ! मैं आपकी सेवा नहीं कर सका, इस अपराध के लिए मुझे क्षमा प्रदान करें। आपकी यह काशीपुरी है ही ऐसी कि इसमें आने के बाद मेरा मन किसी भी प्रकार लौटने को न हुआ।" मेरे मुख से यह शब्द सुन कर शिवजी बोले—"हे ब्रह्मन् ! तुम अपने मन में किसी प्रकार का भय मत करो। मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमने अश्वमेध यज्ञ किये हैं, इसलिए तुम्हारे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं। इस सब के साथ ही तुमने काशीपुरी में हमारे लिंग की स्थापना भी की है, इससे तुम्हारा यश और भी अधिक बढ़ गया है। जो मनुष्य काशी में एक भी लिंग की स्थापना करता है, उसके सहस्त्रों पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर भी ब्राह्मण कभी भी दंड के योग्य नहीं है। जो लोग ब्राह्मणों को दंड देते हैं, उनका सम्पूर्ण सुख-वैभव थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाता है।"

हे नारद ! इस प्रकार मुझे सान्त्वना दे कर, शिवजी ने योगिनी, सूर्य तथा गणों की लज्जा को भी दूर कर दिया। तदुपरान्त उन्होंने विष्णु जी की ओर देखा, परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा। उस अवसर पर शिवजी तथा विष्णु जी मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए। सभा में उपस्थित सभी लोग शिवजी की जय-जयकार करने लगे। शिवजी और गिरिजा ने भी अत्यन्त प्रसन्न हो कर सब लोगों की ओर कृपा-दृष्टि से देखा। जब यह आनन्द हो रहा था, उसी समय गोलोक से पाँच गौ आकार शिवजी के सम्मुख खड़ी हो गयीं। हे नारद ! तुम्हें यह बात जान लेनी चाहिए कि गोलोक शिवजी को अत्यन्त प्रिय है और उस लोक की सेवा करने का भार उन्होंने विष्णु जी को सौंपा है। उस लोक का नाम सुनने मात्र से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। जो पाँच गौ शिवजी के सम्मुख आकर खड़ी हुई थीं, उनके नाम इस प्रकार थे : 1. सनन्द, 2. सुमना, 3. शिवा, 4. सुरभि तथा 5. कपिला। शिवजी ने उन गौओं की ओर प्रसन्नतापूर्वक देखा, तो उनके थनों से दूध टपक कर पृथ्वी पर गिरने

लगा। जिस स्थान पर उनके थनों से दूध टपका, वह कुण्ड-रूप हो गया और कपिलाह्रद् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस कुण्ड में स्नान करने से कोई पाप नहीं रहता। तदुपरान्त शिवजी की आज्ञा से सब देवताओं ने उस कुण्ड में स्नान एवं तर्पण किया। फिर सब लोग शिवजी से इस प्रकार बोले—"हे प्रभो ! इस कुण्ड में स्नान करके हम सब अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अस्तु, हमारी यह इच्छा है कि इस स्थान की महिमा अत्यन्त महान् हो।"

हे नारद ! देवताओं की यह प्रार्थना सुन कर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे देवताओ ! हम आशीर्वाद देते हैं कि यह तीर्थ अत्यन्त महान् होगा। जो मनुष्य इस कुण्ड में तर्पण श्राद्ध आदि करेगा, उसे गया में श्राद्ध करने से भी अधिक फल की प्राप्ति होगी। इस तीर्थ को सब लोग शिवगया तीर्थ कह कर पुकारेंगे तथा हमारे वृषभध्वज नाम का स्मरण करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाया करें। काशी के भीतर चारों युगों में दूध, दही, घृत तथा मक्खन वर्तमान रहेंगे। हम सब लोग यहाँ अंश रूप से सदैव स्थित रहेंगे तथा अपने भक्तों को वर प्रदान किया करें। यहाँ किसी की किसी भी दशा में, किसी भी कारण मृत्यु क्यों न हो, वह अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त करेगा। जिस समय शिवजी काशी को यह वर दे रहे थे, उसी समय नन्दीश्वरगण वहाँ आ पहुँचे और दोनों हाथ जोड़ कर प्रेमपूर्वक शिवजी की स्तुति करने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर ने कहा—"हे प्रभो ! मैंने आपकी आज्ञानुसार आठ बैलों का रथ सजाया है। उन सभी बैलों के कंठ में घंटे बँधे हुए हैं। उनके साथ ही आठ घोड़े भी, जो वस्त्रालंकारों से अलंकृत हैं, रथ में जुत रहे हैं। सूर्य, चन्द्रमा, पवन, गंगा, सरस्वती, ब्रह्म आदि सब अपने-अपने स्थान पर सुशोभित हैं। अस्तु, आप कृपा करके उस रथ पर विराजमान हों।" इस प्रकार कह कर नन्दीश्वर चुप हो गये। उस समय मैं, विष्णु

जी तथा अन्य सब देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए। शिवजी ने भी प्रसन्न हो कर हम सब को पहले तो भक्ति का वरदान दिया, फिर चलने की तैयारी की। उस समय देव माताओं ने शिवजी का नीराजन किया तथा अनेक प्रकार के मंगल मनाये। सब लोगों के कंठ से शिवजी का जय-जयकार गूँज उठा, एवं अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। तदुपरान्त विष्णु जी ने शिवजी को हाथ पकड़ कर आसन से उठाया और उन्हें रथ की ओर ले चले।

हे नारद ! उस समय की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। शिवजी के गण अपने-अपने डमरू बजाने लगे। उसका शब्द सम्पूर्ण दिशाओं में भर गया। तदुपरान्त तीनों लोकों के निवासी उस स्थान पर आ पहुँचे। हम उनका संक्षेप में वर्णन करते हैं। तैंतीस करोड़ इन्द्र आदि देवता, दो करोड़ तुरंगगण, एक करोड़ भैरव दल, नौ करोड़ चामुण्डा दल तथा वीरभद्र की सेना, आठ करोड़ बालखिल्य ऋषि, छियासी सहस्त्र ब्रह्मज्ञानी मुनि, सात करोड़ गणेश जी के गण, जिनका स्वरूप गणेश जी के ही समान था, असंख्य गृहस्थ ब्राह्मण, आठ करोड़ पाताल के निवासी नाग आदि, तीन करोड़ शिवजी के गण, दो-दो करोड़ दनु तथा दिति की सन्तानें अर्थात् दानव और दैत्य, आठ करोड़ गन्धर्व, पचास लाख राक्षस तथा यक्ष, आठ सहस्त्र पंखधारी तथा पंखहीन पर्वत, छः अयुत गरुड़, एक अयुत विद्याधर, साठ सहस्त्र ईश्वर, तीन सौ वंशपति, आठ लाख शरीर धारण किये वनौषधियाँ, सात उत्तम-उत्तम रत्न लिए हुए समुद्र, तीन सहस्त्र तथा पाँच अयुत नदियाँ एवं आठों दिक्पाल उस स्थान पर आ पहुँचे।

हे नारद ! ये सब शिवजी को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा विविध प्रकार से उनकी सेवा करने लगे। उन सब को सेवा करते हुए देख कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन सब की ओर कृपा-दृष्टि से देख कर आशीर्वाद प्रदान करने लगे। इसके उपरान्त शिवजी उस रथ पर आरूढ़ हुए। गिरिजा को उन्होंने अपने वाम भाग में बैठाया। जिस समय शिवजी गिरिजा सहित रथ पर बैठे, उस समय इन्द्र आदि

देवताओं ने उनकी बहुत प्रकार से स्तुति की। तदुपरान्त शिवजी काशी के भीतर प्रविष्ट हुए। अपने शरीर काशी को देख कर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई और अपने मुख से 'जय काशी, जय आनन्दवन' आदि शब्दों का उच्चारण करने लगे। स्नेह की अधिकता के कारण उनका कण्ठ गद्‌गद हो गया। उस समय शिवजी के परमभक्त जैगीषव्य ने पर्वत की कन्दरा से निकल कर शिवजी के दर्शन किये। शिवजी ने भी उन्हें अपने समीप बुला कर प्रसन्न किया। तदुपरान्त शिवजी काशी निवासी ब्राह्मणों का सत्कार करते हुए वरुणा नदी के समीप पहुँचे। वहाँ हिमाचल के बनाये हुए दो मन्दिरों को देख कर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। फिर उन्होंने विश्वकर्मा को बुला कर अपना भवन बनाने के लिए आज्ञा दी। उसे सुन कर विश्वकर्मा ने तीनों लोकों से सामग्री एकत्र करके, एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण किया। शिवजी ने अपने पुत्रों, गिरिजा, गणों तथा देवताओं के साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उसमें प्रवेश किया। फिर उन्होंने सब लोगों का आदर-सत्कार करके विदा कर दिया और आप गिरिजा तथा परिवार सहित वहीं निवास करने लगे। हे नारद ! शिवजी और काशी का यह आख्यान सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है। इसको पढ़ने तथा सुनने से दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति होती है।''

ॐ ॐ ॐ

उन्नीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! जब शिवजी अपने भवन में आये, उस समय वे मार्ग में कहीं रुके भी थे अथवा नहीं? जो मनुष्य, योगी, ब्राह्मण आदि उनके दर्शनों के निमित्त आये, उन सब के चरित्रों को भी आप कहें।'' यह सुन कर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! काशी में आ कर सर्वप्रथम शिवजी अपने भक्त जैगीषव्य के घर पर गये। वे मुनि एकान्त-निवास करते हुए शिवजी के ध्यान में दिन-रात संलग्न रहते थे। जिन दिनों शिवजी काशी को त्याग कर

मन्दराचल पर्वत पर गये थे, उस समय जैगीषव्य मुनि ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब शिवजी फिर यहाँ लौट कर आ जायेंगे, तभी मैं अन्न-जल ग्रहण करूँगा। यह निश्चय करके वे एक कन्दरा में जा छिपे और शिवजी का स्मरण एवं ध्यान करने लगे। अट्ठासी सहस्त्र वर्षों तक उन्होंने न तो पानी पीया और न भोजन किया। इसे या तो मुनि को योग बल समझना चाहिए अथवा यह समझना चाहिए कि उनके ऊपर शिवजी की कृपा थी। शिवजी के अतिरिक्त उन मुनि की महिमा को और कोई नहीं जान सकता। अपने इस भक्त के कारण ही शिवजी ने काशी में पुनः लौटने के लिए अनेक उपाय किये थे, क्योंकि शिवजी भक्त वत्सल हैं। उन्होंने अपने भक्त के प्रण की रक्षा के निमित्त ही राजा दिवोदास जैसे धर्मात्मा की हानि को स्वीकार कर लिया था।

हे नारद ! जैगीषव्य मुनि की कुटी में शिवजी के जाने का वृत्तान्त इस प्रकार है कि जब शिवजी उनके स्थान के समीप पहुँचे, उस समय उन्होंने नन्दीश्वरगण को यह आज्ञा दी—"हे नन्दी ! इस स्थान पर एक गड्ढा है, जिसके भीतर हमारा भक्त जैगीषव्य रहता है। उसने हमारे दर्शनों के निमित्त बहुत कष्ट उठाये हैं तथा उसके शरीर पर चर्म तथा हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचा है। जब से हमने काशी को त्यागा था, तभी से वह अन्न-जल त्याग कर हमारे लौटने की राह देख रहा है। जब तक हम उसे अपना दर्शन नहीं देंगे, तब तक हमें आनन्द नहीं मिलेगा। अस्तु, तुम इस कमल को ले कर उस गुफा के भीतर चले जाओ और मुनि के शरीर से इसका स्पर्श करा देना। कमल का स्पर्श पाते ही जैगीषव्य का शरीर पूर्ववत् हो जाएगा। तब तुम उनको अपने साथ लेकर यहाँ चले आना।"

हे नारद ! शिवजी की आज्ञा पा कर नन्दीश्वर ने ऐसा ही किया और वे जैगीषव्य को शिवजी के समीप ले आये। जिस समय मुनि ने शिवजी के दर्शन प्राप्त किये, उस समय इतना हर्ष हुआ कि वे आनन्द के कारण मूर्च्छित हो गये। तदुपरान्त जब उन्हें चैतन्यता प्राप्त हुई तो उन्होंने स्वनिर्मित स्तुति द्वारा शिवजी की बहुत प्रकार से प्रार्थना की

और यह कहा—"प्रभो ! मैं तीनों लोकों में आपको सब से श्रेष्ठ समझ कर, आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरे ऊपर कृपा करें।" शिवजी ने इस स्तुति को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा—"हे मुनि ! हम तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। अब तुम चाहो, वह वरदान हम से माँग लो।" यह सुन कर जैगीषव्य बोले—"हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके मेरे मस्तक पर अपना हाथ रख दीजिए तथा यह वरदान दीजिए कि मैं आपके चरण-कमलों से कभी भी दूर न रहूँ। इसके अतिरिक्त मेरी यह अभिलाषा भी पूर्ण कीजिए कि मैंने जो आपका लिंग स्थापित किया है, उसमें आप गणपति तथा स्कन्द सहित निवास करें।" जैगीषव्य की प्रार्थना सुन कर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे मुनि ! तुम जो चाहते हो, वही होगा। इसके अतिरिक्त हम तुम्हें यह भी वर देते हैं कि तुम योगसिद्धि को प्राप्त हो कर, निर्वाणपद को प्राप्त करोगे। तुम योगशास्त्र के आचार्य हो कर सब को उसका उपदेश करोगे और सब के सन्देहों को नष्ट करोगे। जिस प्रकार भृङ्गी, सोम तथा नन्दीश्वर हमारे गण हैं, उसी प्रकार तुम भी हमारे एक गण होगे।"

हे नारद ! इतना कह कर शिवजी ने जैगीषव्य के मस्तक पर हाथ फेरा, तदुपरान्त इस प्रकार कहा—"हे जैगीषव्य ! तुम जरामृत्यु से रहित होओगे। यद्यपि संसार में अनेक संयम-नियम हैं, परन्तु तुम्हारे समान नियमों का पालन करने वाला और कोई नहीं है। तुम हमारा दर्शन किये बिना कभी पानी भी नहीं पीते थे। जो मनुष्य हमारा दर्शन किये बिना भोजन कर लेता है, उसके समान पापी और किसी को नहीं समझना चाहिए। तुम हर समय हमारे समीप रहा करोगे। तुम्हें मोक्ष पद की प्राप्ति होगी। तीनों लोकों में किसी भी भक्त के साथ तुम्हारी समानता नहीं की जायेगी। तुमने हमारे जिस लिंग की स्थापना की है, वह 'जगीषव्येश्वर' नाम से प्रसिद्ध होगा। जो मनुष्य उस लिंग की तीन वर्षों तक सेवा करेगा, उसे योगसिद्धि प्राप्त होगी। उस लिंग के दर्शन तथा पूजन से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाया करेंगे और वह परम सिद्धि को

प्रदान करने वाला होगा। हमारी आज्ञानुसार इस क्षेत्र का नाम 'ज्येष्ठेश्वर' होगा। यहाँ पर आने से सब प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त होगी। यदि यहाँ पर किसी एक शिवभक्त को भोजन कराया जाये तो उसका फल एक करोड़ गुना होगा।

हे जैगीषव्य ! तुम्हारे स्थापित किये हुए लिंग में हम पूर्ण रूप से सदैव स्थित रहेंगे, परन्तु कलियुग में यह लिंग सब की दृष्टि से छिपा रहेगा। जो लोग योग साधन करने वाले होंगे, वे ही इसके दर्शन प्राप्त कर सकेंगे। तुमने जिस स्तुति को बनाया है, वह सम्पूर्ण स्तुतियों की शिरोमणि होगी और उसे पढ़ने से सब लोगों के मनोरथ पूर्ण होंगे। इस स्तुति के पढ़ने तथा सुनने पर लोक में ऐसा कोई कार्य नहीं रह जाएगा, जो सिद्ध न हो सके। शिवजी के श्रीमुख से यह वचन सुन कर जैगीषव्य मुनि उनके चरण-कमलों पर गिर पड़े। तब शिवजी ने उन्हें उठा कर अपने हृदय से लगा लिया। मैंने तथा विष्णु जी ने भी मुनि को अपने कण्ठ से लगाया। शिवजी की इस दयालुता को देख कर सब लोग आनन्द में भर कर जय-जयकार करने लगे। तदुपरान्त जब शिवजी आगे बढ़ने को हुए, उसी समय ब्राह्मणों ने वहाँ आ कर शिवजी की स्तुति की।

बीसवाँ अध्याय

नारद जी ने कहा—"हे पिता ! ब्राह्मणों तथा शिवजी में जो वार्तालाप हुआ, अब आप उसका वर्णन करने की कृपा कीजिये और यह भी बताइये कि वे ब्राह्मण संख्या में कितने थे?" यह सुन कर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जिस समय शिवजी काशी को छोड़ कर मन्दराचल पर्वत पर चले गये, उस समय काशी के ब्राह्मणों ने अत्यन्त दुःखी हो कर क्षेत्र संन्यास ले लिया था। वे दिन-रात शिवजी का स्मरण करते और उन्हीं की प्रीति में मगन रहते थे। वे अपने दण्ड द्वारा पृथ्वी को खोद कर वृक्षों की मूल को निकालते और उसी को खा कर

अपना जीवन-निर्वाह करते थे। जिस स्थान से वे जड़ों को खोदते थे, वह स्थान कुछ समय बाद एक कुण्ड के रूप में परिवर्तित हो कर और 'पुष्करिणी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब उसी स्थान पर उन ब्राह्मणों ने एक शिवलिंग की स्थापना की, जिसके दर्शन से सम्पूर्ण मनोरथ सफल होते हैं।

हे नारद ! वे ब्राह्मण प्रतिदिन शिवलिंग की उपासना करते, रुद्राक्ष की माला पहनते और शरीर में भस्म लगाते थे। वे शतरुद्री का जप करके शिवजी का पूजन किया करते थे तथा उन्हीं के स्मरण के अतिरिक्त अन्य किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते थे। उन्होंने अपने-अपने स्थान पर अनेक शिवलिंगों की स्थापना की थी। जब उन ब्राह्मणों ने यह शुभ समाचार सुना कि शिवजी अपने परिवार सहित काशी में पधार रहे हैं, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो कर, शिवजी का दर्शन करने के लिए आये। उनकी संख्या इस प्रकार थी—दंडाघाट से पाँच सहस्त्र, मन्दाकिनी तीर्थ से दस सहस्त्र, हंस क्षेत्र से तीन सौ, ऋणमोचन तीर्थ से बारह सहस्त्र, दुर्वासा तीर्थ से भी बारह सहस्त्र, कपालमोचन तीर्थ से सोलह सहस्त्र, ऐरावत ह्रद से तीन सौ, मदनकुण्ड से दो सौ, गन्धर्वाप्सरस तीर्थ से नौ सौ, बृहस्पति तीर्थ से तीन सौ नब्बे, वैतरणी से एक सौ पचास, ध्रुव तीर्थ से छह सौ, पितृकुण्ड से एक सौ, उर्वशी ह्रद से एक सौ, पृथूदक तीर्थ से तेरह सौ, यक्षिणी ह्रद से इकतीस सौ, पिशाचमोचन कुण्ड से सोलह सौ, मानसर से तीन सौ, वासुकि ह्रद से एक अयुत, सीता ह्रद से आठ सौ, गौतम ह्रद से नौ सौ, दुर्गतिहर से ग्यारह सौ तथा गंगा के तट से पाँच सौ पचपन ब्राह्मण आये।

हे नारद ! ये सब ब्राह्मण अपने हाथों में मांगलिक वस्तुएँ लिये हुए थे। ये सब जय-जयकार करते हुए आये और शिवजी के दर्शन प्राप्त कर अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हो गये। उन ब्राह्मणों ने शंकर सूत्र पढ़ कर शिवजी की अत्यन्त स्तुति की तथा दंडवत्-प्रणाम करके अनेक आशीर्वाद दिये। जिस समय शिवजी ने उनकी कुशलक्षेम पूछी, उस समय ब्राह्मणों ने यह उत्तर दिया—"हे प्रभो ! आप काशी छोड़ कर

चले गये तो हम सब लोगों को अत्यन्त दुःख हुआ। और यहाँ रह कर आपका ध्यान करते हुए आपके पुनः लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। हे नाथ ! इस काशी को तीनों लोकों से न्यारी कहा गया है। जो मनुष्य काशी में निवास करते हैं, वे परम धन्य हैं।'' इस प्रकार ब्राह्मणों ने काशी की अत्यन्त प्रशंसा की।

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! सच बात तो यह है कि शिवजी और काशी में कोई अन्तर नहीं है। काशी शिवजी का ही स्वरूप है। जो मनुष्य काशी में निवास करके शिवजी का भजन करता है, उसके जैसा भाग्यवान् अन्य कोई नहीं है। अस्तु, ब्राह्मणों के मुख से काशी की प्रशंसा सुन कर शिवजी ने इस प्रकार कहा—''हे ब्राह्मणो ! तुम सब परम धन्य हो, क्योंकि तुमने काशी-सेवन द्वारा हमें अपने वश में कर लिया है। काशी के प्रति भक्ति रखने के कारण तुम सब जीवन्मुक्त हो गये हो। जो लोग काशी के भक्त हैं, वे हमारे भी भक्त हैं और जो लोग दोनों के भक्त हैं, उनकी तो समानता कोई कर ही नहीं सकता है।

हे ब्राह्मणो ! तुम दोनों प्रकार से हमारे भक्त हो। हमारी कृपा से तुम सदैव निर्भय हो। काशी में हमारे अतिरिक्त यमराज की आज्ञा भी नहीं चल सकती। काशीवासियों से हम कभी दूर नहीं रहते हैं। जो लोग काशी में क्षेत्रसंन्यास लेते हैं, वे हमें अत्यन्त प्रिय हैं। अब तुम हम से जो भी वरदान चाहो, उसे माँग लो।'' भगवान् विश्वनाथ के मुख से ऐसे अमृतमय वचन सुन कर, वे सभी ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए और बारम्बार स्तुति करते हुए, अपने दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहने लगे—''हे प्रभो ! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हम यही वरदान माँगते हैं कि आप काशी को छोड़ कर कहीं न जाएं। काशी में ब्राह्मणों का शाप किसी पर फलदायक न हो। यहाँ मरने वालों को सायुज्यमुक्ति प्राप्त हुआ करे तथा यहाँ के निवासियों का आपके चरणों में अत्यन्त प्रेम बना रहे। हे स्वामी ! हम लोगों ने यहाँ आपके जो लिंग स्थापित किये हैं, उनमें आप शक्ति सहित निवास किया करें।''

ब्राह्मणों की यह प्रार्थना सुन कर, शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा; तदुपरान्त अपनी दयादृष्टि द्वारा सब के दुःख को दूर कर, प्रेमपूर्वक विदा किया। तब सब ब्राह्मण शिवजी से विदा हो कर, अपने-अपने स्थान को लौट गये और भगवान् विश्वनाथ का ध्यान धरते हुए उन्हीं की पूजा में संलग्न हुए।

ॐ ॐ ॐ

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! काशी में स्थित होने के उपरान्त शिवजी ने विश्वकर्मा को बुला कर यह आज्ञा दी कि तुम पहले की ही भाँति शिवनगरी की रचना शीघ्र करो। तुम स्थान-स्थान पर उत्तमोत्तम शिवालय बनाओ और हमारे गणों के रहने के लिए अनेक मन्दिरों की रचना करो। गिरिजा तथा उनके पुत्रों के लिए अत्यन्त सुन्दर भवनों का निर्माण करो तथा देवताओं के लिये भी योग्य स्थानों की रचना करो। अन्त में, हमारे भवन को इस प्रकार सजाओ कि तीनों लोकों में उसके समान सुन्दर अन्य कोई भवन न हो।"

हे नारद ! शिवजी की यह आज्ञा पा कर विश्वकर्मा ने अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण किया। जिस देवता का जहाँ निवास था, वहाँ उसने नूतन मन्दिरों की रचना की। उसने गणपति का मन्दिर इतना सुन्दर बनाया कि उसकी चित्रकारी तथा पच्चीकारी को देख कर अत्यन्त आश्चर्य होता था। श्री विश्वनाथ जी का मन्दिर असंख्य रत्नों, मणियों, बहुमूल्य वस्तुओं तथा अनेक प्रकार की प्रस्तर शिलाओं से सुशोभित था। तीनों लोकों की सम्पूर्ण निधियाँ उसमें विराजमान थीं। उस भवन की प्रशंसा करने में मैं भी असमर्थ हूँ।

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! आप श्री विश्वनाथ जी के मन्दिर का विस्तारपूर्वक वर्णन करने की कृपा करें।" ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! विश्वनाथ जी के मन्दिर की दीवारें स्वर्ण से बनी हुई थीं और उनमें अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्न जड़े हुए

थे। उन्हें यदि स्पर्श किया जाता तो विचित्र प्रकार का मधुर-शब्द होता था। प्रज्वलित अग्नि तथा सूर्य के समान चमकदार थीं। उस मन्दिर में बारह सहस्त्र खम्भे थे और इक्यासी सहस्त्र भूधर थे। उसके सम्मुख चौदहों भुवनों की सुन्दरता लज्जित होती थी। खम्भों में पद्मराग तथा मरकत-मणि की अनेक पुतलियाँ बनी हुई थीं, जिनके हाथों में रत्नों के दीपक दिन-रात जला करते थे। उत्तम श्वेत पत्थरों पर रत्नों द्वारा बेल-बूटों की चित्रकारी की गई थी। समुद्र में जितने भी प्रकार के रत्न थे, उन सब को गणों ने एकत्र किया था और नागों के कोष में जितनी उत्तमोत्तम मणियाँ थीं, वे सब भी वहाँ से ला कर उस मन्दिर में लगाई गई थीं। शिवजी के परमभक्त रावण ने अपने यहाँ से बहुत-सा सोना उस मन्दिर को बनाने के लिए भेजा था। इसी प्रकार अन्य जितने भी शिव-भक्त दैत्य आदि थे, उन सबों ने भी रत्न आदि भेजे थे।

हे नारद ! हमने जो मन्दिर का यह वर्णन किया है, उसे केवल संसारी रीति के अनुसार ही समझना चाहिए, अन्यथा शिवजी को किसी वस्तु की क्या आवश्यकता पड़ी है? वे यदि चाहें तो रत्नों के अनेक वृक्ष उत्पन्न कर सकते हैं। अस्तु, भगवान् विश्वनाथ का वह मन्दिर अनुपम तथा परम मनोहर था।

यह कथा सुन कर नारद जी ने आश्चर्ययुक्त हो, ब्रह्मा जी से पूछा—"हे पिता ! आप मुझसे यह कथा विस्तारपूर्वक कहिये।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जिन दिनों शिवजी काशी में अपने मन्दिर का निर्माण करा रहे थे, उन्हीं दिनों की बात है कि गिरिजा की माता मैना अपने घर में बैठी हुई सखियों से यह बातें कर रही थी कि बहुत समय से मुझे गिरिजा का कोई समाचार नहीं मिला है, इसलिए मैं अत्यन्त व्याकुल रहती हूँ। मैं यह निश्चयपूर्वक जानती हूँ कि गिरिजा को जो सुख यहाँ मिलता था, वह वहाँ हरगिज नहीं होगा, क्योंकि गिरिजा के पति के पास भस्म और बूढ़े बैल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जब हिमाचल ने मैना की यह बात सुनी तो उन्होंने भी चिन्तित हो कर यह कहा—"हे प्रिये ! तुम्हारा कथन सत्य है। जब से गिरिजा

गई है, तब से मैं भी उसकी याद में अत्यन्त दुःखी रहता हूँ। हम लोगों को उचित है कि अब हम गिरिजा को देखने के लिये चलें। मैना को अपने पति की यह बात सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त उन्हें देने के लिए अपने साथ दो करोड़ तुला मोती, सौ तुला हीरे, ग्यारह लाख तुला पन्ना, सोलह सहस्त्र तुला इन्द्रनीलमणि, नौ करोड़ तुला पद्मराग तथा विद्रुम आदि रत्न साथ लिये। इसके अतिरिक्त उत्तमोत्तम वस्त्र, आभूषण आदि थे।

हे नारद ! गिरिजा को देने के लिए यह सब सामग्री अपने साथ ले कर हिमाचल अत्यन्त अहंकार में भर कर मन्दराचल पर्वत पर जा पहुँचे। जब वहाँ उन्होंने यह सुना कि शिवजी काशी में चले गये हैं, तब वे काशी में भी जा पहुँचे। वहाँ जा कर उन्होंने यह देखा कि विश्वनाथ जी का मन्दिर असंख्य रत्नों से अलंकृत है। उसमें सोने के कलश तथा मणियों की पताकायें विद्यमान हैं। उस भवन को देख कर हिमाचल का सम्पूर्ण अहंकार नष्ट हो गया। तब उन्होंने मन ही मन यह विचार किया कि इससे बढ़ कर मूल्यवान् तथा सुन्दर भवन तीनों लोकों में अन्यत्र नहीं है।

हे नारद ! जिस समय हिमाचल उस मन्दिर के बारे में यह विचार कर रहे थे कि यह किसका है, उसी समय उन्हें एक मनुष्य समीप आता हुआ दिखाई दिया। शिवजी ने उस व्यक्ति को विदेशों से आने वाले अतिथियों की सेवा भार सौंपा था। अस्तु, हिमाचल ने उसे अपने पास बुला कर पूछा—"हे भाई ! यह नगर किसका है और इस मन्दिर में कौन रहता है?" तब उस शिवभक्त ने यह उत्तर दिया—"हे यात्री ! इस स्थान का नाम शिवपुरी है और यह मन्दिर भगवान् विश्वनाथ जी का है। भगवान् विश्वनाथ जी को मन्दराचल पर्वत से यहाँ आये हुए अभी केवल छः दिन ही बीते हैं। उन दिनों वे गिरिजा के साथ ज्येष्ठेश्वर में रह रहे हैं। सम्भवतः तुम कोई परदेशी यात्री हो, जो उन्हें नहीं जानते। तीनों लोकों के सम्पूर्ण प्राणी उन्हीं शिवजी के सेवक हैं।" इतना कह कर उसने हिमाचल को काशीपुरी का सम्पूर्ण वृत्तान्त

कह सुनाया। जब हिमाचल ने शिवजी को इस प्रकार धन से परिपूर्ण देखा, तो उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस समय उन्होंने उस मनुष्य को तो धन आदि देकर विदा कर दिया और स्वयं अपने मन में यह निश्चय किया कि अब मुझे यह उचित है कि जो धन मैं अपने साथ लेकर आया हूँ, उसके द्वारा यहाँ एक शिवालय का निर्माण कर दूँ। मेरे पास इतनी सामग्री नहीं है, जो शिवजी की भेंट के योग्य हो सके। अब तक मैं भूला हुआ था और शिवजी को दरिद्र समझता था। आज मुझे यह मालूम हुआ कि शिवजी तो कुबेर के भी कुबेर हैं।

हे नारद ! हिमाचल ने यह निश्चय करके अपने सेवकों को बुलाया और उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम रात भर में ही एक शिवालय का निर्माण कराओ। जो लोग काशी में शिवालय बनाते हैं, उन्हें लोकों में आनन्द प्राप्त होता है और उनके सभी अपराधों को भगवान् सदाशिव क्षमा कर देते हैं। हिमाचल की यह आज्ञा सुन कर सेवकों ने रात भर में ही एक सुन्दर शिवालय का निर्माण करा दिया। तब हिमाचल ने चन्द्रकान्तमणि द्वारा एक शिवलिंग का निर्माण कराया और उस मन्दिर में उसकी स्थापना की। तदुपरान्त उन्होंने अपने नाम और गोत्र आदि से अंकित एक पट्टिका उस शिवालय में लगा दी। इतना करने के उपरान्त वे पंचनद में स्नान करके, कामराज शिवजी की पूजा में प्रवृत्त हुए। उनके पास जो कुछ धन शेष रह गया था, उसे उन्होंने इधर-उधर फेंक दिया। परन्तु वे सब रत्न भी स्वयं ही एकत्र हो कर एक शिवलिंग के रूप में परिवर्तित हो गये। इस प्रकार एक लिंग तो हिमाचल ने स्थापित किया और दूसरा रत्नों द्वारा अपने आप बन गया। वे दोनों शिवलिंग पचनहदह्रद तथा हरव्रता के तट पर प्रतिष्ठित हुए। हे नारद ! हिमाचल द्वारा स्थापित काम राज शिवलिंग का माहात्म्य संसार में विख्यात है। अस्तु, उस मन्दिर का निर्माण कराने के पश्चात् हिमाचल शिवजी से बिना मिले ही, अपने घर को लौट गये। इस कथा को जो कोई सुनता और पढ़ता है, उसे दोनों लोकों में आनन्द की प्राप्ति होती है।

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! प्रातःकाल होने पर जब हण्डन तथा मुण्डन नामक शिवजी के दो गणों ने दो नये शिवलिंग देखे तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो कर शिवजी के पास जा, उन्हें सब समाचार कह सुनाया। वे बोले—"हे प्रभो ! वरुणा नदी के तट पर किसी धनवान् व्यक्ति ने आपके दो शिवलिंग स्थापित किये हैं। कल सन्ध्या तक उस स्थान पर कोई मन्दिर नहीं था, परन्तु इस समय हम जब वहाँ गये तो हमने उसे देखा है।" यह सुन कर शिवजी गिरिजा सहित रथ पर चढ़ कर वरुणा नदी के तट पर जा पहुँचे और उन्होंने हिमाचल द्वारा बनवाये हुए उस सुन्दर शिवालय को देखा। यद्यपि वह मन्दिर एक ही रात्रि में बना था, किन्तु इतना सुन्दर था कि उसके समान शिवालय काशीपुरी में दूसरा न था। जब वे गिरिजा सहित उस शिवालय के भीतर पहुँचे तो वहाँ चन्द्रकान्तमणि द्वारा निर्मित शिवलिंग को देख कर उन्हें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि हम इस मन्दिर के बनवाने वाले के नाम से परिचित हों। इतने ही में उनकी दृष्टि उस पट्टिका पर जा पड़ी, जो हिमाचल ने लगवाई थी। उसे पढ़ कर शिवजी गिरिजा से बोले—"हे प्रिये ! देखो यह शिवालय तुम्हारे पिता ने बनवाया है। वे तुम्हें देखने के लिये यहाँ पधारे होंगे, परन्तु भेंट का उत्तम अवसर न पा कर, बिना मिले ही इस शिवलिंग की स्थापना करके चले गये। तुम्हारे पिता परम धन्य हैं।

हे नारद ! शिवजी के मुख से यह वचन सुन कर गिरिजा ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"हे प्रभो ! मेरे पिता ने इस लिंग को वरुणा के तट पर स्थापित किया है, अतः मेरी यह अभिलाषा है कि आप इसमें रात-दिन पूर्णांश से स्थित रहें तथा यह लिंग गिरीश्वर के नाम से प्रसिद्ध हो। जो मनुष्य इस लिंग की पूजा करे, वे दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त करे तथा उनकी सभी मनोभिलाषाएँ पूर्ण हों।" गिरिजा की यह प्रार्थना सुन कर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। तदुपरान्त

वे वहाँ से चल कर, इधर-उधर भ्रमण करते हुए कामराज के पास पहुँचे। वहाँ कामराज से उत्तर की ओर उन्होंने एक अन्य शिवलिंग को देखा। गिरिजा ने उसे देख कर शिवजी से कहा—"हे स्वामिन् ! इस लिंग का प्रकाश आकाश तक फैला हुआ है और यह एकदम नवीन दिखाई देता है। आप कृपा करके इसकी उत्पत्ति एवं प्रभाव का मुझसे वर्णन करें।" यह सुन कर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे गिरिजे ! तुम्हारे पिता हिमाचल यहाँ अपने साथ बहुत से रत्न आदि ले कर आये थे। हमारा लिंग स्थापित करने के पश्चात् उनके पास जो धन बच रहा, उसे वे यहीं फेंक गये; परन्तु उनके पुण्य के प्रताप से वे फेंके हुए रत्न आदि एकत्र हो कर शिवलिंग के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। इस शिवलिंग का नाम रत्नेश्वर होगा, क्योंकि यह रत्नों द्वारा निर्मित है। हे प्रिये ! हमारे अथवा तुम्हारे लिये जो मनुष्य भक्तिपूर्वक किसी धन का संकल्प करता है, तो उसे उसका फल भी उसी प्रकार प्राप्त होता है। अब तुम्हें यह उचित है कि तुम्हारे पिता जिस स्वर्ण को यहाँ छोड़ गये हैं, वह अभी तक यहां इधर-उधर फैला हुआ है। उसी के द्वारा तुम इस लिंग का शिवालय बनवाओ, क्योंकि शिवालय बनवा देने से जो कर्म अपूर्ण रह जाते हैं, वे भी पूर्णता को प्राप्त होते हैं, लिंग की स्थापना से प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति होती है और कलश चढ़ाने से भी वैसा ही फल मिलता है। ध्वजा स्थापित करने का यह फल होता है कि ध्वजा में जितने पर्व होते हैं, उतने कल्प-पर्यन्त ध्वजा स्थापित करने वाला मनुष्य कैलाश में निवास करता है तथा वायु के चलने पर जितनी बार उस ध्वजा का वस्त्र हिलता है, उतने वर्षों तक वह शिवलोक में वास करता है।"

हे नारद ! शिवजी के मुख से यह वचन सुन कर गिरिजा ने गणों को बुला कर रत्नेश्वर शिवलिंग का मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी। तब सोम एवं नन्दी आदि गणों ने हिमाचल द्वारा फेंके गये स्वर्ण से एक सुन्दर शिवालय बनवा दिया। उस शिवालय को देख कर शिवजी एवं गिरिजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन्होंने गणों को अनेक वरदान दिये। तदुपरान्त गिरिजा के कहने पर शिवजी ने रत्नेश्वर शिवलिंग को

यह वर दिया कि जो प्राणी इस लिंग की पूजा करेगा, उसे सम्पूर्ण शिवलिंगों के पूजन का फल प्राप्त हो जाएगा तथा यह लिंग अनादि रूप से प्रसिद्ध होगा। हे नारद ! उस रत्नेश्वर शिवलिंग के सम्मुख नृत्य करके एक नर्तकी ने मुक्ति प्राप्त की। भगवान् सदाशिव एवं भगवती गिरिजा के उन चरित्रों का स्मरण करने से आनन्द प्राप्त होता है।

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जब तक शिवजी का मुख्य भवन बन कर तैयार नहीं हो गया, तब तक शिवजी काशी में अनेक स्थानों पर भ्रमण करते रहे। विराजपीठ नामक प्रसिद्ध स्थान पर शिवजी ने अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक समय तक निवास किया। उन्होंने वहाँ पर स्थित त्रिलोचन नामक शिवलिंग की महिमा का बहुत वर्णन किया। एक दिन वे विष्णु जी से काशी की महिमा तथा काशी में स्थित शिवलिंगों की स्तुति का वर्णन कर रहे थे, उसी समय नन्दीश्वर ने उनके पास पहुँच कर यह प्रार्थना की कि हे प्रभो ! आपका मन्दिर बन कर तैयार हो चुका है और मैं रथ सजा कर ले आया हूँ; अस्तु, अब आप कृपा करके अपने भवन को चलिये। ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि सब देवता द्वार पर खड़े हुए हैं और सब की यह इच्छा है कि आप वहाँ चल कर सुशोभित हों।

हे नारद ! नन्दीश्वर की बात सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने भवन के लिये चल दिए। उस समय चारों दिशायें वेदधुनि से गूँज उठीं तथा सुन्दर बाजे बजने लगे। आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी। उस समय पृथ्वी पर कोई भी ऐसा प्राणी नहीं था, जो आनन्दमग्न न हो। जब शिवजी अपने भवन में पहुँच गये तब मैंने, विष्णु जी ने तथा अन्य देवताओं ने शिवजी का अभिषेक किया। उस समय सम्पूर्ण तीर्थों का जल छोड़ा गया और सब लोगों ने भेंट दे-देकर शिवजी तथा गिरिजा की आरती उतारी। विष्णु जी ने एक बार मुख की, चार बार चरणों की दो बार नाभि की तथा सात बार सर्वांग

की आरती उतारी, क्योंकि शिवजी की आरती चौदह बार उतारी जाती है। उनके अनन्तर मैंने, विष्णु जी तथा अन्य सब देवताओं ने एक-एक स्तुति बना कर पढ़ी और शिवजी से यह प्रार्थना की कि आप हम लोगों पर प्रसन्न हो कर हमारा पालन करें।

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! हम देवताओं की स्तुति सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सब लोगों को इच्छित वरदान दिये। तदुपरान्त उन्होंने मुझे तथा विष्णु जी को अपने समीप बैठा कर यह कहा कि तुम्हारे समान हमारा प्रिय अन्य कोई नहीं है। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हम से माँग लो। यह सुन कर विष्णु जी ने प्रणाम करते हुए कहा—"हे प्रभो ! हम यही चाहते हैं कि हमारे हृदय में आपकी भक्ति का सदैव निवास रहे।" शिवजी ने यह सुन कर 'एवमस्तु' कहा, तदुपरान्त उन्होंने काशी की महिमा वर्णन की। फिर मुक्तिमंडप की वह कथा सुनाई, जहाँ महानन्द नामक ब्राह्मण को मुक्ति प्राप्त हुई थी। उस स्थान का दूसरा नाम कुक्कुट मंडप भी है।"

सूत जी बोले—"हे ऋषियो ! यह वृत्तान्त सुन कर नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—"हे पिता ! उस स्थान का नाम कुक्कुट मंडप किस प्रकार हुआ और महानन्द ने वहाँ किस प्रकार मुक्ति पाई, यह कथा आप मुझे सुनाने की कृपा करें।" यह सुन कर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जब शिवजी ने कुक्कुट मंडप का नाम लिया उस समय विष्णु जी ने उनकी प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! मुझे बताइये कि कुक्कुट मंडप तीनों लोकों में सुखदायक किस प्रकार होगा?" उस समय शिवजी ने उत्तर दिया—"हे विष्णो ! आगे जब द्वापर युग आयेगा, उस समय यहाँ महानन्द नामक एक ब्राह्मण उत्पन्न होगा। वह ब्राह्मण ऋग्वेद का पंडित होगा और किसी से दान आदि न लेगा। कुछ समय पश्चात् जब वह तरुणावस्था को प्राप्त होगा और उसके पिता की मृत्यु हो जाएगी, तब वह कामदेव के वशीभूत हो,

एक अन्य जाति की स्त्री को अपने घर में रख कर उसके साथ भोग-विलास करेगा और वेद के प्राचीन मार्ग को त्याग देगा। वह उस स्त्री के अधीन हो कर मद्य आदि का पान करेगा। वह विष्णु-भक्तों को धनवान् देख कर स्वयं भी वैष्णव बन जायेगा तथा शिव-भक्तों की निन्दा करेगा। फिर कुछ दिन बाद वह शिव-भक्त बन कर वैष्णवों की निन्दा करना आरम्भ करेगा।

हे विष्णो ! वह अपने मस्तक में तिलक लगायेगा, श्वेत-वस्त्रों को धारण करेगा तथा कण्ठ में माला पहन कर धूर्तता का प्रदर्शन करेगा। वह देखने में तो निर्मल और सज्जन होगा, परन्तु हृदय का अत्यन्त मलिन और दुर्जन रहेगा। कुछ दिन पश्चात् एक पर्वत निवासी तीर्थ-स्थान करने के लिये यहाँ आयेगा। उसके पास दान करने के लिए बहुत धन होगा। वह चक्रतीर्थ में स्नान करके यह बात कहेगा कि मैं जाति का चाण्डाल हूँ, परन्तु धनवान् हूँ। मैं अपने धन को दान में देना चाहता हूँ। यदि कोई मेरा दान लेने के लिये तैयार हो तो वह मेरे समीप आये। उसकी बात सुन कर सब लोग उस महानन्द नामक धूर्त ब्राह्मण की ओर उँगली उठा कर यह उत्तर देंगे कि तुम्हारा दान यह व्यक्ति ले सकता है। तब चाण्डाल महानन्द के पास जा कर दान ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करेगा। उस समय महानन्द उसे यह उत्तर देगा कि तुम अपने साथ जितना धन लाये हो, यदि वह सब का सब मुझे देना स्वीकार करो तथा अन्य किसी को उस धन में से कुछ भी न दो, तो मैं तुम्हारा दान लेने को तैयार हूँ। यह सुन कर वह चाण्डाल उत्तर देगा कि मेरे पास जो भी धन है, वह शिवजी की प्रसन्नता के निमित्त है। उस काशी में रहने वाले नीच व्यक्ति भी शिवजी के अंश हैं; अस्तु, मैं तुम्हें शिवजी के समान जान कर अपना सम्पूर्ण धन देना स्वीकार करता हूँ।

हे विष्णो ! यह कह कर वह चाण्डाल महानन्द को दान देकर अपने घर को लौट आयेगा। उस समय से सब लोग महानन्द को चाण्डाल मानने लगेंगे। उस लज्जा के कारण महानन्द बहुत दिनों तक अपने घर में छिपा रहेगा, तदुपरान्त अपनी स्त्री को साथ लेकर काशी छोड़, कीलक देश को चल देगा। जिस समय वह मार्ग में जा रहा

होगा, उस समय जंगल में एक ठगों का झुण्ड उसे पकड़ लेगा और उसका सर्वस्व छीन कर यह कहेगा कि अब हम तुम्हें जान से मारने वाले हैं—अस्तु, तुम जिसका स्मरण करना चाहो, कर लो। ठगों के यह वचन सुन कर महानन्द को श्रेष्ठ-बुद्धि की प्राप्ति होगी। उस समय यह विचार करेगा कि मैंने इस धन को लेकर अपने धर्म को भी खो दिया और आज मृत्यु के समय काशीपुरी को भी खो बैठा हूँ। इस प्रकार चिन्ता करते हुए वह अपने वंश का स्मरण करेगा। तदुपरान्त ठग उसे मार डालेंगे। महानन्द को मारने के पश्चात् वे चारों ठग काशी का महात्म्य सुन कर यहाँ आयेंगे और मुक्ति-मण्डप के समीप स्थित हो कर, प्रतिदिन गंगा-स्नान तथा शिव-कथा श्रवण करने के कारण निर्मल हो जायेंगे। उस समय मेरी कृपा से उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। तभी से इस स्थान का नाम कुक्कुट मण्डप पड़ जायेगा।

पच्चीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! शिवजी से यह कथा सुन कर विष्णु जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसी समय बड़े ज़ोर से घण्टा बजने का शब्द सुनाई दिया। उस शब्द को सुन कर शिवजी ने नन्दीश्वर को यह आज्ञा दी कि तुम जा कर अभी यह पता लगाओ कि यह घण्टे का शब्द कहाँ से आ रहा है? जो लोग घण्टा बजाते हैं वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और मैं उनकी सम्पूर्ण मनोकामनाओं को सिद्ध करता हूँ। यह सुन कर नन्दीश्वर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ वह घंटा बज रहा था। तदुपरान्त उन्होंने लौट कर शिवजी से यह कहा कि हे प्रभो ! आपके श्रृंगार-मण्डप में उत्सव हो रहा है और वहाँ बैठे हुए आपके भक्त घण्टा बजा रहे हैं। यह सुन कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो, सम्पूर्ण सभासहित उस स्थान पर जा पहुँचे। वह स्थान रंगमंडप था जो संसार में श्रृंगारमंडप के नाम से विख्यात है। वहाँ जा कर शिवजी गिरिजा सहित पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गये।

हे नारद ! उस समय शिवजी ने अपना दाहिना हाथ उठा कर विष्णु

जी के द्वारा सब लोगों को यह सूचित किया कि विश्वनाथ नामक हमारा यह लिंग परम ज्योतिस्वरूप तथा सम्पूर्ण आनन्द-मंगलों को प्रदान करने वाला है। इसे अविमुक्त तथा मुक्तिपद भी कहा जाता है। विश्वेश्वर के समान तीनों लोकों में अन्य कोई लिंग नहीं है। तीनों लोकों में विश्वेश्वर लिंग, मणिकार्णिका तथा काशीपुरी—ये तीन वस्तुएँ ही सार रूप हैं। इतना कह कर मणिकर्णिका तथा काशीपुरी—ये तीन वस्तुएँ ही सार रूप हैं। इतना कह कर शिवजी तथा गिरिजा ने स्वयं उस विश्वेश्वर लिंग का पूजन किया। तदुपरान्त वीरभद्र और गणपति ने उसकी पूजा की। इस प्रकार सब लोगों ने उस लिंग का पूजन किया। उस समय बड़ा आनन्द और उत्सव हुआ। आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी और ऋषि-मुनि वेद-मन्त्रों द्वारा स्तुति करने लगे। उस समय वेद और पुराण शरीर धारण कर वहाँ आये। उन्होंने शिव तथा गिरिजा की बहुत प्रकार से विनती की। तदुपरान्त विष्णु आदि सब देवताओं ने भी उनकी बहुत प्रार्थना की है। उस समय शिवजी और गिरिजा ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर सब लोगों की ओर अपनी कृपा दृष्टि से देखा, जिसके कारण सभी के मनोरथ पूर्ण हो गये। तदुपरान्त शिवजी गिरिजा तथा अपने पुत्रों सहित सब के देखते-देखते अन्तर्धान हो कर विश्वनाथ लिंग में प्रविष्ट हो गये।

हे नारद ! शिवजी के उस चरित्र को कोई भी प्राणी नहीं जान सका। इस प्रकार शिवजी लिंग रूप हो कर काशी में स्थित रहे और शरीर से कैलाश में जा कर निवास करने लगे। इस आश्चर्य को देख कर सब लोगों को बड़ा कौतूहल हुआ। तदुपरान्त अन्य सब देवता भी अपने-अपने अंश को काशी में स्थापित करके अपने-अपने लोक को चले गये। शिव और गिरिजा का यह चरित्र सम्पूर्ण मनोकामनाओं को सिद्ध करने वाला है। जो मनुष्य इसे पढ़ता, सुनता तथा दूसरों को सुनाता है, उसके हृदय में शिवजी की प्रीति उत्पन्न होती है और भगवान् सदाशिव गिरिजा सहित उसके ऊपर अत्यन्त कृपा रखते हैं।

इति श्री शिवपुराणे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां षष्ठखण्डस्समाप्तः ॥ ६ ॥

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण
(सरल भाषा)

सातवाँ खण्ड (उत्तरार्द्ध)

पहला अध्याय

नारद जी ने कहा—"हे पिता ! अब आप शिवजी के सभी अवतारों एवं उनके कार्यों का वर्णन कीजिये। जो लोग शिवजी के भक्त हैं, वे निश्चय ही धन्य हैं।" यह सुन कर ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! भगवान् सदाशिव परब्रह्म, निर्गुण, सगुण, सच्चिदानन्दरूप, सर्वव्यापक, अलख, निरंजन, ज्योतिस्वरूप तथा उपाधिरहित हैं। ऋषि-मुनि उनका स्मरण करके प्रणाम करते हैं तथा अपनी बुद्धि के अनुसार सब देवता उनकी स्तुति करते रहते हैं। जिन शिवजी के ऐसे अद्भुत कार्य हैं, उनका वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता। वेद का कथन है कि ऐसे निगुर्णरूप शिवजी ने सगुणरूप धारण कर, संसार में अनेक चरित्र किये तथा परमशक्ति ने भी उनके साथ अवतार लेकर भक्तों के मनोरथों को पूर्ण किया।

हे नारद ! जिस समय विष्णु जी ने मुझे प्रकट किया, उस समय शिवजी उन्हें वरदान देने के लिए आये थे। तब विष्णु जी ने उनसे यह माँगा था कि आप भी कृपा करके अवतार ग्रहण करें। यह सुन कर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहते हुए विष्णु जी से यह बात कही कि समयानुसार हम भी अवतार लेंगे। उस समय हमारा नाम 'रुद्र' होगा। हमारा वह रुद्रावतार देवताओं के सम्पूर्ण दुःखों को दूर करेगा तथा तुम्हें हर समय सहायता प्रदान किया करेगा। इतना कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त रुद्र की उत्पत्ति मेरे द्वारा हुई। वे रुद्रनामधारी सदाशिव कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं तथा अनेक प्रकार की

लीलाएँ करके अपने भक्तों को आनन्द पहुँचाते हैं। वे अपनी शक्ति के साथ विहार किया करते हैं तथा सम्पूर्ण उपाधियों से रहित हैं। उन्होंने सन्तों की रक्षा की है तथा सती के साथ विवाह करके देवताओं के कष्ट को दूर किया है। उन्होंने हिमाचल के घर जा कर गिरिजा के साथ विवाह किया तथा अनेक प्रकार की लीलाएँ कीं। उन्होंने स्कन्द का अवतार लेकर तारकासुर का संहार किया तथा अन्धक, त्रिपुर एवं जलन्धर को नष्ट करके, अपने भक्तों को सुख पहुँचाया। उन्होंने अनेक प्रकार के ऐसे चरित्र किये, जिनसे देवताओं का अहंकार नष्ट हो गया। मैं, विष्णु जी, देवता, सिद्ध, मुनि आदि संसार के सभी प्राणी, उन्हीं के सेवक हैं। रुद्र शिव के प्रथम अवतार हैं। उनका स्वरूप, नाम, चरित्र आदि सब भगवान् सदाशिव जैसे ही हैं। अब मैं तुमसे शिवजी के अन्य अवतारों का वर्णन करता हूँ।

हे नारद ! सर्वप्रथम तुम शिवजी के पाँच अवतारों का वर्णन सुनो। जिस समय मेरी यह इच्छा हुई कि मैं सृष्टि उत्पन्न करूँ, उस समय मैंने सर्वप्रथम भगवान् सदाशिव का ध्यान किया। तब शिवजी ने प्रसन्न हो कर मुझे अपना दर्शन दिया। उस समय उनके शरीर का रंग श्वेत तथा लालिमा लिए हुए था। उनके साथ चार शिष्य भी थे। मैंने उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। उस समय शिवजी ने कृपा करके मुझे शक्ति प्रदान की और यह आज्ञा दी कि तुम सृष्टि को उत्पन्न करो। तदुपरान्त उन्होंने 'वामदेव' का अवतार लेकर अपने चार शिष्यों के साथ मुझे दर्शन दिया। उस समय उनके शरीर का रंग लाल था। तत्पश्चात् वे पीतवर्ण से 'तत्पुरुष' अवतार के रूप में अपने चार शिष्यों सहित प्रकट हुए और उन्होंने मुझे श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश दिया। इसके बाद उन्होंने 'श्याम रूप' अवतार लेकर मुझे दर्शन दिये। अन्त में उनका 'ईशान' नामक अवतार हुआ। उस समय उनके शरीर का वर्ण श्वेत था और वे अपने साथ चार शिष्यों को लिये थे। उन्होंने मुझे ब्रह्मज्ञान तथा पवित्र योग की शिक्षा दी। शिवजी के ये पाँचों अवतार अत्यन्त पवित्र हैं और मेरी इच्छानुसार ही इनका प्राकट्य हुआ था।

हे नारद ! इसके पश्चात् शिवजी ने आठ अवतार और लिये। उनके नाम शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव हैं। वे जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश, यज्ञ, वायु, चन्द्रमा तथा सूर्य में निवास करते हैं। ये आठों अवतार भी भगवान् सदाशिव के ही रूप हैं। हे नारद ! वाराहकल्प में 'वैवस्वत' नामक सातवें मन्वन्तर में जो मनु का अवतार होता है, वह भी शिवजी का ही स्वरूप है। शिवजी का अर्धनारीश्वर रूप में वह अवतार मेरी रक्षा के निमित्त होता है।

हे नारद ! द्वापर तथा कलियुग में वेदव्यास नामक जो अवतार होता है, वह भी भगवान् सदाशिव का ही मुख्य स्वरूप है। उस समय श्री शिवजी व्यास जी के रूप में वेद के विभाग करते हैं तथा योगशास्त्र और वेदान्त का प्रचार कर पुराणों को बनाते हैं और उन्हें अपने शिष्यों को पढ़ाते हैं। उन व्यास जी के अट्ठाईस प्रकार के रूप होते हैं जिनके नाम ये हैं—श्वेत, सुताह, कंकण, शाख्य, युगाक्ष, जैगीषव्य, दधिवाहन, ऋषभ, भृङ्ग, तप, अत्रि, बाल, गौतम, वेदशिरा, धेनुकर्ण, गुहबाल, शिखण्डी, जटामाली, अट्ठहास, दाहक, लांगली, श्वेतत्रिशूल, दण्डी, मुण्डेश्वर, सोमसुरमा, लंककेश तथा सहिष्णु।

हे नारद ! शिवजी के नन्दीश्वर अवतार की कथा इस प्रकार है— जब शिलाद मुनि ने बहुत तपस्या की, उस समय शिवजी ने उन्हें दर्शन दे कर वरदान माँगने के लिये कहा। उस समय शिलाद ने उनसे यह कहा—''हे प्रभो ! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो कभी भी मृत्यु को प्राप्त न हो।'' तब शिवजी ने 'एवमस्तु' कह कर 'नन्दी' का अवतार धारण किया और शिलाद की मनोकामना पूर्ण की। इसके पश्चात् जब मुझ में तथा विष्णु जी में विवाद हुआ, उस समय भगवान् 'सदाशिव' भैरव का अवतार लेकर हमारे समीप आये और उन्होंने हमारा झगड़ा समाप्त कराया। उस समय भगवान् सदाशिव को अपना पुत्र विचार कर जब मैं उनकी निन्दा करने लगा, तब भैरव रूपधारी शिवजी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर मेरे पाँचवें मस्तक को काट डाला। इसके उपरान्त उन्होंने 'वीरभद्र' नामक अवतार लेकर तीनों लोकों में

इस बात को प्रसिद्ध किया कि जो लोग शिवजी के विरोधी हैं, उन्हें स्वप्न में भी आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। वीरभद्र रूपधारी भगवान् सदाशिव ने अपनी एक सहस्त्र भुजाओं द्वारा दुष्टों को दण्ड दिया तथा संसार में अनेक प्रकार की लीलाएँ कीं। तत्पश्चात् जब विष्णु जी ने नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु को मारा और अत्यन्त क्रोध तथा अहंकार किया, उस समय देवताओं की प्रार्थना पर शिवजी ने 'शरभ' नामक अवतार लेकर नृसिंह के मद को नष्ट किया। उसी समय से शिवजी का नाम 'हर' भी हुआ, क्योंकि उन्होंने नृसिंह जी के मद को हर लिया था। तदुपरान्त जब देवासुर संग्राम हुआ और सब देवता विजयी हो कर बहुत अहंकार में भर गये, उस समय शिवजी ने 'यक्ष' रूप धारण करके, उनके अभिमान को नष्ट किया अर्थात् उन्होंने यक्ष बन कर देवताओं से एक तिनके को तोड़ देने को कहा, परन्तु देवता उसे तोड़ने में असमर्थ हुए।

हे नारद ! इसके अनन्तर शिवजी ने 'महाकाल' के दस रूप धारण किये तथा दस देवियों के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हुए। तदुपरान्त वे ग्यारह रुद्रों का स्वरूप रख कर कश्यप के घर में उत्पन्न हुए। वहाँ उन्होंने दिति के पुत्रों को मार कर देवताओं को सुख पहुँचाया। इसके बाद उन्होंने अत्रि का पुत्र हो कर अपने ब्रह्मतेज को प्रसिद्ध किया और संसार में मर्यादा की स्थापना की। फिर उन्होंने विश्वानर के तप से प्रसन्न हो कर उसके यहाँ जन्म लिया तथा कालविहार पर विजय प्राप्त की। इसके बाद भगवान् सदाशिव ने प्रह्लाद मुनि का अवतार लेकर विष्णु जी के अहंकार को नष्ट किया तथा अवधूत बन कर इन्द्र के अभिमान को तोड़ दिया। रामचन्द्र जी के मनोरथों को पूर्ण करने के लिए उन्होंने हनुमान् के रूप में अवतार लेकर अनेक लीलाएं कीं तथा बहुत-से राक्षसों को मार कर रामचन्द्र जी के सम्पूर्ण कार्य किये और लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा की।

हे नारद ! जिस समय भैरव ने गिरिजा को कुदृष्टि से देखा, उस समय गिरिजा ने उन्हें यह शाप दिया—''हे भैरव ! तुम मुझे साधारण

मनुष्यों की भाँति कुदृष्टि से देखते हो, अतः तुम मनुष्य हो जाओ।'' यह सुनकर भैरव ने भी गिरिजा को यह शाप दिया कि तुम भी मेरी तरह मनुष्य बनो, तब मैं वहाँ तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लूँगा। इस शाप के कारण शिवजी ने पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय गिरिजा का नाम शारदा हुआ और शिवजी महेश हो कर प्रकट हुए। हे नारद ! महानन्दा नामक वेश्या ने शिवजी की बड़ी भक्ति की थी। तब शिवजी ने वैश्य का रूप धारण कर उसके दुःख को दूर किया। भद्रायुष नामक एक राजा ऋषभ नामक मुनि का शिष्य तथा शिवजी का परमभक्त था। शिवजी उसके समीप ब्राह्मण बन कर पहुँचे और उसे सम्पूर्ण कष्टों से रहित बनाया। इसी प्रकार आहुक नामक एक भील था, जिसकी पत्नी का नाम आहुकी था। शिवजी ने उनके लिए भी अवतार लेकर उन्हें कृतार्थ किया। तब वे दोनों दूसरे जन्म में नल और दमयन्ती हुए। वहाँ शिवजी ने हंस बन कर उन दोनों में मेल कराया था।

हे नारद ! राजा मनु के छोटे पुत्र नाभाग ने जब अपने भाइयों से राज्य का भाग नहीं पाया, तब शिवजी ने कृष्णदर्शन नामक अवतार लेकर उसे उसका भाग दिलवा दिया। जिस समय राजा सत्यरथ लड़ाई में मारा गया और उसकी गर्भवती रानी वन में भाग कर वहाँ एक पुत्र को जन्म देने के पश्चात् स्वयं भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी और वह बालक रोता हुआ वहीं पड़ा रहा, उस समय शिवजी ने दया करके एक भिक्षुक का स्वरूप धारण किया और एक स्त्री को यह उपदेश दिया कि वह उस बालक का पालन करे। जब वह बालक बड़ा हो गया, तब शिवजी ने उसे उसके पिता का राज्य वापस दिला दिया। इसी प्रकार शिवजी ने इन्द्र का अवतार लेकर उपमन्यु नामक ब्राह्मण की परीक्षा ली तथा उसे सब पापों से रहित देख कर, दोनों लोकों का सुख प्रदान किया।

हे नारद ! जिस समय गिरिजा ने वन में जा कर कठिन तप किया और सब देवता शिवजी की शरण में गये, उस समय शिवजी जटिल रूप धारण कर परीक्षा लेने के निमित्त गिरिजा के पास जा पहुँचे और

उन्हें यह वरदान दिया कि हम तुम्हारे साथ विवाह करेंगे। तदुपरान्त वे नट का रूप धारण कर पर्वत राज हिमाचल के घर गये और वहाँ अनेक प्रकार की लीलाएँ कीं। उन्होंने ब्राह्मण का रूप धारण कर हिमाचल की पत्नी मैना को भी बहुत भटकाया। द्रोणचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के रूप में भी शिवजी ने ही अवतार लिया था। उन्होंने किरात बन कर अर्जुन का दुःख दूर किया तथा वरदान देकर कौरवों को नष्ट कराया। उन्हीं शिवजी ने गोरखनाथ रूप लेकर योगशास्त्र को प्रसिद्ध किया तथा योगियों के धर्म को संसार में स्थित किया। उन गोरखनाथ रूपी शिवजी के दो प्रधान शिष्य थे। इनमें से एक का नाम गोपीचन्द था।

हे नारद ! जिस समय अधर्मी लोगों ने सब प्रकार शौच को त्याग कर धर्म को भ्रष्ट कर देना चाहा तथा संसार में अनीश्वरवाद का प्रचार किया, उस समय शिवजी ने एक ब्राह्मण के यहाँ शंकराचार्य नाम से अवतार लिया। उन्होंने अधर्म का नाश किया तथा अद्वैत एवं संन्यास मत का प्रचार किया। सूर्य द्वारा जो ज्योतिर्लिंग स्थापित किये गये, वे सभी शिवजी के ही अवतार हैं। शिवजी के चरित्रों का वर्णन करने तथा सुनने से बहुत सुख प्राप्त होता है। हे नारद ! मैंने संक्षेप में तुम से शिवजी के सब अवतारों की यह कथा कही।''

दूसरा अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी बोले—''हे पिता ! आप संसार में शिवजी के सब से बड़े भक्त हैं। अस्तु, मेरी यह इच्छा है कि मैं आपके द्वारा शिवजी के अवतारों का वर्णन विस्तार सहित सुनूँ। आप मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण कीजिए।'' नारद के मुख से यह शब्द सुन कर ब्रह्मा जी प्रेम-मग्न हो कर कहने लगे—''हे नारद ! मैं शिवजी की अन्य लीलाएँ सुनाता हूँ, ध्यान से सुनो। मुझे तथा विष्णु जी को शिवजी ने ही उत्पन्न किया है। जिस समय उन्होंने मुझे तथा विष्णु जी

को उत्पन्न करके यह आज्ञा दी कि तुम दोनों संसार की उत्पत्ति तथा पालना करो, उस समय हम दोनों ने शिवजी से यह कहा—"हे प्रभो ! आप भी अवतार लेकर प्रलय का कार्य स्वयं करना स्वीकार करें।" यह सुन कर शिवजी ने मेरी भौंहों के बीच भाग से अपने अंश रूप में अवतार लिया। शिवजी के उस अवतार का नाम महेश हुआ और वे कैलाश पर्वत पर निवास करने लगे।

हे नारद ! शिवजी तथा महेश में किसी प्रकार का अन्तर नहीं। वे पापों से रहित तथा परम दयालु हैं। वे अपने भक्तों का मनोरथ पूर्ण करते हैं तथा उनके ऊपर सदैव कृपा बनाये रखते हैं। उन्होंने ही शबरी, शबर तथा मद्र को मुक्त किया है। उन्होंने राजा भद्राक्ष के कष्टों को दूर किया। उन्होंने अपने करोड़ों पापी भक्तों को मुक्ति प्रदान की तथा भक्तों के कल्याण के निमित्त करोड़ों अवतार धारण किये। उन्होंने नन्द वैश्य तथा किरात को मुक्ति देकर अपना द्वारपाल बनाया तथा भिक्षुक का स्वरूप धारण कर दारुकवन में अनेक प्रकार के चरित्र किये। उन्होंने मुनियों को क्रोधित कर स्वयं को शाप दिलाया। तभी से संसार में शिवलिंग की पूजा प्रचलित हुई है।

हे नारद ! काशी के राजा की सुन्दरी नामक एक पुत्री शिवालय में झाड़ू दिया करती थी, इसलिए वह मुक्ति को प्राप्त हुई। शिवजी ने एक बड़े भारी चोर को अपनी कृपा से तार दिया तथा रावण को तीनों लोकों का राज्य प्रदान किया। जिस समय रावण ने ब्राह्मणों को दुःख पहुँचाना आरम्भ किया, उस समय शिवजी ने रावण से अपने तेज को ले लिया और रामचन्द्र जी को अपना बाण देकर रावण को मरवा डाला। उन्हीं शिवजी ने राजा श्वेत के निमित्त काल का नाश किया तथा राजा दाशार्ह को उसकी पत्नी सहित मुक्ति प्रदान कर तीनों लोकों में पंचाक्षरी मन्त्र की महिमा प्रतिष्ठित की। शिवजी ने राजा मित्रशठ पर कृपा की। वह अपने राज्य को छोड़ बैठा था सो शिवजी की दया से वह अपनी स्त्री सहित मुक्त हुआ। चन्द्रसेन तथा श्रीगर्भ ने त्रयोदशी के दिन प्रदोष व्रत करके शिवजी की कृपा द्वारा मुक्ति प्राप्त

की और इसी व्रत द्वारा धर्मगुप्त भी मुक्त हुआ।

हे नारद ! शिवजी ने राजा चन्द्रांगद को तक्षक के भय से मुक्त किया तथा उसकी पत्नी सीमन्तिनी को सोमवार का व्रत रखने के कारण मोक्ष प्रदान किया। शिवजी ने ही इन्द्र नामक ब्राह्मण को तारा तथा पिंगल को अपने समान बना लिया। सीमन्तिनी की पुत्री पद्मा तथा पुशपति को भी उन्होंने मुक्ति प्रदान की। दुर्जन नामक यवन देश का राजा अपने शरीर में मृतक भस्म लगाने पर ही मुक्ति को प्राप्त हो गया। भद्रसेन का पुत्र सुधर्मा तथा उसके मन्त्री का पुत्र तारक रुद्राक्ष धारण करने के प्रताप से मुक्त हो गये। शिवजी ने महानन्दा तथा उसके वंश को अग्नि में जलाने से बचाया। उन्होंने देवरथ ब्राह्मण की पुत्री शारदा पर कृपा की। विडम्ब तथा उसकी पत्नी वीचिका जो व्यभिचार के कारण भ्रष्ट हो गयी थी, उन्हें शिवजी ने अपना यश सुना कर धन्य कर दिया। उन्हीं शिवजी ने अनेक विचित्र चरित्र करके इन्द्र के मद को चूर्ण किया तथा बृहस्पति की बनायी हुई स्तुति को सुन कर इन्द्र को प्राणदान दिया। जिस समय चन्द्रमा अपने गुरु की पत्नी को भगा ले गया, उस समय शिवजी ने उसका अभिमान नष्ट करके बृहस्पति को उनकी पत्नी वापस दिलवा दी।

हे नारद ! कैलाश पर्वत पर जो महेश जी विराजमान् हैं, वे शिवजी के पहले अवतार हैं। वे अपने गणों के साथ लिये हुए, संसार के कल्याण के निमित्त अनेक प्रकार की कथाओं का वर्णन करते हैं। वे वट वृक्ष के नीचे बैठ कर कभी अपने ध्यान में मग्न हो जाते हैं और कभी समाधि द्वारा अपने ब्रह्मस्वरूप को प्रकट करते हैं। वे कभी राजाओं के समान आनन्द भवन में बैठ कर विहार करते हैं और कभी धर्म चर्चा करते हुए अपने बालकों को खिलाते हैं। वे कभी तपस्वी का रूप धारण कर दिगम्बर हो जाते हैं और कभी मुण्डों की माला पहन कर अपने शरीर में भस्म रमा लेते हैं। वे कभी संसार को त्याग कर भूत-प्रेतों की उत्पत्ति करते हैं और कभी परमहंसों के समान एकान्त में निश्चल बैठे रहते हैं। कभी प्रदोषकाल में भस्म धारण करते हैं और

कभी छोटे बालकों के समान विविध प्रकार के चरित्र करते हैं।

हे नारद ! वहाँ कैलाश पर्वत पर स्थित हो कर सनक, सनन्दन आदि शिवजी की अत्यन्त सेवा किया करते हैं। कभी मैं तथा विष्णु जी वहाँ पहुँच कर शिवजी की सेवा किया करते हैं। कभी-कभी शिवजी का ऐसा दरबार लगता है कि उसमें सब देवता एकत्र होते हैं। उस समय शिवजी गिरिजा सहित सिंहासन पर सुशोभित होते हैं। तब विष्णु जी मृदंग बजाते हैं, सरस्वती बीणा पर राग अलापती हैं, लक्ष्मी जी गीत गाती हैं, इन्द्र बाँसुरी बजाते हैं, मैं ताल देता हूँ तथा अन्य सब देवता उनकी आरती उतारते हैं। इस प्रकार सब लोग अपने-अपने भजनों को मीठे स्वरों में गा कर शिवजी को प्रसन्न करते हैं। शिवजी तथा गिरिजा का यह दूसरा रूप तीनों लोकों को अत्यन्त कल्याण करने वाला है।

हे नारद ! शिवजी अपने भक्तों की प्रसन्नता के निमित्त अनेक अवतार लेकर विभिन्न प्रकार की लीलाएँ किया करते हैं। शिवजी के करोड़ों नाम तथा करोड़ों चरित्र हैं। इसी प्रकार उनके रूपों की भी कोई गिनती नहीं है। तुमने, शारदा ने, शेष जी ने तथा अन्य सब देवताओं ने भी शिवजी के यश का बहुत वर्णन किया, परन्तु तुम में से कोई भी उसका पार नहीं पा सका। शिवजी के समान सुख देने वाला अन्य कोई नहीं है। उनकी ऐसी विचित्र लीला है कि वे स्वयं तो अपने शरीर में भस्म धारण करते हैं और अपने भक्तों को सब प्रकार के रास-रंग देते हैं। वे स्वयं हलाहल पीते हैं तथा भक्तों को पीने के लिए अमृत देते हैं। वे स्वयं मुण्डों की माला तथा साँपों की कंठी पहनते हैं, परन्तु अपने भक्तों को रत्नाभूषण देते हैं। इन सबसे भी बढ़ कर उनके सम्बन्ध में विचित्र बात यह है कि अन्य सब देवता तो सेवा करने से प्रसन्न होते हैं, परन्तु वे बिना सेवा किये ही प्रसन्न हो जाते हैं।

हे नारद ! ऐसे दयालु स्वामी को त्याग कर जो भी मूर्ख मनुष्य इधर-उधर भटकते हैं, उनसे अधिक हतभाग्य और कौन है? वेद में लिखा है कि कैलाशवासी महेश भगवान् सदाशिव के पूर्ण अवतार

हैं। वे अपने इस सगुण रूप द्वारा अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं तथा अपने चरित्रों द्वारा भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं। मनुष्य को उचित है कि वह शिवशंकर के चरणों में अपने चित्त को लगाये रहें।''

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुमसे शिवजी के पाँच अवतारों की कथा का वर्णन करता हूँ। उन्होंने सर्वप्रथम मुझे सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति दी, तदुपरान्त ज्ञान दिया था। फिर प्रत्येक कल्प में वे मुझे उपदेश देते रहे, जिसके द्वारा मैंने सृष्टि को उत्पन्न किया। तुम उन अवतारों की कथा ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! जब श्वेतलोहित नामक उन्नीसवाँ कल्प आया, उस समय मैंने यह विचार किया कि अब सृष्टि उत्पन्न करनी चाहिए। तब मैंने शिवजी का ध्यान किया। उस समय शिवजी बाल स्वरूप धारण कर श्वेतलोहित वर्ण से अपने चार शिष्यों के साथ प्रकट हुए। वे मुझे बड़ी कृपा दृष्टि से देख रहे थे। उस समय मैंने उन्हें देख कर अपने मन में यह विचार किया कि यह बालक कौन है। तभी भगवान् सदाशिव की कृपा से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि यह बालक और कोई नहीं, अपितु परब्रह्म शिवजी ही हैं। उस समय मैंने उनकी स्तुति करते हुए हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—''हे प्रभो ! आपके समान कृपालु और कौन है? अब आप मुझे ऐसी शक्ति दीजिये, जिससे मैं सृष्टि को उत्पन्न कर सकूँ। हे नाथ ! आप मुझे यह वरदान भी दीजिये कि मेरे हृदय से आपकी भक्ति एक क्षण के लिए भी दूर न हो तथा सृष्टि उत्पन्न करने में मुझे किसी प्रकार का दोष न लगे।'' मेरी इस प्रार्थना को सुन कर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। तदुपरान्त वे इस प्रकार कहने लगे—''हे ब्रह्मा ! तुम्हें हमारे चरणों में सच्ची प्रीति है, इसीलिए हमने प्रकट हो कर तुम्हें अपना दर्शन दिया है। हमारा नाम सद्योजात है और हम योग का प्रचार करेंगे।''

हे नारद ! इतना कह कर शिवजी ने अपने अंग से चार लड़कों को उत्पन्न किया। उन सब के शरीर का रंग श्वेत था। वे शिष्य नाम से प्रसिद्ध हो कर योगशास्त्र की पद्धति को प्रकट करने के हेतु शास्त्रपाठी हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—सनन्दन, नन्दन, विश्वनन्द तथा उपनन्द। अपने इन चार शिष्यों द्वारा शिवजी ने संसार में योगशास्त्र को प्रकट किया।

हे नारद ! भगवान् शिवजी के दूसरे अवतार की कथा इस प्रकार है—जब रक्तकल्प नामक बीसवाँ कल्प आया, उस समय मेरा वर्ण लाल रंग का था। उस समय मैं लाल वस्त्र तथा लाल ही माला पहने हुए था, अस्तु, जब मैंने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से भगवान् सदाशिव का ध्यान किया, तो वे लाल वस्त्र, लाल नेत्र तथा लाल रंग के ही आभूषण धारण किये हुए एक बालक के रूप में प्रकट हुए। उस समय मैंने उनका नाम वामदेव जान कर स्तुति तथा प्रणाम किया और यह प्रार्थना की कि "हे प्रभो ! आप मुझ पर ऐसी कृपा करें, जिससे मैं सृष्टि-रचना कार्य में समर्थ हो सकूँ।" यह सुन कर उन बाल रूपी धारी शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। तदुपरान्त उन्होंने अपने चार शिष्य उत्पन्न किये जिनका रूप, वर्ण तथा वस्त्र आदि सब लाल रंग के थे। उनके नाम—विरज, विवाह, विशोक तथा विश्वभावन हुए। तदुपरान्त शिवजी ने अपने उन चारों शिष्यों सहित योग की स्थापना की।

हे नारद ! तीसरे अवतार की कथा इस प्रकार है कि जब पीतवासा नामक इक्कीसवाँ कल्प आया, तब मैंने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से शिवजी का ध्यान किया। उस समय शिवजी पीतवस्त्र, पीत अलंकार तथा पीतवर्ण धारण किये हुए मेरे सम्मुख प्रकट हुए। जब मैंने ध्यान धर कर उन्हें पहचाना तब शिव-गायत्री का जप करके उनकी बहुत प्रकार से स्तुति की और उनसे यह प्रार्थना की आप मुझे सृष्टि उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्रदान करें। तब उन तत्पुरुष नामक शिवजी ने 'एवमस्तु' कह कर अपने शरीर से चार शिष्य उत्पन्न किये,

जो पीले रंग के वस्त्र आभूषण आदि धारण किये हुए थे और जिनके शरीर का रंग भी पीला था। उनके द्वारा शिवजी ने सम्पूर्ण संसार में योगशास्त्र को उत्पन्न किया।

हे नारद ! चौथे अवतार की कथा इस प्रकार है कि जब पीतवासा कल्प को एक दिव्यसहस्र वर्ष व्यतीत हो गये तथा परिव्रत नामक कल्प आया, उस समय मैंने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से शिवजी का ध्यान किया। तब वे काले वस्त्र, काले यज्ञोपवीत, काले मुकुट तथां काले भस्म को धारण किये हुए बालक रूप में प्रकट हुए। जब मैंने ध्यान धर कर उन्हें पहचाना तो यह ज्ञात हुआ कि ये अघोर अवतार हैं। उस समय मैंने उनकी स्तुति करते हुएं दण्डवत् की और यह कहा—"हे प्रभो ! आप मुझे सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान कीजिये।" उस समय उन अघोर अवतार शिवजी ने मुझसे 'तथास्तु' कह कर यह उत्तर दिया—"हे ब्रह्मा ! हमारा यह स्वरूप कष्टों को दूर करेगा तथा हमारा मन्त्र तुम्हारे सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करेगा।" इतना कह कर उन्होंने अपनी भुजा से चार शिष्य उत्पन्न किये जो स्वरूप में उन्हीं के समान थे। तब उन्होंने अघोर योग को संसार में प्रसिद्ध किया, जिसमें सब जीवों को एक-जैसा कहा गया है।

हे नारद ! पाँचवें अवतार की कथा इस प्रकार है कि जब विश्वरूप नामक तेईसवाँ कल्प आया, तब मैंने सृष्टि उत्पन्न करने के हेतु शिवजी का ध्यान किया। अस्तु, मेरी प्रार्थना पर सर्वप्रथम विश्वरूपा भवानी प्रकट हुईं। उनके समस्त वस्त्राभूषण श्वेत थे तथा उनके शरीर का रंग भी श्वेत था। फिर उसी प्रकार के वस्त्र, आभूषण एवं वर्ण से युक्त हो कर भगवान् सदाशिव भी प्रकट हुए। उस समय मैंने ध्यान धर कर यह जाना कि इनका नाम ईशान है। अस्तु, मैंने उन्हें दण्डवत्-प्रणाम करने के उपरान्त यह प्रार्थना की कि आप कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे सम्पूर्ण सृष्टि की पुनः वृद्धि हो। यह सुन कर ईशान रूप शिवजी ने अपनी शक्ति विश्वरूपा सहित चार पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके शरीर का रंग तथा वस्त्र आदि भी श्वेत ही थे। उन चारों

के नाम इस प्रकार हैं—जटी, मुण्डी, शिखण्डी तथा अर्द्धमुण्डी। ईशान रूप शिवजी ने अपने इन शिष्यों द्वारा योगशास्त्र को प्रकट किया। उस धर्म द्वारा मनुष्य आवागमन से छूट कर निर्भय हो जाते हैं। हे नारद ! इसी प्रकार पाँचों कल्पों में शिवजी ने पाँच अवतार धारण किये। ये सभी अवतार भक्तों को आनन्द देने वाले हैं तथा इनकी कथा सुनने से दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है।''

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुम से शिवजी के आठ अवतारों का वर्णन करता हूँ। जिस प्रकार सूत के डोरे में मणि और रत्न पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण संसार इन आठ अवतारों में स्थित है। उनके नाम इस प्रकार हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव। ये आठों अवतार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यज्ञभूमि, सूर्य तथा चन्द्रमा में स्थित रहते हैं अर्थात् ये शर्वरूप हो कर पृथ्वी का भार अपने ऊपर लिए हुए हैं और सम्पूर्ण संसार को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। भवरूप हो कर जल में रहते हैं और सम्पूर्ण प्राणियों के कष्टों को दूर करते हैं। रुद्र रूप हो कर अग्नि में निवास करते हैं और प्रकाश द्वारा सब लोगों को आनन्द प्रदान करते हैं। उग्र रूप हो कर वायु में निवास करते हैं, जिससे सब प्राणी जीवित रहते हैं। भीम रूप हो कर आकाश में जा कर निवास करते हैं और सम्पूर्ण संसार को अपने में समेटे रहते हैं। पशुपति रूप हो कर क्षेत्रज्ञ हैं, जिससे सब लोगों को सुख मिलता है। ईशान रूप हो कर वे सूर्य में स्थित रहते हैं, जिससे पृथ्वी तथा आकाश सब प्रकाशित बने हैं। महादेव हो कर उन्होंने चन्द्रमा में अपना निवास बनाया है और सम्पूर्ण जीवों का पालन करते हैं।

हे नारद ! शिवजी के यह आठ मुख्य रूप हैं। इस प्रकार शिवजी सब में प्रकट हैं। शिवजी का पूजा करने से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का

पालन-पोषण हो जाता है। जिस प्रकार माता-पिता को अपने बालक पर प्रीति होती है, उसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि संसार के समस्त प्राणियों पर प्रेम रखें। ऐसा आचरण करने वाले व्यक्ति के ऊपर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अस्तु, सब जीवों में शिवजी का ही स्वरूप जान कर, सब पर स्नेह रखना चाहिए। जो मनुष्य अपनी भलाई चाहता हो उसे उचित है कि वह शिवजी के इन आठों स्वरूपों की सेवा किया करें। इन स्वरूपों के चरित्रों की कथा सुनने तथा सुनाने से भी आनन्द की वृद्धि होती है।''

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं अर्द्धनारीश्वर अवतार का वर्णन करता हूँ। जब मैंने सृष्टि को उत्पन्न करना आरम्भ किया, तो मैंने उसका पालन भी माता के समान किया, परन्तु वह किसी भी प्रकार वृद्धि को प्राप्त नहीं हुई। उस समय मैं अत्यन्त चिन्तित हो कर यह विचार करने लगा कि अब मैं कहाँ जाऊँ और किसकी सहायता लूँ? उस समय मुझे चिन्तित देख कर यह आकाशवाणी हुई कि 'हे ब्रह्मा ! तुम मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करो, वह सृष्टि वृद्धि को प्राप्त होगी।' उस आकाशवाणी को सुनकर मेरे भी मन में ऐसी इच्छा हुई कि मैं ऐसी ही सृष्टि उत्पन्न करूँ। परन्तु उसमें मुझे सफलता नहीं मिली। तब मैंने यह विचार किया कि बिना शिवजी की सहायता से मेरा मनोरथ सफल न होगा। इसलिए मैंने तपस्या करनी आरम्भ की। मेरे उस तप से प्रसन्न हो कर शिवजी अर्द्धांगी स्वरूप धारण कर मेरे पास आये। उन्हें देख कर मैंने बड़ी स्तुति की तथा अपनी अभिलाषा कह सुनायी। उस समय शिवजी ने यह कहा— ''हे ब्रह्मा ! हम तुम्हें वरदान देते हैं कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।'' इतना कह कर उन्होंने अपने शरीर को शक्ति से अलग कर लिया, तब शिव और शक्ति के दोनों अलग-अलग रूप दिखाई दिये। इस चरित्र को देख कर मुझे और भी अधिक प्रसन्नता हुई। तब मैंने आकाशवाणी का वृत्तान्त सुनाते हुए शक्ति से यह प्रार्थना की आप दक्ष के घर अवतार लें और शिवजी भी अवतार ले कर आपके साथ विवाह करें।

मेरी इस प्रार्थना को सुन कर शक्ति ने 'एवमस्तु' कहा; तदुपरान्त उन्होंने अपनी भौंहों के बीच से अन्य शक्तियाँ उत्पन्न कीं और शिवजी की ओर देखने लगीं। उस समय शिवजी ने हँस कर कहा कि ब्रह्मा ने हमारी प्रसन्नता के निमित्त बहुत तप किया है, अस्तु, तुम इनके मनोरथ पूर्ण करो। यह सुन कर शक्ति ने मेरी अभिलाषाओं को पूर्ण किया। तदुपरान्त वे मुझे वरदान दे कर अन्तर्धान हो गये। हे नारद ! इस प्रकार शिवजी से वरदान पा कर मैंने मैथुनी सृष्टि को उत्पन्न किया है। इस अवतार की कथा सब प्रकार की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली है।''

ॐ ॐ ॐ

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इस समय वाराह कल्प बीत रहा है। इसमें वैवस्वत नामक मनु का राज्य है। यह मेरा प्रपौत्र है। इसके कल्प के प्रत्येक द्वापर युग में वेदव्यास का अवतार होता है। व्यास जी संसारी जीवों की बुद्धि को मन्द देख कर पुराणों का निर्माण करते हैं, जिनसे उन्हें वेद का अर्थ भली-भांति समझ में आ जाए, परन्तु इतने पर भी संसारी मनुष्य मूर्ख बने रहते हैं। कलियुग की इस मूर्खता को देख कर ही शिवजी व्यास जी की प्रार्थना पर अवतार लेते हैं और उनके मत को प्रसिद्ध करते हैं। अब मैं तुम से व्यास जी के चरित्र का वर्णन करता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! पहले द्वापर के पहले मन्वन्तर में मैंने व्यास के रूप में अवतार लिया तथा वेद को ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व—इन चार विभागों में बाँटा और उनकी शाखाओं को बढ़ाया। तदुपरान्त मैंने पुराणों का निर्माण किया; क्योंकि कलियुग के कारण संसारी जीवों की बुद्धि नष्ट हो गयी थी। मैंने वेद की रीतियों को पुराणों में इस प्रकार कहा कि जिससे सब लोग उसे सुगमतापूर्वक समझ सकें और प्रसन्न हों। जिस प्रकार कोई वैद्य रोगी को कड़वी औषधि न देकर

मीठी औषधि द्वारा रोग को दूर करने का उपाय करता है, वही कार्य मैंने भी किया। यद्यपि मैंने अनेक प्रकार के प्रयत्न किये, परन्तु व्यासमत प्रसिद्ध नहीं हुआ और न किसी ने पुराणों को ही पढ़ा। तब मैंने अत्यन्त चिन्तित हो कर शिवजी का स्मरण करते हुए उनसे यह प्रार्थना की कि "हे प्रभो ! द्वापर व्यतीत हो कर कलियुग आ रहा है, परन्तु कोई भी आदमी पुराणों को नहीं छूता और मेरे मत को भी नहीं मानता, इसलिए आपको उचित है कि अब आप दया करके मेरी सहायता करें और मेरे मत को दृढ़ करें।"

हे नारद ! मेरी प्रार्थना सुन कर शिवजी ने प्रसन्न हो, कलियुग के प्रारम्भ में, एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया। वह ब्राह्मण हिमालय पर्वत के एक भाग छागलागिरि में रहता था। उस समय शिवजी का नाम श्वेत रखा गया। जिस समय वे उत्पन्न हुए, उस समय सब लोग जय-जयकार करने लगे। आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी। सब लोगों ने प्रसन्न हो कर शिवजी की बड़ी स्तुति की। तब शिवजी ने संसार पर दया करने के हेतु अगमयोग को प्रकट किया। उस समय श्वेत, श्वेतशिष्य, श्वेताश्व तथा श्वेतलोहित नामक उनके चार बड़े प्रसिद्ध शिष्य हुए। वे सब आश्रम धर्म को जानने वाले, योगाभ्यासी तथा पाप-रहित थे। शिवजी ने उन्हें योग की क्रीड़ाएँ सिखायीं और उनके द्वारा संसार में योग को प्रकट किया। तदुपरान्त सभी संसारी जीवों ने प्रयत्नपूर्वक योग को अपनाया और वेद-पुराण के मत को स्वीकार किया। इस प्रकार शिवजी ने श्वेत रूप धारण कर व्यास रूप हो मुझको प्रसन्नता प्रदान की।

हे नारद ! दूसरे सत्य नामक द्वापर युग में प्रजापति ने व्यास जी का अवतार लिया और वेद के भाग किये। तदुपरान्त उन्होंने पुराणों की भी रचना की, परन्तु संसार में किसी ने भी उनके मत को स्वीकार न किया। उस समय उन्होंने दुःखी हो कर शिवजी का ध्यान किया तब शिवजी ने सुतार नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया और व्यास जी के मत को प्रसिद्ध कर योगशास्त्र का प्रचार किया। उनके दुन्दुभि, सत्य रूप,

ऋचीक तथा केतुमान् नामक चार शिष्य थे। इस प्रकार उन्होंने अपने शिष्यों सहित व्यास जी के धर्म की स्थापना कर, सभी संसारी जीवों को आनन्द पहुँचाया।

हे नारद ! तीसरे द्वापर युग में शुक्र ने व्यास जी का अवतार लिया और वेदों के विभाग कर पुराणों का निर्माण किया। जब उन्हें भी सिद्धि प्राप्त न हुई, तब शिवजी ने उनकी प्रार्थना पर दमन नामक अवतार लिया और व्यास जी के मत को संसार में प्रसिद्ध किया। उनके विशोक, विकेश, व्यास तथा सुप्रकाश नामक चार शिष्य थे। उन शिव के दमन अवतार ने योगाभ्यास की रीतियों को अपने शिष्यों द्वारा संसार में प्रचलित कराया तथा पुराणों के मत को स्थिर करके लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखाया।

हे नारद ! चौथे द्वापर युग में बृहस्पति ने व्यास जी का अवतार लेकर वेद के विभाग किए तथा पुराणों को प्रसिद्ध किया, परन्तु कलियुग के कारण उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हुई। तब उन्होंने शिवजी का स्मरण एवं ध्यान किया जिससे प्रसन्न हो कर शिवजी ने सुहोत्र नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया और व्यास जी के मनोरथों को पूरा किया। उस समय उनके सुमुख, दुर्मुख, दुर्मद तथा दुरतिक्रम नामक चार शिष्य हुए। उन्होंने अपने शिष्यों को योगाभ्यास की शिक्षा दी और उनके द्वारा व्यास जी के मत को संसार में प्रसिद्ध कराया।

हे नारद ! पाँचवें द्वापर युग में सविता देवता ने व्यास जी का अवतार लिया और वेद के विभाग करके, पुराणों का निर्माण किया। जब उनका मत प्रसिद्ध नहीं हुआ, तब शिवजी ने उनकी प्रार्थना पर कनक नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार नामक उनके चार शिष्य थे। इन शिष्यों को प्रभु, विभु, निर्मम तथा निरहंकृति भी कहा जाता है। अस्तु इन शिष्यों को योगाभ्यास का उपदेश करके शिवजी ने व्यास मत का प्रचार किया तथा संसार में पुराणों की प्रतिष्ठा बढ़ायी।

हे नारद ! छठे द्वापर युग में मनु ने व्यास का अवतार लिया तथा

उन्होंने अपना नाम महत् रखा। उन्होंने अन्य व्यासों की अपेक्षा और अधिक श्रेष्ठ पुराणों का निर्माण किया, परन्तु जब उनके मत को कलियुग के संसारी जीवों ने स्वीकार नहीं किया, तब उन्हें भी शिवजी की सहायता लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। उस समय शिवजी ने लोकाक्ष नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया। उनके शिष्यों के नाम सुधामा, विरुज, शंख तथा अम्बुज थे। उन्होंने योगशास्त्र को प्रसिद्ध कर, अपने शिष्यों द्वारा व्यास जी ने पौराणिक मत का प्रचार किया और लोगों को मुक्ति का सरल मार्ग दिखाया।

हे नारद ! सातवें द्वापर युग में शतक्रतु ने व्यास का अवतार लिया तथा वेद के विभाग करके पुराणों को बनाया, किन्तु किसी ने भी उनके मत को स्वीकार नहीं किया। यह देख कर व्यास जी ने भगवान् सदाशिवजी का स्मरण किया। तब शिवजी जैगीषव्य नाम धारण कर पृथ्वी पर अवतरित हुए। उनके शिष्यों के नाम सारस्वत, पराहन, मेघनाद तथा सुवाहन थे। अपने उन शिष्यों के साथ जैगीषव्य अवतार ने योगशास्त्र को प्रकट किया तथा संसार में पुराण का धर्म प्रतिष्ठित किया। जैगीषव्य के समान व्रत का पालन करने वाला कोई नहीं हुआ। जिस समय शिवजी काशीपुरी को त्याग कर मन्दराचल पर्वत पर चले गये थे, उस समय जैगीषव्य ने यह प्रण किया था कि जब तक शिवजी पुनः यहाँ लौट कर नहीं आ जायेंगे, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। अपने इस प्रण का निर्वाह भी उन्होंने पूरा किया। जैगीषव्य का चरित्र पढ़ने और सुनने में अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला है।"

ॐ ॐ ॐ

छठा तथा सातवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! शिवजी के काशी छोड़ने का क्या कारण था?" यह सुन कर ब्रह्मा जी ने आदि से अन्त तक की सब कथा नारद जी को कह सुनायी। जिस प्रकार काशी में अकाल पड़ा तथा राजा दिवोदास ने वर प्राप्त किया, उसके पश्चात्

गणपति की कथा तथा विष्णु जी का चरित्र सुनाया। जिस प्रकार विष्णु जी ने बौद्धमत का प्रचार कर सब को धर्म भ्रष्ट किया तथा राजा दिवोदास ने विष्णु जी की आज्ञा का पालन कर, काशी छोड़ गोमती तट पर निवास किया, वह सब कथा भी सुनायी।

इसके उपरान्त ब्रह्मा जी ने वह वृत्तान्त कहा, जिस प्रकार कि शिवजी के गण राजा दिवोदास को शिवलोक ले गये थे। विष्णु जी का गरुड़ जी द्वारा शिवजी के पास सन्देश भेजना तथा शिवजी के काशी-आगमन की कथा को कह कर, उस चरित्र का वर्णन किया जिस प्रकार कि शिवजी रथ पर आरूढ़ हुए थे तथा उन्होंने गुहा में जा कर जैगीषव्य को दर्शन दिया था। इसके उपरान्त ज्येष्ठेश्वर शिवलिंग की स्थापना, ज्येष्ठा देवी का प्रकट होना, हिमाचल का काशी में आ कर शिवालय का निर्माण कराना तथा शिवजी के काशी में निवास करने की कथा को आदि से अन्त तक कह सुनाया। ब्रह्मा जी द्वारा इस सब वृत्तान्त को सुन कर नारद जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।''

ॐ ॐ ॐ

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं शिवजी के अट्ठाईसों अवतारों का वर्णन करता हूँ। सात अवतारों के विषय में तो मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। आठवें अवतार की कथा इस प्रकार है कि जब आठवाँ द्वापर युग आया तब उसमें वशिष्ठ मुनि ने व्यास जी का अवतार लेकर, वेद के चार विभाग किये तथा पुराणों का निर्माण किया। जब उनका प्रचार नहीं हुआ तब उन्होंने शिवजी की प्रार्थना की। उस समय शिवजी ने दधि-वाहन नामक अवतार लेकर व्यास मत को प्रकट किया। दधि-वाहन के कपिल, आसुरि, पंचशिव तथा शाल्वल नामक चार शिष्य थे। उन्होंने अपने इन शिष्यों द्वारा व्यास मत को प्रसिद्ध किया तथा योगाभ्यास को फैलाया।

हे नारद ! नौवें द्वापर युग में सारस्वत मुनि ने व्यास जी का अवतार

लिया तथा वेद के विभाग कर, पुराणों को बनाया। जब उन्हें अपने मत का प्रचार करने में सफलता प्राप्त न हुई, तब उन्होंने शिवजी का ध्यान किया, जिससे प्रसन्न हो कर शिवजी ने ऋषभ नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय उनके पाराशर, गर्ग, भार्गव तथा आंगिरस नामक चार शिष्य थे। उन्होंने योगाभ्यास द्वारा व्यास जी के मत का प्रचार किया तथा निवृत्ति धर्म का उपदेश करके संसार का कल्याण किया। ऋषभ जी के चरित्र अत्यन्त पवित्र तथा प्रसिद्ध हैं। जो मनुष्य उन चरित्रों को पढ़ता एवं सुनता है, वह स्वयं भी शिवरूप हो जाता है। उन्होंने भद्रायुष को महान् सुख प्रदान किया था तथा केवल एक दिन की सेवा से प्रसन्न हो कर ही मुद्र नामक ब्राह्मण तथा कंकाली को मुक्त कर दिया था।

हे नारद ! दसवें द्वापर युग में त्रिधारा ने व्यास जी का अवतार लिया और वेद को चार विभागों में विभाजित कर, पुराणों का निर्माण किया। जब उनके मत का प्रचार नहीं हुआ, तब उन्होंने शिवजी की उपासना की। उस समय शिवजी ने हिमाचल पर्वत के भृगुश्रृंग नामक एक भाग में भृगु नाम से अवतार लिया। उनके निरमित्र, जगत्‌बोधन, गुप्तश्रृंग तथा तपोधन नामक चार शिष्य हुए। उन्होंने अपने शिष्यों की सहायता से व्यास जी के मत का प्रचार किया तथा संसार में पुराणों की प्रतिष्ठा को बढ़ाया।

हे नारद ! ग्यारहवें द्वापर युग में त्रिवृत्त ने व्यास जी का जन्म लिया और वेद के विभाग करके, पुराणों का निर्माण किया। तदुपरान्त उन्होंने शिवजी का ध्यान धर कर यह वरदान माँगा कि संसार में मेरे मत का प्रचार करने के लिए आप अवतार ग्रहण करें। उनकी प्रार्थना पर प्रसन्न हो कर शिवजी ने गंगाजी के द्वारा तप नामक अवतार लिया। उनके लम्बोदार, लम्बाक्ष, लम्बकेश तथा प्रलम्ब नामक चार शिष्य हुए। तब उन्होंने अपने शिष्यों के द्वारा व्यास जी के मत को स्थापित किया एवं संसार में योगाभ्यास का प्रचार किया।

हे नारद ! बारहवें द्वापर युग में भारद्वाज ने व्यास जी का अवतार

लिया और वेदों के विभाग करके पुराणों का निर्माण किया। जब उन्हें अपने मत को फैलाने में सफलता नहीं मिली, तो उन्होंने शिवजी का ध्यान किया। शिवजी ने प्रसन्न हो कर अत्रि नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया और हेमकिंचक में विराजमान हुए। उनके सरोज, सम्बुद्धि, साधु तथा शर्व नामक चार शिष्य थे। उन्होंने व्यास जी के मत को प्रसिद्ध करके संसार में योगाभ्यास को फैलाया तथा पुराणों के मत का प्रचार किया।

हे नारद ! तेरहवें द्वापर युग में धर्म ने व्यास जी का अवतार लिया और वेद के विभाग करके पुराण बनाये। जब उनको अपना मत फैलाने में सफलता प्राप्त नहीं हुई तो उन्होंने शिवजी का ध्यान किया, जिससे प्रसन्न हो कर शिवजी ने गन्धमादन पर्वत पर बालखिल्य के आश्रम में बालि नाम से अवतार लिया। उनके सुधामा, कश्यप, वशिष्ठ तथा विरजी नामक चार शिष्य हुए। इन शिष्यों के द्वारा उन्होंने व्यास जी के मत का प्रचार किया।

हे नारद चौदहवें द्वापर युग में रक्ष ने जिन्हें बभ्रु भी कहा जाता है, व्यास जी का अवतार लिया और वेद के विभाग करके पुराणों को बनाया। जब उनके मत को किसी ने स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने शिवजी की प्रार्थना करते हुए सहायता माँगी। उस समय शिवजी ने अंगिरस के कुल में गौतम नाम से जन्म लिया। उनके अत्रि, देवसत्व, अबल तथा सहिष्णु नामक चार शिष्य हुए। उनके द्वारा शिवजी ने व्यास मत का प्रचार किया और संसार में पुराणों का सम्मान बढ़ाया।

हे नारद ! पन्द्रहवें द्वापर युग में त्रव्यारुणि ने वेदव्यास का अवतार लिया और वेद के चार भाग करके पुराणों को प्रकट किया। जब उनके मत का प्रचार नहीं हुआ, तब उन्होंने शिवजी से सहायता माँगी। उस समय भगवान् शिवशंकर ने हिमालय पर्वत के पीछे तथा गंगा के तट पर वेदस्वर नाम से पृथ्वी पर अवतार लिया उनके गुण, गुणवाह, कुशरीर तथा कुनेत्र नामक चार शिष्य हुए। तब उन्होंने अपने शिष्यों की सहायता से व्यास जी के मत को स्थापित किया और योगाभ्यास

का उपदेश करके पुराणों के मत का प्रचार किया।

हे नारद ! सोलहवें द्वापर युग में धनंजय ने व्यास जी का जन्म लिया तथा वेद के विभाग करके पुराणों को बनाया। जब उनके मत की वृद्धि नहीं हुई, तब उन्होंने भी शिवजी का ध्यान धर कर सहायता माँगी। उस समय शिवजी ने गोकर्ण नामक वन में, जो बाद में अघहर क्षेत्र नाम से पुकारा जाने लगा, गोकर्ण नामक अवतार ग्रहण किया। उनकी सेवा करने से सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं। उस समय उनके कश्यप, उशना, च्यवन तथा ब्रह्मपति नामक चार शिष्य थे। अस्तु, उन्होंने अपने शिष्यों को योगाभ्यास का उपदेश किया। तदुपरान्त उनके द्वारा संसार में व्यास के मत को फैलाया।

हे नारद ! सत्रहवें द्वापर युग में कृतंजय ने व्यास जी का जन्म लिया और वेद के चार विभाग करके पुराणों को प्रकट किया। जब उन्हें अपने मत के प्रचार में सफलता नहीं मिली, तब उन्होंने शिवजी की प्रार्थना करके यह कहा—"हे प्रभो ! आप अवतार लेकर मेरी सहायता कीजिए।" तब उनकी प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने हिमालय पर्वत के शिखर पर महालय नामक अवतार लिया। उन्हें गुहावासी कह कर भी पुकारा जाता है। उनके, उतथ्य, वामदेव, महायोग तथा महाबल नामक चार शिष्य हुए। तब उन्होंने अपने शिष्यों को योगाभ्यास का उपदेश कर, उनके द्वारा संसार में व्यास जी के मत का प्रचार कराया।"

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अठारहवें द्वापर युग में ऋतंजय ने व्यास जी का जन्म लिया और वेद के विभाग कर पुराणों को प्रकट किया। उस समय शिवजी ने हिमालय के शिखंड नामक एक शिखर पर, जिसे सिद्ध क्षेत्र भी कहा जाता है, अवतार लिया। उस समय उनका नाम शिखण्डी था। उनके वाचश्रव, ऋचीक, शावास्य तथा

रजनीश्वर नामक चार शिष्य हुए। तब उन्होंने अपने शिष्यों को योगाभ्यास का उपदेश करके व्यास जी के मत का प्रचार कराया तथा संसार में पुराणों की महिमा बढ़ायी।

हे नारद ! उन्नीसवें द्वापर युग में भरद्वाज ने व्यास जी का जन्म लिया और वेद के चार विभाग कर, पुराणों को प्रकट किया। उस समय शिवजी ने हिमालय पर्वत पर जटामाली नामक अवतार लिया तथा अपने चार शिष्यों के द्वारा व्यास जी के मनोरथ को पूर्ण किया। उस समय उनके शिष्यों के नाम—रण्य, कौशल्य, लोकाक्षी तथा युध्म थे। शिवजी ने उन्हें योगाभ्यास का उपदेश करके, संसार में पुराणों के मत को स्थापित किया।

हे नारद ! बीसवें द्वापर युग में गौतम ने व्यास जी का जन्म लिया तथा वेद के विभाग करके पुराणों को बनाया। उस समय शिवजी ने हिमालय पर्वत के पीछे अट्टहास नामक स्थान पर इसी अर्थात् अट्टहास नाम से ही अवतार ग्रहण किया। उनके शिष्यों के नाम श्रीमन्त, बर्बरी, बुद्धि, ऋगबन्धु तथा किष्किन्धरा थे। उन्होंने अपने इन शिष्यों की सहायता से पौराणिक मत का प्रचार किया तथा व्यास जी की मनोकामना पूर्ण की।

हे नारद ! इक्कीसवें द्वापर युग में व्यास जी ने वेद के विभाग पर पुराणों को बनाया। तदुपरान्त शिवजी का स्मरण कर, उनसे अपने मत का प्रचार करने के लिए सहायता की माँग की। उस समय शिवजी ने दारुक नामक अवतार लेकर व्यास जी का मनोरथ सिद्ध किया। जिस वन में उनका जन्म हुआ था, वह वन संसार में दारुक वन के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। उनके प्लक्ष, दाल्म्यायन, केतुभानु तथा गौतम नामक चार शिष्य हुए। उनकी सहायता से शिवजी ने संसार में व्यास के मत का प्रचार किया।

हे नारद ! बाईसवें द्वापर युग में शुष्मालय मुनि ने व्यास जी का जन्म लिया और शिवजी का ध्यान धर कर, वेद के चार भाग किये तथा पुराणों की रचना की, परन्तु जब उन्हें अपने कार्य में सफलता नहीं

मिली व भगवान् आशुतोष से सहायता की याचना की, उस समय शिवजी ने लांगली नाम से काशी में अवतार लिया। उनके भल्लनि, मधुपुंग, श्वेत तथा गुप्तकान्त नामक चार शिष्य हुए तथा उन्होंने इन शिष्यों की सहायता से संसार में व्यास जी के मत को प्रसिद्ध किया।

हे नारद ! तेईसवें द्वापर युग में तृणविन्दु ने व्यास जी का जन्म लिया और उन्होंने वेद के विभाग करके पुराणों की रचना की। अपने मत को सिद्ध होते न देख कर, जब उन्होंने शिवजी से सहायता माँगी तो शिवजी ने कालिञ्ज नामक पर्वत पर महाकाय सुतश्वेत नामक अवतार लिया। उस समय उनके शिष्यों के नाम औषधि, वृहदक्ष, देवल तथा कव्य थे। शिवजी ने इन शिष्यों की सहायता से व्यास जी के मत को प्रसिद्ध किया।

हे नारद ! चौबीसवें द्वापर युग में कुक्षि, जिन्हें वाल्मीकि भी कहा जाता है, ने व्यास जी का जन्म लिया। उन्होंने वेद के विभाग करके पुराणों को प्रकट किया। जब उन्हें अपने मत को फैलाने में सफलता नहीं मिली तो उन्होंने शिवजी की स्तुति करते हुए उनसे सहायता की याचना की। उस समय शिवजी ने नैमिष नामक वन में शूली नामक अवतार ग्रहण किया और व्यास जी की मनोकामना को पूर्ण किया। उनके शिष्यों के नाम शालिहोत्र सहजहोत्र, युवनाश्व तथा अहिर्बुध्न थे। इन्हीं व्यास जी ने श्री रामचन्द्र जी के लीला-चरित्रों का भी वर्णन किया है।

हे नारद ! पच्चीसवें द्वापर युग में ब्रह्मसप्त ने व्यास जी का जन्म लिया और शिवजी का तप करके, उनसे अपने मत का प्रचार करने में सहायता करने की प्रार्थना की। उन्होंने वेद के विभाग करके पुराणों को बनाया था, परन्तु जब उनके मत को संसारी लोगों ने स्वीकार नहीं किया, तो वे अत्यन्त निराश हुए। उस समय शिवजी ने दण्डीमुण्डी नामक अवतार ग्रहण किया। उनके शिष्यों के नाम बहुल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड तथा प्रभात थे। इन्हीं की सहायता से उन्होंने संसार में पुराणों की प्रतिष्ठा करायी तथा संसारी मनुष्यों को योगमार्ग का उपदेश

दिया। इन पच्चीसवें व्यास जी के पुत्र का ही नाम उपमन्यु था। उसने बाल्यावस्था से ही शिवजी की बड़ी भक्ति की थी।

हे नारद ! छब्बीसवें द्वापर युग में पाराशर ने व्यास जी का जन्म लिया। वे मेरे पौत्र तथा वैशम्पायन के पिता थे। उनके समान शिवजी का परमभक्त अन्य कोई नहीं हुआ। उन्होंने वेद के चार विभाग करके, अठारह पुराणों का निर्माण किया। जब उनके मत का प्रचार संसार में नहीं हुआ, तब उन्होंने भगवान् सदाशिव से सहायता की याचना की। उस समय शिवजी ने दयालु हो कर उनकी मनोकामना पूर्ण करने के हेतु सहिष्णु नाम से अवतार लिया और भद्रनाट नामक नगर में प्रतिष्ठित हुए। उनके शिष्यों के नाम उलूक, विद्युत, सम्बल तथा अश्वलायन थे। इन सब शिष्यों ने शिवजी की आज्ञा से व्यास जी की सहायता की और उनके मत को संसार में प्रचलित किया।

हे नारद ! सत्ताईसवें द्वापर युग में ज्ञानकर्ण ने व्यास जी का जन्म लिया तथा वेद के विभाग करके पुराणों की रचना की। फिर अपने मत को प्रचलित होते हुए न देख कर उन्होंने शिवजी की स्तुति की। उस समय शिवजी ने प्रभास क्षेत्र में सौम्यकर्म नाम से अवतार लिया। उनके शिष्यों के नाम अक्षपाद, सुमुनिकुमार, उलूक तथा वत्स थे। सौम्यकर्म रूपी शिवजी के अवतार ने योगशास्त्र को प्रकट कर, पुराण के मत को प्रचलित किया तथा अद्वैत धर्म को दृढ़ किया।

जब व्यास जी ने यह देखा कि अब कोई भी मनुष्य उसके मत का विरोधी नहीं है तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो कर शिवजी की स्तुति की। तदुपरान्त संसार भर में व्यास जी और उनके शिष्यों का यश फैल गया। हे नारद ! इस प्रकार द्वापर युग में जो शिवजी के सत्ताईस अवतार हुए, उसका वर्णन मैंने तुमसे किया। अब तुम उस अवतार के बारे में सुनो, जिसे शिवजी ने कलियुग के प्रारम्भ में लिया था। हे पुत्र ! शिवजी के इन अवतारों की कथाओं को जो मनुष्य मन लगा कर सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है, वह दोनों लोकों में सब प्रकार का आनन्द प्राप्त करता है।''

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अट्ठाईसवें द्वापर युग में देवताओं द्वारा प्रार्थना किये जाने पर विष्णु जी ने व्यास का अवतार लिया तथा वेद के विभाग कर, पुराणों को प्रकट किया। परन्तु जब उनका मत प्रसिद्ध न हुआ, तब उन्होंने शिवजी की स्तुति करते हुए यह माँग की कि ''हे प्रभो ! आप मुझे इस कार्य में सहायता प्रदान करें तथा मेरे मत का प्रचार करने में सहायक हों।'' उस समय शिवजी ने व्यास जी की प्रार्थना पर अवतार लिया और उनके मत का प्रचार करने में सहायक बने।''

इस वृत्तान्त को सुन कर नारद जी बोले—''हे पिता ! मेरी यह इच्छा है कि आप इस कथा को विस्तारपूर्वक सुनायें।'' ब्रह्मा जी बोले—''अच्छा, मैं इसे विस्तारपूर्वक कहता हूँ। इस वृत्तान्त में शिवजी एवं विष्णु जी के लीला चरित्रों का वर्णन है। हे नारद ! पूर्वकाल में जब देवासुर-संग्राम हुआ था, उस समय बहुत-से दैत्य मारे गये। अवसर पा कर वे सब दैत्य पुनः पृथ्वी पर उत्पन्न हुए और कुसंगति में पड़ कर कुमार्ग पर चलने लगे। वे विपरीत बातें करते हुए अपने अहंकार में भर कर अनेक प्रकार के कुकर्म करने लगे। वे इस प्रकार इन्द्रियों के वशीभूत हुए कि उनमें भी परस्पर शत्रुता फैल गयी। उस समय देवताओं ने संसार में अनाचार बढ़ता हुआ देख कर विष्णु जी की सेवा में पहुँच, अपने दुःख का वर्णन किया तथा उनसे वह कष्ट दूर करने की प्रार्थना की। उस समय भगवान् विष्णु जी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए पाराशर के पुत्र के रूप में पृथ्वी पर जन्म लिया। संसार में वे कृष्णद्वैपायन के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी माता का नाम सत्यवती था।

हे नारद ! उन कृष्णद्वैपायन, व्यास रूप विष्णु जी ने वेद के चार विभाग करके उनकी शाखाओं को फैलाया तथा पुराणों का निर्माण किया; परन्तु संसार में उनका प्रचार किसी भी प्रकार न हो सका। यह

देख कर व्यास जी सब देवताओं तथा ऋषि-मुनियों सहित कमलापति विष्णु जी की शरण में गये और उनसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे— "हे प्रभो ! मेरे पुराणों का संसार में कुछ भी आदर नहीं हो रहा है, अस्तु, आप मेरे मत का प्रचार करने में सहायक हों।" उस समय विष्णु जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा—"हे व्यास जी तथा ऋषि-मुनियो ! तुम निश्चिन्त हो कर अपने घर जाओ। हम पृथ्वी पर कृष्ण रूप में अवतार लेकर, तुम्हारे दुःख को दूर करेंगे। भगवान् विष्णु जी के ऐसे वचन सुनकर सब लोग अपने-अपने घर लौट आये। तदुपरान्त विष्णु जी ने यदुवंशी वसुदेव के घर कृष्ण रूप में अवतार लिया। उनका स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ से शेष जी ने बलभद्र के रूप में अवतार लिया। सब देवता तथा मुनि आदि उन बलभद्र जी की सेवा करते हैं। अस्तु, श्रीकृष्ण जी ने बज्र में पहुँच कर जो चरित्र किये, तुम उन्हें सुनो। उन्होंने यशोदा तथा नन्द को अपनी बाल-लीलाओं द्वारा अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान की तथा गोपियों को भी बहुत मोहित किया। पूतना आदि को, जिन्हें कंस ने भेजा था, श्रीकृष्ण जी ने मार डाला। बड़े-बड़े योगियों को अपनी तपस्या द्वारा जो फल प्राप्त नहीं होता, उसे ब्रज वासियों ने सहज ही पा लिया।

हे नारद ! जब श्रीकृष्ण जी बारह वर्ष के हुए, तब वे बलभद्र जी के साथ मथुरा चले आये। वहाँ उन्होंने कंस को, उसके सभी साथियों सहित मार कर नष्ट कर दिया तथा यदुवंशियों को बहुत सुख पहुँचाया। उन्होंने अनेक दैत्यों तथा शत्रुओं को मार कर, अपने भक्तों की प्राण-रक्षा की तथा जरासन्ध के बल एवं अहंकार का नाश किया। श्रीकृष्ण जी के वंश की संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी सोलहसहस्त्र, एक सौ आठ रानियाँ थीं। उनसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण जी ने गृहस्थाश्रम के महत्त्व का प्रतिपादन किया था। जब वे छोटे थे, तब उन्होंने अपनी

कनिष्ठिका उँगली पर गोवर्द्धन पर्वत को उठा लिया था।

हे नारद ! महाभारत के युद्ध में उन्होंने अनेक प्रकार से पृथ्वी का भार उतारा। जब उन्होंने यदुवंशियों में अभिमान बढ़ता हुआ देखा, तब ब्राह्मण से शाप दिलवा कर उन्हें भी नष्ट करा दिया। इस प्रकार अपने लोक में जाने से पूर्व वे अपने कुल का नाश करा गये। उन्होंने अपने मित्र उद्धव को अद्वैत ज्ञान का उपदेश किया तथा उन्हें बदरीवन में भेज कर मुक्त कर दिया। जिस व्याध ने उनके पाँव में बाण मारा था, उसको निर्वाण पद दिया तथा अपने सारथी दारुक को मुक्ति देकर वे अपने लोक चले गए। हे नारद ! श्रीकृष्ण जी का चरित्र हमने तुम्हें संक्षेप में सुनाया है। इसके सुनने तथा सुनाने से मुक्ति प्राप्त होती है।

हे नारद ! इस प्रकार श्रीकृष्ण जी ने पृथ्वी पर धर्म को फिर स्थित किया, परन्तु उससे व्यास जी को विशेष प्रसन्नता न हुई; क्योंकि संसार में उनका निवृत्ति मार्ग प्रसिद्ध नहीं हुआ था। अतः उन्हें दिन-रात यही सोच बना रहता था कि किसी प्रकार हमारा मत संसार में फैले। अपनी मनोभिलाषा की पूर्ति के हेतु एक दिन उन्होंने भगवान् सदाशिव का ध्यान किया तथा उनसे यह प्रार्थना की कि "हे कृपासिन्धो ! मैंने वेद के आशय को पुराणों में प्रकट किया है, परन्तु कलियुग के प्रभाव के कारण उन्हें कोई नहीं मानता। अस्तु, मेरी यह प्रार्थना है कि अब आप स्वयं अवतार लेकर, मेरे मत की वृद्धि करें तथा निवृत्ति मार्ग को दृढ़ बनायें।"

हे नारद ! व्यास जी की यह प्रार्थना सुन कर शिवजी ने ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण किया। तदुपरान्त उन्होंने अपनी योगमाया द्वारा सम्पूर्ण संसार को मोहित कर लिया। फिर वे उसी शरीर से श्मशान में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह देखा कि एक मुर्दा पड़ा हुआ है, तो वे योगमाया द्वारा उसके शव में प्रवेश कर गये और पर्वत की कन्दरा में जा कर स्थित हुए। जब मुझे तथा विष्णु जी को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब हम दोनों उनकी सेवा में जा पहुँचे और उनकी कई प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे। भगवान् सदाशिव के उस अवतार का नाम लाकुलीश

था। जिस स्थान पर शिवजी विराजमान हुए थे, उसे सिद्ध क्षेत्र अथवा कायाचत्वर कहते हैं। लाकुलीश शिव ने उशिक, गर्ग, मित्र तथा रुन्ध नामक अपने चार शिष्य बनाये और उनके द्वारा संसार में व्यास जी के मत को प्रकट किया। उस समय सब लोगों का दुःख नष्ट हो गया तथा तीनों लोकों में आनन्द की वृद्धि हुई।

हे नारद ! अब मैं तुम्हें इस सब वृत्तान्त का सार सुनाता हूँ, जिससे तुम्हें यह ज्ञात हो जाएगा कि व्यास जी का अवतार किस प्रकार होता है। प्रत्येक द्वापर के अन्त में विष्णु जी स्वयं अवतार लेकर, वेद के विभाग करते हैं तथा प्रत्येक कलियुग के आदि में शिवजी अवतार लेकर उनके मत की स्थापना करते हैं। विष्णु जी प्रत्येक युग में चार शिष्यों द्वारा वेद, योग तथा आश्रमों को प्रकट करते हैं और शिवलिंग का पूजन करके भस्म धारण करते हैं। हे पुत्र ! हमने यह कथा विष्णु जी से सुनी थी। दधिवाहन अवतार से लेकर लाकुलीश अवतार तक शिवजी के अट्ठाईस अवतार हैं तथा उनके कुल अवतारों की संख्या बयालीस है। जो प्राणी इस कथा को सुनता अथवा पढ़ता है, वह भी मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।''

ॐ ॐ ॐ

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुम से नन्दिकेश्वर अवतार का वृत्तान्त कहता हूँ। शिलाद नामक मुनि शिवजी के परम भक्त थे। शिवजी की कृपा से वे महाधनी तथा ऐश्वर्यवान् हुए, परन्तु उनके कोई पुत्र नहीं था; इसलिए उन्होंने इन्द्र की अत्यन्त कठिन उपासना की। उनकी साधना से प्रसन्न हो कर इन्द्र ने उनके पास जा कर कहा—''हे शिलाद ! हम तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हैं, तुम वर माँगो।'' यह सुन कर शिलाद मुनि ने प्रणाम करने के उपरान्त हाथ जोड़ कर कहा—''हे देवराज ! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिए जो माता के गर्भ से उत्पन्न न हो तथा सदैव अमर बना रहे।'' उस समय इन्द्र ने कहा—

"हे शिलाद ! हम ऐसा पुत्र नहीं दे सकते; हम तो तुम्हें केवल ऐसा पुत्र दे सकते हैं जो माता के गर्भ से उत्पन्न हो और जिसकी समय पा कर मृत्यु हो जाए।"

हे नारद ! इन्द्र के इन वचनों को सुन कर अपने हठ पर दृढ़ रहते हुए मुनि ने उत्तर दिया कि मुझे तो ऐसे ही पुत्र की आवश्यकता है, यदि आप दे सकते हों तो दें अन्यथा रहने दें। तब इन्द्र उनसे यह कह कर अपने लोक को चले गये कि ऐसा पुत्र तुम्हें शिवजी द्वारा ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि उन्होंने काल को जीत लिया है और वे स्वयं मृत्यु के वश में नहीं हैं। इतना कह कर जब इन्द्र चले गये तब शिलाद मुनि शिवजी का ध्यान धर कर तपस्या करने लगे। वे निरन्तर एक दिव्य सहस्त्र वर्षों तक उग्र तपस्या करते रहे। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर शिवजी अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण कर, उनके पास पहुँचे। जैसे ही शिवजी ने उनके शरीर से अपने हाथ का स्पर्श कराया, वैसे ही वे पुनः पूर्व की भाँति हृष्ट-पुष्ट हो गये। तदुपरान्त शिवजी ने उनसे पूछा—"हे शिलाद ! तुम क्या चाहते हो? तुम जो माँगोगे हम वही देंगे।" यह सुन कर शिलाद ने बहुत स्तुति एवं प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभु ! मैं एक ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो माता के गर्भ के बिना उत्पन्न हो और कभी भी मृत्यु को प्राप्त न हो।"

हे नारद ! शिलाद के ऐसे वचन सुन कर शिवजी ने कहा—"हे शिलाद ! संसार में उत्पन्न होने वाला कोई भी जीव ऐसा नहीं है, जो मृत्यु के हाथ से बाकी बच रहे। केवल हम हीं मृत्युञ्जय तथा बिना माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए अब हम स्वयं ही तुम्हारे पुत्र होंगे। उस समय, हमारा नाम नन्दी होगा। ब्रह्मा ने भी हमारे पृथ्वी पर अवतार लेने के लिए पहले तपस्या की थी। तब हमने उन्हें यह वर दिया था कि समय पा कर हम पृथ्वी पर जन्म लेंगे। अस्तु, इस प्रकार हमारे अवतार लेने पर ब्रह्मा की इच्छा भी पूर्ण हो जाएगी और तुम्हारी अभिलाषा भी पूर्ण होगी। अब तक हम संसार के पिता थे, परन्तु अब तुम हमारे पिता होओगे।" इतना कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गये।

उस समय शिलाद अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने घर लौट आये। कुछ समय पश्चात् शिलाद ने सब सामग्री एकत्र कर, एक यज्ञ किया। उसी यज्ञकुण्ड के बीच से प्रलयकाल की अग्नि के समान देदीप्यमान् शिवजी की उत्पत्ति हुई। उनका स्वरूप ऐसा था कि उसे देखने से तीनों लोक मोहित हो जाते थे। उनके हाथों में शूल, शंख, गदा और असि तथा कानों में कुण्डल विराजमान थे। वे देखने में बालक के समान प्रतीत होते थे। उस समय आकाश में पुष्प वर्षा होने लगी। किन्नर आदि नृत्य गायन करने लगे, देवता स्तुति करने में संलग्न हुए। उस समय सब ने यह पहचाना कि भगवान् सदाशिव का अवतार हुआ है।''

ॐ ॐ ॐ

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! उस बालक को देख कर शिलाद मुनि ने कहा—''हे बालक ! तुमने उत्पन्न हो कर मुझे अत्यन्त आनन्द प्रदान किया है, अतः तुम्हारा नाम नन्दी होगा। तुम साक्षात् शिव के स्वरूप हो, अस्तु, मैं तुमसे अपनी भक्ति माँगता हूँ।'' इतना कह कर शिलाद मुनि ने उनकी बहुत स्तुति की। तदुपरान्त जब सब देवता विदा हो कर अपने-अपने घर चले गए, तब शिलाद मुनि भी नन्दी को साथ ले यज्ञ स्थल से उठ कर अपने निवास स्थान को चल दिये। उसी बीच नन्दी ने यह चरित्र किया कि उन्होंने अपनी पहली देह को छोड़ कर मनुष्य का शरीर धारण कर लिया।

हे नारद ! शिलाद मुनि के घर आ कर नन्दी बालकों के समान क्रीड़ा करने लगे। जब उनकी अवस्था दस वर्ष की हुई, तब एक दिन शिवजी की आज्ञा से मित्रा तथा वरुण नामक दो मुनि शिलाद के समीप पहुँच कर यह कहने लगे—''हे शिलाद मुनि ! यह बालक सम्पूर्ण विद्याओं का निधान होगा, परन्तु इसकी आयु बहुत कम है।'' इतना कह कर जब वे दोनों मुनि चले गये, तब शिलाद अत्यन्त दुःखी

हो, नन्दी से लिपट कर रोने लगे तथा मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय नन्दी ने शिलाद मुनि को मनुष्यों की भाँति समझाते हुए यह कहा—"हे पिता ! आप इस प्रकार व्याकुल न हों। हम शिवजी की सेवा करके काल को जीत लेंगे और आपकी चिन्ता को दूर करेंगे।" इतना कह कर नन्दी रुद्र जप करने लगे। उस जप के प्रभाव से शिवजी गिरिजा सहित नन्दी के समीप आये और उन्हें सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्दी ! तुम्हें मृत्यु का कोई भय नहीं है। तुम साक्षात् मृत्युञ्जय हो और तीनों लोकों में तुम्हें कुछ भी भय नहीं है।" इतना कह कर शिवजी ने नन्दी के शरीर से अपने शरीर का स्पर्श करा दिया। तदुपरान्त उन्होंने गिरिजा एवं सब गणों की ओर देखते हुए यह कहा—"हे प्रियजनो ! यह नन्दीश्वर मृत्यु से रहित हो कर मेरे समान ही बलवान् होगा तथा मेरे पास रह कर मुझे बहुत प्रिय होगा।" इतना कह कर शिवजी ने अपनी माला नन्दी के कण्ठ में पहना दी। तब नन्दी उसी समय तीन नेत्र तथा दस भुजाधारी शिवजी के समान स्वरूपवान् हो गये। उस समय शिवजी ने नन्दी का हाथ पकड़ कर अपनी जटा के ऊपर से थोड़ा-सा पानी छोड़ दिया। उस पानी से अनेक नदियाँ बहने लगीं।

हे नारद ! उन नदियों के नाम जटोदक, त्रिस्त्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदक तथा जटक हुए। उस स्थान पर नन्दीश्वर ने जो शिवलिंग स्थापित किया था, वह भुवनेश्वर के नाम से विख्यात हुआ और वह स्थान भी सरमद नामक तीर्थ के रूप में अत्यन्त पूज्य हुआ। जो मनुष्य उन नदियों में स्नान करके भुवनेश्वर शिवलिंग का पूजन करता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। इस चरित्र के उपरान्त शिवजी ने गिरिजा से यह कहा—"हे प्रिये ! अब हम नन्दीश्वर का अभिषेक करेंगे तथा इसे अपने सब गणों का स्वामी बनायेंगे।" गिरिजा ने शिवजी के इस कथन को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। तदुपरान्त शिवजी ने अपने सब गणों को पास बुलाया। उन गणों ने हाथ जोड़ कर शिवजी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! आप हमें क्या आज्ञा देते

हैं? यदि आप कहें तो हम समुद्र को सुखा दें अथवा मृत्यु को नष्ट कर दें। यदि आपकी इच्छा हो तो हम सभी दानवों तथा दैत्यों को जला कर भस्म कर डालें एवं अग्नि को ही पकड़ कर यहाँ ले आवे। हे नाथ ! यदि आप किसी के ऊपर प्रसन्न हों तो वैसा कहें? आपकी आज्ञा पा कर हम उसकी हर प्रकार की सेवा करने के लिए तैयार हैं।''

हे नारद ! गणों की यह बात सुन कर शिवजी ने उत्तर दिया—''हे गणो ! यह नन्दीश्वर हमारा प्रिय पुत्र तथा तुम सब का अधिपति है। तुम सब लोग मिल कर इसका अभिषेक करो तो हमें प्रसन्नता प्राप्त होगी।'' शिवजी की यह आज्ञा सुनते ही उन सब गणों ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर शिवजी तथा नन्दीश्वर का जय-जयकार किया। उसी समय मैं, विष्णु जी तथा अन्य सब देवता भी वहाँ जा पहुँचे और शिवजी की स्तुति करते हुए यह कहने लगे कि ''हे प्रभो ! आपने नन्दीश्वर के ऊपर जो कृपा की है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। यह नन्दीश्वर साक्षात् आपके ही स्वरूप हैं। अस्तु, हम सब इन्हें प्रणाम करते हैं।'' इतना कह कर हम लोगों ने नन्दीश्वर का अभिषेक किया। तदुपरान्त शिवजी की इच्छा जान कर मैंने मरुत की कन्या सुयशा के साथ नन्दी का विवाह करा दिया। उस विवाह में बड़ा उत्सव मनाया गया। तदुपरान्त नन्दीश्वर अपनी पत्नी सहित सिंहासन पर विराजमान हुए और सब लोग उन्हें भेंटे देने लगे। लक्ष्मी जी ने नन्दीश्वर को मुकुट आदि आभूषण दिये, गिरिजा ने अपने कण्ठ का हार दिया, विष्णु जी ने रथ की ध्वजा दी तथा मैंने स्वर्णहार पहनाया। इसी प्रकार जब अन्य सब लोग भी नन्दी को भेंट दे चुके, तब शिवजी उन्हें परिवार सहित अपनी पुरी को ले गये। तब से वे वहीं रह कर शिव-गिरिजा का ध्यान किया करते हैं और उन्हीं की सेवा में संलग्न रहते हैं। हे नारद ! इस तैंतालीसवें शिव-अवतार की कथा को जो व्यक्ति मन लगा कर पढ़ता, सुनता अथवा किसी दूसरे को सुनाता है, वह इस लोक में सुख पा कर, अन्त में शिवजी के समीप कैलाश पर्वत पर जा पहुँचता है।''

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—हे नारद ! अब हम भैरव अवतार की कथा कहते हैं। एक दिन कुम्भज मुनि ने स्कन्द जी के पास जा कर यह कहा—"हे स्कन्द जी ! आप मुझे भैरव का चरित्र सुनाने की कृपा करें। हे स्कन्द जी ! एक भैरव की गणना तो भूतों में है, जिनके अधीन समस्त योगिनीगण हैं, दूसरे जो संसार को भयानक दिखाई दे, उसे भी भैरव कहते हैं; अस्तु, आप मुझे यह बताइये कि वे भैरव कौन से हैं, जिन्हें शिवजी का अवतार कहा जाता है तथा यह भी बताइये कि उन्होंने किस कार्य के निमित्त जन्म लिया?"

हे नारद ! कुम्भज मुनि की प्रार्थना सुन कर स्कन्द जी ने उत्तर दिया—"हे मुनि ! भैरव भगवान् सदाशिव के पूर्ण रूप हैं। वे न तो भूत हैं और न भयानक ही। उनकी महिमा को ब्रह्मा तथा विष्णु भी नहीं जान पाते। अब तुम भैरव का वृत्तान्त सुनो। एक समय की बात है कि सब देवता तथा मुनि आदि एकत्र हो कर यह विचार करने लगे कि इस सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी कौन है? बहुत समय सोचने-विचारने के बाद भी जब कोई ठीक विचार न हो सका, तब उन्होंने यह निश्चित किया कि हम लोग सुमेरु पर्वत पर चल कर ब्रह्मा जी से यह बात पूछें तो वे सब का मूल कारण बता देंगे। अस्तु, यह निश्चय कर सब लोग ब्रह्मा जी के पास जा पहुँचे।"

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! उन सब देवताओं ने मेरे पास आ कर यह कहा—"हे विधाता ! आप हमें यह बताने की कृपा करें कि सम्पूर्ण लोकों का स्वामी कौन है? जो दोषों से रहित, निर्गुण, सगुण, अविनाशी, सब के मन की जानने वाला विश्वम्भर तथा सब संसार को उत्पन्न करने वाला हो, उसका नाम आप हमें बतायें।" देवताओं की यह बात सुन कर मैंने उन्हें यह उत्तर दिया—"हे देवताओ ! तुम जिसे जानना चाहते हो, वह मैं ही हूँ। मेरे ब्रह्मा, स्वयम्भू, धाता, अज, परमेष्ठी आदि अनेक नाम हैं। अतः इन

नामों को सुन कर तुम स्वयं समझ सकते हो कि परब्रह्म मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।"

इतनी कथा सुना कर स्कन्द जी ने कुम्भज मुनि से कहा—"हे कुम्भज ! शिवजी की माया ऐसी बलवान् है कि उसके वशीभूत हो कर ब्रह्मा स्वयं को परब्रह्म कहने लगे। अस्तु, जिस समय वह वार्तालाप हो रहा था, उसी समय विष्णु जी चतुर्भुज स्वरूप धारण किये हुए, पीताम्बर ओढ़े, उत्तमोत्तम वस्त्रालंकारों से सुसज्जित तथा क्रोध से लाल नेत्र किये वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने सब देवताओं को सम्बोधित करते हुए यह कहा—"हे देवताओ ! तुम इस ब्रह्मा की मूर्खता को देखो, यह ऐसी उल्टी बातें कर रहा है।" देवताओं ने इतना कह कर विष्णु जी ब्रह्मा से बोले—"हे ब्रह्मा ! तुम वेद तथा पुराणों के विरुद्ध ऐसे मिथ्या वचन क्यों कह रहे हो? तुम्हारा जन्म हमारे नाभि-कमल से हुआ है और तुम्हारी महिमा हमारे अधीन है। पृथ्वी का भार उतारने के लिए हम हीं समय-समय पर अवतार लेते हैं। इसलिए हम हीं निर्गुण, परमज्योति, परमात्मा तथा परब्रह्म हैं। तुम अपने नाम पर मिथ्या गर्व मत करो तथा सब लोगों के सामने सच्ची बात कहो।" हे कुम्भज ! इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु ने परस्पर बहुत विवाद किया तथा शिवजी को कुछ भी न जान कर स्वयं को ब्रह्म ठहराया।"

ॐ ॐ ॐ

चौदहवाँ अध्याय

स्कन्द जी बोले—"हे कुम्भज ! अन्त में यह निश्चय हुआ कि वेद जिसे परब्रह्म कह दे, उसी को सब का स्वामी स्वीकार किया जाए। अस्तु, ब्रह्मा, विष्णु जी तथा सब देवताओं ने वेदों को बुला कर अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह कहा—"हे वेद ! तुम्हारे वचनों पर सब को पूर्ण विश्वास है, अतः तुम हमें यह बताओ कि परब्रह्म कौन है?" यह सुन कर वेदों ने उत्तर दिया—"हे देवताओ ! जब तुम हम हीं पर अपना निर्णय छोड़ रहे हो तो हम सत्य बात ही कहेंगे। उसे सुन कर

तुम्हारा संशय नष्ट हो जायेगा।'' इस प्रकार सब देवताओं को सम्बोधित करने के उपरान्त सबसे पहले ऋग्वेद ने कहा—''हे देवताओ ! जहाँ तक सम्पूर्ण जीवधारी स्थित हैं और करोड़ों ब्रह्माण्ड दृष्टिगत होते हैं तथा जिन्हें हम वेद परम तत्त्व कहते हैं, वहाँ तक सन्तों के मत से भी यह निश्चित है कि भगवान् सदाशिव ही परब्रह्म हैं, क्योंकि वे महाप्रलय में भी नष्ट नहीं होते हैं।''

हे कुम्भज ! इतना कह कर जब ऋग्वेद चुप हो गया, तब यजुर्वेद ने इस प्रकार कहा—''हे देवताओ ! सृष्टि के सम्पूर्ण जीव यज्ञ द्वारा जिनका सेवन करते हैं तथा योगीजन जिनका ध्यान अपने हृदय में धरते हैं, परन्तु जिनकी इच्छा के बिना उनका दर्शन प्राप्त नहीं कर पाते, जो परमानन्द स्वरूप हैं और जिन्हें हम नेति-नेति कह कर पुकारते हैं, वे परब्रह्म सदाशिव ही हैं।''

हे कुम्भज ! वेदों के यह वचन सुन कर दोनों देवता बहुत हँसे, तदुपरान्त उन्होंने शिवजी की माया से मोहित हो कर इस प्रकार कहा—''शिव योगियों का स्वामी, जटाधारी, विष भक्षण करने वाला, नग्न शरीर, बैल पर चढ़ने वाला है। जिस शिव का संग करने से ही सब को ग्लानि होती है, भला वह परब्रह्म किस प्रकार हो सकता है?'' इतना कह कर दोनों देवता हँसने लगे।

हे कुम्भज ! उस समय प्रणव ने दोनों देवताओं को सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—''हे सृष्टि उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मा तथा हे पालनकर्त्ता विष्णु ! तुम हमारी बात मन लगा कर सुनो। तुम्हें अपने मुख से ऐसे उल्टे वचन नहीं कहना चाहिए। अस्तु, तुम्हें वेद के मत का खण्डन करना उचित नहीं है। वेदों ने यह सत्य ही कहा है कि परब्रह्म शिवजी की रूप-रेखा को नहीं जाना जा सकता। वे तीनों लोकों में अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं। उन्होंने तुम्हारी प्रार्थना पर ही स्वरूप धारण किया है। वे तीनों लोकों के हृदय की बात को जानने वाले हैं। वे ब्रह्मा की प्रार्थना पर उनकी भौंहों के बीच में उत्पन्न हुए हैं। अब हम

तुम से शिवजी के मूल-चरित्रों का वर्णन करते हैं, जिससे तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट न हो और तुम्हें परब्रह्म शिवजी का श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हो।

हे देवताओ ! जिस समय कोई भी जीव न था, यहाँ तक कि यह संसार, प्रकृति, पुरुष, ब्रह्मा तथा विष्णु आदि भी नहीं थे, उस समय एकमात्र अद्वितीय, परब्रह्म, माया रहित, निर्गुण भगवान् सदाशिव ही वर्तमान थे जिनको वेद नेति-नेति कह कर पुकारते हैं, फिर भी जिनके भेद को नहीं जान पाते। ऐसे निर्गुण स्वरूप शिवजी सृष्टि में सर्वत्र विराजमान हैं। हर शिवजी के पूर्णांश से उत्पन्न हुए हैं। तुम दोनों को उनकी सब प्रकार से सेवा करनी चाहिए। शिवलोक में जिन शिवजी का निवास रहता है, वे ही अन्यत्र हर तथा रुद्र नाम से प्रतिष्ठित हैं। वे शक्ति सहित अवतार ग्रहण करते हैं तथा कैलाश पर्वत पर स्थित रहते हैं। वे मृत्यु को अपने अधीन रखते हैं तथा अनेक प्रकार की लीलाएँ करके सदैव स्वाधीन रहते हैं। उनके चरित्र को आज तक कोई नहीं जान पाया है। उनकी जो इच्छा होती है, संसार में वही कार्य होता है। वेद, पुराण तथा शास्त्र भी उन्हें आज तक नहीं जान पाये। तुम सब उन्हीं की माया द्वारा भ्रमित हो कर पशुओं के समान इधर-उधर भटक रहे हो।

हे देवताओ ! वे लीलामय शिवजी अपनी इच्छानुसार अनेक स्वरूप धारण करते हैं। कभी वे योगी बन जाते हैं और कभी भोगी। वे कभी जटाएँ रख लेते हैं और कभी परमहंस गति का प्रदर्शन करते हुए, स्वयं में ही देख कर ध्यान मगन हो जाते हैं, अनेक प्रकार के भोग भोगते हैं और कभी शक्ति सहित सिंहासन पर बैठ कर प्रजा का पालन करते हैं। सब देवता तथा दैत्य उन्हें प्रसन्न करके अपने मनोरथ को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अनेक बातें प्रणव ने सुनायीं, परन्तु उन दोनों के मन में मोह के कारण कुछ बोध न हुआ। उस समय शिवजी ने यह विचार किया कि अब मुझे इनका मोह नष्ट कर देना चाहिए।"

ॐ ॐ ॐ

पन्द्रहवाँ अध्याय

स्कन्द जी बोले—"हे कुम्भज ! इतने में दोनों देवताओं के मध्य एक ज्योति प्रकट हुई, जिसके प्रकाश से समस्त पृथ्वी तथा आकाश पूर्ण हो गया। उसमें से एक सुन्दर आकार उत्पन्न हुआ, जिसे देख कर ब्रह्मा ने अपने पाँचवें मुख से यह कहा—"हे विष्णु जी ! हमारे-तुम्हारे बीच में यह कैसी आश्चर्यजनक ज्योति प्रकट हुई है, जिसमें किसी मनुष्य का आकार दिखाई पड़ता है।" ब्रह्मा यह कह ही रहे थे कि उन्हें ब्रह्मस्वरूप इस प्रकार का प्रतीत हुआ कि एक मनुष्य नीललोहित वर्ण, चन्द्रभाल, त्रिशूल हाथ में लिये तथा सर्पों के भूषण धारण किये हुए खड़ा है। तब ब्रह्मा उससे इस प्रकार बोले कि तुम तो वही हो, जो हमारी भौंहों के बीच से उत्पन्न हुए थे। तुम्हारे रोने के कारण ही हमने तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। अब तुमको उचित है कि तुम हमारी शरण में आओ। हम तुम्हारी हर प्रकार से रक्षा करेंगे। जब ब्रह्मा जी ने मोह के वशीभूत हो कर यह कहा, तब ब्रह्मा का ऐसा गर्व देख कर शिवजी ने महाक्रोध किया तथा ऐसे एक मनुष्य को उत्पन्न किया जो भक्तों को आनन्द करने वाला, शत्रुओं के लिए अत्यन्त भयंकर था। उसके मस्तक पर चन्द्रमा था, तीनों नेत्र लाल थे तथा शरीर में सर्प लिपटे हुए थे। इस प्रकार उन्होंने हर प्रकार अपने समान ही अपनी लीला के लिए उसे प्रकट किया। तब उस उत्पन्न हुए मनुष्य ने हाथ जोड़ कर शिवजी से यह निवेदन किया—"हे शिवजी ! अब आप मेरा नाम रख दीजिये तथा मुझे आज्ञा दीजिये कि अब मैं क्या करूँ?" यह सुन कर शिवजी बोले—"तुम काल के समान ही प्रतीत होते हो, इसलिए तुम्हारा नाम कालराज होगा तथा तुम विश्व के भरण की शक्ति रखते हो इसलिए तुम्हारा नाम भैरव भी होगा। तुमसे काल भी भयभीत होगा, इसलिए तुम्हारा नाम कालभैरव भी है। तुम गणों के दुःखों को दूर करने वाले हो, इसलिए लोग तुम्हें अमरादिक कह कर भी पुकारेंगे। तुम भक्तों के पापों का भक्षण करोगे, इसलिए तुम्हारा नाम पापभक्षण भी होगा।

तुम सब भक्तों के मनोरथ पूर्ण करोगे। अब तुम अपना काम सुनो, मैं तुम्हें बताता हूँ।''

हे कुम्भज ! इतना कह कर शिवजी ने भैरव को यह आज्ञा दी कि ''हे भैरव ! पद्मसुत जो ब्रह्मा है, यह हमारा महाशत्रु है, तुम इसको भली प्रकार शिक्षा दो। इसके अतिरिक्त और भी जो संसार में इस तरह मेरे विरोधी हैं, उनको उचित दंड दो। मुझे अपनी मुक्तिनगरी अर्थात् काशी प्राण के समान प्रिय है। मैं तुम्हें उसका स्वामी बनाता हूँ। काशी में तुम्हारी दुहाई फिरेगी और तुम वहाँ का राज्य करोगे। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि काशी में जो मनुष्य पाप करे तुम उनको उपदेश करो। जो कोई काशी में शुभ या अशुभ कर्म करते हैं, उनको चित्रगुप्त नहीं लिखते और वहाँ यमराज की आज्ञा नहीं चलती।'' यह सुन कर कालभैरव प्रसन्न हुए तथा मन में सोचने लगे कि ब्रह्मा को क्या दंड देना चाहिए। फिर उन्होंने यह सोचा कि ब्रह्मा ने पाँचवें मुख से शिवजी की निन्दा कर उनको पुत्र बनाया है, इसलिए मेरे विचार से तो यही उचित है कि अब मैं उनका पाँचवाँ सिर काट डालूँ। यह सोच कर भैरव अत्यन्त क्रोधित हुए और उनका स्वरूप महाभयानक हो गया। फिर उन्होंने अपनी बायीं उँगली के नख से ब्रह्मा का पाँचवाँ मुख काट लिया। उस समय चारों ओर हाहाकार मच गया। देवता एवं मुनि आदि सब भयभीत हो कर काँपने लगे। विष्णु जी भी यह देख कर हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे। ब्रह्मा जी भी अपनी यह दशा देख कर महादुःखी हुए, वे शतरुद्री का जप करने लगे तथा शिवजी की शरण में गये। उस समय शिवजी ने कहा—''हे विष्णु एवं हे ब्रह्मा ! तुम लोग किसी प्रकार का भय मत करो, तुम दोनों ही सृष्टि को उत्पन्न करने वाले तथा उसके पालने वाले हो और हम प्रलय करने वाले हैं। हम तुम तीनों देवताओं में कोई भेद नहीं है, परन्तु ब्रह्मा ने अपने जिस मुख से हमारी निन्दा की, हमने केवल उसी को दंड दिया है। यह चरित्र कर हमने तुम्हारा मोह दूर कर दिया है।''

हे कुम्भज ! इसके पश्चात् शिवजी ने भैरव से कहा—''हे भैरव !

तुम जो कुछ भी काम करो, वह सोच कर ही करना, क्योंकि ब्रह्मा चाहे कैसा भी भ्रष्ट हो गया हो, परन्तु उसका वध करना महापाप है। तुमको ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर काट डालने के कारण दोष लग गया है। तुम उसको दूर करो। यद्यपि तुम को पाप-पुण्य कुछ नहीं है, फिर भी वेद के अनुसार सब कार्य करना चाहिए जिससे कि अन्य मनुष्य भी उसका अनुकरण करें। तुम ब्रह्मा के सिर को हाथ में लिये, भिक्षाटन करते हुए सब लोकों की परिक्रमा करो। शिवजी ने इतना कह कर एक स्त्री प्रकट की, जिसका आकार बहुत बड़ा था। उसका नाम उन्होंने ब्रह्महत्या रखा। वह महाभयंकर थी। उसका रूप भय प्रदान करने वाला था। उसका शरीर रक्तमय तथा वह रक्त ही वस्त्र पहने थी और सब शरीर में रुधिर लगाये हुए थी। वह आकाश तक सिरे उठाये हाथ में खप्पर लिये हुए थी, जिसमें से रक्तपान करती जाती थी। उस प्रलयकाल के मेघ के समान महाभयंकर ब्रह्महत्या को शिवजी ने प्रकट करके उससे कहा कि काशी हमारी नगरी है, वहाँ जब तक भैरव लौट कर न आवें तब तक इनको न छोड़ना। चाहे कोई करोड़ों उपाय करे, काशी के अतिरिक्त तुम्हारी तीनों लोकों में गति होगी। शिवजी यह कह कर अन्तर्धान हो गये तब भैरव भी शिवजी की आज्ञा स्वीकार कर, ब्रह्मा का सिर लिये हुए भिक्षाटन करते रहे। वह उच्च स्वर में सब को अपने पापों के विषय में बताते थे।''

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शिवजी की आज्ञानुसार ब्रह्महत्या भैरव के पीछे-पीछे घनघोर शब्द करती हुई चली। भैरव समस्त संसार में भ्रमण करते फिरे। जो-जो तीर्थ सातों द्वीपों में थे, वे सब भैरव ने अकेले ही किये। उनके साथ में ब्रह्महत्या के अतिरिक्त और कोई नहीं था। जब वे पाताल लोक में गये तब भी उस स्त्री ब्रह्महत्या का साथ न छूटा। फिर उन्होंने ऊपर के लोकों में भी भ्रमण किया, परन्तु वह सदैव

उनके साथ रही। इसी प्रकार भैरव समस्त ब्रह्माण्ड में घूमते रहे। जहाँ भैरव ब्रह्मा का सिर लेकर जाते थे, वहाँ के निवासी अन्न-धन से परिपूर्ण हो जाते थे। अन्त में भैरव अत्यन्त दुःखी हो कर, यह सोच कर नारायण लोक को चले कि वहाँ जाने से पाप मुक्त हो जायेंगे। उस समय विष्णु जी ने भैरव को आते देख लक्ष्मी से कहा—"हे लक्ष्मी देखो, परब्रह्म शिवजी यहाँ आ रहे हैं। धरती धन्य है। यह हम पर कृपा करके ही यहाँ आ रहे हैं।" थोड़ी देर में जब भैरव निकट आये तो विष्णु जी ने समस्त सभा सहित उठकर भैरव की स्तुति करते हुए कहा—"हे सदाशिव ! आप तो सब पापों को दूर करने वाले, भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाले तथा अविनाशी हैं। आप यह क्या चरित्र तथा लीला कर रहे हैं? आप कृपा कर हमें यह बतायें कि आपके हाथ में जो सिर है, उसे लेकर भ्रमण करने का क्या कारण है? आप संसार के महाराजाधिराज हैं, फिर इस प्रकार आपका भिक्षा माँगना आश्चर्यजनक है।"

हे नारद ! विष्णु जी की यह बात सुन कर भैरव ने कहा—"हे विष्णो ! हम ब्रह्मा का सिर काट कर पापी हुए हैं। उस पाप से मुक्ति पाने के लिए ही हम संसार का भ्रमण कर रहे हैं।" यह सुन कर विष्णु जी बोले—"हे प्रभो ! मुझसे तीनों लोकों को मोहित करने वाली माया को आप दूर रखिये। आपको पुण्य तथा पाप से कोई मतलब नहीं। आपके नाम जपने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जब आप प्रलय में देवताओं, दैत्यों, मुनीश्वरों तथा वर्णाश्रम आदि को नष्ट करते हैं, तब आपको कोई पाप क्यों नहीं लगता? उस समय तो आप ब्रह्मा का अभाव ही कर देते हैं। तब केवल एक सिर के काटने से ही आपको पाप कैसे लग सकता है? आप के गले में अन्य कल्पों के ब्रह्माओं के सिरे पड़े हुए हैं। आपको उनकी ब्रह्महत्या क्यों नहीं लगती? फिर आप अपने को पापी क्यों ठहराते हैं? आपकी लीला विचित्र है, उसको देवता तथा मुनि कोई नहीं जानता। जो मनुष्य एक बार आपका ध्यान करता है, उसके दुःख तथा ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि

शत्रु भी आपके शिवशंकर शशिशेखर आदि नाम ले तो वह भी आवागमन से मुक्ति पा कर कैलाश में वास करता है, क्योंकि आपका नाम शुभ है। इस प्रकार हाथ में सिर लेकर आपका भ्रमण करना उचित नहीं। हमारे बड़े भाग्य हैं कि आज आप हमारे लोक में विराजमान हुए तथा आपकी दृष्टि अमृत के समान गुणवान् है, जिसको देखने मात्र से ही फिर आवागमन का भय नहीं रहता है।'' इस प्रकार विष्णु जी सदाशिवजी के गुणों का वर्णन कर रहे थे, तभी भैरव ने भिक्षा माँगी। लक्ष्मी ने उन्हें भिक्षा देकर प्रणाम किया। तदुपरान्त भैरव भिक्षा लेकर आगे बढ़े और उनके पीछे-पीछे ब्रह्महत्या भी चली।''

सत्रहवाँ अध्याय

स्कन्द जी बोले—''हे कुम्भज ! विष्णु जी ने ब्रह्महत्या को इस प्रकार भैरव के पीछे जाते हुए देख कर कहा—''हे ब्रह्महत्या ! तू भैरव का पीछा छोड़ दे और तुझे जो वर चाहिए, वह हम से माँग ले।'' विष्णु जी के ऐसे वचन सुन कर ब्रह्महत्या ने हँस कर कहा कि मैं शिवजी की आज्ञानुसार ही भैरव के पीछे फिर कर अपने को शुद्ध करती फिरती हूँ। मैं भैरव को किसी प्रकार का दुःख नहीं देती। जो कोई भैरव का नाम लेता है, मैं तुरन्त उसका घर त्याग कर भाग जाती हूँ। ब्रह्महत्या यह कह उसी प्रकार भैरव के पीछे-पीछे चलने लगी। उस समय भैरव ने विष्णु जी के ऐसे स्नेह को देख कर कहा—''हे विष्णु ! तुम्हारी जो इच्छा हो, हम से वह वर माँग लो। हमको यह चाण्डाल हत्या कोई दुःख नहीं दे सकती। हम स्वयं ही यह चरित्र संसार के लिए कर रहे हैं।'' यह सुन कर विष्णु जी बोले—''हे प्रभो ! हम को तो यही सबसे बड़ा वर मिला है कि आप हमारे लोक को आये। हमारी इच्छा है कि हम प्रतिदिन आपके चरण-कमलों का ध्यान किया करें तथा हम को प्रतिदिन आपका दर्शन लाभ प्राप्त हो। विष्णु जी की ऐसी

इच्छा जान कर भैरव ने कहा—"हे विष्णु ! हम ने तुमको यही वर दिया। अब तुम भी देवताओं तथा मुनीश्वरों को वर दिया करो और आनन्दपूर्वक तीनों लोकों के स्वामी बन कर बैठे रहो।" भैरव ने विष्णु जी को यह वरदान देकर तीनों लोकों की परिक्रमा की तथा काशी की ओर चले। जब भैरव काशी के समीप पहुँचे तथा ब्रह्महत्या अत्यन्त भयभीत हो कर चिल्लाने लगी। जब भैरव वहाँ बैठे गये, तब वह हाहाकार करके पृथ्वी के नीचे चली गयी। उस समय भैरव के हाथ से ब्रह्मा का सिर धरती पर गिर पड़ा। यह देख कर भैरव अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा सब देवताओं एवं मुनीश्वरों ने जय-जयकार किया। तब भैरव प्रसन्न हो कर नाचने लगे।

हे कुम्भज ! काशी की महिमा परमश्रेष्ठ है। हम उसकी महिमा कहाँ तक वर्णन करें। सब सर्वश्रेष्ठ कपालमोचन तीर्थ है। हे कुम्भज ! भैरव का अवतार मार्गशीर्ष की कृष्णाष्टमी को हुआ था। जो कोई उस दिन व्रत करते हैं, उसके जन्म भर के पाप नष्ट हो जाते हैं। उस दिन जागरण का भी यही फल मिलता है। यदि कोई भैरव के निकट जा कर काशी व्रत को करे तो उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं, जो कोई अष्टमी, चतुर्दशी तथा रविवार को भैरव-तीर्थ की यात्रा करेगा, उसे सब पापों से मुक्ति मिलेगी। जो कोई भैरव की आठ परिक्रमा करे तो उसको तीनों प्रकार के पाप नहीं लगेंगे। भैरव का यह व्रत सब व्रतों का राजा तथा चारों फलों को प्रदान करने वाला है। इस व्रत के करने से भैरव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। भैरव चरित्र के सुनने से भी मुक्ति तथा आनन्द मिलता है।"

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! इससे पूर्व हम वीरभद्र अवतार का विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं। अब हम तुम्हें वही फिर संक्षेप में सुनाते हैं। हमारे पुत्र दक्ष प्रजापति ने अपनी बुद्धिहीनता के कारण

शिवजी के साथ बैर बढ़ा कर उनकी निन्दा की, परन्तु शिवजी ने उसके ऐसे अज्ञानपूर्ण वचनों का कोई विचार न किया। इतने में जब वह यज्ञ करने लगा, तब समस्त देवता तथा मैं भी, अपने परिवारों सहित उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए गया। यद्यपि वहाँ बड़ी धूमधाम थी, परन्तु शिवजी के बिना कोई शोभा न थी। उस समय दधीचि मुनि ने सब को समझा कर यह आग्रह किया कि तुम सब लोग जाकर शिवजी को यहाँ ले आओ, परन्तु उनकी बात किसी को भी उचित न लगी। यहाँ तक कि विष्णु जी तथा मैंने भी शिवजी को भुला दिया। अन्त में, दधीचि मुनि यह कह कर कि यह यज्ञ बिना शिवजी के किसी प्रकार भी पूर्ण न होगा, बाहर चले गये। इस बात को दक्ष प्रजापति उत्तम न समझ कर, हम सब की सहायता से यज्ञ करने लगे। संयोग से सती अपने पिता के घर में यज्ञ होने का समाचार सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए शिवजी से हठ करके आज्ञा प्राप्त कर, दक्ष के घर गयीं। वहाँ पहुँच कर शिवजी की अत्यन्त अप्रतिष्ठा देख कर, उन्होंने क्रोधित हो कर यह कहा—"हे दक्ष ! ब्रह्मा, विष्णु, सब देवता तथा मुनि आदि ! क्या तुम सब की बुद्धि नष्ट हो गयी है, जो तुम सब ने शिवजी के बिना यज्ञ करना चाहा है? तुम सब को इसका फल अवश्य मिलेगा।" यह कह कर सती योग धारण कर वहीं जल गयी।

हे नारद ! इस प्रकार सती को जलती हुई देख कर चारों ओर हाहाकार मच गया तथा सब लोग व्यथित हो गये। शिवजी ने अत्यन्त क्रोधित हो, अपनी एक जटा उखाड़ कर शिला पर दे मारी। उस समय नदियाँ तथा पर्वतों सहित तीनों लोक काँप उठे। उस जटा के प्रथम भाग से एक चतुर्भुजस्वरूप, त्रिनेत्र, हाथ में अत्यन्त भयानक त्रिशूल लिये हुए वीरभद्र नामक गण उत्पन्न हुआ। वह शिवजी के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। फिर उसने अपने रोमों से अपने सामान असंख्य गणों को उत्पन्न किया। वे सब अट्ठहास करते थे। जटा के दूसरे भाग से श्रीमहाकाली महाभयानक रूप धारण किये हुए, अपने साथ

करोड़ों योगिनियों को लिये हुए, भयंकर शब्द करती हुई प्रकट हुई। इसके पश्चात् वीरभद्र तथा काली ने हाथ जोड़ कर शिवजी से पूछा—''हे शिवजी ! अब हमें आज्ञा दीजिये कि हम क्या करें?'' तब शिवजी ने अत्यन्त कुपित हो कर उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम दोनों दक्ष के यहाँ पहुँच कर उसके यज्ञ को विध्वंस कर, सब को प्राणदंड दो। शिवजी की ऐसी आज्ञा पा कर वीरभद्र तथा काली अपनी-अपनी सेनाओं सहित चले। उनके चलने से चारों ओर भीषण शब्द होता था।

हे नारद ! इस प्रकार वीरभद्र के सेना सहित आगमन का समाचार जब दक्ष की पत्नी वीरनी ने सुना, जिसने कि सती का अत्यन्त आदर किया था, तो उसने सब को समझा कर यह कहा कि अब शिवजी महाकुपित हुए हैं, इसलिए किसी की कुशल नहीं है। वीरनी यह बात सब से कह ही रही थी कि शिवजी की सेना वहाँ पहुँच गयी। राजा दक्ष उस स्थान पर यज्ञ कर रहे थे, जहाँ हिमालय पर्वत के स्वर्ण शिखर हैं तथा जहाँ मायापुरी के निकट गंगा प्रवाहित हो रही है। उस देश का नाम कनखल है। वीरभद्र ने वहाँ पहुँच कर प्रलय की अग्नि के समान प्रचण्ड हो कर सब लोगों को सुनाते हुए ऊँचे स्वरों में कहा—''हम शिवजी की आज्ञा से यहाँ आये हैं और तुम में से किसी को जीवित नहीं छोड़ेंगे।''

ॐ ॐ ॐ

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! वीरभद्र ने यह कह कर यज्ञ स्थल को जला कर भस्म कर दिया तथा गणों को आज्ञा दी कि शीघ्र ही अकाल प्रलय करो। उस समय वीरभद्र की आज्ञा सुन कर गणों ने क्रोधित हो कर, यज्ञ में उपस्थित देवता तथा मनुष्यों के दाढ़ी-मूँछ तथा केश आदि सब उखाड़ डाले और सब को शस्त्रों से मारा। वीरभद्र का यह कृत्य देख कर दिग्पालों ने कुछ देर तक उनका सामना किया, परन्तु वे सब कुछ ही देर में परास्त हो गये। यह दशा देख कर सब देवता भाग

खड़े हुए तथा उनका कोई भी उपाय सफल न हुआ। शिवजी के गण महाभयंकर अट्ठहास करके यज्ञ को नष्ट करने लगे। यह देख कर अत्रि मुनि भाग कर विष्णु जी के चरणों पर गिर पड़े और बोले—"हे विष्णु जी ! आप हमारी रक्षा करें, हम आपकी शरण में आये हैं। हम देवताओं तथा मुनि आदि के दुःखों का किस प्रकार वर्णन करें? आप इन शिव के गणों से उनकी रक्षा कीजिये।" दक्ष प्रजापति भी विष्णु जी से यही विनती कर उनके चरणों पर गिर पड़े और स्तुति करते हुए बोले—"हे विष्णु जी ! आप ऐसी कृपा करें कि जिससे यह गण नष्ट हो जाएं। इन गणों ने आ कर हमारा यज्ञ नष्ट कर डाला है।" ऐसा निवेदन कर दक्ष विष्णु जी के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ।

हे नारद ! इस प्रकार देवताओं तथा दक्ष की विनती सुन कर विष्णु जी गणों पर क्रोधित हो कर, उनसे लड़ने के लिए खड़े हुए। विष्णु जी द्वारा स्मरण करते ही सब शस्त्र चले आये। तब विष्णु जी रथ पर आरूढ़ हो कर रथ पर चले। उस समय विष्णु जी गणों के सम्मुख खड़े हो कर प्रज्वलित अग्नि के समान दिखाई पड़ रहे थे। उन्होंने गणों को अपने तीक्ष्ण बाणों से व्यथित करके, युद्ध भूमि से भगा दिया। यह देख कर श्रीमहाकाली महाकुपति हो कर भयंकर शब्द करती हुई विष्णु जी के समीप चलीं। काली की सेना भी विष्णु जी के ऊपर चढ़ आयी तथा विष्णु जी को चारों ओर से घेर लिया। क्षेत्रपाल भी अपनी समस्त सेना सहित विष्णु जी से लड़ने के लिए चले। भैरव भी विष्णु जी के समीप आ पहुँचे। इस प्रकार इन तीनों ने विष्णु जी से बड़ा युद्ध किया। उस युद्ध में विष्णु जी की बहुत-सी सेना मर गयी। अन्त में, विष्णु जी ने सब को परास्त कर, अपना तेज इतना बढ़ाया कि कोई उनसे युद्ध न कर सके। भैरव, काली तथा क्षेत्रपाल विष्णु जी की सेना के अन्दर इस प्रकार घुस गये, जिस प्रकार राहू चन्द्रमा को घेर लेता है। तब विष्णु जी ने अपना धनुष हाथ में लेकर तीखे बाण चलाये तथा इसके साथ ही अपना शंख बजा दिया। उस समय जो देवता वीरभद्र के भय से भाग गये थे, वे सब पुनः विष्णु जी के समीप आ गये। दोनों

ओर से पुनः घोर युद्ध हुआ। युद्ध में काली, भैरव तथा क्षेत्रपाल ने देवताओं तथा विष्णु जी की बहुत-सी सेना को नष्ट कर डाला। विष्णु जी ने भी योगमाया से समस्त बाणों को अभिमन्त्रित कर चलाया तथा योगमाया द्वारा शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए अपने समान अनेक पार्षद् प्रकट किये, जिन्होंने गणों को मार कर बहुत भय उत्पन्न किया।

हे नारद ! विष्णु जी की ऐसी योगमाया को देख कर, वीरभद्र ने अत्यन्त क्रोधित हो कर अपना त्रिशूल चलाया, जिससे विष्णु जी की सब योगमाया नष्ट हो गयी तथा वे स्वयं अकेले ही रह गये। तब वीरभद्र ने विष्णु जी के मस्तक पर अपनी गदा का प्रहार किया। विष्णु जी उस प्रहार को न सह कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय दोनों ओर की सेनाओं में हाहाकार मच गया। थोड़ी देर बाद विष्णु जी ने पुनः उठ कर अपना चक्र हाथ में लिया, जो प्रलय काल के असंख्य सूर्यों के समान प्रकाशयुक्त था। उसको देखकर सब गण आश्चर्यचकित हो, विष्णु जी के सम्मुख न ठहर सके। तब वीरभद्र ने शिवजी का ध्यान किया, जिससे उनके चक्र को रोक देने की शक्ति प्राप्ति हुई। उस बल से वीरभद्र ने उस शस्त्र को नहीं चलने दिया।''

ॐ ॐ ॐ

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! विष्णु जी के हाथ से वह चक्र न चल सका, जिसके चलने से प्रलय हो जाती है। विष्णु जी भी पर्वत के समान खड़े रह गये। तब विष्णु जी ने मंत्र पढ़ा, जिसके पढ़ने से शरीर तो हिल सका, परन्तु चक्र को चलने की शक्ति फिर भी नहीं मिली। उस समय मैंने विष्णु जी को इस प्रकार समझाया—''हे विष्णु जी ! जो कुछ होना है, वही होगा। आप व्यर्थ ही हठ क्यों करते हैं? क्या दधीचि मुनि का वचन कभी टल सकता है? अब आप इस पक्ष को शिवजी की इच्छा समझ कर ही छोड़ दीजिए और अपने धाम को

चलिये। मेरे समझाने पर विष्णु जी अपने धाम को चले गये। तब वीरभद्र अनेक प्रकार के उपद्रव करते हुए यज्ञ के समीप पहुँचे। सर्वप्रथम उन्होंने यज्ञ का स्थान फूँक दिया। समस्त यज्ञ के पात्र गंगा जी में फेंक दिये तथा जल डाल कर सब यज्ञकुण्ड बुझा दिये। उस समय यज्ञ हिरण का रूप धारण कर वहाँ से भाग चला। इस बात को जान कर वीरभद्र तुरन्त उसे आकाश से पकड़ कर ले आया तथा उसका सिर काट डाला। उन्होंने धर्मराज, दक्ष प्रजापति तथा कश्यप के मस्तक पर लात मारी। इसी प्रकार अनेक उपद्रव कर सब को यथाशक्ति प्रतिफल दिया। तदुपरान्त वे उसी चिताभूमि में प्रलय करने वाले रुद्र के समान विराजमान हुए। उस समय मैंने तथा विष्णु जी आदि ने शिवजी के निकट जा कर यह विनय की कि हे प्रभो ! आपके गण वीरभद्र ने यज्ञ को विध्वंस कर, सब को व्याकुल कर दिया है। दक्ष प्रजापति ने वास्तव में ही बहुत निर्बुद्धिता का काम किया, जो आपको अवधूत समझ कर यज्ञ में नहीं बुलाया। आपने जो सब को दंड दिया सो सब इसी योग्य थे। परन्तु अब आप हमारे अपराधों पर ध्यान न करके, हमें क्षमा कीजिये। आप कृपा करके यज्ञ को पूरा करें तथा ऐसा उपाय करें कि जिससे दक्ष भी जीवित हो सके। हे शिवजी ! ऐसा करके आप सब को आनन्द प्रदान कीजिए। यदि आप इस प्रकार दण्ड न देते तो धर्म नष्ट हो कर पाप फैल जाता और आपकी महिमा को भूल जाने से मनुष्य वेद रहित हो जाते।

हे नारद ! शिवजी यह प्रार्थना सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब उन्होंने वीरभद्र के पास पहुँच कर दयादृष्टि से देखा। उस समय वीरभद्र शिवजी के चरणों पर गिर पड़े था यह विनती की कि आप जो मुझे आज्ञा देंगे, मैं उसी का पालन करूँगा। तब शिवजी बोले "हे वीरभद्र ! अब तुम सब गण क्रोध को शान्त करो, क्योंकि सब लोग अपना-अपना दंड प्राप्त कर चुके हैं।" यह कह कर शिवजी ने वहाँ से सब गणों को विदा किया तथा सब की ओर कृपा से दृष्टिपात किया, जिससे सब अंग पहले जैसे ही हो गये। जो उस युद्ध में मारे गये थे, वे

सभी सोते हुए मनुष्यों के समान उठ खड़े हुए। फिर शिवजी ने भृगु के बकरे की दाढ़ी जमायी तथा दक्ष के शरीर पर बकरे का सिर रख कर उसको जीवित किया। उस समय दक्ष ने बकरे के स्वर में शिवजी की स्तुति की। तदुपरान्त शिवजी ने प्रसन्न हो कर यज्ञ के पूर्ण करने के लिए आज्ञा दी। इस प्रकार शिवजी की आज्ञा द्वारा यज्ञ पूर्ण हुआ। सब को यज्ञ भाग देकर, शिवजी को भी पूर्ण भाग दिया गया। श्री शिवशंकर यज्ञ पूर्ण करके अपने समस्त गणों सहित कैलाश पर्वत को लौट गये। विष्णु जी, मैं तथा समस्त देवता भी अपने-अपने लोक को चले गये। हे नारद ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार वीरभद्र के अवतार की कथा तुम्हें कह सुनायी। यह चरित्र बहुत ही पवित्र है। जो इसको पढ़ेगा या सुनेगा वह इस लोक में प्रसन्न रह कर, अन्त में शिव पद को प्राप्त करेगा।''

ॐ ॐ ॐ

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब हम तुम्हें शरभ अवतार का वर्णन सुनाते हैं। पूर्व समय में दिति के दो पुत्र कनककशिपु तथा कनकाक्ष नामक उत्पन्न हुए, जो देवताओं के बड़े शत्रु थे। संसार में केवल उन्हीं की आज्ञा चलती थी। उन्होंने देवताओं को बड़ा दुःख पहुँचाया और अधिक पापों के कारण संसार में बड़े उपद्रव उठने लगे। उनमें से जो छोटा भाई कनकाक्ष था, उसको तो विष्णु जी ने वाराह अवतार लेकर मार डाला। कनककशिपु के चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे छोटा पुत्र प्रह्लाद था। वह बड़ा सत्यवादी, तपस्वी, धर्मनिष्ठ, आत्मज्ञानी तथा विष्णु जी का परम भक्त हुआ। उसने उत्पन्न होते ही विष्णु जी की पूजा की। विष्णु जी के अतिरिक्त उसने संसार में अन्य किसी वस्तु को नहीं देखा। वह विष्णु जी के अष्टाक्षर मन्त्र का नित्य प्रति आनन्द से पाठ करता था। प्रह्लाद गुरु के यहाँ भी विष्णु जी का अष्टाक्षर मन्त्र जपा करता था। गुरु जो राजनीति आदि विषय पढ़ाते,

प्रह्लाद उसे न पढ़ता। एक दिन कनककशिपु ने परीक्षा लेने के लिए प्रह्लाद को अपने पास बुला कर अध्ययन का हाल पूछा और कहा— "हे पुत्र ! तुमने अब तक जो गुरु से पढ़ा हो, वह हमें सुनाओ।"

हे नारद ! पिता के ऐसे वचन सुन कर प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"हे पिता मैंने उन विष्णु जी का नाम पढ़ा है, जिनकी सेवा से दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है। संसार में उन वैकुण्ठवासी विष्णु जी के समान और कोई नहीं है। कनककशिपु ने प्रह्लाद के ऐसे वचन सुन कर उसको अपनी गोद से फेंक दिया और यह कहा—"हे प्रह्लाद ! विष्णु कौन है, जिसके चरणों की प्रीति तुम्हें उत्पन्न हुई है? संसार में मुझ से बड़ा और कौन है?" पिता के ऐसे वचन सुनकर प्रह्लाद बिलकुल भयभीत नहीं हुआ। उसने ऊँचे शब्दों में विष्णु जी का नाम लेते हुए कहा—"हे पिता ! मुझ पर उपकार करने वाले वही हैं।" यह कह कर प्रह्लाद विष्णु जी के चरणों में और भी अपनी भक्ति का उपदेश देकर, उनके हृदय में भक्ति भावना उत्पन्न करने लगा। हे नारद ! वह धर्म बहुत बड़ा आनन्द प्रदान करने वाला है, जिसमें अपने स्वामी के चरणों की सेवा न छूटे। निदान, अपने पुत्र की ऐसी भगवत् भक्ति देख कर कनककशिपु ने दैत्यों को बुला कर प्रह्लाद को मार डालने की आज्ञा दी और उनसे कहा—"यह बालक हमारा पुत्र हो कर, हमारे विरोधियों की सेवा करता है, इसलिए इसका तुरन्त वध कर दिया जाए।" दैत्यों ने कनककशिपु की यह आज्ञा सुन कर प्रह्लाद को अनेक प्रकार से मारने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु प्रह्लाद के शरीर में एक भी घाव न लगा। लगता भी कैसे, भगवान् विष्णु जी तो पहले से ही उसकी रक्षा करने के लिए तैयार थे। इस प्रकार विष्णु जी ने प्रह्लाद की रक्षा की। जब कनककशिपु ने प्रह्लाद के न मरने का समाचार सुना, तब वह बहुत क्रोधित हुआ। उसने प्रह्लाद को अपने पास बुलाया और बोला— "हे पुत्र ! तू मुझे बता कि तेरा स्वामी कौन है और वह कहाँ है? मैं तेरा वध करता हूँ। यदि वह वास्तव में तेरा स्वामी है तो मुझ से तेरी रक्षा

करें।'' यह कह कर वह अपना खड्ग लेकर प्रह्लाद का सिर काटने को तैयार हो गया, परन्तु प्रह्लाद को किसी प्रकार का भय न हुआ। उसने दृढ़ता से यह उत्तर दिया कि मेरा स्वामी सब जगह वर्तमान है तथा सब में विद्यमान है। उसके सिवा मुझे कोई नहीं मार सकता। स्वामी अपने भक्तों की सदैव रक्षा करता है।

हे नारद ! प्रह्लाद के ऐसे वचन सुन कर कनककशिपु ने कहा—"हे पुत्र ! अगर यह बात सत्य है तो फिर वह इस खम्बे में क्यों नहीं दिखाई देता।'' इतना कह कर उसने खम्भे पर तलवार चलायी। तलवार के लगते ही खम्भे में से अत्यन्त भयंकर शब्द हुआ और भक्तों के पालक विष्णु जी नरहरि रूप हो कर उसी खम्भे से प्रकट हो गये। उन्होंने ब्रह्मा जी का वर स्थिर रख कर, कनककशिपु का उदर चीर डाला। इसके पश्चात् नरहरि ने बड़ा भयानक शब्द किया जो तीनों लोकों में गूँज गया। उससे तीनों लोक भयभीत हुए, पृथ्वी काँप उठी, पर्वत जलने लगे तथा दिग्गज अपने स्थान पर स्थित न रह सके।

हे नारद ! नरहरि का ऐसा भयंकर रूप देख कर देवता वहाँ न ठहर सके और कुछ दूर भाग गये। उस समय विष्णु जी, मैं तथा बड़े-बड़े देवता दूर से ही उनकी स्तुति करने लगे। फिर मैंने प्रह्लाद से कहा—"हे प्रह्लाद तुम नरहरि को शान्त करके सब लोगों के दुःख दूर करो।'' प्रह्लाद मेरी बात को मान कर नरहरि के पास गये, परन्तु तब भी उनका क्रोध शान्त न हुआ, वरन् वे और भी ज़ोर से चिल्लाने लगे। तब इन्द्र आदि समस्त देवता वहाँ से भाग कर शिवजी की शरण में गये। मैं, इन्द्र तथा दिग्पाल आदि देवताओं ने शिवजी की स्तुति करके उनसे यह निवेदन किया कि हम सब आपकी शरण में आये हैं। अस्तु, आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे नरहरि का क्रोध शान्त हो। हे प्रभो ! इसी प्रकार का क्रोध दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने के लिए वीरभद्र ने किया था, उसको आप ही ने दूर किया था। हम को आप के अतिरिक्त कोई दूसरा इस क्रोधागनि को शान्त करने वाला दिखाई नहीं देता।''

ॐ ॐ ॐ

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! हम लोगों की ऐसी स्तुति सुन कर शिवजी ने प्रसन्न हो कर, नरहरि का क्रोध शान्त करने के लिए अपने गण वीरभद्र का स्मरण किया। तब वे शिवजी से हाथ जोड़ कर बोले—''हे सदाशिव ! मुझे क्या आज्ञा है?'' तब शिवजी ने कहा—''हे वीरभद्र ! तुम जा कर नरहरि का क्रोध शान्त करो। तुम उनको नम्रता के साथ समझाने का प्रयत्न करना। यदि उनकी क्रोधाग्नि तुम्हारे समझाने से शान्त हो तो कुछ हमारी शक्ति का प्रदर्शन करके दिखा देना। यदि उनका तेज अधिक हो तो तुम भी उसे अपने प्रचण्ड तेज से दूर करना तथा उनके क्रोध का निवारण करना। फिर इसी प्रकार नरहरि के शरीर को अपने में मिला कर हमारे पास ले आना।'' वीरभद्र शिवजी का यह उपदेश सुनकर शान्त रूप बन गये तथा नरहरि के पास जा कर पिता के समान उन्हें उपदेश के वचन कहने लगे। वे बोले—''हे विष्णु जी ! तुम ने नरहरि का अवतार संसार की रक्षा के हेतु लिया है, अस्तु, तुम प्रलय होने का उपाय मत करो। शिवजी की यही आज्ञा है। तुम्हें यही उचित है कि अब इस रूप को दूर कर दो।''

हे नारद ! वीरभद्र के ऐसे वचन सुनकर नरहरि ने अग्नि के समान प्रदीप्त हो, अत्यन्त क्रोध से उत्तर दिया—''हे वीरभद्र ! तुम यहाँ से तुरन्त अपने घर को चले जाओ। तुम मेरी इच्छा के बिरुद्ध वचन कह कर मेरा क्रोध क्यों बढ़ाते हो? इस समय मैं नहीं जानता हूँ कि मुझ को निवृत्त करने वाला कौन है। मेरे अधीन तीनों लोक हैं। सब का स्वामी, स्वाधीन, सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता तथा प्रलयकर्त्ता भी मैं ही हूँ। भला, वह कौन है जो मुझको उपदेश देता है?'' यह सुनकर वीरभद्र ने कहा—''हे विष्णु जी ! आप उस प्रलय करने वाले को चलकर क्यों नहीं देखते, जिसके हाथ में पिनाक तथा त्रिशूल है। आपका यह वचन बहुत ही अनुचित है। इससे आपको निश्चय ही बहुत दुःख प्राप्त होगा। आप शिवजी की महिमा तथा प्रताप को नहीं जानते, जो उनको अन्य

देवताओं के समान समझकर ऐसा गर्व करते हैं। उन्हीं शिवजी ने मुझको आपका अहंकार दूर करने के लिए भेजा है। आप केवल एक दैत्य का वध करके इतना अहंकार करते हैं? अस्तु, आप व्यर्थ उपद्रव न करें। यह बात आपके लिए बुरी है। यदि आप शिवजी को अपना बनाया हुआ तथा अपने अधीन कहते हो तो मुझे यह निश्चय हुआ है कि आप संसार को उत्पन्न तथा पालन करने वाले नहीं हो। आप स्वाधीन तथा मुक्ति प्रदान करने वाले भी नहीं हैं, क्योंकि आप शिवजी की आज्ञा से ही अवतार लेते हैं। जिस समय आपने कमठ अवतार लियां था, उस समय की बात क्या आप नहीं जानते कि शिवजी ने आपके सिर को जला कर अपने हार में पिरो लिया था? जब आपने वाराह अवतार लिया, तब शिवजी ने आपके दाँतों को उखाड़ कर, अपने त्रिशूल का आपके ऊपर प्रहार किया तथा आपका अहंकार नष्ट कर दिया। शिवजी ने भैरव अवतार लेकर आपके पुत्र ब्रह्मा का सिर काटा, जिससे अब तक ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर नहीं है। क्या आप यह सब बातें भूल गये? आप दक्ष प्रजापति के यज्ञ का स्मरण करें, जहाँ मैंने क्षणभर में उसका सिर काट डाला था। मैं तथा आप से लेकर तृण पर्यन्त सब शिवजी की शक्ति के अधीन हैं। आपका यह सब प्रताप तथा बल शिवजी की कृपा से ही है। वे शिवजी ही निष्पाप तथा तीनों लोकों के उत्पन्न करने वाले हैं। आप व्यर्थ ही इतना गर्व करते हैं। यदि शिवजी आप पर क्रोधित होंगे तो आपकी रक्षा करने वाला कोई भी उत्पन्न न होगा।''

हे नारद ! वीरभद्र के ऐसे वचन सुनकर नृसिंह ने क्रोधित हो कर कहना चाहा कि वीरभद्र को पकड़ लें, परन्तु वीरभद्र ने उनका आशय जान कर अपना शरीर आकाश में छिपा लिया। उस समय उनका तेज प्रज्वलित अग्नि के समान प्रतीत हुआ, जिसकी उपमा सूर्य, वह्नि तथा विद्युत् से भी नहीं दी जा सकती। इसे देखकर शिवजी ऐसे अद्‌भुत रूप में प्रकट हुए कि उनका आधा शरीर सिंह का, दो पंख तथा चोंच, सहस्त्र भुजाएँ, शीश में जटा, मस्तक में चन्द्रमा, महाभयंकर दाँत तथा

वज्र के समान नख थे। वे ही मानो उनके शस्त्र थे। वे दाँतों से ओठ काट रहे थे। उनका ऐसा स्वरूप देखकर विष्णु जी का अहंकार दूर हो गया तथा वे निस्तेज हो गए। शरभ ने बल करके अपना शरीर हिलाया तथा अपनी भुजाओं से नरहरि की दोनों भुजाएँ पकड़ लीं। फिर आकाश से पृथ्वी पर डालकर, पुनः पृथ्वी पर उतरकर पकड़ लिया। इसी प्रकार बार-बार उड़कर नरहरि को निर्बल कर दिया। उस समय समस्त देवता एवं मुनि स्तुति करने लगे। इस भाँति नरहरि का अहंकार दूर हो गया। तदुपरान्त उन्होंने शिवजी के एक सौ आठ नामों का वर्णन कर, उनकी स्तुति की और कहा—"हे शरभेश्वर ! जब मेरे अन्दर इस प्रकार क्रोध उत्पन्न हो, उस समय आप इसी प्रकार मेरा अहंकार दूर किया कीजिये।" यह कह कर नरहरि अपना शरीर त्याग कर अन्तर्धान हो गये। उस समय मैंने देवताओं तथा मुनीश्वरों सहित शरभेश्वर शिवजी की बड़ी सेवा करके स्तुति की। तब शरभेश्वर शिवजी बोले—"हे देवताओ ! तुम यह बात भली प्रकार समझ लो कि मैं तथा विष्णु भिन्न नहीं हैं, वरन् एक ही स्वरूप हैं।"

हे नारद ! शिवजी ने यह कह कर नरहरि का सिर तथा चर्म उठा लिया। उन्होंने सिर को तो अपनी माला का सुमेरू बनाया तथा चर्म ओढ़ लिया। फिर वे सब के देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त देवता आदि भी अपने-अपने मनोरथ प्राप्त कर, वहाँ से अपने-अपने घर चले गये। हे नारद ! जो इस चरित्र को सुनता तथा पाठ करता है, उसे दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है।"

ॐ ॐ ॐ

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब मैं तुम्हें यज्ञावतार के विषय में बताता हूँ, जिसने तुरन्त ही सब देवताओं का मद दूर कर दिया था। जब देवता तथा दैत्य समुद्र मन्थन के समय परस्पर लड़े और उसमें दैत्य देवताओं से पराजित हो गये, तब देवता अपने अहंकार में भर कर

शिवजी को भूल, स्वयं को पृथ्वी, आकाश तथा पाताल का स्वामी समझने लगे। वे सब एकत्र हो कर गर्व की बातें करने लगे। सब देवता अहंकार में भर कर अपनी-अपनी वीरता का बखान करने लगे। उस समय शिवजी ने देवताओं का ऐसा अहंकार देखकर, एक विचित्र चरित्र किया अर्थात् उन्होंने यज्ञ रूप से देवताओं के पास जा कर सब से कुशल पूछी। उन देवताओं में से कोई भी यह न जान सका कि ये शिवजी हैं। फिर शिवजी ने उनसे यह कहा तुम सब इस स्थान पर बैठे हुए क्या कर रहे हो? मालूम होता है, तुम सब अहंकार में भरे हुए हो। यह सुनकर देवताओं ने उत्तर दिया कि क्या तुमने नहीं सुना कि यहाँ देवासुर युद्ध हुआ था? हमने उसमें दैत्यों को मार कर विजय प्राप्त की है। यह सुनकर यज्ञ स्वरूप शिवजी बोले—"हे विष्णु आदि देवताओ ! आप ऐसी बात मत कहें। आप से बड़ा भी और कोई है। आप इस प्रकार अहंकार की बातें मत करें, क्योंकि आप से भी बड़ा जो पुरुष है, वह सब से बलवान् तथा तेजस्वी है। वह जो कुछ चाहता है, वही करता है। यदि आपको इस बात का विश्वास न हो तो आप सब मिल कर इस एक तिनके को काट कर दिखाएँ।" इतना कह कर यज्ञ रूप शिवजी ने एक तिनका देवताओं के ऊपर फेंक दिया। तब सब देवताओं ने अपने-अपने शस्त्र का प्रयोग उस तिनके पर किया, परन्तु वह तिनका हिला तक नहीं, अपने स्थान पर जैसा पड़ा था, वैसा ही पड़ा रहा। यह देखकर इन्द्र ने अत्यन्त क्रोधित हो कर अपना वज्र उस तिनके पर चलाया, परन्तु वह भी निष्फल रहा। तदुपरान्त विष्णु जी ने क्रोधित हो, अपना चक्र तिनके पर मारा, परन्तु वह भी असफल रहा। उस समय सब देवता अत्यन्त लज्जित हुए। इतने में यह आकाशवाणी हुई कि हे देवताओ ! आप अपने मन में किसी बात का संशय मत करो। आप सब ने अहंकार के वशीभूत हो कर अपने स्वामी को नहीं पहचाना। उन्होंने आपका अहंकार दूर कर दिया। फिर कभी ऐसा अहंकार मत करना। आपकें सम्मुख यह जो खड़े हुए हैं, वे यज्ञरूपी सदाशिवजी ही हैं।

हे नारद ! इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर सब देवता यज्ञेश्वर महादेव के चरणों पर गिर पड़े तथा अनेक प्रकार से प्रणाम कर, अहंकार से मुक्त हुए। तदुपरान्त उन सब ने यह निश्चय किया कि संसार में शिवजी के समान बलशाली और कोई नहीं है। फिर सब देवता आदि शिवजी की स्तुति करते हुए बोले—"हे सदाशिवजी ! हम सब आपकी शरण में हैं। अब हमारा अहंकार दूर हो गया।" यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्न हो कर ॐकार का उच्चारण किया। इसके पश्चात् सब लोग अपने-अपने घर चले गये। हे नारद ! यह यक्षेश्वर शिवजी का चरित्र अत्यन्त पवित्र है। इसे पढ़ने तथा सुनने से अत्यन्त सुख प्राप्त होता है। अब मैं तुमको शिवजी के दस महाकाल अवतारों के विषय में बताऊँगा, ध्यानपूर्वक सुनो। हे नारद ! शिवजी का पहला रूप महाकाल है। महाकाली इस अवतार की शक्ति है। शिवजी का दूसरा अवतार तार नामक है, जिनकी शक्ति का नाम तारा है। तीसरा अवतार बलि है जिनकी शक्ति का नाम भुवनेश्वरी है। चौथा विघ्नेश अवतार है, जो सोलह क्लेश दूर करने वाले हैं। उनकी शक्ति का नाम विद्या है। पाँचवाँ भैरव अवतार है, जिनकी शक्ति को भैरवी कहते हैं। छठा छिन्नमस्तक अवतार है, जिनकी शक्ति का नाम छिन्नमस्ता है; जो अत्यन्त तेजस्विनी हैं। सातवाँ धूमावत् अवतार है, जिनकी शक्ति को धूमावती कहते हैं। आठवाँ बगलामुख अवतार है, जिनकी शक्ति का नाम बगलामुखी है। नौवाँ मातंग अवतार है, जिनकी शक्ति मातंगी कहलाती हैं। दसवाँ कमल अवतार है, जिनकी शक्ति को कमला कहते हैं। इन दसों अवतारों के पूजन तथा दसों शक्तियों की सेवा से सब मनोरथ सफल होते हैं। इस प्रकार शिवजी के सत्तावन अवतार पूर्ण हुए।"

ॐ ॐ ॐ

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब मैं तुम्हें ग्यारह रुद्रों का, जो कि शिवजी के अवतार हैं, वृत्तान्त सुनाता हूँ। वे अवतार अत्यन्त शक्तिशाली

तथा सुख प्रदान करने वाले हैं। उनके चरित्र सुनने से वीरता तथा सुख में वृद्धि होती है। पूर्वकाल में दैत्यों ने अत्यन्त बलशाली हो कर देवताओं को महान् कष्ट पहुँचाया। तदुपरान्त देवताओं ने अपने पिता कश्यप के सम्मुख जा, हाथ जोड़ कर अपना दुःख कहा। कश्यप ने उसे सुनकर शिवजी का स्मरण करके सब देवताओं से यह कहा कि शिवजी की इच्छा शुभ है। अब तुम सब लोग अपने-अपने घरों में जा कर शिवजी का ध्यान करो, हम भी तुम्हारी भलाई के लिए अपनी पत्नी सहित शिवजी का तप करेंगे। इस प्रकार कश्यप ने देवताओं को समझाकर वहाँ से विदा किया और स्वयं अपनी पत्नी सहित शिवजी का तप करने लगे। तब शिवजी कश्यप के उस कठिन तप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उनके समीप जाकर प्रकट हो गये। कश्यप ने जब शिवजी को अपने सम्मुख देखा तो वे उनकी स्तुति करने लगे तथा अपनी स्त्री सहित उनके चरणों में गिर कर बोले—"हे शिवजी ! जो वर मैं आप से माँगना चाहता हूँ, वह अनुचित है, फिर भी मैं ढिठाई से माँगता हूँ। आप कृपा कर मेरे घर अवतरित हो कर मेरे पुत्र बनें तथा देवताओं के साथ मित्रता करके दैत्यों का विनाश करें।" यह कह कर कश्यप जी चुप हो गये।

शिवजी ने कश्यप के ऐसे वचन सुनकर कहा—"अच्छा, यही होगा। तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।" तदुपरान्त वे वहाँ से अन्तर्धान हो गये। फिर उन्होंने कश्यप के हृदय में वास किया। कश्यप ने शिवजी की ऐसी कृपा देख कर, अपना तेज अपनी स्त्री सुरभी में स्थित कर दिया, जिससे सुरभी अत्यन्त प्रकाशित हुई। तब सब देवताओं ने कश्यप के स्थान पर पहुँच कर गर्भ स्थित शिवजी की स्तुति की, फिर वे अपने-अपने स्थानों को लौट गये। समय पा कर शिवजी अपने ग्यारह रूप धारण करके सुरभी के गर्भ से उत्पन्न हुए। सुरभी को उससे किसी प्रकार की पीड़ा नहीं हुई। उस समय सब देवताओं को महान् आनन्द प्राप्त हुआ। तब मैंने तथा देवताओं ने एक साथ आ कर ग्यारह रूपधारी रुद्र के दर्शन किए तथा प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति की।

हम सब ने कहा—"हे प्रभो ! आप सब दैत्यों को परास्त कर, हम सब को प्रसन्नता प्रदान करें।" तदुपरान्त हमने कश्यप से उनका जातकर्म कराया तथा उनके कपाली, पिंगल, भीम, नीललोहित, शस्त्रभृत्, अभय, अजपाद, अहिर्बुध्न, शम्भु, भव तथा विरूपाक्ष से ग्यारह नाम रखे। उस समय बड़ा उत्सव मनाया गया। वे ग्यारह रूद्र उत्पन्न होते ही अत्यन्त बलवान् दिखाई दिये।

हे नारद ! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि वे सब शिवजी के ही रूप थे, तदुपरान्त वे माता-पिता की आज्ञा पा कर, देवताओं के साथ चले और देवताओं की सेना एकत्र करने के पश्चात् उन्होंने दैत्यों पर आक्रमण कर दिया। परन्तु देवता दैत्यों के सम्मुख फिर भी न ठहर सके और वे सब युद्ध स्थल से भाग कर रुद्र के सम्मुख आये तथा उनसे युद्ध का सब वृत्तान्त कहा। रुद्र ने उसे सुन कर कहा कि तुम किसी प्रकार का भय मत करो। हम पल भर में सब दैत्यों को नष्ट कर डालेंगे। यह कह कर रुद्र ने दैत्यों का सामना किया। दैत्य रुद्र के तेज के सम्मुख ठहर न सके। देवताओं को इस प्रकार विजय प्राप्त होने से बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने पुराने लोक को पा कर अत्यन्त आनन्दित हुए। हे नारद ! ग्यारहों रुद्र इसी प्रकार सदैव देवताओं के साथ रह कर उनकी सहायता करते रहे। हमने तुम्हें यह रुद्र-चरित्र सुनाया है, जिसके सुनने मात्र से ही महापापी मनुष्य भी पाप मुक्त हो जाता है।"

ॐ ॐ ॐ

पच्चीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! जिस प्रकार शिवजी ने अत्रि मुनि के पुत्र हो कर अवतार लिया, अब उस कथा का वर्णन मैं तुमसे करता हूँ। मेरे पुत्र अत्रि मेरी आज्ञा पा कर अपनी स्त्री सहित ऋष्यमूक पर्वत पर जा कर विन्ध्या के तट पर बैठे। वे शिव के समान पुत्र की इच्छा से तप करने लगे। इस प्रकार के कठिन तप से एक प्रज्वलित अग्नि उत्पन्न हो कर समस्त संसार को जलाने लगी। तब तीनों देवता मुनीश्वरों के साथ

अत्रि के पास पहुँचे। अत्रि ने उन सब को अपने सम्मुख अपने मुख्य वाहनों सहित मुस्कराते हुए खड़े देखा। तब उन्होंने दण्डवत् कर यह विनय की कि आप तीनों देवता आये, अब मैं आप में से किसकी सेवा करूँ? मैंने तो एक ही देवता की, जो सब का स्वामी है, पूजा की थी, फिर आप तीनों देवता एक ही साथ ही क्यों आये? मैं इससे अत्यन्त चिन्तित हूँ, अस्तु, आप मुझे इसका कारण बताइये। यह सुनकर तीनों देवता बोले—"हे अत्रि ! तुमने ईश्वर का बहुत तप किया है तथा यह स्पष्ट है कि हम तीनों देवता एक ही रूप हैं। इससे प्रकट है कि तुम्हारे तीन पुत्र हम तीनों के अंश से उत्पन्न होंगे।"

हे नारद ! इस प्रकार अत्रि को वर देकर वे तीनों देवता अपने-अपने स्थान को चले गये। अत्रि भी इच्छानुसार वर पा कर अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने घर लौट गये। नियत समय पर तीनों देवताओं के अंस से अत्रि के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, विष्णु जी के अंश के दत्त तथा शिवजी के अंश के अंश से दुर्वासा ने जन्म लिया। हे नारद ! यहाँ पर मैं तुम्हें दुर्वासा के विषय में बताता हूँ। शिवजी ने दुर्वासा का शरीर धारण कर, अनेक चरित्र किये। उन्होंने ब्रह्मतेज धारण कर, सबका आदर किया तथा अनेक के धर्म की परीक्षा ली। उनका प्रथम चरित्र यह है कि एक सूर्यवंशी राजा अम्बरीष विष्णु जी का परम भक्त तथा दृढ़व्रती था। एक दिन उसने एकादशी का व्रत करके द्वादशी में पारण करने की इच्छा की। उसी समय दुर्वासा उनके पास जा पहुँचे। दुर्वासा अम्बरीष की केवल परीक्षा लेने की ही इच्छा से वहाँ गये थे। अम्बरीष ने दुर्वासा को देखकर, उनका अत्यन्त आदर-सत्कार किया तथा भोजन करने का निमन्त्रण दिया। दुर्वासा अम्बरीष का यह निवेदन स्वीकार कर, अपने शिष्यों सहित नदी तट पर स्नान के लिए चले गये। वहाँ उन्होंने अम्बरीष की परीक्षा लेने के लिए जानबूझ कर विलम्ब किया। राजा अम्बरीष दुर्वासा की बाट देखते रहे। इतने में द्वादशी समाप्त होने लगी। उस समय राजा अम्बरीष ने पारण में विघ्न उपस्थित होते देख, अत्यन्त खेद के साथ ब्राह्मणों से पूछा तो ब्राह्मणों

ने वेद के अनुसार अम्बरीष को आज्ञा दी कि आप पारण करें। अम्बरीष ने ब्राह्मणों का आदेश पा कर व्रत का पारण कर लिया। दुर्वासा राजा अम्बरीष के व्रत पालन करने का हाल जान कर अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने राजा के पास आ कर यह चाहा कि राजा की भक्ति की परीक्षा लें। परन्तु वे सुदर्शन चक्र से भाग कर, एक वर्ष तक तीनों लोकों में फिरते रहे। अन्त में राजा की शरण में अपने पीछे चक्र को लगाये पहुँचे। उन्होंने सोचा था कि यदि राजा वास्तव में ब्रह्मभक्त होगा तो अपने मन में लज्जित हो कर मेरा दुःख दूर करेगा और यदि विष्णु जी की पूरी भक्ति नहीं रखता होगा तो अपना व्रत छोड़ देगा। ऐसा विचार कर दुर्वासा अत्यन्त क्रोधित हो कर राजा अम्बरीष को शाप देने लगे। विष्णु जी के चक्र ने दुर्वासा की यह इच्छा जान ली और वह अपना तेज बढ़ा कर दुर्वासा की ओर चला। यह देख कर दुर्वासा भागने लगे। वे सब देशों तथा सब देवताओं के लोकों में फिर कर राजा अम्बरीष के पास लौट आये और बोले—"हे राजन् ! हम तुम्हारी शरण में आये हैं।" हे नारद ! मूर्ख यह नहीं जानते कि दुर्वासा तो स्वयं शिवजी का अवतार थे, उनको कोई दुःख-कष्ट कैसे हो सकता है? अस्तु, राजा ने दुर्वासा को ऐसी स्थिति में देखकर, लज्जापूर्वक चक्र से कहा कि अब तुम दूर हो जाओ और ब्राह्मण को छोड़ दो। यह सुनकर चक्र दुर्वासा के पीछे से हट गया। तब राजा ने दुर्वासा को भोजन करा कर, स्वयं भी भोजन किया।

हे नारद ! उस समय दुर्वासा ने अत्यन्त तृप्त तथा प्रसन्न हो कर राजा को आशीर्वाद दिया और यह कहा—"हे राजन् ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। हमने केवल तुम्हारी परीक्षा के लिए ही यह चरित्र किया है। इतना कह कर दुर्वासा अत्यन्त प्रसन्न हो, वहाँ से चले गये। जब विष्णु जी दशरथ के पुत्र रामचन्द्र रूप में अवतरित हुए, उस समय भी दुर्वासा ने ऐसा ही चरित्र किया था। इसी प्रकार श्रीकृष्ण जी की परीक्षा लेकर उनको अपने रथ को खींचने वाला बनाया तथा

उनकी ब्रह्मभक्ति को देखकर उन्हें वज्रांग कर दिया। फिर उन्होंने द्रौपदी की परीक्षा लेकर पांडवों को सन्तुष्ट किया।"

ॐ ॐ ॐ

छब्बीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! अब मेरी यह इच्छा है कि जिस प्रकार दुर्वासा ने श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण की परीक्षा लेकर उन्हें वरदान दिया, वह सब वृत्तान्त आप सुनावें।" ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! जब श्रीरामचन्द्र ने देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए राजा दशरथ के घर में अवतार लिया, तब मैंने एक दिन काल के द्वारा उनके पास यह समाचार भेजा कि जब आप अपने लोक में आकर हम देवताओं को आनन्द प्रदान करने की कृपा करें।" तब काल एक मुनि के स्वरूप में रामचन्द्र जी के पास जाकर बैठ गया और अवसर देखकर विनती की—"हे महाराज ! मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है। उसको कोई दूसरा मनुष्य न जान सके। हमारे आपके इस वार्तालाप में यदि कोई आ जाए तो वह चाहे कोई भी क्यों न हो, आपको उसका परित्याग करना होगा। रामचन्द्र जी ने काल की इस बात को मान कर लक्ष्मण को द्वार पर खड़े होने का आदेश दिया, जिससे कि कोई वहाँ न आने पावे। फिर वे काल से बोले कि तुम कौन हो, कहाँ से आये हो तथा क्या कहना चाहते हो? उस समय काल ने उत्तर दिया—"हे प्रभो ! ब्रह्मा ने आपके लिए यह सन्देश भेजा है कि अब आप अपने लोक में जाएं।" इन दोनों में यह वार्ता हो ही रही थी कि उसी समय दुर्वासा परीक्षा के लिए वहाँ द्वार पर आये और लक्ष्मण से बोले—"हे लक्ष्मण ! तुम रामचन्द्र जी को हमारे आने का तुरन्त समाचार दो।" यह देख कर लक्ष्मण अत्यन्त चिन्तित हुए। वह सोचने लगे कि इस समय मैं यदि रामचन्द्र जी के पास जाता हूँ तो वे मेरा त्याग कर देंगे और यदि नहीं जानता हूँ तो मुझे दुर्वासा का कोपभाजन होना पड़ेगा। ऐसी दशा में उन्होंने यह निश्चय किया कि दुर्वासा को क्रुद्ध

करना ठीक नहीं। श्रीरामचन्द्र जी का वियोग अत्यन्त दुःखदायी है, परन्तु दुर्वासा की आज्ञा का पालन करना परमोत्तम है। अपने मन में ऐसा विचार कर, लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी के समीप जा कर दुर्वासा का सन्देश कहा। उस समय काल लक्ष्मण को देखते ही अन्तर्धान हो गया। तब रामचन्द्र जी ने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर लक्ष्मण से कहा— "हे भाई लक्ष्मण ! इस समय हमारे साथ बहुत बुरा धोखा हो गया। उसने मुझ से जो वचन लिया था, उसे तो तुम जानते ही हो, इसलिए अब उसे पूरा करो।"

हे नारद ! लक्ष्मण से यह कह कर रामचन्द्र जी विलाप करने लगे। लक्ष्मण जी उस समय मूर्छित हो गये। तब दुर्वासा ने अन्दर जाकर सब को समझाया और ऐसी लीला कर वहाँ से विदा हो, अपने स्थान को लौट गये। लक्ष्मण ने भी रामचन्द्र जी से विदा हो कर सरयू के तट पर योग मार्ग द्वारा अपना शरीर छोड़ दिया। हे नारद ! अब तुमसे श्रीकृष्ण जी का चरित्र वर्णन करते हैं, जिस प्रकार दुर्वासा ने उनकी परीक्षा ली थी। श्रीकृष्ण जी बड़े प्रसिद्ध ब्रह्मभक्त थे। ऐसे ब्रह्मभक्त कृष्णजी की परीक्षा लेने के लिए दुर्वासा एक दिन उनके घर आये। कृष्णजी ने अत्यन्त नम्रता, आदर, मान तथा शील से दुर्वासा का स्वागत किया तथा उत्तमोत्तम भोजन कराये। तब दुर्वासा ने परीक्षा लेने के लिए उनसे यह कहा—"हे श्रीकृष्ण जी ! हम रथ पर चढ़ना चाहते हैं तथा यह भी चाहते हैं कि तुम तथा तुम्हारी स्त्री रुक्मिणी उस रथ को खींच कर चलावें। ऐसा करने पर हम तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार वर देकर प्रसन्न करेंगे।" श्रीकृष्ण जी ने दुर्वासा के इस आदेश को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया और उनकी इच्छानुसार उन्हें रथ पर बैठा कर, आज्ञा पालन किया। तब दुर्वासा ने प्रसन्न हो कर श्रीकृष्ण जी से कहा कि तुम हमारी आज्ञा से पायस लो और उसे सारे शरीर में लगा लो। तुम्हारा कोई अंग खुला न रहे। श्रीकृष्ण जी ने यही किया। तब दुर्वासा जी ने प्रसन्न हो कर, उन्हें यह वर दिया कि जहाँ-जहाँ तुम्हारे शरीर में पायस लगी है, वहाँ-वहाँ तुम्हारे कोई शस्त्र-वेध न कर सकेगा। इसके

पश्चात् दुर्वासा वहाँ से अन्तर्धान हो गये तथा श्रीकृष्ण जी प्रसन्न एवं पापों से रहित हो कर जीवन व्यतीत करने लगे।

हे नारद ! एक दिन द्रौपदी अपनी सखियों सहित गंगा-स्नान करने गयीं और वहाँ स्नान करने लगीं। उनसे पहले कुछ दूरी पर पूर्व की ओर दुर्वासा भी स्नान कर रहे थे। उसी समय उनकी कोपीन नदी में छूट गयी। लज्जा से दुर्वासा जल से बाहर नहीं निकल सके। द्रौपदी ने यह दशा जानकर अपना आँचल फाड़ कर दुर्वासा की ओर बहा दिया। दुर्वासा उसको पहन कर पानी से बाहर आये तथा प्रसन्न हो कर द्रौपदी से बोले—"हे द्रौपदी ! तुमने इस समय हमारी लज्जा रखी है, अस्तु, तुमको इसका फल अवश्य मिलेगा। सब देवता इस बात के साक्षी हैं कि तुम्हारी लज्जा सदैव बनी रहेगी।" इतना कह कर दुर्वासा वहाँ से अन्तर्धान हो गये। हे नारद ! अब तुम दुर्वासा का एक और चरित्र सुनो। एक दिन दुर्वासा सरोवर में स्नान करने के लिए गये तथा अपना स्वरूप अत्यन्त मैला-कुचैला बनाया। संयोग से उस दिन गन्धर्वों की तीन पुत्रियाँ भी स्नान के लिए वहीं गयी थीं। उन तीनों के नाम क्रमशः रत्नाढ्या, रत्नचूड़ा तथा घृतपर्णी थे। उन्होंने दुर्वासा को इस दशा में देखकर अनेक दुर्वचन कहे और यह कहा कि ब्रह्मा ने प्रसन्न हो कर हमारे लिए यह सुन्दर पति भेजा है। दुर्वासा ने यह सुनकर उनको शाप दिया और सब को अपना ब्रह्मतेज दिखाते हुए कहा कि तुम चण्डाली हो कर बड़ा कष्ट पाओगी। परन्तु जब वे उनकी शरण में पहुँचीं तो कहा कि तुम मलमास व्रत करके पुनः पहले की तरह हो जाओगी। यह कह कर दुर्वासा वहाँ से अन्तर्धान हो गये। हे नारद ! इस प्रकार उनहत्तरवें अवतार की कथा पूर्ण हुई।"

ॐ ॐ ॐ

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब मैं तुम को गृहपति अवतार के विषय में बताता हूँ। नर्मदा नदी के तट पर नर्मपुर नामक नगर में,

विश्वामित्र मुनि ब्रह्मचारी शिवजी के अनन्य भक्त रहते थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम को ही सर्वश्रेष्ठ समझकर, चक्षुष्मति नामक कन्या के साथ अपना विवाह किया। वे अपनी पत्नी के साथ नित्य-प्रति शिवजी का पूजन करते थे, परन्तु बहुत समय बीत जाने पर भी उनके कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ। तब एक दिन उसकी पत्नी ने हाथ जोड़ कर यह विनय की "हे स्वामी ! मैंने आपके साथ आठों प्रकार के भोग भोगकर, सदैव निश्चिंत विहार किया है, परन्तु मेरी एक इच्छा है, जिसकी कि अभिलाषा सभी गृहस्थ करते हैं।" अपनी पत्नी की ऐसी बातें सुनकर विश्वामित्र बोले—"हे देवि ! तुम्हारी जो इच्छा हो, हम से वह वर ले लो।" तब स्त्री ने प्रसन्न हो कहा—"हे नाथ ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे शिवजी के समान पुत्र दीजिए। यह सुनकर विश्वामित्र ने शिवजी का ध्यान करके कहा—"तेरी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। यह कोई कठिन बात नहीं है।" इतना कह कर विश्वामित्र तपस्या के लिए काशी आये। उन्होंने मणिकर्णिका में स्नान कर विश्वनाथ की पूजा की तथा यथाविधि सब देवताओं का पूजन किया। फिर उन्होंने अपने मन में यह सोचा कि काशी में ऐसा कौन-सा शिव लिंग है, जो शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करे? तदुपरान्त वे वीरेश्वर को सन्तान-दाता जानकर, चन्द्रकूप के जल में स्नान कर, ईश्वर का ध्यान करने लगे। बारह मास के पश्चात् एक मास में केवल एक तरकारी खा कर, एक मास में तिल चबा कर, एक मास में केवल पंचगव्य से कालक्षेप करते रहे तथा एक मास में चन्द्रायन किया। इस प्रकार उन्होंने बारह मास व्यतीत किये। जब तेहरवें महीने स्नान कर, प्रातःकाल वे वीरेश्वर के निकट पहुँचे तो वीरेश्वर के बीच में से एक आठ वर्ष का अत्यन्त सुन्दर बालक प्रकट हुआ। उसका अति सुन्दर गौर शरीर था। वह श्वेत भस्म लगाये, सुन्दर केश, जो जटा के समान लगते थे, धारण किये हुए था। यह सब अंगों सहित अत्यन्त उत्तम वेद पाठ करता विश्वामित्र की ओर देखता हुआ खड़ा हो गया।

हे नारद ! विश्वामित्र ने उस बालक को देख कर दोनों हाथ जोड़

कर स्तुति की। तब उस बालक ने कहा—"हे मुनि ! तुम अपनी इच्छानुसार कोई वर माँगो।" यह सुन विश्वामित्र बोले—"हे शिवजी ! आप से कौन-सी बात छिपी हुई है? मेरी केवल यही विनती है कि आप मेरी इच्छा पूर्ण करें।" विश्वामित्र के यह वचन सुनकर शिवजी बोले—"हे विश्वामित्र ! तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूरी होगी।" यह कह कर वह बालक वहाँ से अन्तर्धान हो गया। तब विश्वामित्र ने प्रसन्नतापूर्वक घर में आकर अपनी स्त्री से सब वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने अपनी स्त्री को शिवजी द्वारा दिये गये वरदान का भी वर्णन किया। इस समाचार को सुनकर संसारी मनुष्य विश्वामित्र के पास गये तथा उनकी स्तुति करने लगे। तदुपरान्त सभी ने चक्षुष्मती के भाग्य की सराहना की। फिर वे वहाँ से अपने-अपने स्थान को लौट गये।"

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी के वरदान से चक्षुष्मती को गर्भ रहा। विश्वामित्र ने गर्भ की रक्षा, आरोग्य तथा पालन के लिए पाँचवें तथा आठवें मास में बहुत दान किया। दसवें मास में, शुभ लग्न में, उनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब दोनों ने मिलकर प्रसन्न हो, बड़ा उत्सव मनाया। आकाश से फूलों की वर्षा हुई, सारा मन्दिर सुगन्ध से भर गया। मैं स्वयं देवताओं सहित वहाँ गया। विष्णु जी भी लक्ष्मी सहित वहाँ पधारे। शिवजी भी गौरी को अपने साथ ले, गणों सहित वहाँ उपस्थित हुए। उस समय शिवजी के आदेश के अनुसार मैंने उस बालक के जात-कर्म किये। ऋषि-मुनि वेद-पाठ करने लगे। मैंने बहुत सोच कर उस बालक का नाम गृहपति रखा। इसके पश्चात् सब अपने-अपने स्थान को लौट गये। विश्वामित्र ने चौथे मास निष्क्रमण की रीति की तथा छठे मास अन्नप्राशन किया। बारहवें मास उसका चूड़ाकर्म हुआ। उसके बाद कान छेदे गये। पाँचवें वर्ष दीक्षा हुई। फिर

वह बालक वेद पढ़ने लगा। फिर विश्वामित्र ने उसे गुरु से मन्त्र दिलवाकर सब विद्याएँ सिखायीं।

हे नारद ! नौवें वर्ष तुम वहाँ गये। विश्वामित्र ने प्रसन्न हो कर तुम्हारी बड़ी सेवा की। तुमने बालक का हाथ देखा और बोले—"हे विश्वामित्र ! तुम्हारे पुत्र के सब अंग अत्यन्त शुभ हैं, किन्तु एक लक्षण बुरा है। इसका बारहवाँ वर्ष अनिष्ट है। तुमको उसकी रक्षा का कोई उपाय करना चाहिए। हे नारद ! तुम तो उनसे यह कह कर वहाँ से चले गये, परन्तु गृहपति के माता-पिता अति दुःखी हो कर रोने लगे। माता-पिता की यह दशा देख कर गृहपति बोले—"आप इतने दुःखी क्यों होते हैं? एक तो आपके प्रभाव से मुझे मारने की शक्ति काल में भी नहीं है। दूसरे शिवजी जब तक मेरे रक्षक हैं, तब तक कोई अनिष्ट नहीं हो सकता।" माता-पिता गृहपति के ऐसे अमृतमय वचन सुनकर आनन्दित हुए। वे कहने लगे—"हे पुत्र ! तुम जाकर शिवजी की सेवा करो। शिवजी की सेवा करके तथा उन्हें प्रसन्न करके बहुत-से मनुष्यों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। शिवजी भक्तों का भय दूर करने वाले हैं। उनके समान अपने भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाला और कोई नहीं है। इसलिए तुम शिवजी की शरण में जाओ।" गृहपति माता-पिता की यह आज्ञा सुन कर काशी जा पहुँचा। वहाँ उसने मणिकर्णिका में स्नान किया तथा विश्वनाथ जी की पूजा कर, अपने को धन्य समझा। फिर वह शिवजी के लिंग की स्थापना कर, तप में प्रवृत्त हुआ। वह गंगा से आठ सौ घड़े पानी लाकर शिवजी को स्नान कराता तथा नित्यप्रति एक सौ आठ श्वेत कमलों की माला शिवजी को पहनाता था। एक दिन इन्द्र ने कहा—"हे गृहपति ! हम इन्द्र हैं। हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। हम से इच्छानुसार कोई वर माँगो।" तब गृहपति ने मधुर वाणी में उत्तर दिया कि मुझे आपसे कुछ माँगने की इच्छा नहीं है। मैं तो शिवजी को वर देने वाला जानता हूँ। बालक के यह वचन सुनकर इन्द्ररूपी शिवजी ने हँस कर कहा—"हे बालक ! शिवजी हम से भिन्न नहीं हैं।" तब गृहपति ने उत्तर दिया कि

तुम यहाँ से दूर हट जाओ। तुम किस योग्य हो? मुझे शिवजी के अतिरिक्त किसी देवता से वर माँगने की कोई इच्छा नहीं है।

हे नारद ! इन्द्र ने ऐसे वचन सुनकर, अपना वज्र उठाकर गृहपति को बहुत डराया। गृहपति उस वज्र की ज्वाला को देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा उसने शिवजी का स्मरण किया। तब शिवजी तुरन्त अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए और उसे अपने हाथ से उठाकर बैठाया। वे बोले—"हे गृहपति ! तुम्हारा कल्याण हो।" गृहपति ने यह शब्द सुन, उठकर देखा कि शिवजी सम्मुख खड़े हुए हैं जिनके बाएँ भाग में श्रीभवानी संपूर्ण सृष्टि की जननी विराजमान हैं तथा शिवजी महागौरस्वरूप, सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाये हुए हैं तत्पश्चात् शिवजी बोले—"हे गृहपति ! तुम इन्द्र से बहुत डर गये थे, परन्तु अब किसी प्रकार का भय मत करो। हमने स्वयं इन्द्र का स्वरूप धारण कर यह चरित्र किया था। अब तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। हम तुमको वर देते हैं कि तुम देवताओं में पवित्र हो कर तीनों लोकों में भ्रमण किया करोगे तथा सब की मानसी गति जान कर तीनों रूप में संसार के कार्य करोगे। तुमने जो हमारे लिंग की स्थापना की है, उसकी सेवा करने वालों को कभी कोई दुःख न होगा।" शिवजी ने यह कह कर गृहपति के माता-पिता को बुला कर, उन सब को दिक्पति कर दिया। इसके पश्चात् शिवजी वहाँ से अन्तर्धान हो गये और गृहपति द्वारा स्थापित लिंग में समा गये। गृहपति की पुरी का नाम चक्षुष्मती हुआ, जो बहुत ही तेज पूर्ण है। वहाँ के सब निवासी नित्य बलि-वैश्वदेव यज्ञ करते हैं। गृहपति अपने गणों सहित चक्षुष्मती नामक अपनी पुरी में निवास करते हैं तथा अपने माता-पिता एवं सम्पूर्ण परिवार सहित उसी देश में भ्रमण करते हैं। वहाँ सब को हर प्रकार के सुख प्राप्त हैं, किसी को कोई दुःख नहीं है। जो जीव अग्नि में प्रवेश करते हैं तथा जो अग्नि की पूजा आदि करते हैं, वे उसी देश में जा कर विहार करते हैं। जो लकड़ी आदि देकर किसी का शीत दूर करते हैं, वे सब उसी लोक में जा कर आनन्द प्राप्त करते हैं।

हे नारद ! गृहपति की सेवा सब को करनी चाहिए। शिवजी का यह अवतार बहुत ही शीघ्र वर देने वाला है। अग्नि शिवजी का तेज है, जो विश्वामित्र के पुत्र रूप में प्रकट हुई। इस अन्धकारपूर्ण संसार में अग्नि के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु चमकने वाली तथा प्रकाशवान् नहीं है। इसके बिना तीनों लोकों का निर्वाह नहीं हो सकता। अग्नि पर ही तीनों लोकों का आनन्द निर्भर है। जो कोई गृहपति के इस चरित्र को पढ़ेगा या सुनेगा, वह दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त करेगा।''

ॐ ॐ ॐ

उन्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुम को शिवजी के वृषेश्वर अवतार के विषय में बताता हूँ। एक बार देवता तथा दैत्यों ने मिल कर समुद्र मन्थन किया तथा विष्णु जी की युक्ति के अनुसार सब रत्न समुद्र से निकाल लिये। विष्णु जी ने लक्ष्मी, कौस्तुभमणि तथा शार्ङ्गी नामक धनुष लिये। सूर्य ने उच्चैःश्रवा घोड़ा प्राप्त किया। इन्द्र ने कल्पवृक्ष तथा ऐरावत हाथी लिया। दैत्यों ने मद्य लिया। शिवजी ने कालकूट-विष तथा चन्द्रमा प्राप्त किया। इसके पश्चात् जब धन्वन्तरि अपने हाथ में अमृत लिये निकले, तो वह अमृत दैत्यों ने छीन लिया। उस समय सब देवताओं ने विष्णु जी से पुकार की, तब विष्णु जी ने स्त्री का रूप धारण कर अपनी माया से देवताओं को यह अमृत पिला दिया। धन्वन्तरि वैद्य आरोग्य की रक्षा करने वाला तथा वैद्यक-विद्या में बहुत प्रवीण हुए। जो स्त्री-रत्न थीं, उन्हें दैत्यों ने उनकी लड़कियों सहित ले जाकर पाताल में रखा। तदुपरान्त उन्होंने देवताओं से भली-भाँति युद्ध किया। परन्तु देवताओं से परास्त हो कर, वे सब उनके भय से पाताल में जा कर रहने लगे। फिर विष्णु जी उनका पीछा करते हुए उनके लोक में जा पहुँचे तथा वहाँ उन स्त्रियों को देख कर मोहित हो गये और उन्हीं के साथ विहार करके, वहीं रह गये। इस प्रकार वहाँ पर विष्णु जी के बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े हो कर वे बालक पाताल से

निकल कर सब देवताओं आदि को दुःख पहुँचाने लगे। जब देवताओं के कहने से मैंने सब देवताओं को साथ लेकर, शिवजी के पास जा कर स्तुति की और उनसे यह प्रार्थना की कि हे प्रभो ! विष्णु जी ने पाताल में जा कर अनेक स्त्रियों से विहार कर, बहुत-से लड़के उत्पन्न किये हैं। वे वहीं रह भी गये हैं तथा अपने लोक को लौट कर नहीं आते हैं और विष्णु जी के वे सब लड़के अत्यन्त बलशाली हो कर चारों ओर उपद्रव मचाते फिरते हैं।

हे नारद ! शिवजी ने देवताओं की ऐसा करुण-पुकार सुन कर, अपना स्वरूप बैल का बनाया और घोर नाद किया। फिर वे तुरन्त ही वहाँ जा पहुँचे जहाँ विष्णु जी निवास कर रहे थे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने ऐसा महाघोर शब्द किया कि उसे सुनकर वह पूरा नगर काँप उठा। यह देखकर विष्णु जी ने अत्यन्त क्रोधित हो कर अपने लड़कों को शिवजी से युद्ध करने की आज्ञा दी। अपने पिता की आज्ञा पा कर जब वे लड़के शिवजी के अवतार के सम्मुख आये, तो वृषेश्वर अवतार ने अपने तीक्ष्ण सींगों द्वारा उन सब को मार डाला। तब विष्णु जी ने अपने लड़कों की मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो, वृषेश्वर का सामना किया तथा उनके ऊपर उत्तमोत्तम शस्त्र चलाये। तब वृषेश्वर ने कुपित हो, भयानक शब्द कर, अपने नख तथा सींगों द्वारा विष्णु जी को भी विकल कर दिया। तब विष्णु जी ने अहंकार त्याग, वृष रूप शिवजी को पहचान, करुण स्वर में उनकी स्तुति करते हुए कहा— "हे शिवजी ! आप मेरा अपराध क्षमा करें।" शिवजी विष्णु के ऐसे वचन सुनकर बोले—"हे विष्णु ! अब तुम शीघ्र ही इन स्त्रियों को छोड़ कर अपने लोक को चले जाओ और भविष्य में फिर कभी ऐसा मत करना। यह सुनकर विष्णु जी ने अत्यन्त लज्जित हो कर कहा— "हे प्रभो ! हमारा चक्र तो यहाँ पर रखा हुआ है।" शिवजी ने उत्तर दिया। "इस चक्र को यहीं रखा रहने दो। हम तुम्हें ऐसा ही एक दूसरा चक्र देंगे।" अस्तु, शिवजी ने उसी समय एक चक्र बना कर विष्णु जी को दिया और कहा कि तुम इसी समय यहाँ से चले जाओ। तब विष्णु

जी ने शिवजी की आज्ञा पा कर, देवताओं के पास अलग जा कर कहा—"हे देवताओ ! यहाँ जो स्त्रियाँ अमृत से उत्पन्न स्थित हैं, वे सब प्रकार से आनन्द प्रदान करने वाली हैं। जो इनसे भोग करता है, वही इनका स्वामी है। यह सुन कर देवताओं ने उन स्त्रियों के पास जाने की इच्छा की। परन्तु शिवजी ने उनकी वह इच्छा समझ कर तुरन्त ही शाप दिया कि जो कोई उस स्थान पर, शान्त मुनीश्वरों तथा मद्यप दैत्यों के अतिरिक्त आवेगा, वह तुरन्त मर जायेगा। शिवजी के ऐसे वचन सुनकर सब देवता भयभीत हो, अपने-अपने घरों को चले गये। फिर शिवजी, विष्णु जी तथा अन्य सब देवता भी अपने लोकों को गये। हे नारद ! जो इस चरित्र को सुनेगा अथवा पाठ करेगा, वह सदैव आनन्द प्राप्त करेगा।"

ॐ ॐ ॐ

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब मैं तुम्हें पिप्पलाद अवतार के विषय में बताता हूँ। एक बार तीनों लोकों में प्रसिद्ध मुनि दधीचि ने, जिन्होंने इन्द्र को युद्ध में परास्त किया था, विष्णु जी तथा अन्य सब देवताओं को शाप दिया तथा उनकी स्त्री सुवर्चा ने भी सब देवताओं को शापित करने में कोई संकोच नहीं किया। उन्हीं के पिप्पलाद नामक एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसे शिवजी का अवतार कहते हैं।" इतनी कथा सुन कर नारद जी बोले—"हे पिता ! आप सब से पहले मुझे देवताओं को सुवर्चा द्वारा शापित करने का वृत्तान्त सुनाइये। इसके पश्चात् पिप्पलाद के अवतार का वर्णन कीजिये।" ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जिस समय इन्द्र वृत्रासुर से परास्त हो कर देवताओं सहित हमारी शरण में आये, उस समय हमने देवताओं से यह कहा कि तुम सब लोग दधीचि के पास जा कर, उनसे उनकी अस्थि माँगो तथा उन हड्डियों द्वारा एक वज्र बना कर उसी वज्र से वृत्रासुर का वध करो, तुम्हारी सहायता शिवजी करेंगे। देवताओं ने यह

सुन कर दधीचि के पास जा कर हड्डियाँ माँगी। दधीचि ने तुरन्त ही अपनी हड्डियाँ दे दीं तथा स्वयं शिवलोक को पधारे। तब देवताओं ने उन्हीं हड्डियों से विश्वकर्मा के द्वारा वज्र बनवाया तथा इन्द्र ने उसी वज्र से वृत्रासुर का वध किया। वृत्रासुर के वध से सब लोग प्रसन्न हुए। जब यह हाल दधीचि की स्त्री सुवर्चा को ज्ञात हुआ तो उसने अत्यन्त चिन्तित हो, अपने पातिव्रत धर्म का तेज दिखलाया और देवताओं को पुत्रहीन होने का शाप दिया। तदुपरान्त जब सुवर्चा ने सती होने की इच्छा की, उसी समय आकाशवाणी ने उन्हें रोक दिया। तब आकाशवाणी की आज्ञानुसार सुवर्चा ने पीपल की जड़ में बैठ कर अपने को स्थिर किया। इतने में ही उसी वृक्ष के नीचे एक बालक उत्पन्न हुआ। वह बालक शिवजी का अवतार था। उस बालक के चारों ओर कान्ति फैली हुई थी। उस बालक को देख कर सुवर्चा अपने सब दुःखों को भूल गयी। फिर वह उस बालक को शिवजी का अवतार समझ, स्तुति करती हुई बोली—"हे प्रभो ! आप मेरे शोक को दूर करें। आप पीपल के वृक्ष के नीचे निवास करें तथा सदैव प्रसन्न रहें। अब आप मुझे यह आज्ञा दें कि मैं भी अपने पति के पास उनके लोक को चली जाऊँ और वहीं पति के साथ रह कर, आपका ध्यान किया करूँ।"

हे नारद ! यह कह कर सुवर्चा प्रसन्नतापूर्वक सती हो गयी तथा शिवलोक में पहुँच कर दधीचि सहित सदा शिवजी की सेवा में तत्पर रही। शिवजी पीपल के वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुए थे, इसलिए मैंने उनका पिप्पलाद नाम रख दिया। तब सब मिल कर पिप्पलाद की स्तुति करने लगे। फिर हम सब पिप्पलाद की आज्ञा पा कर अपने-अपने लोक को चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल की जड़ में बैठ कर तपस्या करते रहे। एक दिन पिप्पलाद मुनि पुष्पभद्रा नदी के तट पर जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने एक स्त्री को देखा। तब उन्होंने यह इच्छा की कि हम इसके साथ अपना विवाह कर गृहस्थाश्रम ग्रहण करें। इसी इच्छा से उस स्त्री के माता-पिता के घर संसारी रीति से गये। वह लड़की

राजा अनरण्य की पुत्री थी। अनरण्य ने पिप्पलाद का बड़ा सम्मान किया। जब पिप्पलाद ने उनसे उस कन्या को माँगा, तब राजा अनरण्य पिप्पलाद को दुर्बल देखकर चुप हो रहे, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। यह देखकर पिप्पलाद ने राजा से कहा—"हे राजन्! यदि तुम अपनी कन्या मुझे नहीं देते, तो मैं तुम्हें भस्म किये देता हूँ।" तब राजा ने पिप्पलाद का ऐसा तेज देखा तब उसने रोते-पीटते हुए अपनी लड़की का विवाह पिप्पलाद के साथ कर दिया। पिप्पलाद वहाँ से स्त्री को साथ ले अपने स्थान को लौट आये। अनरण्य की पुत्री ने पतिव्रत धर्म का पूरी तरह पालन किया। शिवजी के अंश से पिप्पलाद तथा गिरजा के अंश से पद्मा अर्थात् राजा अनरण्य की पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन पिप्पलाद की स्त्री ने अपने को भली-भाँति शृंगारित किया तथा पिप्पलाद से आज्ञा लेने के पश्चात् गंगा स्नान के लिए चली। धर्मराज ने मार्ग में राजा का स्वरूप रख उसकी परीक्षा लेनी चाहिए। वे पद्मा से बोले—"हे सुन्दरी! तुम्हारा पति जो वृद्ध, कुरूप एवं अशोभनीय है, तुम उसका त्याग कर हमारे पास आ कर विहार करो। मुनि की स्त्री हो कर भला क्या आनन्द पाओगी।" यह कह कर उन्होंने पद्मा का हाथ पकड़ना चाहा; परन्तु उसी समय पद्मा ने अत्यन्त क्रोधित हो कर यह कहा—"रे दुष्ट! दूर हो, मुझे स्पर्श करने की धृष्टता मत करना। तूने मुझे कुदृष्टि से देखा है, इसलिए तेरा तेज नष्ट हो जाएगा।"

हे नारद! पद्मा द्वारा यह शाप सुन कर धर्मराज का तेज उसी समय मलिन हो गया। तब वे राजा का शरीर त्याग, असली रूप रख कर, विनय करके बोले—"हे माता! मैं धर्मराज हूँ, मैंने यह कृत्य आपकी परीक्षा लेने के लिए किया था। अब आप मुझ पर कृपा करें, क्योंकि आप जगत माता हैं।" उस समय पद्मा ने धर्मराज को पहचान कर कहा—"हे धर्मराज! सत्ययुग में तुम पूर्ण रूप से रहोगे, तुमको किसी प्रकार का कष्ट न होगा, परन्तु त्रेता में तुम्हारा एक पैर, द्वापर में दो पैर तथा कलियुग में तीसरा पाँव कट जाएगा, क्योंकि मेरा वचन वृथा नहीं होता।" धर्मराज ने पद्मा का यह शाप सुन, प्रसन्न हो कर

कहा—''हे माता ! आपने मुझको नरकगामी होने से बचा लिया। अब मैं प्रसन्न हो कर आपको वर देता हूँ कि आपके पति युवा हो कर अत्यन्त सुन्दर हो जाएं। वे अत्यन्त कला-कुशल, विद्वान तथा बड़े अद्भुत चरित्र करने वाले होंगे। आपके दस पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान् उत्पन्न होंगे।'' धर्मराज यह कह कर वहाँ से अपने लोक को चले गये। पद्मा भी अपने स्थान को लौट आयी। इस प्रकार पिप्पलाद अवतार ने अनेक मनुष्यों को संसार-सागर से डूबते हुए बचाया तथा जब संसारी मनुष्यों को शनिश्चर की दशा तथा दृष्टि से दुःखी देखा तो उन्हें यह वर दिया कि आज से शिवजी के भक्तों को तथा जन्म से सोलह वर्ष तक के बालकों को शनिश्चर दुःखी नहीं कर सकेगा। शनिश्चर का अशुभ फल पिप्पलाद के नाम से स्मरण मात्र से ही नष्ट हो जाता है। पिप्पलाद तथा कौशिक मुनि के स्मरण से शनिश्चर का अशुभ फल नहीं होता। हे नारद ! पिप्पलाद संसार भर का आनन्द प्रदान करने वाले हैं तथा पद्मा भी गिरिजा का अवतार हैं। उनके स्मरण से सन्तान-वृद्धि होती है। पिप्पलाद का यह आख्यान अत्यन्त पवित्र है। इसके पढ़ने वाले तथा सुनने वाले को दोनों लोकों में सब कुछ मिलता है।''

ॐ ॐ ॐ

इकतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! एक दिन शिवजी तथा गिरिजा दोनों संसारी जीवों के समान विहार करने की सम्मति कर, भैरव को द्वार पर बिठा, स्वयं अन्तःपुर में गये। एक दिन गिरिजा मतवाली के समान घर से बाहर निकलीं, तब भैरव ने गिरिजा को कुदृष्टि से देखा और बाहर जाने से रोक दिया। यह देख कर गिरिजा ने अत्यन्त क्रोधित हो कर शिवजी की इच्छानुसार भैरव को यह शाप दिया—''हे भैरव ! तू मेरा पुत्र हो कर मुझे कुदृष्टि से देखता है तथा माता-पुत्र का भाव छोड़, मनुष्य के समान कुमार्गी होना चाहता है, इसलिए तू मृत्युलोक

में जा कर मनुष्य का शरीर धारण करेगा तभी तू ऐसे पाप से छूटेगा।'' यह सुनकर भैरव अत्यन्त दुःखी हुए। फिर उन्होंने भी अपनी लीला प्रदर्शित करने के लिए गिरिजा को यह शाप दिया कि जो दशा हमारी हो, वही दशा तुम्हारी भी होगी। शिवजी दोनों की बातें सुनकर बाहर निकल आये और हँसते हुए दोनों को समझाया। उस समय भैरव ने शिवजी से विनय की—''हे पिता ! पृथ्वी पर भी मैं आपका पुत्र हो कर उत्पन्न होऊँ।'' इसीलिए शिवजी के साथ उनके सब पुत्रों को भी अवतार लेना पड़ा।''

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! मैं तुम्हें अवधूतपति अवतार की कथा सुनाता हूँ। एक दिन इन्द्र ने सदाशिव के दर्शनों की इच्छा से सब देवताओं को एकत्र किया तथा यह विचार किया कि हम सब देशों के राजा-महाराजा हैं। अस्तु, हम को बहुत-सी सामग्री सहित शिवजी से भेंट करनी चाहिए। इस प्रकार निश्चय कर उन्होंने अनेक प्रकार की सामग्री एकत्र की। उस समय ग्यारहों रुद्र, बारहों सूर्य, आठों बसु, तेहर विश्वेदेव, समस्त मरुद्गण, सब दिक्पति, देवता तथा मुनीश्वर भली प्रकार सज कर, बड़ी धूमधाम से एकत्र हो कर, बृहस्पति को साथ लेकर शिवजी से मिलने के लिए चले। सभी प्रेम में मग्न थे। कोई गाता, कोई बजाता तथा कोई हँसता हुआ चला आ रहा था। जब वे सब कैलाश पर्वत के निकट पहुँचे, तो शिवजी ने इन्द्र का ऐसा गर्व देखकर लीला के निमित्त अपना भयंकर रूप धारण किया। इन्द्र ने उन अवधूत को देखकर प्रणाम किया और पूछा—''हे परमहंस ! आप कौन हैं तथा कहाँ से आये हैं? प्रतीत होता है कि आप इसी समय शिवजी के पास से आ रहे हैं। कृपा करके आप हमें बताइये कि शिवजी इस समय कहाँ हैं तथा क्या कर रहे हैं? वे कहीं चले तो नहीं गये?'' अवधूत ने इन्द्र के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। तब इन्द्र ने

पुनः उनसे पूछा कि कृपा करके आप यह बतला दीजिए कि शिवजी कहाँ हैं? इसी प्रकार इन्द्र ने अवधूत से कई बार शिवजी के विषय में पूछा, परन्तु अवधूत ने इन्द्र को कोई उत्तर न दिया। तब इन्द्र ने क्रोधित हो कर अपना वज्र उठाते हुए कहा—"रे दुष्ट अवधूत ! तू हम को कोई उत्तर नहीं देता। मैं तुझ को अभी अपने वज्र से मार देता हूँ। देखूँगा तेरा कौन रक्षक है?" यह कह कर इन्द्र ने अवधूत पर वज्र चलाया। वह वज्र उनके कण्ठ में लगा जिससे श्याम रंग का चिह्न पड़ गया, परन्तु वज्र भी उसी समय जल कर भस्म हो गया। यह देख कर देवताओं की सेना में हाहाकार मच गया। तदुपरान्त शिवजी में क्रोध की ज्वाला इतनी बढ़ी कि सब देवता उस ज्वाला से जलने लगे। इन्द्र ऐसी लीला देखकर काँप उठे। उन्होंने तुरन्त ही अपने गुरु का स्मरण किया। जब बृहस्पति ने शिवजी का ध्यान किया तथा शिवजी को पहचाना तब उनकी स्तुति करके इन्द्र से यह कहा—"हे इन्द्र ! यह अवधूत नहीं, अपितु स्वयं सदाशिवजी हैं।" इतना कह कर बृहस्पति ने शिवजी का अत्यन्त आदर किया तथा कहा कि ये सब के स्वामी हैं। तब इन्द्र आदि सब देवताओं ने भी प्रेम के साथ शिवजी की स्तुति की। शिवजी यह स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—"हे इन्द्र तथा अन्य देवताओ ! हम तुम्हारी यह स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अब तुम हमसे अपनी इच्छानुसार वर माँगो।" यह सुनकर बृहस्पति अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होंने शिवजी से यह वर माँगा कि हे शिवजी ! इन्द्र आपका सेवक है, आप इसकी रक्षा कीजिए।

हे नारद ! बृहस्पति के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने कहा—"बृहस्पति हम कृपा करके इस ज्वाला को यहाँ से इतनी दूर फेंक देंगे कि इसका प्रभाव इन्द्र पर कुछ न होगा। तुमने आज इन्द्र को जीवनदान दिया है, इससे तुम्हारा नाम जीवन होगा।" शिवजी ने यह कह कर; उस क्रोधाग्नि को गंगा में फेंक दिया, जिससे जालन्धर दैत्य उत्पन्न हुआ। हे नारद ! अवधूत शिवजी यह चरित्र कर, वहाँ से अन्तर्धान हो गये। उस समय देवताओं को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। फिर सब लोग

प्रसन्न हो कर अपने-अपने स्थान को लौट गये। जो मनुष्य इस अवधूतेश्वर अवतार के चरित्र का पाठ करेगा या सुनेगा, वह दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त करेगा।''

ॐ ॐ ॐ

तैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! तुम्हें हनुमान नाम के शिवजी के अवतार की कथा सुनाता हूँ। उन्होंने वानर जाति में शरीर धारण कर, रामचन्द्र जी से बड़ा स्नेह किया। कपिदेव महावीर हनुमान जी शिवजी के ही अवतार हैं। एक बार शिवजी ने जब मोहिनी रूप को देखा तो केवल रामचन्द्र जी के कार्य के लिए यह लीला की कि वे मोहित हो कर उस मोहिनी रूप से लिपट गए। उस समय शिवजी का वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस वीर्य को नग नामक मुनि ने शिवजी के संकेत से इस इच्छा से रख लिया कि उसके द्वारा रामचन्द्र जी का कार्य सिद्ध होगा। तदुपरान्त अञ्जनी के गर्भ से हनुमान जी उत्पन्न हुए। उनके इस प्रकार कपि-अवतार लेने का कारण यह था कि चार मास तक रामचन्द्र जी ने वन में शिवजी का बड़ा तप किया था, तब शिवजी ने उनकी परीक्षा लेने के पश्चात्, अपने गणों सहित अवतार लिया। सब देवताओं ने भी शिवजी की आज्ञा पा कर बन्दर तथा रीछ का शरीर धारण किया। जब रामचन्द्र जी ने रावण को अत्यन्त बलशाली समझ कर शिवजी की बड़ी स्तुति की, तब शिवजी ने प्रसन्न हो कर अञ्जनी के गर्भ से अवतार लिया था। उन्होंने सूर्य को ही निगल लिया। इसे देख कर ही देवताओं ने यह अनुभव किया कि वे शिवजी के ही अवतार हैं। उन्होंने रामचन्द्र जी का सन्देश उनकी पत्नी सीता के पास लंका में पहुँचाया, रावण की अशोक-वाटिका को उजाड़ा, लंका को जला कर भस्म किया तथा समुद्र में सेतु बाँधा। जिस समय लक्ष्मण शक्ति के प्रहार से मूर्छित हुए तथा उनकी दशा देख कर रामचन्द्र जी को अत्यन्त दुःख हुआ। हनुमान ने औषधि ला कर लक्ष्मण को जीवित किया तथा

रामचन्द्र जी का दुःख दूर किया। तब उन्होंने भक्ति भाव की रीति को अपना कर, भक्ति को संसार में प्रसिद्ध किया। इसलिए वे रामदूत के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हे नारद ! शिवजी ने रामचन्द्र के कार्य पूर्ण करने के लिए ही हनुमान का अवतार लिया था। उन्होंने रावण की भुजा उखाड़ कर राम तथा लक्ष्मण को बहुत हर्षित किया। उनकी उपासना से असंख्य पापियों ने मुक्ति प्राप्त की है। यही दशा विष्णु जी की भी है। उन्होंने कृष्ण रूप धारण कर अर्जुन नामक पाण्डव का सारथी बन कर रथ हाँका। इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! सनकादिक हमारे चार पुत्र परम शैव हैं। वे तीनों लोकों में सदाशिव जी की मूर्ति हृदय में धारण कर, भ्रमण करते रहते हैं। एक दिन वे विष्णु लोक में पहुँचे तथा वैकुण्ठ को देखकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक यह इच्छा की कि हम विष्णु जी के दर्शन करें। ऐसा विचार कर वे छः ड्योढ़ियाँ पार कर, भीतर चले गये; परन्तु सातवीं ड्योढ़ी पर जय एवं विजय नाम के विष्णु जी के गणों ने उन्हें रोक दिया और किसी भी प्रकार भीतर नहीं जाने दिया। तब सनकादिक ने क्रोधित हो कर शिवजी की प्रेरणा से उन गणों को यह शाप दिया कि तुम दोनों अब यहाँ न रहोगे। तुमने हम को विष्णु जी के मन्दिर में जाने से रोका है। तुम्हारा यह कर्म राक्षसों के समान है, इसलिए तुम दोनों राक्षस होओगे। इतने में विष्णु जी भी भीतर से निकल आये। उन्होंने सनकादिक की बड़ी स्तुति की। तदुपरान्त वे विष्णु जी को प्रसन्न कर, आज्ञा पा कर हमारे लोक को चले आये। सनकादिक के शाप से वे दोनों गण दिति के पुत्र हो कर, कनककशिपु तथा कनकाक्ष के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे ऐसे बलशाली थे कि उन्होंने तुरन्त ही तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली। तब देवताओं की इच्छानुसार विष्णु जी ने वाराहरूप धारण कर कनकाक्ष को मारा तथा नृसिंह अवतार लेकर कनककशिपु का उदर चीर डाला। उन दोनों गणों को तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप था, इसलिए फिर उन्होंने कुम्भकर्ण तथा रावण का जन्म लेकर शिवजी की बड़ी

भक्ति की। इसके पश्चात् उसने तुम्हारे उपदेश से मोहित हो कर, कैलाश को जड़ से उखाड़ लिया। यह देखकर शिवजी ने रावण को शाप देते हुए यह कहा कि हमारे समान ही कोई मनुष्य उत्पन्न हो कर तेरे अहंकार को दूर करेगा।

हे नारद ! शिवजी के शाप के कारण ही दोनों राक्षसों ने कुमार्ग पकड़ा तथा संसार में अनेक उपद्रव किये। तब देवता आदि दुःखी हो कर विष्णु जी के पास गये और रावण का सब वृत्तान्त उनसे कहा। तब विष्णु जी बोले—"हे देवताओ ! रावण शिवजी का परमभक्त है, उस पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता, परन्तु हम शिवजी की आज्ञा लेकर मनुष्य का शरीर धारण करेंगे और शिवजी की उपासना कर उन्हीं से बाण प्राप्त करके रावण का वध करेंगे।" यह कह कर देवताओं को विदा किया तथा स्वयं मनुष्य रूप धारण करने की इच्छा की। इस प्रकार उन्होंने अयोध्यापति दशरथ के यहाँ अवतार लिया। रामचन्द्र जी का विवाह जनक की पुत्री सीता के साथ हुआ था। फिर रामचन्द्र जी राजा दशरथ की आज्ञा से राज्य त्याग कर, देवताओं के कार्य के लिए वन में गए। वहाँ से सीता को रावण हर ले गया जिससे रामचन्द्र जी को बहुत दुःख हुआ। तब रामचन्द्र जी ने अगस्त्यमुनि से उपदेश ग्रहण कर, शिवजी की आराधना की। शिवजी ने प्रसन्न हो कर, रावण के वध की आज्ञा दी तथा रामचन्द्र जी को अपना धनुष-बाण दिया। उस धनुष बाण द्वारा रामचन्द्र जी ने रावण का वध करके सीता को पुनः प्राप्त किया।"

ॐ ॐ ॐ

चौंतीसवाँ अध्याय

नारद जी ने कहा—"हे पिता ! रामचन्द्र जी के चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! विष्णु जी ने देवताओं के कार्य के लिए पूर्णांश से यह अवतार धारण किया था। उन्होंने अनेक बाल-चरित्र किये, जिन्हें देखकर उनके माता-पिता

अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने फिर विश्वामित्र के साथ जा कर, उनके यज्ञ की रक्षा की तथा सुबाहु को सेना सहित मारा डाला। उन्होंने विश्वामित्र के साथ जनकपुर में जा कर राजा जनक की इच्छानुसार स्वयं तथा अपने तीनों भाइयों का विवाह किया। इसके पश्चात् जब राजा दशरथ अपने तथा पुत्र-वधु सहित अयोध्या को लौटे, उस समय के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। निदान, देवताओं ने अपने कार्य की सिद्धि के लिए अनेक उपाय करके भरत की माता कैकेयी को रामचन्द्र जी के विरुद्ध भड़का दिया जिसके परिणाम स्वरूप कैकेयी ने रामचन्द्र जी को दशरथ से कह कर वनवास दिलवाया। आयोध्या से वन को जाते समय रामचन्द्र जी सर्वप्रथम चित्रकूट गये और वहाँ उन्होंने मत्तगयन्द शिवजी की पूजा की। उस मूर्ति को मैंने ही वहाँ स्थापित किया था। वही शिवजी चित्रकूट के रक्षक हैं। जो मनुष्य चित्रकूट में जा कर उनकी पूजा न करे, उसको वहाँ जाने का कोई फल नहीं मिलता। भरत अयोध्या वासियों सहित रामचन्द्र जी के पास पहुँचे। उन्होंने हाथ जोड़ कर बड़ी भक्ति के साथ रामचन्द्र जी से लौटने की विनती की, परन्तु रामचन्द्र जी ने उनकी बात न मान कर तथा अपनी पादुका देकर, उन्हें विदा कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् वहाँ से वे दण्डक वन को गये, जहाँ ऋषि-मुनि निवास करते हैं। मार्ग में उन्होंने विराध को, जो सीता को उठा कर उड़ा था, मार डाला। फिर वे कुम्भज मुनि के पास पहुँचे। वहाँ अगस्त्य मुनि से उपदेश पा कर सीता तथा लक्ष्मण सहित पंचवटी को गये। शूर्पणखा ने आ कर उनसे विवाह की इच्छा प्रकट की। जब रामचन्द्र जी और लक्ष्मण ने उसकी इच्छा पूरी न की, तब वह यह कह कर कि अब तुम अपने किये का फल पाओगे, सीता को डराने लगी। तब लक्ष्मण ने क्रोधित हो कर, उसके नाक-कान काट लिये। हे नारद ! शूर्पणखा वहाँ से रोती अपने भाई दूषण के पास गयी तथा उसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। अपनी बहिन की यह दशा देखकर खर तथा दूषण, शूर्पणखा को आगे कर, रामचन्द्र जी से उसके अपमान का बदला लेने के लिये, युद्ध करने

गये। उस समय रामचन्द्र जी ने सीता जी को लक्ष्मण की सुरक्षा में रख कर अकेले ही शूर्पणखा के अतिरिक्त समस्त राक्षसों को मार डाला। शूर्पणखा यह दशा देखकर वहाँ से रोती हुई रावण के पास पहुँची और आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। रावण ने शूर्पणखा के मुख से रामचन्द्र जी की वीरता का समाचार सुन, क्रोधित हो कर मारीच को सीता के हरण के लिए कहा। रावण का मामा मारीच, विचित्र मृग का स्वरूप धारण कर, सीता के सामने पहुँचा। उस समय रामचन्द्र सीता के हठ तथा मृग के छल में आ कर, मृग का वध करने के लिए, उसके पीछे-पीछे चल दिये। जब बहुत देर होने पर भी लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी को लौटते न देखा तो वे सीता को वहीं अकेली छोड़ रामचन्द्र जी की खोज में चले। इस प्रकार रामचन्द्र जी और लक्ष्मण के चले जाने के पश्चात् रावण ने अवसर देखकर, सीता को उठा लिया और लंका को भागा। मार्ग में सीता को रोते देख जटायु ने रावण से युद्ध किया, परन्तु रावण ने जटायु के पंख काट डाले। इधर जब रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण लौटे, तो वहाँ सीता को न पा कर मूर्च्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़े तथा रोते हुए पूरे वन में सीता को ढूंढ़ने लगे। आगे चल कर उन्हें जटायु से सब हाल मालूम हुआ। जटायु ने रामचन्द्र जी को सब हाल बता कर, अपना शरीर त्याग दिया। तब रामचन्द्र जी ने स्वयं अपने हाथ से जटायु का दाह-संस्कार किया।"

ॐ ॐ ॐ

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! तत्पश्चात् राम-लक्ष्मण ने अगस्त्य मुनि को देख कर दोनों हाथ जोड़, सिर नवा कर प्रणाम किया। उस समय मुनि ने राम-लक्ष्मण को अत्यन्त दुःखी देखकर इस प्रकार कहा—"हे राम ! तुम स्त्री के लिए इतना दुःख क्यों करते हो? स्त्री किसी की नहीं होती। केवल जीव ही सब इन्द्रियों से परे है। उसका कोई आकार भी नहीं है, तो भी वह सब में विद्यमान है। बात को न

समझकर, बुद्धि के विरुद्ध सब कार्य कर रहे हो। केवल यही सोच कर संतोष करो कि यह शरीर नाशवान् है, आत्मा कभी नहीं मरता। ब्रह्म एक ही है, दो नहीं, फिर कौन स्त्री तथा कौन पुरुष है? इसलिए हे रामचन्द्र ! तुम सीता के वियोग का दुःख दूर करो। व्यर्थ ही मोह के वश में पड़ने से कोई लाभ न होगा। अस्तु, तुम शिवजी का स्मरण कर, अपने दुःख को दूर करो।''

हे नारद ! अगस्त्यमुनि के ऐसे वचन सुनकर रामचन्द्र जी बोले—''हे मुनीश्वर ! आपने अभी यह कहा है कि आत्मा शरीर से भिन्न है तथा शरीर जड़ है, उसको कोई दुःख नहीं हो सकता तब आप मुझे यह बता दीजिए कि दुःख किसको होता है? मुझे इस समय सीता के वियोग का दाह है, वही मेरे शरीर को जला रहा है। जो बात शरीर में हम प्रतिदिन देखते हैं, उसके लिए आप क्या कहते हैं? मैं आप से पूछता हूँ कि दुःख-सुख को भोगने वाला कोई है भी या नहीं?'' यह सुन कर अगस्त्य जी बोले—''हे रामचन्द्र ! शिवजी की माया अपार है। उसका नाम प्रकृति है। उसी से सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति हुई है। उस प्रकृति का स्वामी शिवजी को ही समझो। पुरानी वासना ही संसार का क्षेत्रज्ञ है। चार प्रकार का अन्तःकरण उससे प्रकाशित होता है। जीव अपने कर्मों का फल प्राप्त करता है तथा उन्हें भोगता है। सब दुःख-सुख अपने कर्मानुसार ही होते हैं। माया के बन्धन से दुःख-सुख हैं। जो माया से भिन्न है, वही संसार पर प्रबल है।'' यह सुनकर रामचन्द्र जी ने कहा—''हे मुनीश्वर ! आपने जो कुछ कहा, वह सब उचित है; फिर भी हमारा दुःख किसी भी प्रकार दूर नहीं होता। जिस प्रकार मद्य बड़े-बड़े बुद्धिमानों को मस्त कर देता है, उसी प्रकार भाग्य के भोग भी अत्यन्त दुःखदायी हैं। सब लोग उसी भाग्य के वश में हैं। उस पर किसी का वश नहीं चलता। सब दुःख-सुख भी उसी से होते हैं। हमने भाग्य को सर्वोपरि शिवजी के समान समझ लिया है, वही मुझे इस समय दुःख दे रहा है। अब मेरी इच्छा है कि जिसने मेरी स्त्री का हरण किया है, मैं उसका वध कर डालूँ। मैं सूर्यवंशी राजा

दशरथ का पुत्र हूँ। यदि शीघ्र ही उसका वध न करूँ तो मेरा जीवन निष्फल है। अस्तु, जब तक मैं सीताहरणकर्त्ता का वध नहीं करूँगा, तब तक यह अग्नि शान्त नहीं होगी।''

रामचन्द्र जी के इन अहंकारपूर्ण वचनों को सुनकर अगस्त्य मुनि ने यह जान लिया कि उनका उपदेश निष्फल गया है। तब उन्होंने अपने मन में कुछ क्रोध करके फिर इस प्रकार कहा—''हे राम ! तुम जो शब्द कह रहे हो, सो तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह शिवजी की माया के कारण ही है, क्योंकि सब देवता, मुनि आदि उसी माया में भटक कर सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। तुम अपनी स्त्री को प्राप्त करने के हेतु रावण का वध करना चाहते हो, परन्तु रावण अत्यन्त बलवान् तथा शक्तिशाली दैत्यों का स्वामी है। भला, तुम उसकी लंका में पहुँच कर अपनी सीता को किस प्रकार प्राप्त कर सकोगे? शिवजी की कृपा से वह सम्पूर्ण संसार का राजा बना हुआ है। तुम अपनी और अपने शत्रु की शक्ति की तुलना नहीं करते हो। रावण का दुर्ग स्वर्ण से बना हुआ है। कोई भी देवता और दैत्य उसे नहीं जीत सकता। जिस रावण के पास करोड़ों चतुरंगिनी सेनाएँ विद्यमान हैं, तुम उसे जीतना चाहते हो।'' इतना कह कर अगस्त्य मुनि चुप रह गये।''

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अगस्त्य जी के मुख से ऐसे वचन सुन रामचन्द्र जी अपने नेत्रों में आँसू भर कर, उनके चरणों पर गिर पड़े तथा ठंडी श्वासें लेते हुए विलाप करने लगे। तदुपरान्त उन्होंने हाथ जोड़ कर मुनि से इस प्रकार कहा—''हे मुने ! इस समय मैं दुःख-सागर में डूब रहा हूँ। उपदेश, ज्ञान तथा बुद्धि का इस समय मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। अस्तु, आप सर्वप्रथम मुझे यह उपाय बताइये, जिसके द्वारा मैं सीता को प्राप्त कर सकूँ। तदुपरान्त आप मुझे

जो भी शिक्षा देंगे, मैं उसे स्वीकार करूँगा। हे नाथ ! आप मुझे अपना सेवक जान कर क्रोध न करें।''

हे नारद ! रामचन्द्र जी के ऐसे वचन सुनकर अगस्त्य मुनि ने शिवजी की माया को धन्य कहते हुए तथा भगवान् सदाशिव की स्तुति करते हुए यह उत्तर दिया—''हे रामचन्द्र जी ! यदि तुम अपनी मनोकामना पूर्ण करना चाहते हो, तो शिवजी की शरण में जाओ और उनकी प्रसन्नता के निमित्त कठिन तप करो। तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हो कर शिवजी रावण का पक्ष लेना छोड़ देंगे।'' अगस्त्य ऋषि के वचन सुनकर रामचन्द्र जी ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा—''हे प्रभो ! आप संसार में समुद्र मथने वाले तथा इल्वल के शत्रु के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप कृपा करके मुझे शिवजी के मन्त्र की दीक्षा दीजिए।''

हे नारद ! यह सुन कर अगस्त्य जी ने शिव-पूजन की युक्ति बताते हुए इस प्रकार कहा—''हे रामचन्द्र जी ! सर्वप्रथम मैं शिव-पूजा की तिथि एवं वार का वर्णन करता हूँ। अष्टमी अथवा चतुर्दशी शिवजी की तिथि के नाम से प्रसिद्ध हैं एवं एकादशी विष्णु जी की तिथि कहलाती है। अस्तु, शुक्लपक्ष में इनमें से किसी भी तिथि में शिवजी का पूजन आरम्भ करें। शिव-पूजन का संकल्प करके अपने शरीर को श्वेत वस्त्रों से भूषित करें तथा भस्म लगावें। हे रामचन्द्र ! भस्म लगाये बिना शिवजी प्रसन्न नहीं होते और सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है।

हे राम ! जब भस्म तथा रुद्राक्ष धारण कर चुके, तब व्रत रख कर सर्वप्रथम इस प्रकार ध्यान करें। शिवजी गौर शरीर, सम्पूर्ण अंगों में भस्म रमाये हैं, जिनके वामाङ्ग में गिरिजा विराजमान हैं, जो पाँच मुख, तीन नेत्र, चार भुजा तथा लाल रंग के जटा-जूट एवं सम्पूर्ण आभूषणों को धारण किये हुए हैं; जो जनेऊ के बदले सर्पों को लपेटे हैं तथा हाथ में डमरू एवं त्रिशूल को लिये हुए हैं; जो बाघम्बर ओढ़े हैं तथा निर्भयता को धारण किये हुए हैं, जो करोड़ों सूर्यों के समान परम प्रकाशवान् तथा करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतल हैं, उन्हें मेरा

साष्टांग प्रणाम है। इस प्रकार ध्यान धर कर, शिवजी का पूजा करें तथा शिव-सहस्त्रनाम का पाठ करें।''

हे नारद ! इतना कह कर अगस्त्य जी ने रामचन्द्र जी को वेद में लिखित सहस्त्रनाम को बताया। फिर वे इस प्रकार बोले—''हे रामचन्द्र ! यदि कोई भय उत्पन्न हो तो तुम उससे डरना नहीं; क्योंकि शिवजी सदैव तुम्हारे रक्षक बने रहेंगे। तत्पश्चात् वे तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हो कर, तुम्हें अपना पाशुपत नामक अस्त्र देंगे। उसके द्वारा तुम अपने शत्रु को मार कर, सीता को प्राप्त कर सकोगे। जो प्राणी शिवजी की शरण में आता है, उसे सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं।'' इस प्रकार अगस्त्य जी ने उन सब लोगों का वृत्तान्त संक्षेप में कह सुनाया, जिन्होंने शिवजी की सेवा करके अपने-अपने मनोरथ प्राप्त किये थे।

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अगस्त्य जी से उपदेश प्राप्त करने के उपरान्त रामचन्द्र जी रामगिरि पर्वत पर आ कर गोमती नदी के तट पर बैठे। फिर वे शिवलिंग की स्थापना कर, भस्म रुद्राक्ष को धारण कर शिवजी का ध्यान करने लगे। उन्होंने भगवान् सदाशिवजी की मूर्ति को अपने हृदय-कमल में स्थापित किया। रामचन्द्र जी ने शिवजी के जिस स्वरूप का ध्यान किया था, उसका वर्णन इस प्रकार है— ''जिनकी कान्ति करोड़ों सूर्य के समान सुन्दर है, जिनमें करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतलता है, जिनके पाँच मुख तथा तीन नेत्र हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं तथा जिनके मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान है, जो बाघम्बर ओढ़े तथा सर्पों का जनेऊ पहने हैं, जिनके कण्ठ में हलाहल की श्यामता है, जिनके दोनों चरण कमल के समान कोमल तथा सुन्दर हैं, जो अपने गौर शरीर पर भस्म रमाये हैं तथा अत्यन्त दयालु, अनादि, अप्रमेय, अविनाशी, अद्वितीय, विद्या, हर्ष, सत्य तथा

धर्म के साक्षात् स्वरूप हैं, वे शिवजी अपने भक्तों पर अत्यन्त दया करें।''

हे नारद ! शिवजी के ऐसे स्वरूप का ध्यान धर कर रामचन्द्र जी शिवसहस्त्रनाम का जाप करने लगे। उन्होंने वन के पुष्प तथा कन्द-मूल खा कर चार मास व्यतीत कर दिये। उस समय शिवजी ने रामचन्द्र जी की परीक्षा लेनी चाही तथा जिस प्रकार समुद्र प्रलय काल आने पर अपनी मर्यादा को त्याग देता है और उस समय जैसा भयानक शब्द होता है, उसी के समान एक घोर शब्द उस स्थान पर हुआ जहाँ रामचन्द्र जी बैठे हुए शिवजी का ध्यान कर रहे थे। उस शब्द को सुन कर रामचन्द्र जी ने चारों ओर देखा परन्तु उन्हें कोई भी दिखाई न दिया। ठीक उसी समय चारों ओर वन में अग्नि की ज्वाला फैल गयी। रामचन्द्र जी ने उस दृश्य को देखकर अपने नेत्र बंद कर यह अनुमान किया कि संभवतः यह किसी दैत्य की माया है। तदुपरान्त वे अपने हाथों में धनुष-बाण लेकर अपने बाणों द्वारा उस ज्वाला को बुझाने का प्रयत्न करने लगे। उनके पास जितने भी अस्त्र-शस्त्र थे, वे सब उस अग्नि की भेंट हो गये, परन्तु अपना कोई भी प्रभाव नहीं दिखा सके। उसी समय रामचन्द्र जी का धनुष भी उनके हाथ से छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और देखते-देखते जल कर भस्म हो गया। यह दृश्य देखकर रामचन्द्र जी मूर्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़े।

हे नारद ! चैतन्य प्राप्त होने पर रामचन्द्र जी ने जब शिवजी का ध्यान किया तो उनके नेत्र खुल गये और वह अग्नि भी अदृश्य हो गयी। उस समय उन्होंने यह देखा कि अपने मुख्य लक्षणों से युक्त भगवान् सदाशिव परमतेजस्वी रूप में, नन्दी पर सवार हो, इनके सामने खड़े हुए हैं। उस स्वरूप को देखकर रामचन्द्र जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त उन्होंने विष्णु जी को लक्ष्मी सहित रुद्राध्यायी का पाठ करते हुए गरुड़ पर सवार हो, वहाँ आते हुए देखा। फिर उन्होंने ब्रह्माणी सहित मुझे भी रुद्रसूक्त का पाठ करते हुए, हंस पर आरूढ़ हो, वहाँ आते देखा। तदुपरान्त उन्होंने उसी ज्वाला से प्रकट हो

कर सम्पूर्ण मुनियों को शिवजी की स्तुति करते हुए देखा। इसके बाद उन्होंने यह देखा कि सम्पूर्ण दिक्पाल भी अपने मुख्य लक्षणों तथा पत्नियों सहित शिवश्रुति का पाठ करते हुए वहाँ चले आ रहे हैं। फिर उन्होंने गंगा आदि प्रसिद्ध नदियों सहित वेदमंत्र का पाठ करते हुए समुद्र को भी वहाँ आते देखा। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओं तथा शेष आदि नागों को अपनी स्त्रियों सहित शिवजी की स्तुति का गायन करते हुए वहाँ आते हुए देखा।

हे नारद ! नन्दीगण तथा गणेश जी भी अपने वाहनों पर सवार हो कर वहाँ जा पहुँचे। उस देव-सभा को देख कर रामचन्द्र जी को आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। रामचन्द्र जी ने शिवजी के ऐसे चरित्र को देखकर, सम्पूर्ण सभासहित स्तुति की।"

ॐ ॐ ॐ

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! तब रामचन्द्र जी ने शिवजी को अनेक बार प्रणाम करने के उपरान्त इस प्रकार कहा—"हे भगवान् सदाशिव जी ! आपके चरण-कमलों में मेरा प्रणाम है। अब मुझे यह आशा है कि आपकी कृपा से मेरे सम्पूर्ण कार्य संपन्न होंगे।" इस प्रकार कह कर वे भगवान् सदाशिवजी के नाम का जप करने लगे। उस समय शिवजी ने अपनी लीला द्वारा एक सोने के रथ को प्रकट किया। शिवजी बैल से उतर कर, उस रथ पर आरूढ़ हुए। उस समय सब लोग जय जयकार करने लगे। विष्णु जी तथा मैं भी शिवजी की स्तुति करने में प्रवृत्त हुए। उस समय शिवजी ने रामचन्द्र जी को मस्तक झुकाए देखकर, उन्हें अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने रथ पर बैठा लिया तथा जिस धनुष द्वारा वे प्रलय करते हैं, उसे रामचन्द्र जी को प्रदान कर दिया। इसके उपरान्त उन्होंने यह कहा—"हे रामचन्द्र जी ! यह बाण प्रलय करने वाला है। तुम इसका प्रयोग तभी करना, जब तुम्हें अपने प्राणों पर किसी प्रकार का सन्देह हो। यदि तुमने किसी अन्य समय पाशुपत-

अस्त्र प्रयोग कर दिया तो यह निश्चय रखना कि संसार में प्रलय हो जाएगी।''

हे नारद ! रामचन्द्र जी से इस प्रकार कह कर, शिवजी ने देवताओं को सम्बोधित करते हुए कहा—''हे देवताओ ! रामचन्द्र जी मेरे अनन्य सेवक हैं। इनका शत्रु रावण अत्यन्त बलवान् है, अतः हमारी आज्ञा स्वीकार कर तुम बानर तथा रीछ आदि बन कर, इनकी सहायता करना। शिवजी की इस आज्ञा को सब देवताओं ने स्वीकार किया। तदुपरान्त विष्णु जी ने नारायणास्त्र, मैंने ब्रह्मदंड तथा इन्द्र ने अग्निबाण रामचन्द्र जी को दिये। उस समय रामचन्द्र जी ने शिवजी की प्रार्थना करते हुए कहा—''हे प्रभो ! समुद्र का विस्तार सौ योजन का है, अस्तु मनुष्य द्वारा उसे पार करना अत्यन्त कठिन है। यदि किसी प्रकार उसे पार करके लंका में पहुँचा भी जाए, तो उसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। इसके अतिरिक्त लंका के रक्षक बड़े बलवान् दैत्य हैं, उन्हें जीतना अत्यन्त दुष्कर कार्य प्रतीत होता है। क्योंकि वे सब आपके सेवक हैं। इधर हम संख्या में केवल दो हैं तथा सब प्रकार से साधनहीन हैं। ऐसी स्थिति में हम उन पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकेंगे?''

हे नारद ! रामचन्द्र जी की यह विनय सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—''हे रामचन्द्र जी ! तुम कुछ चिन्ता मत करो; क्योंकि हम तुम्हारी सदैव सहायता करते रहेंगे। लंका के राक्षस धर्म के विरुद्ध हो गये हैं, अतः उनके मरने का समय समीप आ पहुँचा है। अस्तु, तुम्हारी विजय निश्चित है। इस सम्बन्ध में हम तुम्हें एक बात और भी बतला दें कि किष्किंधा नगरी में सब देवताओं ने बन्दर का रूप धर कर, जन्म ग्रहण किया है। उनकी सहायता द्वारा तुम समुद्र पर सेतु बाँध कर, लंकापुरी में आसानी से जा पहुँचोगे तथा रावण का वध करके, सीता को प्राप्त कर लोगे।'' शिवजी के श्रीमुख से ऐसे वचन सुनकर रामचन्द्र जी ने कहा—''हे प्रभो ! आपकी कृपा से यह सब कार्य तो हो जायेंगे, परन्तु मेरी यह इच्छा है कि आप अपने अंश द्वारा किसी को उत्पन्न करके, मेरे साथ अवश्य भेजें; जिससे मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो

जाएं तथा मुझे अपनी सिद्धि में पूरा भरोसा बना रहे।'' यह सुनकर शिवजी बोले—''हे रामचन्द्र जी ! रुद्र के अंश द्वारा हनुमान का अवतार हो चुका है। हनुमान तुम्हारे साथ रहकर सभी कार्यों में सहयोग प्रदान करेंगे। उनके साथ रहने से तुम्हें कुछ भी श्रम नहीं उठाना पड़ेगा।''

उन्तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इतना कह कर शिवजी ने रामचन्द्र जी को तत्त्वज्ञान का उपदेश किया, तदुपरान्त वे अन्तर्धान हो गये। तब रामचन्द्र जी ने अगस्त्य मुनि के समीप पहुँच कर, उनसे सब हाल कहा। अगस्त्य जी उस वृत्तान्त को सुनकर, प्रसन्न हो, रामचन्द्र जी से इस प्रकार बोले—''हे रामचन्द्र ! अब तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध हो जायेंगे, क्योंकि जिस पर शिवजी प्रसन्न होते हैं, उसका दुःख अवश्य नष्ट हो जाता है। अगस्त्य जी की इस बात को स्वीकार कर, रामचन्द्र जी लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत की ओर चले। वहाँ शिवजी के कथनानुसार उनकी हनुमान जी से भेंट हुई। हनुमान जी ने रामचन्द्र जी के सभी कार्यों में सहायता प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप रावण का संहार हुआ तथा रामचन्द्र जी ने सीता को पुनः प्राप्त किया।

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! मेरी यह अभिलाषा है कि मैं हनुमान् जी का सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनूँ।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! सात द्वीपों में पहले द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीप के नौ खण्ड हैं। उन नौ खण्डों में से जिस खण्ड का नाम किम्पुरूष है, वहाँ केसरी नामक एक बानरों के राजा निवास करते थे। वे शिवजी के परम भक्त, सत्यवादी तथा निष्पाप थे। उनकी षोडशवर्षीया पत्नी का नाम अंजनी था। वह बड़ी पतिव्रता थी। एक दिन की बात है कि वह सोलह श्रृंगार किये तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों को धारण किये हुए, पर्वत के एक शिखर पर खड़ी हुई थी। उसी

समय उनचास पवनों में से समीर नामक एक वायु, जिसका नाम प्रभंजन भी था; वहाँ आ पहुँचा। अन्जनी के स्वरूप को देखते ही वह मोहित हो गया। तब वह काम से पीड़ित हो, सूक्ष्मरूप धारण कर, उसके शरीर में प्रवेश कर गया। अञ्जनी को जब अपना शरीर कुछ भारी मालूम हुआ तो उसने यह विचार किया मेरे पति के अतिरिक्त यह कौन सा अन्य मनुष्य है जो मेरे शरीर को स्पर्श कर रहा है। जब उसे कुछ ज्ञात न हुआ तो वह उस अज्ञात व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार बोली—"हे देवता ! तुम कौन हो, जो मेरे शरीर का इस प्रकार स्पर्श कर रहे हो? तुम निष्पाप हो कर मेरे सम्मुख प्रकट होओ तथा मुझे अपना शरीर दिखाओ।"

हे नारद ! अञ्जनी के इस कथन को सुनकर प्रभंजन अत्यन्त भयभीत हो, अपना वास्तविक स्वरूप धारण कर उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ और इस प्रकार कहने लगा—"हे अञ्जनी ! मैं काम के वशीभूत हो, तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर गया। मैं इन्द्र का भाई प्रभंजन नामक देवता हूँ। मेरे स्पर्श से किसी को कुछ भी पाप नहीं लगता। मैंने सच्चिदानंद ब्रह्म के समान तुम्हें यहाँ आ कर अपना दर्शन दिया है। तुम किसी प्रकार का सन्देह मत करो। भगवान् सदाशिवजी की इच्छा अत्यन्त बलवान् है। मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम मेरे अपराध पर ध्यान न दो; क्योंकि मेरे स्पर्श के कारण तुम्हें किसी प्रकार का पाप नहीं लगेगा। हे देवि ! यह भी स्पष्ट है कि देवताओं की इच्छा फल दिये बिना नहीं रहती। अस्तु, तुम्हारे गर्भ से शिवजी के अंश द्वारा एक अत्यन्त बलवान् पुत्र जन्म लेगा। वह शिवजी के ही समान तेजस्वी, वेगशाली तथा शत्रुओं का संहार करने वाला होगा। वह रामचन्द्र जी और सीता का सेवक बनकर तुम्हें अत्यन्त आनन्द प्रदान करेगा।"

हे नारद ! इतना कह कर पवन देवता अन्तर्धान हो गये। इस घटना के कुछ समय पश्चात् अञ्जनी के गर्भ से तथा पवन देवता के आशीर्वाद से शिवजी अपने सम्पूर्ण अंश सहित स्थित हुए। दस महीने बाद अञ्जनी के गर्भ से एक पुत्र ने जन्म लिया। वह बालक परम

तेजस्वी तथा स्वरूपवान् था। उस समय देवता आकाश में आ कर दुन्दुभी बजाने लगे।''

चालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जिस समय उस बालक ने जन्म लिया तो एक अघटित घटना घटी। वह यह थी कि जब अञ्जनी ने यह देखा कि पवन देवता के कथनानुसार उस बालक में शिवजी का मुख्य कोई लक्षण नहीं है और उसका स्वरूप भी बानर के समान है, तो उसने अत्यन्त दुःखी हो कर उस बालक को पर्वत के एक शिखर से नीचे फेंक दिया, परन्तु ज्यों ही वह बालक उस पर्वत पर गिरा, त्यों ही पर्वत खण्ड-खण्ड हो कर, पाताल में धँस गया। अस्तु, वह बालक जिस समय पृथ्वी पर गिरा तो उसके कुछ देर बाद उसके नेत्र आकाश की ओर जा टिके। जब उसकी दृष्टि उगते हुए सूर्य पर पड़ी तो उसने समझा कि कोई पका हुआ फल है, मुझे इसे खा लेना चाहिए। इस विचार के आते ही वह बालक सूर्य को निगलने के लिए आकाश की ओर बड़े वेग से चला। ठीक उसी समय, जब वह बालक सूर्य को निगलने के लिए आगे बढ़ रहा था, राहू देवता भी सूर्य को निगलने के लिए उसी ओर जा रहे थे। राहू को देखते ही उस बालक ने समझा कि यह व्यक्ति मेरा प्रतिद्वन्द्वी है और इस फल को स्वयं खा जाना चाहता है। तब वह सूर्य के रथ को रोक कर, राहू की ओर अपना मुख फैला कर दौड़ पड़ा। राहू उसे देखते ही तुरन्त भाग गया।

हे नारद ! उस शब्द के कारण देव लोक में हलचल मच गयी तथा सब देवता अत्यन्त आश्चर्यचकित हो, थर-थर काँपने लगे। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़ वज्र को हाथ में लेकर उसकी ओर चल पड़े। वह बालक सूर्य को निगलने के लिए अपना मुँह फैला ही रहा था कि उसी समय इन्द्र को वहाँ आते हुए देखकर उसे अत्यन्त क्रोध आया। तब वह अपना मुख फैलाकर पहले इन्द्र को ही निगल जाने के लिए बढ़ा। यह

देखकर, इन्द्र ने क्रुद्ध हो अपने वज्र द्वारा उस बालक को घायल कर दिया, जिसके कारण वह बालक पृथ्वी पर गिरा पड़ा।

हे नारद ! शिवजी ने यह चरित्र केवल इसीलिए किया था, जिससे लोक में वज्र की प्रतिष्ठा नष्ट न हो। अस्तु, जब प्रभंजन ने अपने पुत्र को इस प्रकार पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखा, तो वह उसे मरा हुआ जान कर, अत्यन्त विलाप करने लगा। उस समय भगवान् सदाशिव ने आकाशवाणी द्वारा उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"हे प्रभंजन ! तुम इतने व्याकुल मत होओ। हम तुम्हें एक उपाय बतलाते हैं, जिसे करने से तुम देवताओं से अपना बदला ले सकोगे और वे तुम्हारी शरण में स्वयं आ पहुँचेंगे। वह उपाय यह है कि तुम सब ओर से अपने अंश को खींच लो अर्थात् वायु का बहना बन्द कर दो।"

हे नारद ! इस आकाशवाणी को सुनकर प्रभंजन ने तीनों लोकों से अपने अंश को खींच लिया और स्वयं शिवजी के समीप जा कर आनन्द से बैठ गया। उस समय वायु के स्थिर हो जाने से सब देवताओं के उदर फूल गये तथा सभी प्राणी श्वास के अभाव में व्याकुल होने लगे। तब मैं उन सब को साथ लेकर विष्णु जी के समीप क्षीर समुद्र में जा पहुँचा और उनसे कहा—"हे प्रभो ! शिवजी से प्रेरणा पा कर वायु ने ऐसा उपद्रव मचाया है कि उससे सम्पूर्ण संसार व्याकुल हो गया है। अब हम सब लोगों को शिवजी की शरण में पहुँच कर उनसे रक्षा करने की प्रार्थना करनी चाहिए।"

हे नारद ! विष्णु जी हमारी इस बात से सहमत हुए। तब हम सब देवता उन्हें साथ लेकर शिवजी के समीप जा पहुँचे और उन्हें सब हाल सुनाकर, नतमस्तक हो, खड़े हो गए। शिवजी ने हम लोगों की प्रार्थना सुनकर यह कहा—"हे देवताओ ! यह बालक मेरे अंश से उत्पन्न हुआ है और पवन का पुत्र है। इन्द्र ने अपनी मूर्खता में भर उसके ऊपर अपने वज्र का प्रहार किया, यह उचित नहीं है। अब तुम्हें यह चाहिए कि सर्वप्रथम वायु देवता की प्रसन्नता के हेतु कोई उपाय करो। जब तक वायु प्रसन्न नहीं होंगे, तब तक तुम्हारा मनोरथ सिद्ध नहीं होगा।"

शिवजी की इस आज्ञा को सुनकर सब देवताओं ने वायु से क्षमा मांगी तथा उसे प्रसन्न किया। तदुपरान्त सब लोग शिवजी को साथ लेकर उस बालक के समीप जा पहुँचे। शिवजी की कृपा दृष्टि पड़ते ही वह बालक चैतन्य हो कर उठ खड़ा हुआ। प्रभंजन का दुःख भी दूर हो गया।''

ॐ ॐ ॐ

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! सर्वप्रथम विष्णु जी ने पवन की ओर देखते हुए यह वर दिया कि तुम्हारा पुत्र अत्यन्त शक्तिशाली हो कर, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं का कार्य करेगा तथा सब के दुःखों को दूर करेगा। तदुपरान्त मैंने कहा—''हे प्रभंजन ! यह तीनों लोकों में निर्भय होगा तथा सब के दण्ड से बचा रहेगा।'' फिर सूर्य ने कहा—''हे वायु ! तुम्हारे इस पुत्र के शरीर पर भविष्य में वज्र भी अपना कोई प्रभाव नहीं दिखा सकेगा। हमारा वज्र लगने के कारण इसकी हनु अर्थात् ठुड्डी पर चोट लगी है, अस्तु इसका नाम हनुमान होगा।'' सभी देवताओं ने कहा—''इसे हमारे शस्त्रों से कोई भय नहीं होगा।''

हे नारद ! इस प्रकार सब देवताओं ने उसे वरदान दिया, उस समय ऋषि-मुनि ने आशीर्वाद देते हुए कहा—''हे पवन ! तुम्हारा यह पुत्र ऊर्ध्वरता होगा। रामदूत के नाम से प्रसिद्ध हो कर, सब के दुःख को दूर करेगा।'' मुनियों के ऐसे वचन सुनकर विष्णु जी ने, मैंने तथा अन्य सब लोगों ने हनुमान को अपने हृदय से लगा लिया। सभी ने पवन-पुत्र की अत्यन्त प्रशंसा की तथा स्तुति करते हुए जय जयकार किया। उस समय शिवजी ने सब लोगों को सम्बोधित करते हुए यह कहा—''हे देवताओ तथा ऋषियो ! रामचन्द्र जी का कार्य करने के लिए हमने यह बानर का अवतार लिया है। शिवजी पवन से बोले—''हे वायु ! हम तुम्हारे पुत्र की हर समय रक्षा करेंगे।'' इतना कह कर शिवजी तथा अन्य सब देवता अन्तर्धान हो गये।''

ॐ ॐ ॐ

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! सब देवताओं के अन्तर्धान हो जाने पर वायु हनुमान को गोद में उठा कर अन्जनी के पास ले गया तथा उन्हें अन्जनी की गोद में देकर, सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय अञ्जनी ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर हनुमान को अपने स्तनों से दूध पिलाया तथा केशरी ने भी अत्यन्त आनन्द मनाया। उनकी बाल-लीलाओं को देखकर अंजनी तथा केसरी अत्यन्त प्रसन्न रहा करते थे। कुछ दिनों में ही हनुमान इतने बलिष्ठ हुए कि वे कभी पृथ्वी से उड़कर आकाश में चले जाते और कभी वायु तथा सूर्य के पास जा कर खेला करते थे। कभी वे आकाश गंगा में स्नान कर, उसमें अपनी पूँछ को इस प्रकार फटकारते थे कि वह पृथ्वी पर आ जाती थी। उनके ऐसे चरित्रों को देखकर देवता तथा मुनि अत्यन्त आश्चर्य किया करते थे।

हे नारद ! एक दिन हनुमान मुनियों के आश्रम में गये, परन्तु उन्हें कोई पहचान न सका। उस समय सब ऋषि-मुनि उनके पराक्रम को देखकर यह विचार करने लगे कि भला यह अपार बलशाली बालक किसका पुत्र है? जब इसकी अभी से यह दशा है तो आगे चलकर यह न जाने क्या करेगा? अस्तु, उन ऋषि-मुनियों ने परस्पर यह निश्चय किया कि हम इसे ऐसा शाप दें जिसके कारण यह अपना बल भूल जाये और हमें किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचा सके। अतः मुनियों ने हनुमान को यह शाप दिया—"हे मूर्ख बानर-पुत्र ! तुझे अपनी शक्ति पर इतना अहंकार है कि तू उचित-अनुचित का कोई विचार नहीं करता। हम तुझे यह शाप देते हैं कि तू अपने बल को भूल जाएगा और जब तक कोई तुझे याद नहीं दिलायेगा, तब तक तेरी सामर्थ्य प्रकट न हुआ करेगी।"

हे नारद ! मुनियों के इस शाप पर हनुमान ने कोई विचार नहीं किया, परन्तु तभी यह आकाशवाणी हुई—"हे मुनियो ! तुमने हनुमान को ऐसा शाप देकर अच्छा नहीं किया। यह साक्षात् शिवजी के

अवतार हैं और रामचन्द्र जी का कार्य करने के निमित्त प्रकट हुए हैं। अब बताओ कि विष्णु जी के कार्य को कौन कर सकेगा? तुम्हें उचित है कि अपने इस शाप का शीघ्र खण्डन करो, अन्यथा तीनों लोक दुःखी हो जायेंगे।'' हे नारद ! इस आकाशवाणी को सुनकर मुनियों ने हनुमान जी के वास्तविक रूप को पहचाना। तब उन्होंने उनकी बहुत प्रार्थना करते हुए यह कहा—''हे शिवजी के अवतार हनुमान जी ! आप हमारे अपराध को क्षमा करें। अब हम अपने शाप को इस प्रकार खण्डन करते हैं कि जब तक आपकी भेंट रामचन्द्र जी से न होगी, तब तक आप अपने बल को भूले रहेंगे। अब आप सूर्य के पास जा कर विद्या सीखें। इससे आपका तथा आपके द्वारा सम्पूर्ण संसार का कल्याण होगा।''

हे नारद ! मुनियों की यह बात सुनकर हनुमान अपने माता-पिता के समीप लौट आये और उन्हें सब हाल कह सुनाया। तदुपरान्त वे उनसे आज्ञा प्राप्त कर, सूर्य के समीप जा, विद्या पढ़ने लगे। कुछ दिनों में जब वे सम्पूर्ण विद्याओं में पारंगत हो गये। तब उन्होंने सूर्य से गुरु दक्षिणा माँगने के लिए कहा। उस समय सूर्य ने उन्हें शिवजी का अवतार जानकर स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—''हे हनुमान ! मैं आपके मुख्य स्वरूप को जानता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि आप पम्पापुर में जा कर रहें। वहाँ बालि तथा सुग्रीव नामक दो भाई रहते हैं। उनमें सुग्रीव मेरा पुत्र है। आपको उचित है कि आप पम्पापुर में रह कर सुग्रीव का पक्ष लें। वहीं आपकी भेंट रामचन्द्र जी से हो जायेगी। मुझे यही गुरु दक्षिणा चाहिए और यही आप मुझे देने की कृपा करें।'' सूर्य के मुख से यह वचन सुनकर हनुमान 'एवमस्तु' कह कर अपने माता-पिता के पास लौट आये और उन्हें सब वृत्तान्त कर सुनाया। अंजनी एवं केशरी ने कहा—''अब तुम अपने गुरु की आज्ञा पालन करने के निमित्त पम्पापुर में जा कर रहो; क्योंकि जिस कार्य के लिए तुम्हारा अवतार हुआ है, वही कार्य करना तुम्हें सब प्रकार से उचित है। माता-पिता के ऐसे वचन सुनकर हनुमान को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।''

ॐ ॐ ॐ

तैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! माता-पिता की आज्ञा पा, उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त हनुमान पम्पापुर को चल दिये। कुछ देर बाद वे पम्पापुर में पहुँचे। वहाँ जा कर जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सुग्रीव अपने घरेलू-विवाद के कारण ऋष्यमूक पर्वत पर जा कर रहने लगे हैं, तो वे वहीं चले गये तथा सुग्रीव के साथ रहने लगे। जिस समय सीता के वियोग से दुःखी रामचन्द्र और लक्ष्मण उस पर्वत के समीप पहुँचे, तब वे अगवानी करके उन दोनों को सुग्रीव के पास ले आये और उनमें मित्रता स्थापित करायी। तदुपरान्त उन्होंने रामचन्द्र जी के हाथों से बालि का वध कराया। फिर सीता को ढूँढने के लिए समुद्र को लाँघ कर लंका में पहुँचे। सब दैत्यों को मार कर, अक्षय कुमार का संहार किया तथा लंकापुरी को इस प्रकार जलाया कि उसमें विष्णु भक्तों के घर तो जलने से बच गये, परन्तु राक्षसों के सब घर भस्म हो गये। तदुपरान्त रावण के अहंकार को नष्ट करके, वे अपने साथी वानरों के समीप आ पहुँचे और उन्हें सब हाल कह सुनाया।

हे नारद ! हनुमान के ऐसे पराक्रम को देखकर रामचन्द्र जी ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—"हे हनुमान ! तुम शिवजी के अवतार तथा हमारे परमहितैषी हो। सुग्रीव आदि सभी वानरों ने उन्हें शिवजी का अवतार जान कर प्रणाम किया। जब हनुमान जी ने यह देखा कि रामचन्द्र जी हमें शिवजी का अवतार समझकर आज्ञा देने में संकोच करेंगे तो उन्होंने ऐसी माया की कि सब लोग यह बात भूल गये कि हनुमान शिवजी के अवतार हैं। केवल इतना ही ध्यान रहा कि ये अत्यन्त बलवान् हैं। तदुपरान्त रामचन्द्र जी ने हनुमान को अपने हृदय से लगा लिया और उनकी अत्यन्त प्रशंसा करते हुए कहा—"हे कपि ! हमें तुम्हारा बड़ा भरोसा है। इसके पश्चात् रामचन्द्र जी ने लंका जाने की तैयारी की और अपनी सेना सहित समुद्र तट पर जा पहुँचे। जिस समय सब लोग समुद्र के विस्तार को देख कर अत्यन्त आश्चर्यचकित

हो कर यह विचार करने लगे कि इसे किस प्रकार पार किया जा सकेगा, उस समय हनुमान जी ने सब के देखते-देखते ही समुद्र पर सेतु बाँध कर तैयार कर दिया। तब रामचन्द्र जी ने उस स्थान पर शिवलिंग की स्थापना की, जिसका नाम रामेश्वर रखा। उसी सेतु-मार्ग द्वारा रामचन्द्र जी अपनी सम्पूर्ण सेना सहित समुद्र को पार कर रावण की लंका में जा पहुँचे।

हे नारद ! राम और रावण में घोर युद्ध हुआ। उसमें हनुमान जी ने अकेले ही बहुत-सी दैत्य-सेना को मार गिराया तथा रामचन्द्र जी की सेना की रक्षा की। जिस समय मेघनाद द्वारा शक्ति का प्रहार किये जाने पर लक्ष्मण घायल हुए, उस समय सुषेण नामक वैद्य ने यह बताया था कि यदि रात भर में ही औषधि नहीं आयी तो लक्ष्मण के प्राण नहीं बचेंगे। उस समय हनुमान सब दैत्यों को जीत कर औषधि के पर्वत को रात ही रात में उठा लाये और लक्ष्मण को जीवित कर दिया। उन्होंने रामचन्द्र जी की इस प्रकार सहायता की कि रावण का सम्पूर्ण तेज नष्ट हो गया। जिस समय अहिरावण राम तथा लक्ष्मण को पकड़ कर पातालपुरी में ले गया। उस समय रामचन्द्र जी द्वारा स्मरण किये जाने पर हनुमान ने पातालपुरी में पहुँच कर, अहिरावण की भुजा उखाड़ी और रामचन्द्र तथा लक्ष्मण की प्राण-रक्षा की। रावण को जीत कर रामचन्द्र जी जब सीता को लेकर अयोध्या लौटे तो उस समय हनुमान जी उनके साथ अयोध्या जा पहुँचे और जब तक रामचन्द्र जी इस लोक में रहे, तब तक उनकी सेवा में संलग्न रहे। इस प्रकार हनुमान जी ने अनेक चरित्र करके दैत्यों का वध किया तथा भक्तों को आनन्द पहुँचाया। इस चरित्र को जो कोई सुनता है, उसे दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।''

ॐ ॐ ॐ

चौवालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब तुम वेश्यानाथ अवतार का वृत्तान्त सुनो। प्रसिद्ध नन्दीग्राम में महानन्दा नामक एक वेश्या रहती

थी। वह शिवज़ी की भक्ति में अत्यन्त चतुर थी। प्रतिदिन भस्म लगाती, आभूषणों के स्थान पर रुद्राक्ष पहनती तथा शिवजी के यश का वर्णन किया करती थी। उसके घर में एक बन्दर तथा एक कुत्ता पले हुए थे। वह उन दोनों को भी रुद्राक्ष पहनाती थी।

हे नारद ! कुछ समय बीतने पर शिवजी उस वेश्या की सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब वे उसकी परीक्षा लेने के निमित्त वेश्यानाथ का स्वरूप धारण कर, मस्तक पर त्रिपुण्ड लगा कर, आभूषणों के बदले रुद्राक्ष पहन, जयशिव-जयशिव उच्चारण करते हुए, उस महानन्दा नामक वेश्या के घर जा पहुँचे। महानन्दा ने उन वेश्यानाथरूपी शिवजी को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने घर में ठहराया। तदुपरान्त उसने शिवजी के हाथ में जड़ाऊ कंकण देखकर, उन्हें प्राप्त करने की इच्छा से यह कहा—"तुम्हारे हाथ के कंकण स्त्रियों के पहनने योग्य हैं; अस्तु तुम इन्हें मुझे दो।" यह सुनकर वेश्यानाथ ने उत्तर दिया—"तुम हमें इन कंकणों का क्या मूल्य दोगी?" महानन्दा बोली—"हमारे कुल में व्यभिचार को पाप नहीं माना जाता, अपितु उसे कुल-धर्म कहा गया है। यदि तुम यह कंकण मुझे दे दोगे तो मैं तीन रात तक तुम्हारी स्त्री बन कर, तुम्हारे साथ विहार करूँगी।" महानन्दा की बात सुनकर वेश्यनाथ ने हँसते हुए कहा—"हे महानन्दा ! हमें तुम्हारी यह बात स्वीकार है, तुम इस कंकण को ले लो।"

हे नारद ! महानन्दा ने यह बात स्वीकार कर ली। तब वेश्यानाथ ने उसे अपना कंकण दे दिया। तदुपरान्त उन्होंने एक रत्नजटित स्वर्णलिंग महानन्दा को और देते हुए कहा—"हे महानन्दा ! अब तुम तीन दिन के लिए हमारी स्त्री हो चुकी, अस्तु-हम तुम्हें यह स्वर्णलिंग देते हैं। तुम उनकी भली-भाँति रक्षा करना। यह स्वर्णलिंग हमें प्राणों से अधिक प्रिय है। यदि किसी प्रकार खो गया अथवा नष्ट हो गया तो हमारे प्राण शरीर को छोड़ देंगे।" महानन्दा ने इस बात को स्वीकार कर, उस स्वर्णलिंग को ले लिया और अपने शिवालय में यत्नपूर्वक स्थापित कर दिया। तदुपरान्त वह श्रृंगार करके आधी रात तक शिवजी

के साथ वार्तालाप करती रही। उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि अचानक ही अग्नि उत्पन्न हो कर उस शिवमन्दिर को जलाने लगी। वायु ने भी अत्यन्त वेग से चल कर उस अग्नि को बढ़ाने में सहयोग दिया। परिणामस्वरूप वह शिवलिंग, जो वेश्यानाथ ने महानन्दा को सौंपा था, जल कर भस्म हो गया। यद्यपि यह आश्चर्य रहा कि कुत्ता और बन्दर, जो कि शिवालय में बैठे थे, उस अग्नि की लपटों से किसी प्रकार जीवित बच गये।

हे नारद ! यह दृश्य देखकर वेश्यानाथ तथा महानन्दा अत्यन्त दुःखी हुए। उस समय वेश्यानाथ ने अपने नेत्रों में जल भर कर इस प्रकार कहा—"हे महानन्दा ! हमने पहले ही तुमसे कहा था कि यदि यह मूर्ति किसी प्रकार खो गयी अथवा नष्ट हो गयी तो हमारे प्राण बचने कठिन हैं। अब जब हमारे स्वामी ही अग्नि में जल कर भस्म हो गये तो हमारा जीवित रहना भी व्यर्थ है। इस समय यदि ब्रह्मा और विष्णु भी हमें मना करेंगे तो हम अपने प्राण त्यागे बिना न रहेंगे।" वेश्यानाथ के इस हठ को देखकर महानन्दा अत्यन्त लज्जित तथा व्याकुल हुई। तब उसने रोते-पीटते हुए एक चिता तैयार करायी। वेश्यनाथ बस चिता में अग्नि जला कर सब के देखते-देखते बैठ गये। उस समय महानन्दा ने सब लोगों को बुला कर इस प्रकार कहा—"हे महानुभावो ! मैं तीन दिन के लिए इस व्यक्ति की स्त्री बनी थी और मैंने इससे कंकण लेकर यह प्रतिज्ञा की थी कि तीन दिन तक मैं तुम्हें अपना पति समझूँगी, परन्तु आज दूसरे ही दिन मेरा पति अग्नि में जला जा रहा है, इसलिए मैं भी अपने धर्म को स्थिर रखने के लिए, इसके साथ सती हो कर अपने प्राण त्याग दूँगी। आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें।"

हे नारद ! महानन्दा की बात सुनकर उसके भाई-बन्धुओं ने बहुत मना किया, परन्तु वह किसी प्रकार नहीं मानी। तदुपरान्त अपने सब धन ब्राह्मणों को दान कर दिया और शिवजी का स्मरण करके उस चिता की तीन परिक्रमा कीं। फिर जैसे ही उसने यह चाहा कि मैं चिता

में प्रवेश करूँ उसी समय शिवजी अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो कर, उसके सम्मुख खड़े हो गये। इस चमत्कार को देख कर महानन्दा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस समय शिवजी ने उसका हाथ पकड़ कर हँसते हुए यह कहा—"हे महानन्दा ! तुम्हारे ऐसे भक्ति भाव तथा धार्मिकता को देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हमसे माँग लो।" यह सुनकर महानन्दा ने उत्तर दिया—"हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके मुझे अपने चरणों की भक्ति प्रदान कीजिये तथा मुझे कुल-परिवार सहित मोक्ष प्रदान कर, अपने लोक में स्थान दीजिये। महानन्दा के ऐसे भक्तिपूर्ण वचनों को सुनकर शिवजी ने अपने गणों का स्मरण किया। वे उसी समय विमान लेकर आ पहुँचे। तब शिवजी ने महानन्दा को उसके सम्पूर्ण परिवार सहित विमान पर बैठाया और बड़ी धूमधाम से उसे अपने लोक में भेज दिया। यह पवित्र कथा सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाली तथा दोनों लोकों में आनन्द प्रदान करने वाली है। यह सब प्रकार की चिन्ताओं को दूर कर, पाठक की सम्पूर्ण मनोभिलाषाओं को पूर्ण करती है।"

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब मैं द्विजेश अवतार की कथा का वर्णन करता हूँ। जिस प्रकार शिवजी ने राजा भद्रायुष की रक्षा के हेतु ऋषभ अवतार धारण किया था। उसी राजा भद्रायुष की परीक्षा लेने के हेतु शिवजी ने दूसरी बार द्विजेश अवतार ग्रहण किया था। शिवजी अहंकार को नष्ट करने वाले तथा अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। वे अनेक प्रकार के स्वरूप धारण कर भक्तों का पालन करते हैं तथा शत्रुओं का संहार करते हैं। तीनों लोकों में शिवजी के समान श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। सभी वेद तथा पुराण शिवजी को सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी कह कर पुकारते हैं।

हे नारद ! राजा भद्रायुष शिवजी का अनन्य भक्त था। ऋषभ अवतार की कृपा से उसने स्वयं को वन्दी से छुड़ाया तथा शत्रुओं को जीत कर पुनः अपना राज्य प्राप्त किया। उसका विवाह राजा चन्द्रांगद की पुत्री कीर्त्तिमालिनी के साथ हुआ था। एक दिन वह अपनी पत्नी सहित शिकार खेलने के हेतु वन में गया। वहाँ वह वसंत ऋतु पर्यन्त ठहर कर, रुचिपूर्वक विहार करता रहा। उस समय शिवजी ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। तब शिवजी ने यह चरित्र किया कि वे स्वयं एक ब्राह्मण बन गये तथा गिरजा को ब्राह्मणी बना लिया। तदुपरान्त वे उसी वन में जा कर स्थित हो गये, जहाँ राजा भद्रायुष अपनी पत्नी सहित ठहरा हुआ था। फिर उन्होंने एक माया का सिंह उत्पन्न किया, जो घोर गर्जना करके उन दोनों को खाने के लिए दौड़ा। उस समय वे ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी रूपी शिव-गिरिजा उस सिंह के भय से भागते हुए राजा भद्रायुष के समीप जा पहुँचे और प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे राजन् ! देखो, यह सिंह हम दोनों को खाना चाहता है। तुम इससे हमारी रक्षा करो।" उनकी प्रार्थना सुनकर राजा भद्रायुष ने अपना धनुष उठाया। वह अपना धनुष ठीक चढ़ाने भी न पाया था कि उसी समय सिंह ने आकर ब्राह्मणी को पकड़ लिया और उसे सब के देखते-देखते ही खा गया। यद्यपि राजा ने उसके ऊपर अपने बहुत-से बाण चलाये, परन्तु सिंह को उनसे किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचा।

हे नारद ! उस समय ब्राह्मण रूपी शिवजी ने संसारी रीति के अनुसार अपनी पत्नी की मृत्यु का शोक मनाते हुए राजा भद्रायुष से इस प्रकार कहा—"हे राजन् ! तुझे सहस्त्रों बार धिक्कार है। तेरा तेज आज कुछ भी प्रभाव नहीं दिखा सका। जब तू अपने कुल-धर्म का पालन नहीं कर सकता, तो तेरा मनुष्य जन्म लेना व्यर्थ है। इस प्रकार की अनेक बातें ब्राह्मणरूपधारी शिवजी ने राजा भद्रायुष से कहीं, जिन्हें सुनकर वह अत्यन्त लज्जित तथा व्याकुल हुआ। तब वह अपने मन में यह सोचने लगा कि वास्तव में मुझसे यह बहुत बड़ा अधर्म हुआ, जो मैं इस ब्राह्मण की स्त्री की रक्षा करने में असमर्थ रहा हूँ। इस

पाप से मुक्ति पाने के हेतु अब यदि मुझे अपने प्राण भी दे देने पड़ें तो भी उचित है। मुझे इस ब्राह्मण की प्रसन्नता के हेतु कोई-न-कोई उपाय अवश्य करना चाहिए।

हे नारद ! इस प्रकार अपने मन में सोचकर राजा भद्रायुष ने ब्राह्मण वेषधारी शिवजी के चरणों पर गिरकर यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! अब आप मुझ पर कृपा करके जो चाहें, वह ले लीजिए। मैं अपना सम्पूर्ण राज्य तथा स्त्री आपको अर्पण करता हूँ और स्वयं भी आपकी सेवा करने के हेतु प्रस्तुत हूँ।" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—हे राजन् ! जब मेरी स्त्री ही नहीं रही, तो मैं तुम्हारा राज्य लेकर क्या करूँगा? अब मैं यह चाहता हूँ कि तुम मुझे अपनी स्त्री दे दो, जिससे मेरे हृदय का दुःख दूर हो। ब्राह्मण के ऐसे वचन सुनकर राजा ने कहा—"हे ब्राह्मण ! क्या तुम्हारे गुरु ने यही उपदेश दिया है? क्या तुमने परायी स्त्रियों के साथ भोग करने वालों की दुरदशा को अपनी आँखों से नहीं देखा है? यह सुनकर ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! हम में इतनी सामर्थ्य है कि ब्राह्मण का वध करने से जो पाप लगता है, उसे भी हम दूर कर सकते हैं, फिर परायी-स्त्री के साथ भोग करना तो इतना बड़ा पाप भी नहीं है।

हे नारद ! यह सुनकर राजा ने अपने मन में अत्यन्त भयभीत हो, यह विचार किया कि संसार में ब्राह्मण की रक्षा न करने के समान बड़ा पाप अन्य कोई नहीं है, स्त्री का दान कर देने के उपरान्त मैं स्वयं भी अग्नि में जल कर भस्म हो जाऊँगा; क्योंकि उसके बिना मेरा जीना व्यर्थ है। इस प्रकार निश्चय करके राजा भद्रायुष ने अपनी पत्नी ब्राह्मणरूपी शिवजी को दान कर दी। उसने अग्नि प्रज्वलित कर, प्रदक्षिणा करने के उपरान्त, जैसे ही यह चाहा कि मैं अग्नि में जल कर भस्म हो जाऊँ, वैसे ही शिवजी अपने मुख्य लक्षणों सहित उसके सम्मुख प्रकट हो गये। उन्हें देखकर राजा भद्रायुष को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उस समय आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। राजा भद्रायुष ने प्रसन्न हो कर शिवजी की बड़ी स्तुति की। शिवजी ने राजा से इस

प्रकार कहा—"हे राजन् ! हमने तुम्हारी परीक्षा के निमित्त ही ब्राह्मण का स्वरूप धारण किया था। जिस स्त्री को सिंह ने खाया है, वे गिरिजा हैं। अब तुम्हें कोई सन्देह नहीं करना चाहिए। तुम हमारे परम भक्त हो, अस्तु तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हमसे माँग लो।"

हे नारद ! राजा भद्रायुष ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा—"हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न ही हैं तो मैं यह वर माँगता हूँ कि आप मुझे सम्पूर्ण कुल सहित अपना गण बना लें; जिससे मैं सदैव आपकी सेवा में प्रवृत्त रहूँ। इसके साथ ही आप यह भी कृपा करें कि मैं इसी शरीर से आपके लोक में पहुँच जाऊँ। जब राजा भद्रायुष इस प्रकार कह चुका, तब रानी ने यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! मैं यह चाहती हूँ कि मेरे माता-पिता भी आपकी सेवा में अवश्य पहुँचें। यह सुनकर शिवजी उन दोनों को इच्छित वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। तब राजा भद्रायुष अपनी राजधानी लौट आया। वहाँ बहुत दिनों तक आनन्दपूर्वक राज्य करने के उपरान्त वह अपनी पत्नी, माता-पिता, पुत्र तथा सास-श्वसुर सहित शिवलोक में चला गया। इस चरित्र को जो कोई पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भी शिवलोक प्राप्त होता है।"

ॐ ॐ ॐ

छियालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब मैं तुम्हें जितनाथ अवतार का वृत्तान्त सुनाता हूँ। अर्बुदाचल पर्वत पर एक भील अपनी पत्नी सहित निवास करता था। वह शिवजी का परमभक्त था। एक दिन वह भील अपनी स्त्री को घर में छोड़ कर आजीविका के निमित्त कहीं बाहर चला गया। उसी दिन संध्या को शिवजी भी परीक्षा लेने के हेतु एक यती का स्वरूप धारण कर, उसके घर जा पहुँचे। भील भी कुछ देर बाद घर लौट आया और यती को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने प्रणाम आदि करने के उपरान्त यती का पूजन किया और यह कहा कि आप मुझे कोई सेवा बताने की कृपा करें। उस समय यतीरूप शिवजी

बोले—"हे भील ! हम यहाँ रात भर रहना चाहते हैं। प्रातःकाल अपने घर चले जायेंगे।" यह सुनकर भील ने उत्तर दिया—"हे यती ! हमारा घर बहुत छोटा है, उसमें दो मनुष्यों के अतिरिक्त तीसरा नहीं रह सकता। ऐसी स्थिति में, मैं आपको किस प्रकार आश्रय दूँ?" भील का यह उत्तर सुन यती लौट कर जाने लगे। तब भील की स्त्री ने भील से यह कहा—"हे पति ! तुम यती के ठहरने के लिए स्थान दो, अन्यथा हमें बहुत पाप लगेगा। मैं यह उचित समझती हूँ कि तुम दोनों घर में भीतर रहो और मैं बाहर बनी रहूँगी।" यह सुनकर भील बोला—"हे प्रिये ! तुम ठीक कहती हो। साथ ही स्त्री का घर से बाहर रहना भी ठीक नहीं है। इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि तुम और यती घर के भीतर रहो।"

हे नारद ! यह निश्चय कर भील ने अपनी स्त्री तथा यती को घर के भीतर ठहरा दिया और स्वयं शस्त्र बाँध कर रात भर, घर के बाहर चारों ओर पहरा देता रहा। उस समय शिवजी ने यह लीला की कि एक महाभयानक सिंह अपने साथ अन्य कई सिंहों को लेकर भील के पास आ पहुँचा। भील ने उनमें से बहुत से सिंहों को अपने बाणों द्वारा मार डाला, परन्तु अन्त में, अन्य सिंहों ने उसे मार कर खा लिया। केवल इसकी हड्डियाँ ही वहाँ पड़ी रहीं। प्रातःकाल होने पर यती तथा भीलनी ने जब भील की यह दशा देखी। उस समय भीलनी ने यती को सान्त्वना देते हुए कहा—"हे यती ! तुम अपने मन में कुछ खेद मत करो। मेरे पति परम धन्य हैं, जिन्होंने ऐसी मृत्यु प्राप्त की है। अब मैं अपने पतिव्रत धर्म का पालन करके, इनके साथ सति हो जाऊँगी।"

हे नारद ! इस प्रकार कह कर भीलनी ने चिता बनायी। तदुपरान्त वह अपने पति की हड्डियों को लेकर उस चिता की अग्नि में बैठ गयी। उस समय शिवजी भीलनी से इस प्रकार कहने लगे—"हे भीलनी ! अब तेरी जो इच्छा हो, वह वर हम से माँग ले।" शिवजी के दर्शन प्राप्त कर तथा उनके मुख से यह वचन सुनकर, भीलनी आनन्दमगन हो, मूर्च्छित-सी हो गयी। उस समय उसके मुख से कोई

शब्द नहीं निकला। तब शिवजी दुबारा इस प्रकार बोले—"हे भीलनी ! हमारा यती का यह स्वरूप हंस रूप धारण कर, तुम दोनों की पुनः भेंट करायेगा। तुम दोनों पति-पत्नी दूसरा शरीर धारण कर, अत्यन्त आनन्द प्राप्त करोगे। तुम्हारा पति मगध देश में जन्म लेकर, राजा वीरसेन के पुत्र नल के नाम से प्रसिद्ध होगा और सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी बनेगा। तुम भी विदर्भ देश के राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के रूप में जन्म लोगी।"

हे नारद ! इतना कहकर शिवजी सब देवताओं सहित अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त भील ने राजा नल का जन्म लिया और भीलनी दमयन्ती बन कर प्रकट हुई। यतीरूप शिवजी ने हंस का स्वरूप धारण कर, उन दोनों का परस्पर विवाह करा दिया। नल और दमयन्ती दोनों ही बड़े शिव भक्त थे। इन दोनों द्वारा राजा इन्द्रसेन की उत्पत्ति हुई। राजा इन्द्रसेन का पुत्र चन्द्रांगद शिवजी का परमभक्त हुआ। चन्द्रांगद की पत्नी का नाम सीमन्तिनी था। वह अपने पति से भी अधिक शिवजी की भक्त थी। शिवजी का यह यती अवतार परम पवित्र है। हंस अवतार की कथा भी आनन्द प्रदान करने वाली है।

ॐ ॐ ॐ

सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब मैं कृष्णदर्शन अवतार का वर्णन करता हूँ। सूर्य के पुत्र मनु के इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। मनु के नौवें पुत्र का नाम वाह्लीक था। जब वह अपने गुरु के घर विद्या पढ़ने के लिये गया, उस बीच में इक्ष्वाकु आदि उसके अन्य नौ भाइयों ने पिता से अलग हो कर, उनके धन को आपस में बाँट लिया। उन्होंने वाह्लीक का कोई भी हिस्सा उस धन में नहीं रखा। जब वाह्लीक विद्या पढ़कर घर लौटा और उसने सब भाइयों को अपना-अपना भाग लिये हुए देखा तो यह पूछा कि मेरे हिस्से में क्या आया है? उस समय भाइयों ने उसे यह उत्तर दिया—"हे वाह्लीक ! जिस समय हम सब लोग भाग

कर रहे थे, उस समय तुम्हारा ध्यान हमें नहीं रहा था; इसलिए अब तुम्हें पिता के धन में से कोई भाग नहीं मिल सकता। यदि तुम चाहो तो पिता को अपने भाग में ले लो।'' यह सुनकर वाह्लीक अत्यन्त आश्चर्यचकित हो, अपने पिता के पास पहुँचा और यह कहने लगा—''हे पिता ! भाइयों ने मुझे कोई भाग नहीं दिया है तथा कहा है कि मैं अपने भाग में आपको ले लूँ।''

हे नारद ! वाह्लीक की बात सुनकर मनु ने आश्चर्य में भर कर कहा—''हे पुत्र ! तुम्हारे भाइयों के वचन उचित नहीं हैं। मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं हूँ, जो तुम्हारे खाने-पीने के काम आ सके। तुम्हारे भाइयों ने तुम्हारे साथ छल किया है। परन्तु जब तुम मुझे स्वीकार कर ही रहे हो, तो भगवान् सदाशिव का ध्यान धरकर मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। वह उपाय यह है कि अंगिरस नामक मुनि एक भारी यज्ञ कर रहे हैं। उन्हें छः दिन से यज्ञ की युक्ति भूल गयी है, जिसके कारण उनका यज्ञ पूरा नहीं हो पा रहा है। अस्तु तुम वहाँ जा कर उन्हें उपदेश करो। तुम्हारे उपदेश से उनका यज्ञ पूरा हो जाएगा। तब जो धन यज्ञ करने से शेष बचेगा, उसे वे तुम्हें दे देंगे।''

हे नारद ! मनु के ऐसे वचन सुनकर वाह्लीक ने उसी प्रकार आचरण किया तथा अंगिरस मुनि के यज्ञ को दो सूक्त पढ़कर पूर्ण करा दिया। तब अंगिरस मुनि यज्ञ का बचा हुआ सब धन वाह्लीक को देकर, स्वयं वैकुण्ठ लोक को चले गये। जब वाह्लीक उस धन को उठाने लगा, उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि वे अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण कर कृष्ण-दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हो, वाह्लीक की परीक्षा लेने के लिए उसके समीप आ पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे—''अरे तुम कौन बुद्धिहीन मनुष्य हो, जो हमारे धन को इस प्रकार ले रहे हो? हमारे विरुद्ध आचरण करने पर तुम्हारा कल्याण न होगा।'' शिवजी के ऐसे वचन सुनकर वाह्लीक ने कहा—''हे महानुभाव ! मैं अपने पिता की आज्ञा से यहाँ आया हूँ। अंगिरस मुनि ने वैकुण्ठ जाते समय यज्ञ से बचे हुए इस धन को मुझे दिया है।'' वाह्लीक के ऐसे वचन सुनकर कृष्ण-

दर्शन-रूप शिवजी ने उत्तर दिया—"वाह्लीक ! तुम्हारे पिता अत्यन्त धर्मवान् हैं, अस्तु, तुम उनके पास जा कर पूछो कि वह धन किसे लेना चाहिए। वे जो बात कहेंगे, उसे हम भी स्वीकार कर लेंगे।"

हे नारद ! यह सुनकर वाह्लीक मनु के पास आया और उनसे इस प्रकार बोला—"हे पिता ! अंगिरस मुनि तो मुझे धन देकर वैकुण्ठ लोक को चले गये, परन्तु उत्तर दिशा से आया हुआ एक मनुष्य मुझे वह धन नहीं लेने देता। उसका कहना है कि यह मेरा धन है। अस्तु, तुम इसे नहीं ले सकते। जब उसके पूछने पर मैंने अपना नाम बताया तो उसने यह कहा कि तुम अपने पिता के पास जा कर पूछो। इस सम्बन्ध में वे जो कहेंगे, मैं उसे स्वीकार कर लूँगा। अस्तु, मैं आप से यह पूछने आया हूँ कि अब मुझे क्या करना चाहिए?" यह सुनकर मनु ने आश्चर्य में भर कर शिवजी का ध्यान किया तो उन्हें यह जान पड़ा कि कृष्ण-दर्शन रूप में शिवजी हैं। तब उन्होंने वाह्लीक से कहा, "हे पुत्र ! जो व्यक्ति तुम्हें धन लेने से रोक रहा है, वह अन्य कोई नहीं; अपितु साक्षात् सदाशिव हैं। यज्ञ की जो सामग्री शेष बच जाती है, उस पर भगवान् सदाशिव का ही अधिकार होता है। इस समय वे तुम्हारे ऊपर कृपा करके, तुम्हें दर्शन देने के लिए पधारे हैं। तुम्हें उचित है कि तुम उनके पास जाओ और अपनी सेवा द्वारा उन्हें प्रसन्न करो। मैं भी तुम्हारे साथ चलकर उन परमप्रभु के दर्शन करूँगा।"

हे नारद ! इस प्रकार वाह्लीक को समझाकर, मनु उसे साथ लेकर शिवजी के समीप जा पहुँचे। उस समय वाह्लीक ने हाथ जोड़ कर विनय करते हुए कृष्ण-दर्शन से इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! मेरे पिता ने आपको पहचान लिया है। आप साक्षात् भगवान् सदाशिव हैं।" इसी प्रकार वाह्लीक के पिता श्राद्धदेव मनु ने भी हाथ जोड़ कर कृष्ण-दर्शन रूप शिवजी की बहुत प्रार्थना की। उसी समय मैं तथा विष्णु जी सब देवताओं सहित उस स्थान पर जा पहुँचे तथा भगवान् सदाशिव के उस स्वरूप को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो, स्तुति करने लगे। तब कृष्ण-दर्शन रूपी शिवजी ने वाह्लीक से इस प्रकार कहा—

''हे वाह्लीक ! तुम्हारी सत्यता को देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अब हम तुम्हें सम्पूर्ण धन अपनी ओर से देते हैं। तुम इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो। हम तुम्हें यह भी वरदान देते हैं कि तुम अपने पिता सहित मुक्ति को प्राप्त करोगे।'' इतना कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त सब देवता भी वाह्लीक को आशीर्वाद देकर अपने-अपने लोक को चले गये। शिवजी के आशीर्वाद से वाह्लीक चक्रवती राजा हुआ। अन्त में, वह अपने पिता सहित शिवपुरी को गया और वहाँ उसकी गणना शिवजी के गणों में हुई। इस चरित्र को जो कोई सुनता अथवा सुनाता है, उसे भी दोनों लोकों में आनन्द की प्राप्ति होती है।

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं भिक्षुनाथ अवतार का वृत्तान्त सुनाता हूँ। पूर्व काल में सत्यरथ नामक एक राजा शिवजी का परम भक्त हुआ। वह विदर्भ देश में राज्य करता था। एक दिन शाल्व नामक राजा ने सत्यरथ पर चढ़ाई करके उसके नगर को घेर लिया। उस समय दोनों राजाओं में घोर युद्ध हुआ, जिसमें सत्यरथ पराजित हो कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी रानी रात्रि के समय किसी प्रकार घर से बाहर निकल भागी। मार्ग में चलते-चलते जब वह थक गयी, तब एक तालाब के समीप वृक्ष के नीचे बैठ गयी। उसी दिन शुभ लग्न में उसने एक पुत्र को जन्म दि़या। कुछ देर बाद जब उसे बड़ी ज़ोर से प्यास लगी, तो वह उस तालाब के तट पर पानी पीने के लिए जा पहुँची। वहाँ उसने एक घूँट भी पानी नहीं पीया था कि तभी एक ग्राह ने उसे पकड़ कर, जल के भीतर खींच लिया।

हे नारद ! उस समय शिवजी को उस नवजात-शिशु पर बड़ी दया आयी। तभी उन्होंने ऐसी लीला की कि एक ब्राह्मण की स्त्री घूमती उस बालक के समीप आ पहुँची। उस स्त्री के साथ एक वर्ष की आयु का एक और भी बालक था। जब उसने उस स्थान पर उस बालक को

पड़ा हुआ देखा तो अत्यन्त आश्चर्य में भर कर अपने मन में यह विचार किया कि भला यह किसका बालक है? इस प्रकार विचार करने के उपरान्त जब उसने इधर-उधर बहुत दृष्टि दौड़ायी पर कोई भी स्त्री-पुरुष दिखाई नहीं दिया, तब उसने निश्चय किया कि मुझे इस बालक का अपने पुत्र के समान पालन करना चाहिए, परन्तु जब तक इसके कुल का हाल ज्ञात न हो जाए, तब तक इसे हाथ लगाना उचित नहीं है।

हे नारद ! ब्राह्मणी को ऐसी चिन्ता में पड़े देखकर शिवजी एक भिक्षुक का रूप बनाकर वहाँ प्रकट हो गये और उस ब्राह्मणी से बोले—"हे ब्राह्मणी ! तुम अपने मन में किसी प्रकार का सन्देह मत करो। इसका पालन करने से तुम्हें सब प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा।" यह सुनकर उस स्त्री ने प्रसन्न हो कर कहा—"हे महानुभाव ! मैं यह चाहती हूँ कि आप मुझे इसके जन्म तथा कर्म का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना देने की कृपा करें।"

हे नारद ! ब्राह्मणी के ऐसे वचन सुनकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—"हे ब्राह्मणी ! यह विदर्भ देश के राजा सत्यरथ का पुत्र है। इसके पिता को राजा शाल्व ने युद्ध में मार डाला। तब इसकी माता वन में भाग कर चली आयी। इस बालक को जन्म देने के उपरान्त जब वह पानी पीने के लिए तालाब पर गयी, तब एक ग्राह ने उसे पकड़ कर पानी में खींच लिया और खा गया। अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण ही इसे ऐसा दुःख भोगना पड़ा है। अब तुम इसका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो।" शिवजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर उस ब्राह्मणी ने अत्यन्त आश्चर्य में भर कर कहा—"हे प्रभो ! आप मुझे इस बालक के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाने की कृपा करें। मैं तथा मेरा यह बालक भी अत्यन्त दरिद्र हैं, इसका कारण क्या है? कृपा करके यह भी बताइये।"

हे नारद ! ब्राह्मणी की बात सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे ब्राह्मणी ! पूर्व जन्म में इस बालक का पिता माण्डव्य देश का राजा

था, जो कि दक्षिण दिशा में बसा हुआ है। वह हमारा परम भक्त तथा सदैव प्रदोष-व्रत धारण किया करता था। एक दिन वह राजा प्रदोष-व्रत किये हुए शिवजी का पूजन कर रहा था। उसी समय उसे नगर के बीच में बड़ा कोलहाल सुनायी दिया। राजा उस शब्द को सुनकर हमारा पूजन त्याग, बीच में ही उठकर चल दिया। उधर से मन्त्री उस शत्रु को पकड़ कर अपने साथ ला रहा था, जिसने नगर में आ कर उपद्रव मचा दिया था। राजा के समीप आ कर मन्त्री ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा तथा शत्रु को उसके सामने उपस्थित कर दिया। उस समय राजा ने अत्यन्त क्रोध में भर कर उस मनुष्य का सिर अपने हाथ से काट डाला। तदुपरान्त वह उसी अवस्था में लौट कर हमारा पूजन त्याग, भोजन करने बैठ गये। उसके पुत्र ने भी धर्म का पालन नहीं किया। इसीलिए इस जन्म में वह राजा विदर्भ देश का राजा बन कर शाल्व के हाथों से मारा गया है। तुम्हारे सामने जो बालक पृथ्वी पर पड़ा हुआ है, यह उसी का पुत्र है। इसकी माता का, जिसे कि ग्राह ने खा लिया है, वृत्तान्त यह है कि पूर्व जन्म में वह सत्यरथ की रानी थी। वहाँ उसने अपनी सौत को धोखा देकर मार डाला था। तुम्हारे पुत्र का यह वृत्तान्त है कि यह अपने पिछले जन्म में ब्राह्मण था। वहाँ इसने अपना सम्पूर्ण जीवन दान लेते ही बिताया, परन्तु किसी को अपनी ओर से कुछ नहीं दिया। इस कारण यह इस जन्म में दरिद्र हुआ है। अब शिवजी के पूजन से कल्याण होगा।''

हे नारद ! इतना कह कर शिवजी ने उसी ब्राह्मणी को अपने मुख्य स्वरूप से दर्शन दिया, जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न हो कर स्तुति करने लगी। तदुपरान्त जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, तब वह बालक को उठा कर तथा अपने बालक को साथ लेकर चक्र नामक एक गाँव में आयी और वहीं रह कर उन दोनों बालकों का पालन-पोषण करने लगी। जब वे दोनों बालक कुछ बड़े हुए तो शाण्डिल्य मुनि से शिक्षा प्राप्त कर, शिवजी की भक्ति करने लगे। एक दिन जब वे दोनों महानदी में स्नान करके, शिवजी का बाना धारण किए हुए अपने घर

को लौट रहे थे, उसी समय शिवजी ने उन दोनों को अपना भक्त जान कर कृपापूर्वक यह लीला की कि उन्हें मार्ग में धन से भरा हुआ एक घड़ा प्राप्त हुआ। उस घड़े को उठा कर वे दोनों अपनी माता के पास ले आये और उसे सब हाल कह सुनाया।

हे नारद ! जब उन दोनों को शिवजी का व्रत करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया, तब शिवजी ने यह लीला की कि एक दिन उन दोनों ने वन में एक गन्धर्व की कन्या को देखा। राजा के पुत्र ने उसके समीप पहुँच कर वार्तालाप करने के उपरान्त उसके साथ अपना विवाह कर लिया। तत्पश्चात् जब वे दोनों बालक बड़े हुए तो शिवजी की कृपा से राजपुत्र ने अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। उस समय उनका नाम संसार में धर्मगुप्त प्रसिद्ध हुआ। वह ब्राह्मणी भी राजमाता बन कर आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगी। ब्राह्मण के पुत्र का नाम शुचिव्रत हुआ। उसे धर्मगुप्त ने अपना मंत्री बना लिया। शिवजी के अवतार की यह कथा अत्यन्त पवित्र तथा दोनों लोकों में आनन्द प्रदान करने वाली है। भिक्षुनाथ नामक शिवजी के अवतार का स्मरण करने से मनुष्यों के सब प्रकार के कष्ट दूर हो जाते हैं।''

ॐ ॐ ॐ

उनचासवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं निर्जरेश्वर अवतार का वृत्तान्त कहता हूँ। प्रसिद्ध तपस्वी व्याघ्रपाद मुनि के घर एक बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम उपमन्यु रखा गया। भाग्यवश मुनि को दरिद्रता ने आ घेरा, जिसके कारण वह बालक अपनी माता के घर जा कर रहने लगा। एक दिन संयोग से उसे थोड़ा-सा दूध पीने के लिए मिला। उसे पी कर उपमन्यु की यह इच्छा हुई कि हम कुछ और दूध पीयें। अस्तु, वह हठ करके अपनी माता से बार-बार दूध माँगने लगा। उसने जौ कूट कर उन्हें पानी में घोल लिया और उपमन्यु को यह कह, वह पानी पीने के लिए दिया कि वह दूध है। उपमन्यु ने उस जौ के पानी

को पी कर अपनी माता से कहा—"यह तो दूध नहीं है। तू मेरे पीने के लिए दूध ला दे।" इस प्रकार रो-रो कर अनेक बार अपनी माता से दूध माँगा। तब उसकी माता ने पिछले जन्म में शिवजी के नाम पर कुछ दान नहीं दिया, इसलिए मुझे इस जन्म में धन नहीं मिला है। तू इतने से ही अनुमान कर ले कि हम लोग वन में रहते हैं और दोनों समय खाने के लिए भोजन भी कठिनाई से प्राप्त कर पाते हैं।"

हे नारद ! माता के यह वचन सुन कर उपमन्यु को अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त हुई। तब उसने अपनी माता से यह कहा—"हे माता ! मैं शिवजी की तपस्या करके उन्हें अपने ऊपर प्रसन्न करूँगा और वरदान में क्षीर समुद्र को माँग लूँगा।" इतना कह कर उपमन्यु अपनी माता से आज्ञा ले कर हिमालय पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ वह पंचाक्षर मन्त्र का जप करते हुए, वन के फल-फूलों द्वारा शिवजी का पूजन, ध्यान एवं तप करने लगे। उस समय तीनों लोक इसकी तपस्यी की अग्नि से जलने लगे। तब मैं देवताओं की विनती सुनकर शिवजी के पास गया और प्रार्थना करने के उपरान्त उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय शिवजी ने हँस कर यह उत्तर दिया—"हे ब्रह्मन् ! उपमन्यु दूध के लिए ऐसा उग्र तप कर रहा है, अतः हम उसे वर देने के लिए अवश्य जायेंगे।"

हे नारद ! शिवजी की आज्ञा सुनकर जब मैं अपने लोक को लौट आया, तब शिवजी उपमन्यु की परीक्षा लेने के लिए इन्द्र का स्वरूप धारण कर उसके समीप जा पहुँचे। उन्होंने गिरिजा का स्वरूप शची जैसी बनाया, नन्दी को ऐरावत् हाथी का स्वरूप प्रदान किया तथा गणों को देवताओं के रूप में परिवर्तित कर अपने साथ ले लिया। इस प्रकार वे उपमन्यु के पास जा कर कहने लगे—"हे उपमन्यु ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हम से माँग लो।" यह सुनकर जब उपमन्यु ने अपने नेत्र खोल कर उन्हें देखा तो यह समझा कि मेरे सामने इन्द्र खड़े हुए हैं। अस्तु, उसने हाथ जोड़ कर यह कहा—"हे देवराज इन्द्र ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप कृपा करके मुझे शिवजी का तप करने

की शक्ति प्रदान करें। मैं शिवजी के अतिरिक्त अन्य किसी से वर नहीं मागूँगा। उपमन्यु के मुख से यह वचन सुनकर इन्द्र रूप शिवजी ने उत्तर दिया—"हे मुनि पुत्र ! हम सब देवताओं के राजा इन्द्र हैं। तू हमारी पूजा कर और जो जी चाहे, वह वरदान माँग ले। शिवजी दक्ष प्रजापति के शाप के कारण भूत-स्वरूप हैं तथा परम अशुभ वेषधारी हैं। इसीलिए अब उनका कोई वचन सत्य नहीं होता। भला, ऐसे देवता की पूजा करने से तुझे क्या लाभ हो सकेगा?"

हे नारद ! इन्द्ररूपी शिवजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर उपमन्यु ने अत्यन्त क्रोध में भर कर इस प्रकार कहा—"हे इन्द्र ! क्या तुम्हारी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, जो तुम शिवजी को नहीं पहचान पाते? शिवजी तीनों गुणों से परे शुद्ध, पवित्र, निर्गुण, सगुण, परब्रह्म तथा सब के स्वामी हैं। मैंने तुम्हारे द्वारा शिवजी की निन्दा सुनी है, इसीलिए मुझे भी अत्यन्त पाप लगेगा। अब मुझे उचित है कि मैं तुम्हें भी नष्ट कर डालूँ और स्वयं भी मर जाऊँ।" इतना कहकर उपमन्यु ने भस्म लेकर मन्त्र पढ़ा और स्वयं सब प्रकार से पवित्र हो, उस भस्म को इन्द्ररूपी शिवजी पर छोड़ दिया, तदुपरान्त यह इच्छा प्रकट की उसी भस्म के द्वारा मैं स्वयं भी जल कर भस्म हो जाऊँ। उपमन्यु की ऐसी निष्ठा देखकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय शिवजी के संकेत को समझ कर नन्दी ने उस भस्मास्त्र को अपने हाथ में पकड़ लिया जिससे प्रकट होने वाली प्रज्वलित अग्नि शान्त हो गयी।

हे नारद ! इस चरित्र को करने के उपरान्त शिवजी अपने मुख्य रूप से उपमन्यु के सम्मुख प्रकट हो गये। उस समय सब देवता भी उस स्थान पर जा पहुँचे तथा शिवजी की स्तुति करने लगे। उपमन्यु ने जब शिवजी को सम्मुख खड़ा देखा, तो चरणों पर गिर उन्हें प्रणाम किया तथा बहुत प्रकार से स्तुति करते हुए अपने अपराध की क्षमा मांगी। उस समय शिवजी ने उपमन्यु को अपने समीप बुलाकर, उसके सम्पूर्ण शरीर पर हाथ फेरा। फिर अपने पास बैठा कर कृपा दृष्टि से देखते हुए इस प्रकार कहा—"हे उपमन्यु ! हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। आज से

गिरिजा तुम्हारी माता और हम तुम्हारे पिता होंगे। तुम सदैव युवा बने रहोगे तथा किसी प्रकार का पाप तुम्हें कभी नहीं लगेगा। तुम्हारे ऊपर मृत्यु का कोई वश नहीं चलेगा। तुम्हें दूध, दही, घृत तथा शहद के अनेक समुद्र प्राप्त होंगे। हमारे भक्तों में तुम्हारा स्थान अत्यन्त ऊँचा होगा।'' इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। तब उपमन्यु भी अपने आश्रम को लौट आये। हे नारद ! इस चरित्र को जो कोई पढ़ता तथा सुनाता है, वह भी सदैव आनन्दित रहता है।''

ॐॐॐ

पचासवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुमसे जटाधारी अवतार का वर्णन करता हूँ। जब गिरिजा माता-पिता से आज्ञा लेकर भगवान् सदाशिव को पतिरूप में प्राप्त करने की अभिलाषा से तपस्या करने के लिए वन में पहुँची, उस समय शिवजी ने सप्तऋषियों को गिरिजा की परीक्षा लेने के निमित्त उनके समीप भेजा। परन्तु गिरिजा उनके धोखे में किसी प्रकार नहीं आयी तथा दृढ़तापूर्वक तपस्या में संलग्न बनी रही। उस समय शिवजी स्वयं गिरिजा को देखने की इच्छा से जटाधारी ब्राह्मण का स्वरूप बनाकर उनके पास पहुँचे। वहाँ बहुत वार्तालाप एवं विवाद के उपरान्त भी जब वे गिरिजा को अपने दृढ़ निश्चय से नहीं डिगा सके, तो उन्होंने प्रसन्न हो कर गिरिजा को अपने मुख्य स्वरूप का दर्शन कराया तथा कहा—''हे गिरिजे ! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। मैंने तुम्हारी परीक्षा लेने के निमित्त ही यह सब चरित्र किया था। तुम मेरे साथ कैलाश पर्वत पर चलो और मुझे प्रसन्नता प्रदान करो।'' यह सुनकर गिरिजा ने यह उत्तर दिया—''हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप मेरे पति बनकर मेरे साथ विवाह करना स्वीकार करें।'' गिरिजा की यह अभिलाषा जानकर शिवजी एवमस्तु कहकर अन्तर्धान हो गये। हे नारद ! जटाधारी अवतार का यह चरित्र भी आनन्द-मंगल को बढ़ाने वाले तथा कीर्ति बढ़ाने वाला है।''

ॐॐॐ

इक्यावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें नर्तकनट अवतार का वृत्तान्त सुनाता हूँ। गिरिजा को वर देने के पश्चात् शिवजी एक दिन नर्तकनट का स्वरूप धारण कर हिमाचल के घर गये। वहाँ हिमाचल तथा मैना को प्रसन्न कर, उन्होंने भिक्षा के बदले गिरिजा को माँगा। पहले तो हिमाचल ने उनके ऊपर क्रोध किया, परन्तु जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह शिवजी हैं तो उन्होंने गिरिजा का विवाह उनके साथ करना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार शिवजी ने बड़ी लीलाएं करके गिरिजा के साथ विवाह किया। नर्तकनट अवतार का चरित्र भी भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाला है।

हे नारद ! जब मैना ने यह जान लिया कि शिवजी सब से श्रेष्ठ तथा सब के स्वामी हैं, तब उन्होंने शिवजी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देना उचित समझा। उस समय देवताओं ने परस्पर यह सम्मति की कि मैना तथा हिमाचल की श्रेष्ठ बुद्धि को किसी प्रकार नष्ट कर देना चाहिए। इस प्रकार का निश्चय करके सब देवता पहले तो मेरे पास आये, तदुपरान्त मेरी आज्ञा से शिवजी के पास जा कर यह कहने लगे—''हे प्रभो ! यदि हिमाचल आपको सदाशिव समझकर गिरिजा का विवाह करेगा, तो वह इसी शरीर से आपके लोक को प्राप्त हो जायेगा। उस समय रत्न आदि अद्भुत वस्तुएँ कहाँ से प्राप्त होंगी? ऐसी स्थिति में आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे उसका यह दिव्यज्ञान नष्ट हो जाए।'' देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी वैष्णव ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर हिमाचल के पास गये और उनसे इस प्रकार कहने लगे—''हे राजन् ! तुम राजा हो कर शिव जैसे अवधूत के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के लिए क्यों आतुर हो रहे हो? तुम्हें ऐसा करना कदापि उचित नहीं है। शिवजी अशुभ वेषधारी तथा अमंगलों के घर हैं।'' तब उन्होंने उनकी बात मानकर, शिवजी के साथ अपनी पुत्री का विवाह न करना ही उचित समझा। इस चरित्र को

करने के उपरान्त शिवजी कैलाश पर्वत पर लौट आये। फिर वहाँ से उन्होंने सप्तर्षियों को हिमाचल के पास समझाने-बुझाने के लिए भेजा। तब सप्तर्षियों ने आकर हिमाचल तथा मैना को बहुत समझाया-बुझाया और गिरिजा का विवाह शिवजी के साथ करा दिया। द्विजावतार की यह कथा सुनने तथा सुनाने से दोनों लोकों में आनन्द प्रदान करने वाली है।''

❁❁❁

बावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब तुम अश्वत्त्थामा अवतार की कथा सुनो। ब्राह्मणों में परमश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को कौरवों ने अपना गुरु मान कर, उनसे धनुर्विद्या प्राप्त की थी। उन्हीं द्रोणाचार्य ने कठिन तपस्या द्वारा शिवजी को प्रसन्न किया। तब शिवजी ने द्रोणाचार्य के समीप पहुँच कर यह कहा—''हे द्रोणाचार्य ! हम तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, अस्तु तुम जो चाहो, वर वरदान हम से माँग लो।'' यह सुनकर द्रोणाचार्य ने शिवजी की स्तुति करते हुए कहा—''हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह वरदान दीजिये कि मुझे आपके अंश से एक पुत्र की प्राप्ति हो। वह बालक मुझ सहित कौरवों को आनन्द प्रदान करने वाला, अत्यन्त बलवान् तथा मृत्यु को जीतने वाला हो।'' द्रोणाचार्य की प्रार्थना सुनकर शिवजी उन्हें इच्छित वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। तब उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो, अपनी स्त्री के समीप जाकर सब समाचार कह सुनाया। कुछ समय पश्चात् शिवजी की कृपा और उन्हीं के अंश द्वारा, द्रोणाचार्य की पत्नी के गर्भ से एक बालक ने जन्म लिया। उसका नाम अश्वत्त्थामा रखा गया।

हे नारद ! अश्वत्त्थामा ने द्रोणाचार्य की आज्ञा पा कर कौरवों का पक्ष लिया था। विष्णु जी की प्रेरणा से अर्जुन ने शिवजी का तप किया और शिवजी द्वारा पाशुपत-अस्त्र प्राप्त किया। इतने पर भी अश्वत्त्थामा ने अपना तेज ऐसा प्रदर्शित किया कि कोई भी उसका कुछ न बिगाड़

सका। जब उसने पाण्डवों के पुत्रों का वध कर डाला, उस समय अर्जुन ने जब रथ पर चढ़ कर अश्वत्त्थामा का पीछा किया था, तब अश्वत्त्थामा अपने मन में कुछ भी भयभीत न हो कर, युद्ध करने के लिए सामने खड़ा हो गया। उसने अर्जुन के ऊपर अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया। उस समय अर्जुन ने अत्यन्त दुःखी हो कर श्रीकृष्ण जी से यह कहा—"हे श्रीकृष्ण जी अश्वत्त्थामा द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र की ज्वाला हम सब को भस्म करती हुई सामने चली आ रही है। आप इससे हमारी रक्षा करने का उपाय करें।"

हे नारद ! अर्जुन की प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण जी अर्जुन से इस प्रकार बोले—"हे अर्जुन ! तुम इस अस्त्र का प्रभाव समाप्त करने के लिए शिवजी द्वारा दिये गये पाशुपत अस्त्र का प्रयोग करो। उसके बिना इस अस्त्र की ज्वाला किसी प्रकार शान्त नहीं होगी।" यह सुनकर अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र का प्रयोग करके ब्रह्मास्त्र को निष्फल कर दिया। इस दृश्य को देखकर अश्वत्त्थामा ने यह विचार करके कि संसार में पाण्डवों का वंश ही न रहे, अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ में जो बालक स्थित था, उसका वध करने के निमित्त पुनः अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उस समय उत्तरा अत्यन्त व्याकुल हो कर श्रीकृष्ण जी की शरण में गयी। श्रीकृष्ण जी ने अपने चक्र द्वारा उत्तरा के गर्भ की रक्षा की। हे नारद ! अश्वत्त्थामा अवतार का यह चरित्र अत्यन्त पवित्र है और सम्पूर्ण संसार को आनन्द प्रदान करने वाला है। अश्वत्त्थामा अजर-अमर है। वे इस समय भी गंगा के तट पर वास करते हैं तथा सब की दृष्टि से छिपे रहते हैं। उनकी कथा सुनने तथा सुनाने से अत्यन्त पुण्य होता है तथा सम्पूर्ण मनोकामनाओं की प्राप्ति होती है।"

ॐ ॐ ॐ

तिरपनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब तुम किरातेश्वर अवतार का वृत्तान्त सुनो। पूर्वकाल में चन्द्रवंश में ययाति नामक एक राजा हुए।

उनके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें पुरु नामक सब से छोटा पुत्र शर्मिष्ठा नामक रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पुरु ने राज्य पा कर धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का पालन किया। उसी के कुल में शान्तनु नामक राजा उत्पन्न हुआ। उस राजा की गंगा तथा सरस्वती नामक दो स्त्रियाँ थीं। गंगा से जिस पुत्र की उत्पति हुई, उसका नाम भीष्म था। भीष्म बड़ा, तपस्वी, जितेन्द्रिय तथा सत्यवादी था। शान्तनु की दूसरी रानी सत्यवती के गर्भ से चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से चित्रांगद को चित्रांगद नाम के ही एक गन्धर्व ने मार डाला, जिसके कारण विचित्रवीर्य राज्य का स्वामी हुआ।

हे नारद ! विचित्रवीर्य की दो रानियाँ थीं। वह उन्हीं के साथ भोग-विलास किया करता था, जिसके कारण उसे राजयक्ष्मा रोग हो गया। अनेक उपाय करने पर भी राजा का वह रोग दूर न हो सका और एक दिन उसकी निःसन्तान अवस्था में ही मृत्यु हो गयी। इस प्रकार राजा शान्तनु का वंश नष्ट हो गया। व्यास जी ने विचित्रवीर्य की दोनों रानियों के गर्भ से सन्तान की उत्पत्ति की। इनमें बड़ी रानी के गर्भ से धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए, जो जन्म से ही अन्धे थे। छोटी रानी के गर्भ से पाण्डू का जन्म हुआ, तीसरी बार राजा की दासी जब व्यास जी के समीप पहुँची तो उसके गर्भ से विदुर नामक विष्णुभक्त का जन्म हुआ। इन तीनों बालकों को देखकर सत्यवती अत्यन्त प्रसन्न हुई। व्यास जी द्वारा उत्पन्न तीनों बालक अत्यन्त प्रतापी तथा धर्मात्मा हुए। धृतराष्ट्र का विवाह सुवल की कन्या गान्धारी के साथ हुआ था, तथा राजा शूरसेन की पुत्री वसुदेव की बहन कुन्ती के साथ पाण्डु का विवाह हुआ। पाण्डु की दूसरी रानी का नाम माद्री था। वह मद्रदेश के राजा की पुत्री थी।''

हे नारद ! धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए तथा पाण्डु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, इनमें से पहले तीन पुत्र कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे तथा नकुल और सहदेव ने माद्री के गर्भ से जन्म लिया था। राजा देवक की पुत्री

पारशवी का विवाह विदुर के साथ हुआ था। उसने भी अनेक धर्मात्मा पुत्रों को जन्म दिया। इन सब राजपुत्रों में भीम अत्यन्त बलवान् था और वह अपने बल के कारण अनेक प्रकार के उपद्रव मचाया करता था। दुर्योधन को भीम का स्वभाव अच्छा नहीं लगता था और वह सदा इस घात में लगा रहता था कि किसी उपाय से भीम को मार डाला जाए। इस प्रकार आरम्भ से ही धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों तथा पाण्डु के पुत्र पाण्डवों में शत्रुता हो गयी। तदुपरान्त एक दिन मन्त्री के उपदेश से धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वारणावत में लाक्षाभवन के भीतर जलाने के लिए भेजा, परन्तु शिवजी की कृपा एवं विदुर की सम्मति से वे जीवित बच गये। वहाँ से पाण्डव दक्षिण देश की ओर चले। मार्ग में भीम ने हिडंब नामक दैत्य को मारा। फिर व्यास जी का उपदेश पा कर सब पाण्डव चक्रपुर में रहने लगे। द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुनकर वे अपनी माता कुन्ती सहित राजा द्रुपद के यहाँ गये। वहाँ अर्जुन ने मत्स्य वेधने के उपरान्त द्रौपदी को जीता और सभी पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ।

हे नारद ! पाण्डवों की वीरता का समाचार सुनकर, राजा धृतराष्ट्र ने उन्हें अपने पास बुला लिया और आधा राज्य देकर खाण्डवप्रस्थ में रहने की आज्ञा प्रदान की। तदुपरान्त अर्जुन तीर्थाटन करते हुए द्वारका में पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण जी की सम्मति से सुभद्रा का हरण किया तथा उसके साथ अपना विवाह कर लिया। इसी सुभद्रा के गर्भ से अभिमन्यु का जन्म हुआ था।

हे नारद ! अब मैं दूसरे प्रकार से अर्जुन के बल का वर्णन करता हूँ, पूर्व समय में श्वेतकी नामक एक राजा शिवजी का परमभक्त था। शिवजी ने उसकी सेवा से प्रसन्न हो कर दुर्वासा ऋषि को यह आज्ञा दी कि तुम जा कर राजा श्वेतकी का यज्ञ करा दो। शिवजी की आज्ञानुसार दुर्वासा ने उस राजा का यज्ञ कराया। वह यज्ञ ऐसा था कि बारह वर्षों तक निरन्तर घृत की धार यज्ञ की अग्नि में गिरती रही। उसके कारण अग्नि अत्यन्त तृप्त हो, अजीर्ण के कारण निस्तेज हो

गई। उस समय अग्नि ने मेरे पास आ कर यह प्रार्थना की कि मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ। अस्तु, आप मेरे अजीर्ण को दूर करने का कोई उपाय कीजिए। तब मेरी आज्ञा से अर्जुन तथा कृष्ण ने अग्नि को अपनी शरण में लेकर उसे खाण्डव वन जलाने की आज्ञा दी। उस वन में मय नामक एक दानव रहता था। उस दानव को अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आज्ञा मान कर, वन से भाग जाने दिया। उस उपकार के कारण मयदानव ने पाण्डवों के लिए एक ऐसी सभा का निर्माण किया, जिसमें जल तथा थल का कोई भी भेद ज्ञात नहीं होता था। जब दुर्योधन उस सभा को देखने के लिए आया तो उसकी बुद्धि भ्रम में पड़ गयी, जिसके कारण दुर्योधन अत्यन्त लज्जित हो गया और उसके हृदय में पाण्डवों का पुराना द्वेष फिर उभर आया।

हे नारद ! उस शत्रुता के कारण दुर्योधन ने जुआ खेल कर पाण्डवों के सम्पूर्ण राज्य तथा धन को जीत लिया। यहाँ तक कि उनकी पत्नी द्रौपदी तक को जुए में जीत लिया। तदुपरान्त दुर्योधन ने पाण्डवों को राजच्युत करके, बारह वर्ष के लिए अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। उस स्थिति में सूर्य ने द्रौपदी को एक ऐसा बर्तन दिया जिसके द्वारा प्राप्त होने वाले भोजन से पाण्डव अपना कालक्षेप करते रहे।''

चौवनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! द्वैतवन में जा कर पाण्डवों ने अनेक प्रकार की विपत्तियाँ उठायीं। उनके पास भोजन के निमित्त सूर्य का दिया हुआ वही पात्र था। उस पात्र में यह गुण था कि जब तक द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थी, तब तक उसके भीतर की भोजन-सामग्री समाप्त नहीं होती थी। दुर्योधन को किसी प्रकार इस बात का पता चल गया। तब उसने यह चाहा कि पाण्डवों को किसी मुनि द्वारा शाप दिला देना चाहिए। अस्तु, वह दुर्वासा के पास पहुँच कर उनकी बड़ी सेवा की और वरदान माँगने की आज्ञा प्राप्त की। दुर्योधन ने उनसे यह

कहा—"हे प्रभो ! मैं पाण्डवों का नाश चाहता हूँ।" यह सुनकर दुर्वासा ऋषि ने दुर्योधन को बहुत धिक्कार देते हुए इस प्रकार कहा—"हे दुर्योधन ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। फिर भी, तुमने हमारी सेवा की है, इसलिए हम तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त कुछ उपाय करेंगे।"

हे नारद ! दुर्योधन से इस प्रकार कहकर दुर्वासा ऋषि अपने साथ दस सहस्त्र शिष्यों को लिये हुए, पाण्डवों के पास उस समय पहुँचे, जिस समय द्रौपदी भोजन कर चुकी थी। पाण्डवों ने मुनि की यथाविधि पूजा की। उस समय दुर्वासा ने उनसे कहा—"हे पाण्डवो ! हम तुमसे भोजन प्राप्त करना चाहते हैं।" मुनि के यह वचन सुन कर यद्यपि पाण्डव अपने मन में बड़े हताश हुए, फिर भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। तब मुनि अपने शिष्यों सहित स्नान करने के लिए नदी तट पर चले गये। इधर पाण्डवों ने सोचा कि मुनि के लौटने तक भोजन तैयार हो सकना कठिन है, इससे अच्छा है कि हम सब लोग मुनि के आने से पूर्व ही मर जाएँ, अन्यथा मुनि हमें शाप देकर नष्ट कर डालेंगे। जिस समय पाण्डव इस प्रकार विचार कर रहे थे, उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि "हे पाण्डवो ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करके, श्रीकृष्ण जी का स्मरण करो। तुम्हारा संकट दूर हो जायेगा।"

हे नारद ! इस आकाशवाणी को सुनकर द्रौपदी सहित सभी पाण्डवों ने श्रीकृष्णचन्द्र जी का स्मरण किया। तब श्रीकृष्ण जी शीघ्र ही उनके पास आ पहुँचे। उन्होंने सूर्य के दिये हुए पात्र को द्रौपदी से माँगा और उस पात्र में साग की एक पत्ती चिपकी हुई देखकर, उसे खा लिया। श्रीकृष्ण जी द्वारा उस पत्ती के खाते ही उधर दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों सहित ही तृप्त हो गये। तदुपरान्त वे पाण्डवों के पास न आकर, नदी-तट से ही अपने आश्रम को चले गये। इस समाचार को सुनकर पाण्डवों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वे सब श्रीकृष्ण जी की स्तुति करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण जी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे पाण्डवो ! अब हम मथुरा को छोड़, द्वारिकापुरी बसा कर उसमें रह रहे हैं। हम तुमसे यह कहते हैं कि तुम भगवान् सदाशिव की

सेवा किया करो। शिवजी की सेवा किये बिना संकट दूर नहीं होगा।''

हे नारद ! पाण्डवों से इस प्रकार कह कर, श्रीकृष्ण जी अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त पाण्डवों ने एक भील को दुर्योधन के आचरणों की देखरेख के लिए इन्द्रप्रस्थ भेजा। उस भील के वहाँ का सब हाल पाण्डवों को आ सुनाया। तब दुर्योधन के प्रताप तथा वैभव का समाचार पा कर पाण्डवों को अत्यन्त दुःख हुआ। उसी समय पाण्डवों के सम्मुख श्री व्यास जी आ पहुँचे। वे अपने मुख से शिव-नाम का उच्चारण कर रहे थे। व्यास जी को देखकर पाण्डवों ने उनका अत्यन्त सम्मान किया और पूजन आदि करके उन्हें श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। फिर इस प्रकार कहा—''हे प्रभो ! वन में आकर हम लोगों ने बहुत दुःख उठाया है। आज आपकी बड़ी कृपा हुई जो यहाँ पधार कर हमें दर्शन दिये। हे नाथ ! आप हमारा उद्धार करें तथा ऐसा उपदेश दें, जिससे हम अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर लें।''

हे नारद ! पाण्डवों की प्रार्थना सुनकर व्यास जी ने कहा—''हे पाण्डवो ! तुम परम धन्य हो। तुम्हारे ऊपर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होंगे और वे तुम्हारे सभी कष्टों को दूर कर देंगे। भगवान् सदाशिव सबके स्वामी हैं तथा देवता, मुनि उनकी सेवा किये करते हैं। अस्तु, हम तुम्हें यह उपदेश देते हैं कि तुम विश्वास एवं प्रेमपूर्वक भगवान् सदाशिव की पूजा करो।''

हे नारद ! व्यास जी के वचन सुनकर पाण्डवों ने पूछा—''हे प्रभो ! हम सब लोग मिलकर शिवजी का पूजन करें अथवा हम में से कोई एक व्यक्ति करें।'' उस समय व्यास जी ने शिवजी का ध्यान धर कर यह उत्तर दिया—''तुम में से केवल अर्जुन को ही पूजा करनी चाहिए। केवल उसी की सेवा से शिवजी तुम सब के ऊपर प्रसन्न होंगे।'' इतना कह कर व्यास जी ने शिव-पूजन की सम्पूर्ण विधि अर्जुन को बतला दी तथा यह कहा—''क्षत्रिय को सर्वप्रथम इन्द्र की सेवा करनी चाहिए। तदुपरान्त शिवजी के मंत्र का जप करो। तुम गंगा तट पर इन्द्रलोक नामक स्थान में पहुँच कर, शिवजी का ध्यान करो।''

यह कह कर व्यास जी ने अर्जुन को इन्द्र का मंत्र दिया तथा शिवपूजन की विधि एवं दृष्टि बन्ध होने की विद्या प्रदान की। इतना करके व्यास जी अन्तर्धान हो गये।''

ॐ ॐ ॐ

पचपनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! व्यास जी के चले जाने के उपरान्त सभी भाइयों ने अर्जुन को अत्यन्त तेजस्वी रूप में देखा। तदुपरान्त उन्होंने आशीर्वाद देते हुए अर्जुन को तपस्या करने के हेतु विदा किया। वे सब को प्रणाम आदि करके शुभ-मुहूर्त्त में शिवजी का तप करने के लिए चल दिये और गंगा जी के तट पर इन्द्रकील नामक स्थान के निकट पहुँच कर अशोक-वन में स्थित हुए। वहाँ सर्वप्रथम वेदी बनाकर, उन्होंने गुरु की अराधना की। तदुपरान्त आसन पर बैठकर पंचसूत्र पार्थिव का विधिपूर्वक निर्माण किया। फिर वे पार्थिव-पूजन के मंत्र का जप करने लगे।

हे नारद ! तपस्या के प्रभाव से जब अर्जुन के मस्तक से प्रकाश निकलने लगा, उस समय उस वन में रहने वाले इन्द्र के सेवकों ने इन्द्र के पास जा कर यह प्रार्थना की कि हे प्रभो ! अशोक-वन में न जाने ऐसा कौन-सा तपस्वी तप कर रहा है, जिसके मस्तक से उत्पन्न हुई अग्नि के कारण हम सब जलने से कुछ ही बच गये हैं। सेवकों की बात सुनकर जब इन्द्र ने ध्यान धर कर विचार किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि यह कार्य हमारे पुत्र अर्जुन का है। उस समय अर्जुन को दुःखी देखकर इन्द्र को भी बहुत शोक हुआ। तदुपरान्त वे वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर, हाथ में लाठी लिये हुए, अर्जुन के समीप जा कर खड़े हो गये। जब अर्जुन ने उन ब्राह्मणरूपी इन्द्र को अपने सामने खड़ा हुआ देखा, तो उनका हर प्रकार से स्वागत-सम्मान किया। उस समय इन्द्र ने अर्जुन से पूछा—''हे क्षत्रिय-पुत्र ! तुम ऐसा कठोर तप किस लिए कर रहे हो?''

हे नारद ! ब्राह्मणरूपी इन्द्र के वचन सुनकर अर्जुन ने उन्हें सब हाल सुनाया। तब इन्द्र ने यह उत्तर दिया—"हे अर्जुन ! तुम्हारा तप करना व्यर्थ है। सांसारिक सुख तो थोड़े दिन तक रहते हैं। अस्तु मनुष्य को इन सुखों के मोह में न पड़कर, मुक्ति का विचार करना चाहिए। मुक्ति देना इन्द्र के वश की बात नहीं है। जो देवता मुक्ति प्रदान कर सके, तुम्हें तो उसी की आराधना करनी उचित है।" यह सुनकर अर्जुन ने उत्तर दिया—"हे ब्राह्मण ! आपको इन बातों से क्या प्रयोजन? हम व्यास जी की आज्ञानुसार अपना कार्य कर रहे हैं। अस्तु आप हमें उसके विपरीत उपदेश करने की कृपा न करें।" इन्द्र ने जब अर्जुन की ऐसी दृढ़ता देखी तो उन्हें अर्जुन के ऊपर बहुत प्रेम हुआ। उस समय उन्होंने अपने वास्तविक-रूप में दर्शन दिये तथा यह कहा—"हे पुत्र ! हमने ब्राह्मण बनकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। शिवजी मुक्ति-भुक्ति को प्रदान करने वाले हैं। उन्हीं की कृपा से हमने, ब्रह्मा जी ने तथा विष्णु जी ने उच्च पद को प्राप्त किया है। अस्तु, तुम आज से हमारे मन्त्र को त्याग कर, शिवजी के मंत्र का जप करो तथा पार्थिव-पूजन करके उन्हीं का ध्यान धरो। तुम्हारी पूजा में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं होगा तथा शिवजी प्रसन्न हो कर तुम्हें वर प्रदान करेंगे।"

हे नारद ! इतना कहकर तथा आशीर्वाद देकर इन्द्र अपने लोक को चले गये। तब अर्जुन ने स्नान एवं अगंन्यास करके शिवजी का ध्यान किया। तत्पश्चात् वे पार्थिव-पूजन करके एक पाँव से सूर्य के सम्मुख खड़े हो गये और शिव-मंत्र का जाप करने लगे। उनके तप को देखकर ऋषि-मुनि भी आश्चर्यचकित हो उठे। जब अर्जुन को कुछ समय इसी प्रकार तपस्या करते व्यतीत हो गया, तब ऋषि-मुनियों ने कैलाश पर्वत पर जाकर भगवान् सदाशिव से यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! अर्जुन आपकी कठोर अराधना कर रहा है। अस्तु, हमारी यह इच्छा है कि आप उसके पास पहुँच कर, वर प्रदान करने की कृपा करें।" शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर यह उत्तर दिया—"हे

ऋषियो ! आप लोग अपने-अपने स्थान को जाएं, हम अर्जुन के कार्य को पूरा करेंगे।"

ॐ ॐ ॐ

छप्पनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! ऋषि-मुनियों को विदा करने के उपरान्त शिवजी ने यह इच्छा की कि हम अर्जुन के समीप पहुँच कर, उसे वर प्रदान करें। उस समय एक घटना घटी कि दुर्योधन ने जब यह सुना कि अर्जुन राज्य प्राप्ति के हेतु तपस्या कर रहे हैं, तो उसने मुर नामक एक दैत्य को अर्जुन का संहार करने के लिए भेजा। यह दैत्य भैंसे का स्वरूप धारण कर, अर्जुन के समीप जा पहुँचा। अर्जुन ने जब उसे दूर से ही अपनी ओर आते देखा, तो मन में यह जान लिया कि निश्चय ही मेरा कोई शत्रु है और इसे दुर्योधन ने यहाँ भेजा होगा। अस्तु, यह निश्चय कर अर्जुन ने उसे मारने के लिए अपना धनुष-बाण उठा लिया।

हे नारद ! जिस समय अर्जुन उस भैंसे को मारने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय शिवजी भीलपति का स्वरूप धारण कर, अपने गणों सहित अर्जुन की परीक्षा लेने तथा वरदान देने के लिए वहाँ आ पहुँचे। वे हाथ में धनुष बाण लिये हुए थे। अस्तु, जिस समय उस भैंसे रूपी दैत्य ने यह इच्छा की कि मैं अर्जुन को अपने सींगों पर उठा कर मार डालूँ, उसी समय भीलपतिरूपी शिवजी ने उसकी पूँछ पर अपने बाण का ऐसा प्रहार किया कि वह बाण शरीर में होता हुआ, उसके मुख-मार्ग से बाहर निकल गया, जिसके कारण उस दैत्य की तत्काल की मृत्यु हो गयी। जिस समय भीलपति ने उस दैत्य के ऊपर अपने बाण का प्रहार किया था, उसी समय अर्जुन ने भी उसके ऊपर अपना बाण चलाया था। अतः जब उन्होंने दैत्य को पृथ्वी पर गिरते हुए देखा तो अपने मन में यह विचार किया कि यह दैत्य मेरे ही बाण से मरा है। अस्तु, वे अपने बाण को लेने के लिए शिव का नाम उच्चारण करते

हुए, उस दैत्य के समीप जा पहुँचे। उसी समय शिवजी का एक गण भी अपने स्वामी का बाण लेने के लिए वहाँ पहुँच गया।

हे नारद ! उस गण को देखकर अर्जुन ने कहा—''यह दैत्य हमारे बाण से मरा है। अस्तु इसको, मारने वाला बाण हमारा है और उसे प्राप्त करने का अधिकार भी हम हीं को है।'' तब गण ने यह उत्तर दिया—''इस राक्षस को हमारे स्वामी भीलपति ने मारा है।'' इस प्रकार कुछ देर तक दोनों में बहुत विवाद हुआ, परन्तु अर्जुन ने बाण स्वयं उठा लिया। उस समय शिवजी के गण ने इस प्रकार कहा—''तुम तपस्वियों का रूप धर कर ऐसा छल किस लिए करते हो? एक बाण के लिए तुम्हारा इस प्रकार लोभ करना उचित नहीं है।'' यह सुनकर अर्जुन बोले—''अरे मूर्ख ! तू यह क्या कह रहा है? यह बाण मेरे मुख्य चिह्नों ये युक्त है। तू इसे देख ले और व्यर्थ ही विवाद मत कर।'' तब गण ने यह उत्तर दिया—''अरे मूर्ख ! तू सच्चा तपस्वी नहीं है, क्योंकि तप करने वाला कभी झूठ नहीं बोलता। मेरा स्वामी परम-तेजस्वी है और उसी का यह बाण है। यह तेरे पास कभी नहीं रह सकता। मेरे स्वामी ने तेरे प्राण बचाने के हेतु अपने इस बाण द्वारा तेरे शत्रु का संहार किया है और तू उनके उपकार को भूल कर ऐसी बातें कर रहा है।''

हे नारद ! उस गण के मुख से ऐसे कठोर वचन सुनकर अर्जुन ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर कहा—''अरे नीच ! तू बड़ा अहंकारी प्रतीत होता है, जो हम से ऐसे कठोर वचन कह रहा है। हमें क्या आवश्यकता पड़ी है कि जो तेरे स्वामी के पास जाकर बाण माँगें? यदि उसे चाहिए तो वह हम से बाण माँग ले अन्यथा तू और तेरे स्वामी में से कोई भी हमारे साथ युद्ध कर ले। उस स्थिति में जो जीतेगा, उसी को वह बाण मिल जायेगा। तू शीघ्र ही अपने स्वामी को हमारे पास बुला ला।'' अर्जुन के ऐसे वचन सुनकर वह गण आश्चर्यचकित हो, शिवजी के समीप जा पहुँचा और उन्हें सब समाचार कह सुनाया। उस समय शिवजी ने यह विचार किया कि हमें अर्जुन के तेज तथा शक्ति की

परीक्षा लेनी चाहिए। अस्तु, वे अपने गणों सहित अर्जुन के समीप जा पहुँचे।''

ॐ ॐ ॐ

सत्तावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! शिवजी की असंख्य सेना को देखकर भी अर्जुन अपने मन में तनिक भी भयभीत नहीं हुए। वे अपने धनुष बाण लेकर उनके सामने युद्ध करने के लिए जा खड़े हुए। उस समय किरातरूपधारी शिवजी ने सर्वप्रथम संसारी-रीति के अनुसार अर्जुन के पास अपना दूत भेजा और यह कहलवाया कि हे तपस्वी ! तुम हमारी सेना को अपनी आँखों से देखकर परिणाम का विचार कर लो और हमारा बाण हमें लौटा दो। जब दूत ने यह समाचार अर्जुन को दिया तो अर्जुन ने निर्भय हो कर यह उत्तर दिया—''हे दूत ! तू अपने स्वामी से जा कर यह कह दे कि यदि हम भयभीत हो कर तुम्हें बाण लौटा देंगे तो हमारे कुल में दाग लग जायेगा। तू अपने स्वामी से जा कर कह दो कि हम युद्ध करने के लिए तैयार हैं। वह भी मैदान में आ कर हमारी शक्ति को देख लें।''

हे नारद ! अर्जुन की बात सुनकर दूत ने शिवजी के पास पहुँच कर, सब समाचार कह सुनाया। तब भीलपति शिवजी अपनी सेना सहित अर्जुन के साथ युद्ध करने को तैयार हुए। जिस समय उन्होंने युद्ध आरम्भ करने के लिए अपना शंख बजाया, उस समय अर्जुन भी शिवजी का ध्यान धरकर, युद्ध करने के लिए सामने आ पहुँचा। तब शिवजी के गणों ने अपने स्वामी की आज्ञानुसार ऐसी बाण-वर्षा की कि अर्जुन पहले तो कुछ व्याकुल हुए परन्तु फिर शिवजी का ध्यान धरकर उन सब बाणों को काट डाला। तदुपरान्त उन्होंने अपनी बाण-वर्षा द्वारा किरातरूपी शिवजी की सम्पूर्ण सेना के पाँव उखाड़ दिये। केवल शिवजी ही जहाँ के तहाँ खड़े रहे। तब उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा। उस युद्ध को देखकर सम्पूर्ण सृष्टि में हाहाकार मच गया।

पृथ्वी काँपने लगी तथा सभी देवता दुःखी हो गये। उस युद्ध में किरातरूपधारी शिवजी अर्जुन को पकड़ कर आकाश की ओर ले गये। वहाँ उन्होंने अर्जुन को दोनों पाँव पकड़ कर चारों ओर घुमाया, परन्तु तो भी अर्जुन ने किसी प्रकार अपनी हार नहीं मानी। अन्त में, शिवजी ने भक्ति के वशीभूत हो, अर्जुन के ऊपर कृपा करके अपने मुख्य रूप को प्रकट कर दिया।

हे नारद ! जिस समय अर्जुन ने यह देखा कि वे जिस स्वरूप का ध्यान किया करते थे, वही स्वरूप नेत्रों के सम्मुख खड़ा है, तो अपने मन में लज्जित हो कर पश्चात्ताप करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने शिवजी को प्रणाम करके यह स्तुति की—''हे प्रभो ! मुझ से अज्ञानावस्था में जो अपराध बन पड़ा है, उसे आप क्षमा करने की कृपा करें।'' इतना कह कर जब अर्जुन शिवजी के चरणों पर गिर पड़े, उस समय शिवजी ने उन्हें कृपापूर्वक उठाकर, अपने हृदय से लगा लिया और इसी प्रकार कहा—''हे अर्जुन ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। तुम हमारे परमभक्त हो। हमने यह चरित्र तुम्हारी परीक्षा लेने के निमित्त किया था। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हम से माँग लो।'' यह सुनकर अर्जुन ने शिवजी की अत्यन्त प्रार्थना करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी तथा सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूरा करने वाले हैं। अब यदि आप पूछ ही रहे हैं तो आपसे यह माँगता हूँ कि आप मुझे दोनों लोकों की ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करने की कृपा करें।'' इतना कहकर अर्जुन हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

हे नारद ! अर्जुन की यह प्रार्थना सुनकर शिवजी ने उन्हें अपना पाशुपत अस्त्र देते हुए कहा—''हे अर्जुन ! अब तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायेंगे। हमने तुम्हें अपना भक्त जान कर, यह अस्त्र प्रदान किया है। इसके कारण तुम किसी से भी नहीं हारोगे और सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे। अपने भाइयों सहित पुनः राज्य को प्राप्त करोगे और तुम्हारे सभी संकटों को हम नष्ट करते रहेंगे।'' इतना कहकर शिवजी ने अर्जुन के शरीर पर अपना हाथ फिराया तदुपरान्त अनेक

आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये। उस समय अर्जुन भी अत्यन्त प्रसन्न हो, पाशुपत-अस्त्र को लेकर, वहाँ से अपने स्थान को लौट आये तथा अपने भाइयों को सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। जब बारह वर्ष की अवधि समाप्त हो गयी, तब पाण्डवों ने नगर में पहुँच कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। शिवजी की कृपा से उन्होंने, सम्पूर्ण कौरवों का संहार किया तथा युधिष्ठिर ने राज्य सिंहासन को प्राप्त किया। हे नारद ! किरातेश्वर शिव अवतार के इस चरित्र को जो मनुष्य पढ़ता अथवा सुनता है, वह भी अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर, शिव लोक में स्थान पाता है।''

अट्ठावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का वर्णन करता हूँ। जो लोग प्रातःकाल उनका नाम लेते हैं, उन्हें सम्पूर्ण सुख प्राप्त होते हैं। शिवजी के ये बारह अवतार भक्तों के कल्याण के निमित्त पृथ्वी पर हुए थे। फिर ये ज्योतिर्लिङ्ग के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन ज्योतिर्लिङ्गों के नाम इस प्रकार हैं— 1. सोमनाथ, 2. मल्लिकार्जुन, 3. महाकाल, 4. ॐ कारनाथ, 5. केदारनाथ, 6. भीमशंकर, 7. विश्वेश्वर, 8. त्र्यम्बक, 9. बैजनाथ अथवा वैद्यनाथ, 10. नागेश, 11. रामेश्वर तथा 12. घुश्मेश्वर।

हे नारद ! इन बारहों अवतारों की अपार महिमा है। अब तुम इन ज्योतिर्लिङ्गों का वृत्तान्त सुनो—पहले सोमनाथ सौराष्ट्र नगर में रहते हैं। दक्षप्रजापति के शाप के कारण जब चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो गया, तब उसने सोमनाथ शिवलिंग की स्थापना की थी। उसने स्मरण, ध्यान एवं पूजन से सब प्रकार के दुःख तथा शोक नष्ट हो जाते हैं। वहीं पर चन्द्रकुण्ड नामक एक कुण्ड है, जो स्नान करने से सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर देता है।

हे नारद ! दूसरे मल्लिकार्जुन श्रीनगर में प्रतिष्ठित हैं। शिवजी

अपने पुत्र स्कन्द को लेने के लिए उस स्थान पर पहुँचे थे और वहीं ज्योतिर्लिङ्ग हो कर स्थित हो गये थे। उस ज्योतिर्लिङ्ग के पूजन, दर्शन तथा सेवन से अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

हे नारद ! तीसरे महाकाल उज्जयिनी में विराजमान हैं। उन्होंने दूषण नामक दैत्य को भस्म करके अपने भक्तों की रक्षा की थी और उसी स्थान पर ज्योतिर्लिङ्ग बनकर प्रतिष्ठित हो गये। उनका दर्शन, सेवन तथा पूजन भी दोनों लोकों में आनन्द प्रदान करने वाला है।

हे नारद ! चौथे ॐकारनाथ विन्ध्याचल पर्वत पर प्रतिष्ठित हैं। वे भुक्ति तथा मुक्ति को प्रदान करने वाले हैं। उनके दर्शन से बड़े-बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! पाँचवें केदारेश्वर नर नारायण रूप से हिमालय पर्वत के केदार नामक स्थान में विराजमान हैं। वे भरतखण्ड के स्वामी हैं। उनकी सेवा करने पर सभी सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है तथा अपवित्र से अपवित्र प्राणी भी उनके दर्शन पा कर पवित्र हो जाता है।

हे नारद ! छठे भीमशंकर भीमाद्रि पर्वत पर विराजमान हैं। उन्होंने अपने भक्तों की रक्षा के निमिन्त भीम नामक दैत्य का संहार किया था। उनका सेवन, पूजन तथा दर्शन सम्पूर्ण आनन्द-मंगलों को देने वाला है।

हे नारद ! सातवें विश्वेश्वर काशी में विराजमान हैं। वे भुक्ति-मुक्ति आदि सम्पूर्ण वस्तुओं को प्रदान करते हैं। उनका दर्शन एवं पूजन करने से परमपद प्राप्त होता है। उनकी पुरी काशी में निवास करने वाला कोई भी प्राणी नरकगामी नहीं होता। वे अपने भक्तों की सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूरी करते हैं।

हे नारद ! आठवें त्र्यम्बक गौतमी नदी के तट पर विराजमान हैं। उन्होंने गौतम के पाप को नष्ट करने के निमित्त अवतार लिया था। उनके दर्शनों से सब प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! नौवें वैद्यनाथ चिताभूमि में विराजमान हैं। उन्होंने रावण के निमित्त अवतार ग्रहण किया था। उनके दर्शन एवं पूजन से सम्पूर्ण

पाप नष्ट हो जाते हैं तथा तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उनकी महिमा अनन्त है।

हे नारद ! दसवें नागेश जी दारुकवन में विराजमान हैं। वे अपने भक्तों का पालन करके दुष्टों को दण्ड प्रदान करते हैं।

हे नारद ! ग्यारहवें रामेश्वर सेतुबन्ध में विराजमान है। उन्होंने रामचन्द्र जी को सुख प्रदान किया था तथा उनकी प्रीति के कारण वहीं स्थिति हुए। जो कोई रामेश्वर शिवलिङ्ग को गंगा जल से स्नान कराता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! बारहवें घुश्मेश्वर ज्योर्तिलिङ्ग की कथा इस प्रकार है— "दक्षिण दिशा में देवगिरि के समीप एक ग्राम में सुधमा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उस ब्राह्मण की दो पत्नियाँ थीं। उनमें दूसरी स्त्री का नाम घुश्मा था। शिवजी की सेवा करने के कारण उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई, परन्तु पहली स्त्री ने सौतियाडाह के कारण उस बालक को मार डाला। यह देखकर शिवजी उस स्थान पर प्रकट हुए और उन्होंने मरे हुए बालक को जीवित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी सेविका घुश्मा को आनन्द प्रदान किया। जो व्यक्ति घुश्मेश्वर शिवलिङ्ग का दर्शन अथवा पूजन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! शिवजी के ज्योतिर्लिङ्गों की सेवा करके मनुष्य सब प्रकार के मनोरथों को प्राप्त कर सकता है। इनका दर्शन, सेवन तथा पूजन दोनों लोकों में आनन्द प्रदान करने वाला है। जो इस चरित्र को सुनता, पढ़ता अथवा दूसरों को सुनाता है, उसे भी सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है तथा उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।"

इति श्री शिवपुराणे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां शतरुद्रखण्डनाम सप्तमखण्डस्समाप्तः ॥ ७॥

ॐ ॐ ॐ

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

आठवां खण्ड

पहला अध्याय

सूत जी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो ! नारद जी इतनी कथा सुनकर ब्रह्मा जी से बोले—"हे पिता ! यद्यपि आपने शिवजी के अनेक चरित्रों का वर्णन किया है, तो भी मुझे तृप्ति नहीं होती है। अस्तु, मैं यह चाहता हूँ कि आप अन्य शिवलिंगों की महिमा का वर्णन करने की कृपा करें।" यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! शिवलिंगों की कोई संख्या नहीं है। लिंग से भिन्न अन्य कोई वस्तु नहीं है, तो भी, मैंने जहाँ तक अपनी बुद्धि के अनुसार समझा है और कुछ मुझे विष्णु जी के द्वारा ज्ञात हुआ है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ।"

हे नारद ! आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी तथा पाताल में शिवजी ने जहाँ कहीं किसी देवता, मनुष्य अथवा दैत्य को अपना दर्शन दिया है, वहीं वे लिंग रूप होकर स्थित हो गये हैं। उन शिवलिंगों का पूजन करने से अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। इस पृथ्वी पर शिवजी के असंख्य लिंग स्थापित हैं। उनमें जो अत्यन्त प्रसिद्ध तथा वर्णन करने योग्य हैं, उन्हीं का वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूँ। उन लिंगों में भी जो बड़े तथा अधिक श्रेष्ठ हैं, उन्हें ज्योतिर्लिङ्ग कहा जाता है। ज्योतिर्लिङ्गों में शिवजी पूर्णांश से विराजमान रहते हैं। उन ज्योतिर्लिङ्गों का वृत्तान्त इस प्रकार है—"पहले सोमनाथ सौराष्ट्र में गिरिजा सहित विराजमान हैं। दूसरे मल्लिकार्जुन श्रीशैल पर स्थित हैं। तीसरे महाकाल उज्जयिनी में सुशोभित हैं। चौथे अमरनाथ हिमालय पर्वत पर स्थित हैं। पाँचवें केदारेश्वर केदार स्थान में सुशोभित हैं। छठे भीमशंकर डाकिनी

तीर्थस्थल पर स्थित हैं। सातवें विश्वनाथ काशी में विराजमान हैं। आठवें त्र्यम्बक गौतमी नदी के तट पर स्थित हैं। नौवें वैद्यनाथ चिताभूमि में निवास करते हैं। दसवें नागेश दारुक वन में सुशोभित हैं। ग्यारहवें रामेश्वर सेतु के ऊपर निवास करते हैं तथा बारहवें द्युतिमान् शिवगृह में विराजमान हैं।

जो व्यक्ति प्रभात के समय पवित्र होकर उन बाहरों ज्योतिर्लिङ्गों के नाम लेता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होते हैं। हे नारद ! इन ज्योतिर्लिङ्गों का प्रभाव तथा महिमा अप्रमेय है। मोक्ष केवल चार प्रकार के व्यक्तियों को ही मिलता है। वे यह हैं—शिवजी के भक्त, वेदपाठी, ज्ञानी तथा ध्यानी। ज्योतिर्लिङ्गों के दर्शन करने से नपुंसक तथा पापी मनुष्य भी ब्राह्मण का जन्म पाकर मुक्त हो जाते हैं। अस्तु, ज्योतिर्लिङ्गों का दर्शन, सेवन, स्मरण तथा पूजन अवश्य करना चाहिए। अब मैं तुमसे उपलिङ्गों का अलग-अलग वर्णन करता हूँ। पहले अन्तकेश अथवा सोमेश्वर उस स्थान पर विराजमान हैं, जहाँ महासागर नामक समुद्र स्थित है। दूसरा रुद्र नामक उपलिङ्ग भृगुकक्ष में है। तीसरे उपलिङ्ग का नाम दुग्धेश, चौथे का कदम्बेश, पाँचवें का भूमीश, छठे का भीमेश्वर, सातवें का लोकनाथ, आठवें का त्र्यम्बक तथा त्रिनयन, नौवें का बैजनाथ, दसवें का भूतेश्वर, ग्यारहवें का गुप्तेश्वर तथा बारहवें का व्याघ्रेश प्रसिद्ध है। इन उपलिङ्गों के दर्शन से मनुष्य को अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।

हे नारद ! अब तुम उन शिविलिङ्गों का वर्णन सुनो, जो पूर्व दिशा में स्थित हैं—तीर्थराज प्रयाग में ब्रह्मा जी द्वारा स्थापित ब्रह्मेश्वर लिङ्ग विराजमान हैं। सोमश्वर नामक शिवलिङ्ग दशाश्वमेध तीर्थ पर स्थित हैं। भारद्वाजेश्वर तथा माधवेश नामक शिवलिङ्ग शिवटंक में स्थित हैं। नागेश्वर नामक शिवलिङ्ग संकटेश्वर नगर में हैं। काशी में अविमुक्तश्वेर के अतिरिक्त वृद्धबाल, कृतबालेश्वर, तिलभाण्डेश्वर, दशाश्वमेधेश्वर, मणिकृतेश्वर, तारेश्वर, गोधूमेश्वर, महाभूतेश्वर, केदारेश्वर, रामेश्वर, बटुकेश्वर, पूरेश्वेर तथा सिद्ध नागेश्वर नामक शिवलिङ्ग भी विराजमान हैं। पत्तनदेश में दूरेश्वर तथा मृगेश्वर नामक शिवलिङ्ग भी विराजमान

हैं। वेदों ने जिसकी महिमा का वर्णन किया है, उस बैजनाथ धाम में नागेश्वर, सिद्धेश्वर, विमलेश्वर, कामेश्वर, व्यासेश्वर, भाण्डेश्वर, ओंकारेश्वर, कुमारेश्वर, शुक्रेश्वर, वटेश्वर, सूर्येश्वर, भीमेश्वर, भूतेश्वर, ज्ञानेश्वर, पूरेश्वर, कोटेश्वर, स्वप्नेश्वर, कद्रमेश्वर तथा अचलेश्वर नामक शिवलिङ्ग विराजमान हैं। पुरुषोत्तमपुरी में भुवनेश्वर नामक शिवलिङ्ग हैं। वे अपने दर्शन करने वालों के सम्पूर्ण कष्टों का निवारण करते हैं। वहाँ शिवजी अपने गुरु जगन्नाथ जी के बदले स्थित होकर सब लोगों की मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं, यह सब लिङ्ग पूर्व दिशा में स्थित है।''

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं मत्तगयन्द लिंग का वर्णन करता हूँ। एक बार कलियुग के प्रारम्भ में मैंने इच्छा की कि मुझे एक ऐसा यज्ञ करना चाहिए, जिससे धर्म की वृद्धि हो तथा सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाएँ। अस्तु, ऐसा निश्चय करके मैं विष्णु जी के समीप गया और उन्हें अपना मनोरथ कह सुनाया। तदुपरान्त मैंने उनसे यह प्रार्थना की कि आप मुझे कोई ऐसा स्थान बता दीजिए, जो अत्यन्त पवित्र तथा सुन्दर हो और जहाँ जाकर मैं अपने यज्ञ को निर्विघ्न कर सकूँ। उस समय विष्णु जी ने मुझे यह उत्तर दिया—''हे ब्रह्मन् ! चित्रकूट नामक जो सिद्ध पर्वत है, उसे देखने मात्र से ही मनुष्य पाप रहित हो जाता है। वहाँ मन्दाकिनी नदी बहती है, जिसमें स्नान करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। वह नदी पर्वत के बीच बहती हुई धनुष के समान प्रतीत होती है। वह स्थान मुझे अत्यन्त प्रिय है। तुम वहाँ जाकर एक पुरी बसाओ और शिवलिंग की स्थापना करो। हम भी बारह अंगुल की प्रतिमा मूर्ति से प्रकट होकर तुम्हारे यज्ञ की वेदी में स्थित रहेंगे।

हे ब्रह्मन् त्रेता तथा द्वापर युग में हम संसार में अवतार लेकर संसार को आनन्द प्रदान किया करते हैं। अस्तु, आगामी त्रेता युग में हम अपने

चार अंशों द्वारा चार रूप होकर राजा दशरथ के घर में अवतार लेंगे। दंडकवन में जाकर रामेश्वरलिंग की स्थापना करेंगे तथा उनकी सेवा करके वरदान प्राप्त करेंगे। तदुपरान्त हम परिवार सहित रावण का वध करेंगे। शिवजी की सेवा किये बिना कोई कार्य पूरा नहीं होता, यह बात हम तुमसे बिल्कुल सत्य कहते हैं। अतः तुम्हें भी उचित है कि तुम सर्वप्रथम शिवलिंग की स्थापना करो, तत्पश्चात् यज्ञ करना।''

हे नारद ! विष्णु जी की आज्ञानुसार मैंने चित्रकूट पर्वत पर पहुँचकर शिवलिंग की स्थापना की तथा अपने सभी पुत्रों एवं देवताओं सहित उस लिंग की बहुत प्रकार से पूजा तथा स्तुति की। उस समय हमारी सेवा से प्रसन्न होकर शिवजी ने वहाँ प्रकट होकर दर्शन दिये और यह कहा—''हे ब्रह्मन् ! तुम जो चाहो, वह वर हमसे माँग लो।'' यह सुनकर मैंने निवेदन किया—''हे प्रभो ! आप मेरे ऊपर कृपा करके अपने पूर्णांश सहित उस लिंग में स्थित रहें। मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ तथा एक पुरी बसाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि उस पुरी के आप राजा हों और आपका यह लिंग मत्तगयन्द के नाम से प्रसिद्ध हो।'' हे नारद ! मेरी इस प्रार्थना को शिवजी ने स्वीकार कर लिया, तदुपरान्त शिवजी उस लिंग के भीतर प्रवेश कर गये। तब मैंने उस स्थान पर यज्ञ करके, विष्णु जी के निमित्त एक पुरी बसायी। उस पुरी को देखने से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। मत्तगयन्द शिवजी उस पुरी के राजा हुए और वह स्थान कैलाश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मन्दाकिनी का घाट शिवगंगा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल मन्दाकिनी में स्नान करके मत्तगयन्द शिवजी का पूजन करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है तथा मृत्यु के उपरान्त शिवलोक में जाता है।

हे नारद ! शंकर्षण पर्वत के पूर्व दिशा की ओर जहाँ कोट नामक परम पवित्र तीर्थ है, वहीं कोटेश्वर नामक शिवलिंग स्थापित है। उस तीर्थ में स्नान करने से तथा कोटेश्वर लिंग के दर्शन, सेवन एवं पूजन

करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! चित्रकूट के दक्षिण ओर से कुछ आगे चलकर पशिचम की ओर तुगारण्य नामक पर्वत है, जहाँ गोदावरी नदी बहती रहती है। उस स्थान पर पशुपति नामक शिवलिंग स्थित है। जो मनुष्य गोदावरी में स्नान करने के उपरान्त उस लिंग का पूजन करता है, वह संसार में सदैव प्रसन्न बना रहता है। रामचन्द्र जी ने भी गोदावरी में स्नान करने के उपरान्त पशुपति लिंग का पूजन किया था।

हे नारद ! उक्त स्थान से दक्षिण की ओर कालंजर नामक पर्वत है। वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और वहाँ बहुत से लोगों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। वहाँ मुक्त क्षेत्र नामक स्थान है, जो सम्पूर्ण पापों को नष्ट करके, अत्यन्त आनन्द प्रदान करता है। उस स्थान पर नीलकंठ नामक शिवजी का लिंग है, जिसे देखने से ही सम्पूर्ण मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं। वहाँ शिवजी गिरिजा सहित विराजमान रहते हैं। उस लिंग की पूजा करके देवता, मुनि तथा सिद्ध आदि ने परम पद प्राप्त किया है।''

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! मैंने नीलकंठ शिवलिंग का जहाँ वर्णन किया है, उसके दक्षिण की ओर अत्रीश्वर नामक शिवजी का लिंग विराजमान है। वह लिंग मधुवन में स्थित है। हमारे पुत्र अत्रि ने, जिसकी पत्नी का नाम अनुसूया है, चित्रकूट पर्वत पर अपनी पत्नी सहित शिवजी का ध्यान धरकर, घोर तपस्या की थी। उन्हीं दिनों ऐसा अकाल पड़ा कि सौ वर्षों तक संसार में पानी नहीं बरसा। इसलिए सब ऋषि-मुनि तथा संसारी प्राणी दुःखी हो गये। उस अवस्था में दिनों दिन अशुभ कार्य घटने लगे तथा अकर्मों की वृद्धि होने लगी। संसार की ऐसी दशा को देखकर अनुसूया ने अत्रि से यह कहा—''हे पति ! आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे जल की वर्षा हो और संसार को

आनन्द प्राप्त हो।" परन्तु अत्रि मुनि उस समय शिवजी के ध्यान में मग्न थे। अस्तु उन्हें अनुसूया के शब्द सुनाई नहीं पड़े। उस समय अनुसूया दृढ़तापूर्वक पार्थिव पूजन करने लगी।

हे नारद ! अनुसूया के तप से प्रसन्न होकर शिवजी उसके सम्मुख प्रकट हुए। उस समय शिवजी का दर्शन प्राप्त करने के हेतु सभी देवता तथा ऋषि-मुनि उसी स्थान पर आ पहुँचे। अत्रि और अनुसूया की उस तपस्या तथा सौभाग्य देखकर, सब लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और विष्णु जी आदि सब देवताओं ने एक स्वर से यह घोषणा की कि तप एवं उपासना के निमित्त शिवजी से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। वेद ने भी यही बात कही। तत्पश्चात् सब देवता आदि तो अपने-अपने स्थान को चले गये, परन्तु शिवजी वहीं स्थित रहे। शिवजी के कारण गंगा भी वहीं रह गयीं। इस प्रकार अत्रि मुनि को तपस्या करते हुए चौवन वर्ष का समय और व्यतीत हो गया। एक दिन अत्रि मुनि ने अपने ध्यान को छोड़कर अनुसूया से जल माँगा। तब अनुसूया कमण्डलु हाथ में लेकर जल प्राप्त करने के लिए वन में इधर-उधर भ्रमण करने लगी। उस समय अनुसूया को चिन्तित देखकर, गंगा ने उनके समीप पहुँचकर यह कहा—"हे अनुसूया ! भला यह तो बताओ कि तुम कहाँ जा रही हो?"

हे नारद ! गंगा के मुख से ऐसे वचन सुनकर अनुसूया ने प्रसन्न होकर पूछा—"हे बहन ! तुम कौन हो और किस लिए खड़ी हो? तुम्हें देखने से मेरे हृदय में अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है, इसलिए तुम मुझे अपना सब वृत्तान्त बताओ।" उस समय गंगा ने उत्तर दिया—"हे अनुसूया ! मेरा नाम गंगा है और मैं तुम्हारे आधीन हूँ। अब तुम्हें जो चाहिए, वह वर मुझसे माँग लो।" यह सुनकर अनुसूया ने कहा—"हे गंगे ! यदि ऐसी बात है तो तुम यहीं रहो और मुझे अपने पति के लिए जल प्रदान करो।"

हे नारद ! यह सुनकर गंगा वहीं स्थित हो गयीं। तदुपरान्त उन्होंने अनुसूया के कमण्डलु को जल से भर दिया। अनुसूया उस जल को

लेकर अत्रि के पास जा पहुँची। तब अत्रि ने जल पीकर अनुसूया से पूछा—"हे प्रिये ! तुम यह जल कहाँ से लायी हो?" अनुसूया ने उन्हें सब हाल कह सनाया। उस वृत्तान्त को सुनकर अत्रि मुनि अपने आसन से उठकर गंगा के समीप जा पहुँचे और वहाँ स्नान करके स्तुति करने लगे। अनुसूया ने भी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक गंगा में स्नान किया। उस समय गंगा ने अत्रि तथा अनुसूया से इस प्रकार कहा—"तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो चुकी है। अस्तु, अब मैं यहां से जाती हूँ। गंगा के ऐसे वचन सुनकर अत्रि और अनुसूया ने उनसे वहीं रहने की प्रार्थना की। तब गंगा ने यह कहा कि यदि तुम मुझे एक वर्ष के शिवपूजन का फल प्रदान करो तो मैं यहाँ रह सकती हूँ। अनुसूया ने इस बात को स्वीकार कर लिया तथा गंगा वहीं स्थित हो गयीं। उसी समय शिवजी भी अपने मुख्य चिह्नों सहित उस स्थान पर प्रकट हो गये।

हे नारद ! शिवजी के दर्शन पाकर अत्रि तथा अनुसूया अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रार्थना करते हुए यह कहने लगे—"हे प्रभो ! आप यहीं पर स्थित रहिये।" अत्रि की प्रार्थना स्वीकार कर, शिवजी गंगा सहित उस लिंग में स्थित हो गये, जिसकी स्थापना अत्रि तथा अनुसूया ने की थी। अत्रि ने जो लिंग स्थापित किया था, वह अत्रीश्वर शिवलिंग के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा गंगा मन्दाकिनी नाम से विख्यात हुई। तब अनेक ऋषि-मुनि अपने परिवार सहित उसी स्थान पर आ कर रहने लगे। शिवजी की कृपा से उसी समय संसार में बड़े ज़ोर की वर्षा हुई, जिससे सब प्राणियों को आनन्द प्राप्त हुआ। जो मनुष्य अत्रीश्वर शिवलिंग के दर्शन करता है, उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।"

ॐ ॐ ॐ

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! नर्मदा नदी के तट पर असंख्य शिवलिङ्ग हैं। उनकी गणना किसी प्रकार नहीं हो सकती। उस नदी में जितने भी पत्थर पड़े हुए हैं, वे सब शिव रूप हैं। उनकी महिमा अपार

है। मैं उनमें से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लिङ्गों का वर्णन करता हूँ। उन शिवलिङ्गों के नाम इस प्रकार हैं—अवतारेश्वर, परमेश्वर, सुखेश्वर, ब्रह्मेश्वर, रमेश्वर, विमलेश्वर, मंदनेश्वर, कुमारेश्वर, पुण्डरीकपति, मण्डपेश्वर, तीक्ष्णेश्वर, धनुर्धरेश्वर, शूलेश्वर, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर, भीमेश्वर, सूर्येश्वर, नागेश्वर, रामेश्वर, नन्देश्वर, कंटकेश्वर तथा चन्द्रेश्वर। जिस स्थान पर नदी समुद्र में मिलती है, वहाँ धृत केश नामक शिवजी का लिङ्ग स्थापित है। रेवा नदी के तट पर नन्दिकेश्वर शिवलिङ्ग स्थित है। वहीं ब्रह्महत्याहर नामक तीर्थ भी है।''

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! आप ब्रह्महत्याहर तीर्थ तथा नन्दिकेश्वर शिवलिङ्ग की महिमा का वर्णन विस्तारपूर्वक करने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! एक समय कौरवों और पाण्डवों में महाभयानक युद्ध हुआ, जो महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है। युधिष्ठिर आन्तरिक रूप से लज्जित तथा दुःखी बने रहे। एक दिन उन्होंने व्याकुल होकर श्रीकृष्ण जी से यह कहा—''हे प्रभो ! मैंने अपने कुल को नष्ट किया है, जिसके कारण मुझे अनेक प्रकार की हत्याओं का पाप लगा है। अस्तु, आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जिसके द्वारा मैं उन हत्याओं के पाप से मुक्त हो सकूँ।''

हे नारद ! राजा युधिष्ठिर के यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण जी ने कहा—''हे धर्मराज ! नन्दिकेश्वर नामक शिवलिंग का दर्शन करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। नन्दिकेश्वर लिंग के समीप जो रेवा नदी बहती है, वहीं ब्रह्महत्याहर नामक तीर्थ स्थित है। उस तीर्थ की महिमा तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ किसी प्रकार के क्लेश का लेश भी नहीं पाया जाता। तुम्हें उस स्थान की महिमा के सम्बन्ध में एक कथा सुनाता हूँ।

हे राजन् ! उस स्थान पर उतथ्य वंश में उत्पन्न एक ब्राह्मण रहा करता था। अवस्थानुसार वह काशी में जाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसके सात पुत्र थे। पिता की मृत्यु के बाद उन पुत्रों ने पिता के सब धन को आपस में बाँट लिया। कुछ दिनों बाद जब उन लड़कों की माता

की मृत्यु का समय समीप आया, उस समय उसने अपने पुत्रों से यह कहा कि मेरी इच्छा काशी में मरने की थी, परन्तु अब वहाँ मेरा पहुँचना अत्यन्त कठिन है, इसलिए मैं यह चाहती हूँ कि जब मेरी मृत्यु हो जाए, तो तुम मेरी हड्डियों को काशी जी में पहुँचा देना। माता की इस बात को बड़े पुत्र ने स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त जब उस वृद्धा की मृत्यु हो गयी तो क्रिया-कर्म करने के पश्चात् सुबाहु नामक बड़ा पुत्र उसकी अस्थियों को लेकर, अपने एक सेवक के साथ काशी जी को चल दिया। पहले दिन वह अपने घर से चलकर बीस योजन की दूरी पर एक गाँव में पहुँचा और वहाँ एक ब्राह्मण के घर ठहरा।

हे नारद ! उस समय यह चरित्र हुआ कि जब चार घड़ी रात्रि व्यतीत हुई, तब घर का स्वामी घर के भीतर पहुँचा और उसने यह चाहा कि गौ को घर में बाँधकर, उसका दूध दुहें। उसी समय गाय के बछड़े ने क्रुद्ध होकर उस ब्राह्मण को एक लात ऐसी जोर की मारी कि वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे चेतना प्राप्त हुई तो उसने उस बछड़े को इतना मारा कि वह भी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस बीच में ब्राह्मण ने गौ दुह ली। तदुपरान्त वह बछड़े को रस्सी से बाँधकर चला गया। अपने पुत्र की यह दशा देखकर गौ अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगी। गाय ने कहा—"प्रातःकाल जब ब्राह्मण का पुत्र मुझे दुहने के लिए आवेगा, तब मैं अपने सींगों से छेदकर उसे मार डालूँगी।" यह सुनकर बछड़े ने अपनी माता से कहा—"हे माता ! ब्राह्मण को मारना उचित नहीं है, क्योंकि उसके वध से ब्रह्महत्या का पाप लगता है।" यह सुनकर गौ ने उत्तर दिया—"पुत्र ! मुझे वह स्थान ज्ञात है, जहाँ जाने से ब्रह्म हत्या नष्ट हो जाती है।"

हे धर्मराज ! गौ तथा बछड़े की इस बात को सुबाहु ने जब सुना तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तदुपरान्त उसने अपने मन में यह निश्चय किया कि मुझे अपना जाना स्थगित करके पहले इस तमाशे को देखना चाहिए। निदान, जब सवेरा हुआ तो घर का स्वामी ब्राह्मण तो बाहर चला गया और उसका पुत्र गाय को दुहने के लिए जैसे ही उसके

समीप पहुँचा, वैसे ही गौ ने उस ब्राह्मण पुत्र को अपने सींग पर उठाकर मार डाला। ब्रह्म हत्या के कारण उस गौ के शरीर का रङ्ग श्वेत के स्थान पर काला हो गया। उस समय सब लोगों ने उस गौ के बन्धन खोल दिये। तब वह अपनी पूँछ उठाकर एक ओर को भाग चली। सुबाहु इस दृश्य को देखकर ब्रह्म हत्याहर तीर्थ का पता जानने के लिए अपने सेवक सहित उस गौ के पीछे-पीछे चल दिया। तब वह गौ नन्दिकेश्वर शिवलिङ्ग वाले स्थान पर पहुँचकर, रेवा नदी में स्नान करके, पहले की ही भाँति श्वेत हो गयी।

हे नारद ! शिवजी का वह लिंग नन्दिकेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वही लिंग अंशरूप होकर वितल लोक में हाटकेश्वर के नाम से प्रकट हुआ। उस समय ब्राह्मणी ने गंगा जी से जो शिवजी के साथ आयी थी, यह प्रार्थना की—"हे गंगे ! मुझे आपके दर्शनों से अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ है, मेरी यह इच्छा है कि आप भी इसी स्थान पर स्थित रहें।" यह सुनकर गंगा ने उत्तर दिया—"हे ब्राह्मणी ! तुम्हारे समान धन्य तथा सौभाग्यशालिनी स्त्री संसार में अन्य कोई नहीं है; क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नता के हेतु शिवजी प्रकट हुए हैं। मैं भी तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ और यह वर देती हूँ कि मैं आज के दिन अर्थात् वैशाख शुक्ल सप्तमी को सदैव यहाँ आया करूँगी।" इतना कहकर गंगा जी भी अंतर्धान हो गयी। उसी दिन से वह स्थान तीर्थरूप में प्रसिद्ध हो गया। हे नारद ! जो मनुष्य उस तीर्थ में जाकर स्नान करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे दोनों लोकों में आनन्द मिलता है। यह चरित्र अत्यन्त पवित्र तथा मनोभिलाषा पूर्ण करने वाला है।"

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे पुत्र ! रेवा नदी शिवजी को गिरिजा के समान अत्यन्त प्रिय है। इस नदी के सभी पत्थर शिवलिंग के समान

पूजा करने योग्य हैं। रेवा के दोनों तटों पर शिवजी के असंख्य मन्दिर हैं। इसी नदी के उत्तर की ओर हनुमान द्वारा स्थापित कपीश्वर नामक शिवलिंग है।''

इस कथा को सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! आप इस चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए तथा बताइये कि हनुमान को ब्रह्म हत्या का पाप किस प्रकार लगा?'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! रामचन्द्र जी की मनोकामना पूर्ण करने के हेतु शिवजी ने हनुमान नामक वानर का अवतार लिया था। उन्होंने हर प्रकार से रामचन्द्र जी की सहायता की तथा संसार में रामदूत के नाम से प्रसिद्ध हुए। रावण का कुल सहित नाश करके, वे रामचन्द्र जी, लक्ष्मण तथा सीता को लेकर अयोध्या जा पहुँचे।''

''हे नारद ! रावण ब्राह्मण था, अस्तु, उसका वध करने के कारण रामचन्द्र जी ने बहुत दिनों तक पश्चात्ताप किया। तदुपरान्त एक दिन वे अपने भाई लक्ष्मण सहित नैमिषारण्य में स्थित हत्याहरण तीर्थ पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने लक्ष्मण सहित स्नान करके एक शिवलिंग की स्थापना की। ऐसा करने से उनका सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गया। एक दिन की बात है कि हनुमान अत्यन्त अहंकार में भरकर कैलाश पर्वत पर जा पहुंचे और शिवजी के दर्शन करने के हेतु आगे बढ़े। उस समय नन्दीश्वर ने उन्हें रोकते हुए यह कहा—''हे हनुमान ! तुम शिवजी के दर्शन करने के योग्य नहीं हो, क्योंकि तुमने रावण जैसे ब्राह्मण का वध किया है। उसकी हत्या के कारण तुम्हें पाप लगा है। अस्तु, जब तक तुम इस पाप से मुक्ति नहीं पावोगे, तब तक शिवजी तुम्हें दर्शन नहीं देंगे। अब तुम्हें उचित है कि अहंकार को त्याग कर, रेवा नदी के तट पर जाओ और वहाँ शिवलिंग की स्थापना करो। ऐसा करने से तुम्हारा पाप नष्ट हो जाएगा। तब तुम शिवजी का दर्शन करने के लिए यहाँ आना।'' नन्दीश्वर की यह बात सुनकर हनुमान रेवा नदी के तट पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने शिवलिंग की स्थापना करके उसका भली-भाँति पूजन किया तथा बारम्बार स्तुति की। उस समय शिवजी ने

हनुमान के सम्मुख प्रकट होकर यह कहा—"हे हनुमान ! हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। यद्यपि तुम हमारे ही स्वरूप हो, तो भी हमने तुमसे यह तप इसलिए कराया है, ताकि संसार में ब्राह्मण की महिमा स्थिर बनी रहे।" इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये और हनुमान के हृदय का क्षोभ भी नष्ट हो गया।"

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! एक दिन मैं तथा विष्णु जी रेवा नदी में स्नान करने के उपरान्त दक्षिण तट की ओर जा बैठे। सब देवता तथा ऋषि-मुनि भी वहाँ आकर इकट्ठे हो गये। उस समय सबने मुझसे तथा विष्णु जी से पूछा कि आप हमें यह बताने की कृपा करें कि संसार में श्रेष्ठ देवता कौन है, जो नाश-रहित, ब्रह्म, निर्दोष, सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी, निर्गुण, अलख, अजन्मा, ईश्वर का भी ईश्वर, विश्वम्भर तथा प्रलय करने वाला हो।"

हे नारद ! देवताओं तथा ऋषियों के ऐसे वचन सुनकर सर्वप्रथम मैंने शिवजी की माया में मोहित होकर यह उत्तर दिया—"हे देवताओ तथा मुनियो ! मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ।" मेरे मुख से निकले हुए इन शब्दों को सुनकर विष्णु जी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—"हे ब्रह्मन् ! अरे, तुम तो हमारे नाभिकमल द्वारा उत्पन्न हुए हो, फिर भला परब्रह्म कैसे हो सकते हो? हम तुम्हारे स्वामी हैं और तुम हमारे आधीन हो।"

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी की माया में मोहित होकर विष्णु जी ने भी अपने को परब्रह्म ठहराया। तब हम दोनों परम तत्त्व को भूलकर, अपने को ब्रह्म ठहराते हुए परस्पर विवाद करने लगे। उस समय सब लोगों ने यह निश्चय किया कि वेद जिसे परब्रह्म कह दें, उसी को सबसे बड़ा और सबका स्वामी माना जाये। सब सभासदों की इस बात को सुनकर मैंने वेदों का स्मरण किया। जब वे आये और उनसे यह

पूछा गया कि तुम हमें यह बताओ कि परब्रह्म कौन है, तब उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—"हे देवताओ ! जो तीनों गुणों से भिन्न तथा स्वयं प्रकाशित है, जिनके शरीर में करोड़ों ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं और योगीजन जिनका प्रयत्नपूर्वक ध्यान करते हैं, वे सबके स्वामी भगवान् सदाशिव ही परब्रह्म हैं। भगवान् सदाशिव सदैव एक रस रहते हैं तथा संसार का प्रलय भी वही करते हैं। ब्रह्मा एवं विष्णु जी उन्हीं की आज्ञा का पालन करते हुए सृष्टि की रचना तथा भरण-पोषण का कार्य करते हैं।"

हे नारद ! इस प्रकार वेदों ने शिवजी की प्रशंसा की। उस समय मैंने तथा विष्णु जी ने अपनी मूर्खता में भरकर उनसे इस प्रकार कहा—"हे वेदो ! तुम्हारा कथन सत्य नहीं है। शिवजी परब्रह्म कभी नहीं हो सकते।" यह कहकर हमने वेदों को चुप कर दिया। उस समय प्रणव ने हमारी दशा देखकर इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मा तथा हे विष्णो ! तुम दोनों संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन करने वाले हो। अस्तु, तुम्हें ऐसी मूर्खता करनी उचित नहीं है। यद्यपि वे निर्गुण हैं, तथापि उन्होंने तुम्हारे हित के लिए अनेक शरीर धारण किये हैं।" हे नारद ! इस प्रकार प्रणव ने बहुत-सी बातें कहीं, परन्तु हम दोनों के ऊपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।"

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि मेरे तथा विष्णु जी के बीच में एक परम प्रकाशवान् ज्वाला दिव्य स्वरूप से, अपना अपार विस्तार लिये हुए प्रकट हुई। उसका प्रकाश पृथ्वी से आकाश तक व्याप्त था और उसके आदि अथवा अन्त को किसी भी प्रकार नहीं जाना जा सकता था। तदुपरान्त शिवजी लिङ्ग स्वरूप धारणकर, रेवा नदी के तट पर जहाँ हम सब लोग बैठे थे, प्रकट हुए। उस शिवलिंग के प्रकट होते ही सब लोगों का अहंकार

नष्ट हो गया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी प्रकाश से भर गयी। उस समय वहाँ जितने सभासद् उपस्थित थे, वे सब जय-जयकार करने लगे। शिवजी का वह लिंग आठ अंगुल का था, जो चार अंगुल पृथ्वी के ऊपर दिखाई पड़ता था और चार अंगुल छिपा हुआ था। उस लिंग के प्रकट होते ही शिवजी के गण शिवलोक से चलकर उस स्थान पर आ पहुँचे और उसकी पूजा करने लगे। तदुपरान्त ऋषि-मुनियों एवं देवताओं ने भी उस लिंग की पूजा की। उस समय सब ओर आनन्दमंगल होने लगे तथा सबका शोक नष्ट हो गया।

हे नारद ! उस समय विष्णु जी ने मुझे सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—"हे ब्रह्मन् ! हम दोनों के बीच में यह तीसरा व्यक्ति कहाँ से आ पहुँचा?" विष्णु जी की बात सुनकर मैंने उत्तर दिया—"हे विष्णु जी ! अब मुझ में और आप में इस बात का निर्णय भली-भाँति हो जाएगा कि हम में सबका स्वामी कौन है। यह लिंग चार अंगुल नीचे तथा चार अंगुल ऊपर है। अस्तु, मैं यह कहता हूँ कि हम दोनों में से जो कोई इसे स्पर्श कर ले, वही परब्रह्म माना जाए।" यह सुनकर विष्णु जी ने उत्तर दिया—"हे ब्रह्मन् ! हमें तुम्हारी बात स्वीकार है। हम इस लिंग के नीचे के भाग को छूयेंगे और तुम ऊपर का भाग छूओ।" तदुपरान्त विष्णु जी शूकर का रूप धारण कर, उस लिंग के निचले भाग को छूने के लिए चले और मैं हंस का रूप धारण कर, उस लिंग के ऊपरी भाग को छूने के लिए उड़ा उस समय शिवजी ने ऐसी लीला की कि लिंग का निचला भाग बढ़ता हुआ अतल लोक तक चला गया।

हे नारद ! जिस समय शिवजी का लिंग अतल लोक में पहुँचा, उस समय वहाँ के सभी निवासी कृतकृत्य हो गये। उसी समय विष्णु जी भी उस लिंग को स्पर्श करने के लिए अतल लोक में जा पहुँचे। यह देखकर शिवजी ने अपने लिंग को बढ़ाकर वितल लोक में पहुँचा दिया। वहाँ के निवासियों ने उस शिवलिङ्ग की बहुत पूजा की। फिर जब विष्णु जी वहाँ भी जा पहुँचे, तब वह लिङ्ग बढ़कर सुतल लोक में

जा पहुँचा। वहाँ राजा बलि ने उस लिङ्ग की बहुत पूजा की। तदुपरान्त जब विष्णु जी वहाँ भी गये तो वह लिङ्ग बढ़कर तलातल लोक में चला गया। वहाँ त्रिपुरासुर ने उस लिङ्ग का पूजन किया। कुछ समय बाद जब विष्णु जी वहाँ भी पहुँच गये तो वह लिङ्ग बढ़कर महातल लोक में पहुँच गया। वहाँ तक्षक नाग आदि ने उस लिङ्ग की पूजा की। कुछ देर बाद विष्णु जी वहाँ जा पहुँचे तो वह लिंग बढ़कर रसातल लोक में चला गया। वहाँ मयदानव के पुत्र दत्त ने उस लिंग की पूजा की। तदुपरान्त जब विष्णु जी वहाँ भी पहुँच गये तो वह लिंग और अधिक बढ़कर पाताल लोक में चला गया। वहाँ वासुकि नाग आदि ने उसका पूजन किया।

हे नारद ! इसी प्रकार विष्णु जी चौदहों भुवनों में गये, परन्तु उस लिंग को स्पर्श न कर सके। उस समय विष्णु जी निराश होकर उसी स्थान पर लौट आये, जहाँ से उस लिंग को स्पर्श करने को चले थे। इस प्रकार विष्णु जी का सम्पूर्ण अहंकार नष्ट हो गया और वे शिवजी को सबसे बड़ा स्वीकार करने लगे। हे नारद ! शिवजी के चरित्र ऐसे ही हैं कि उनकी महिमा को किसी प्रकार नहीं जाना जा सकता है।''

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! जब मैंने शिवलिंग के ऊपरी भाग पर हाथ रखना चाहा, तो वह अचानक ही बढ़कर भुवर्लोक में जा पहुँचा। जब मैं भुवर्लोक में पहुँचा तो वह लिंग बढ़कर सूर्यलोक में जा पहुँचा जिस समय मैं सूर्य लोक में पहुँचा तो वह लिंग स्वर्ग लोक में जा पहुँचा। हे नारद ! अस्तु, जब मैं वहाँ भी पीछा करता हुआ पहुँचा, तो वह लिंग बढ़कर चन्द्र लोक में जा पहुँचा। इसी प्रकार वह लिङ्ग उडु लोक, शुक्र लोक, भौम लोक, बृहस्पति लोक, सप्तर्षि लोक, महर्लोक, जन लोक, विष्णु लोक, स्कन्द लोक, शिव लोक तथा गौ लोक आदि में गया। मैं जहाँ भी पहुँचता, वहीं से बढ़कर वह लिंग

आगे को चला जाता था। इस प्रकार मैं अत्यन्त दुःखी हो गया।

हे नारद ! उस समय केतकी के पुष्प ने मुझे दुःखी देखकर इस प्रकार पूछा—"हे ब्रह्मन् ! इतने घबराये हुए कहाँ चले जा रहे हो?" मैंने उसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब केतकी पुष्प ने यह सुझाव दिया—"हे ब्रह्मन् ! अब तुम इस लिंग का पीछा छोड़कर अपने स्थान को लौट चलो। मैं सब लोगों के सामने यह बात कह दूँगा कि तुमने शिवलिंग के ऊपरी भाग को स्पर्श कर लिया है।" केतकी पुष्प की यह बात मैंने स्वीकार कर ली। तदुपरान्त मैं उसे साथ लेकर रेवा तट की ओर चल दिया। मार्ग में मुझे सुरभि अर्थात् गौ मिली। उसने भी केतकी पुष्प के समान मुझसे सब हाल पूछा और मेरे बताने पर यह विश्वास दिलाया कि मैं भी तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कर दूँगी तथा सबके सामने यह कह दूँगी कि तुमने इस मूर्ति को छू लिया है। तब मैं केतकी पुष्प तथा सुरभि को ले, अत्यन्त अहंकार में भरकर विष्णु जी के पास जा पहुँचा।"

ॐ ॐ ॐ

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! केतकी पुष्प तथा सुरभि को साथ लिये हुए, मैंने विष्णु जी के समीप जाकर कहा कि मैंने लिंग के ऊपरी भाग को वास्तव में छू लिया है। यदि आपको विश्वास न हो, तो इन दोनों साक्षियों से पूछ लीजिये।" यह सुनकर जब विष्णु जी ने केतकी तथा सुरभि से पूछा, तो उन्होंने यह उत्तर दिया—"हे विष्णु जी ! हम पक्षपात रहित होकर यह बात कहते हैं कि ब्रह्मा ने शिवलिंग के ऊपरी भाग को अवश्य छू लिया है।"

हे नारद ! केतकी तथा सुरभि के ऐसे मिथ्या वचन सुनकर, शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उसी समय उच्च स्वर में यह आकाशवाणी हुई—"अरे मूर्खो ! तुम धर्म के विरुद्ध झूठ क्यों बोल रहे हो? ब्रह्मा हमारे लिंग का स्पर्श कब कर पाये हैं? हे केतकी ! मिथ्या भाषण के

कारण हम तुम्हें शाप देते हैं कि आज से तू हमारे ऊपर नहीं चढ़ायी जायेगी तथा हे सुरभि ! तुम्हें भी हम यह शाप देते हैं कि जिस मुख से तुमने यह बात कही है तथा अपने को नीच बनाया है, उसी मुख से तुम कलियुग में विष्ठा भक्षण करोगी।'' हे नारद ! इस आकाशवाणी को सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हो गया तथा मेरा सम्पूर्ण अहंकार पलभर में नष्ट हो गया। उस समय मैंने यह स्वीकार किया कि शिवजी ही परब्रह्म तथा और सबके स्वामी हैं। हम दोनों ने भयभीत होकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद हम दोनों ने आँखें खोलीं तो शिवजी का केवल एक ही स्वरूप दिखाई देने लगा। उस समय हम दोनों ने शिवजी को अपना स्वामी स्वीकार किया।

हे नारद ! तदुपरान्त मैंने तथा विष्णु जी ने हाथ जोड़कर शिवजी की बड़ी स्तुति की और यह कहा—''हे परम प्रभु ! आप हमें अपना सेवक जानकर, यहीं प्रकट होकर दर्शन दें।'' हमारी इस प्रार्थना को सुनकर शिवजी वहाँ तुरन्त प्रकट हो गये। उस समय उनका जो स्वरूप था, उसका किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। उसी समय सुरभि ने भी शिवजी की प्रार्थना करते हुए यह कहा—''हे प्रभो ! यद्यपि मैंने बहुत बड़ा पाप किया है, तो भी मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि आप कृपा करके मेरे अपराध को क्षमा करें और मेरे मस्तक पर हाथ रखें। इसके अतिरिक्त मेरी यह भी इच्छा है कि मैं अपने दूध की धार से आपका अभिषेक करूँ।'' शिवजी ने हम लोगों की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। तदुपरान्त वहाँ एक बड़ी सभा का आयोजन हुआ और सब लोगों ने शिवजी का पूजन करते हुए, उनका बारम्बार जय-जयकार किया।

हे नारद ! उस समय शिवजी ने हम सबकी स्तुति सुनकर प्रसन्न हो, इस प्रकार कहा—''हे ब्रह्मा तथा हे विष्णो ! हमने तुम्हारा गर्व नष्ट करने के लिए ही अपने स्वरूप को लिंग रूप में प्रकट किया था। अब भविष्य में तुम कभी भी इस प्रकार का अभिमान मत करना। जो

व्यक्ति हमारे लिंग की पूजा करेगा, उसके घर में सब प्रकार ऋद्धि-सिद्धियाँ भरी रहेंगी।'' इस प्रकार सबको वरदान देने के उपरान्त शिवजी अन्तर्धान हो गये। तब अन्य सब लोग भी शिवजी की जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गये। हे नारद ! इस चरित्र को जो व्यक्ति पढ़ता, सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है, वह इस लोक में अत्यन्त प्रसन्न रहता है तथा परलोक में मोक्ष पद प्राप्त करता है।''

ॐ ॐ ॐ

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं पश्चिम दिशा के शिवलिंगों का वर्णन करता हूँ। उसका पूजन, दर्शन तथा स्मरण करने से सुख, सम्पत्ति, यज्ञ, कीर्ति, सन्तान आदि की प्राप्ति होती है। अब तुम उन लिंगों का वृत्तान्त सुनो।

हे नारद ! द्रुपदपुरी में रामेश्वर नामक शिवलिंग विराजमान है। वहीं कालेश्वर नामक दूसरा शिवलिंग भी है। यह दोनों लिंग अपने भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं। मधुपुरी अर्थात् मथुरा में गोपेश्वर नामक शिवलिंग है, जिसकी पूजा करके गोपों ने अत्यन्त सुख प्राप्त किया था। श्री कृष्ण जी ने भी गोपेश्वर शिवलिंग का पूजन करके तीनों लोकों का राज्य पाया था। वहीं रंगेश्वर नामक दूसरा शिवलिंग है। यह दोनों लिंग अपने भक्तों का कल्याण करने वाले हैं। कान्यकुब्जपुर अर्थात् कन्नौज के समीप मदारेश्वर नामक शिवलिंग है। उसके दर्शन मात्र से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते है। द्वारकापुरी में द्वारकेश्वर नामक शिवलिंग है।

हे नारद ! अब मैं उन लिंगों का वर्णन करता हूँ, जिनकी महिमा तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। पश्चिम समुद्र के तट पर गोकर्ण नामक एक तीर्थ है। उसका स्मरण करने मात्र से ही तीनों प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। संसार में पापों को नष्ट करने वाला गोकर्ण तीर्थ के समान

अन्य कोई तीर्थ नहीं है। अन्य स्थानों में करोड़ों वर्षों तक तपस्या करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल गोकर्ण तीर्थ में एक दिन तपस्या करने से ही प्राप्त हो जाता है।

हे नारद ! ऐसे परम पुनीत गोकर्ण क्षेत्र में महाबल नामक शिवजी का लिंग स्थापित है। उस लिंग का स्पर्श रावण भी नहीं कर पाया था। उस लिंग की स्थापना गणपति ने की है। महाबल शिवजी का मन्दिर स्वर्ण तथा रत्नों से अलंकृत है।

हे नारद ! सब देवता शिवजी को अपनी पूजा, सेवा तथा उत्सव द्वारा प्रसन्न किया करते हैं। चित्रसेन तथा विश्वावसु आदि सभी गन्धर्व महाबल लिंग का प्रतिदिन गुणगान करते हैं। पुर्वचित्ती, मेनका, घृताची तथा रम्भा आदि अप्सराएँ अपने नृत्य द्वारा महाबल शिवजी को प्रसन्न करती हैं। महाबल लिंग सर्वोपरि है। सब देवता एवं ऋषि-मुनि उसकी सेवा करते हैं, प्रणाम करते हैं तथा अपने नृत्य-गायन द्वारा प्रसन्नता प्रदान करते हैं।

हे नारद ! महाबल सब देवताओं के स्वामी हैं। उनके अतिरिक्त और भी करोड़ों शिवलिंग तथा तीर्थ उस क्षेत्र में हैं, जिनकी सेवा द्वारा बड़े-बड़े पाप तथा कष्ट दूर हो जाते हैं। महाबल लिंग के दर्शन से ब्रह्म हत्या जैसे पाप भी नष्ट हो जाते हैं तथा दोनों लोकों में सिद्धि प्राप्त होती है। उस गोकर्ण क्षेत्र में अगस्त्य जी ने तप किया था। सनकादिक ने भी वहाँ बहुत दिनों तक तपस्या की थी। निर्ऋति के पुत्रों ने भी उस शिवलिंग का पूजन करके राज्य पद प्राप्त किया। उस स्थान पर तपस्या करके वह्नि दिग्पाल हुए तथा कामदेव ने उस क्षेत्र में तप करके संसार को अपने वश में कर लिया। इसी प्रकार महाबल लिंग की पूजा करके शिशुभार, भद्रकालिका, दुर्मुख, नाग, इलावर्त, गरुड़, रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण आदि सैंकड़ों व्यक्तियों ने अपने मनोरथ को प्राप्त किया है। हम उस लिंग की महिमा का वर्णन कहाँ तक करें?''

ग्यारहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! आप मित्रसह का सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे सुनाने की कृपा करें।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! पूर्व समय में इक्ष्वाकु वंश में मित्रसह नामक एक अत्यन्त धर्मात्मा राजा हुआ। वह राजा अत्यन्त बलवान्, धैर्यवान्, धर्मवान्, वेद-पुराणों का जानने वाला, सत्यवादी, पवित्र मार्ग पर चलने वाला, इन्द्रियजित, राजाओं का शिरोमणि तथा केवल अपनी ही स्त्री से प्रेम रखने वाला था। एक दिन वह शिकार खेलने के लिए वन में गया। वहाँ उसने अनेक सिंह आदि हिंसक जीवों का शिकार किया। उस हत्या के कारण कुछ समय के लिए राजा की श्रेष्ठ बुद्धि नष्ट हो गयी। उसी वन में एक राक्षस रहता था। जब राजा ने उसे देखा तो अपने अस्त्र द्वारा उसे तुरन्त ही मार डाला। उस राक्षस का एक भाई भी वहीं रहता था। जब उसने भाई की मृत्यु देखी, तो मन में इस प्रकार विचार किया कि यह राजा देवता तथा दैत्य दोनों का स्वामी है। मैं इससे अपने भाई की मृत्यु का बदला किस प्रकार लूँ।"

हे नारद ! ऐसा विचार करके वह राक्षस मनुष्य का रूप धारण कर राजा के समीप पहुँचा और हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो ! आप सूर्यवंश में शिरोमणि हैं। इस समय मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे राजन् ! इन दिनों मेरी आजीविका का कोई साधन नहीं है, अतः आप मुझे अपने यहाँ सेवक रख लें।" राजा मित्रसह को राक्षस की बातों में कुछ छल दिखाई नहीं दिया। तब उन्होंने उसे अत्यन्त प्रेम पूर्वक अपना रसोई बनाने वाला नियुक्त कर लिया। तदुपरान्त राजा शिकार खेलने के पश्चात् उस ब्राह्मण रूपधारी राक्षस को लिये हुए, अपनी राजधानी को लौट आया।

हे नारद ! राजा के लौटने की प्रसन्नता में उसकी रानी मदयन्ती ने, जो दमयन्ती के समान ही पतिव्रता थी, अपने सभी सगे-सम्बन्धियों तथा हितैषियों की ज्यौनार की। उस ज्यौनार के लिए जो भोजन बनाया

गया था, उसे ब्राह्मण रूपधारी उसी राक्षस ने तैयार किया था। उस राक्षस ने भोजन में नरमांस मिला दिया था, जिसे राजा नहीं जान सके थे। अस्तु, जब गुरु वशिष्ठ भोजन करने के लिए बैठे और उन्हें अपने तपो बल द्वारा यह ज्ञात हुआ कि इस भोजन में नरमांस मिला हुआ है, तो उन्होंने अत्यन्त क्रोध में भरकर राजा मित्रसह से इस प्रकार कहा— ''हे राजन्! तुझे धिक्कार है, जो तूने हमारे सामने मनुष्य का मांस पकाकर रख दिया है। अब हम तुझे यह शाप देते हैं कि तू राक्षस बनकर, अपने कर्म का फल प्राप्त करे।'' वशिष्ठ जी के मुख से यह शाप सुनकर जब राजा मित्रसह ने विचार किया तो उसे भी यह ज्ञात हो गया कि रसोई बनाने वाले ने उस भोजन में नरमांस मिला दिया है। उस राक्षस का यह छल देखकर राजा ने अपने मन में सोचा कि वशिष्ठ जी ने मेरा कोई अपराध न होते हुए भी मुझे ऐसा शाप दे डाला है, अतः मैं भी इन्हें शाप दूँगा।

हे नारद! यह विचार कर राजा ने वशिष्ठ जी को शाप देने की इच्छा से अपने हाथ में पानी लिया। उस समय रानी ने उसे समझाते हुए यह कहा—''हे स्वामी! वेद का कथन है कि गुरु चाहे जितना क्रोध करे, परन्तु शिष्य को उसका प्रतिकार नहीं करना चाहिए।'' यह सुनकर राजा ने वशिष्ठ जी को शाप नहीं दिया, परन्तु वशिष्ठ जी के शाप के कारण वह स्वयं महाभयानक राक्षस होकर वन में चला गया और कल्माषपाद के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। वह धर्म-कर्म को त्यागकर, वन में जो भी जीव दिखाई देता, उसी को पकड़कर खा जाता था। उसी दशा में उसने एक मुनि को देखा। कल्माषपाद ने बिना कोई विचार किये, मुनि के समीप पहुँचकर उन्हें इस प्रकार पकड़ लिया, जिस प्रकार शेर खरगोश को पकड़ लेता है। उस समय मुनि की स्त्री अपने पति को राक्षस रूपी राजा के पञ्जे में देखकर अत्यन्त दुःखी हुई।

हे नारद! तब मुनि की स्त्री ने राजा की प्रार्थना करते हुए यह कहा—''हे राजन्! तुम ऐसा कुकर्म क्यों कर रहे हो? तुम अन्यायी

बनकर ब्रह्म हत्या मत करो। यदि तुम मेरे पति को नहीं छोड़ोगे तो मेरा जीवन कठिन हो जायेगा, क्योंकि बिना पुरुष के स्त्री की जीना महान् कष्टप्रद है। यदि तुम मेरे पति को छोड़ दोगे तो तुम्हें बड़ा पुण्य होगा।''

हे नारद ! इस प्रकार मुनि-पत्नी ने राजा की बहुत अनुनय-विनय की ; परन्तु राक्षस रूपी राजा को कुछ भी दया नहीं आयी। वह उसके सामने ही ब्राह्मण का सिर तोड़कर उसे खा गया। यह देखकर उसकी स्त्री ने सती होने की तैयारी की। तदुपरान्त चिता बनाकर जब वह उसमें बैठी तो राजा को शाप देती हुई इस प्रकार कहने लगी—''हे राजन् ! जब तुम अपनी स्त्री के साथ भोग करना चाहोगे, उस समय तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।'' इतना कहकर वह मुनि-पत्नी अपने पति के साथ ही देवलोक को चली गयी और वहाँ अनेक प्रकार के सुन्दर भोग भोगने लगी। इधर शाप की अवधि समाप्त होने पर राजा भी अपने पूर्वरूप को प्राप्त हो, घर लौट आया। राजा की रानी मदयन्ती को मुनि की स्त्री के शाप का वृत्तान्त ज्ञात हो चुका था। अस्तु, एक दिन जब राजा ने उसके साथ मैथुन करना चाहा, उस समय रानी ने विधवा होने के भय से उसे वह कार्य करने से रोक दिया। परिणामस्वरूप राजा मैथुन के बिना अन्य भोगों को व्यर्थ समझकर, राजपाट त्याग, वन को चला गया। उस समय राजा के मन्त्रियों ने वशिष्ठ जी के पास जाकर उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया और यह कहा—''हे प्रभो ! इस समय सूर्यवंश का अस्त हुआ जाता है, अस्तु, आप कोई अनुग्रह करने की कृपा करें। मन्त्री की बात सुनकर वशिष्ठ जी ने सूर्यवंश के स्थिर रहने के निमित्त रानी मदयन्ती द्वारा एक बालक को उत्पन्न किया। उस बालक का नाम अंशुमान अथवा अंशुक हुआ। उसके जन्म लेने पर सम्पूर्ण संसार के मनोरथ सिद्ध हुए।

हे नारद ! उधर कल्माषपाद जब वन में पहुँचा, तो उसने एक महाभयानक स्त्री को देखा, जो उसके पीछे-पीछे अत्यंत क्रोधपूर्वक

चल रही थी। वह स्त्री ब्रह्म हत्या थी, जो ब्राह्मण का वध करने के कारण राजा के पीछे लगी हुई थी। राजा ने उससे मुक्ति पाने के हेतु बड़े-बड़े तीर्थों की परिक्रमा की तथा अनेक मंत्रों का जप किया, परन्तु उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। उस समय राजा ने मिथिलापुरी में पहुँचकर गौतम-ऋषि से भेंट की और उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त सब हाल कह सुनाया ! तब गौतम जी ने राजा कल्माषपाद को महाबल शिवलिंग का पूजन करने के लिए कहा। गौतम जी की आज्ञानुसार राजा ने गोकर्ण तीर्थ में पहुँचकर स्नान किया तथा महाबल शिवलिंग का पूजन किया। उससे राजा का पाप नष्ट हो गया और ब्रह्म हत्या दूर हो गयी।''

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! जब राजा कल्माषपाद सभी तीर्थों एवं मन्दिरों का भ्रमण कर आये, परन्तु ब्रह्म हत्या ने उनका पीछा न छोड़ा, उस समय वे मिथिलापुरी गये। उसी समय राजा ने देखा कि गौतम मुनि अपने शिष्यों सहित परम तेजस्वी रूप धारण किये चले आ रहे हैं। जब वे ऋषि राजा कल्माषपाद के समीप पहुँचे तो राजा ने उन्हें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। उस समय गौतम मुनि ने राजा की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा—''हे राजन् ! तुम्हारी प्रजा तो सकुशल है? तुम यहाँ किस लिए आये हो?''

हे नारद ! गौतम जी के मुख से यह वचन सुनकर राजा ने उत्तर दिया—''हे प्रभो ! आपकी कृपा से सब कुशल है, परन्तु जब मैं राक्षस रूप में था, उस समय मैंने एक ब्राह्मण को मार डाला था। उस पाप के कारण ब्रह्म हत्या पिशाची रूप धारण कर मेरे पीछे लगी है और मुझे हर समय दुःख पहुँचाया करती है। हे नाथ ! आप इस समय कहाँ से चले आ रहे हैं? आपके मुख को देखकर यह प्रतीत होता है कि आप कहीं विदेश से लौटकर आ रहे हैं। अस्तु, अब आप कृपा

करके मुझे ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे मेरा यह पाप दूर हो जाए।''

हे नारद ! राजा कल्माषपाद के मुख से यह वृत्तान्त सुनकर गौतम जी ने कहा—''हे राजन् ! तुम परम धन्य हो, जो तुमने हमारे सामने अपने पाप का वर्णन किया है। भगवान् सदाशिव अपने भक्तों की सब प्रकार से रक्षा करते हैं। इस समय वे महाबल शिवलिंग के रूप में गोकर्ण क्षेत्र में विराजमान हैं। उनके समान पापों को नष्ट करने वाल अन्य कोई नहीं है। गोकर्ण तीर्थ सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता है। अस्तु, तुम उस क्षेत्र में जाकर पहले गोकर्ण तीर्थ में स्नान करो, तदुपरान्त महाबल लिंग का पूजन करो। इस समय हम भी वहीं से चले आ रहे हैं। वेद का कथन है कि शिवजी को, शिवरात्रि का व्रत सब व्रतों से अधिक प्रिय है, उसके समान फलदायक व्रत अन्य कोई नहीं होता। शिवरात्रि का व्रत फाल्गुन की चतुर्दशी को होता है, अस्तु जो मनुष्य इस दिन व्रत करके रात्रि भर जागरण करता है तथा शिवजी के लिंग का पूजन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे राजन् ! शिवजी का यह व्रत शिवजी की अत्यन्त कृपा होने पर ही प्राप्त होता है। वहाँ सभी देवता, ऋषि-मुनि, स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बालक, युवा आदि देश-देश से आये थे। हमने भी अपने शिष्यों सहित वहाँ पहुँचकर महाबललिंग का पूजन करके आनन्द प्राप्त किया तथा गोकर्ण में स्नान करके यथाशक्ति दान दिया। महाबल लिंग का पूजन तथा जागरण करने के उपरान्त सब लोग अपने-अपने घर को लौट गये। राजा जनक भी शिवलिंग का पूजन करने के लिए गये थे। वहाँ उन्होंने हमसे मिथिलापुरी में आने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके ही हम यहाँ आये हैं। यहाँ हम राजा जनक का यज्ञ करायेंगे। हे राजन् ! जिस समय हम मार्ग में आ रहे थे, उस समय हमने एक ऐसे अद्भुत चरित्र को देखा, जिसका ध्यान अभी तक नहीं भूलता है।''

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! गौतम मुनि के मुख से यह वचन सुनकर राजा ने कहा—"हे प्रभो ! आपने मार्ग में जिस आश्चर्यजनक दृश्य को देखा, उसे आप मुझे भी सुनाने की कृपा करें।" गौतम जी बोले—"हे राजन् ! सुनो, जिस समय हम गोकर्ण तीर्थ से लौटे, उस समय मार्ग में एक तालाब देखकर, वहाँ कुछ समय के लिए ठहर गये। जब हम स्नान आदि नित्यकर्म से निवृत्त होकर वहाँ बैठे तो उसी समय हमने वहाँ आती हुई एक ऐसी स्त्री को देखा, जो चाण्डाली के समान थी। उसे कुष्ठ-रोग हो रहा था तथा उसके सम्पूर्ण शरीर में रक्त और चर्बी भरी हुई थी जिसे कीड़े खा रहे थे। उसे देखकर हमने यह समझा कि यह स्त्री थोड़ी ही देर में मर जाएगी, परन्तु तभी यह आश्चर्यजनक घटना घटी कि सूर्य के समान प्रकाशवान् एक विमान आकाश से उतरकर वहाँ आ पहुँचा। जब वह विमान पृथ्वी पर उतरकर खड़ा हो गया और उसमें से शिवजी के गण उतरे तो हमने प्रणाम करके यह पूछा—"हे शिवगणो ! आप यहाँ किसलिए आये हैं?"

हे राजन् ! हमारी बात सुनकर गणों ने उत्तर दिया—"हे मुनि ! हम इस स्त्री को लेने के लिए आये हैं जो अभी-अभी यहाँ आ पहुँची है।" गणों की बात सुनकर मैंने आश्चर्य से भरकर कहा—"अरे ! यह स्त्री तो अत्यन्त पापिनी प्रतीत होती है। इसकी दशा देखकर तो यह ज्ञात नहीं होता कि इसने शिवपुर प्राप्त करने योग्य कोई भी शुभ-कर्म किया होगा।"

हे राजन् ! मेरी यह बात सुनकर शिवगणों ने कहा—"हे गौतम ! पूर्व-जन्म में यह एक ब्राह्मण की स्त्री थी। इसके पति का नाम सुमुनि था। जब इसका पति मर गया तो यह धर्म-त्यागकर अनेक प्रकार से पाप करने लगी। उस अकर्म के कारण लोगों ने इसे जाति से बहिष्कृत कर दिया। उस समय यह संस्कारणवश एक शूद्र के यहाँ जा बैठी। एक दिन जब वह शूद्र, जिसकी यह रखैल थी, कहीं बाहर गया हुआ

था, तब इसने मद्य पीकर मांस खाने की इच्छा की और बकरे के भ्रम में एक गौ के बछड़े को काट डाला। जब इसे कुछ देर बाद यह ज्ञात हुआ कि यह बकरी का बच्चा नहीं, अपितु बछड़ा है, तो भी यह जान-बूझकर शिव-शिव कहती हुई, उस बछड़े का आधा मांस खा गयी। जो आधा मांस शेष बचा, उसे इसने इधर-उधर फेंककर यह प्रसिद्ध कर दिया कि बछड़े को सिंह खा गया है। मृत्यु के पश्चात् यह डोम के यहाँ जन्म की अन्धी तथा कोढ़िन बनकर उत्पन्न हुई। इस कारण सभी भाई-बन्धुओं ने इसका साथ छोड़ दिया और किसी ने भी इसके साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया। संयोगवश एक बार जब कुछ मनुष्य गोकर्ण तीर्थ को जा रहे थे, उस समय यह स्त्री भी उनके साथ यह विचार कर के चल दी। जिस दिन शिवरात्रि थी, उसी दिन यह गोकर्ण तीर्थ में जा पहुँची।

हे मुनि ! वहाँ यह सब लोगों से भोजन-वस्त्र की याचना करती थी, परन्तु इसके घृणित स्वरूप को देखकर कोई कुछ नहीं देता था। तब एक मनुष्य ने इसके हाथ पर बिल्वपत्र रख दिया। इस स्त्री ने बिल्वपत्र को खाने की वस्तु न जानकर, पृथ्वी पर फेंक दिया। संयोगवश वह बिल्वपत्र अचानक ही शिवलिंग पर जा गिरा। प्रातःकाल होने पर जब सब लोग महाबल शिवलिंग की पूजा करके अपने-अपने घरों को चले गये, तब यह स्त्री निराश हो, वहाँ से उठती-बैठती, रोती-पीटती, चलती हुई यहाँ आ पहुँची और आज मूर्च्छित होकर गिर पड़ी है। इस समय भगवान् सदाशिव ने इसे लेने के लिए विमान भेजा है। अब यह शिवलोक को जायेगी क्योंकि, इसने चाहे अज्ञानावस्था में ही सही, परन्तु शिवरात्रि का व्रत किया है एवं शिवजी का पूजन करके जागरण भी किया है। भगवान् शिव का नाम बड़े-बड़े पापों को जलाकर भस्म कर देता है। शिवरात्रि का व्रत भी सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करने वाला है।''

हे राजन् ! इतना कहकर उन शिवगणों ने उस स्त्री को तेज से परिपूर्ण कर दिया, जिसके कारण वह परम सुन्दरी प्रतीत होने लगी।

इसके उपरान्त वे चारों शिवगण उस स्त्री को विमान पर बैठाकर, कैलाश ले गये। वहाँ जाकर वह स्त्री गिरिजा की सखी हुई। गोकर्ण क्षेत्र तथा महाबल लिंग की ऐसी महिमा है। अस्तु, तुम भी उसी क्षेत्र में जाओ और महाबललिंग का पूजन करो तो तुम्हारा यह पाप दूर हो जाएगा।'' इतना कहकर जब गौतम मुनि चले गये, तब राजा कल्माषपाद अर्थात् मित्रसह उनकी आज्ञानुसार गोकर्णक्षेत्र में जा पहुँचा। वहाँ उसने सब तीर्थों में स्नान कर, महाबल लिंग का पूजन किया। उसने शिवरात्रि का व्रत करके, जागरण किया तथा उत्सव मनाया। इन शुभ कर्मों के कारण राजा की ब्रह्म हत्या छूट गयी, जिससे उसे अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई। अन्त में, वह शिवपद को प्राप्त हुआ। राजा मित्रसह तथा महाबललिंग की यह कथा सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाली है। जो लोग इस चरित्र को पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे सदैव प्रसन्न रहते हैं।''

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं उत्तर दिशा के शिवलिंगों का वर्णन करता हूँ। नैमिष नामक प्रसिद्ध क्षेत्र में ललितेश्वर शिवलिंग स्थापित है, उसकी पूजा सभी देवता, मुनि आदि करते हैं। उस लिंग को भगवती ललिता जी ने स्थापित किया तथा उसी स्थान पर अत्यन्त कठिन तप करके अपना मनोरथ पाया था। ललितेश्वर शिवलिंग की पूजा से असंख्य मनुष्यों को मुक्ति प्राप्त हुई है। उसी स्थान पर दधीचीश्वर नामक एक अन्य शिवलिंग भी है। उसे दधीचि मुनि ने स्थापित किया था। जो मनुष्य दधीचीश्वर शिवलिंग का पूजन करता है, वह युद्ध में कभी किसी से नहीं हारता और उसके शरीर में किसी भी शस्त्र का घाव नहीं होता है।

हे नारद ! अब मैं एक अन्य शिवलिंग का वर्णन करता हूँ, जिसकी पूजा करने से मनुष्यों को प्रसन्नता प्राप्त होती है। मैं जिस गोकर्ण क्षेत्र

का वर्णन कर चुका हूँ, वहीं पर चन्द्रभाल नामक एक शिवजी का अन्य लिंग स्थित है। उस लिंग को रावण कैलाश से लाया था और अपने घर लिये जा रहा था, परन्तु शिवजी उसके साथ न जाकर वहीं रह गये। उसी लिंग के साथ वैद्यनाथ भी आये, जो चिता भूमि में स्थित हो गये।

हे नारद ! एक समय रावण ने हिमाचल पर्वत पर पहुँचकर, अत्यन्त कठिन तप किया। वहाँ उसने शिवजी के एक लिंग की स्थापना कर, बहुत होम किया, परन्तु शिवजी उस पर किसी भी प्रकार प्रसन्न न हुए। तब रावण ने अपनी नौ मस्तक काटकर शिवलिंग पर चढ़ा दिये। जब उसने दसवाँ मस्तक भी काट डालना चाहा, उस समय शिवजी उसकी सेवा तथा लगन से प्रसन्न होकर, तत्काल प्रकट हुए और रावण का हाथ पकड़कर कहने लगे कि तुम जो वर चाहो, वह हमसे माँग लो। रावण ने कहा—"हे प्रभो ! मैं आपको यहाँ से ले जाकर अपने नगर में स्थापित कर सकूँ।" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे रावण ! तुम हमारे लिंग को ले जाकर अपने नगर में स्थापित कर सकते हो, परन्तु यदि तुमने मार्ग में किसी स्थान पर हमें बीच में रख दिया तो हम वहीं स्थित हो जायेंगे।" यह सुनकर रावण चतुराई में भरकर बोला—"हे प्रभो ! आप दो स्वरूप धारण करें।"

हे नारद ! रावण की बात सुनकर शिवजी दो लिंगों के रूप में विभाजित हो गये। तदुपरान्त रावण उन दोनों लिंगों को मंजूषा में रखकर, अपने नगर को चल दिया। उसी समय शिवजी ने यह माया की कि मार्ग में एक स्थान पर रावण को बड़े जोर से लघुशंका लगी। रावण उस लघुशंका को किसी भी प्रकार रोकने में असमर्थ हो उठा। तब उसने यह विचार किया कि यदि यहाँ कोई व्यक्ति मिल जाए तो मैं उसे कुछ देर के लिए यह मंजूषा देकर लघुशंका कर लूँ, तदुपरान्त आगे बढ़ूँ। इस विचार से जब रावण ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी तो उसे एक ग्वाला दिखाई दिया जो पशुओं को चरा रहा था। रावण ने उसके पास पहुँचकर कहा—"हे बन्धु ! तुम इस मंजूषा को कुछ देर

तक उठाये रहो, तब तक मैं लघुशंका कर लेता हूँ।'' रावण की बात सुनकर गोप ने उत्तर दिया—''हे दशानन ! मैं एक घड़ी तक इस मंजूषा को अपने हाथ में लिये रहूँगा, तदुपरान्त इसे पृथ्वी पर रख दूँगा।'' गोप की यह बात रावण ने स्वीकार कर ली।

हे नारद ! एक घड़ी के स्थान पर रावण दो घड़ी तक लघुशंका करता रहा, परन्तु उसका मूत्र किसी प्रकार भी न रुका। तब उस गोप ने रावण को सम्बोधत करते हुए कहा—''हे रावण ! तुम्हें दूना समय व्यतीत हो गया है, अस्तु मैं इस मंजूषा को पृथ्वी पर रखे देता हूँ।'' इस प्रकार गोप ने उस मंजूषा को पृथ्वी पर रख दिया, जिससे दोनों लिंग उसी स्थान पर स्थिर हो गये। जब रावण लघुशंका करके उठा और दोनों लिंगों को उठाने का प्रयत्न करने लगा तो लिंग अपने स्थान से तनिक भी विचलित न हुए। तब से वे दोनों लिंग वहीं स्थित हैं। जो लिंग पीठ की ओर था, वह वैद्यनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी गणना बारह ज्योतिर्लिङ्गों में की जाती है। जो लिङ्ग सामने की ओर था, वह चन्द्रभाल के नाम से प्रसिद्ध होकर गोकर्ण क्षेत्र में स्थित हुआ।

हे नारद ! शिवरात्रि के दिन इन शिवलिङ्गों का पूजन करने के हेतु देवता, मुनि, सिद्ध, मनुष्य आदि सब लोग चारों दिशाओं से आते हैं। वे सब इन लिङ्गों का पूजन करके निष्पाप हो जाते हैं। माघ मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन उस स्थान से चार कोस की दूरी तक सिंह, हाथी आदि सभी दुःखदायी जीव वन के भीतर भाग जाते हैं। उस स्थान की यह विचित्रता संसार में प्रसिद्ध है। इन विचित्र चरित्रों को देखकर सब लोग जय-जयकार शब्द का उच्चारण करते हैं तथा भगवान् सदाशिव का गुणगान करते हैं। चतुर्दशी तक शिवजी अपने पूर्ण अंश सहित वहाँ निवास करते हैं। हे नारद ! शिवरात्रि का जागरण सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करने वाला है। इस कथा को जो व्यक्ति पढ़ता, सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है, वह संसार में प्रसन्न रहकर अन्त में शिवपद को प्राप्त होता है।''

❁❁❁

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब मैं उत्तर दिशा के प्रसिद्ध शिवलिंगों तथा तीर्थों का वर्णन करता हूँ, जिनके दर्शन मात्र से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट होकर, मनोरथ प्राप्त होते हैं। उनका पूजन करने से कोई भी दुःख शेष नहीं रहता। उनमें से एक तीर्थ पंचप्रयाग के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करने से सब प्रकार के कष्ट तत्काल नष्ट हो जाते हैं। देव प्रयाग में ललितेश्वर तथा देनेश्वर नामक दो शिवलिंग हैं। उनके उत्तर की ओर रुद्रप्रयाग में रुद्रेश्वर नामक शिवलिंग स्थित है, जिसका पूजन करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। वही कनखल क्षेत्र में दक्षेश्वर नामक शिवलिंग स्थित है। उस लिंग की स्थापना दक्ष प्रजापति ने की थी। दक्षेश्वर शिवलिंग की महिमा बहुत बड़ी है। उनकी पूजा करने से किसी प्रकार का दोष और पाप नहीं रहता।

हे नारद ! दक्षेश्वर के समीप ही सतीकुण्ड नामक प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसके ऊपर बिल्वेश्वर नामक शिवलिंग स्थित है। उसका पूजन करने से धर्म की वृद्धि होती है। उनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य शिवजी के समान हो जाता है। दक्षेश्वर के समीप ही नीलशैल के ऊपर नीलेश्वर नामक शिवलिंग है। वह लिंग गंगा जी के तट पर स्थित है। अस्तु वहाँ स्नान करने का बड़ा माहात्म्य है। वहीं भीम चण्डिका देवी का निवास है। उनके निकट भी एक उत्तम कुण्ड है, जिसमें स्नान करने से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। वहाँ आज तक शंख ध्वनि सुनाई पड़ती है, परन्तु पापी लोग उसको नहीं सुन सकते।

हे नारद ! पूर्व समय में असमचिन्त नामक एक ब्राह्मण बड़ा पापी था, परन्तु उसने किसी शिवभक्त से उपदेश पाकर शिवजी के नाम का जप किया। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे अपना गण बना लिया और उसका नाम नील रखकर उसके द्वारा स्थापित शिवलिंग में विराजमान हुए। वह लिंग दोनों लोकों में हर्ष प्रदान करता है। बिल्वेश्वर शिवलिंग के समीप ही त्रिमूर्तीश्वर नामक शिवलिंग है।

वहाँ रक्तजल नामक एक पवित्र तीर्थ भी है। उसके समीप ही नन्दीश्वर नामक शिवलिंग है। वहीं शिवतीर्थ स्थित है जो मनुष्य शिवतीर्थ में स्नान करके, नन्दीश्वर लिंग का पूजन करता है, उसे दोनों लोकों में आनन्द मिलता है। नन्दीश्वर लिंग के समीप ही भद्रेश्वर नामक शिवलिंग है। उसका पूजन करने से मनुष्य शिवजी का गण हो जाता है।

हे नारद ! भद्रेश्वर शिवलिंग के समीप ही भैरवेश्वर शिवलिंग विराजमान है। वहीं शालिहोत्रेश्वर नामक शिवलिंग है, जिसकी सेवा करके शालिहोत्र ने सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त किया था। कौमुदी तीर्थ के तट पर चन्द्रेश्वर शिवजी का लिंग प्रतिष्ठित है। वहाँ चन्द्रमा ने शिवजी का तप किया था और उनके मस्तक पर निवास पाया था। गंगा जी के बीच में कुब्जाम्र तीर्थ तथा पूर्ण तीर्थ विद्यमान हैं। वहीं सोमेश्वर नामक शिवजी का लिंग है। उस लिंग की पूजा करने से मनुष्य दोनों लोकों में प्रसन्नता प्राप्त करता है। अग्नि तीर्थ में अग्नीश्वर नामक शिवजी का लिंग विराजमान है। वायु तीर्थ में पवनेश्वर नामक शिवजी का लिंग स्थित है, जो सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है।

हे नारद ! गंगा के पश्चिमी तट पर तपोवन है। वहाँ लक्ष्मण ने बड़ी तपस्या की थी और शिवजी की कृपा से निष्पाप हुए थे। जब रामचन्द्र जी लंका जीतकर सीता तथा लक्ष्मण सहित अयोध्या में आए तो उन्हें क्षय रोग हो गया ; क्योंकि उन्होंने मेघनाद ब्राह्मण का वध किया था। अस्तु, वशिष्ठ मुनि के उपदेशानुसार वे तपस्या करने के हेतु उस तपोवन में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने बारह वर्ष तक बिना भोजन किये तपस्या की। फिर सौ वर्ष तक वे केवल वायु का भक्षण करके, षडाक्षर-मन्त्र का जप करते हुए एक पाँव से पृथ्वी पर खड़े हो, शिवजी का ध्यान धरते रहे। उस समय शिवजी प्रसन्न होकर उनके पास पहुँचे और यह बोले—"हे लक्ष्मण ! अब तुम शुद्ध हो गये हो। अस्तु तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा। इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये तथा कुछ अंश से लक्ष्मण द्वारा स्थापित शिवलिंग में प्रविष्ट होकर

वहाँ स्थित रहे। वह शिवलिंग लक्ष्मणनाथ नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका दर्शन करने से कोई रोग नहीं रहता।''

हे नारद ! मायाक्षेत्र में जो शिवलिङ्ग विराजमान हैं, उनमें से कुछ का वर्णन मैंने तुमसे किया। नेपाल में पशुपतिनाथ नामक जो शिवलिङ्ग है, वह महिषभाग अर्थात् भैंसे के शरीर का एक भाग है। पशुपतिनाथ महादेव अपने भक्तों को अत्यन्त आनन्द प्राप्त करने वाले हैं। नेपाल में मुक्तिनाथ नामक दूसरा शिवलिङ्ग भी है। उसका पूजन करने से भी दोनों लोकों में आनन्द मिलता है।'' इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! चारों दिशाओं के शिवलिंगों का वर्णन मैंने तुमसे किया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो, वह कहो?''

ॐ ॐ ॐ

सोलहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी बोले—''हे पिता ! शिवलिङ्ग की पूजा किस समय से प्रारम्भ हुई, यह आप मुझे सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! लिङ्ग की पूजा सनातन से चली आयी है। उसका प्रारम्भ नहीं बताया जा सकता, फिर भी हमने कल्पभेद के अनुसार जो कुछ सुना है, वह तुम्हें सुनाता हूँ। सुप्रसिद्ध दारुक वन में शिवजी के बहुत-से भक्त रहा करते थे। वहाँ रहने वाले ऋषि-मुनि तीनों समय शिवजी का पूजन करते, उनके नाम का स्मरण करते एवं हवन आदि शुभ कर्म किया करते थे। इस प्रकार उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया, तब शिवजी ने अपने मन में उन्हें दर्शन देने की इच्छा की।

हे नारद ! एक दिन वे ऋषि-मुनि भोजन की खोज में अपने घरों से बाहर गये हुए थे। उसी समय भगवान् सदाशिव सती के वियोग में व्याकुल हो, उस वन में जा पहुँचे। उसी समय ऋषि-मुनियों की स्त्रियों ने उन्हें देखा तो पहले तो वे इधर-उधर भागीं, परन्तु फिर शिवजी की माया के वशीभूत हो, अपने घरों से बाहर निकल कर, उनके समीप जा

पहुँचीं और काम-पीड़िता हो मैथुन की इच्छा से उनके समीप खड़ी हो गयीं। तदुपरान्त काम का अधिक वेग बढ़ने पर, वे लज्जा को त्यागकर शिवजी के शरीर से लिपट गयीं। उस समय ऋषि-मुनि भी लौटकर आ गये। जब उन्होंने अपनी स्त्रियों की ऐसी दशा देखी तो वे शिवजी को साधारण मनुष्य जानकर, अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्हें यह शाप दिया कि तुम्हारा लिङ्ग इसी समय कटकर गिर पड़े।

हे नारद ! उनके शाप के कारण शिवजी का लिंग कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तदुपरान्त शिवजी की माया से वह लिंग तीनों लोकों में भ्रमण करता हुआ, सबको जलाने लगा। उस समय तीनों लोकों के प्राणी उन ऋषि-मुनियों सहित मेरे पास आये और इस प्रकार कहने लगे—''हे प्रभो ! यह कैसा चरित्र है, जिसके कारण सम्पूर्ण सृष्टि भस्म हुई जाती है?'' उनकी प्रार्थना सुनकर मैंने ध्यान धरकर सब हाल जाना, तदुपरान्त उन ऋषि-मुनियों से यह कहा—''हे मुनियो ! तुमने अपनी मूर्खता के वशीभूत होकर जो अकर्म किया है, उसी का फल सब लोगों को भोगना पड़ रहा है। भगवान् सदाशिव तुम्हारी परीक्षा लेने के निमित्त तुम लोगों के घर गये थे, परन्तु तुमने अपने अज्ञान के कारण उन्हें नहीं पहचाना और शाप दे दिया। अब शिवजी का लिंग तीनों लोकों को भस्म कर रहा है। मैं तथा विष्णु जी शिवजी के सेवक हैं। अब, जब तक वह शिवलिंग अपने स्थान पर स्थित नहीं हो जाता, तब तक सृष्टि में आनन्द नहीं होगा। इसलिए उचित है कि तुम सब लोग शिवजी की शरण में जाओ और उन्हें प्रसन्न करो।

हे नारद ! इतना कहकर मैं, विष्णु जी को साथ ले, उन ऋषि-मुनियों सहित शिवजी की शरण में गया। हम सब लोगों ने शिवजी की बहुत स्तुति की, तब शिवजी ने प्रसन्न होकर हमसे वरदान माँगने के लिए कहा। उस समय हमने उनसे यह प्रार्थना की—''हे प्रभो ! आप अपने लिंग को रोक कर, सृष्टि को भस्म होने से बचाइये।'' यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—''हे देवताओ ! यदि गिरिजा योनि रूप होकर हमारे लिंग को धारण करें तो हम शान्त हो जायेंगे।''

शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर हम सब देवताओं ने निराकार स्वरूप, आदिशक्ति गिरिजा की प्रार्थना की। तब उन्होंने योनि रूप होकर शिवजी का लिंग धारण कर लिया। उस समय तीनों लोकों को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ और सब लोग शिव-गिरिजा की स्तुति करने लगे।

हे नारद ! शिवजी ने सब लोगों को यह आज्ञा दी कि तुम लोग हमारे लिंग का पूजन करो, अन्यथा ठीक न होगा। तब शिवजी की आज्ञा पाकर सब लोगों ने उसी दशा में शिवजी का पूजन किया। तभी से संसार में लिंग पूजा प्रचलित हुई है।"

ॐ ॐ ॐ

सत्रहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! अब आप मुझे अन्धकेश्वर शिवलिंग की कथा सुनाने की कृपा करें और यह बतायें कि शिवजी अपने शत्रु अन्धक के नाम से क्यों प्रसिद्ध हुए?" ब्रह्मा जी बोले—

"हे नारद ! अन्धक की उत्पत्ति कक्ष द्वारा हुई थी। उसने मेरा बड़ा तप करके यह वरदान प्राप्त किया था कि उसे तीनों लोकों में कोई भी न मार सके। अस्तु, मुझसे वरदान पाकर उसने तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया तथा सब देवताओं को अपने स्थान से पदच्युत कर, वह स्वयं तीनों भुवनों का राज्य करने लगा। नैर्ऋत्य कोण के समुद्र में एक बहुत बड़ा गड्ढा था। उसी गड्ढे में वह अपनी सेना सहित रहा करता था। अस्तु, जब देवता बहुत दुःखी हुए, तो वे एक दिन शिवजी की शरण में जाकर उनकी स्तुति करने लगे। उस समय शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें यह आश्वासन दिया—"हे देवताओ ! तुम चिन्ता मत करो, अब हम अन्धक का संहार कर देंगे।"

हे नारद ! शिवजी की आज्ञा सुनकर सब देवता अन्धक से युद्ध करने के लिए उसके समीप जा पहुँचे। उस समय देवताओं तथा दैत्यों

में महाभयानक युद्ध हुआ। उस युद्ध में दैत्य परास्त हो गये। उस समय जब अन्धक ने अपने गर्त्त में घुसकर प्राण बचाने की इच्छा की, तभी शिवजी ने वहाँ पहुँचकर उसे अपने त्रिशूल से छेदकर ऊपर उठा लिया। त्रिशूल का स्पर्श होते ही अन्धक से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये। तब वह ज्ञान प्राप्त करके भगवान् सदाशिव की स्तुति करता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो ! जो व्यक्ति आपको अपनी मृत्यु के समय देखता है वह शिवरूप हो जाता है। मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ कि आपने मुझे स्वयं अपने हाथ से मारा है।" अन्धक के ऐसे वचन सुनकर शिवजी प्रसन्न होकर बोले—"हे अन्धक ! हम तेरी भावना देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अब तू जो चाहे, वह वर हमसे माँग ले।" यह सुनकर अन्धक ने कहा—"हे प्रभो ! आप मुझे अपनी भक्ति देकर अपना गण बना लीजिए तथा लिंग रूप होकर इस स्थान पर सदैव निवास कीजिए।" शिवजी ने अन्धक की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। तदुपरान्त अन्धक शिवजी के गणों में सम्मिलित हो गया और शिवजी अन्धकेश्वर लिंग के रूप में वहीं स्थित रहे। जो मनुष्य उस लिंग की छः महीने तक पूजा करता है, उनकी सम्पूर्ण मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

ॐ ॐ ॐ

अट्ठारहवाँ अध्याय

इस कथा को सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! आप मुझे देवल का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा कीजिये।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवजी के परम भक्त दधीचि का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। उनके पुत्र का नाम शिवदर्शन था। शिवदर्शन की पत्नी का नाम दुकूला था। शिवदर्शन अपनी स्त्री के अधीन रहकर, सदैव भोग विलास में लिप्त रहता था। उसके द्वारा चार पुत्रों का जन्म हुआ ; परन्तु यह सब होने पर भी वह दधीचि के भय के कारण शिवजी का पूजन प्रतिदिन किया करता था। एक दिन दधीचि किसी

दूसरे ग्राम में गये तथा शिवदर्शन से शिवजी का पूजन करने के लिए कह गये। संयोगवश दधीचि बहुत दिनों तक उस ग्राम से न लौट सके। यहाँ तक कि शिवरात्रि आ गयी। उस दिन सब लोगों ने व्रत रखा, परन्तु शिवदर्शन ने काम के वशीभूत होकर अपनी स्त्री के साथ भोग किया और बिना स्नान किये ही शिवजी का पूजन कर डाला।

हे नारद ! शिवदर्शन के इस कृत्य को देखकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित हुए। तब उन्होंने प्रकट होकर शिवदर्शन से यह कहा—"अरे मूर्ख ! तूने प्रथम तो हमारे व्रत के समय अपनी स्त्री के साथ भोग किया, दूसरे बिना स्नान किये ही हमारा पूजन भी कर डाला। यह कुकर्म तूने जान-बुझकर किया है। अस्तु हम तुझे शाप देते हैं कि तू जड़ हो जायेगा और किसी को स्पर्श नहीं कर सकेगा।" शिवजी द्वारा इस प्रकार शाप देते ही शिवदर्शन जड़ हो गया। कुछ समय बाद जब दधीचि ऋषि लौटकर घर आये और उन्होंने अपने पुत्र की दशा को देखकर सब वृत्तान्त सुना, तो वे अत्यन्त चिन्तित होकर विलाप करने तथा पुत्र को मुक्ति प्रदान करने के हेतु शिव-गिरिजा की तपस्या करने लगे। दधीचि तथा शिवदर्शन दोनों ने ही ऐसा तप किया कि भगवती गिरिजा तथा शिवजी ने प्रसन्न होकर, उन्हें अपना दर्शन प्रदान किया।

हे नारद ! उस समय गिरिजा जी ने शिवदर्शन को अपनी गोद में उठा लिया और शिवजी के हाथों में सौंपते हुए यह प्रार्थना की कि आप इसे मुक्त कर देने की कृपा करें। गिरिजा की बात मानकर शिवजी ने शिवदर्शन को घृत में स्नान कराया और एक गाँठ देकर जनेऊ पहना दिया। तदुपरान्त उसका नाम बटुक रखकर, शिव गायत्री का उपदेश दिया। जब उसने अपने मुख से शिवनाम का उच्चारण किया, उस समय शिव-गिरिजा ने प्रसन्न होकर यह आशीर्वाद दिया—"हे शिवदर्शन ! हमारे ऊपर जो धन तथा द्रव्य चढ़ा करे, उसे तुम ग्रहण किया करो। इसी प्रकार का अधिकार तुम्हें चण्डिका-पूजन में भी प्राप्त होगा। घृत, तेल आदि वस्तुएँ लेने पर भी तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। अब हम तुम्हारे अपराध को क्षमा किये देते हैं। तुम ब्राह्मण की

सन्तान हो, अस्तु हम दोनों की सेवा करना तुम्हारा धर्म है। हम तुम्हें यह भी वरदान देते हैं कि सब लोग तुम्हारी पूजा भी किया करेंगे। तुम्हारी पूजा किये बिना हम किसी की सहायता नहीं करेंगे। युद्ध में तुम जिसकी ओर रहोगे, उसे ही विजय प्राप्त होगी।''

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी तथा गिरिजा ने बटुक को अनेक वरदान दिये, तदुपरान्त उसे चारों दिशाओं में स्थापित कर, सबकी पूजा के योग्य प्रसिद्ध किया। ब्रह्म भोज में बटुक को जो प्रशंसा प्राप्त हुई, उसका वर्णन इस प्रकार है—जिस नगर में बटुक रहता था, उसी नगर का राजा भद्रक प्रतिदिन ब्रह्मभोज किया करता था। शिवजी ने उस राजा को एक ध्वजा दी और यह कहा था कि जब ब्रह्मभोज पूर्ण हो चुकेगा, तो यह ध्वजा अपने आप गिर पड़ेगी। शिवजी की इस कृपा को शिरोधार्य कर राजा प्रतिदिन ब्रह्मभोज किया करता था। एक दिन वह ध्वजा बिना ब्रह्मभोज के ही अपने आप गिर पड़ी। उस समय राजा ने अत्यन्त आश्चर्य में भरकर ब्राह्मणों से उसका कारण पूछा तो ब्राह्मणों ने उसे यह उत्तर दिया—''हे राजन् ! शिवजी के पुत्र बटुक भोजन प्राप्त कर चुके हैं। अस्तु तुम्हारा भोज पूर्णता को प्राप्त हो चुका है। तुम्हें किसी प्रकार का सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है। अब तुम अन्य ब्राह्मणों को भोजन कराओ।'' यह सुनकर राजा भद्रक को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। ''हे नारद ! शिवदर्शन को ही देवल कहा जाता है। देवल की यह कथा अत्यन्त पवित्र है। जो मनुष्य इसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसे शिवजी-गिरिजा के पूजन का फल प्राप्त होता है।''

उन्नीसवाँ अध्याय

नारद जी ने कहा—''हे पिता ! अब आप बारहों ज्योतिर्लिङ्गों की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए तथा यह बताइये कि वे संसार में किसलिए प्रकट हुए?'' यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! पहला ज्योतिर्लिङ्ग सोमेश्वर नामक है। उसका पूजन करने से सम्पूर्ण

मनोरथों की प्राप्ति होती है। वह सन्तान, सम्पत्ति, यश तथा कीर्ति को देने वाला है और सम्पूर्ण कष्टों को दूर करने वाला है।''

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! सुनो, मेरे अँगूठे से दक्ष प्रजापति की उत्पत्ति हुई थी। उसने मेरी आज्ञा से सृष्टि की वृद्धि करनी चाही। तब उसने वीर प्रजापति की कन्या वीरनी के साथ अपना विवाह किया और उसके द्वारा दस सहस्त्र पुत्र उत्पन्न किये। तुम्हारे ही उपदेश से दक्ष के वे सब बालक त्यागी होकर, वन चले गये। तब दक्ष ने दस सहस्त्र बालक और उत्पन्न किये। वे भी तुम्हारा उपदेश पाकर संसार से विरक्त हो गये। उस समय दक्ष प्रजापति ने क्रुद्ध होकर तुम्हें यह शाप दिया कि तुम संसार में किसी एक स्थान पर अधिक देर तक नहीं ठहर सकोगे।

हे नारद ! इसके उपरान्त दक्ष ने साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमें से दस का विवाह धर्मराज के साथ, तेरह का कश्यप के साथ, सत्ताईस का चन्द्रमा के साथ तथा अंगिरस एवं कृशाश्व के साथ दो-दो का हुआ था। चन्द्रमा ने अपनी पत्नियों में सबसे अधिक प्रेम रोहिणी के साथ किया। जो मनुष्य बहुत-सी स्त्रियों के साथ विवाह करके सबसे समान प्रीति नहीं रखता, उस पर अनेक विपत्तियाँ आती हैं और उसे कभी भी आनन्द प्राप्त नहीं होता। वह व्यक्ति सदैव रोगी रहकर अन्त में नरकवास प्राप्त करता है। दक्ष की कन्याओं के साथ समान प्रेम न रखने के कारण से ही चन्द्रमा को भी बहुत दुःख उठाना पड़ा। पहले का वृत्तान्त यह है कि जब अन्य कन्याओं ने यह देखा कि चन्द्रमा रोहिणी के समान उनके ऊपर प्रीति नहीं रखता है तो वे सब रोती-पीटती अपने पिता दक्ष के समीप गयीं और उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय दक्ष ने चन्द्रमा को बुलाकर समझाते हुए कहा—''हे चन्द्रमा ! सब स्त्रियों पर एक-जैसा प्यार रखना चाहिए।''

हे नारद ! चन्द्रमा उस समय तो दक्ष प्रजापति की बात मानकर चला आया और कुछ दिनों तक सभी स्त्रियों पर एक-जैसा प्रेम भी रखा, परन्तु थोड़े दिनों बाद ही वह रोहिणी से और अधिक प्रेम करने

लगा। तब दक्ष की अन्य कन्याएँ फिर अपने पिता के पास आकर रोने लगीं। यह देखकर दक्ष ने चन्द्रमा को दुबारा अपने पास बुलाकर कहा—''हम तुम्हें शाप देते हैं कि तुझे क्षयरोग हो जाए। उस रोग के कारण तू भोग-विलास के मतलब का ही नहीं रहेगा। इस शाप के लगते ही चन्द्रमा को क्षयरोग हो गया तथा उसका तेज नष्ट हो गया। उस समय चन्द्रमा की सभी स्त्रियाँ और अधिक दुःखी हुईं। तब सब देवता चन्द्रमा को लेकर मेरे पास आये और यह कहने लगे—''हे ब्रह्मन् ! आप चन्द्रमा के रोग को दूर करने का कोई उपाय करें।'' देवताओं की बात सुनकर मैंने चन्द्रमा को बहुत धिक्कारते हुए इस प्रकार कहा—''हे देवताओ ! जब से इसने राजसूय यज्ञ किया है, तब से इसे धर्म-अधर्म का विचार नहीं रहा है। इसने अपने गुरु की पत्नी तारा के साथ व्यभिचार किया, उस समय मैंने इसकी रक्षा की थी।'' मेरी यह बात सुनकर चन्द्रमा दुःखी होकर, मेरे चरणों पर गिर पड़ा और बारम्बार स्तुति करने के उपरान्त इस प्रकार कहने लगा—''हे ब्रह्मन् ! मैंने वास्तव में बड़े पाप किये हैं और हर बार आपने मेरी रक्षा की है। अब मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि भविष्य में कभी भी कोई अधर्म नहीं करूँगा।''

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! चन्द्रमा की विनती सुनकर तथा उसकी दीनता देखकर मुझे दया आ गयी। तब मैंने उससे यह कहा—''हे चन्द्रमा ! तीनों लोकों में प्रसिद्ध जो सौराष्ट्र देश है, वहाँ प्रभास क्षेत्र में शिवजी अपने पूर्ण अंश से विराजमान रहते हैं। वह स्थान शिवजी को अत्यन्त प्रिय है। वहाँ तपस्या करने से सम्पूर्ण पाप तथा दोष नष्ट हो जाते हैं। अस्तु, तुम वहीं जाकर शिवलिंग की स्थापना करो तथा उत्तमोत्तम सामग्रियों द्वारा उसका पूजन करो। सब प्रकार के छल-कपट त्याग, योग धारण कर, शिवजी का ध्यान धरना और

अपने मनोरथ पूर्ण होने का निश्चय करके, उनके प्रेम में लगे रहना। उस समय तुम्हारा यह रोग नष्ट हो जायेगा। शिवजी की भक्ति द्वारा बहुत से लोगों ने मृत्यु को जीत लिया है तथा बड़े-बड़े पापियों ने मुक्ति प्राप्त की है। अस्तु, तुम्हारा कष्ट भी अवश्य दूर होगा।''

हे नारद ! मेरे वचन सुनकर चन्द्रमा तुरन्त ही प्रभास क्षेत्र में जा पहुँचा वहाँ उसने शिवलिङ्ग की स्थापना कर, छः मास तक कठिन तप किया। तब उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हुए और वरदान माँगने की आज्ञा दी। उस समय चन्द्रमा ने उन्हें प्रणाम करके स्तुति करते हुए यह कहा—''हे प्रभो ! आप मेरे क्षय रोग को दूर कर दें तथा यह वर दें कि मुझे आपकी भक्ति सदैव प्राप्त हो।'' चन्द्रमा की प्रार्थना सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—''हे चन्द्रमा ! दक्ष का शाप पूर्णरूप से तो नष्ट नहीं हो सकता, पर हम तुम्हें वर देते हैं कि तुम प्रतिमास क्रमानुसार घटा-बढ़ा करोगे और संसार में सुयश प्राप्त करोगे।'' शिवजी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए चन्द्रमा ने फिर कहा—''हे प्रभो ! अब आप लिङ्गरूप होकर इसी स्थान पर स्थित हो जाइये और अपनी शक्ति को भी यही प्रतिष्ठित करने की कृपा कीजिए।'' जिस समय चन्द्रमा शिवजी से यह प्रार्थना कर रहा था, उसी समय मैं तथा विष्णु जी भी वहाँ जा पहुँचे और चन्द्रमा की इच्छानुसार यह कहने लगे कि हे शिवजी ! आप चन्द्रमा की प्रार्थना स्वीकारकर, उस स्थान पर शक्ति सहित लिङ्ग रूप से अवश्य प्रतिष्ठित हों।

हे नारद ! तब हम लोगों की प्रार्थना स्वीकार कर, शिवजी अपने पूर्ण अंश से गिरिजा सहित उसी स्थान पर प्रतिष्ठित हो गये। उस समय हम सब लोगों ने उस सोमेश्वर शिवलिंग का पूजन करके, अत्यन्त उत्सव मनाया। हे नारद ! उस सोमेश्वर लिंग की महिमा महान् है। सोमेश्वर शिवलिंग जहाँ स्थापित है, उसी के समीप ही चन्द्रमा का बनाया हुआ एक कुण्ड है। उस कुण्ड में जो मनुष्य स्नान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। सोमेश्वर शिवलिंग का यह चरित्र

अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला है। देवता, ऋषि, मुनि, वेद तथा पुराण इस बात को एक स्वर से कहते हैं कि सोमेश्वर शिवलिंग का पूजन करने से आवागमन का भय नहीं रहता। जो मनुष्य इस चरित्र को सुनता है अथवा सुनाता है, उस पर भी शिवजी अत्यन्त कृपा रखते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब तुम मल्लिकार्जुन शिवलिंग का वृत्तान्त सुनो। जिस समय शिवजी के पुत्र स्कन्द जी संसार की परिक्रमा करके कैलाश पर्वत पर आये, उस समय तुमने उन्हें गणपति के अधिकार का सभी वृत्तान्त कह सुनाया। तब स्कन्द अत्यन्त दुःखी हो, अपने माता-पिता को प्रणाम करने के उपरान्त अप्रसन्न हो, क्रौंचगिरि को चले गये। यद्यपि शिव-गिरिजा ने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु उन्होंने किसी भी प्रकार कैलाश पर रहना स्वीकार नहीं किया।

हे नारद ! उस समय गिरिजा ने पुत्र वियोग में बहुत विलाप किया। तब शिवजी ने गिरिजा को धैर्य बंधाते हुए यह कहा—"हे गिरिजा ! तुम चिन्ता मत करो, तुम्हारा पुत्र शीघ्र ही तुम्हारे पास लौट आवेगा।" यह सुनकर गिरिजा बोलीं—"हे प्रभो ! आप देवताओं आदि को मेरे पुत्र को मनाने के लिए भेजिये। यदि वह यहाँ नहीं आया तो हम और आप स्वयं ही उसके पास चलकर रहेंगे। गिरिजा को इस प्रकार दुःखी देखकर, शिवजी ने देवताओं तथा मुनियों को स्कन्द जी के पास भेजा, परन्तु स्कन्द जी किसी भी प्रकार लौटकर नहीं आये। जब यह समाचार शिव-गिरिजा को मिला, तो वे पुत्र-वियोग से व्याकुल हो, स्वयं ही उनके पास चल दिये। जिस समय स्कन्द जी ने अपने माता-पिता के आगमन का समाचार सुना तो वे अपने स्थान से तीन योजन दूर हटकर चले गये, ताकि उनसे भेंट न हो सके। स्कन्द जी के ऐसे हठ को देखकर शिव-गिरिजा भी उनके पास नहीं गये और ज्योति रूप होकर उसी स्थान पर स्थित हो गये।

हे नारद ! वही ज्योतिर्लिंग मल्लिकार्जुन के नाम से संसार में प्रसिद्ध है। प्रत्येक पर्व में शिव-गिरिजा अपने पुत्र से भेंट करने के हेतु उस स्थान पर जाया करते हैं। प्रत्येक पन्द्रहवें दिन शिवजी तथा प्रत्येक पूर्णमासी को गिरिजा वहाँ आती हैं, परन्तु उन दोनों में से कोई वहाँ सदैव के लिए नहीं ठहरता। मल्लिकार्जुन शिवलिंग बारह ज्योतिर्लिंगं में से दूसरा है। उसके दर्शन करने से सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं। उसकी महिमा तीनों लोकों में प्रकट है। इस कथा को पढ़ने-सुनने से भी सब प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है।''

ॐ ॐ ॐ

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! उज्जयिनी नगरी में एक शिव भक्त ब्राह्मण रहा करता था। वह सदैव भस्म धारण करता, रुद्राक्ष पहनता, शिवजी के नाम का स्मरण करता तथा उन्हीं की निष्काम-भक्ति में संलग्न रहता था। उस ब्राह्मण के चार पुत्र थे जिनके नाम इस प्रकार हैं—देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत तथा धर्मवादी। ये चारों लड़के भी शिवजी के परम भक्त थे।

हे नारद ! उन्हीं दिनों दूषण नामक एक असुर अत्यन्त बलवान् तथा तीनों लोकों को दुःख देने वाला उत्पन्न हुआ। वह अपनी पत्नी सहित रत्नमाल गिरि पर निवास करता था। उसने मेरी तपस्या करके अपार बलशाली होने का वरदान प्राप्त किया। तदुपरान्त उसने अत्यन्त अहंकार में भरकर सभी देवताओं को जीत लिया और उसी पर्वत पर रहकर तीनों लोकों का राज्य करने लगा। उसने सब धर्म मिटाकर, अनेक प्रकार के पाप फैलाये तथा देवता, ऋषि, मुनि, ब्राह्मण आदि को बहुत कष्ट पहुँचाया। उस समय सब देवता और ऋषि-मुनि मेरे पास आकर इस प्रकार कहने लगे—''हे ब्रह्मन् ! आप इस दैत्य से हमारी रक्षा करने का उपाय करें।'' तब मैंने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—''हे देवताओ ! मैंने उस दैत्य को वर दिया है। अस्तु, मैं तो उसका अपकार नहीं करूँगा।''

हे नारद ! इतना कहकर मैं सब देवता तथा मुनियों को साथ ले, शिवजी के समीप जा पहुँचा तथा उन्हें दण्डवत् स्तुति करने के उपरान्त बोला—"हे प्रभो ! दूषण नामक दैत्य संसार में बहुत उपद्रव मचा रहा है। आप दैत्यों का नाश करने में प्रसिद्ध हैं, अस्तु हम लोगों पर कृपा करके अब आप उसका शीघ्र संहार कीजिए।" हमारी प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने कहा—"हे देवताओ ! तुम लोग अपने-अपने स्थान को लौट जाओ। हम उस दैत्य का नाश कर देंगे। जब वह दैत्य हमारे उज्जयिनी निवासी भक्त ब्राह्मण तथा उसके पुत्रों को कष्ट पहुँचायेगा, तब हम उसे मार डालेंगे।" शिवजी की यह आज्ञा सुनकर सब लोग अपने-अपने स्थान को लौट गये।

हे नारद ! कुछ समय बाद शिवजी की माया से दूषण के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे शिवभक्तों तथा देवताओं को दुःख पहुँचाना चाहिये। तब वह स्वयं एक विशाल सेना लेकर शिवभक्तों का वध करने के निमित्त उज्जयिनी में जा पहुँचा ; क्योंकि उसने यह सुना था कि उज्जयिनी पुरी में बहुत से शिवभक्त निवास करते हैं। वहाँ पहुँचकर उसने पुरी को चारों ओर से घेर लिया तथा सब लोगों को दुःख पहुँचाना आरम्भ कर दिया। उसके उपद्रवों को देखकर जब लोग व्याकुल हो, अपना घर छोड़कर बाहर को भागे, तो दैत्यों ने उन्हें पकड़कर मार डाला।

हे नारद ! उस दैत्य के उपद्रवों को देखकर भी शिवजी के भक्त अपने स्थान से हटकर बाहर नहीं निकले ; क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि शिवजी हमारी सहायता एवं रक्षा करेंगे। यह देखकर वह दैत्य शिव भक्तों के स्थान पर पहुँचकर, उन्हें मार डालने के लिए अपने दैत्यों को आज्ञा देने लगा। शिवजी के भक्तों को उस समय भी कोई चिन्ता नहीं हुई। तब शिवजी ने यह चरित्र किया कि जिस स्थान पर शिव भक्त ब्राह्मण बैठे हुए पार्थिव-पूजन कर रहे थे, उसके चारों ओर की पृथ्वी अचानक ही फट गयी और वहाँ एक भारी गड्ढा हो गया। उस समय पृथ्वी फटने से ऐसा महाभयानक शब्द हुआ, जिसको

सुनकर तीनों लोक काँपने लगे। उस दृश्य को देखकर भी दूषण को कोई चिन्ता नहीं हुई और वह गड्ढे के भीतर घुस कर ब्राह्मणों के पास जा पहुँचा। उस समय शिवजी वहाँ प्रकट हो गये और अत्यन्त क्रोध में भरकर, दूषण से इस प्रकार कहने लगे—''अरे मूर्ख ! हम अपने भक्तों के रक्षक हैं। हम महाकाल हैं। इसलिए उचित है कि अब तू अपने पाँव आगे मत बढ़ा।'' शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर भी जब वह दैत्य नहीं माना और कुछ आगे को बढ़ा तो उस समय शिवजी ने एक जोर की हुँकार भरी, जिससे महाभयानक अग्नि प्रकट हुए। दूषण अपने साथियों सहित उस अग्नि में जलकर भस्म हो गया।

हे नारद ! उस समय शिवजी के दर्शन पाकर वह ब्राह्मण अपने चारों पुत्रों सहित अत्यन्त प्रसन्न हो, स्तुति करने लगा। देवताओं ने दुन्दुभी बजायी तथा आकाश से पुष्प-वर्षा हुई। सब लोग उच्च स्वर से शिवजी की स्तुति करने लगे। तदुपरान्त उस ब्राह्मण ने शिवजी की प्रार्थना करते हुए कहा—''हे प्रभो ! आपने यहाँ प्रकट होकर अपने भक्तों को कृतार्थ कर दिया है। अब मेरी यह अभिलाषा है कि आप इसी गर्त में गिरिजा जी तथा अपने गणों सहित स्थित हों। यह दूषण नामक दैत्य संसार के लिए काल स्वरूप था, अतः आप उसको नष्ट करने वाले महाकाल हैं। आप इसी महाकाल के नाम से संसार में प्रसिद्ध हों और आपकी पूजा करने वाले अपने सभी मनोरथों को प्राप्त किया करें।'' हे नारद ! ब्राह्मण की इस प्रार्थना को शिवजी ने स्वीकार कर लिया। तब वे ब्राह्मण द्वारा स्थापित लिंग मूर्ति में अपने पूर्णांश द्वारा महाकाल नाम से स्थित हुए। उस समय उस ब्राह्मण तथा उसके पुत्रों ने, मैंने, विष्णु जी ने तथा अन्य सब देवताओं एवं ऋषि-मुनियों ने महाकाल ज्योतिर्लिंग का पूजन किया। तदुपरान्त सब लोग अपने-अपने लोक को चले गये। इस कथा को जो कोई सुनता अथवा सुनाता है, उसे भी अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।

ॐ ॐ ॐ

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! महाकाल का पूजन करने पर संसार में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। महाकाल के सेवकों को धन, स्त्री, पुत्र, यश, कीर्ति आदि की प्राप्ति होती है तथा सभी रोग नष्ट होकर आयु बढ़ती है। राजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर की विपत्ति भी महाकाल की सेवा से दूर हो गयी थी। यह सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! आप मुझे श्रीकर का वृत्तान्त सुनाने की कृपा करें।"

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! पुरातन काल में उज्जयिनी पुरी में एक चन्द्रसेन नामक राजा राज्य करता था। वह राजा शिवजी का परमभक्त था तथा महाकाल की अत्यन्त सेवा किया करता था। शिवजी के गण मणिभद्र से उस राजा की मित्रता हो गयी। तब मणिभद्र ने प्रसन्न होकर उसे एक चिन्तामणि दी, जिसके दर्शन, स्पर्श, श्रवण तथा ध्यान मात्र से ही सम्पूर्ण दुःख दूर हो जाया करते थे। उस मणि का प्रकाश सूर्य के समान फैलता था। जिस समय राजा चन्द्रसेन उस मणि को पहन लेता, उस समय वह सूर्य के समान दिखाई देता था।

हे नारद ! जब अन्य राजाओं ने उस मणि की ऐसी प्रशंसा सुनी, तो उन्होंने अपने मन में यह इच्छा की कि हम उस मणि को स्वयं प्राप्त कर लें। इस प्रकार सब राजा उसके शत्रु बन गये। तब एक दिन पृथ्वी भर के राजाओं ने सम्मिलित होकर राजा चन्द्रसेन के ऊपर चढ़ाई कर दी और उसकी नगरी को चारों ओर से घेर लिया। उस दशा में भी राजा चन्द्रसेन अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक महाकाल की सेवा में लगा रहा। उस समय महाकाल शिवजी ने यह चरित्र किया कि एक गोपी अपने पाँच वर्ष के बालक को साथ लेकर राजा चन्द्रसेन के पास पहुँची और उसकी पूजा को देखने लगी।

हे नारद ! उस समय गोपी के पुत्र के हृदय में भी शिवलिंग की पूजा करने की अभिलाषा हुई। तब वह एक पत्थर को एक स्थान पर

स्थापित कर, अपनी बुद्धि के अनुसार उसका पूजन करने लगा। वह बालक शिवजी को प्रणाम करता हुआ आनन्द विभोर हो नृत्य करने लगा। जब उसकी माता ने उसे भोजन करने के लिए बुलाया, तो वह उसके पास न जाकर शिवजी की पूजा करता रहा। यह देखकर गोपी ने उसे बहुत मारा और हाथ पकड़कर अपने निकट खींचा, परन्तु वह बालक शिवजी के प्रेम में डूबकर अपने स्थान से टस-से-मस न हुआ। यह देखकर उसकी माता ने उसके शिवलिंग को उठाकर बहुत दूर फेंक दिया और क्रोध में भरकर उसे बहुत ताड़ना दी। उस समय वह बालक मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

हे नारद ! जब उस बालक की मूर्च्छा टूटी तो उसने तन्द्रिल अवस्था में एक अपूर्व दृश्य देखा। उसने यह देखा कि एक अति सुन्दर शिवालय बना है, जिसमें अनेक प्रकार के रत्न एवं मणियाँ जड़ी हुई हैं। सिंहासन के ऊपर भगवान् सदाशिव विराजमान् हैं। इस दृश्य को देखकर वह बालक अत्यन्त प्रसन्न हुआ और शिवजी को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगा। फिर वह अपनी माता के अपराध की क्षमा माँगते हुए इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रभो ! मेरी माता मूर्ख तथा अनपढ़ है। आप उस पर क्रोध न करें। मुझे आपकी पूजा द्वारा जो फल प्राप्त हुआ हो, उसके बदले में केवल यह चाहता हूँ कि आप मेरी माता का अपराध क्षमा कर दें।"

हे नारद ! इस दृश्य को देखने के उपरान्त वह बालक सन्ध्या होने पर जब अपने घर को चला, तो यह देखा कि मार्ग में इन्द्रलोक के समान एक अत्यन्त सुन्दर नगर बसा हुआ है। उस नगर में सभी भवन स्वर्ण-निर्मित हैं तथा उनमें चारों ओर मणि, मुक्ता आदि रत्न जड़े हुए हैं। उन सब भवनों में उसकी माता का भवन अत्यन्त सुन्दर है। उस भवन के बीच में एक रत्न जटिल शैय्या रखी हुई है, जिसके ऊपर श्वेत वस्त्र बिछे हुए हैं तथा उस शैय्या के ऊपर उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत उसकी माता गोपी शयन कर रही है। उस समय उस गोपी का शरीर अत्यन्त सुन्दर और प्रकाशवान् था। तब उस बालक ने अपनी

माता के पास पहुँचकर उसे नींद से जगाया। जब गोपी ने उठकर उस अद्‌भुत चरित्र को देखा तो पहले तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, तदुपरान्त उसने अपने पुत्र को प्रेम पूर्वक हृदय से लगा लिया। फिर उस सभी वैभव को शिवजी की कृपा समझकर, उसने राजा चन्द्रसेन के पास सब वृत्तान्त कहला भेजा। राजा चन्द्रसेन यह समाचार सुनकर, अपने मित्रों सहित उस नगर को देखने के लिए पहुँचा। वहाँ अत्यन्त प्रेम मग्न होकर, उसने बहुत उत्सव मनाया।''

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इस प्रकार रात्रि भर शिवजी के चरित्रों का वर्णन करते हुए तथा उनकी महिमा का गुणगान करते हुए, राजा का पूरा समय एक पल के समान व्यतीत हो गया। उसे अपने मन में शत्रुओं का कुछ भी भय न रहा। प्रातःकाल होने पर अन्य राजाओं ने अपने दूतों द्वारा शिवजी का यह चरित्र सुना। अस्तु, वे सब शस्त्रों को त्यागकर, राजा चन्द्रसेन की शरण में गये। राजा चन्द्रसेन ने उनका अत्यन्त स्वागत-सत्कार किया। तब वे सब लोग महाकाल के दर्शन करने के उपरान्त, गोपी के भवन में गये और उसकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे। जब उन्होंने गोपी-पुत्र द्वारा स्थापित शिवलिंग को देखा, तो सब के हृदय में शिव-भक्ति का संचार हुआ।

हे नारद ! उस समय वहाँ एक बड़ी भारी सभा का आयोजन कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर जितने भी गोप थे उस बालक को उन सब का राजा बनाया गया। उसी समय हनुमान ज़ी भी वहाँ प्रकट हुए। हनुमान जी को देखकर सब राजा उठकर खड़े हो गये तथा अत्यन्त प्रसन्नता से भर कर, उनकी स्तुति करते हुए बोले—''हे प्रभो ! हमारे बड़े भाग्य हैं, जो आपने यहाँ आकर हमें दर्शन दिये।'' राजाओं की यह प्रार्थना सुनकर हनुमान जी ने सबको आशीर्वाद दिया, तदुपरान्त उन्होंने गोपी-पुत्र को अपनी गोद में उठाकर, सब राजाओं को सम्बोधित

करते हुए यह कहा—"हे राजाओ ! शिवजी का यह महाकाल नामक लिङ्ग अत्यन्त प्रतापवान्, सबको सुख पहुँचाने वाला, सब प्रकार के दुःखों को नष्ट करने वाला, भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाला तथा शत्रुओं का नाश करने वाला है। कल तेरस तिथि शनिश्चर का दिन था। उसमें प्रदोष के समय इस गोपी-पुत्र ने शिवजी का पूजन किया। उसी सेवा से प्रसन्न होकर महाकाल ने इसे राजा चन्द्रसेन सहित कृतार्थ कर दिया है। कृष्ण पक्ष के शनिवार में जो प्रदोष व्रत होता है, उनकी महिमा अपार होती है। ऐसे शुभ योग को पाकर जो मनुष्य महाकाल की पूजा नहीं करता, उससे अधिक भाग्यहीन और कौन है?

हे राजाओ ! इस बालक ने कल के दिन ऐसे ही शुभ योग में महाकाल का पूजन किया था। इस बालक की आठवीं पीढ़ी में नन्द नामक एक गोप उत्पन्न होगा। वह गोप शिवजी का परम भक्त होगा तथा इस बालक के द्वारा स्थापित गोपेश्वर शिवलिंग का पूजन करेगा। उस समय शिवजी की आज्ञा से विष्णु जी नन्द गोप के घर, उसके पुत्र रूप में अवतार लेंगे। वे कृष्ण नाम से संसार में प्रसिद्ध होंगे। आज से इस बालक का नाम श्रीकर होगा।" इतना कहकर हनुमान जी ने श्रीकर को शिवजी के पूजन की विधि बतायी। तदुपरान्त वे राजा चन्द्रसेन एवं श्रीकर पर अनुग्रह करके अन्तर्धान हो गये। अन्य सब राजा भी चन्द्रसेन से आज्ञा प्राप्त कर, अपने-अपने राज्य को लौट गये। हनुमान जी की आज्ञानुसार श्रीकर शिवजी की यथाविधि पूजा करने लगा और अन्त में राजा चन्द्रसेन सहित परम पद को प्राप्त हुआ। हे नारद ! इस महाकाल ज्योतिर्लिंग की ऐसी ही अपार महिमा है। जो प्राणी इस परम पुनीत चरित्र को पढ़ता, सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है, उसे भी दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है।"

ॐ ॐ ॐ

पच्चीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! एक समय तुम गोकर्ण-क्षेत्र में गये थे। वहाँ तुमने तीर्थ स्नान कर, महाबल शिवलिंग का पूजन किया।

तदुपरान्त तुम अन्य शिव लिङ्गों के दर्शन करते हुए रेवा नदी, जिसे नर्मदा कहकर भी पुकारा जाता है और जो शिवजी की पुत्री के रूप में प्रसिद्ध है, तट पर जा पहुँचे। रेवा का दर्शन करने मात्र से ही सम्पूर्ण पाप तथा दुःख नष्ट हो जाते हैं। तीनों लोकों में गंगा नदी को सर्वोपरि कहा गया है, क्योंकि उसमें स्नान करने से महान् सुख प्राप्त होता है। परन्तु वेद और पुराणों का यह कथन है कि रेवा नदी गंगा से भी अधिक श्रेष्ठ है। यमुना नदी में चौदह दिन स्नान करने से, सरस्वती नदी में तीन दिन स्नान करने से तथा गंगा नदी में एक दिन स्नान करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु रेवा नदी का केवल दूर से दर्शन करने मात्र से ही सब पापों से मुक्ति मिलती है। उस स्थान पर यदि शिवनिर्माल्य को ग्रहण कर लिया जाए तो कोई दोष नहीं लगता। वहाँ तारयन्त्र नामक जो तीर्थ है, वह सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है।

हे नारद ! ऐसी अपार महिमाशाली रेवा नदी में तुमने स्नान किया तथा प्रणवेश्वर शिवलिंग का पूजन किया। फिर तुमने विन्ध्याचल पर्वत को देखा, जहाँ सम्पूर्ण संसार का आनन्द एकत्रित-सा प्रतीत होता है। वह तुम्हारी आगवानी करने के लिए आगे बढ़ आया और प्रणाम-स्तुति करने के उपरान्त अपने घर ले गया। वहाँ उसने तुम्हें अत्यन्त विनयपूर्वक शुभ आसन पर बैठाकर पूजन किया। फिर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"हे महर्षि ! आज आपके आगमन से मैं कृतार्थ हो गया हूँ। अब मैं अपने कुल में सबसे श्रेष्ठ कहलाऊँगा।" हे नारद ! विन्ध्याचल के ऐसे वचन सुनकर तुमने एक ठंडी श्वाँस ली।

हे नारद ! उस समय विन्ध्याचाल ने तुमसे हाथ जोड़कर इस प्रकार पूछा—"हे प्रभो ! आपके ठण्डी श्वाँस लेने का क्या कारण है, वह मुझे बताइये। यह ठीक है कि पृथ्वी को धारण करने की शक्ति सुमेरु पर्वत में है तथा शिवजी का सम्बन्धी होने के कारण हिमाचल पर्वत भी श्रेष्ठ माना जाता है। निषध, नील, मन्दराचल, रैवत, क्रौच, किष्किन्धा, श्रीगिरि तथा सह्यादि पर्वत श्री श्रेष्ठ कहे गये हैं, परन्तु यह सब पर्वत पृथ्वी को धारण करने में मेरी बराबरी नहीं कर सकते, इस बात को

आप सत्य समझें।" विन्ध्याचाल के ऐसे अभिमानपूर्ण वचन सुनकर, तुमने अपने मन में विचार किया कि इस पर्वत को अहंकार हो गया है। भला, श्रीगिरि पर्वत से अधिक उत्तम और कौन-सा पर्वत है, जिसके शिखर को देखने मात्र से ही परम पद की प्राप्ति होती है ; परन्तु जब यह विन्ध्याचल स्वयं अपनी प्रशंसा इस प्रकार कर रहा है तो मैं इससे क्या कहूँ? मन में इस प्रकार विचार करके, तुमने विन्ध्याचल से कहा—"हे विन्ध्याचल ! तुम्हारा कथन सत्य है, परन्तु सुमेरू पर्वत तुम्हें अपने सम्मुख कुछ भी नहीं गिनता।"

हे नारद ! उस समय विन्ध्याचल पर्वत अपने मन में चिन्तित होकर यह विचार करने लगा कि मैं सुमेरु पर्वत से किस प्रकार बदला लेकर अपनी महिमा को सबसे महान् सिद्ध करूँ। बहुत कुछ सोचने के उपरान्त उसने यह निश्चय किया कि यदि मैं शिवजी की शरण में जाकर उनके उपदेशानुसार आचरण करूँ तो मेरी विजय हो सकती है। यह विचार करके विन्ध्याचल पर्वत रेवा नदी के तट पर पहुँचा, जिस स्थान पर ओंकारेश्वर शिवलिङ्ग विराजमान है तथा जहाँ से रेवा नदी निकली है, वहाँ विन्ध्याचल ने अमरेश्वर नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की। छः महीने तक विन्ध्याचल शिवजी के ध्यान एवं पूजन में निरन्तर लगा रहा। तब शिवजी प्रसन्न होकर उसके सम्मुख अपने मुख्य लक्षणों सहित प्रकट हुए तथा वरदान माँगने के लिए कहने लगे।"

ॐ ॐ ॐ

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! भगवान् सदाशिव के उस शुद्ध स्वरूप को देखकर विन्ध्याचल ने प्रणाम करने के उपरान्त कहा—"हे प्रभो ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। सुमेरु मुझसे व्यर्थ ही वैर-भाव रखता है, अस्तु, आप मुझे यह वर देने की कृपा कीजिए, जिससे उस पर मैं विजय प्राप्त कर सकूँ।" विन्ध्याचल की प्रार्थना सुनकर शिवजी ने एवमस्तु कहा। उस समय वहाँ सब देवता तथा मुनि भी

आकर एकत्र हो गये और शिवजी से प्रार्थना करने लगे कि आप कृपा करके लिङ्ग रूप से यहीं पर स्थित होइये। शिवजी इस प्रार्थना को स्वीकार कर, उस लिङ्ग में प्रविष्ट हो गये जिसे विन्ध्याचल ने स्थित किया था। शिवजी ने पूर्णांश से जिस लिङ्ग में वास करना स्वीकार किया, उसका नाम तारेश्वर प्रसिद्ध हुआ। तभी वहाँ शिवजी के अंश से एक अन्य लिङ्ग की उत्पत्ति भी हुई जो प्रणवेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय वहाँ बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। तदुपरान्त शिवजी सहित सब देवता तथा मुनि अपने-अपने स्थान को चले गये।

हे नारद ! इस प्रकार शिवजी से वरदान पाकर विन्ध्याचल अपने घर आया और अपने मन में विचार करता हुआ यह कहने लगा कि सुमेरु पर्वत के अहंकार का कारण केवल यही है कि सूर्य तथा चन्द्रमा अन्य नक्षत्रों सहित उसकी परिक्रमा करते हैं। अस्तु, मैं उसका अहंकार दूर करने के लिए आज इतना अधिक बढ़ूँगा कि सूर्य को चलने से ही रोक दूँगा। इस प्रकार निश्चय करके विन्ध्याचल पर्वत ने बढ़ना शुरू कर दिया और इतना बढ़ा कि उसने सूर्य की गति को रोक दिया।

हे नारद ! सूर्य की गति रुक जाने से इन्द्र लोक तथा कुबेर लोक में उष्णता बढ़ गयी। इन दोनों लोकों में सूर्य की किरणें एकत्रित होकर गिरने लगीं। तब वहाँ के सब लोग उन किरणों की अग्नि में जलने लगे। एक ओर तो यह दशा थी और दूसरी ओर वरुण लोक तथा यम लोक में घोर अंधेरा छा गया, जिसके कारण वहाँ के सभी निवासी अत्यन्त व्याकुल हुए। इस प्रकार सूर्य की गति रुक जाने से तीनों लोक अत्यन्त दुःखी हुए। तब सभी देवता, ऋषि, मुनि आदि मिलकर मेरे पास आये और इस प्रकार कहने लगे कि हे पिता ! आप किसी उपाय से हम लोगों की रक्षा करने की कृपा करें। तब मैंने उन्हें उत्तर देते हुए यह कहा—"हे देवताओ तथा मुनियो ! विन्ध्याचल पर्वत ने सुमेरु पर्वत पर विजय प्राप्त करने के हेतु रेवा नदी पर स्थित प्रणवेश्वर लिंग की अत्यन्त पूजा की है और स्वयं भी एक लिंग की स्थापना की है। अस्तु, अब तुम सब लोग मिलकर रेवा नदी के तट पर जाओ और प्रणवेश्वर शिवलिंग का पूजन करो।"

हे नारद ! मेरी यह बात सुनकर सब देवता, मुनि आदि प्रणवेश्वर शिवलिंग का पूजन करने गये। उस समय शिवजी ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर दर्शन दिया और यह कहा—"हे देवताओ ! हम तुम्हारी सेवा से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अब हम तुम्हें यह उपाय बताते हैं कि तुम काशीपुरी में जाकर अगस्त्य मुनि से यह सब वृत्तान्त कहो। वे तुम्हारे कार्य को अवश्य कर देंगे।" भगवान् सदाशिव इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। तब देवताओं ने अगस्त्य जी के समीप पहुँचकर, उन्हें प्रणाम किया। अगस्त्य ऋषि ने जब उनसे आने का कारण पूछा, उस समय बृहस्पति ने उन्हें उत्तर देते हुए बताया—"हे मुनिश्रेष्ठ ! विन्ध्याचल ने ऊँचा बढ़कर सूर्य की गति को भी रोक दिया है। अस्तु, आप ऐसा उपाय करने की कृपा करें, जिससे तीनों लोकों का दुःख दूर हो।" देवताओं की यह प्रार्थना सुनकर अगस्त्य जी विन्ध्याचल के पास जा पहुँचे। अगस्त्य मुनि के दर्शन पाते ही विन्ध्याचल ने अपने मन में अत्यन्त भयभीत हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! आप मुझे अपना सेवक जानकर कोई आज्ञा दीजिए, मैं उसका अवश्य पालन करूँगा।" यह सुनकर अगस्त्य जी ने उनसे कहा—"हे विन्ध्याचल ! हम दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं। अस्तु, जब तक लौटकर न आवें, तब तक तुम और अधिक ऊपर न बढ़कर, नीचे बने रहो।" विन्ध्याचल ने इस बात को स्वीकार कर लिया। तब अगस्त्य जी दक्षिण दिशा की ओर चल दिये और वहाँ से फिर कभी भी लौटकर नहीं आये। इस प्रकार तीनों लोकों का दुःख दूर हो गया। जो मनुष्य इस चरित्र को पढ़ता, सुनता अथवा सुनाता है, उसे दोनों लोकों में आनन्द मिलता है।"

ॐ ॐ ॐ

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! मेरा पुत्र स्वायंभुव मनु अत्यन्त प्रतापी हुआ। उसने मनुस्मृति बनाकर, धर्म नीति सम्बन्धी सम्पूर्ण

विवादों को दूर कर दिया। उसने तीन कन्या तथा दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनके द्वारा बहुत-सी सन्तानें हुईं। उसके एक पुत्र का नाम उत्तानपाद तथा दूसरे का प्रियवृत था। प्रियवृत ने अपने रथ पर चढ़कर, सूर्य के समान समस्त संसार का भ्रमण किया तथा सब द्वीपों एवं समुद्र का विभाजन किया। उसके घर में सात पुत्र उत्पन्न हुए। तब उसने मेरी आज्ञानुसार अपने सातों पुत्रों को एक-एक द्वीप का स्वामी बना दिया और स्वयं शिवजी की सेवा में संलग्न होकर परमपद को प्राप्त किया। उसका सबसे बड़ा लड़का अग्नीज नामक था। वह जम्बूद्वीप का स्वामी बना। अग्नीज से नाभि नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। नाभि ने ऋषभदेव को जन्म दिया। ऋषभदेव के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम भरत था। भरत चक्रवर्ती राजा हुआ। नाभि के अन्य पुत्रों में से नौ बालक तुम्हारी सम्मति मानकर योगी हो गये तथा इक्यासी बालक सिद्ध हुए।

हे नारद ! भरत तीनों लोकों में अत्यन्त यशस्वी हुआ। उसके जितने बालक थे, वे जिस-जिस खण्ड के राजा हुए, वह-वह खण्ड उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्वायंभुव मनु की आकूति नामक बड़ी पुत्री का विवाह रुचि नामक मुनि के साथ हुआ था। रुचि ने सन्तान प्राप्ति के हेतु विष्णु जी का बड़ा तप किया। जब विष्णु जी ने दर्शन देकर उनसे वरदान माँगने के लिए कहा, तब रुचि ने उनसे यह प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। विष्णु जी उसकी प्रार्थना स्वीकार कर अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त विष्णु जी ने स्वयं ही आकूति के उदर से दो रूपों में जन्म लिया। उन दोनों बालकों का नाम नर और नारायण रखा गया। रुचि तथा आकूति ने उन दोनों का विष्णु का अवतार जानकर दीक्षा दी। तदुपरान्त वे दोनों नर और नारायण तपस्या करने के हेतु हिमाचल पर्वत पर पहुँचे। हिमाचल की जो शाखा केदार नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ दोनों ने अत्यन्त कठिन तप किया। वे शिवजी का पार्थिव पूजन तथा अखण्ड ध्यान धरते रहते थे। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना दर्शन दिया।

हे नारद ! नर-नारायण ने उनकी बहुत स्तुति की तथा यह कहा—"हे प्रभो ! आप हमें अपनी भक्ति प्रदान करने की कृपा करें।" नर-नारायण की स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी बोले—"हे नर-नारायण ! अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हम से माँग लो।" यह सुनकर नर-नारायण ने कहा—"हे प्रभो ! आप इसी स्थान पर अपने पूर्ण अंश से स्थित रहें तथा हमें अपने चरणों की भक्ति प्रदान करने की कृपा करें।" इस प्रार्थना को स्वीकार कर, शिवजी उस स्थान पर ज्योतिर्लिंग होकर अपने पूर्णअंश से स्थित हो गये तथा केदारेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हे नारद ! जिस स्थान पर नर-नारायण केदारेश्वर शिवलिङ्ग का पूजन करते हुए स्थित हैं, उस स्थान को बदरीवन भी कहा जाता है। वहाँ देवता तथा ऋषि-मुनि आदि समय-समय पर पहुँचकर, शिवजी का पूजन करते हैं। केदारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग भरतखण्ड के निवासियों के सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाला है। उसके दर्शन करने मात्र से ही सम्पूर्ण मनोकामना सिद्ध हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति, जो केदारेश्वर का दर्शन करने जा रहा हो, मार्ग में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय, तो उसे भी मुक्ति मिलती है। केदारेश्वर शिवलिङ्ग की महिमा अपार है।

हे नारद ! विष्णु जी के अवतार श्री कृष्णचन्द्र जी जब जरासंध से परास्त हो गये थे, तब उन्होंने बदरीवन में जाकर केदारेश्वर शिवलिङ्ग का बड़ा पूजन तथा तप किया था। वे सात महीने तक योग धारण कर केवल एक पाँव से खड़े हो, शिवजी का ध्यान धरते रहे थे। उस समय शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान माँगने के लिए कहा। तब श्री कृष्णचन्द्र जी ने उनसे अप्रमेय बल की याचना की, जिसे शिवजी ने प्रसन्नता पूर्वक प्रदान किया। जिस समय राजा पाण्डु के पुत्र पाण्डव अपने पापों से मुक्ति पाने के हेतु केदारेश्वर शिवलिङ्ग का दर्शन करने पहुँचे थे, उस समय शिवजी भैंसा का रूप धारणकर वहाँ से भाग चले थे, क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि ऐसे महापापियों को मुक्त किया

जाए। परन्तु जब पाण्डवों ने उनकी अत्यन्त विनय की और यह कहा कि आप हमारे पाप को दूर करके कृपापूर्वक यहीं स्थिर रहें तब शिवजी अपने पिछले धड़ से उसी स्थान पर स्थित रह गये, जिसकी सेवा द्वारा पाण्डवों के सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये। शिवजी अगले धड़ से नेपाल में जा पहुँचे और हरिहर रूप धारण कर वहीं स्थित हो गये। जो मनुष्य हरिहर शिव का दर्शन करता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। हे नारद ! अब भीम शंकर ज्योतिर्लिंग का वृत्तान्त सुनो।''

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! पूर्व काल में भीम नामक एक अत्यन्त बलशाली दैत्य हुआ उसकी उत्पत्ति कुम्भकर्ण के वीर्य द्वारा हुई थी। भीम की माता का नाम कर्कटी था। वह अपनी माता सहित सह्यादि नामक पर्वत पर निवास कर, तीनों लोकों को तिनके के समान तुच्छ समझ, अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगा। एक दिन उस दैत्य ने अपनी माता से यह पूछा—''हे माता ! मेरे पिता का क्या नाम है और तुम यहाँ अकेली क्यों रहती हो? मेरे पिता कहाँ चले गये हैं? जो भी सत्य बात हो, उसे मुझे बताओ।''

हे नारद ! अपने पुत्र की बात सुनकर कर्कटी ने उत्तर दिया—''हे पुत्र ! तुम्हारे पिता का नाम कुम्भकर्ण था। वे रावण के छोटे भाई थे। उन्हें दशरथ के पुत्र रामचन्द्र ने मार डाला।'' यह सुनकर भीम ने पूछा—''हे माता ! तुम मुझे यह बताओ कि कुम्भकर्ण तथा रावण कौन थे, राम कौन हैं और राम ने उन्हें क्यों मार डाला?'' यह सुनकर कर्कटी ने उसे सीता हरण विस्तारपूर्वक कह सुनाया। फिर यह कहा—''हे पुत्र ! जब मैं विधवा हो गयी तो माता-पिता के घर आकर रहने लगी।''

उन्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर भीम अपने मन में अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तथा यह विचार करने लगा कि देवताओं ने मेरे साथ बहुत बुरा किया है जो उन्होंने विष्णु की सहायता लेकर मेरे कुल को नष्ट करा दिया। इसके अतिरिक्त यह नियम भी है कि जो पुत्र अपने पिता का बदला न ले सके, उसे अत्यन्त नीच समझना चाहिए। अस्तु, अब मैं देवताओं से अपने पिता की मृत्यु का बदला चुकाऊँगा।

हे नारद ! यह विचार कर भीम ने वन में पहुँचकर अत्यन्त कठिन तप करना आरम्भ कर दिया। भीम के कठिन तप के कारण तीनों लोक जलने लगे तब सब देवता तथा ऋषि-मुनि आदि मेरी शरण में आये और प्रार्थना करते हुए यह कहने लगे—"हे ब्रह्मन् ! वह दैत्य कुम्भकर्ण के वीर्य से उत्पन्न हुआ है और अपने पिता का बदला लेने की इच्छा से उग्र तप कर रहा है। अस्तु, आप उसे वरदान देने की कृपा करें, जिससे तीनों लोकों की रक्षा हो जाए। यद्यपि वर प्राप्त हो जाने पर वह हमें दुःख ही देगा, परन्तु तो भी यह बात हम इसलिए कह रहे हैं कि यदि आपने उसे वर नहीं दिया तो उसके उपद्रव करने से पूर्व ही हम सब इस अग्नि में जलकर भस्म हो जायेंगे।"

हे नारद ! देवताओं की प्रार्थना सुनकर मैं उस दैत्य के पास जा पहुँचा और उसे वर माँगने के लिए कहने लगा। उस समय भीम ने मेरी प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे ब्रह्मन् ! आप मुझे ऐसा अप्रमेय बल देने की कृपा करें, जिसके द्वारा मैं अपने पिता के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकूँ।" यह सुनकर मैं उसे इच्छित वरदान देकर, अपने लोक को लौट आया। तब भीम अत्यन्त प्रसन्न हो, अपनी माता के पास जाकर कहने लगा—"हे माता ! अब मैं सब देवताओं तथा मुनियों का वध कर डालूँगा।" यह कहने के उपरान्त उस दैत्य ने एक भयानक शब्द किया, जिसे सुनकर तीनों लोक काँपने लगे। अस्तु,

सब दैत्यों ने उसके पास पहुँचकर, उसे अपना राजा बना दिया। तदुपरान्त वह दैत्यों की सेना लेकर इन्द्र पर चढ़ाई करने के लिए चल दिया।

हे नारद ! जिस समय वह दैत्य इन्द्रलोक में पहुँचा, उस समय सब देवता उसके भय से भयभीत हो, विष्णु जी की शरण में गये और उनसे अपनी रक्षा करने की प्रार्थना करने लगे। तब विष्णु जी उन्हें साथ लेकर उस दैत्य से युद्ध करने के लिए गये। विष्णु ने अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया, परन्तु वह किसी भी प्रकार विचलित नहीं हुआ। यह देखकर विष्णु जी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, अपने हाथ में ब्रह्मास्त्र उठाया। उस समय यह आकाशवाणी हुई—''हे विष्णु ! तुम इस दैत्य पर विजय प्राप्त नहीं कर सकोगे। अस्तु अपने लोक को लौट जाओ। इस दैत्य का संहार भगवान् सदाशिव द्वारा होगा।'' इस आकाशवाणी को सुनकर विष्णु जी तुरन्त अन्तर्धान हो गये। तब भीम देवताओं पर विजय प्राप्त कर, अपनी सेना सहित घर लौट आया। उसने देवताओं के स्थान पर दैत्यों को प्रतिष्ठित किया और उनके सब रत्न छीन लिये।''

ॐ ॐ ॐ

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! मैंने तथा विष्णु जी ने तथा सब देवताओं ने उस समय शिवजी की शरण में पहुँचकर दण्ड-प्रणाम करने के पश्चात् स्तुति करते हुए भीम का सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा यह प्रार्थना की—''हे प्रभो ! आपके अतिरिक्त उस दैत्य को अन्य कोई नहीं मार सकता।'' यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—''हे देवताओ ! जब वह भीम नामक दैत्य कामरूप देश के राजा प्रियधर्म को दुःख पहुँचायेगा, तब हम उसका संहार करेंगे।'' यह सुनकर हम सब लोग अपने घर लौट आये।

हे नारद ! उधर एक दिन भीम ने अपने मन में यह विचार किया कि

यदि शिवजी रामचन्द्र को अपना बाण न देते तो वे मेरे पिता को नहीं मार सकते थे। शिवजी के कारण ही सब देवता, ऋषि-मुनि निर्भय रहते हैं। अस्तु, अब मुझे शिवजी को नष्ट करने का उपाय करना चाहिए। शिवजी कहीं दिखाई नहीं देते, इसलिए यदि मैं उनके भक्तों को दुःख पहुँचाना आरम्भ कर दूँ तो वे उन्हें बचाने के हेतु किसी दिन अवश्य प्रकट होंगे। यह निश्चय करके वह दैत्य अपनी सेना सहित शिव भक्तों को ढूँढ-ढूँढकर मारने लगा। एक दिन वह कामरूप के राजा प्रियधर्म को शिवजी का परम भक्त समझकर, उसके राज्य में जा पहुँचा उस समय सब प्रजा अत्यन्त दुःखी होकर राजा के पास पुकार करने के लिए पहुँची। तब तक भीम भी अपनी सेना को साथ लिये उसके किले में जा पहुँचा। उसने राजा को पकड़कर बाँध लिया तथा बन्दी बना लिया।

हे नारद ! उस अवस्था में भी राजा प्रियधर्म ने शिवजी का ध्यान करना न छोड़ा। वह गंगा का स्मरण कर, मानसी-स्नान कर लेता और बन्दीगृह में भी पार्थिव-पूजन किया करता था। उसकी दक्षा नामक रानी उसी के पास रहकर, शिवजी का पूजन किया करती थी। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर शिवजी गुप्त रूप से उस मूर्ति में स्थित हो गये। जो राक्षस राजा के बन्दीगृह की रक्षा के हेतु नियुक्त थे जब उन्होंने यह देखा कि राजा अब भी पार्थिव-पूजन करना नहीं छोड़ता है, तब एक दिन उनमें से एक राक्षस ने भीम के पास जाकर यह समाचार दिया और कहा कि राजा प्रियधर्म अभी तक शिवजी की पूजा करता रहता है। इस समाचार को पाकर भीम अपने हाथ में खड्ग ले, अत्यन्त क्रोधित हो, राजा को मार डालने के लिए उसके पास जा पहुँचा। अस्तु, इस प्रकार जब राजा के पास जाकर उसने यह देखा कि उसके सेवक का कहना सत्य है तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा से इस प्रकार पूछने लगा—"हे राजन् ! तू क्या कर रहा है?"

हे नारद ! भीम के वचन सुनकर राजा ने उत्तर दिया—"हे दैत्यराज ! मैं सम्पूर्ण विपत्तियों को नष्ट करने वाले शिवजी का पूजन

कर रहा हूँ। तुम्हारे जो मन में आवे, वह करो ; परन्तु मैं शिवजी की पूजा किसी प्रकार नहीं छोड़ूँगा।'' यह सुनकर भीम ने हँसते हुए कहा—''हे मूर्ख राजन् ! हम तेरे स्वामी को अच्छी तरह जानते हैं। वह हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। जब तक वह शिव मेरे सामने नहीं आता, तभी तक तू उसे अपना स्वामी समझकर, ढोंग रच रहा है। तुझे चाहिए कि तू इस मूर्ति को उठाकर फेंक दो और मेरी आज्ञानुसार शिव का नाम लेना छोड़ दो। यदि तूने मेरी बात नहीं मानी तो मैं तुझे अपनी तलवार से मार डालूँगा।

हे नारद ! इस प्रकार उस राक्षस ने राजा प्रियधर्म से बहुत-सी बातें कहीं, परन्तु राजा उन सबको अनसुनी करके दृढ़तापूर्वक शिवजी के ध्यान में मग्न बना रहा। राजा ने यह विचार करके कि शिवजी अपने भक्तों की अवश्य सहायता करते हैं, भीम को उत्तर दिया—''अरे राक्षस ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब तेरा अन्तिम समय निकट आ पहुँचा है। इसीलिए तू शिवजी के प्रति ऐसे अपमानजनक शब्दों का प्रयोग कर रहा है। हे मूढ़ ! यदि तू मेरे साथ कोई बुराई करेगा तो शिवजी तुझे जलाकर भस्म कर डालेंगे।'' राजा की यह बात सुनकर भीम फिर बोला—''हे मूर्ख राजा ! हम तेरे शिव को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। यदि तू इसी समय शिव की पूजा करना नहीं छोड़ता, तो यह निश्चय रख कि हमारे हाथ से अभी मार डाला जायेगा।'' इस पर राजा ने उत्तर दिया—''हे दैत्य ! तेरे मन में जो आवे, वह कर, परन्तु मैं शिवजी का पूजन कभी नहीं छोड़ूँगा।'' इन कटु वचनों को सुनकर भीम ने तलवार उठाते हुए कहा—''अरे मूर्ख राजा ! हमने तुझे विचार करने के लिए बहुत समय दिया, परन्तु तू अब भी अपनी हठ पर अड़ा हुआ है। अब हम अपने खड्ग द्वारा तेरा मस्तक काटते हैं। तू अपने शिव का स्मरण कर ले। देखें, वह किस प्रकार तेरी रक्षा करता है?'' इतना कहकर भीम ने जैसे ही अपना खड्ग चलाया, उसी समय शिवजी राजा प्रियधर्म द्वारा स्थापित पार्थिव मूर्ति से प्रकट होकर, उसके सामने आ खड़े हुए।''

इकतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जिस समय भीम ने शिवजी के महाभयानक स्वरूप को देखा, उस समय वह अत्यन्त भयभीत हो गया। तब शिवजी ने उसे सम्बोधित करते हुए उच्च स्वर में इस प्रकार कहा—"हे दैत्यराज ! अब तू अपना बल हमें दिखा और हमारी शक्ति को स्वयं देख।" शिवजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर भीम उनसे युद्ध करने के हेतु तैयार हो गया। तब शिवजी तो भीम के साथ युद्ध करने लगे और उनके गण दैत्यों के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हुए। वह युद्ध ऐसा भयानक था कि मैं तथा विष्णु आदि देवता भी उसे देखकर आश्चर्य में पड़ गये। भीम ने शिवजी के ऊपर जितने भी अस्त्र-शस्त्र छोड़े, उन सबको भगवान् शंकर ने अपने बाणों द्वारा काट डाला। तदुपरान्त उन्होंने अपने त्रिशूल का ऐसा प्रहार किया कि उसके लगते ही भीम मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा।"

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! उस युद्ध को देखकर मैंने तुम्हें शिवजी के पास यह कहने के लिए भेजा कि अब आप और अधिक विलम्ब न करके भीम को मार डालिये। मेरे इस सन्देश को लेकर जब तुम शिवजी के पास पहुँचे, उस समय शिवजी ने तुम्हें यह उत्तर दिया—"हे नारद ! तुम देवताओं से जाकर यह कह दो कि हम थोड़ी ही देर में इस शत्रु को मार डालेंगे।" जिस समय तुम शिवजी की आज्ञा सुनकर हमारे पास लौटे, तभी दैत्यों ने मिलकर शिवजी के ऊपर एक साथ चढ़ाई कर दी। उस समय देवताओं में हाहाकार मच गया।"

हे नारद ! उस समय शिवजी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर एक ज़ोर की हुँकार भरी, जिससे ऐसी ज्वाला उत्पन्न हुई कि उसमें पड़कर सभी दैत्य भस्म हो गये। भीम भी उसी अग्नि में जलकर नष्ट हो गया। तदुपरान्त उन दैत्यों के शरीर की भस्म नासिका की वायु का आश्रय पाकर भगवान् सदाशिव एवं अन्य देवताओं को स्पर्श करती हुई पृथ्वी

पर गिर पड़ी जिसके द्वारा सहस्त्रों गुणकारक औषधियों की उत्पत्ति हुई। सिद्ध लोग उन औषधियों की सहायता से अनेक प्रकार के रूप धारण कर लेते हैं। भगवान् सदाशिव की उस लीला को देखकर सभी देवता अत्यन्त आनन्दित हुए। तब उन्होंने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए, शिवजी से यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आप उस स्थान पर अपने पूर्ण अंश में विराजमान् होने की कृपा करें।" देवताओं की प्रार्थना पर शिवजी अपने पूर्ण अंश से उस स्थान पर स्थित हुए, जहाँ उन्होंने भीम को जलाकर भस्म कर डाला था। वह लिङ्ग भीमशंकर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो भीमशंकर ज्योतिर्लिङ्ग के इस चरित्र को पढ़ता सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है, उसकी सम्पूर्ण मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।"

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब मैं पापों को नष्ट करने वाले तथा मोक्ष प्रदान करने वाले काशीपति विश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन करता हूँ। भगवान् सदाशिव ब्रह्म हत्या का पाप भी दूर कर देते हैं।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव का यह वचन है कि निर्गुण-सगुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। अस्तु, दोनों को एक ही रूप समझना चाहिए। जब ब्रह्म ने सगुण रूप धारण किया तो उन्होंने अपने शरीर द्वारा शक्ति को भी प्रकट किया। इस प्रकार वह एक रूप दो रूपों में विभाजित हो गया। उन्होंने अपने प्रकृति रूपा शक्ति द्वारा लीला करने के हेतु पाँच कोस के विस्तार वाले एक क्षेत्र का निर्माण किया, उसे आनन्दवन, काशी, वाराणसी, अविमुक्त, रुद्रक्षेत्र तथा महाश्मशान आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। वह स्थान शिवजी तथा उनकी शक्ति का अत्यन्त प्रिय है। शिव तथा शक्ति ने उस स्थान में बहुत समय तक विहार किया, तदुपरान्त उनकी यह इच्छा हुई कि हम किसी

बलवान् पुरुष को उत्पन्न करें। अस्तु, उन्होंने अपनी बायीं भुजा द्वारा एक अत्यन्त सुन्दर मनुष्य को, जो चार भुजाएँ धारण किये हुए था उत्पन्न किया। उसने जन्म लेते ही शिवजी को प्रणाम करते हुए पूछा—"हे प्रभो ! मेरा क्या नाम है और आप मुझे किस कार्य को करने की आज्ञा देते हैं?"

हे नारद ! उस पुरुष की बात सुनकर शिवजी ने कहा—"हे पुत्र ! तुम तीनों लोकों के स्वामी होने के कारण संसार में विष्णु नाम से प्रसिद्ध होंगे। अब तुम कठिन तपस्या करो, जिससे तुम्हारे तेज की और अधिक वृद्धि हो।" इतना कहकर शिवजी ने विष्णु जी को श्वास मार्ग द्वारा सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान प्राप्त करा दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये। तब शिवजी की आज्ञा मानकर विष्णु जी ने तपस्या करने के हेतु, सर्वप्रथम एक पुष्करिणी को अपने हाथों से खोद फिर उसे अपने पसीने के जल से भरने के उपरान्त, पचास सहस्त्र वर्षों तक ध्यान में मग्न हो गये। जब उस तपस्या का कोई फल नहीं मिला, तब वे अत्यन्त चिन्तित हुए। उसी समय उन्हें यह आकाशवाणी सुनाई दी कि हे विष्णु ! तुम फिर तपस्या करो, तब तुम्हें वर प्राप्त होगा। आकाशवाणी को सुनकर विष्णु जी ने पुनः तप करना आरम्भ किया। उससे प्रसन्न होकर शिवजी ने शक्ति सहित प्रकट होकर विष्णु को अपना दर्शन दिया। उस समय शिवजी के कान से एक मणिकर्णिका निकल कर उस स्थान पर गिर पड़ी ; जिससे वह स्थल संसार में मणिकर्णिका के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तदुपरान्त जब शिवजी ने विष्णु जी से वर माँगने के लिए कहा तो विष्णु जी ने उनकी स्तुति करते हुए यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आप मुझे अपनी अप्रमेय भक्ति का वर दीजिये तथा ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह स्थान सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त हो।" शिवजी ने विष्णु की यह प्रार्थना स्वीकार करने के उपरान्त कहा—"हे विष्णु ! तुम सृष्टि को उत्पन्न करने के हेतु पुनः तपस्या करो।"

हे नारद ! विष्णु जी द्वारा बहुत समय तक दुबारा तपस्या करने पर भी, शिवजी प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि वे कुछ और लीला करना चाहते

थे। उधर तपस्या करते-करते विष्णु जी के शरीर से इतना पसीना निकला कि सम्पूर्ण पृथ्वी जल से भर गयी। उस जल को देखकर विष्णु जी अत्यन्त चिन्तित हुए, परन्तु शिवजी की माया के कारण वास्तविक भेद को नहीं जान सके। जिस समय काशी उस जल में डूबने लगी, तब शिवजी ने उसे अपने त्रिशूल पर धारण कर, ऊपर उठा लिया। उस समय शिवजी ने यह चरित्र किया कि विष्णु जी की नाभि से, जो कि तालाब के समान गहरी तथा चौड़ी थी, एक कमल उत्पन्न हुआ। वह कमल करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवान् था। तदुपरान्त शिवजी ने अपनी दाहिनी भुजा से मुझे उत्पन्न करके, उस कमल के ऊपर बैठा दिया। परन्तु शिवजी की माया में मोहित होने के कारण मुझे यह ज्ञान न हो सका कि मैं किस प्रकार उत्पन्न हुआ हूँ। उस कमल पर बैठे हुए जब मैं अपने जन्म के विषय में सोच रहा था तभी अचानक ही मुझे यह ध्यान आया कि जहाँ से यह कमल उत्पन्न हुआ होगा, वह स्थान ही मेरी उत्पत्ति का मूल होगा। अस्तु, मैं उस कमल की जड़ का पता पाने के लिए कमल-नाल के मार्ग द्वारा नीचे की ओर चल दिया, परन्तु सौ वर्षों तक निरन्तर चलने पर भी उस कमल की जड़ का मूल नहीं मिला।

हे नारद ! उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि तुम तपस्या करो, तब तुम्हें वास्तविक भेद का ज्ञान प्राप्त होगा। उस आकाशवाणी को सुनकर मैं तप करने में लीन हो गया। तदुपरान्त शिवजी ने अपनी लीला द्वारा विष्णु जी को सचेत करके मेरे पास भेजा। जब उन्होंने मेरे समीप आकर वर माँगने के लिए कहा, तब मैंने उनसे पूछा कि आप कौन हैं? उस समय विष्णु जी ने यह उत्तर दिया कि हम तुम्हारे पिता हैं और सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं। यह सुनकर मैं उनसे विवाद करने लगा। उसी समय शिवजी एक ज्वाला के रूप में प्रकट हुए। वह ज्वाला पृथ्वी से लेकर आकाश तक फैली हुई दिखाई दी। हम दोनों उस ज्वाला के प्रारम्भिक तथा अन्तिम छोर को जानने के लिए बहुत समय तक भटकते रहे, परन्तु जब सफलता न मिली तो उसी कमल

पुष्प पर आकर खड़े हो गये। उस समय शिवजी ने प्रसन्न होकर हमें अपना दर्शन दिया और यह कहा—"हे ब्रह्मा जी तथा हे विष्णो ! अब ब्रह्मा जी सृष्टि को उत्पन्न करने का कार्य करें तथा विष्णु जी उसका पालन करें।" इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये।

हे नारद ! शिवजी के अदृश्य हो जाने पर विष्णु जी भी अन्तर्धान हो गये। उन्होंने वैकुण्ठ लोक का निर्माण किया और उसी में निवास करने लगे। तदुपरान्त मैंने सम्पूर्ण ब्रह्मांड को उत्पन्न किया। इस सृष्टि में जो पचास कोटि योजन विस्तार के चौदह लोक तथा पृथ्वी के ऊपर-नीचे चौदह भुवन दिखाई देते हैं, वे सब मेरे ही द्वारा उत्पन्न किये हुए हैं। भगवान् सदाशिव स्वयं निर्गुण रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं तथा मैं विष्णु और हर उनके सगुण रूप में प्रकट होकर, सांसारिक कार्यों को किया करते हैं।

हे नारद ! शिवजी के स्वरूप दो प्रकार के कहे गये हैं—पहला क्षर दूसरा अक्षर। भगवान् सदाशिव निर्गुण तथा सगुण रूप से सब जगह विद्यमान् हैं। उनकी महिमा को कोई भी नहीं जान पाता। सभी प्राणियों को यह उचित है कि जब तक निर्गुण रूप का पूरा हाल न जान ले, तब तक सगुण रूप के जानने में लगा रहे। जो भक्त निर्गुण रूप को जान लेता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।"

ॐ ॐ ॐ

तैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे पुत्र ! जब निर्गुण रूप का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तब जीव के सभी कार्य छूट जाते हैं और उसे सम्पूर्ण लोक ब्रह्मरूप दिखाई देने लगते हैं। यह ज्ञान अत्यन्त कठिन तथा दुर्लभ है। इसे कोई-कोई सत्पुरुष ही जान पाते हैं। अनेक जन्मों के अभ्यास द्वारा योगियों को यह ज्ञान बहुत अल्प मात्रा में होता है।

एक दिन जब शिवजी ने संसार के कल्याण के निमित्त यह विचार किया कि ब्रह्मा ने हमारी आज्ञा द्वारा सृष्टि को तो उत्पन्न किया, परन्तु

ब्रह्माण्ड के जीव अपने कर्मों में बंधे रहकर हमारे स्वरूप को किस प्रकार जान सकेंगे, तब उन्होंने यह लीला की कि जिस काशी को उन्होंने अपने त्रिशूल पर उठा रक्खा था, उसे पुनः पृथ्वी पर स्थापित कर दिया। तदुपरान्त उन्होंने अपने लिंग अविमुक्त अर्थात् विश्वनाथ को काशी में स्थापित करके यह कहा—"काशी हमारा क्षेत्र है। अस्तु यह कभी प्रलयकाल में भी नष्ट नहीं होगा। इसकी उत्पत्ति हमारे अंश से हुई है, इसलिए यह हमें अत्यन्त प्रिय है। जो मनुष्य इस काशी के दर्शन करेंगे व आवागमन से छूट जाएंगे और जो यहाँ की यात्रा करेंगे, उस समय इस काशी को अपने त्रिशूल पर उठाकर, बचा लिया करेंगे। तदुपरान्त जब ब्रह्मा पुनः सृष्टि को उत्पन्न करेंगे, तब हम इसे फिर उसी स्थान पर स्थित कर दिया करेंगे। अब तुम इस काशी में निवास करके यहाँ की रक्षा करो।"

हे नारद ! भगवान् सदाशिव ने विश्वनाथ लिंग से यह कह कर उन्हें काशी सहित मृत्यु लोक में लाकर स्थापित कर दिया। तभी से काशी पापों को नष्ट करने वाली प्रसिद्ध है। विश्वनाथ ज्योतिर्लिङ्ग समस्त प्राणियों को भवसागर से पार उतारा करता है। उस स्थान पर मुक्ति दासी के समान निवास किया करती है। जो मनुष्य किसी भी प्रकार मोक्ष प्राप्त करने योग्य नहीं है, उन्हें भी काशी मुक्ति प्रदान करती है। भगवान् सदाशिव की आज्ञानुसार काशी सम्पूर्ण दुःखों को नष्ट करने में कुल्हाड़ी के समान है। उस काशी को पाकर विश्वनाथ जी भी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा सम्पूर्ण संसार सनाथ हो गया।

हे नारद ! जब विश्वनाथ जी काशी सहित लिंग रूप में प्रकट हुए तब मैं तथा विष्णु जी अपने गणों सहित शिव नाम का उच्चारण करते हुए, उस स्थान पर जा पहुँचे। सब देवता, दिग्पाल, सनकादिक तथा ऋद्धि-सिद्धियों सहित इन्द्र भी वहाँ जा पहुँचे। तब हम सब लोगों ने बड़ा उत्सव करके, सुख प्राप्त किया और उस विश्वनाथ लिंग की पूजा की। तदुपरान्त जब सब लोगों ने मिलकर स्तुति की। उस समय शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर, हमें अपना दर्शन दिया। शिवजी का

वह स्वरूप अत्यन्त सुन्दर तथा चतुर्भुजी था। उनके सम्पूर्ण गौर शरीर पर श्वेत भस्म लगी हुई थी और प्रत्येक अंग सुडौल थे।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव के उस स्वरूप को देखकर हम सब लोग कृतार्थ हो गये। तदुपरान्त हमने उन्हें प्रणाम करते हुए यह स्तुति की—"हे प्रभो ! आप इस काशीपुरी में सदैव स्थित रहें तथा यह क्षेत्र अविमुक्त के नाम से प्रसिद्ध हो। आपका यह विश्वनाथ नामक लिंग सबसे श्रेष्ठ तथा पूर्ण अंश संयुक्त है। अस्तु यह यहाँ पर सदैव स्थित रहे।" हम लोगों की इस प्रार्थना को सुनकर शिवजी ने 'एवमस्तु' कहा। भक्ति तथा नन्दी ने भी हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार किया। वह ज्योतिर्लिङ्ग विश्वेश्वर, विश्वनाथ तथा अविमुक्त नाम से संसार में प्रसिद्ध है। उसका दर्शन, पूजन एवं स्मरण करने से सम्पूर्ण मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं। तीनों लोकों में काशीपुरी के समान न तो कोई दूसरी पुरी है और न विश्वनाथ लिङ्ग के समान अन्य कोई लिङ्ग है।"

चौंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! विश्वनाथ तथा काशी का चरित्र भक्तों को मुक्ति देने वाला है। उस पवित्र काशीपुरी में मणिकर्णिका तीर्थ ऐसा है जो सब प्राणियों की मनोकामनाएँ पूरी करता है। जब नश्वर संसार में अनश्वर काशी का आगमन हुआ, उस समय सब लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

हे नारद ! तदुपरान्त सब मनुष्य काशी-विश्वनाथ का दर्शन करने के हेतु स्त्री-पुरुषों को साथ ले, बड़ी धूमधाम से चले। वह समाज जब काशीपुरी में इकट्ठा हुआ तो ऐसा आनन्द दिखाई देने लगा, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे लोग गाते-बजाते हुए विश्वनाथ मन्दिर के समीप पहुँचे और उनका दर्शन तथा पूजन करके जय-जयकार करने लगे। जब एक स्त्री ने लोगों के मुख से विश्वनाथ लिंग की महिमा सुनी तो उसने अपने कृपण पति से यह कहा—"हे पति !

आप भी भगवान् विश्वनाथ के दर्शन करने के लिए मुझे ले चलें, क्योंकि सम्पूर्ण संसार उनके गुणों का वर्णन कर रहा है।"

पैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अपनी स्त्री की बात सुनकर यह कृपण मनुष्य बहुत दुःखी हुआ, क्योंकि उसने यह सोचा था कि यदि मैं इसे लेकर काशी को गया तो कुछ द्रव्य खर्च करना पड़ेगा। अस्तु, वह अपनी पत्नी से बोला—"अरी बावली ! तू यह क्या विचित्र बात कहने बैठ गयी है? तू यह अच्छी तरह जानती है कि मैंने बड़े परिश्रमपूर्वक धन एकत्र किया है। मैं इस कमाई को व्यर्थ के कार्यों में खर्च नहीं कर सकता। इसे परिश्रमपूर्वक संचय करके रखना चाहिए।"

हे नारद ! अपने पति के मुख से यह वचन सुनकर उस शिव भक्तिनी स्त्री ने हाथ जोड़कर कहा—"हे स्वामी ! आपका कथन सत्य है। धन का संग्रह करना सर्वथा उचित है, परन्तु उसे शिवजी के निमित्त व्यय करना भी आवश्यक है। शिवजी की भक्ति से और भी अधिक धन की प्राप्ति होती है। शिवजी के गुणों का श्रवण करने वाले कान ही श्रेष्ठ हैं तथा जो नाक शिवजी के चरणों की सुगन्धि ग्रहण करती है, वही प्रशंसा के योग्य है। जो पाँव शिव क्षेत्र की यात्रा करें, उन्हें उत्तम समझना चाहिए। मनुष्य को उचित है कि उसे जो वस्तु प्रिय हो, उसे शिवजी के हित में अर्पित कर दें। भगवान् विश्वनाथ का पूजन बड़े-बड़े पापों को भी नष्ट कर देता है। अस्तु, मैं यह कहती हूँ कि इस समय सब लोग शिवजी के दर्शन करने जा रहे हैं सो आप भी चलने की तैयारी करें। विद्वानों का कहना है कि संसार में धर्म से बढ़कर अन्य कोई कर्म नहीं है तथा धन कर्म के अधीन रहता है।"

हे नारद ! पत्नी के मुख से यह बात सुनकर कृपण ने उत्तर दिया—"हे प्रिये ! भाग्य में जो लिखा होता है, वही मिलता है। तब हमें क्या आवश्यकता है कि हम अपने धन को व्यर्थ ही व्यय कर दें? भला तुम सोचो कि जिन हाथों द्वारा धन को पैदा किया जाता है, उन्हीं हाथों द्वारा

उसको व्यय कर देना, किस प्रकार मंगलदायक हो सकता है?'' यह सुनकर जब उस स्त्री ने फिर हठ किया, तब वह कृपण अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस प्रकार कहने लगा—''अरी मूर्खा ! स्त्री को उचित है कि वह अपने पति की आज्ञा का पालन करे। इस प्रकार पति के ऊपर अपनी आज्ञा चलाना शोभनीय नहीं है। यदि तूने मेरी बात नहीं मानी तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। अच्छा, अब मैं इस घर को छोड़कर चला जाता हूँ, फिर तू यहाँ रह कर जो मन में आवे, वह करती रहना। इस प्रकार वह कृपण अपने घर से चला गया और उसकी स्त्री शिवजी के प्रेम में मग्न हो, घर में बैठी विलाप करती रही।''

ॐ ॐ ॐ

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! वह कृपण वन में जाकर बहुत विलाप करने लगा। उसी समय एक शिव भक्त उसके पास जा पहुँचा। जब उसने कृपण से रोने का कारण पूछा और कृपण ने उसे सब हाल कह सुनाया, तब उसने समझाते हुए इस प्रकार कहा—''हे कृपण ! तुम्हारी स्त्री ने तुम्हें श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा दी थी, परन्तु शिवजी की माया में मोहित होने के कारण तुमने उस पर ध्यान नहीं दिया। तुमने जिस धन को अत्यन्त परिश्रमपूर्वक एकत्र किया है, वह तुम्हारे साथ कभी नहीं जायेगा। अस्तु, तुम्हें भी उचित है कि तुम इस मनुष्य के शरीर को पाकर भगवान् विश्वनाथ का दर्शन अवश्य करो। जो प्राणी मनुष्य शरीर पाकर माया-मोह में भूला रहता है, उसे पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।'' इस प्रकार शिव भक्त ने उसे सदुपदेश दिया तब वह कृपण भी अपनी भूल को स्वीकार कर, शिवजी के प्रेम में मग्न हो गया और इस प्रकार कहने लगा—''हे बन्धु ! मैं अब तक वास्तव में अज्ञानावस्था में था। आपके वचन सुनकर मुझे श्रेष्ठ बुद्धि की प्राप्ति हुई है।''

ॐ ॐ ॐ

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! यह सुनकर शिवजी के भक्त ने कहा—"हे बन्धु ! संसार में उत्तम, मध्यम तथा अधम—इन तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। उत्तम उन्हें समझना चाहिए, जो इस संसार को नाशवान् समझकर अहंकार को त्याग देते हैं तथा भगवान् सदाशिव के ध्यान में सदैव मग्न बने रहते हैं। ऐसे लोग आवागमन से छूट जाते हैं तथा सांसारिक बन्धनों को निःसार समझकर, उनसे वैराग्य ले लेते हैं।

हे बन्धु ! मध्यम पुरुष वे हैं, जो कभी हाथी पर चढ़ते हैं और कभी मस्तक पर बोझ लादकर भ्रमण करते हैं। वे कभी धनवान् हो जाते हैं, कभी निर्धन, परन्तु इस श्रेणी के लोग भी अपने धर्म का त्याग नहीं करते। वे संसार में लिप्त रहते हुए भी, उससे मुक्ति पाने का उपाय ढूंढने में संलग्न रहते हैं।

हे बन्धु ! अधम लोग वे हैं जो अन्य जीवों पर दया न करके, दूसरों का अहित करने तथा पाप कर्म करने में दिन-रात लगे रहते हैं। वे दूसरों को प्रसन्न देखकर स्वयं ईर्ष्या से जला करते हैं तथा दूसरों की बुराई करना ही उन्हें संतोष देने वाला होता है। ऐसे लोग धर्म-कर्म से विमुख रहते हैं तथा कभी भी आनन्द प्राप्त नहीं कर पाते। तब यदि कहीं कोई शुभ-कर्म बन जाता है तो सत्संग द्वारा श्रेष्ठ पद को प्राप्त करते हैं।

हे बन्धु ! विश्वामित्र, रावण तथा कुम्भकर्ण आदि के वृत्तान्त से यह बात भली प्रकार जानी जाती है कि श्रेष्ठ संगति तथा बुरी संगति का प्रभाव कैसा फलदायक होता है। अस्तु, तुम अपने मन को अधर्म से हटा कर, शिवजी के चरणों में लगाओ और भगवान् शिवनाथ जी के दर्शन के हेतु, काशीपुरी को प्रस्थान करो।" शिव-भक्त के मुख से इस उपदेश को सुनकर जब कृपण के हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ तो वह उससे विदा होकर, अपने घर को लौट आया और अपनी स्त्री को

इस प्रकार कहने लगा—"हे प्रिये ! वे स्त्रियाँ परम धन्य हैं, जिन्होंने शिवजी की पूजा का व्रत लिया है। जो सदैव अपने धर्म पर स्थित रहती हैं।" अपने पति के मुख से यह वचन सुनकर स्त्री ने जब यह पूछा कि आपने ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि कहाँ से प्राप्त की है तो उस कृपण ने शिव-भक्त के मिलने का सब वृत्तान्त कह सुनाया। तदुपरान्त दोनों पति-पत्नी अपनी सन्तान सहित भगवान् विश्वनाथ का दर्शन करने के हेतु काशी जी गये। वहाँ उन्होंने सुगन्धित पुष्प एवं अखण्डित विल्वपत्रों द्वारा भगवान् विश्वेवरनाथ का पूजन किया तथा शिवजी के नाम पर बहुत-सा दान भी दिया। इस प्रकार अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शिव-पूजन करने के पश्चात् वे अपने घर को लौट आये।"

ॐ ॐ ॐ

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे पुत्र ! विश्वेश्वरनाथ जी एवं काशी जी से बढ़कर अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। काशी में मुक्ति दासी के समान रहकर, शिव भक्तों की सेवा किया करती है। उस काशी के पाँच कोस के विस्तार में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मरने से मुक्ति प्राप्त न हो। शिवजी काशी को एक पल के लिए भी नहीं त्यागते। वह करोड़ों ब्रह्म हत्या एवं सहस्त्रों पापों को नष्ट करने वाली है। विष्णु जी भी वहाँ अपनी मृत्यु चाहते हैं।

हे नारद ! मेरी भौंहों के बीच में भगवान् सदाशिव ने कृपा करके अवतार लिया था और कैलाश में जाकर रहने लगे थे। फिर उन्होंने दक्ष प्रजापति की पुत्री के साथ अपना विवाह किया। वे ही सती दूसरे जन्म में हिमाचल की पुत्री के रूप में प्रकट हुईं और शिवजी के साथ विवाही गयीं। शिव-गिरिजा ने अनेक प्रकार की लीलाएँ कीं। फिर शिवजी अपने गणों सहित काशी जी पधारे। उस समय विष्णु आदि सब देवता भी उनके साथ काशी जी पहुँचे। कैलाशपति शिवजी ने काशीपति विश्वनाथ की पूजा की। इसी प्रकार विष्णु आदि सब

देवताओं ने भी उनका पूजन किया। तदुपरान्त विश्वनाथ जी ने साक्षात् प्रकट होकर कैलाशपति शिवजी से भेंट करने के उपरान्त यह कहा—"हे कैलाशेश्वर ! आप में और मुझ में कोई भेद नहीं है।" यह सुनकर कैलाशपति शिवजी बोले—"हे विश्वेश्वर ! आप यहीं काशी में रहकर अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान किया करें, यही मेरी कामना है।" तब विश्वनाथ जी ने यह कहा—"आप भी गिरिजा एवं गणों सहित कृपा करके यहीं स्थित रहें। जिस प्रकार काशी आपको अत्यन्त प्रिय है, उसी प्रकार मैं भी इसे बहुत स्नेह करता हूँ।"

हे नारद ! इतना कहकर विश्वनाथ जी अन्तर्धान हो गये तथा पूर्णांश से वहीं स्थित हुए। मैं, विष्णु जी तथा अन्य सब देवता, ऋषि-मुनि आदि भी वहाँ रहकर दोनों मूर्त्तियों का पूजन एवं ध्यान किया करते हैं। विश्वनाथ जी के समान दूसरा लिंग पृथ्वी पर अन्य कोई नहीं है। जो अन्य लिंग हैं, उन्हें विश्वनाथ जी लिंग की सन्तान एवं परिवार के समान समझना चाहिए। विश्वनाथ जी सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं। हरेश्वर उनके मन्त्री हैं, ब्रह्मेश्वर वेद पाठ करने वाले हैं, वीरेश्वर भण्डारी हैं, भैरव कोतवाल हैं, तारकेश्वर धनाध्यक्ष हैं, दण्डपाणि चोबदार हैं तथा ढुण्ढिराज अधिकारी हैं। उसी काशी में भगवती अन्नपूर्णा देवी भी विराजमान् हैं, जो काशी-निवासियों का भरण-पोषण करती हैं।

हे नारद ! अब तुम काशी के प्रसिद्ध लिंगों का वर्णन सुनो—

१. विष्णु, २. केशवमुख, ३. लोलार्क, ४. मिहिर, ५. कृत्तवासुकेश्वर, ६. वृद्धकालकेश्वर, ७. कालेश्वर, ८. कलशेश्वर, ९. प्रवृत्तेश्वर, १०. केदारेश्वर, ११. पशुपति, १२. कामेश्वर, १३. शम्भुत्रिलोचन, १४. चण्डेश्वर, १५. गरुड़ेश्वर, १६. गोकर्णेश्वर, १७. नन्दिकेश्वर, १८. प्रतीकेश्वर, १९. भारभूतपति, २०. मणिकर्णेश्वर, २१. रत्नेश्वर, २२. नर्मदेश्वर, २३. लांगलेश्वर, २४. वरुणेश्वर, २५. शनीश्वर, २६. सोमेश्वर, २७. जीवेश्वर, २८. रवीश्वर, २९. संगमेश्वर, ३०. हरीश्वर, ३१. हरिकेश्वर, ३२. शैलपर्वतेश्वर, ३३. कुण्डकेश्वर, ३४. यज्ञेश्वर, ३५. सुरेश्वर,

३६. शक्रेश्वर, ३७. ओक्षेश्वर, ३८. रमेश्वर, ३९. तिलभाण्डेश्वर, ४०. गुप्तेश्वर, ४१. मध्यमेश्वर, ४२. भूमीश्वर, ४३. बुद्धेश्वर, ४४. शुक्रेश्वर, ४५. वटकेश्वर, ४६. धन्वेश्वर, ४७. ऋषीश्वर, ४८. ध्रुवेश्वर, ४९. हादेवेश्वर, ५०. त्रिसन्ध्येश्वर, ५१. कपर्देश्वर, ५२. नीलेश्वर, ५३. सरेश्वर, ५४. ललितेश्वर, ५५. त्रिपुरेश्वर, ५६. हरेश्वर, ५७. वाणेश्वर, ५८. श्रीश्वर तथा ५९. रामेश्वर—ये उनसठ लिंग अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

हे नारद ! जो मनुष्य भगवान् विश्वनाथ का नाम लेकर विदेश-यात्रा करता है, उसे अत्यन्त आनन्द मिलता है। भगवान् विश्वनाथ की सेवा द्वारा ही हरिकेश दंडपणि के नाम से प्रसिद्ध होकर समस्त शिवगणों के अधिपति हुए। ब्रह्मदत्त का पुत्र गुणनिधि भी भगवान् विश्वनाथ की सेवा द्वारा कुबेर पद को प्राप्त हुआ। जो मनुष्य काशी-वास त्याग दे, उसकी गणना पशुओं में करनी उचित है। काशी का चाण्डाल भी अन्य राजाओं से श्रेष्ठ है। जिस गति को ऋषि-मुनि आदि बड़ी तपस्या द्वारा प्राप्त करते हैं, वही गति काशी में निवास करने पर भगवान् सदाशिव की कृपा से अनायास ही प्राप्त हो जाती है। अगस्त्य मुनि उन विश्वनाथ जी के पूर्ण उपासक हैं तथा विश्वामित्र ने भी उनकी सेवा द्वारा ब्रह्मर्षिपद को प्राप्त किया है। उन्हीं की पूजा करके वशिष्ठ मुनि तीनों लोकों में पूजित हुएं। हे पुत्र ! भगवान् विश्वनाथ का यह आख्यान भी अत्यन्त पवित्र है। जो व्यक्ति इसे पढ़ता अथवा सुनता है, उसे दोनों लोकों में आनन्द की प्राप्ति होती है।''

ॐ ॐ ॐ

उन्तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! अब मैं त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन करता हूँ। जिस प्रकार मैंने विष्णु जी से उसका वृत्तान्त सुना है, उसी प्रकार तुम्हें भी सुनाता हूँ; मन लगाकर सुनो। गौतम ऋषि शिवजी के परम भक्त थे। वे अपने मस्तक पर भस्म लगाते, सब अंगों में

रुद्राक्ष धारण करते तथा हर समय शिवजी के नाम का जाप किया करते थे। वे राजा जनक के पुरोहित थे। उनकी अहल्या नामक पत्नी परम पतिव्रता थी। जब उनके पुत्र उत्पन्न हुए, तब वे अपने शिष्यों तथा परिवार सहित ब्रह्मशैल की दक्षिण दिशा की ओर जाकर, एक स्थान पर तपस्या करने में संलग्न हुए। दैव के प्रकोप से एक सौ वर्ष तक पानी की एक बूँद भी नहीं बरसी। इससे संसार के सभी प्राणी व्याकुल हो गये। कोई भी वृक्ष हरा न रहा। गर्मी बढ़ जाने के कारण अधिकांश जीव जलकर भस्म हो गये। ऋषि-मुनि भी योग धारण करके, अपनी स्त्रियों सहित किसी प्रकार समय व्यतीत करने लगे।

हे नारद ! उस समय संसार को व्याकुल देखकर, गौतम ऋषि ने वर्षा होने के हेतु वरुण देवता का तप करना आरम्भ किया। हे पुत्र ! परोपकार से बढ़कर संसार में अन्य कोई धर्म नहीं है। सज्जन पुरुषों का यह स्वभाव होता है कि वे दूसरों की भलाई के लिए अनेक प्रयत्न करते हैं तथा दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए स्वयं कष्ट सहते हैं। अस्तु जब गौतम ऋषि ने अहल्या सहित अत्यन्त उग्र तप किया, तब वरुण ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और वरदान माँगने के लिए कहा। उस समय गौतम ने उनसे यह प्रार्थना की कि आप मेरे मनोरथ को पूर्ण करने के हेतु, संसार में वर्षा कीजिये। यह सुनकर वरुण ने उत्तर दिया—"हे मुनि ! इसे तो केवल परमेश्वर ही पूरा कर सकते हैं। हानि-लाभ, जीवन-मरण, वर्षा-अकाल, यश-निन्दा, पाप-पुण्य, जय-पराजय, उत्पत्ति-प्रलय तथा नरक-स्वर्ग आदि बातें भगवान् सदाशिव के आधीन हैं। वे परब्रह्म तथा सबके स्वामी हैं। वर्षा होने या न होना उन्हीं की इच्छा पर निर्भर करता है। इसलिए हम तुम्हें ऐसा वरदान नहीं दे सकते, परन्तु हे गौतम ! एक बात यह भी आ पड़ी है कि यदि हम तुम्हें वर नहीं देते तो यह कार्य धर्म के विरुद्ध होता है। अतः अब तुम कृपा करके कोई ऐसा वर माँगो, जिसे हम प्रसन्नतापूर्वक दे सकें।"

हे नारद ! वरुण देवता की बात सुनकर गौतम ऋषि ने कहा—

"अच्छा, आप मुझे एक अक्षय-जल का कुण्ड दे दीजिये। इससे मेरी बात भी रह जायेगी और आपका आगमन भी सार्थक रहेगा।" यह सुनकर वरुण देवता ने अत्यन्त प्रसन्न होकर गौतम की प्रशंसा की और एक अक्षय-कमल देते हुए कहा—"हे ऋषि ! तुम पृथ्वी में एक गड्ढा बनाओ और उस गड्ढे में इस अक्षय-कमल को डाल दो। हमारी कृपा से वह गड्ढा जल से सदैव भरा रहेगा।" तब वरुण की आज्ञानुसार गौतम ने पृथ्वी में एक गड्ढा खोदा, उसे जल से परिपूर्ण कर देने के उपरान्त वरुण ने यह कहा—"हे ऋषि ! यह गड्ढा, जिसका विस्तार एक हाथ है, परम पवित्र तीर्थ होकर तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा और सदैव जल से परिपूर्ण बना रहेगा। जो लोग इस तीर्थ की सेवा करेंगे, उन्हें सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति होगी।" इतना कहकर वरुण देवता अन्तर्धान हो गये। उस समय गौतम ऋषि भी उस कुण्ड का जल पीकर, अपनी पत्नी सहित अत्यन्त आनन्दित हुए।"

चालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! गौतम ऋषि ने उस कुण्ड के समीप अपने शिष्यों द्वारा खेती करायी। यह समाचार सम्पूर्ण संसार में फैल गया। तब सभी ऋषि-मुनि अपनी-अपनी पत्नियों एवं शिष्यों सहित चारों ओर से आ-आकर, उसी स्थान के समीप कुटी बना, रहने लगे। इस प्रकार उस कुण्ड के आसपास एक बहुत बड़ा तथा श्रेष्ठ नगर बस गया। भूख-प्यास से व्याकुल मनुष्यों ने वहाँ आकर प्रसन्नता प्राप्त की। वरुण देवता के वरदान के कारण उस गौतम कुण्ड का यह प्रभाव था कि उसमें से चाहे जितना जल भरा जाए, परन्तु वह कभी भी कम नहीं होता था।

हे नारद ! एक दिन शिवजी की माया के वशीभूत होकर गौतम ऋषि ने अत्यन्त अहंकार में भरकर, अपने शिष्यों को उस कुण्ड से शीघ्रतापूर्वक जल लाने के लिए भेजा। जिस समय गौतम के शिष्य

उस कुण्ड के तट पर पहुँचे, उसी समय मुनियों की अन्य स्त्रियाँ भी अपने मस्तक पर घड़े रखे हुए, वहाँ पर आ पहुँची। उन्होंने गौतम के शिष्यों से यह कहा कि पहले हम पानी भर लें, तब तुम बाद में भर लेना। यह सुनकर गौतम के शिष्य बिना पानी भरे ही अहल्या के पास लौट आये और उनसे यह कहने लगे कि मुनियों की स्त्रियों ने हमें पानी नहीं भरने दिया है। तब अहल्या उन शिष्यों को साथ लिये कुण्ड पर जा पहुँची और खड़े होकर अपने सामने शिष्यों से जल भरवाकर, घर को लौट आयी। यह दशा देखकर मुनियों की पत्नियाँ अत्यन्त क्रुद्ध हो, बिना पानी लिये ही अपने घर लौट गयीं और अपने पतियों को रो-रोकर झूठी-सच्ची बातें मिलाकर, सब हाल सुनाने लगीं।"

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! स्त्रियों का तो स्वभाव ही झूठ बोलने का होता है। स्त्री को विष से भी अधिक भयानक समझना चाहिए। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि शिवजी हलाहल विष पीकर भी सदैव जागते रहते हैं, परन्तु विष्णु स्त्री के मोह में पड़कर सो जाया करते हैं। राजा दशरथ को ही देखो, उन्होंने स्त्री के अधीन होकर रामचन्द्र जैसे अपने पुत्र को घर से निकाल दिया। कहावत है कि ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो समुद्र में नहीं समा सकती ; ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे अग्नि नहीं जला सकती ; ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जिसे मृत्यु नहीं मार सकती और ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसे स्त्री नहीं कर सकती?

हे नारद ! तब उन स्त्रियों की बात सुनकर ऋषि-मुनियों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर गौतम को कष्ट पहुँचाने का निश्चय किया। फिर वे इसी उद्देश्य से गणपति का पूजन करने लगे। कुछ समय बाद उनकी सेवा से सन्तुष्ट होकर गणपति ने दर्शन दिया तथा यह कहा—"हे मुनियो ! तुम्हारी अभिलाषा शुभ नहीं है। तुम्हें अपने हाथों अपना ही विनाश करना उचित नहीं।" यह सुनकर उन मुनियों ने एकमत होकर कहा—"हे गणेश जी ! हम सबने गौतम को दुःख पहुँचाने का निश्चय कर लिया है। हमारी यही प्रार्थना है कि आप गौतम को कष्ट अवश्य

पहुँचावें।" तब गणेश जी उन्हें समझाते हुए बोले—"हे मुनियो! जिसने गौतम ऋषि पर ऐसी कृपा की है, वही उनकी रक्षा भी करेगा। शिवजी की प्रसन्नता के कारण गौतम को कोई अनिष्ट न होगा, परन्तु शिवजी की इच्छा के विरुद्ध होने के कारण तुम सब लोग अत्यन्त दुःख उठाओगे।"

हे नारद! इतना कहकर गणेश जी अन्तर्धान हो गये। फिर वे एक अत्यन्त दुर्बल गौ का स्वरूप धारणकर, गौतम के खेत को चरने लगे। संयोगवश उसी समय गौतम भी अपने खेत के समीप जा पहुँचे। जब उन्होंने गौ को खेत चरते हुए देखा, तो उसे एक तिनके द्वारा बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु उस तिनके का स्पर्श पाते ही, वह गौ इस प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ी, जैसे किसी ने उसके ऊपर वज्र का प्रहार कर दिया हो। गौतम ने यह समाचार अपने शिष्यों को सुनाया उस समय सब ऋषि-मुनि गौतम जी के पास आ पहुँचे और उन्हें धिक्कार देते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे गौतम! तुम्हें, तुम्हारी स्त्री को तथा तुम्हारे तीन प्रकार के तप, हवन, धर्म, विद्या, चातुर्य्य, जागरण,कला आदि को सबको धिक्कार है। तुमने गौ की हत्या की है। यदि तुम यहाँ रहोगे तो कोई देवता और पितर अपना भाग लेने नहीं आएँगे।" इसी प्रकार उन मुनियों की पत्नियों ने भी अहल्या से बहुत दुर्वचन कहे। तदुपरान्त उन सबों ने मिलकर यह निश्चय किया कि आज से कोई भी गौतम का मुख न देखे। फिर उन्होंने गौतम, अहल्या तथा गौतम के शिष्यों को कंकड़-पत्थर मारना आरम्भ कर दिया और उन्हें अपने स्थान से निकाल दिया।

हे नारद! उस समय गौतम ने बहुत प्रकार से विनती करते हुए उन ऋषि-मुनियों से कहा—"हे महानुभावो! हम यहाँ से चले जाते हैं।" फिर गौतम और अहल्या अपने शिष्यों सहित वहाँ से हटकर, एक कोस की दूरी पर जाकर रहने लगे। उस समय गौतम ने यह विचार किया कि जब तक गौ-हत्या का पाप नहीं छूट जायेगा, तब तक न तो किसी को हम छूएँगे और न देवता-पितर आदि का ही कुछ कर्म

करेंगे। यदि कोई मनुष्य धोखे से इधर आ निकलता तो वह अपने मुख को कपड़े से ढाँक कर उन्हें कंकड़-पत्थर मारता था। उस समय वे अत्यन्त व्याकुल होकर रुदन करने लगते थे। इस प्रकार जब पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये तब गौतम उन्हीं ऋषि-मुनियों की शरण में गये और दूर खड़े होकर, प्रणाम-स्तुति करने के उपरान्त, हाथ-जोड़ इस प्रकार कहने लगे—"हे ऋषि-मुनियो ! अब आप मुझ पर दया करके वह उपाय बताइये, जिससे मेरा यह पाप नष्ट हो जाये।"

हे नारद ! गौतम के इन करुण-वचनों को सुनकर उन ऋषियों के हृदय में दया का संचार हुआ। तब वे इस प्रकार कहने लगे—"हे गौतम ! तुम्हारे शिष्यों ने हमारी स्त्रियों का अत्यन्त अनादर किया था, फिर तुम्हारी पत्नी अहल्या ने भी बहुत उपद्रव मचाया था ; उसी कर्म का फल तुम्हें इस प्रकार भोगना पड़ा है। हम तुम्हें यह बताते हैं कि शिवजी सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले हैं। तुम सर्वप्रथम तीन दिन तक पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए, अपने पाप को उच्च स्वर से कहते फिरो। तदुपरान्त एक मास तक व्रत करके सौ बार ब्राह्मणों की परिक्रमा करो, तब इस पाप से मुक्त हो सकोगे। दूसरा उपाय यह है कि तुम इसी स्थान पर गंगा जी को प्रकट करके, उसमें स्नान करो तथा एक करोड़ पार्थिव-पूजन करो तो तुम्हारी शुद्धि हो जायेगी।"

हे नारद ! यह सुनकर गौतम ने उन मुनियों की एक सौ बार परिक्रमा की। तदुपरान्त वे एक करोड़ पार्थिव पूजन करके, शिवजी के ध्यान में संलग्न हो गये। अस्तु, गौतम के उस तप को देखकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और गिरिजा, अपने पुत्र तथा गणों सहित प्रकट होकर उनसे इस प्रकार कहने लगे—"हे गौतम ! तुम हमें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। अब तुम्हारी जो भी इच्छा हो, वह वर माँग लो।" यह सुनकर गौतम ने प्रणाम-स्तुति करने के उपरान्त यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरे पाप को दूर कर दीजिये।"

ॐ ॐ ॐ

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! शिवजी एवमस्तु कहते हुए इस प्रकार बोले—"हे गौतम ! तुम्हारे साथ मुनियों ने बड़ा छल किया है तथा निरपराध होते हुए भी तुम्हें इस प्रकार दुःख पहुँचाया है। अब उन्हें ऐसी हत्या लगेगी कि फिर वे कभी आनन्द प्राप्त न कर सकेंगे। यह सब ब्राह्मण मिथ्याशास्त्र को धारण करने वाले होंगे, क्योंकि जो प्राणी हमारे भक्तों को दुःख पहुँचाता अथवा निन्दा करता है, उसे कभी भी आनन्द प्राप्त नहीं होता।" यह सुनकर गौतम ऋषि ने हाथ जोड़कर कहा—"हे प्रभो ! इन मुनियों ने मेरे साथ कोई बुराई नहीं की। सच पूछा जाये तो इन्हीं की युक्ति पर चलने से मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं।"

हे नारद ! गौतम के इन विनम्र वचनों को सुनकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"अब तुम्हें जिस वर की इच्छा हो, वह और माँग लो।" यह सुनकर गौतम ने कहा—"हे प्रभो ! आप मुझे गंगा जी प्रदान करने की कृपा करें।" यह सुनकर शिवजी ने अपने मस्तक से गंगा जी को उतारकर, गौतम ऋषि को दे दिया। गंगा जी को देखकर गौतम ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने स्त्री स्वरूपा गंगा जी को प्रणाम करते हुए यह कहा—"हे मातेश्वरी ! आप मेरे ऊपर कृपा करके, मुझे शुद्धता प्रदान करें।" तभी शिवजी ने भी गंगा जी से इस प्रकार कहा—"हे गंगे ! तुम गौतम को अपना सेवक समझ कर, इसके पापों को दूर कर दो।"

हे नारद ! शिवजी की आज्ञा सुनकर गंगा जी ने उत्तर दिया—"हे प्रभो ! आप मुझे जो आज्ञा दे रहे हैं, उसका तो मैं पालन करूँगी, परन्तु मैं गौतम को कुल सहित पवित्र करने के उपरान्त फिर अपने स्थान को लौट जाऊँगी।" शिवजी बोले—"हे गंगे ! हमारी यह अभिलाषा है कि जब तक वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारम्भ न हो उस समय तक तुम यहीं स्थित रहो। इस प्रकार शिवजी ने जब गंगा जी से बहुत कुछ कहा तथा

गौतम ने भी उनकी बहुत स्तुति की, उस समय गंगा जी ने यह उत्तर दिया—"हे कैलाशपति ! यदि मेरी महिमा यहाँ बहुत हो और आप गिरिजा तथा अपने गणों सहित मेरे तट पर निवास करना स्वीकार करें, तो मैं वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ तक यहीं बनी रहूँगी ; परन्तु जिन ब्राह्मणों ने गौतम को दुःख पहुँचाया है, उन्हें मैं पवित्र नहीं करूँगी।" गंगा जी की इस बात को शिवजी ने मान लिया। उसी समय मैं, विष्णु जी तथा अन्य सब देवता शिवजी को वहां विराजमान् जानकर, उस स्थान पर जा पहुँचे। सम्पूर्ण तीर्थ तथा क्षेत्र भी अपने-अपने स्वरूप धारणकर, वहाँ आ गये। तब हम सबने शिवजी एवं गंगा जी की बहुत प्रकार से सेवा तथा प्रशंसा की।

हे नारद ! उस समय हम सबकी स्तुति सुनकर, शिवजी ने प्रसन्न होकर वरदान माँगने के लिए कहा। तब हमने उनसे यह प्रार्थना की कि आप अर्द्धाङ्गी रूप से गंगा जी सहित यहीं विराजमान रहें।" उस समय गंगा जी ने हम सब को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे देवताओ ! यदि तुम हमें सर्वोपरि समझो तो हम शिवजी सहित यहीं निवास करेंगी।" इस बात को सभी लोगों ने स्वीकार किया और बोले—"हे गङ्गे ! जिस समय सिंह राशि के बृहस्पति होंगे, वह समय आपकी महिमा के लिये तीनों में प्रसिद्ध होगा। बारह वर्षों के बाद वह समय आने पर, हम सब लोग यहाँ आकर स्नान करेंगे तथा शिवजी के दर्शन करके, अपने पापों को नष्ट करेंगे।" उस दिन से जब सिंह राशि पर बृहस्पति आते हैं, तब सब देवता और ऋषि-मुनियों सहित मैं तथा विष्णु जी वहां जाकर गंगा में स्नान कर शिवजी का पूजन करते हैं।"

❀❀❀

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! सभी क्षेत्रों में गौतमी गंगा अत्यन्त पवित्र हैं। इसी प्रकार त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्ग भी सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करने वाला है।" यह सुनकर नारद जी बोले—"हे पिता ! गंगा

जी जल रूप होकर कहाँ से प्रकट हुईं तथा शिवजी का लिङ्ग किस प्रकार प्रकट हुआ, उनकी कैसी महिमा हुई तथा ब्राह्मणों का अहंकार किस प्रकार दूर हुआ, यह सब वृत्तान्त आप मुझे सुनाने की और कृपा करें।''

ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! हम सबकी प्रार्थना सुनकर गंगा जल रूप हो ब्रह्मशैल के भीतर उदुम्बर शाखा से निकलती हुई, नदी रूप में बड़े वेग से बहने लगीं तथा गौतमी के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुईं। जहाँ से गंगा निकलीं, उस स्थान का नाम गंगा द्वार हुआ। वहीं शिवजी भी लिङ्ग स्वरूप हो, त्र्यम्बक के नाम से स्थित हुए। तदुपरान्त गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या तथा शिष्यों सहित गौतमी नदी में स्नान करके, त्र्यम्बक शिवलिङ्ग का पूजन किया और शिव-गंगा की बहुत स्तुति की, परन्तु जिस समय गौतम के शत्रु ऋषि-मुनि उस स्थान पर आये तो गंगा तथा शिव दोनों ही अन्तर्धान हो गये। उस समय गौतम जी ने अत्यन्त विनय करते हुए गंगा जी से यह प्रार्थना की कि आप इन लोगों के पापों को क्षमा कर दें, परन्तु तभी यह आकाशवाणी हुई—''हे गौतम ! मूर्ख, कामी, छली, धूर्त्त, अशुद्ध तथा नास्तिक व्यक्ति भले ही पवित्र हो जाएँ, परन्तु जो व्यक्ति शिव-भक्तों का शत्रु होता है, उसके पाप कभी भी दूर नहीं होते।'' यह सुनकर गौतम ने फिर बारम्बार स्तुति की और कहा—''हे माता-पिता ! आप इन लोगों के पाप को भी अवश्य दूर कर दीजिये।''

हे नारद ! जब गौतम ने इस प्रकार पुनः प्रार्थना की उस समय यह आकाशवाणी हुई—''हे गौतम ! तुम हमारे परम भक्त हो। अस्तु हम तुम्हारे अधीन हैं। तुम जो कह रहे हो, उसे भी हम स्वीकार करेंगे। अब इन ब्राह्मणों को अपने पापों की शान्ति का उपाय करना चाहिए। जब ये एक सौ ब्रह्मगिरि की परिक्रमा करेंगे, तभी अपने पाप से मुक्ति पा सकेंगे।'' इस आकाशवाणी को सुनकर सभी ऋषि-मुनि तथा गौतम प्रसन्न हुए। तब उन मुनियों ने अहंकार एवं दोषों से रहित होकर गौतम की बड़ी स्तुति की और ब्रह्मगिरि की परिक्रमा करके अपने पाप का

प्रायश्चित्त किया। उस समय शिवजी तथा गंगा भी अपने स्थान पर पुनः प्रकट हो गयीं। तदुपरान्त सब ऋषि-मुनियों ने गंगा जी में स्नान करके, शिवजी का पूजन किया तथा गौतम के चरणों पर गिरकर क्षमा-याचना की। उस समय गौतम ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सबको अपने हृदय में लगा लिया तथा बहुत प्रकार से समझाते हुए, उनकी लज्जा दूर की। उस समय विष्णु जी, मैंने तथा अन्य देवताओं ने भी उस स्थान पर पहुँचकर, गंगा में स्नान किया और शिवजी का पूजन किया।

हे नारद ! उस स्थान पर कुशावर्त्त, गंगाद्वार तथा कोट तीर्थ नामक तीर्थ अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले हैं। रामचन्द्र भी जब पंचवटी में पहुँचे थे, तो वहाँ गंगा जी को देखकर उसी स्थान पर कुछ दिनों तक रहे थे। उन्हें देखने तथा स्मरण करने मात्र से ही प्रत्येक प्राणी पवित्र हो जाता है। जो व्यक्ति गंगा में स्नान करता है, वह मानो सब धर्मों को कर चुकाता है तथा जो त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्ग का पूजन करता है, उसे दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। शिवजी का त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्ग सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाला है। जो मनुष्य इस कथा को पढ़ता, सुनता तथा दूसरों को सुनाता है, उसे भी सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं।

तैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अब मैं वैद्यनाथ नामक नौवें ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन करता हूँ। उनका दर्शन, स्पर्श एवं पूजन करने से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। वे संसार में धन, स्त्री, पुत्र आदि की प्रसन्नता एवं परलोक में मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। मेरे पुत्र पुलस्त्य द्वारा विश्रवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके तीन विवाह हुए। विश्रवा की पहली पत्नी के गर्भ से शिवजी के मित्र धनपति कुबेर का जन्म हुआ, दूसरी पत्नी द्वारा रावण तथा कुम्भकर्ण नामक दो लड़कों का जन्म

हुआ तथा तीसरी पत्नी द्वारा विभीषण नामक हरिभक्त का जन्म हुआ। इन चारों बालकों में रावण अत्यन्त बलवान् तथा स्वतंत्र था। उसका बल तथा यश तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। एक बार रावण ने कैलाश पर्वत पर पहुँचकर, शिवजी की तपस्या की, परन्तु तप करते हुए बहुत समय व्यतीत हो जाने पर शिवजी उस पर प्रसन्न न हुए।

हे नारद ! तब रावण उस स्थान से हटकर, तपस्या करने के हेतु हिमालय पर्वत पर गया। वहाँ वह पर्वत की दाहिनी ओर एक स्थान पर बैठकर, पुनः उग्र तप करने में प्रवृत्त हुआ, परन्तु तब भी शिवजी ने उसे दर्शन देने की कृपा नहीं की।

हे नारद ! यह देखकर रावण अत्यन्त चिन्तित हो, मन ही मन अपने को धिक्कारता हुआ इस प्रकार कहने लगा—"मेरे इस अपार बल तथा शरीर को धिक्कार है, यों बहुत देर तक अपने को धिक्कारने के उपरान्त उसने हवन करना आरम्भ किया। जब उससे भी शिवजी प्रसन्न न हुए, तब रावण ने यह निश्चय किया कि अब मुझे अपना शरीर अग्नि की भेंट कर देना चाहिए। वह अपने दस मस्तकों में से एक-एक मस्तक को काटकर, अग्नि में हवन करने लगा। जब वह नौ मस्तक काट चुका और दसवाँ मस्तक काटने के लिए उद्यत हुआ, उस समय शिवजी प्रसन्न होकर, उसके सम्मुख प्रकट हो गये और हाथ पकड़कर, वर माँगने के लिए कहने लगे।

हे नारद ! शिवजी ने रावण के सभी मस्तकों को पुनः कटे हुए स्थान पर स्थित कर दिया तथा प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। उस समय रावण ने अत्यन्त आनन्द मग्न हो, हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! मैं अत्यन्त पराक्रमी होना चाहता हूँ तथा यह चाहता हूँ कि आप मेरे नगर में चलकर निवास करें।" यह सुनकर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे रावण ! तुम हमारे लिंग को उठाकर ले जाओ तथा इसका सदैव पूजन किया करो। परन्तु यदि तुमने इस लिंग को मार्ग में कहीं रख दिया, तो वह वहीं पर स्थित हो जायेगा और तुम्हारे साथ नहीं जायेगा।" रावण इस बात को स्वीकार

करते हुए बोला—"हे प्रभो ! आप दो रूपों में विभाजित हो जाइये, तब मैं आपको काँवर में उठाकर, अपने नगर में ले जाऊँगा।" यह सुनकर शिवजी ने अपने दो लिंग स्वरूप धारण किये। रावण उन दोनों शिवलिंगों को काँवर में दोनों ओर रखकर ले चला। जब वह कुछ दूर आगे निकल आया, तब शिवजी ने यह चरित्र किया कि रावण को लघुशंका करने की इच्छा हुई। उस समय रावण अत्यन्त व्याकुल हुआ और यह सोचने लगा कि यदि कोई व्यक्ति यहाँ मिल जाए और कुछ देर के लिए इस काँवर को उठाये रहे तो मैं लघुशंका निवारण कर लूँ। उसी समय वहाँ उसे एक गौ चराने वाला दिखाई दिया। रावण ने उससे यह प्रार्थना की कि तुम कुछ देर के लिए इस काँवर को अपने कन्धे पर उठाये रहो, जिससे मैं लघुशंका कर लूँ। यह सुनकर चरवाहे ने उत्तर दिया—"हे रावण ! मैं दो घड़ी तक इस काँवर को लिये रहूँगा, परन्तु इस समय के भीतर ही यदि तुमने कांवर को न ले लिया तो मैं इसे पृथ्वी पर रख दूँगा।" रावण ने अहीर की यह बात स्वीकार कर ली। तदुपरान्त वह उसे काँवर देकर स्वयं लघुशंका करने बैठ गया।"

ॐ ॐ ॐ

चौवालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! उस समय शिवजी ने अहंकार को नष्ट करने वाली अपनी माया को प्रकट करके, रावण का मूत्र इतना अधिक बढ़ाया कि उससे एक तालाब भर गया। उधर वह काँवर भी इतनी अधिक भारी हुई कि चरवाहा उसे अधिक देर तक उठाये न रह सका तथा उसे पृथ्वी पर रखकर चला गया। पृथ्वी पर रखे जाते ही वे दोनों लिंग अपने-अपने स्थान पर दृढ़तापूर्वक जम गये। तदुपरान्त जब रावण लघुशंका करके उठा और उनके समीप आकर काँवर को उठाने का प्रयत्न करने लगा, तो वे बल लगाने पर भी अपने स्थान से नहीं हटे। यह देखकर रावण निराश हो, अपने अँगूठे से उन दोनों लिंगों को पृथ्वी में दबाकर घर को लौट गया। उसी समय से वे दोनों

लिंग अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं। जो लिंग काँवर के अगले भाग में था, वह गोकर्ण क्षेत्र में स्थित होकर चन्द्रभाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी महिमा का वर्णन पहले किया जा चुका है। जो लिंग काँवर के पिछले भाग में था, वह वैद्यनाथ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ, जो चिताभूमि में स्थित है। वह वैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला है।

हे नारद ! जब रावण उन लिंगों को छोड़कर चला गया, तब विष्णु जी, मैं तथा अन्य सब देवताओं ने उन स्थानों पर पहुँचकर, शिवलिंगों की पूजा की। तदुपरान्त हमने वैद्यनाथ जी की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! आप हम सब के ऊपर प्रसन्न हों तथा हमें अपना दर्शन देकर कृतार्थ करने की कृपा करें।" हमारी उस प्रार्थना को स्वीकार कर, शिवजी उस लिंग द्वारा उसी समय प्रकट हुए तथा वर माँगने के लिए कहने लगे। उस समय हमने उनकी अत्यन्त प्रार्थना करते हुए कहा—"हे स्वामी ! आप हम लोगों को अपनी भक्ति प्रदान करें तथा कृपापूर्वक सदैव यहीं स्थित रहें। आप मनुष्यों को वैद्य के समान आनन्द प्रदान करने वाले हैं, अस्तु आपका नाम वैद्यनाथ है।

हे नारद ! अब तुम उस चरवाहे का वृत्तान्त सुनो ; जिसने रावण के कहने पर काँवर उठा रखी थी। जब उसने इस अद्भुत चरित्र को देखा तो वह आश्चर्य में भर गया। उस चरवाहे का नाम बैजू था। अस्तु, हम सब लोगों को शिवलिंग का पूजन करते हुए देखकर, उसने भी उस लिङ्ग की पूजा की तथा अपने कपोलों से गलगल शब्द का उच्चारण किया। उसने प्रतिदिन का यह नियम बना लिया था कि जब तक वह उस लिंङ्ग की पूजा नहीं कर लेता, तब तक भोजन नहीं किया करता था।

हे नारद ! एक दिन बैजू के घर कोई बड़ा उत्सव था। उसमें उसके सभी भाई-बन्धु उपस्थित थे। उस दिन उन लोगों की सेवा में लगे रहने के कारण बैजू को वैद्यनाथ लिङ्ग का पूजन करने का अवकाश नहीं मिला। अस्तु, जिस समय घर आये हुए लोग भोजन करने के लिए

बैठे, तब उन्होंने बैजू को भी अपने साथ बैठा लिया। ज्योंही बैजू ने ग्रास उठाकर अपने कंठ में डालना चाहा, त्योंही उसे यह ध्यान आया कि अरे, मुझसे बड़ा अपराध हुआ जो मैं अपने स्वामी की पूजा किये बिना ही भोजन करने के लिए बैठ गया हूँ। इस ध्यान के आते ही वह तुरन्त उठ बैठा।

हे नारद ! वेद का कथन है कि साधुओं का स्वभाव इस प्रकार का होता है कि वे अपने नियम को कभी नहीं छोड़ते हैं। अस्तु, बैजू ने वैद्यनाथ जी के पास पहुँचकर उनका पूजन किया और ध्यान धरते हुए पृथ्वी पर गिरकर दंडवत् की। उसकी ऐसी दृढ़ भक्ति को देखकर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो कर प्रकट हो गये। उनके वामांग में भगवती गिरिजा भी सुशोभित थीं। बैजू ने उनके दर्शन करके अत्यन्त स्तुति की तथा प्रेम की अधिकता में भरकर, नृत्य करना आरम्भ कर दिया। बैजू की ऐसी भक्ति को देखकर शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा—उस समय बैजू ने यह कहा—"हे प्रभो ! मैं यही चाहती हूँ कि आपके चरणों में मेरा प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहे तथा मैं आपके भक्तों की सदैव सेवा किया करूँ और आप मेरे नाम से प्रसिद्ध हों।" यह सुनकर शिवजी 'एवमस्तु' कहकर उसी लिङ्ग में प्रवेश कर गये। तब से वह—वैद्यनाथ, शिवलिङ्ग संसार में वैद्यनाथ के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ है।"

ॐ ॐ ॐ

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब तुम रावण का वृत्तान्त सुनो। जिस समय रावाण शिवलिङ्ग को उठाने में असमर्थ रहा, तब वह अपने अहंकार को भुलाकर, अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवजी की स्तुति करने लगा। उस समय यह आकाशवाणी हुई—"हे रावण ! तुम अपने नगर में जाकर निष्कंटक राज्य करो। जब तुम्हारे हृदय में गर्व उत्पन्न होगा, तभी तुम दुःखी हो जाओगे।" इस वरदान को पाकर रावण अत्यन्त

प्रसन्न हो, घर लौट आया। उस समय सब दैत्यों ने उसे अपना राजा स्वीकार किया। वह अपनी मन्दोदरी नामक रानी के साथ बहुत प्रसन्न होकर, शिवजी की भक्ति में संलग्न बना रहा। उसकी पत्नी मन्दोदरी पञ्चकन्याओं में एक, परम सुन्दरी तथा पतिव्रता थी। उसके मेघनाद के समान यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुए थे।

हे नारद ! उसके अत्याचारों से दुःखी होकर एक बार सब देवता मिलकर विष्णु जी के समीप पहुँचे। उन्हें देखकर विष्णु जी ने पूछा— "हे देवताओ ! तुम्हारे मुख पर चिन्ता की रेखाएँ खिच रही हैं। इससे प्रतीत होता है कि तुम लोग बहुत दुःखी हो। यह सुनकर देवताओं ने रावण के अत्याचारों का वर्णन करते हुए कहा—"हे प्रभो ! उसने देव-पत्नियों को अपने घर में डाल रखा है तथा अनेक प्रकार के अत्याचारों द्वारा संसार को दुःख पहुँचा रहा है। अब आप कृपा करके उस अन्यायी का शीघ्र वध कर डालिये।" यह सुनकर विष्णु जी अत्यन्त क्रुद्ध हो, देवताओं को साथ ले, रावण से युद्ध करने के लिए चल दिये।

हे नारद ! जब रावण ने यह देखा कि विष्णु जी देवताओं को साथ लेकर उससे युद्ध करने के लिए आये हैं, तो वह भी अत्यन्त क्रुद्ध हो, युद्ध क्षेत्र में जा पहुँचा तथा शिवजी की कृपा का बल प्राप्त करके युद्ध करने में प्रवृत्त हुआ। उस समय दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्र तथा बाणों की वर्षा होने लगी। विष्णु जी ने अपनी नन्दक नामक तलवार चलायी, जो रावण के शरीर का स्पर्श पाते ही कुण्ठित हो गयी। यह देखकर विष्णु जी ने अपने चक्र को रावण के कंठ पर चलाया। उस समय तीनों लोकों में हाहाकार मच गया, परन्तु रावण शिवजी का ध्यान धरने के कारण उस समय भी सुरक्षित बना रहा। इस प्रकार विष्णु जी ने रावण के ऊपर अनेक तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र चलाये, परन्तु शिवजी की कृपा से उसका कुछ भी अहित न हुआ। यह देखकर विष्णु जी को अत्यन्त चिन्ता हुई।

हे नारद ! उस समय विष्णु जी को चिन्तित देखकर यह आकाशवाणी

हुई—"हे विष्णु ! तुम कुछ चिन्ता मत करो। रावण के ऊपर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हैं। अस्तु, उसे भी अपने से कम मत समझो। यह वरदान के कारण देवताओं द्वारा नहीं मारा जायेगा, तुम्हें उचित है कि तुम मनुष्य शरीर धारण करके शिवजी की तपस्या करो और उनसे वरदान पाकर, युक्तिपूर्वक रावण का संहार करो। इस आकाशवाणी को सुनकर विष्णु जी अन्तर्धान हो गये। तब रावण सब देवताओं को पकड़कर नगर में लौट आया और निर्भय होकर तीनों लोकों का राज्य करता हुआ, प्रसन्न रहने लगा। जो देवता भाग निकले थे, वे फिर विष्णु जी की शरण में जा पहुँचे।

हे नारद ! इसके बाद विष्णु जी ने तुम्हें अपने पास बुलाया और यह कहा कि तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे शिवजी क्रुद्ध होकर रावण को शाप दे डालें। इस युक्ति के हो जाने पर, हम पृथ्वी पर मनुष्य का अवतार लेंगे और शिवजी को प्रसन्न करके, उनके धनुष-बाण द्वारा रावण का वध करेंगे। इतना कहकर विष्णु जी ने तुम्हें विदा किया तथा सब देवता भी अपने-अपने लोक को चले गये। तब विष्णु जी की आज्ञानुसार तुम रावण के समीप जा पहुँचे। रावण ने तुम्हारा अत्यन्त आदर सत्कार किया। तब तुमने रावण से यह कहा—"हे दशानन ! हम तुम्हारे राज्य, तेज तथा न्याय को देखने के लिए यहाँ आये हैं। तुम्हारे ऊपर शिवजी की जैसी कृपा है, वैसी उन्होंने अन्य किसी पर नहीं की है। तुम हमें यह तो बताओ कि शिवजी की ऐसी प्रसन्नता का कारण क्या है?" यह सुनकर रावण ने तुम्हें उत्तर दिया—"हे देवर्षि ! मैं आपसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिए।"

ॐ ॐ ॐ

छियालीसवाँ अध्याय

रावण बोला—"हे नारद जी ! सर्वप्रथम मैं कैलाश पर्वत पर तपस्या करने के निमित्त गया। मैं वहाँ अग्नि प्रज्वलित कर, अपने मस्तकों को काट-काटकर उसमें हवन करने लगा। जिस समय मैं

अपने नौ मस्तक काट चुका और दसवाँ मस्तक भी काटने को हुआ, उसी समय शिवजी ने मुझे अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया। तब मैंने उसने यह वरदान माँगा कि कोई भी देवता मुझ पर विजयी न हो सके। शिवजी ने मुझे इच्छित वरदान दिया तथा मेरे मस्तकों को भी फिर से उत्पन्न करके और अनेक वरदान दिये। उस समय से मैं निर्भय होकर तीनों लोकों का राज्य करता हूँ।''

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! रावण के मुख से यह वचन सुनकर तुम इस प्रकार बोले—''हे रावण ! सच पूछा जाये तो शिवजी ने तुम्हारे ऊपर विशेष कृपा नहीं की क्योंकि वे तुम्हारे घर नहीं आये। उन्होंने प्रथम तो अपना लिंङ्ग रूप भी दिखाया, दूसरे वे मार्ग में ही रह गये। अस्तु, हम तुम्हें एक उपाय बताते हैं उसे करने से तुम सदैव निर्भय तथा प्रसन्न रहोगे।'' यह सुनकर रावण ने पूछा—''वह उपाय क्या है?'' तुमने उत्तर दिया—''हे रावण ! तुम कैलाश पर्वत को ही उखाड़कर यहाँ ले आओ शिवजी को कुबेर के समीप रहते हुए बहुत दिन हो गये हैं, अब उन्हें तुम्हारे पास आकर रहना चाहिए। शिवजी को भी यह उचित है कि वे तुम्हारे पास आकर रहें। उनके यहाँ आ जाने पर तुम सदैव निर्भय तथा प्रसन्न बने रहोगे और वे हर समय तुम्हारी सहायता करते रहेंगे।''

हे नारद ! इतना कहकर तुम रावण के पास से चले आये और देवताओं को यह समाचार कह सुनाया। इस प्रकार रावण तुम्हारी माया से छला गया। तब वह अत्यन्त अहंकार में भरकर, कैलाश पर्वत के समीप जा पहुँचा। फिर उसने कैलाश पर्वत को जड़ से उखाड़ दिया, जिसके कारण उस पर्वत की सभी वस्तुएँ हिलकर नष्ट हो गयीं। यह देखकर शिवजी ने अत्यन्त आश्चर्य में भरकर पार्वती जी से पूछा—''हे प्रिये ! यह क्या हो रहा है?'' तब पार्वती जी ने उत्तर दिया—''हे प्रभो ! आपके किसी सेवक ने ही यह कार्य किया है। अब आप अपने किये को अपनी आँखों से देख लीजिये।'' गिरिजा के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने जब विचार करके देखा तो उन्हें ज्ञात

हुआ कि यह कार्य रावण का है। तब वे गिरिजा से बोले—"हे प्रिये ! अब मैं किसी को ऐसा वरदान नहीं दूँगा।"

हे नारद ! गिरिजा से इस प्रकार कहकर शिवजी ने रावण को शाप देते हुए कहा—"हे रावण ! तूने जिन हाथों से हमारे कैलाश पर्वत को उखाड़ा है, उन हाथों को काटने वाला अब शीघ्र ही उत्पन्न होगा।" शिवजी यदि चाहते तो स्वयं भी रावाण को नष्ट कर सकते थे, परन्तु यह नियम है कि स्वामी अपने सेवक का कभी अहित नहीं कर सकता। जब रावण ने इस शाप को सुना तो उसने कैलाश पर्वत को उसी स्थान पुनः पर रख दिया। तदुपरान्त वह अहंकार में भर अपने घर लौट आया और दृढ़तापूर्वक राज्य करता हुआ अनेक प्रकार के अन्याय करने लगा। इस प्रकार शुभ आचरण के विपरीत चलकर उसने शिवजी की भक्ति को भी त्याग दिया।

हे नारद ! यह समाचार जब तुमने देवताओं को सुनाया, तब विष्णु जी ने अत्यन्त प्रसन्न हो, समय पाकर राजा दशरथ के घर में मनुष्य अवतार लिया। उस समय वे रामचन्द्र नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए। बाल्यावस्था में रामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए गए। वहाँ उन्होंने ताड़का नामक राक्षसी का वध किया। तदुपरान्त उन्होंने जनकपुर में पहुँचकर धनुष तोड़ा तथा सीता के साथ विवाह किया। जब राजा दशरथ ने उन्हें अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहा, उस समय देवताओं ने अनेक चरित्र करके भरत की माता कैकेयी की बुद्धि को नष्ट कर दिया जिसके कारण रामचन्द्र लक्ष्मण तथा सीता सहित वनवास को चले गये। उन्होंने चित्रकूट तथा दण्डक वन में भ्रमण करते हुए, अनेक दैत्यों का संहार किया। तदुपरान्त जब रावण सीता को हर ले गया तो रामचन्द्र जी अत्यन्त दुःखी होकर अगस्त्य ऋषि की सेवा में पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार शिवजी का तप करने लगे। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना धनुष दिया और हनुमान के रूप में उनकी रक्षा करने का आश्वासन दिया। इस प्रकार शिवजी की कृपा से रामचन्द्र जी समुद्र पर पुल बांध

कर, लंकापुरी में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने रावण का कुल सहित संहार किया और सीता को साथ ले अयोध्यापुरी में लौट आये। वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग का यह चरित्र मैंने तुम्हें संक्षेप में सुनाया है। यह आख्यान दोनों लोकों में सुख प्रदान करने वाला है। इसके पढ़ने तथा सुनने से मुक्ति प्राप्त होती है।''

सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं नागेश ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन करता हूँ। प्राचीन काल में दारुका नामक एक राक्षसी ने भगवती गिरिजा की बड़ी सेवा की। तब गिरिजा ने प्रसन्न होकर उसे अपना दर्शन दिया, तथा वरदान माँगने के लिए कहा। उस समय दारुका यह बोली—''हे भगवती ! आप मुझे एक ऐसा नगर दीजिए, जिससे मैं अपने पति सहित निवास किया करूँ। मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, वह नगर भी मेरे साथ वहीं जाये तथा आप मेरी सदैव रक्षा किया करें।'' यह सुनकर गिरिजा जी 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। तदुपरान्त उनकी कृपा से पश्चिमी समुद्र के निकट एक ऐसा नगर बसा, जो सोलह योजन लम्बा था, तथा जिसमें सुख की सम्पूर्ण वस्तुएँ उपस्थित थीं। दारुका वहाँ जाकर अपने अन्य साथी राक्षसों के साथ रहने लगी। दारुका के पति का नाम दारुक था। वह अत्यन्त तेजस्वी तथा बलवान् था। वह पूजन, यज्ञ, जप, तप, ज्ञान, धर्म आदि से रहित हो, कुकर्म करने में संलग्न हुआ। दारुक जहाँ-जहाँ जाती, वहीं-वहीं वह नगर भी साथ-साथ चलता था।

हे नारद ! उस दैत्य के उपद्रवों के कारण तीनों लोकों के सभी देवता तथा मनुष्य अत्यन्त चिन्तित हो, और्व मुनि के समीप गये तथा उन्हें प्रणाम करके, स्तुति करते हुए कहने लगे—''हे मुनि ! इन दिनों दारुक राक्षस अनेक प्रकार के उपद्रव मचा रहा है। इसलिए आप हमारी रक्षा करने की कृपा करें। हे स्वामिन् ! आप शिवजी के परम

भक्त हैं। अस्तु, आपके तेज को देखकर वे सब राक्षस भाग जायेंगे।"
इस समाचार को सुनकर और्व मुनि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर, राक्षसों को यह शाप दिया कि यदि तुम पृथ्वी के जीवों को मारोगे और यज्ञ, तप आदि धर्म-कार्यों में विघ्न डालोगे तो नष्ट हो जाओगे। इस प्रकार शाप देकर और्व मुनि तो अपने ध्यान में फिर स्थित हो गये तथा सब देवता राक्षसों से युद्ध करने की तैयारी करने लगे। जिस समय राक्षसों ने और्व मुनि के इस शाप का समाचार सुना तो वे अत्यन्त चिन्तित हुए। उस समय दारुका राक्षसी ने उन् सब को धैर्य बँधाते हुए यह कहा कि गिरिजा जी के वरदान के कारण मैं जहाँ जाऊँगी, वहीं यह नगर भी मेरे साथ जाएगा। अस्तु, हम लोग ऐसे स्थान पर चलें, जहाँ मुनि के शाप का कोई प्रभाव न हो सके।

हे नारद ! इस बात को सुनकर वे सब राक्षस समुद्र में जाकर रहने लगे। वहाँ वे यह करते कि यदि कोई मनुष्य नाव पर बैठा हुआ, उधर पहुँच जाता तो उसे पकड़ कर बन्दीगृह में डाल दिया करते थे। एक दिन वे बहुत-सी नावों को पकड़कर अपने नगर में ले गये। उन नावों का एक यात्री शिवजी का परमभक्त था। वह शिवजी का पूजन किये बिना जल भी ग्रहण नहीं करता था। अस्तु, जब राक्षसों द्वारा उसे भी बन्दी बना लिया गया, वह बन्दीगृह में पहुँचकर अन्य सब लोगों से भी पार्थिव-पूजन कराने लगा। उसने सब को मानसी पूजन का उपदेश कर, पंचाक्षरी मन्त्र की दीक्षा दी। उसकी सम्मति के अनुसार सब बन्दी भगवान् सदाशिव का ध्यान धरते हुए, पार्थिव पूजन करने लगे। इस प्रकार जब उन्हें छः महीने व्यतीत हो गये तो एक दिन शिवजी ने उन पर दयालु होकर, एक चरित्र किया।

हे नारद ! वह चरित्र यह था कि एक दिन राक्षस ने उन बन्दियों को शिवलिंग का पूजन करते हुए देखा। तब उसने दारुका के पास पहुँचकर यह समाचार कह सुनाया। दारुक इस वृत्तान्त को सुनते ही बन्दियों के पास आया और शिवजी के भक्त को भय दिखाते हुए यह कहने लगा कि मुझे सत्य बता तू यहाँ बैठकर कौन-सा कर्म कर रहा

है? यदि तूने मुझे नहीं बताया तो मैं तुझे जान से मार डालूँगा। यह सुनकर जब उस शिवभक्त ने कुछ भी बताने से मना किया तब दारुक ने अपने राक्षसों को यह आज्ञा दी कि तुम इस मूर्ख को मार डालो। जिस समय वे राक्षस उस शिवभक्त को मारने के लिए आगे बढ़े, उस समय वह अत्यन्त चिन्तित होकर शिवजी का स्मरण करने लगा। तभी शिवजी गिरिजा सहित उसी समय लिंग मूर्ति से प्रकट हो गये। शिवजी के दर्शन पाते ही उस शिवभक्त ने, जो कि वैश्यपति के नाम से प्रसिद्ध था, अत्यन्त प्रसन्न होकर स्तुति की। फिर शिवजी ने अपनी हुंकार द्वारा सब राक्षसों को दूर कर दिया और वैश्यपति को अपना पाशुपत अस्त्र देते हुए यह कहा था कि तुम इसके द्वारा सम्पूर्ण राक्षसों का संहार करके स्वयं ब्राह्मणों सहित इस वन में निवास करो। अब यहाँ कोई भी राक्षस नहीं रह पायेगा। हम यहाँ अपना एक ज्योतिर्लिङ्ग स्थापित किये जाते हैं।

हे नारद ! जिस समय दारुका राक्षसी ने यह दृश्य देखा तो उसने गिरिजा की बहुत स्तुति की। जब गिरिजा ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने के लिए कहा तो वह इस प्रकार बोली—"हे भगवती ! आप आदिशक्ति हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवजी आप के सेवक हैं। मैं किसी भी प्रकार न मारी जाऊँ।" यह सुनकर गिरिजा ने 'एवमस्तु' कहते हुए शिवजी से यह कहा—"हे प्रभो ! यह दारुका नामक राक्षसी मेरी भक्तिनी है। अस्तु, आप कृपा करके इसका तथा इसके स्वामी का नाश मत कीजिए और इसे यह भी वरदान दीजिए कि यह दारुका वन नष्ट नहीं होगा।" गिरिजा के यह वचन सुनकर शिवजी हँस कर बोले—"हे प्रिये ! जब तुम यह कह रही हो जो उचित समझो, उसे करो।" तब गिरिजा जी ने उस नगर को यह वरदान दिया कि युग के अन्त तक यह नगर अपने वन सहित बसा रहेगा और इसमें राक्षस निवास करेंगे। दारुका की गणना हमारी शक्ति में होगी और वह अपने पति सहित यहाँ का राज्य करेगी। शिवजी ने कहा—"जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्म में दृढ़ होगा तथा यहाँ आकर हमारे लिङ्ग का दर्शन

करेगा, वह पृथ्वी का राजा होकर, इन्द्र के समान सुख भोगेगा।''

हे नारद ! इतना कहकर शिवजी ने गिरिजा जी से कहा—''हे प्रिये ! अब हम तुमसे भविष्य का वृत्तान्त कहते हैं कि बभ्रुसेन नामक एक राजा यहाँ आकर हमारा दर्शन करेगा तथा वही इन राक्षसों का संहार करेगा।'' इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर शिवजी अपने नागेश नामक ज्योतिर्लिंग को वहाँ स्थापित कर, गिरिजा जी सहित अन्तर्धान हो गये।'' इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! राजा बभ्रुसेन उस वन में किस प्रकार गया, यह आप मुझे बताने की कृपा कीजिए।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! निषध देश में बभ्रुसेन नामक एक राजा उत्पन्न हुआ। उसने बारह वर्षों तक शिवजी का तप किया। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे यह आज्ञा दी कि तुम पश्चिम समुद्र में जाकर दारुका वन के राक्षसों का संहार करो। इतना कहकर शिवजी उसे एक काठ की नाव देकर अन्तर्धान हो गये। तब राजा बभ्रुसेन उस नाव पर चढ़कर दारुका वन में जा पहुँचा। वहाँ उसने शिवलिंग तथा गिरिजा के दर्शन करने के उपरान्त उस पाशुपत अस्त्र को उठाया, जो बहुत समय से वहाँ रखा हुआ था। तत्पश्चात् सब राक्षसों का संहार करके अपने नगर को लौट आया। इस प्रकार जब गिरिजा जी के वरदान की अवधि समाप्त हो गयी, तो दारुका नामक राक्षस का संहार हो गया। हे नारद ! नागेश ज्योतिर्लिंग का यह चरित्र अत्यन्त पवित्र है। इसे जो कोई सुनता है अथवा सुनाता है, उसे आनन्द प्राप्त होता है।

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब तुम रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग का वृत्तान्त सुनो। एक समय हमारे सनकादिक चारों पुत्र कृष्ण लोक में पहुँचे। जिस समय वे विष्णु जी के मन्दिर में भीतर जाने लगे, उस समय जय तथा विजय नामक पार्षदों ने उन्हें रोक दिया, तब सनकादि

के शाप के कारण उन्हें तीन जन्म तक दैत्य बनकर पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा। वे पहले जन्म में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु के नाम से उत्पन्न हुए और विष्णु जी के हाथ से मारे गये। तदुपरान्त दूसरे जन्म में वे रावण तथा कुम्भकर्ण बनकर उत्पन्न हुए। रावण ने शिवजी की सेवा करके तीनों लोकों को जीत लिया। परन्तु जब तुमने उसे मोहित कर दिया, तब वह कैलाश पर्वत को उखाड़ने के लिए जा पहुँचा। उस समय शिवजी ने उसे यह शाप दिया कि हमारे ही समान एक दूसरा मनुष्य तेरे इस अहंकार का नाश करेगा। उस शाप के कारण रावण धर्म के विरुद्ध आचरण करने लगा। तब देवताओं एवं ऋषियों की प्रार्थना पर विष्णु जी ने राचमन्द्र का अवतार लिया।

ॐ ॐ ॐ

उन्चासवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! अगस्त मुनि के उपदेशानुसार रामचन्द्र जी ने अपने सम्पूर्ण शरीर में भस्म मली तथा रुद्राक्ष धारण किये। फिर वे लक्ष्मण को रक्षा के निमित्त द्वार पर बैठाकर, वेद में वर्णित शिव सहस्त्र नाम का जप करने लगे। रामचन्द्र के उस तप से प्रसन्न हो शिवजी ने दर्शन दिया तथा उन्हें अपनी गोद में बैठाकर यह कहा—"हे रामचन्द्र ! हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुम जो चाहो, वह वर हमसे माँग लो।" शिवजी के श्रीमुख से ऐसे वचन सुनकर रामचन्द्र बोले—"हे प्रभो ! मैं रावण का वध करके सीता को प्राप्त करना चाहता हूँ।" उस समय शिवजी ने प्रसन्न होकर रामचन्द्र को धनुष-बाण सहित अपना तेज प्रदान किया। तदुपरान्त रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचकर, सुग्रीव तथा हनुमान से मिले और हनुमान को सीता का पता लगाने के लिए भेजा। जब हनुमान सीता का पता लगाकर लंका से लौट आये, तब रामचन्द्र अपनी सेना को साथ ले रावण से युद्ध करने के लिए चले। समुद्र तट पर पहुँचने पर जब उन्होंने यह देखा कि आगे किसी प्रकार नहीं बढ़ा जा सकता है, तब उन्होंने अत्यन्त चिन्तित

होकर वहाँ एक शिवलिङ्ग की स्थापना की।

रामचन्द्र की प्रार्थना पर शिवजी उसी लिङ्ग से प्रकट हुए तथा विराट् स्वरूप धारण कर, वर माँगने के लिए कहने लगे। उस समय रामचन्द्र ने उस ज्योतिस्वरूप शिवजी को देखकर यह प्रार्थना की— "हे प्रभो ! मेरी यह इच्छा है कि मैं सेना सहित समुद्र के पार उतरकर रावण पर विजय प्राप्त करूँ तथा मेरी अभिलाषा है कि आप मेरे द्वारा स्थापित इस लिङ्ग में सदैव निवासकर संसार को सुख पहुँचाया करें।" शिवजी ने इस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त वे 'एवमस्तु' कहते हुए रामचन्द्र द्वारा स्थापित लिङ्ग में प्रवेश कर गये।

हे नारद ! रामचन्द्र ने जो लिङ्ग स्थापित किया था, वह रामेश्वर के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ। रामचन्द्र, लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान तथा अंगद आदि ने उस लिङ्ग का पूजन करके अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। तदुपरान्त रामचन्द्र समुद्र पर पुल बाँधकर, लंकापुरी में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने रावण को कुल सहित मार डाला और विभीषण को वहाँ का राज्य दे, स्वयं सीता सहित अपनी अयोध्यापुरी को लौट आये।

हे नारद ! जो मनुष्य रामेश्वर शिवलिङ्ग पर गंगा जल चढ़ाता है, वह दोनों लोकों में सुख प्राप्त करता है। यह पूर्ण सत्य है कि रामेश्वर शिवलिङ्ग की पूजा करने से सब प्रकार के मनोरथ पूर्ण होते हैं।"

पचासवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब हम घुष्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग का वर्णन करते हैं। वह बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग है। दक्षिण दिशा में त्रिदिव नामक जो शिवजी का धाम है वहाँ एक बहुत बड़ा नगर स्थित था। उस नगर में सुधर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण निवास करता था। वह दिन-रात शिवजी का पूजन करता तथा सदैव भस्म एवं रुद्राक्ष को धारण करता था। उसकी सुदेहा नामक पत्नी परम पतिव्रता तथा

शिवजी की महान् भक्त थी। बहुत दिन व्यतीत होने पर भी जब उस ब्राह्मणी के कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ तो एक दिन वह अत्यन्त चिन्तित होने लगी। उस समय ब्राह्मण ने उसे बहुत कुछ समझाते हुए यह कहा—"हे प्रिये ! यद्यपि पुत्र के होने पर दोनों लोकों में सुख मिलता है, परन्तु वेद का कथन यह है कि कर्म सब में प्रधान है। तुम चिन्ता रहित होकर भगवान् शिवजी की आराधना करती रहो। जो मनुष्य शिवजी की भक्ति में लीन हो जाते हैं, उन्हें संसार का सुख तुच्छ दिखाई देता है।"

हे नारद ! ब्राह्मण द्वारा इस उपदेश को सुनकर वह स्त्री अत्यन्त प्रसन्न हुई तदुपरान्त एक दिन वह अपनी किसी पड़ोसन के यहाँ गयी। वहाँ किसी विषय पर विवाद छिड़ गया। तब एक स्त्री ने ताना करते हुए यह कहा—"अरी तू पुत्रहीन होने पर भी इतना अहंकार क्यों करती है? संतान के बिना न तो मुक्ति मिलती है और न ज्ञान ही फलदायक हो सकता है।"

हे नारद ! उन स्त्रियों की बात सुनकर ब्राह्मणी अत्यन्त लज्जित हो, अपने घर लौट आयी और पति के चरणों में गिरकर, सब वृत्तान्त सुनाती हुई यह कहने लगी—"हे स्वामी ! या तो मुझे पुत्र दीजिये अन्यथा मैं जीवित नहीं रहूँगी।" इस बात को सुनकर ब्राह्मण ने उसे बहुत समझाया कि तुम पुत्र के लिए इस प्रकार चिन्ता मत करो तथा शिवजी की भक्ति त्याग कर, संसारी सुख में संलग्न होने का प्रयत्न न करो ; परन्तु वह किसी भी प्रकार संतुष्ट न हुई। निरन्तर पुत्र की ही माँग करती रही। तब उसके हठ को देखकर ब्राह्मण ने दुःखी होकर शिवजी का ध्यान किया। फिर उसने अपनी स्त्री के सामने दो फूल रखे। उनमें एक फूल पुत्र होने का और दूसरा फूल पुत्र न होने का था। उन फूलों को सामने रखने के उपरान्त ब्राह्मण ने सुदेहा से कहा—"हे प्रिये ! तुम इन दोनों फूलों में से कोई एक फूल उठा लो।" यह सुनकर ब्राह्मणी ने उस फूल को उठाया, जो पुत्र न होने का था। तब ब्राह्मण ने अत्यन्त दुःखी होकर स्त्री से यह कहा—"तुम्हारे भाग्य में पुत्र नहीं है।

अस्तु, वह किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता।'' यह सुनकर स्त्री बोली—''हे पति ! आप पुत्र की प्राप्ति के लिए दूसरा विवाह कर लीजिये। मैं उसकी सेविका बनकर घर में रहूँगी। यद्यपि ब्राह्मण ने दूसरा विवाह करने का बहुत विरोध किया, परन्तु ब्राह्मणी ने उसे विवश करके दूसरा विवाह करा दिया। दूसरी स्त्री जो आयी, उसका नाम घुष्मा था। वह अपने पति की आज्ञानुसार प्रतिदिन एक सहस्त्र पार्थिव बनाकर उनका पूजन करने लगी। इस प्रकार जब कुछ समय व्यतीत हुआ तो शिवजी की कृपा से उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उस बालक के होने पर ब्राह्मण तथा उसकी दोनों पत्नियों को अत्यन्त आनन्द हुआ। यथाविधि जात कर्म आदि करने के उपरान्त बहुत उत्सव मनाये गये।''

ॐ ॐ ॐ

इक्यावनवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जब घुष्मा ने पुत्र को जन्म दिया तो सब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। उसके विपरीत ब्राह्मण की पहली पत्नी सुदेहा की सर्वत्र निन्दा होने लगी। तब वह अपनी सौत के पुत्र को स्नेह करने के स्थान पर घृणा करने लगी और उसे देख-देख कर जलने लगी। वह उसे खूब मारने तथा अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाने लगी। यद्यपि ब्राह्मण अपनी दोनों पत्नियों को एक दृष्टि से देखता था और घुष्मा भी यह कहती थी कि यह पुत्र मेरा नहीं, अपितु तुम्हारा ही है; परन्तु तो भी, सुदेहा का दुःख दूर नहीं होता था।

हे नारद ! सौतिया डाह महाभयानक कहा गया है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि दूसरा विवाह कभी न करे। विशेषकर उस स्थिति में, जब उसकी पहली पत्नी जीवित हो तथा उसके सन्तान भी न हो। अस्तु, जब वह लड़का बड़ा हो गया और उसका विवाह भी हो गया, तब सुदेहा की ईर्ष्या और अधिक बढ़ गयी। यद्यपि उस लड़के की पत्नी सुदेहा की अधिक सेवा किया करती थी, तो भी वह उसके

प्रति निरन्तर कठोर वचनों का ही प्रयोग किया करती थी। अन्त में एक दिन सुदेहा ने यह विचार किया कि जब तक मैं इस लड़के को मार नहीं डालूँगी तब तक मेरा दुःख दूर नहीं होगा।

हे नारद ! संसार में ऐसा कोई कर्म नहीं है, जिसे स्त्री न कर सके। अस्तु, एक दिन अवसर पाकर सुदेहा ने अपनी सौत के लड़के को मार डाला तथा उसका सिर काटकर वहाँ डाल दिया, जहाँ घुष्मा शिवजी के पार्थिव लिङ्गों को पूजन के उपरान्त डाल दिया करती थी। प्रातःकाल होने पर जब लोगों ने उस लड़के के अंगों को छिन्न-भिन्न देखा तो सम्पूर्ण नगर में इस बात की चर्चा होने लगी कि सुदेहा ने अपने सौतेले लड़के को मार डाला है। यह सब होते हुए भी वह ब्राह्मण तथा घुष्मा शिवजी के पूजन में संलग्न रहे। वे अपने स्थान से तनिक भी नहीं हटे। जब पूजन समाप्त हो चुका तब उन्होंने अपने लड़के की ऐसी अवस्था देखी, तब भी केवल यही कहा कि शिवजी ही हमारे रक्षक हैं। अस्तु, उनकी जो इच्छा होती है, वही कार्य हुआ करते हैं। इस सम्बन्ध में हम लोगों को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अस्तु, घुष्मा ने प्रतिदिन के नियमानुसार पार्थिवों को उसी स्थान पर डाल दिया जहाँ उसके लड़के का मस्तक कटा हुआ पड़ा था। इस प्रकार वह शिवजी की भक्ति में पूर्णतः दृढ़ रही तथा किसी भी प्रकार अपने मन में खेद नहीं किया। उसकी ऐसी दृढ़ता को देखकर शिवजी तुरन्त प्रकट हो गये और घुष्मा से इस प्रकार बोले—"हे घुष्मा ! हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुम इच्छानुसार वर माँग लो। तुम्हारे लड़के का जिसने वध किया है, उसे हम अपने त्रिशूल से मार डालेंगे।" यह सुनकर घुष्मा ने उन्हें प्रणाम करते हुए उत्तर दिया—"हे प्रभो ! जिसने यह पाप किया है, वह स्वयं अपने पाप का फल पायेगा, आप किसी का वध न करें। दूसरी मेरी यह इच्छा है कि आप गिरिजा सहित उसी स्थान पर स्थित हों तथा अपने भक्तों को सम्पूर्ण मनोरथ प्रदान किया करें।"

घुष्मा की यह प्रार्थना सुनकर, शिवजी प्रसन्न होकर बोले—"हे

घुष्मा ! हम तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार करते हैं। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह शिवलिंग घुष्मेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होगा और तालाब का नाम शिवालय होगा। तुम्हारे गर्भ से एक सौ पुत्र जन्म लेंगे और तुम जीवन भर अत्यन्त सुख भोगकर, अन्त में मुक्ति पद को प्राप्त करोगी।'' तब ब्राह्मण ने अपनी दोनों स्त्रियों सहित उस लिङ्ग की परिक्रमा की। फिर वह अपनी पहली स्त्री से शत्रुता त्यागकर, आनन्दपूर्वक शिव भक्ति में संलग्न रहने लगा।

हे नारद ! घुष्मेश्वर ज्योतिर्लिंग के इस चरित्र को जो सुनता, सुनाता अथवा पढ़ता है, वह संसार में अनेक प्रकार के सुख भोगकर, अन्त में शिवपद को प्राप्त करता है। उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं तथा किसी भी प्रकार का रोग नहीं रहता। मैंने तुम्हें द्वादश ज्योतिर्लिंगों का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनाया। यह बारहों ज्योतिर्लिंग; मुक्ति को प्रदान करने वाले हैं। संसार में शिवलिंगों की महिमा प्रधान है।''

इति श्रीशिवपुराणे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां शतरुद्रखण्डनाम अष्टमखण्डस्समाप्तः ।। ८ ।।



ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

नौवाँ खण्ड

पहला अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! अब मैं नवम खण्ड की कथा सुनाता हूँ। यह नवम खण्ड प्रयाग के समान अत्यन्त पवित्र है। प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम है, इसलिए उसकी महिमा कही गयी है। इस नवम खण्ड में नाम, भस्म एवं रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन किया गया है, इसलिए यह भी त्रिवेणी रूप है। जो लोग इन तीनों आभूषणों को धारण किए रहते हैं, उन्हें भगवान् सदाशिव के समान समझना चाहिए।

हे नारद ! शिवजी की महिमा अपार है। भक्त तथा संतजन शिवजी के नाम को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते हैं। मुनि तथा सिद्धजन उनके नाम का जप करके सम्पूर्ण पापों से रहित हो जाते हैं। सीता सहित श्री रामचन्द्र जी तथा राधा सहित श्री कृष्ण जी भी शिवजी का नाम जपते हुए सुखी रहते हैं। जो लोग शिवजी के नाम का जाप करते हैं, उन्हें परम धन्य समझना चाहिए। जिसके मुख से एक बार भी शिवजी का नाम निकलता है, उसके सभी कार्य पूरे हो जाते हैं। शिवजी का नाम जपने से ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप दूर हो जाते हैं। शिवजी के नाम रूपी नौका को संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिए सुगम उपाय समझना चाहिए। शिवजी का नाम अमृत के समान दुःखों को दूर करने वाला है। हे नारद ! जो लोग मन, वचन तथा कर्म द्वारा शिवजी का नाम जपते हैं, वे अत्यन्त धन्य हैं।

हे नारद ! यद्यपि शिवजी के अनन्त नाम हैं तथा वे सब सम्पूर्ण

मनोकामनाओं को सिद्ध करने में एक-से हैं, परन्तु शिव नाम के समान अन्य कोई नाम नहीं है। जो मनुष्य किसी भी प्रकार शिवजी का नाम लेता है, वह अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त होता है। इन्द्रद्युम्न नामक एक राजा महापापी था। जब उसे एक सिंह ने मार डाला तो उसे लेने के लिए यमराज के दूत गए, परन्तु तभी शिवजी की आज्ञानुसर शिवगण भी उसे लेने के लिए जा पहुँचे, क्योंकि मरते समय उसने शिव नाम का उच्चारण किया था। यद्यपि उसने अनजाने में शिवजी का नाम लिया था, तो भी वह शिव स्वरूप धारणकर, शिव पुरी में प्रतिष्ठित हुआ। इसी प्रकार बहुत-से अन्य मनुष्य भी शिवजी का नाम लेकर बराबर मुक्ति को प्राप्त होते रहे हैं।

हे नारद ! वेद तथा पुराण इस बात को कहते हैं कि शिवजी के नाम से माहात्म्य का पूर्ण रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता। पहले नमः तथा बाद में शिवाय करने पर नमः शिवाय—यह पंचाक्षर मन्त्र हो जाता है। यह मंत्र सब मंत्रों का राजा है। और इसकी महिमा सबसे श्रेष्ठ है। इस पंचाक्षर मंत्र का जप करके ही मैं, विष्णु जी तथा अन्य देवता एवं ऋषि मुनि सदैव निर्भय रहते हैं और अनेक प्रकार के सुख भोगते हैं। जो प्राणी इस मन्त्र का जप करता है, उसके सभी पाप और दोष नष्ट हो जाते हैं तथा शिवजी किसी भी अवस्था में उस पर अप्रसन्न नहीं होते।"

ॐ ॐ ॐ

दूसरा अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे संसार को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा जी ! मेरी यह अभिलाषा है, मुझे सुमति नामक स्त्री तथा इन्द्रद्युम्न नामक राजा की कथा विस्तारपूर्वक सुनावें।" यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! सुनो, सुमति एक ब्राह्मणी का नाम था। उसे कैकेयी भी कहते थे। उसके पिता ने एक श्रेष्ठ ब्राह्मण के साथ उसका विवाह किया था। वह अपने पति के साथ रहकर अनेक

प्रकार के विहार करती रही। कुछ समय पश्चात् उसके पति की मृत्यु हो गयी। थोड़े दिनों तक तो वह सांसारिक रीति के अनुसार शोक मनाती रही, परन्तु जब उसे कामदेव सताने लगा, तब वह व्यभिचारिणी बन गयी।

हे नारद ! तब वह व्यभिचारणी घूमती-घामती एक वन में जा पहुँची। वहाँ उसकी भेंट एक शूद्र से हुई। शूद्र उसे अपने घर ले गया और अपनी स्त्री के समान रखने लगा। वह अपने पुरातन धर्म को भुला बैठी। एक दिन वह शूद्र किसी काम से घर से बाहर चला गया, तब स्वतंत्र होकर अनेक प्रकार के दुष्कर्म करने लगी। एक समय की बात है कि उसने मद्यपान करके माँस खाने की इच्छा की और गौशाला में पहुँचकर एक बछड़े को तलवार से मार डाला। यद्यपि उस समय अंधेरा होने के कारण वह यह नहीं जान सकी थी कि मैं बछड़े को मार रही हूँ। परन्तु जब उसे यह पता चल गया कि मैंने बछड़े को मारा है तो वह चिन्तित होकर शिव-शिव कहने लगी। इसके बाद वह उस बछड़े के माँस को खा गयी और सबके समक्ष यह बात प्रसिद्ध कर दी कि उसे सिंह ने मार डाला है। अस्तु, जब उसकी मृत्यु का समय आया तो यमराज के गण उसे बाँध कर यमराज के समीप ले गये। यम ने उसे नरक में न भेजकर, एक चाण्डाल के घर जन्म दे दिया। वहाँ वह माता-पिता से हीन, अन्धी तथा कुष्ठ रोग से ग्रस्त होने के कारण अत्यन्त दुःख को प्राप्त हुई। उसके घृणास्पद रूप को देखकर किसी ने भी उसके साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया।

हे नारद ! वह चाण्डालों की जूठन खाकर अपना पेट भरा करती थी। इस प्रकार उसकी बाल्यावस्था तथा युवावस्था दोनों ही दुःख में बीता। वृद्धावस्था आने पर भी उसे सुख प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन वह अपनी दशा पर विचार करके इतना अधिक रोई कि उसकी आँखों से आँसुओं की नदी जैसी बह निकली। तब भगवान् सदाशिव ने यह चरित्र किया कि वह चाण्डाली अन्य लोगों के साथ माँगती-खाती हुई किसी प्रकार गोकर्ण क्षेत्र में जा पहुँची। उस दिन वहाँ माघ कृष्ण चतुर्दशी का मेला लगा था और सभी लोगों ने व्रत धारण किया हुआ

था। वहाँ उस चाण्डालिनी ने भोजन के लिए बहुत याचना की, परन्तु किसी ने भी उसे खाने को नहीं दिया। तदुपरान्त एक मनुष्य ने उसके हाथ पर थोड़े से बिल्वपत्र रख दिये। जब उसने यह देखा कि इस पत्ते में कोई खाने-पीने की वस्तु नहीं है, तो उन्हें पृथ्वी पर फेंक दिया। संयोगवश वे बिल्वपत्र एक शिवलिंग के ऊपर जा पड़े। इस अज्ञानावस्था के पुण्य के कारण उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये। उस दिन उसे खाने-पीने के लिए कुछ नहीं मिला था। अस्तु उसका निर्जल व्रत भी हो गया। इसी दुःख के कारण उसे रात भर नींद भी नहीं आयी, जिससे वह जागरण का फल प्राप्त करने की भी अधिकारिणी हुई। प्रातःकाल होने पर भी जब उसे कोई खाने-पीने की वस्तु न मिली, तो वह व्याकुल होकर अपने घर को लौट चली, परन्तु मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

हे नारद ! इस अज्ञानावस्था की भक्ति से शिवजी उसके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने गणों को यह आज्ञा दी कि तुम लोग उस चाण्डालिनी को विमान पर बैठाकर, हमारे लोक को ले आओ। तब शिवजी की आज्ञानुसार, शिवगण उसे विमान पर बैठाकर शिवलोक में पहुँचे। शिवजी तथा गिरिजा जी ने उस पर अत्यन्त कृपा की। तदुपरान्त पार्वती जी ने उसे अपनी दासी बना लिया। हे नारद ! इस प्रकार केवल दो बार शिव नाम का उच्चारण करने से ही सुमति को मुक्ति पद प्राप्त हुआ।''

ॐ ॐ ॐ

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! पिछले कलियुग में इन्द्रद्युम्न नामक एक राजा अत्यन्त बलवान हुआ था। वह बुद्धिहीन, ब्राह्मणों का विरोधी, जीव हिंसक पापी, सबका शत्रु तथा बुरे स्वभाव का था। उसने वेद के विरुद्ध आचरण कर देवताओं का पूजन, जप, तप, दान आदि सबको त्याग दिया। प्रजा भी उसके आचरण से अत्यन्त दुःखी

थी। वह शिकार खेलने के लिए जाता और अनेक निरीह पशुओं का वध किया करता था।

हे नारद ! एक दिन राजा अपने मंत्री सहित वन में शिकार खेलने के लिए गया। वहाँ उसने सैनिकों ने वन में रहने वाले ऋषि-मुनियों को वन से बाहर निकाल देने का प्रयत्न किया। उसी समय शिवजी की माया से एक महाभयानक सिंह ने कहीं से आकर उस राजा को एक ही चपेट में मार डाला और कोई भी उसकी रक्षा न कर सका। जब यमदूत उस राजा को लेने के लिए पहुँचे, तभी शिवजी की आज्ञानुसार शिवगण भी उसे लेने जा पहुँचे वे राजा को यमदूतों से छुड़ाकर शिवलोक में ले गये। वहाँ जाते ही राजा शिवरूप हो गया। तथा शिवजी ने उसे प्रसन्नतापूर्वक अपने आधे आसन पर बैठाकर इस प्रकार कहा—"हे राजन् ! तुम हमारे भक्त हो, इसलिए तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान हमसे माँग लो।" शिवजी के मुख से ऐसे वचन सुनकर राजा की आँखों से प्रेमाश्रुओं की वर्षा होने लगी। वह मुख से कुछ नहीं बोला। तब शिवजी ने उसे स्वयं ही वरदान देकर, अपना गण बना लिया। तब से उसका नाम चण्ड हुआ। मुण्ड नामक गण से उसकी अत्यन्त मित्रता हुई। उसी समय से चण्ड और मुण्ड ने शिवजी के गणों में प्रमुख स्थान प्राप्त किया।

हे नारद ! शिवजी के भक्तों को उचित है कि जब वे शिवजी की पूजा अथवा जप करें तो आग्नेय दिशा में चण्ड-मूण्ड का पूजन अवश्य कर लिया करें, क्योंकि इन गणों की पूजा से शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं। राजा इन्द्रद्युम्न को ऐसा शुभपद केवल एक बार शिवजी का नाम लेने के कारण ही मिल गया, यद्यपि उसने जान बूझकर भी वह नाम नहीं लिया था। केवल एक बार ही उसके मुख से 'आहरपरिहर' शब्द निकला था। जिस समय उसने उस शब्द का उच्चारण किया था, उसी समय सिंह ने उसका वध किया था। 'आहरपरिहर' शब्द का उच्चारण करने से ही उसे इस पद की प्राप्ति हुई, क्योंकि यह शब्द भी शिवजी का एक नाम

है। अस्तु, यमदूतों को जब वह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होंने चित्रगुप्त से इसका भेद पूछा। उस समय चित्रगुप्त ने उन्हें यह बताया कि आहरपरिहर शब्द का उच्चारण करने से ही राजा को ऐसे श्रेष्ठ पद की प्राप्ति हुई है। जो इस कथा को सुनता एवं पढ़ता है, उसे भी दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है।''

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! शिव नाम का उच्चारण करने से करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा कोई भी दोष नहीं हैं, जो शिव नाम का जप करने से नष्ट न हो जाए। मैं इस सम्बन्ध में तुमसे एक इतिहास कहता हूँ। उज्जयिनी पुरी में एक महापापी ब्राह्मण रहता था। उसका नाम असमचित्त था। जब उसने जन्म लिया तो उसके पिता की मृत्यु हो गयी और जब वह पाँच वर्ष का हुआ तो उसकी माता भी मर गयी। इस प्रकार माता-पिता से हीन हो जाने पर वह अत्यन्त दुःखी तथा निर्धन हुआ। वह किसी प्रकार की विद्या भी नहीं पढ़ सका। जब वह युवा हुआ तो चोरी करना सीख कर परदेश चला गया और वहाँ अनेक प्रकार के पाप-कर्म करने लगा।

हे नारद ! एक समय वह कुछ अन्य चोरों के साथ माया-क्षेत्र में चोरी करने के विचार से जा पहुँचा। जिस समय वह अपने साथियों सहित इधर-उधर घूम रहा था, उसी समय उसने यह देखा कि एक स्थान पर कुछ ब्राह्मण बैठे हुए शिवजी का पूजन तथा स्तुति करते हुए उनकी कथा के पठन-पाठन में संलग्न हैं। असमचित्त ने उन्हें देखकर अपने साथी चोरों से यह कहा—''हे भाइयो ! ऐसा मालूम होता है कि ये लोग बहुत धनवान् हैं। ये लोग परस्पर धीरे-धीरे वार्तालाप कर रहे हैं, इससे भी यही प्रतीत होता है, मानो अपने धन के सम्बन्ध में कोई मन्त्रणा कर रहे हैं, अतः तुम इन लोगों की बातचीत को ध्यानपूर्वक सुनो। तदुपरान्त हम इनका धन लूटकर, इन्हें मार डालेंगे।''

हे नारद ! यह विचारकर, असमचित्त अपने साथियों सहित शिवभक्तों का स्वरूप धारणकर, वस्त्र आदि बदल, उन शिव पूजकों के समीप जा पहुँचा और प्रणाम करके उनके समीप बैठ गया। वहाँ उसने शिवजी का माहात्म्य भली-भाँति श्रवण किया। उस संगति एवं श्रवण के प्रभाव से, उसके सभी पाप नष्ट हो गये। तब उसने अत्यन्त व्याकुल होकर उन ब्राह्मणों से हाथ जोड़कर यह कहा—"हे प्रभो ! मैं महापापी हूँ। आप लोग मुझे अपना सेवक जानकर भवसागर से पार लगा दीजिये। मैंने करोड़ों पाप किये हैं तथा सहस्त्रों ब्राह्मणों को कष्ट पहुँचाया है। अब आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा करें जिससे मेरे सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाएं।" इस प्रकार कहकर वह उन भक्तों के चरणों पर गिर पड़ा। यह देखकर उन ब्राह्मणों ने 'धन्य-धन्य' कहते हुए उत्तर दिया—"हे असमचित्त ! तुम्हारा परम सौभाग्य है, जो तुम यहाँ आ पहुँचे हो। तुम्हें उचित है कि तुम गंगा के तट पर, महागिरि पर स्थित शिवजी के मन्दिर में जाओ और वहाँ भगवान् सदाशिव का पूजन एवं जप करो। ऐसा करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाएंगे।"

हे नारद ! ब्राह्मणों के मुख से यह वचन सुनकर असमचित्त उस मन्दिर में जा पहुँचा तथा भगवान् सदाशिव का पूजन करके, उनके नाम का जप करने लगा। इस प्रकार सात दिन-रात तक वह शिवजी का जप करता रहा। तब भगवान् भूतभावन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे अपना दर्शन देते हुए यह कहा—"हे असमचित्त ! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हमसे माँग लो।" शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर असमचित्त ने उनके चरणों पर गिरते हुए दण्डवत् प्रणाम की तथा बहुत प्रकार की स्तुति की। तब शिवजी ने उसकी अभिलाषा को समझकर उसे सम्पूर्ण विद्याएँ प्रदान कीं, जिससे असमचित्त परम विद्वान् होकर शिवजी के तत्त्व तथा स्वरूप को पहचानकर, उनकी स्तुति करने लगा। उस समय शिवजी प्रसन्न होकर बोले—"हे असमचित्त ! तुम हमारा गण बनकर, विमान

पर चढ़ो और कैलाश पर्वत पर निवास करो। आज से तुम्हारा नाम नील होगा तथा हम नीलेश्वर होकर इस स्थान पर विराजमान रहेंगे। यह पर्वत भी नील पर्वत के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा तथा इसका स्मरण करने मात्र से ही सबको सुख मिलेगा। गंगा के तट पर जो कुण्ड है, उसमें स्नान करने से मनुष्य को हमारे स्वरूप की प्राप्ति होगी। यह नील पर्वत तथा नीलेश्वर लिङ्ग सब प्राणियों को अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले तथा सब प्रकार के दुःखों को दूर करने वाले होंगे।''

तभी से वह स्थान अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसे देखने मात्र से ही महापापी मनुष्य भी सम्पूर्ण पापों से रहित होकर, पवित्र हो जाता है। जिस प्रकार असमचित्त नामक पतित ब्राह्मण नील का स्वरूप धारण कर, शिवपुर को प्राप्त हुआ और शिवजी का गण बना ; उसी प्रकार अन्य बहुत-से लोगों ने भी शिवजी का नाम जपकर, परम पद को प्राप्त किया है।''

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! पंचाक्षर मंत्र परम श्रेष्ठ है तथा इसकी महिमा अनन्त है। इस मंत्र का जप करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा सहस्त्रों पाप नष्ट हो जाते हैं। वेदों ने भी इस मंत्र द्वारा सिद्धि प्राप्त की है। सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् सदाशिव इस मंत्र में सदैव स्थित रहते हैं। जो मनुष्य संसारी सुखों में लिप्त होकर अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं, उनके कल्याण के हेतु भगवान् सदाशिव ने इस मंत्र को प्रकट किया है।

हे नारद ! यह पंचाक्षरी मंत्र पापों के समुद्र को बड़वाग्नि के समान तथा दोषों को नष्ट करने में अग्नि के समान है। सभी मनुष्य इसके अधिकारी हैं।

हे नारद ! ब्राह्मण से बढ़कर सद्गुरु अन्य कोई नहीं है ; क्योंकि

अन्य सभी वर्ण ब्राह्मण के शिष्य कहलाते हैं। गृहस्थ मनुष्य को उचित है कि अपने से नीच वर्ण वाले को अपना गुरु कभी न बनावे, अन्यथा उसे बड़ा पाप लगता है। मंत्र की महिमा के सम्बन्ध में हम तुम्हें एक इतिहास सुनाते हैं, जो अत्यन्त पवित्र तथा पापों को नष्ट करने वाला है।

हे नारद ! यदुवंश में दाशार्ह नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ। वह सब शास्त्रों में पंडित, महान् योद्धा, परमवीर, धर्मात्मा, संतोषी, शत्रु-विजय, सुन्दर, शीलवान्, युद्ध में चतुर तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला था। उसने काशी के राजा की पुत्री कलावती के साथ अपना विवाह किया। वह स्त्री भी परम सुन्दरी तथा पतिव्रता थी। एक दिन राजा दाशार्ह ने अन्तःपुर में पहुँचकर अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत अपनी पत्नी के साथ मैथुन करना चाहा। परन्तु कलावती ने उसे ऐसा करने से मना किया। यह देखकर राजा ने उससे बलपूर्वक भोग करने की इच्छा प्रकट की। तब कलावती ने हाथ जोड़कर विनय करते हुए कहा—"हे राजन् ! आप मुझे स्पर्श न करें; क्योंकि आप धर्म तथा अधर्म को जानने वाले हैं। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि यदि शीघ्रता में कोई कार्य किया जाता है तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। मैं इस समय व्रत धारण किये हुए हूँ। हे राजन् ! वेद का कथन है कि छः प्रकार की स्त्रियों से भोग करना उचित नहीं है। पहली उस स्त्री से, जो अपने पति से प्रेम न करती हो। दूसरी उससे, जो रोगिणी हो। तीसरी वह, जो गर्भवती हो। चौथी वह, जो किसी व्रत अथवा नियम-संयम को धारण किये हुए हो। पाँचवी वह, जो कामदेव से रहित हो अर्थात् नपुंसिका हो। छठी वह जो मासिक धर्म में हो। अस्तु, मैं इस समय व्रत में हूँ, सो आप मेरा व्रत भंग करने वाला कार्य न करें।"

हे नारद ! इस प्रकार कलावती ने राजा को बहुत कुछ समझाया, परन्तु काम के वशीभूत होने के कारण राजा ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया तथा उसके साथ बलपूर्वक भोग किया। भला, संसार में ऐसा

कौन-सा प्राणी है, जो कामदेव पर विजय प्राप्त कर सके? अस्तु, भोग करने के उपरान्त राजा का हृदय अकस्मात् जलने लगा। तब वह घबरा कर अपनी रानी से इस प्रकार बोला—"हे प्रिये ! मुझे भोग करने की और अधिक इच्छा थी, परन्तु यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि तुम ऐसा कोमलांगी होते हुए भी कठोर क्यों कर हो? तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर अग्नि के समान प्रज्वलित हो रहा है। जिस समय मैं तुम्हें अपने हृदय से लगाता हूँ, उस समय मेरा सम्पूर्ण शरीर जलने लगता है।"

हे नारद ! राजा के ऐसे वचन सुनकर रानी ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हे स्वामिन् ! मैं आपको इसका कारण बताती हूँ। एक बार दुर्वासा ऋषि मेरे पिता के घर पधारे थे। मैं उन दिनों छोटी थी। उस समय दुर्वासा ने शुभ घड़ी में मुझे शिवजी के पंचाक्षर मंत्र का उपदेश दिया तथा अन्य अनेक मंत्र भी दिये। उनके कारण मेरा शरीर निष्पाप हो गया है। आपने राज्य के मद में व्यभिचारिणी स्त्रियों तथा मद्यपान करने वाली स्त्रियों के साथ भोग किया है। आप न तो प्रतिदिन स्नान करते हैं और न कभी शिव-भक्तों का स्वरूप धारण कर पंचाक्षरी मंत्र का जप करते हुए शिवजी का पूजन ही करते हैं। यही कारण है कि मुझे स्पर्श करके आपका शरीर जलने लगा है।"

हे नारद ! रानी के मुख से यह वचन सुनकर, राजा ने अत्यन्त आश्चर्य में भरकर कहा—"हे प्रिये ! तुम मुझे भी वह मंत्र बता दो, जिसका तप करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। यथेच्छित भोग किये बिना मुझे प्रसन्नता नहीं मिल सकेगी। अस्तु मुझे यह सुख प्रदान करने के अतिरिक्त, उचित है कि तुम मुझे भी निष्पाप बना देने का प्रयत्न करो।" यह सुनकर रानी ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! मैं आपकी पत्नी तथा स्त्री हूँ। अतः आपको चाहिए कि आप अपने पुरोहित गर्ग मुनि से मंत्र दीक्षा लें।" यह सुनकर राजा अपनी रानी को साथ ले गर्ग मुनि की सेवा में जा पहुँचा और उन्हें दण्डवत् करने के उपरान्त इस प्रकार प्रार्थना करने लगा—"हे प्रभो ! आप मुझे मंत्र का उपदेश कर कृतार्थ कीजिये।" राजा की प्रार्थना सुनकर गर्ग मुनि उन

दोनों को साथ लेकर यमुना जी के तट पर जा पहुँचे। वहाँ सब उचित क्रियाओं को सम्पन्न कराने के उपरान्त उन्होंने राजा को पंचाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया।

हे नारद ! उस मंत्र का उपदेश प्राप्त करते ही राजा के मुख से सम्पूर्ण पाप अपने-आप निकलने लगे, जब राजा ने गर्ग जी से प्रार्थना करते हुए यह, पूछा—"हे प्रभो ! आप मुझे इस चरित्र का कारण बताइये कि मेरे मुख से अग्नि क्यों निकली है?" गर्ग जी ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! तुम्हें बड़े-बड़े पाप करते हुए सैंकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये। जब तुम्हारे पुण्य और पाप बराबर हुए, तब तुमने इस जन्म में मनुष्य शरीर को प्राप्त किया है। अब शिवजी का मंत्र ग्रहण करने के कारण तुम्हारे पापी हृदय से सभी छोटे-बड़े पाप जलते हुए पत्थरों के समान मुख से बाहर निकल पड़े हैं। अस्तु, अब तुम निष्पाप हो गये हो।"

हे नारद ! राजा को यह बताने के उपरान्त गर्ग जी ने पंचाक्षरी मंत्र की महिमा का वर्णन करते हुए पुनः इस प्रकार कहा—"हे राजन् ! यह मंत्र अन्य सभी मंत्रों का सम्राट् है तथा शिवजी का परम प्रिय है। यह सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाला तथा दोनों लोकों में पापों को नष्ट करने वाला है। शिवजी इस मंत्र में अक्षर रूप से विराजमान हैं। यह मंत्र उनके मुख्य वचन के समान है। अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस पंचाक्षरी मंत्र का जप करने से शिवजी की प्राप्ति अवश्य होती है।"

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! पंचाक्षरी मंत्र की महिमा का वर्णन कर, गर्ग मुनि प्रेम में मग्न हो गये। राजा तथा रानी भी इस महिमा को सुनकर आनन्द रूपी समुद्र में डूबने लगे। जब गर्ग जी की चैतन्यता प्राप्त हुई तो वे राजा दाशार्ह से बोले—"हे राजन् ! अब तुम पापों से रहित हो चुके। अस्तु, अपनी राजधानी को लौट जाओ। वहाँ पर अपनी पत्नी के साथ यथेच्छ आनन्द लाभ करना।" इस आज्ञा को पाकर राजा दाशार्ह अपने घर लौट आया।

तदुपरान्त जब उसने अपनी रानी के साथ मैथुन किया तो रानी का शरीर चन्दन के समान शीतल प्रतीत हुआ। इस कथा को जो मनुष्य सुनता, पढ़ता अथवा दूसरों को सुनाता है, उसका भी अत्यन्त कल्याण होता है।''

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! अब मैं भस्म के माहात्म्य का वर्णन करता हूँ। भस्म दो प्रकार की होती है—१. महाभस्म, २. स्वल्पभस्म। महाभस्म शिवजी का मुख्य स्वरूप है एवं स्वल्पभस्म की अनेक शाखाएं हैं। उनमें १. श्रौत, २. स्मार्त, ३. लौकिक—ये तीन अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जो भस्म वेद की रीति से धारण की जाती है, उसे श्रौत कहा जाता है। जो भस्म स्मृति अथवा पुराणों की रीति से धारण की जाती है उसे स्मार्त कहते हैं तथा जो भस्म संसारी अग्नि से उत्पन्न होती है और धारण की जाती है, उसे लौकिक कहा जाता है। पहले तथा दूसरे प्रकार की भस्म केवल ब्राह्मणों को ही धारण करनी चाहिए तथा तीसरे प्रकार की भस्म को सब वर्णों को अपने शरीर पर लगाना चाहिए। ब्राह्मणों को उचित है कि वे वेद-मंत्र का उच्चारण करते हुए भस्म धारण करें, परन्तु और वर्णों को शिवजी का नाम लेकर ही भस्म धारण करनी चाहिएं।

हे नारद ! मैं, विष्णु तथा अन्य सभी देवता, उपदेवता आदि भस्म लगाते हैं। योगी, सिद्ध, नाग आदि में ऐसा कोई भी नहीं है, जो भस्म न लगाता हो। वेद का कथन है कि बिना भस्म धारण किये सब प्रकार के आचार तथा पूजन निष्फल होते हैं। भस्म लगाये बिना वेद के मंत्र का जप करना अत्यन्त अनुचित है ; क्योंकि ऐसे मनुष्यों पर न तो शिवजी कृपा करते हैं और न उनका कोई कार्य ही सिद्ध होता है। भस्म का माहात्म्य अनादि तथा अनन्त है। उसका किसी भी प्रकार वर्णन

नहीं किया जा सकता है। सब लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार ही उसका वर्णन करते रहते हैं।

हे नारद ! भस्म को धारण करने में कुछ और वर्ण का विचार नहीं होता। भस्म धारण करने वाले मनुष्य को तीर्थ के समान समझना चाहिए। जिस स्थान पर भस्म धारण करने वाले बहुत-से मनुष्य रहते हैं, वहाँ यज्ञ आदि शुभ कर्म अधिकता से होते हैं। ऐसे पुरुष, जप, तप तथा व्रतों के शुभ फलों को प्राप्त करते हैं। भस्म धारण करने वालों को सम्पूर्ण विद्याओं का निधान समझना चाहिए, मानो उन्होंने सभी पुण्य-कर्म कर लिये हों। जो मनुष्य भस्म धारण करने वाले की निन्दा करता है अथवा उसे डराता-धमकाता है, वह अपने जन्म को निष्फल कर लेता है।

हे नारद ! पुरुष, स्त्री, वृद्ध, तरुण, बालक आदि सभी लोग भस्म को धारण कर सकते हैं। भस्म धारण करने वाले को अधिक पवित्रता की आवश्यकता नहीं है। जो मनुष्य त्रिपुण्ड एवं भस्म के सम्मान की रक्षा करते हैं, उन्हें शिवजी का भक्त समझना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि जब तक वह भस्म को धारण न कर ले, तब तक न तो पानी पिये और न भोजन करें, क्योंकि भस्म का त्याग करने वाला मनुष्य नरक में पड़ता है। जिस ललाट पर भस्म न लगी हो, उसे धिक्कार है। जिस गाँव में कोई शिव मन्दिर न हो, उसे भी धिक्कार है। उस जन्म को भी धिक्कार है। जिसे पाकर शिवजी का पूजन न किया जाए तथा उस विद्या को भी धिक्कार है, जिसके द्वारा किसी को लाभ न हो।

हे नारद ! सभी देवता भस्म तथा त्रिपुण्ड के उपासक हैं। जो मनुष्य वेद की शिक्षा देने वाला हो अथवा यज्ञ कराने वाला हो, उसे उचित है कि प्रतिदिन भस्म तथा त्रिपुण्ड धारण करे। जो मनुष्य चाण्डाल हो, परन्तु भस्म धारण करता हो, तो वह भी शुद्ध हो जाता है। जो मनुष्य प्रतिदिन भस्म लगाता है, वह अत्यन्त पवित्र है। गंगा आदि सभी तीर्थ उसके शरीर में सदैव निवास करते हैं और उसके दोनों ओर के कुल

मोक्ष को प्राप्त होते हैं। भस्म धारण करने वाला मनुष्य संसारी सुखों को पाकर, अन्त में मोक्ष को पाता है। सर्वप्रथम वह सब लोकों में भ्रमण कर, मेरे लोक में आता है और एक सहस्त्र वर्ष तक मेरे ब्रह्म लोक में निवास करने के उपरान्त विष्णु लोक को जाता है।

हे नारद ! वेद, पुराण तथा उपनिषद् सबका यही सार है जो मैंने तुम्हें बताया है। सम्पूर्ण देवता, मुनि, सिद्ध आदि भी यही कहते हैं। जो लोग भस्म की निन्दा करते हैं, वे करोड़ों पापों से युक्त होकर, बहुत समय तक नरक में निवास करते हैं। गंगा आदि नदियों में स्नान करने का फल भी भस्म से अधिक श्रेष्ठ नहीं है। भस्म तीनों लोकों को पवित्र करने वाली है। भस्म को शिवजी का ही स्वरूप समझना चाहिए। भस्म धारण किये बिना यज्ञ, तीर्थ, व्रत, दान, ध्यान, सभी निष्फल हैं। जिसने भस्म को धारण नहीं किया, वह संसार में व्यर्थ ही उत्पन्न हुआ है।

हे नारद ! भस्म लगाने वाले को तार स्वरूप शिवजी का ध्यान करना उचित है। वह तार स्वरूप दो प्रकार का है—१. सूक्ष्म तथा २. स्थूल। इसका तात्पर्य एक अक्षर तथा पाँच अक्षर है। भस्म तीन प्रकार की होती है, जिसे पहले कहा जा चुका है। कुछ लोग उसका १. वेद, २. शिवानल ३. भव, इन तीन प्रकारों से भी वर्णन करते हैं। इन प्रकारों में अघोर मंत्र मुख्य है। अस्तु, अघोर मंत्र द्वारा भस्म धारण करने पर यह उचित है कि शुद्ध लकड़ी को जला कर जो भस्म बने, उसे धारण करना चाहिए। भस्म बनाने का श्रेष्ठ नियम यह है कि बेल, पलाश, शमी, वट तथा पीपल की लकड़ी को भस्म के निमित्त जलाये। इसके अतिरिक्त दारू, लोहा, मिट्टी, काँसा, चाँदी आदि धातुओं की बनाई हुई तथा जो अन्न हवन के कार्य में लगाया जाता है, उसके द्वारा बनाई हुई भस्म भी अत्यन्त पवित्र होती है।

हे नारद ! भस्म धारण करने की विधि बताता हूँ। त्रिपुण्ड शब्द से तीन रेखाओं का बोध होता है। उन रेखाओं में एक-एक देवता विराजमान रहते हैं। भृकुटि से दोनों भौंहों के अन्त तक त्रिपुण्ड लगाना उचित है। पहली रेखा मध्यमा से, दूसरी अनामिका से और तीसरी

कनिष्ठिका से खींचे। बीच में अँगूठे से भस्म लगाये। इस प्रकार सत्ताईस स्थानों पर रेखा लगावें। उनमें एक-एक देवता निवास करते हैं। प्रणवाक्ष, शुचि, आत्म, लोक, श्रुतिगण, शुक्ति, सवन तथा देवौक, इतने प्रकार के सब देवता हैं। मनुष्य को उचित है कि प्रत्येक रेखा को जिससे जो देवता सम्बन्धित हो, दण्डवत् करता हुआ त्रिपुण्ड लगावें। ऐसा करने से मुक्ति प्राप्त होती है।

हे नारद ! सिर, ललाट, कर्ण, नेत्र, नासिका, मुख, कंठ, भुजा, उदर, हाथ, छाती, पंजर, नाभि, मुश्क, त्रिबली, दोनों जाँघों के मध्य का भाग तथा चरण यह सब बत्तीस स्थान हैं। आठ वसु, सात दिग्घेश, आठ दिक्पाल तथा आठों इन्द्र के नाम लेकर इन स्थानों पर त्रिपुण्ड लगावें। सिर, ललाट, कण्ठ, अंश, भुजा, उदर, हाथ, स्तन, नाभि, पंजर तथा पीठ—ये सोलह स्थान हैं। इनके देवताओं के नाम इस प्रकार हैं—"शिवभक्त, नाद, ईशान, वेदसूत्र तथा नवदश्र अर्थात् इन्द्र—इनके नाम लेकर उपर्युक्त स्थानों में त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ब्रह्मरंध्र, सिर, भुजा, ललाट, कंठ, स्तन, नाभि, त्रिबली, हाथ, पीठ तथा उदर—ये सोलह स्थान हैं। इनमें परमशिव, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, गुरु, रुद्र, सूर्य, द्विजेश, वाम, मरुत्, वसु, हर तथा हरदेव को दंडवत् करके त्रिपुण्ड लगाना चाहिए। सिर, ललाट, दोनों कान, दोनों कन्धे, हृदय तथा नाभि—ये आठ स्थान हैं। इनमें ब्रह्मा तथा सप्तर्षियों को दण्डवत् करके त्रिपुण्ड लगाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सिर, भुजा, नाभि तथा हृदय ये पाँच स्थान हैं—इनमें पाँच देवताओं को दण्डवत् करके त्रिपुण्ड लगाना उचित है।

ॐ ॐ ॐ

सातवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! आपने भस्म धारण करने की विधि तो बतलायी। अब कृपा करके कोई ऐसा

इतिहास बताइये जिसमें भस्म के प्रभाव से किसी पापी के मुक्त होने का वृत्तान्त हो।'' ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! वामदेव नामक एक शिव भक्त काम, क्रोध, मोह, लोभ, आदि से रहित थे। वे सबको सम दृष्टि से देखते, किसी से कोई वस्तु नहीं लेते तथा सदैव मौन धारण कर, शिवजी का स्मरण करते हुए संसार में भ्रमण किया करते थे। वे भस्म धारण करते तथा प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न रहते थे। उनकी परमहंस गति को देखकर सब लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते थे।

हे नारद ! एक दिन वे क्रौंचारण्य नामक वन में पहुँचे। उस वन में केवल भूत-प्रेत रहते थे। वहीं एक अत्यन्त भयानक ब्रह्म राक्षस भी रहता था। कोई भी मनुष्य भय के कारण वहाँ नहीं जाता था। वह ब्रह्मराक्षस अपने पापों के कारण बहुत दिनों का भूखा-प्यास था। अस्तु, जब उसने वामदेव को वहाँ आते हुए देखा, तो उन्हें खाने के लिए दौड़ पड़ा, परन्तु मुनि को कोई भय नहीं हुआ। वे चुपचाप अपने स्थान पर खड़े रहे। यह देखकर ब्रह्मराक्षस उनके शरीर से लिपट गया और यह अभिलाषा करने लगा कि मैं उन्हें अपनी दोनों भुजाओं से उठाकर एक ही ग्रास में खा जाऊँ। परन्तु जिस प्रकार चिन्तामणि का स्पर्श करने से लोहा सोना बन जाता है उसी प्रकार शिव भक्त वामदेव के शरीर का स्पर्श करते ही उस राक्षस के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये और वह शुद्ध हो गया। शिवजी की महिमा को देखो, जो राक्षस वामदेव को भक्षण करने के लिए आया था, वही आनन्दित हो, उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। वामदेव के शरीर में जो भस्म लगी हुई थी, वह उस ब्रह्मराक्षस के भी लग गयी, इसीलिए ऐसा परिवर्तन हुआ।

हे नारद ! तब वह ब्रह्मराक्षस वामदेव के चरणों पर गिरकर हाथ जोड़, प्रणाम करता हुआ बोला—''हे प्रभो ! आपका स्पर्श करने से मुझे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ है। अब आप कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये। हे स्वामिन् ! यदि आप मुझ पर अनुग्रह करेंगे तो मैं इस अधम शरीर से भी मुक्ति प्राप्त करूँगा।'' यह सुनकर वामदेव बोला—''हे

राक्षस ! तुम किस पाप के कारण ब्रह्मराक्षस हुए, वह वृत्तान्त मुझे सुनाओ। इस भयानक शरीर को पाकर भूख-प्यास से तुम अत्यन्त व्याकुल रहते हो, यह मैं देख रहा हूँ।

हे नारद ! वामदेव के यह वचन सुनकर वह ब्रह्मराक्षस दंडवत् करता हुआ बोला—"हे प्रभो ! मैं इस जन्म से पूर्व पच्चीसवें जन्म में यवन देश का राजा था। उस समय मेरा नाम दुर्जन था। मैं अत्यन्त पापी, अहंकारी, क्रोधी तथा बुद्धिहीन था। मैंने वेद-शास्त्रों का निरादर करते हुए गर्भवती स्त्रियों के साथ भोग किया। इसके अतिरिक्त जो स्त्रियाँ भोग करने योग्य थीं, उन्हें मैंने अपने बन्दीगृह में डाले रखा।

हे स्वामिन् ! मैं पर-स्त्रियों से भोग-विलास में मगन रहा, परन्तु अपनी स्त्री के साथ कभी मैथुन नहीं किया। एक बार मेरे शत्रुओं ने मुझे दुर्बल, जानकर चढ़ाई कर दी और मुझे राज्य से च्युत कर दिया। बुद्धिमान् मंत्री भी घृणापूर्वक मेरा साथ छोड़कर चले गये। उसी शोक में मेरी मृत्यु भी हो गयी। जब यमराज के गण मुझे पकड़कर यमपुरी में ले गये, तब यम की आज्ञानुसार उन्होंने मुझे रुधिर के कुएँ में डाल दिया। तदुपरान्त मुझे पिशाच का जन्म प्राप्त हुआ। एक महाभयानक वन में, जहाँ कोई भी प्राणी न था, यमराज ने मुझे जन्म दिया। वहाँ मैं एक सौ वर्षों तथा भूख-प्यास से व्याकुल रहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। फिर मुझे तीसरे जन्म में सिंह, चौथे में अजगर, पाँचवें में बिच्छू, छठे में सूअर, सातवें में गर्ग, आठवें में श्वान, नवें में फेरू, दसवें में बैल, ग्यारहवें में हिरण, बारहवें में बन्दर, तेहरवें में भैंसा, चौदहवें में नेवला, पन्द्रहवें में कौआ, सोलहवें में खच्चर, सत्रहवें में गदहा, अठाहरवें में बिल्ली, उन्नीसवें में बकरी, बीसवें में मछली, इक्कीसवें में चूहा, बाईसवें में मेढ़क, तीसवें में घुग्घू तथा चौबीसवें जन्म में हाथी का शरीर प्राप्त हुआ।

हे ब्रह्मन् ! यह जो आप मेरा ब्रह्मराक्षस का शरीर देख रहे हैं, सो मेरा पच्चीसवाँ जन्म है। इस शरीर को पाकर मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। मुझे

खाने के लिए कुछ नहीं मिलता और मैं अपने पापों का स्मरण करता हुआ, दिन-रात रोता रहता हूँ। न जाने मैंने ऐसा कौन-सा जप, तप, योग्य, तीर्थ अथवा व्रत किया था, जिससे मैं इस शुभ गति को प्राप्त हुआ और आपने यहाँ आकर मुझ सरीखे पापी को दर्शन दिये हैं? हे नाथ ! मैं समझता हूँ कि अब मेरे अच्छे दिन आ गए हैं। अस्तु, आप मेरे ऊपर विशेष अनुग्रह कर मेरा दुःख दूर कर दें।'' इतना कहकर वह ब्रह्मराक्षस हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! ब्रह्मराक्षस की बात सुनकर वामदेव ने उत्तर दिया—''हे राक्षस ! यह सब भस्म की महिमा है। मेरे शरीर में जो भस्म लगी हुई है, उसका स्पर्श तुमने पाया है, इसलिए तुम्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ है और तुम्हारे पूर्व जन्म के सभी पाप नष्ट हो गए हैं। जिस प्रकार शिवजी के इन चरित्रों का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार भस्म की महिमा भी अवर्णनीय है। इस सम्बन्ध में हम तुम्हें एक इतिहास सुनाते हैं।

हे ब्रह्मराक्षस ! प्राचीन समय में एक ब्राह्मण गौड़ देश में रहता था। वह महापापी, अधर्मी, चोर, मिथ्यावादी तथा पर स्त्री गामी था। एक दिन वह ब्राह्मण एक शूद्र के घर उसकी स्त्री से भोग करने के लिए गया। उस समय शूद्र ने उसे कुकर्म करते हुए देख लिया और क्रोध में भरकर मार डाला। तदुपरान्त उसने उसके शरीर को अपने घर से बाहर फेंक दिया। प्रातःकाल होने पर उसके मृत-शरीर में किसी प्रकार भस्म उड़कर लग गयी, जिससे उसके मस्तक, भुजा तथा हृदय पर रेखाएँ पड़ गयीं। अस्तु, जब उसे लेने के लिए यमराज के गण पहुँचे तो उसी समय शिवजी के गणों ने भी वहाँ पहुँचकर यमदूतों को भगा दिया और स्वयं उस पापी ब्राह्मण को विमान पर चढ़ाकर, शिवजी के पास ले चले। तब यमराज स्वयं शिवगणों के समीप पहुँचकर यह पूछने

लगे—"हे शिवगणो ! तुम इस महापापी ब्राह्मण को हमारे दूतों के हाथ से छुड़ाकर क्यों ले जा रहे हो? हमें अत्यन्त आश्चर्य है कि जिस ब्राह्मण ने चोरी तथा व्यभिचार जैसे कुकर्म किये और अन्त में ऐसी बुरी मृत्यु को प्राप्त हुआ, वह शिवलोक को किस प्रकार जा रहा है?" यमराज की बात सुनकर शिवगणों ने उत्तर दिया—"हे यमराज ! अब यह ब्राह्मण निष्पाप हो चुका है ; क्योंकि इसके मस्तक, भुजा तथा हृदय में भस्म लग गयी है। भस्म लगने के कारण ही हम इसे भगवान् सदाशिव की आज्ञानुसार शिवपुरी में ले जा रहे हैं।" इस प्रकार यमराज से कहकर शिवजी के गण उस पापी ब्राह्मण को शिवजी के समीप ले पहुँचे। वहाँ वह शिवजी की सेवा में संलग्न रहकर सुख पूर्वक निवास करने लगा।"

यह वृत्तान्त सुनाकर वामदेव ने कहा—"हे ब्रह्मराक्षस ! भस्म को शिवजी के वस्त्र तथा आभूषण के समान समझना चाहिए। सभी देवता तथा ऋषि-मुनि सदैव भस्म धारण किये रहते हैं। अस्तु, तुम्हारी पाप मुक्ति का कारण इस भस्म का प्रभाव ही है।"

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! भस्म के माहात्म्य को सुनकर जब ब्रह्मराक्षस के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये, तब उसने वामदेव के चरणों पर गिरते हुए, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"हे प्रभो ! मेरे धन्य भाग्य हैं—जो मुझे आज आपके दर्शन मिले। अब आप कृपापूर्वक मुझे इस जन्म से मुक्त कर दीजिये। एक बात आप और भी सुनिये, जो अब मुझे याद आयी है। वह बात यह है कि मैं जिस जन्म में राजा था, उस समय मैंने एक ब्राह्मण को थोड़ी-सी पृथ्वी दान में दी थी। अस्तु, मृत्यु के उपरान्त जब मैं यमलोक में पहुँचा, तब यमराज ने मुझसे यह कहा था कि यद्यपि तूने महान् पाप किये हैं, फिर भी तूने ब्राह्मण को पृथ्वी दान देकर जो एक पुण्य किया है, उसके प्रभाव से पच्चीसवें जन्म में तेरी भेंट एक योगी से होगी। उनकी कृपा से तेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जावेंगे और तू मुक्ति प्राप्त करेगा। हे प्रभो ! मैं समझता हूँ कि यमराज ने जो समय बतलाया था,

वह अब आ पहुँचा है। हे नाथ ! मैंने पहले जन्म में महान् पाप करने के कारण पिछले अनेक जन्मों में अनेक प्रकार के दुःख उठाये हैं। आप जैसे परोपकारी मनुष्यों को कल्पवृक्ष के समान कहा जाता है, क्योंकि वे स्वयं तो निष्पाप होते ही हैं, दूसरों के पापों को भी अपनी दया से नष्ट करते रहते हैं।'' इतना कहकर वह ब्रह्मराक्षस अपना मस्तक नीचा किये हुए हाथ जोड़कर वामदेव के समीप खड़ा हो गया।

हे नारद ! उसकी बात सुनकर वामदेव ने अत्यन्त प्रसन्न हो, शिव-गिरिजा का स्मरण किया। तदुपरान्त उन्होंने अपनी झोली में से थोड़ी-सी भस्म निकालकर, उसके मस्तक पर त्रिपुण्ड लगाया तथा अन्य अंगों में भी भस्म लगायी। उस भस्म के लगते ही ब्रह्मराक्षस के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये और वह अत्यन्त पवित्र हो गया। उसका शरीर भी पहले जन्म के समान अत्यन्त सुन्दर एवं तेजस्वी हो गया। उसी समय आकाश में एक विमान आया। जिसमें बैठे हुए शिवगण उस राक्षस रूपी राजा को अपने साथ बैठाकर, शिवपुरी को ले गये। वहाँ पहुँचकर वह शिवगणों में सम्मिलित हो गया। हे नारद ! भस्म की ऐसी महान् महिमा है। जो मनुष्य भस्म के इस माहात्म्य को पढ़ता, सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है, उसे दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है।''

नौवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी बोले—''हे पिता ! आपने मुझे अत्यन्त श्रेष्ठ आख्यान सुनाया। अब मैं आपसे एक अन्य बात पूछता हूँ। जो मनुष्य वेद के जानने वाले तथा परम ज्ञानी हैं, उन्हीं को गुरु बनाने से और उन्हीं से उपदेश लेने पर भगवान् सदाशिव प्रसन्न होते हैं तथा सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि होती है अथवा अन्य लोगों से उपदेश लेकर भी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

इतनी कथा सुनकर श्री सूत जी ने कहा—''हे शौनकादि ऋषियो !

नारद जी के इस प्रश्न को सुनकर ब्रह्मा जी ने उनकी अत्यन्त प्रशंसा की तदुपरान्त उत्तर दिया—''हे पुत्र ! श्रद्धा ही सम्पूर्ण मनोरथों को पूरा करने वाली तथा सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली है। श्रद्धालु होने पर नीच लोगों पर भी देवता कृपा किया करते हैं। बिना श्रद्धा के सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं। जप, तप, यज्ञ, हवन, मंत्र, तंत्र, पूजन, स्मरण, ध्यान आदि सभी कार्य श्रद्धा के बिना व्यर्थ हैं। भगवान् सदाशिव ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है कि सुख-दुःख और पाप-पुण्य की प्राप्ति भावना के ही कारण होती है। बिना श्रद्धा के किये हुए सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। इस विषय में एक आख्यान मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

हे नारद ! प्राचीन समय में सिंहकेतु नामक एक राजा पांचाल देश में राज्य करता था। वह सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त शिवजी का परम भक्त था। एक दिन वह श्रेष्ठ सैनिकों को साथ लेकर, शिकार खेलने के लिए वन में गया। उसके साथ ही एक शबर जाति का शंकर नामक मनुष्य भी था। वन में जाकर उसने एक शिवालय देखा, जिसमें एक टूटी-फूटी शिला अर्घे से बाहर पड़ी हुई थी। शंकर ने उस शिवलिंग को अत्यन्त प्रेमपूर्वक अपने हाथों से उठा लिया तथा राजा के समीप पहुँचकर उसे दिखाते हुए इस प्रकार बोला—''हे प्रभो ! मैं इस शिवलिंग का पूजन करना चाहता हूँ। अस्तु आप मुझे पूजन की विधि बता देने की कृपा करें। हे नाथ ! यद्यपि मैं नीच जाति का हूँ, परन्तु मैंने यह सुना है कि नीचों को भी भगवान् सदाशिव के पूजन एवं ध्यान का अधिकार प्राप्त है। इसलिए आप मेरी कामना को भी पूर्ण करने की कृपा करें।''

हे नारद ! यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया—''हे निषाद ! मैं तुम्हें शिवपूजन की वह सरल रीति बताता हूँ, जिससे शिवजी शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। शिवलिंग का पूजन करने वाले मनुष्य को सर्वप्रथम स्नान करके, पवित्र वस्त्र धारण करने चाहिएं। तदुपरान्त पवित्र स्थान पर बैठकर, भस्म धारण करके, शिवजी को स्नान कराना चाहिए।

फिर चन्दन, अक्षत, पुष्प, बेलपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य अर्घ्य, आदि से शिवजी का पूजन करने के उपरान्त उनके सम्मुख नृत्य, गायन, स्तुति, प्रणाम करके गाल बजाना चाहिए तथा विधिपूर्वक प्रदक्षिणा करनी चाहिए। शिवजी को चिता की भस्म अत्यन्त प्रिय है। अतः उसे शरीर में धारण करने से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। शिवजी के पूजन की यह अत्यन्त सरल तथा सुगम रीति है सो तुम भी इसी प्रकार आचरण करो।''

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! यद्यपि राजा ने यह विधि हँसी में सुनायी थी, परन्तु शबर ने उसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सुना। तत्पश्चात् वह अपने घर लौट आया और उस शिवलिङ्ग का पूजन करने लगा। उसे जो वस्तु अच्छी लगती, उसका भोग सबसे पहले शिवजी को लगाता, तदुपरान्त स्वयं खाता था। वह अपनी स्त्री सहित शिवजी का पूजन करता और मूर्ति के सम्मुख नृत्य-गायन करता था। इस प्रकार जब उसे कुछ समय व्यतीत हो गया, तो शिवजी ने प्रसन्न होकर उसकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। एक दिन जब वह पूजन करने के लिए बैठा था, तो चिताभस्म, जो उसके समीप ही रखी थी, अचानक अदृश्य हो गयी। जब ढूँढने पर भी उसे वह भस्म कहीं दिखाई न दी तो उसने अत्यन्त आश्चर्य में भरकर अपनी स्त्री से कहा—''हे प्रिये ! मैंने भस्म को बहुत ढूँढा, परन्तु वह कहीं नहीं मिल रही है। इस प्रकार पूजा में विघ्न उपस्थित होने से मैं अत्यन्त दुःखी हूँ और यह अनुभव करता हूँ कि अब मेरा जीना भी व्यर्थ है।''

हे नारद ! अपने पति की ऐसी दशा देखकर उस स्त्री ने उत्तर दिया—''हे स्वामी ! आप अपने मन में इस प्रकार चिन्तित न हो। मैं उसी समय चिता जलाकर, अपने शरीर को भस्म किये देती हूँ। तब आप उस भस्म से अपना पूजन कीजिएगा।'' यह सुनकर शबर बोला—''हे प्रिये ! तुम्हारा शरीर मेरे विहार के लिए तथा चारों पदार्थों को प्राप्त करने के निमित्त है।'' यह सुनकर स्त्री बोली—''हे स्वामी ! मैंने सत्पुरुषों से यह सुना है कि यदि कोई मनुष्य पराये उपकार के

लिए अपना शरीर त्याग करे तो उसका जन्म सफल हो जाता है। अस्तु, शिवजी के कार्य में यदि मेरे शरीर का नाश हो तो इससे अधिक उत्तम और क्या होगा? सो आप मुझे ऐसा शुभ कर्म करने से न रोकें और अपने पूजन को विधिपूर्वक पूर्ण करें।''

हे नारद ! शबर ने अपनी स्त्री की इस बात को स्वीकार कर लिया। तब वह पवित्र हो, शिवजी का ध्यान धरती हुई, चिता में बैठ गयी और कुछ ही देर में जलकर भस्म हो गयी। तदुपरान्त शबर ने उसी भस्म को अपने शरीर में मलकर, शिवजी का पूजन किया। जब पूजन करते समय उसने प्रतिदिन के नियमानुसार अपने हाथ में प्रसाद लेकर पीठ की ओर बढ़ाया, तो एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी। वह घटना यह था कि शबर प्रतिदिन पूजन करके अपनी स्त्री को प्रसाद दिया करता था। अस्तु, नित्य के नियमानुसार उस दिन भी उसने अपने प्रसाद वाले हाथ को पीछे की ओर बढ़ाया ; क्योंकि उसे यह ध्यान नहीं रहा था कि उसकी पत्नी जलकर भस्म हो गयी है। परन्तु जिस समय उसका हाथ पीछे की ओर गया, उसी समय उसने देखा कि उसकी स्त्री, जो जलकर भस्म हो गयी थी, फिर से जीवित हो, पहले के समान ही वस्त्रादि से सुसज्जित होकर अपने मुख से शिव का नाम उच्चारण करती हुई उसके सामने चली आ रही है। जब वह स्त्री हाथ जोड़कर उसके सम्मुख आ बैठी, तब शबर ने आश्चर्यचकित होकर उससे पूछा—''अरी, तू तो भस्म हो गयी थी, तब जीवित किस प्रकार हो गयी?'' यह सुनकर पत्नी ने उत्तर दिया—''हे पति ! मैंने जिस समय अग्नि में प्रवेश किया तो मुझे कोई दुःख नहीं हुआ। ऐसा लगा, मानो मैं अमृत के कुण्ड में बैठ गयी होऊँ। तदुपरान्त जब मैं उसमें भस्म हो गयी तो किसी ने मुझे फिर जीवित कर दिया।''

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! जिस समय वे दोनों यह वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर, चार गणों सहित अपना विमान उनके पास भेज दिया। शिवजी के गणों ने वहाँ आकर शबर तथा शबरी को अत्यन्त स्नेहपूर्वक उस

विमान में बैठा लिया। [illegible] वे उन दोनों को शिवलोक में ले गये, जहाँ वे शिव स्वरूप को प्राप्त हो, आनन्दपूर्वक [illegible] करने लगे। हे नारद ! भस्म की ऐसी ही महिमा है। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक भस्म को धारण करता है तथा शिवजी के गणों का वर्णन करता है, उसे दोनों लोकों में आनन्द मिलता है।''

ॐ ॐ ॐ

दसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! मैंने आपसे यह सुना कि शिवजी को भस्म अत्यन्त प्रिय है। इससे बढ़कर श्रेष्ठ अन्य कोई भी वस्त्र तथा आभूषण नहीं है। अब मेरी इच्छा है कि आप मुझे भस्म का माहात्म्य सुनाने की कृपा करें तथा इस सम्बन्ध में कोई आख्यान भी कहें।''

यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! भस्म चारों पदार्थों को देने वाला है। जो मनुष्य इसे अपने शरीर में लगाता है, उसके सम्पूर्ण दुःख तथा शोक नष्ट हो जाते हैं। भस्म शारीरिक तथा हाद्रिक बल को बढ़ाकर, मृत्यु के समय भी अत्यन्त आनन्द प्राप्त करता है। इसके सम्बन्ध में, मैं तुम्हें एक आख्यान और सुनाता हूँ।''

हे नारद ! दशारण्य नामक देश में वज्रबाहु नामक एक राजा राज्य करता था। उसके असंख्य स्त्रियाँ थीं। भाग्यवश जब बड़ी रानी के गर्भ ठहरा तो अन्य स्त्रियों ने ईर्ष्या के वशीभूत हो, उसे विष पिला दिया। यद्यपि उसे बहुत कष्ट उठाने पड़े, परन्तु उपचार होने पर वह ठीक हो गयी। उस विष ने भी उसके उदर में पहुँचकर कोई हानि नहीं पहुँचायी। नियत समय पर उसने एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। यह देखकर उसकी सौतों को और अधिक ईर्ष्या होने लगी। परन्तु विष के प्रभाव से नवजात शिशु हर समय रोता रहता था तथा रानी भी पुत्र के जन्म के उपरान्त अत्यन्त व्याकुल होने लगी। उस राजा ने बड़े-बड़े

श्रेष्ठ वैद्यों को बुलाकर अनेक उपचार कराये, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ।

हे नारद ! कुछ समय तक इसी प्रकार क्रम चलता रहा। एक दिन राजा ने अत्यन्त दुःखी होकर अपने मन में यह विचार किया कि ये माता तथा पुत्र दोनों पूर्वजन्म के महापापी प्रतीत होते हैं, इसलिए उन्हें इस प्रकार दुःख भोगना पड़ रहा है। किसी शुभ कर्म के कारण ही ये मेरे यहाँ आये हैं, परन्तु अन्य पाप कर्मों के कारण दुःख भोग रहे हैं। इन्होंने अपने रोने-पीटने से मेरे आहार-विहार में भी विघ्न डाल रखा है। अस्तु, अब मुझे इन्हें अपने घर से निकाल देना चाहिए। यह विचारकर राजा ने अपने एक सेवक को यह आज्ञा दी कि तुम रानी को उसके पुत्र सहित रथ पर चढ़ाकर, वन में छोड़ आओ। तब वह राजा की आज्ञा से उन दोनों को वन में ले जाकर छोड़ आया। वहाँ रानी अपने पुत्र के साथ भूखी-प्यासी अत्यन्त व्याकुल हो, भ्रमण करने लगी। वन में उसे एक पगडंडी दिखाई दी। उसी पर चलती हुई वह एक अन्य नगर में जा पहुँची। उस नगर में पद्माकर नामक एक वैश्य राज्य करता था। उस राजा की दासी ने जब उस रानी को देखा तो वह अपने हृदय में अत्यन्त चिन्तित हुई। तदुपरान्त वह उस पर कृपा कर के राजा पद्माकर के पास ले पहुँची। पद्माकर ने जब रानी को दुःखी देखा और उसके मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना, तो दया करके उसे अपने मुख्य मन्दिर में ठहरा दिया और माता के समान समझकर, उसकी अत्यन्त सेवा करने लगा।

हे नारद ! पद्माकर उसे श्रेष्ठ भोजन से सदैव प्रसन्न रखता था। उपचार के हेतु उसने श्रेष्ठ वैद्यों का भी प्रबन्ध कर दिया। परन्तु इतना सब होने पर भी उस रानी के बालक को कोई लाभ नहीं पहुँचा तथा कुछ दिन जीवित रहने के पश्चात् वह विष के प्रभाव से मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस समय रानी ने अत्यन्त विलाप किया। यद्यपि अन्य स्त्रियों ने उसे बहुत कुछ सान्त्वना दी, परन्तु वह किसी भी प्रकार धैर्य धारण न कर सकी। अपने पुत्र की याद में वह अत्यन्त शोक करने लगी। उसी

समय भाग्यवश ऋष्य नामक शिवजी का ... वहाँ आ पहुँचा। उसने भी रानी को बहुत प्रकार से समझाते हुए धीरज बँधाया। तब रानी ने हाथ जोड़कर उससे यह कहा—"हे महानुभाव ! मैं पति तथा बन्धु-बान्धवों से रहित पुत्रहीना हूँ। अब आप जो उपदेश करें, उसके अनुसार आचरण करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।"

हे नारद ! यह सुनकर ऋष्य ने उस मृतक लड़के के समीप पहुँचकर, जिसे कि रानी ने अब तक फेंकने नहीं दिया था, शिवजी के मंत्र का पाठ किया। तदुपरान्त उसने मृत बालक के मुख में भस्म डाल दी, जिससे वह तुरन्त ही जीवित हो, उठ बैठा। इस आश्चर्य को देखकर सब लोग चकित रह गये। उस समय पद्माकर, रानी तथा अन्य राजकुलीन व्यक्तियों को जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। रानी ने अत्यन्त आनन्द में भर कर बालक को गोद में उठाया और उस योगी के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। उस समय ऋष्य ने अत्यन्त कृपा करके उस बालक के सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगा दी। तदुपरान्त योगी ने प्रसन्न होकर, रानी को आशीर्वाद देते हुए कहा—"हे रानी ! तुम जरा-मृत्यु से रहित होकर प्रलयकाल तक जीवित रहोगी और यह बालक भी अपने पिता के राज्य को प्राप्त कर, अपनी रानियों सहित आनन्द का उपभोग करेगा। जब तक यह बालक विद्या पढ़कर बड़ा न हो जाये, तब तक तुम यहीं रहो।"

हे नारद ! इतना कहकर ऋष्य तो अपने स्थान को चले गये और रानी अपने पुत्र भद्रायुष सहित वहीं रहने लगी। पद्माकरने भद्रायुष के पढ़ने का उचित प्रबन्ध कर दिया, जिससे कुछ ही समय में वह सम्पूर्ण विद्याओं में पारंगत हो गया। जब वह बालक सोलह वर्ष का हुआ, तो उन्हीं योगी ने एक दिन पुनः आकर, उसे शिवजी के पूजन की विधि बतायी तथा सहस्त्राक्षर मन्त्र का उपदेश किया।

फिर उसके सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगा दी जिससे भद्रायुष को बारह सहस्त्र हाथियों का बल प्राप्त हो गया। फिर वे उसे एक खड्ग तथा एक शंख देकर विदा हो गये। तत्पश्चात् भद्रायुष अपने पिता की

राजधानी में पहुँचा और वहाँ के राज्य सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया। फिर वह विवाह आदि करने के उपरान्त, आनन्दपूर्वक प्रजा पालन एवं विहार करने लगा। वह पद्माकर को अपने भाई के समान समझकर, अत्यन्त आनन्द प्रदान करता रहा। भद्रायुष शिवजी का ऐसा परम भक्त था कि उसकी प्रशंसा तीनों लोकों में फैल गयी। हे नारद ! भस्म का ऐसा माहात्म्य और प्रभाव है। जो व्यक्ति इस चरित्र का श्रवण अथवा पाठ करता है, उसे भी अत्यन्त आनन्द मिलता है।''

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! अब मैं रुद्राक्ष का माहात्म्य कहता हूँ। रुद्राक्ष शिवजी को अत्यन्त प्रिय है। उसका दर्शन करने मात्र से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं तथा पूजन करने से दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है। शिवजी की तपस्या से उनके आँसू वृक्ष बन गये। वे वृक्ष 'रुद्राक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुए। शिवजी की कृपा से वे सभी शिवभक्तों को प्राप्त होने लगे तथा धीरे-धीरे प्रत्येक देश में रुद्राक्ष के वृक्ष की उत्पत्ति होने लगी। अयोध्या, मथुरा, काशी, गौड़देश तथा सह्य गिरि में रुद्राक्ष अधिकता से उत्पन्न होने लगे। रुद्राक्ष पापों को नष्ट करने वाला तथा दर्शन मात्र से ही अप्रेमय सुख प्रदान क़रने वाला है।

हे नारद ! रुद्राक्ष का रंग चार प्रकार का होता है—१. श्वेत, २. रक्त, ३. पीत, ४ श्याम। चारों वर्णों को उन्हें क्रमानुसार धारण करना चाहिए अर्थात् ब्राह्मण को श्वेत, क्षत्रिय को रक्त, वैश्य को पीत एवं शूद्र को श्याम वर्ण का रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। सब देवता, ऋषि-मुनियों एवं मनुष्य आदि को मद्य-माँस का त्याग करने के उपरान्त ही रुद्राक्ष धारण करने की आज्ञा दी गयी है। रुद्राक्ष धारण करने वालों को अप्रमेय सुख की प्राप्ति होती है। रुद्राक्ष असंख्य दुःखों को दूर करने वाला है। रुद्राक्ष की माला को सब मालाओं से श्रेष्ठ

समझना चाहिए। इसे धारण करने से मनुष्य को काल का भय भी नहीं रहता।

हे नारद ! रुद्राक्ष सभी देवताओं को अत्यन्त प्रिय है। विशेष कर पाँचों देवता इससे अधिक स्नेह करते हैं। शिवजी इसको सबसे अधिक प्रिय मानते हैं।

हे नारद ! जो रुद्राक्ष आँवले के फल के समान बड़ा हो, सर्वोत्तम है। जो बेर के फल के समान हो, वह मध्यम है और जो उससे भी छोटा हो, वह अधम गिना जाता है। आँवले के समान रुद्राक्ष सभी कष्टों को दूर करने वाला तथा सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला है ; परन्तु कोई भी रुद्राक्ष दुःखदायी नहीं होता। जो रुद्राक्ष घुँघची के समान छोटा हो, उसे सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करने वाला समझना चाहिए। छोटे रुद्राक्ष की महिमा तथा उसके धारण करने का फल अधिक होता है। जो रुद्राक्ष, दृढ़, चिकना काँटों से युक्त तथा मोटा होता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करता है तथा भक्तों के सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर देता है। निम्नलिखित प्रकार के रुद्राक्ष को धारण नहीं करना चाहिए—जो कीड़ों द्वारा खाये गये हों, जो काँटों से रहित हों, जो कटे हों, जो छिद्र करने के समय फट गये हो, जो रुद्राक्ष का स्वरूप न रखते हों तथा जो कृत्रिम हों अर्थात् वास्तविक न हों।

हे नारद ! जिस रुद्राक्ष को शिवभक्त स्वयं किसी वृक्ष से लाता है, वह सर्वोत्तम है तथा जो किसी अन्य मनुष्य के द्वारा लाया जाता है, वह मध्यम है। मैंने जिस रुद्राक्ष को सर्वोत्तम कहा है, उसे धारण करने वाले मनुष्य को भगवान् सदाशिव का रूप ही समझना चाहिए। जो लोग जानते-बूझते हुए भी मंत्र के बिना रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे नरकगामी होते हैं और किसी भी स्थान पर सुख प्राप्त नहीं करते। परन्तु जो मनुष्य अज्ञानी होते हैं, उन्हें मंत्र के बिना रुद्राक्ष धारण कर लेने पर भी कोई पाप नहीं लगता क्योंकि भगवान् सदाशिव ने अपने मुख से स्वयं यह कहा कि जो लोग मंत्र को जानने वाले न हों, वे यदि बिना मंत्र पढ़े ही रुद्राक्ष को धारण करें, तो उन्हें कोई पाप नहीं होता।

हे नारद ! रुद्राक्ष धारण करने वाले को भूत-प्रेत आदि कुछ भी कष्ट नहीं पहुँचा सकते। वे तो रुद्राक्षधारी को देखते ही भाग जाते हैं। जो मनुष्य रुद्राक्ष को धारण करता है, उसे देखकर शिवजी तथा अन्य सब देवता अत्यन्त प्रसन्न होते हैं यदि कोई मनुष्य अज्ञानी, दुराचारी अथवा कुकर्मी भी हो, परन्तु रुद्राक्ष को प्रेमपूर्वक धारण करता हो, तो वह समस्त पापों से छूटकर परम पद को प्राप्त करता है। जो मनुष्य रुद्राक्ष की माला पहनकर, हाथ पर मंत्र को जपता है, उसे दस गुना अधिक फल मिलता है। जो मनुष्य रुद्राक्ष को अपने शरीर पर धारण करता है, उसे न तो अकाल मृत्यु का भय रहता है और न कोई कष्ट ही प्राप्त हो पाता है।

हे नारद ! रुद्राक्ष को सभी वर्ण तथा सभी आश्रमों के मनुष्यों को धारण करना चाहिए। शूद्र को भी रुद्राक्ष धारण करने का अधिकार है। रुद्राक्ष धारण करने के हेतु श्रद्धा एवं विश्वास को भी आवश्यक कहा गया है। जो मनुष्य दिन के समय रुद्राक्ष धारण करता है, उसकी पिछली रात्रि के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और जो रात्रि के समय रुद्राक्ष धारण करता है, उसके दिन के सभी पाप नष्ट हो जाते है। अतः उचित तो यह है कि रुद्राक्ष हर समय धारण किये रहना चाहिए। जो लोग भस्म का त्रिपुण्ड लगाते हैं, रुद्राक्ष धारण करते हैं तथा जटा रखते हैं, वे नरकगामी नहीं होते और संसार में उन्हें कुछ भी पाप नहीं लगता। जिनके ललाट पर त्रिपुण्ड, मस्तक पर रुद्राक्ष और मुख में पंचाक्षर मंत्र है, वे सभी लोगों से पूजित होने के योग्य हैं।

हे नारद ! रुद्राक्ष अनेक प्रकार के होते हैं, उनका मैं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। एक मुखी रुद्राक्ष भगवान् सदाशिव का स्वरूप है, उसके दर्शन मात्र से ही ब्रह्म हत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं तथा भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है। जिसने ऐसे रुद्राक्ष को पा लिये, उसे परम सौभाग्यशाली समझना चाहिए। ऐसे रुद्राक्ष को धारण करने वाला मनुष्य हर समय पवित्र तथा पापों से रहित रहता है। द्विमुखी रुद्राक्ष धारण करने से गोवध का पाप नष्ट हो जाता है। उसको धारण

करने वालों के सभी मनोरथ पूरे होते हैं और उसके घर में सुख की सभी सामग्रियाँ उपस्थित रहती हैं। त्रिमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से धन तथा आयु की वृद्धि होती है एवं स्त्री हत्या का पाप नष्ट हो जाता है। उसे धारण करने वाले को तीसरे दिन आने वाला ज्वर कभी नहीं सताता।

हे नारद ! चतुर्मुखी रुद्राक्ष मेरा स्वरूप है। ऐसे रुद्राक्ष का दर्शन एवं स्पर्श करने से चारों पदार्थ सदैव प्राप्त होते रहते हैं। पंचमुखी रुद्राक्ष को शिवजी का स्वरूप समझना चाहिए। उसे धारण करने से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है तथा भक्ष्याभक्ष के दोष एवं स्त्री-गमन आदि के पाप नष्ट होते हैं। जो लोग पंचमुखी रुद्राक्ष को धारण करते हैं, उन्हें दुःख नहीं रहता। षड्मुखी रुद्राक्ष को स्कन्द के समान जानना चाहिए। वह ब्रह्महत्या आदि पापों को नष्ट कर, सम्पूर्ण सुखों को प्रदान करने वाला है और सदैव दाहिनी भुजा में धारण करने योग्य है। सप्तमुखी रुद्राक्ष को महासेन तथा आनन्द कह कर पुकारते हैं। उसे धारण करने पर दरिद्री भी राज्यपद को प्राप्त होता है और उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। अष्टमुखी रुद्राक्ष को बटुक भैरव का रूप जानना चाहिए। उसे धारण करने से आयु की वृद्धि होती है तथा शिवजी की कृपा से अन्त में मोक्ष प्राप्त होती है। नवमुखी रूद्राक्ष को दुर्गा का स्वरूप समझना चाहिए। वह दायें हाथ में धारण करने योग्य है। उसे धारण करने वाला मनुष्य मेरे समान सब का स्वामी होकर, पापों से रहित हो जाता है।

हे नारद ! दशमुखी रुद्राक्ष को विष्णु जी का स्वरूप समझकर, धारण करना चाहिए। वह युद्ध क्षेत्र में विजय प्राप्त कराने वाला तथा सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करने वाला है। एकादश मुखी रुद्राक्ष को रुद्र का स्वरूप समझकर धारण करना चाहिए। वह सर्वत्र विजय प्राप्त कराने वाला है। द्वादशमुखी रुद्राक्ष सूर्य का स्वरूप है। उसे शिखा में धारण करने से सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं तथा दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है। त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष को विश्वेदेवता का स्वरूप कहा

गया है। उसे धारण करने पर समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष को ललाट पर बाँधने से कभी कोई नष्ट नहीं होता तथा सम्पूर्ण पाप अति शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! मनुष्य को उचित है कि वह इन सब प्रकार के रुद्राक्षों की माला बनाकर प्रेमपूर्वक धारण करें। सौ दानों की माला मोक्ष प्रदान करने वाली होती है। एक सौ चालीस दानों की माला आरोग्य एवं बल प्रदान करती है। ब़त्तीस दानों की माला धन देती है। एक सौ आठ दानों की माला सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करने वाली है।

हे नारद ! पुत्र जीवा वृक्ष की काठ की माला पुत्र देने वाली होती है, मणिमाला धन की वृद्धि करती है, मोतियों की माला सौभाग्य प्रदान करती है, कुश माला पापों को नष्ट करती है, सोने तथा चाँदी के दानों की माला सभी मनोरथों को पूरा करती है, स्फटिक की माला श्रेष्ठ गति देती है, कमल की माला आरोग्य तथा धैर्य प्रदान करती है, परन्तु रुद्राक्ष की माला धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों फलों को देने वाली है। अस्तु, रुद्राक्ष के समान अन्य कोई माला नहीं है। हे नारद ! मैंने तुम्हें संक्षेप में रुद्राक्ष का यह माहात्म्य सुनाया, अब तुम क्या सुनना चाहते हो?''

बारहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! अब आप मुझे रुद्राक्ष धारण करने की विधि बताने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! ग्यारह सौ रुद्राक्ष एक ही विधि से धारण करने के लिए कहा गया है। कोई तत्त्वज्ञानी एक सहस्त्र रुद्राक्ष तथा कोई चार सौ रुद्राक्ष धारण करने के लिए भी कहते हैं। मैं तुमसे सर्वप्रथम पहले प्रकार का वर्णन करता हूँ। इस वर्णन को सुनने से ही सब प्रकार के कष्ट दूर हो जाते हैं। रुद्राक्ष धारण करने से बड़े-बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं। यह बात मैं पहले बता चुका हूँ। ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण

करना अत्यन्त आनन्ददायक होता है। अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि किन-किन अंगों में कितने-कितने रुद्राक्ष धारण करने चाहिएँ।

हे नारद ! पाँच सौ पचास रुद्राक्षों का मुकुट बनाकर धारण करें, तीन सौ रुद्राक्षों का यज्ञोपवीत बनावें और उसकी तीन लड़ियाँ बनाकर पहने। एक सौ एक रुद्राक्ष कंठ में तथा तीन रुद्राक्ष शिखा में धारण करें। तीन रुद्राक्ष यज्ञोपवीत में, पाँच रुद्राक्ष दाहिने कान में तथा छः रुद्राक्ष कान में पहनने चाहिएँ। इसी प्रकार हाथों में भी रुद्राक्षों को धारण करें। जो रुद्राक्ष शेष बचें, उन्हें कमर में बाँध लें। यह विधि ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करने की है।

हे नारद ! अब एक सहस्त्र रुद्राक्ष, धारण करने की विधि सुनो। तीन सौ रुद्राक्षों का मुकुट बनावें, पैंतीस रुद्राक्षों को माला बनाकर कंठ में पहनें, पाँच सौ रुद्राक्ष कन्धे में पहनें। एक सौ आठ रुद्राक्षों का उपवीत बनावें, दोनों भुजाओं में बत्तीस रुद्राक्ष धारण करें। दोनों हाथों में सोलह रुद्राक्ष धारण करें तथा शेष रुद्राक्षों को कमर में धारण करें। इस प्रकार जो सहस्त्र रुद्राक्षों को धारण करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। एक सहस्त्र रुद्राक्ष धारण करने वाला अपने कुल सहित परमपद को प्राप्त होता है। उसे देवता भी प्रणाम करते हैं।

हे नारद ! इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारों से भी रुद्राक्ष धारण करने की आज्ञा कही गयी है। जो मनुष्य मस्तक में एक, ललाट में चालीस, छाती पर एक सौ आठ, कंठ में बत्तीस, दोनों कानों में छः-छः, दोनों भुजाओं में बत्तीस तथा दोनों हाथों में चौबीस इस प्रकार दो सौ उन्चास रुद्राक्ष धारण करता है, उसके ऊपर शिवजी सदैव प्रसन्न रहते हैं और उसे कभी भी कष्ट नहीं होता। जो मनुष्य मस्तक पर एक रुद्राक्ष धारण करके सिर से स्नान करता है, उसे गंगा-स्नान का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य बिना जल के भी रुद्राक्ष का पूजन करता है, वह शिव-गिरिजा के पूजन का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य प्रतिदिन रुद्राक्ष को धारण किये हुए मृत्यु को प्राप्त होता है, वह शिवपद को

प्राप्त करता है। रुद्राक्ष की महिमा के सम्बन्ध में मैं तुम्हें एक आख्यान सुनाता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! गंगा के पश्चिम दिशा में देवीदन्त नामक एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था। उसने किसी से भी शिव-पूजन का उपदेश नहीं लिया था, तो भी वह एक झाड़ी के वृक्ष के नीचे कुएँ के तट पर स्थित, किसी देवता का पूजन किया करता था। उसके नगर का एक तेली मरकर बैताल हो गया था। एक दिन उस बैताल ने झाड़ी के समीप आकर राजा को अपना स्वरूप दिखाया। राजा उसे अपनी प्रजा का ही आदमी पहचान कर तथा मरे हुए को जीवित देखकर, अत्यन्त आश्चर्यचकित हो, यह विचार करने लगा कि अरे, यह मरा हुआ मनुष्य किस प्रकार जीवित हो गया है। अस्तु, उसने बैताल से पूछा—"तुम तो मर गये थे, फिर यहाँ कैसे जा पहुँचे हो?" बैताल ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! अब मैं बैताल होकर एक यमदूत का गण बना हुआ हूँ। मैं यहाँ जिस कार्य से आया हूँ, उसे तुमसे कहता हूँ। कुछ देर में ही यहाँ एक वैश्य आयेगा, वह बैल के मारने से मर जाएगा। वह वैश्य महापापी है। अस्तु, उसकी मृत्यु होते ही, मैं उसे बाँधकर यम के समीप ले जाऊँगा।" यह सुनकर राजा ने कहा—"तुम मेरे समीप आओ, मैं तुमसे कुछ और बातें करना चाहता हूँ।" बैताल ने यह बात स्वीकार कर ली और वह राजा के समीप जा पहुँचा।

हे नारद ! अभी राजा बैताल से कुछ और बात नहीं कह पाया था कि तब तक वहाँ एक वैश्य आ पहुँचा। उसके साथ एक बैल भी था। वैश्य ने बैल को कुएँ के समीप बाँधकर स्वयं स्नान करने की इच्छा की, परन्तु जिस समय वह पगड़ी बाँधे हुए बैल के समीप पहुँचा, उसी समय बैल ने उस वैश्य को अपने सींगों से घायल करके मार डाला। वैश्य के मरते ही बैताल ने उसे बाँध कर यमराज के पास ले जाने की इच्छा की। परन्तु उसी समय शिवजी के गण वहाँ आ पहुँचे और बैताल से यह कहने—"हे बैताल ! तुम इस वैश्य को छोड़ दो।" शिवगणों की बात सुनकर बैताल ने उत्तर दिया—"हे शिवगणो !

इसने अपने जीवन में कोई भी एक शुभ-कर्म नहीं किया है। अस्तु, मैं इसे बाँधकर यमराज के पास ले जाता हूँ।''

यह सुनकर शिवगणों ने उत्तर दिया—''हे बैताल ! इस वैश्य के मस्तक में रुद्राक्ष बँधा हुआ है। इसलिए इसके सब दोष भस्म हो गये हैं। यह पापी नहीं रहा। तुम इसे शीघ्र ही छोड़ दो।'' इतने पर भी जब बैताल ने उसे नहीं छोड़ा। तब शिवजी के गणों ने उसे त्रिशूल से मारकर घायल कर दिया और वैश्य को उसके हाथ से छुड़ा, विमान पर चढ़ाकर शिवपुरी में ले गये। वहाँ जाकर शिवजी की आज्ञा से वह शिवजी का गण हो गया। उधर बैताल ने राजा से सब वृत्तान्त कहकर, अपने मन में अत्यन्त दुःख किया। तदुपरान्त वह यमराज के पास चला गया। इस चरित्र को देखकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। फिर अब वह स्वयं रुद्राक्ष लेने के लिए बाजार में गया।''

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुमसे एक और इतिहास कहता हूँ, जिसमें रुद्राक्ष की महिमा प्रकट है। इस आख्यान को सुनने से शिवजी के चरणों में अधिक प्रीति उत्पन्न होती है। प्राचीन काल में कश्मीर में मद्रसेन नामक राजा राज्य करता था। उसका सुधर्म नामक पुत्र अत्यन्त बलवान्, बुद्धिमान् तथा शिवजी का परम भक्त था। राजा के मंत्री के पुत्र का नाम तारक था। वह भी अत्यन्त शीलवान् तथा विद्वान् था। राजा के पुत्र तथा मंत्री के पुत्र में अत्यन्त मित्रता थी। वे दोनों परम सुन्दर थे तथा साथ-ही-साथ विद्याध्ययन करते थे। उन्होंने बिना उपदेश के ही रुद्राक्ष की महिमा को जान लिया था।

हे नारद ! एक दिन पाराशर मुनि राजा के यहाँ जा पहुँचे। राजा ने उन्हें सर्वज्ञ जानकर अत्यन्त आदर-सत्कार किया तथा ऐसी सेवा की, जिससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त राजा ने हाथ जोड़, दंडवत् करते हुए मुनि से यह प्रार्थना की—''हे प्रभो ! मेरा पुत्र तथा मंत्री का

पुत्र दोनों ही रुद्राक्ष को इस प्रकार धारण करते हैं कि एक पल के लिए भी उन्हें नहीं त्यागते। यद्यपि मैंने उन्हें बहुत उपदेश दिया है, परन्तु वे किसी प्रकार नहीं मानते। वे बिना किसी से विधि पूछे हुए ही अपनी बुद्धि के अनुसार रुद्राक्ष धारण करते हैं। अस्तु, आप मुझे यह बताने की कृपा कीजिये कि इसका वास्तविक कारण क्या है?''

हे नारद ! राजा की यह प्रार्थना सुनकर पाराशर ने कहा—''हे राजन् ! तुम अपने पुत्र तथा मंत्री के पुत्र के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनो। पुरातन समय में महानन्दा नामक एक वेश्या नन्दिग्राम में रहती थी। वह परमसुन्दरी तथा अत्यन्त धनवान् थी। उसने एक बन्दर तथा एक कुत्ते को पालकर, उन्हें नृत्य करना सिखाया था। वह अन्य बहुत-सी स्त्रियों सहित शिवजी की स्तुति गाती तथा अपने बन्दर एवं कुत्ते को रुद्राक्ष पहनाकर नाचती थी। वे दोनों इस प्रकार नाचते थे कि उनका नृत्य दर्शकों को अत्यन्त प्रिय लगता था। इसी प्रकार वह वेश्या नामक शिवभक्ति में संलग्न रहती थी। संयोगवश एक दिन उस वेश्या के घर में आग लग गयी। वेश्या ने उन दोनों को शीघ्रतापूर्वक बाहर निकाल लिया, परन्तु उस दिन से वे दोनों फिर घर में लौट कर नहीं गये तथा दुःखी होकर वन में भ्रमण करते रहे। समय आने पर रुद्राक्ष धारण किये हुए ही उनकी मृत्यु हो गयी, जिसके कारण उन्हें शिवलोक प्राप्त हुआ।

हे राजन् ! वही बन्दर तुम्हारे घर में पुत्र बनकर उत्पन्न हुआ है और उसी कुत्ते ने मंत्री के घर में पुत्र बनकर जन्म लिया है। ये दोनों पूर्व जन्म के मित्र हैं तथा उसी रुद्राक्ष की महिमा का स्मरण कर, इस जन्म में भी रुद्राक्ष धारण करते हैं। ये दोनों रुद्राक्ष धारण करने तथा शिव पूजन करने के कारण पुनः शिवलोक को प्राप्त होंगे।'' यह वृत्तान्त सुनकर राजा ने पाराशर मुनि से कहा—''हे प्रभो ! आप कृपा करके मेरे पुत्र के भविष्य का हाल भी बताने की कृपा करें।'' तब पाराशर जी ने उस राजपुत्र को अपने निकट बुलाकर सिर से पाँव तक देखने के उपरान्त इस प्रकार कहा—''हे राजन् ! इस बालक की अवस्था केवल बारह

वर्ष की है। आज से सातवें दिन यह अवश्य मर जायेगा। परन्तु हम तुम्हें एक उपाय बताते हैं, उसे करने पर इसका जीवन बच सकता है। भगवान् सदाशिव काल के भी काल हैं। मृत्यु शिवजी से हर समय भयभीत बनी रहती है। यदि शिवजी कृपा करें तो तुम्हारा पुत्र मृत्यु के मुख से बच सकता है। इसलिए तुम्हें सर्वप्रथम यह उचित है कि तुम इसके द्वारा शिवजी का पूजन कराओ तथा उन्हें अनेक प्रकार से प्रसन्न करने का उपाय करो।''

हे राजन् ! आयु बढ़ाने की अनेक युक्तियाँ हैं, परन्तु उन सब में सरल शिवजी का पूजन है। मृत्यु से रक्षा करने में रुद्राध्याय अत्यन्त प्रसिद्ध है। अनेक प्रकार से शिवजी का पूजन करे तथा निश्चयपूर्वक शिवबाना धारण करे तो मनुष्य के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और वह बहुत समय तक जीवित रहता है। ऐसे व्यक्ति पर शिवजी सदैव प्रसन्न रहते हैं। तुम जितनी बार शतरुद्री का अभिषेक कराओगे, उतने ही वर्षों तक तुम्हारा पुत्र जीवित बना रहेगा। अस्तु, तुम्हें यह उचित है कि तुम इस सहस्त्र शतरूद्री का पाठ कराके, अपने पुत्र को स्नान कराओ। इस समय से तुम्हारा पुत्र दस सहस्त्र वर्षों तक जीवित रहेगा तथा इतने ही समय तक निर्भय हो, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता हुआ, सुखपूर्वक राज्य करेगा।''

हे नारद ! पाराशर मुनि के ऐसे वचन सुनकर राजा ने बहुत-से ब्राह्मणों को बुलाकर सात दिन में दस सहस्त्र शतरुद्री का जप कराना आरम्भ कर दिया तथा स्वयं भी उस जप में संलग्न रहा। उसी जल से उसने अपने पुत्र को स्नान कराया। सातवाँ दिन आने पर वह बालक कुछ देर के लिए मूर्च्छित हो गया, परन्तु थोड़ी देर बाद चैतन्यावस्था को प्राप्त कर उठ बैठा। उस समय पाराशर मुनि ने उससे पूछा—''हे राजनपुत्र ! मूर्च्छावस्था में तुम्हारी क्या दशा हुई?'' तब राजपुत्र ने यह उत्तर दिया—''हे मुनिराज ! मैंने यह देखा कि एक भयानक रूपधारी मनुष्य हाथ में डंडा लेकर मेरा वध करने के लिए आ रहा है, परन्तु उसी समय एक महावीर ने आकर उस मनुष्य को अपने वरुणपाश से बाँध लिया तथा वे उसे मारते-पीटते हुए एक ओर चले गये।'' यह सुनकर

पाराशर मुनि ने अत्यन्त प्रसन्न हो उस बालक को अनेक आशीर्वाद दिये। राजा ने भी उस समय आनन्दित होकर पाराशर मुनि तथा सभी ब्राह्मणों की बहुत सेवा की।

हे नारद ! जिस समय राजा पाराशर मुनि की प्रशंसा कर रहा था, उसी समय तुम भी वहाँ जा पहुँचे। तब राजा ने तुम्हारा अत्यन्त सम्मान करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! यदि आपने कोई आश्चर्य की बात देखी हो तो मुझे सुनाने की कृपा करें।" तब तुमने उत्तर दिया—"हे राजन् ! हमने उसी समय एक बहुत बड़ा आश्चर्य देखा है। वह आश्चर्य यह है कि तुम्हारे पुत्र को मारने के लिए मृत्यु आयी थी, परन्तु शिवजी ने उसकी रक्षा करने के लिए वीरभद्र को भेजा और उन्हें यह आज्ञा दी कि वे तुम्हारे पुत्र पर मृत्यु का कोई वश न चलने दें। तब वीरभद्र मृत्यु को पकड़कर कैलाश पर्वत की ओर ले गये और तुम्हारे पुत्र को अमृत-पान करने का फल प्राप्त हुआ। अब तुम्हारा पुत्र दस सहस्त्रों वर्षों तक जीवित रहकर निष्कंटक राज्य करेगा। मंत्री का पुत्र भी तुम्हारे पुत्र का सेवक बनकर, बहुत सुख भोगेगा। वे दोनों शिवजी के बड़े भक्त होंगे तथा अन्त में शिवलोक को प्राप्त होकर, शिवजी के गण बन जायेंगे।" इतना कहकर तुम अपने स्थान को लौट आये। जो लोग इस कथा को कहते अथवा सुनते हैं, उन्हें दोनों लोकों में सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।"

ॐ ॐ ॐ

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! मैंने मुक्ति प्राप्त करने के लिए तुम्हें यह युक्ति बतायी है। अब एक अन्य उपाय सुनो, जिसके अनुसार आचरण करने पर शिवजी की भक्ति दृढ़ होती है। जिस उपाय के करने से पाराशर के पुत्र वेदव्यास सिद्ध हुए, मैं उसका वर्णन करता हूँ। शिवजी का कीर्तन तथा शिवजी के गुण चरित्रों का मनन, शिवजी को प्राप्त कराने में अत्यन्त सहायक होता है। सर्वप्रथम गुरु के मुख से

शिवजी का यश सुने तथा स्वयं उनका पूजन तथा मनन करे। ऐसा करने से शिवजी का सामीप्य लाभ होता है और सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। शिवजी के यश के सम्बन्ध में जो गीत हों, वे चाहे वेद के पद हों अथवा देवताओं द्वारा बनाये गये हों अथवा मनुष्य के बनाये हुए हों, सभी प्रकार के पदों के गायन से दुःख दूर होकर, आनन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शिवजी का श्रवण करने तथा वर्णन करने के उपरान्त उनका युक्तिपूर्वक शुद्ध हृदय से मनन करना चाहिए।

हे नारद ! सत्संगति में बैठने से शिवजी के गुण चरित्रों का फल प्राप्त होता है, तदुपरान्त कीर्तन और अन्त में मनन की प्राप्ति समझनी चाहिए। अस्तु, शिवजी की प्रसन्नता के हेतु ही सब कार्य करने चाहिएँ। यह युक्ति से शिवजी का पद प्राप्त करना अत्यन्त सुगम होता है। वेद तथा पुराण भी मनन की महिमा का वर्णन करते हैं। जिस मनुष्य पर भगवान् सदाशिव प्रसन्न होते हैं, उसी को यह श्रेष्ठ लाभ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त भगवान् सदाशिव को प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं है। अब मैं व्यास जी की कथा कहता हूँ, उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! व्यास जी ने वेद को चार भागों में बाँटकर दिन-रात परिश्रम करके अठारह पुराणों का निर्माण किया, परन्तु, तब भी उनके हृदय को सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए वे मन को शुद्ध करने के हेतु, ब्रह्मनदी के तट पर बैठकर, तपस्या करने लगे। उन्होंने शिवजी का ध्यान धरकर, सम्पूर्ण इन्द्रियों को जीत लिया। जब शिवजी ने व्यास जी को ऐसा कठिन तप करते हुए देखा, जो उन्होंने प्रसन्न होकर सनत्कुमार को व्यास जी के निकट जाने की आज्ञा दी। उस समय सनत्कुमार ने व्यास जी के पास पहुँच कर उन्हें अपना दर्शन दिया। व्यास जी ने सनत्कुमार का पूजन करते हुए, उनकी बहुत प्रकार से स्तुति की। उस समय मेरे पुत्र सनत्कुमार ने अत्यन्त प्रसन्न होकर व्यास जी से इस प्रकार कहा—"हे व्यास जी ! आप शुकदेव जी के पिता तथ ऋषि-मुनियों के स्वामी हैं। आपने जब जीवों पर दया करके वेद के चार विभाग किये हैं तथा सबका उपचार करने के हेतु अठारह

पुराणों का निर्माण किया है। परन्तु हम आपसे यह पूछते हैं कि आप एक बड़े परिवार के संरक्षक होते हुए भी इस प्रकार कठिन तप क्यों कर रहे हैं? हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आपका हृदय कुछ उचट-सा हो गया है।

हे नारद ! सनत्कुमार जी के मुख से यह वचन सुनकर व्यास जी ने उत्तर दिया—"हे सनत्कुमार जी ! आपका कथन वास्तव में सत्य है। मैंने वेदों को विभाजित करके सब पुराणों को बनाया है तथा परोपकार के लिए अत्यन्त परिश्रम भी किया है। मैं संसार में सबका गुरु बनकर प्रसिद्ध हुआ हूँ। परन्तु इतने पर भी मुझे मुक्ति धर्म का लाभ नहीं हुआ है। इसीलिए मैं यह तपस्या कर रहा हूँ। इस तप के प्रभाव से यदि आप यहाँ मुझे सेवक समझकर आये हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आप सर्वज्ञ तथा दूसरों की भलाई करने वाले हैं। आशा है, अब आप मुझे कृपा करके कोई ऐसा उपाय बतावेंगे, जिससे मेरा मन शुद्ध हो और मैं मुक्ति को प्राप्त करूँ।"

हे नारद ! यह सुनकर सनत्कुमार ने उत्तर दिया—"हे व्यास जी ! शिवजी की माया को कोई नहीं जान सकता। वह सम्पूर्ण संसार को मोहित करने वाली है। शिव भक्ति के बिना वह सब लोगों को अनेक प्रकार के कष्ट भी देती है। यद्यपि आपने वेदों के विभाग किये तथा पुराणों को बनाया है, परन्तु इतने पर भी आपने न तो धर्म को जाना है और न शिवजी के तत्त्व को ही जाना है।

हे व्यास जी ! पुरातन काल में, मैं अज्ञानी होकर संशय रूपी समुद्र में व्यर्थ ही भ्रमण करता रहा। मैंने तीनों लोकों में भ्रमण किया, परन्तु मुक्ति प्राप्त करने के उपाय मुझे ज्ञात नहीं हो सका। तब मैं शिवजी की माया से मोहित हो, मन्दराचल पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ मैंने एक स्थान पर निश्चल भाव से बैठ कर बहुत समय तक एकाग्रचित हो तपस्या की। मैंने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके शिवजी का स्मरण किया। उस समय शिवजी ने प्रसन्न होकर मेरा सन्देह दूर करने के लिए नन्दीश्वर को आज्ञा दी। जब नंदीश्वर मेरे पास आये, तब मैंने उन्हें प्रणाम करते हुए उनके आगमन का कारण पूछा। उस समय शिवजी

के अंश तथा सभी गणों के स्वामी नन्दीश्वर ने मुझ पर अत्यन्त अनुग्रह करके इस प्रकार कहा—"हे सनत्कुमार ! भगवान् सदाशिव के यश का कीर्तन, श्रवण तथा मनन मुक्ति को देने वाला है। अस्तु तुम्हें भी यह उचित है कि तुम श्रवण, कीर्तन तथा मनन—इन तीनों कर्मों को दृढ़तापूर्वक धारण करो।" इस प्रकार मुझे उपदेश देकर नन्दीश्वर शिवजी के समीप चले गये। उस समय मुझे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। अस्तु, "हे व्यास जी ! आपको भी यह उचित है कि आप भी इन तीनों उपायों का आश्रय लेकर, मुक्ति को प्राप्त करें।" इस प्रकार व्यास जी को शिक्षा देकर सनत्कुमार विमान पर आरूढ़ हो, अपने लोक को लौट गये।"

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! यदि कोई मनुष्य इन तीनों उपायों को न कर सके तो इसके लिए अन्य सुगम साधन और क्या हो सकता है, यह आप मुझे बताने की कृपा करें।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! यदि कोई मनुष्य इन तीनों का साधन न कर सके तो उसे चाहिए कि वह भक्तिपूर्वक केवल शिवलिंग का ही पूजन करे। इस प्रकार केवल पूजन करने मात्र से ही बहुत-से लोग अपने मनोरथों को प्राप्त कर चुके हैं। यदि हृदय में भक्ति हो तो श्रवण आदि तीनों उपायों के बिना भी मुक्ति मिल जाती है।"

पन्द्रहवाँ अध्याय

नारद जी बोले—"हे पिता ! मैं यही जानना चाहता हूँ कि सभी देवता वीर रूप में पूजे जाते हैं अथवा केवल शिवजी को ही वीर रूप में पूजा जाता है। आप मुझे यह भी बताइए कि क्या केवल शिवजी के ही लिंग की पूजा करनी चाहिए, अन्य देवताओं की नहीं?" यह सुनकर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—"हे नारद ! तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर भगवान् सदाशिव के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं दे सकता। इस सम्बन्ध में उन्होंने मुझसे जो कुछ कहा था, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इस वृत्तान्त

को सुनने से दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। भगवान् सदाशिव ब्रह्मस्वरूप, निर्गुण, सगुण, लिंगरूप तथा निराकार हैं। शिवजी के वीर स्वरूप का वर्णन साकार रूप में किया जाता है। अस्तु, लिंग तथा वीर—इन तीनों रूपों में भगवान् सदाशिव सब लोगों द्वारा पूजा किये जाने योग्य हैं। ब्रह्म का नाम किसी अन्य देवता के लिए नहीं दिया जा सकता। यह तीनों लोक भगवान् सदाशिव के सेवक हैं, क्योंकि उनके अतिरिक्त अन्य कोई देवता निष्कलंक नहीं है। यही कारण है कि अन्य किसी देवता को अपने लिंग की पूजा नहीं करानी चाहिए। अन्य सभी देवताओं में ब्रह्म तत्त्व अधिक मात्रा में नहीं पाया जाता। इसलिए शिवजी का वीर लिंग सब देवताओं द्वारा पूजा किया जाने योग्य है। यह बात अत्यन्त प्राचीन तथा प्रसिद्ध भी है। जो मनुष्य इस वृत्तान्त को पढ़ते हैं, उन्हें भी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

हे नारद ! इसी सम्बन्ध में नन्दीश्वर ने सनत्कुमार से बहुत-कुछ कहा था। सनत्कुमार ने एक बार उनसे यह कहा—"हे नन्दीश्वर ! आपने शिवजी के अत्यन्त पवित्र चरित्रों का वर्णन किया है, परन्तु आपने शिवजी के लिंग की पूजा का जो प्रतिपादन किया है, उससे मेरे मन में सन्देह की उत्पत्ति हुई है। मैं यह चाहता हूँ कि आप मुझे शिवजी के लिंग का वर्णन सुनाने की कृपा करें।" यह सुनकर नन्दीश्वर ने उत्तर दिया—"हे सनत्कुमार ! पिछले कल्प में जब प्रलय हो गया, उस समय ब्रह्मा तथा विष्णु एक दूसरे से विवाद करते हुए परस्पर युद्ध करने लगे। तब भगवान् सदाशिव उन दोनों का अहंकार दूर करने के हेतु एक आदि-अन्त से रहित ज्योतिर्मय खम्भे के रूप में प्रकट हुए। वह खम्भा लिंग के समान लक्षणों वाला था। उस समय शिवजी ने उन दोनों के अहंकार को नष्ट कर, परमधर्म की शिक्षा दी। तभी से तीनों लोकों में लिंग वीर की पूजा प्रचलित हुई। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें पूर्वकाल की एक कथा सुनाता हूँ।

हे सनत्कुमार ! पूर्व समय में सब देवताओं के स्वामी विष्णु अपनी शैय्या पर आनन्दपूर्वक शयन कर रहे थे। उस अवसर पर ब्रह्मा कहीं से

उनके समीप जा पहुँचे और उन्हें लेटे हुए देख, अत्यन्त क्रुद्ध हो, अहंकार में भर, इस प्रकार कहने लगे—''हे अभिमानी ! तुम कौन हो, जो हमारे आने पर भी इस प्रकार लेटे हुए हो? हम तुम्हारे स्वामी हैं तथा अत्यन्त कृपा करके तुम्हारे पास आये हैं।'' यह सुनकर विष्णु ने उन्हें उत्तर दिया—''हे ब्रह्मन् ! तुम हमारे पुत्र हो। अस्तु तुम्हें ऐसे कटु-वचन कहना उचित नहीं है। तुम यहाँ आनन्दपूर्वक बैठो और अपने अहंकार को त्याग दो।'' यह सुनकर ब्रह्मा बोले—''हे विष्णु ! तुम हमें अपना पुत्र किस प्रकार कहते हो? इस प्रकार की दुर्बुद्धि द्वारा अपने हृदय से धर्म को त्याग देना श्रेष्ठ नहीं है। क्या तुम्हें यह नहीं ज्ञात है कि हमारे नाम स्वयम्भू, अज, परमेष्ठी, विधाता तथा ब्रह्मा आदि हैं? हम तुम्हारे पिता हैं और तीनों लोकों को धारण करने वाले हैं। हम को उत्पन्न करने वाला तीनों लोकों में कोई नहीं है। तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है जो तुम स्वयं को हमारा स्वामी कहते हो।'' यह सुनकर विष्णु ने उत्तर दिया—''हे पुत्र ! तुम हमारी नाभि से उत्पन्न हुए हो और माया में भूलकर अपने को सबका स्वामी समझ बैठे हो।''

हे सनत्कुमार ! इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णु बहुत समय तक विवाद करते रहे। तदुपरान्त उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा। उस समय दोनों ओर के सम्बन्धी सहायक तथा गण आदि भी अपना-अपना पक्ष लेकर एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध करने में प्रवृत्त हो गये। दोनों ओर से अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। उस युद्ध को देखकर सभी देवताओं को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, परन्तु शिवजी की माया के वशीभूत होने के कारण वास्तविक भेद को कोई नहीं जान सका। युद्ध करते समय विष्णु ने ब्रह्मा के ऊपर माहेश्वर नामक बाण छोड़ा। तब ब्रह्मा ने भी क्रूद्ध हो पाशुपत अस्त्र का प्रहार किया। वे दोनों बाण एक दूसरे से मिलकर प्रलय करने लगे तथा सम्पूर्ण सृष्टि में अग्निवर्षा कर उठे। उस समय सब देवताओं ने अत्यन्त भयभीत होकर यह विचार किया कि हमें शिवजी की शरण में जाकर रक्षा करने हेतु प्रार्थना करनी चाहिए।

सोलहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले—"हे सनत्कुमार ! देवताओं की स्तुति सुनकर भगवान् सदाशिव ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे पुत्रो ! तुम्हारे मुख अत्यन्त चिन्तित दिखलाई देते हैं। अस्तु, तुम हमें अपने दुःख का कारण सुनाओ।" यह सुनकर सब देवताओं ने प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो ! इस समय ब्रह्मा तथा विष्णु में महाभयानक युद्ध हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो थोड़ी ही देर में प्रलय हो जायेगा। उन दोनों के बाणों द्वारा निकली हुई अग्नि तीनों लोकों को भस्म किये देती है। हम भी उस ज्वाला से भयभीत होकर आपकी शरण में आये हैं।"

हे सनत्कुमार ! यह सुनकर भगवान् सदाशिव ने देवताओं से कहा—"हे देवताओ ! अब तुम निःशंक रहो। हम वहाँ जाकर युद्ध बन्द कराये देते हैं।" इतना कहकर शिवजी ने अपने गणों को भी चलने की आज्ञा दी। उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे तथा जय-जयकार होने लगा। तदुपरान्त शिवजी गिरिजा तथा अपने पुत्रों सहित मद्र नामक रथ में बैठकर, देवताओं सहित युद्ध स्थल में जा पहुँचे। वहाँ शिवजी ने उन दोनों देवताओं को अपनी माया के वशीभूत हो, युद्ध करते देखकर, अपने ज्योति स्वरूप को प्रकट किया। उस ज्योति स्वरूप की गति को कोई नहीं जान सका तथा उस महाज्योति के प्रकट होते ही ब्रह्मा तथा विष्णु के बाण एक-दूसरे से अलग हट कर शान्त हो गये। इस आश्चर्य को देखकर ब्रह्मा तथा विष्णु ने युद्ध करना बंद कर दिया और यह निश्चय किया कि हम दोनों में जो व्यक्ति इस ज्योतिस्वरूप खम्भे के आदि और अन्त का पता लगा लावेगा, वही सबका स्वामी स्वीकार किया जायेगा। इस निश्चयानुसार विष्णु शूकर का रूप धारण कर पृथ्वी के नीचे की ओर चले तथा ब्रह्मा हंस का स्वरूप धारणकर आकाश की ओर उड़े, परन्तु उन दोनों में से किसी ने भी उस ज्योतिरूप खम्भे का आदि-अन्त नहीं पाया। तब ब्रह्मा केतकी फूल को अपने साक्षी के रूप में साथ लेकर लौटे और

केतकी ने विष्णु जी से यह झूठ बात कही कि ब्रह्मा ने उस ज्वाला के आदि को देख लिया है, परन्तु विष्णु ने इसी सत्य को स्वीकार किया कि वे इस ज्वाला के अन्त को नहीं पा सके हैं।''

सत्रहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर ने कहा—''हे सनत्कुमार ! विष्णु के सत्य को देखकर भगवान् सदाशिव अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा ब्रह्मा के मिथ्या वचन को सुनकर अत्यन्त कुपित हुए। तदुपरान्त उन्होंने अपना मुख्य रूप उन दोनों देवताओं के बीच प्रकट कर दिया। उस स्वरूप को देखकर विष्णु जी स्तुति करने लगे। तब शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे यह कहा—''हे विष्णु ! हम तुम्हारे सत्य को देखकर बहुत आनन्दित हुए हैं। हम तुम्हें वर देते हैं कि तुम हमारे समान हो जाओगे तथा सब लोग तुम्हारी पूजा भी हमारी ही पूजा की भाँति किया करेंगे।'' इस प्रकार विष्णु को वरदान देकर भगवान् सदाशिव ब्रह्मा जी से बोले—''हे ब्रह्मन् ! तुमने सांसारिक आनन्द तथा प्रशंसा प्राप्त करने के हेतु अपने धर्म को त्यागा है और तुम तीनों लोकों में अपना पूजन कराने के लिए झूठ भी बोले हो। इतना ही नहीं, तुमने मिथ्या साक्षी को भी उपस्थित किया। अस्तु, हम तुम्हें यह शाप देते हैं कि तीनों लोकों में कोई भी तुम्हारी पूजा नहीं करेगा तथा कोई भी देवता अथवा मुनि तुम्हें अपना स्वामी स्वीकार नहीं करेगा।''

हे सनत्कुमार ! शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर ब्रह्मा ने अत्यन्त लज्जित होकर बहुत प्रकार से विनय करते हुए कहा—''हे प्रभो ! अब मैं आपकी शरण में आया हूँ।'' ब्रह्मा के इन विनम्र वचनों को सुनकर शिवजी प्रसन्न हो गये। तब वे इस प्रकार कहने लगे—''हे ब्रह्मन् ! अब हम तुम्हें युक्तिपूर्वक यह वर देते हैं कि तुम वैधानिक मुखकर्म आदि में गुरु हुआ करोगे और अपना पूरा भाग प्राप्त करोगे।'' ब्रह्मा से इस प्रकार कह कर शिवजी केतकी पुष्प से बोले—

"हे केतकी ! तूने धर्म के विरुद्ध आचरण करते हुए मिथ्या साक्षी दिया है। अस्तु, तू आज से हमारी पूजा के काम नहीं आयेगी।" यह सुनकर केतकी ने अत्यन्त दुःखी हो, शिवजी की प्रार्थना करते हुए कहा—"हे प्रभो ! आप मेरे अपराध को क्षमा कर देने की कृपा करें। वेद इस बात को कहते हैं कि आप शरणागत पालक हैं तथा आपके स्मरण मात्र से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर मैं तो आप को सशरीर देख रही हूँ। ऐसी अवस्था में मेरे पाप नष्ट क्यों न होंगे? यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"हे केतकी ! हम तुम्हारी विनय से अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अस्तु, अब यह वरदान देते हैं कि तुम मुझ पर वितान के द्वारा चढ़ोगी।" इस प्रकार शिवजी ने सब लोगों पर अत्यन्त अनुग्रह किया।

हे सनत्कुमार ! उस समय ब्रह्मा तथा विष्णु ने दायें-बायें खड़े होकर परिवार सहित भगवान् सदाशिव का पूजन किया। तब शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह कहा—"हे ब्रह्मा तथा विष्णु ! तुम दोनों हमें प्राणों के समान प्रिय हो। आज का दिन परम पवित्र तथा मुक्ति को देने वाला है। यह संसार में शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध होगा। शिवरात्रि का व्रत सब लोगों को अत्यन्त आनन्द प्रदान करेगा। तुम लोग इस दिन व्रत करके हमारे लिंग की पूजा किया करना। इससे तुम्हारे सभी पाप तथा दोष नष्ट हो जायेंगे। हम यहाँ लिंग रूप होकर प्रकट हुए हैं। अस्तु, इस स्थान का नाम लिंगालय प्रसिद्ध होगा। सब लोगों की पूजा के निमित्त हम इस लिंग में पूर्ण अंश में विराजमान रहेंगे। इस स्थान का नाम अरुणाचल होगा। जो लोग यहाँ आकर हमारी पूजा करेंगे, वे परमपद को प्राप्त होंगे।"

हे सनत्कुमार ! इतना कहकर शिवजी ने सम्पूर्ण मरी हुई सेना को जीवित कर दिया। फिर उन्होंने यह इच्छा करके कि हम ब्रह्मा तथा विष्णु के अहंकार को सदैव के लिए नष्ट कर दें, इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"हे ब्रह्मा तथा हे विष्णो ! हम तुम से वेदों का सार कहते हैं। हमारे दो स्वरूप हैं—१. निष्फल तथा २. सकल। हम ब्रह्म, अलख तथा सम्पूर्ण सृष्टि के प्राण हैं। सर्वप्रथम हम खम्भे के रूप में

प्रकट हुए, तदुपरान्त सब अंगों सहित प्रकट हुए हैं। तुम दोनों ने अपने को संसार का स्वामी समझकर व्यर्थ ही इतना युद्ध किया। इसीलिए हमें यहाँ निराकार रूप में आना पड़ा। अब तुम्हें कभी ऐसे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। तुम्हें इस बात को निश्चय रखना चाहिए कि परब्रह्म परमात्मा हम हीं हैं। तुम्हें हमारे लिंग का पूजन करना चाहिए। इससे तुम सभी मनोरथों को प्राप्त होओगे।

"हे ब्रह्मा तथा हे विष्णो ! यह सम्पूर्ण सृष्टि पाँच प्रकार की है। तुम इसे हमारी लीला ही समझो। संसार की उत्पत्ति, भरण-पोषण तथा प्रलय एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन पाँच कर्मों में पाँच देवता निवास करते हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश तथा हम हैं। इन पाँच देवताओं में से चार देवता तो सशरीर दिखाई देते हैं, परन्तु पाँचवां दृष्टिगोचर नहीं होता। तुम दोनों ब्रह्मा तथा विष्णु भी हमारी शक्ति द्वारा उत्पन्न हुए हो तथा रुद्र और महेश भी हमारी ही देह हैं। रुद्र तथा महेश अविकारी हैं तथा तुम दोनों विकारी हो। इस बात को भली-भाँति जान लेने पर, तुम्हारे मन में कोई सन्देह नहीं रह जायेगा।" इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। उस समय ब्रह्मा तथा विष्णु आदि को भी अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। फिर सब लोग अपने-अपने लोक को चले गये।"

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! नन्दीश्वर के मुख से इस पवित्र चरित्र को सुनकर सनत्कुमार भी अत्यन्त आनन्दित हो, अपने स्थान चले गये। शिवजी के इस परम पवित्र आख्यान का हमने तुमसे वर्णन किया है। तुम्हें यह निश्चयपूर्वक जान लेना चाहिए कि जो लोग शिवजी की भक्ति करते हैं, वह सदैव प्रसन्न बने रहते हैं। जो लोग शिवजी के चरित्रों को पढ़ते, सुनते अथवा दूसरों को सुनाते हैं, वे इस लोक में अत्यन्त आनन्द भोगकर, अन्त में शिवपुरी को जाते हैं।"

इतिश्रीशिवपुराणे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां नवमखण्डस्समाप्तः ॥९॥

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण

(सरल भाषा)

दसवाँ खण्ड

पहला अध्याय

सूत जी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो ! शिवरात्रि व्रत का वृत्तान्त सुनने के उपरान्त नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—"हे पिता ! भगवान् सदाशिव के जितने भी व्रत हों, उन्हें आप मुझे बताने की कृपा करें।" यह सुनकर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—"हे पुत्र ! शिवजी के असंख्य व्रत हैं। उन सब व्रतों में निम्नलिखित बारह व्रत अत्यन्त आवश्यक तथा प्रमुख हैं। इन्हें याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णन किया गया है। मनुष्यों को चाहिए कि वे इन व्रतों को अवश्य धारण करें, क्योंकि इन्हें किये बिना किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती।

हे नारद ! व्रत इस प्रकार हैं—दोनों अष्टमी, दोनों एकादशी, दोनों त्रयोदशी, दोनों चतुर्दशी तथा महीने में जितने चन्द्रवार पड़ें, ये सब मिलाकर एक महीने में बारह व्रत होते हैं। भगवान् सदाशिव की आज्ञा है कि अष्टमी के व्रत में केवल फलाहार करना चाहिए, परन्तु शुक्लपक्ष की एकादशी को निर्जल व्रत रखना चाहिए। कृष्ण पक्ष की एकादशी को भोजन किया जा सकता है। इसी प्रकार दोनों त्रयोदशी तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में भी एक बार भोजन करने की आज्ञा है, परन्तु शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी में निर्जल व्रत धारण करना चाहिए। सोमवार के व्रत में भी एक समय भोजन कर लेने की आज्ञा है। इन सभी व्रतों में शक्ति सहित भगवान् सदाशिव का पूजन करना चाहिए। इन व्रतों में अपनी सामर्थ्यानुसार शिव भक्तों को भोजन कराना चाहिए तथा शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए।

हे नारद ! जो मनुष्य इन बारहों व्रत में से एक व्रत भी नहीं करता, उसे महापतित समझना चाहिए। जो मनुष्य शिवजी के सभी व्रतों को करता है, उसे परम पवित्र समझना चाहिए। यदि कोई मनुष्य बारहों व्रत रखने में असमर्थ होने के कारण केवल एक ही व्रत धारण करता है तो वह भी शुभ है। इन दोनों प्रकार के व्रत रखने वालों पर भगवान् सदाशिव सदैव अपनी कृपा बनाये रहते हैं। हे नारद ! चार वस्तु मुक्ति प्रदान करने वाली हैं। उन्हें इस प्रकार जानना चाहिए—१. शिवजी का पूजन, २. शिवजी का तप, ३. शिवजी का व्रत तथा ४. काशी में मृत्यु। ये चारों बातें शिवजी को अत्यन्त प्रिय तथा संसार में अत्यन्त सुख प्रदान करने वाली हैं। इन सब व्रतों में शिवजी का व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ कहा गया है। शिवरात्रि के व्रत को सभी वर्ण, सभी आश्रम तथा सभी आयु के स्त्री-पुरुष धारण कर सकते हैं। जो लोग शिवरात्रि के व्रत को रखते हैं, उन्हें शिव लोक की प्राप्ति होती है।

हे नारद ! भगवान् सदाशिव की महिमा के समान ही शिवरात्रि व्रत की महिमा भी अनन्त है। कोई मनुष्य कैसा भी पापी क्यों न हो, यदि वह शिवरात्रि का व्रत कर लेता है, तो उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। संसार में जितने भी धर्म, तप, योग आदि हैं, उनमें कोई भी इस व्रत के समान नहीं है। शिवरात्रि का व्रत शिवजी को अपने प्राणों के समान अत्यन्त प्रिय हैं। शिवरात्रि व्रत के द्वारा यज्ञदत्त नामक ब्राह्मण के पुत्र गुणनिधि ने, सुमति नामक स्त्री ने तथा व्याध आदि ने श्रेष्ठ गति को प्राप्त किया है। सभी देवता एवं मुनि आदि इस व्रत को धारण करते हैं तथा अभिलाषित फल प्राप्त करते हैं।

हे नारद ! शिवरात्रि के व्रत को सर्वोपरि जानना चाहिए। यद्यपि प्रत्येक महीने की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को यह व्रत होता है, परन्तु माघ-मास में इस व्रत को विशेष रूप से आवश्यक कहा गया है। इसी प्रकार फाल्गुन मास की चतुर्दशी को भी यह व्रत अत्यन्त आवश्यक कहा गया है। अर्द्धरात्रि तक जो चतुर्दशी की तिथि रहे, उसी को शिवव्रत के लिए उपयुक्त कहा गया है। यदि इस शिव व्रत को धारण करके उसी दिन पारण करें तो उससे अधिक शुभ अन्य कुछ नहीं है।

यदि चन्द्रमा अस्त हो जाए तो पारण नहीं होता। शिवरात्रि व्रत का पारण बहुत सोच-विचार करने के उपरान्त करना चाहिए। जिस रात्रि को व्रत किया जाए, उसके चारों प्रहरों में भगवान् सदाशिव का चार बार पूजन किया जाना, रात्रि के समय पारण न करना तथा चन्द्रास्त के संगम को भी त्याग देना उचित है। चन्द्रमा के सहयोग बिना यदि दिन में पारण हो सके तो ऐसा सुयोग बड़े भाग्य से ही प्राप्त होता है। यदि चतुर्दशी तिथि पारण के लिए प्राप्त न हो सके तो अमावस्या में ही पारण करना चाहिए।

हे नारद ! इस प्रकार शिवरात्रि का व्रत प्रत्येक वर्ष में एक बार प्रमुख रूप से होता है। इस व्रत को करने से ब्रह्म हत्या आदि के पाप दूर हो जाते हैं। अन्य कोई भी व्रत इस व्रत के समान नहीं है। जो मनुष्य इस व्रत को नहीं करता उसे अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। ऐसे मनुष्य का कोई भी कार्य पूरा नहीं होता। वह संसार में रहकर रोगों में ग्रस्त रहता है तथा मृत्यु के उपरान्त भी मुक्ति प्राप्त नहीं करता। यदि यह व्रत कभी अनजान में भी हो जाये तो भी व्रत करने वाले को श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। यदि कोई पापी मनुष्य इस व्रत को धारण करता है तो उसे दोनों लोकों में प्रसन्नता प्राप्त होती है। जो मनुष्य निश्चयपूर्वक इस व्रत को धारण करता है, उसे देखकर यमराज भी भयभीत होने लगते हैं। ऐसे मनुष्य पर शिवजी सदैव प्रसन्न रहते हैं तथा उस पर अत्यन्त कृपा करके लोक में सभी पदार्थ तथा परलोक में मुक्ति प्रदान करते हैं। शिवरात्रि व्रतधारी का सम्पूर्ण कुल भी मुक्त हो जाता है तथा देवता, मुनि आदि सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। हे नारद ! इस प्रकार मैंने तुमसे शिवरात्रि व्रत की महिमा का वर्णन किया। अब चारों प्रहर की पूजा-विधि का वर्णन सुनो।''

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म करने के उपरान्त सर्व प्रथम प्रसन्नतापूर्वक शिव-मन्दिर में जाकर भगवान्

सदाशिव की स्तुति करनी चाहिए। तदुपरान्त व्रत धारण करने वाले को पवित्रतापूर्वक अपने हाथ में पानी लेकर यह संकल्प करना चाहिए कि हे भगवान् सदाशिव ! मैं आपका व्रत कर रहा हूँ; इसमें किसी प्रकार का विघ्न न पड़े। इस प्रकार संकल्प करने के उपरान्त व्रतधारी को चाहिए कि वह पूजन की सम्पूर्ण सामग्री को एकत्रित कर, उस स्थान पर दक्षिण तथा पश्चिम की ओर आसन बिछाकर पूजन की सामग्री को वहाँ रखे, जहाँ कोई प्रसिद्ध शिवलिंग स्थापित हो। इसके उपरान्त व्रतधारी को उचित है कि वह सामर्थ्यानुसार श्रेष्ठ वस्त्र को पहनकर आसन पर बैठे और तीन बार आचमन करने के उपरान्त शिवजी का पूजन प्रारम्भ करे। नृत्य-गायन सहित स्तुति में प्रवृत्त होकर शिवजी के मंत्रों सहित पार्थिव पूजन करना श्रेष्ठ कहा गया है।

हे नारद ! व्रतधारी को उचित है कि शिवरात्रि के माहात्म्य को या तो स्वयं पढ़े अथवा किसी अन्य के द्वारा श्रवण करे। कथा कहने वाले की अनेक प्रकार की सेवा-पूजा करना आवश्यक है। शिवजी को श्रेष्ठ वस्तुओं का भोग लगाने के उपरान्त, चारों प्रहरों में संकल्प करके शिवलिंग का पूजन करना श्रेष्ठ कहा गया है। शिवरात्रि को रात भर जागरण करके बड़ा उत्सव मनाना चाहिए। प्रातःकाल होने पर पुनः स्नान करके शिवजी का पूजन करना श्रेष्ठ कहा गया है। प्रातःकाल स्तुति करने के उपरान्त व्रतधारी को भगवान् सदाशिव के प्रति यह विनय करनी चाहिए कि हे प्रभो ! मैंने श्रद्धापूर्वक आपके व्रत में अपना मन लगाया है। अस्तु आप मुझे अपना सेवक जानकर प्रसन्न हों तथा मेरे सम्पूर्ण मनोरथों को पूरा करें। इतना कहकर शिवजी के ऊपर पुष्पांजलि छोड़नी चाहिए। इस प्रकार व्रत की क्रियाएँ समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों को दान देना चाहिए तथा अपनी शक्ति के अनुसार शिवभक्तों, ब्राह्मणों तथा यतियों को श्रेष्ठ भोजन, दान आदि द्वारा प्रसन्न करना चाहिए।

हे नारद ! अब मैं चारों प्रहरों में पूजन की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। सन्ध्या के समय सर्वप्रथम सन्ध्या आदि सम्पूर्ण

नित्यकर्मों से निश्चिंत होकर पहले प्रहर में इस प्रकार पूजन करें—
"सर्वप्रथम सम्पूर्ण सामग्री एकत्र कर शिवजी के दोनों लिंगों अर्थात् पार्थिव तथा शिवलिङ्ग में से जो भी उस स्थान पर हो, का पंचामृत द्वारा अलग-अलग मंत्र पढ़ते हुए पूजन करें। इसके उपरान्त एक सौ आठ मंत्र पढ़कर शिवजी को जलधारा से स्नान करावें। फिर मंत्र पढ़ता हुआ सम्पूर्ण सामग्रियों द्वारा शिवजी का पूजन करें। अपने गुरु द्वारा दिये गये मंत्र से शिवजी का पूजन किया जाए या पंचाक्षरी मंत्र से शिवजी का पूजन किया जाए अथवा केवल शिवजी का नाम लेकर ही पूजन करना उचित है। चन्दन, अक्षत, काले तिल, कमल पुष्प, कनेर के पुष्प आदि सभी पूजन की श्रेष्ठ वस्तुओं को शिवजी के आठ-आठ नाम लेकर चढ़ाना चाहिए। उत्तम सुगन्धित धूप देने के उपरान्त आरती करनी चाहिए तथा श्रेष्ठ पकवान चढ़ाकर बेल का अर्घ्य देना चाहिए। इस प्रकार पूजन करने के उपरान्त दंडवत् करते हुए शिवजी का ध्यान करना चाहिए। यदि पूजन करने वाला किसी अन्य देवता का भक्त हो तो उसे उचित है कि वह पंचाक्षरी मंत्र द्वारा शिवजी का जप करे। शिवजी के सम्मुख गोमुद्रा दिखाकर, जल में बैठकर तर्पण करें तत्पश्चात् पाँच ब्राह्मण को भोजन कराने का संकल्प करें। यदि इतनी सामर्थ्य न हो तो केवल एक ही ब्राह्मण को भोजन कराने का संकल्प करें। इस प्रकार जब तक पहला प्रहर व्यतीत न हो जाए, तब तक विविध प्रकार के उत्सव मनाता रहें।

हे नारद ! दूसरा प्रहर आरम्भ होने पर भी इसी प्रकार शिवजी का पूजन करे, परन्तु इस पूजन की विधि में इतना अधिक कहा गया है कि जौ का लखोहर तथा कमल के पुष्प पहले प्रहर से दुगुने होने चाहिएं तथा घृत, शहद सहित दूध का नैवेद्य लगाकर वीजपूर का अर्घ्य देना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर शिवजी के नाम का जप भी पहले प्रहर से दुगुना कर देना चाहिए।

हे नारद ! तीसरे प्रहर की पूजा भी इसी प्रकार करनी चाहिए, परन्तु उसमें इतना अधिक कहा गया है कि गेहूँ का लखोहर तथा मदार के

फूल इस पूजन में होने उचित हैं। अनेक प्रकार के धूप, दीप, नैवेद्य के लिए पूजा अनेक प्रकार के साग, अर्घ्य के लिए पक्का अनार तथा कपूर की आरती इन सबको पहले प्रहर से दूना करना चाहिए तथा शिवजी के मंत्र का जप भी पूर्व की अपेक्षा दुगुना करना उचित है।

हे नारद ! चौथे प्रहर की पूजा में इतना अधिक और कहा है कि मूँग, उड़द तथा प्रियंगु अर्थात् काकु का लखोहर, सातों प्रकार के अन्न, शंखाहुली तथा अन्न से बने हुए मिष्ठानों का नैवेद्य अथवा उड़द का नैवेद्य बनाकर भोग लगाना चाहिए। अनेक प्रकार के फलों अथवा केले के फल का अर्घ्य देना उचित है। शिवजी के मंत्र का पहले से दूना जप करके बहुत उत्सव मनाना चाहिए।

हे नारद ! चारों प्रहर की पूजा में शिवजी के ऊपर असंख्य विल्वपत्रों को चढ़ाना शुभ कहा गया है, क्योंकि विल्वपत्र शिवजी को अत्यन्त प्रिय हैं। बहुत-से मनुष्यों को एकत्रित कर चारों प्रहर नृत्य-गायन आदि का उत्सव करना चाहिए। इस प्रकार रात्रि भर जागरण करते हुए, शिवजी का ध्यान धरना सर्वोपरि कहा गया है। अन्य किसी भी प्रकार का कोई भी संकल्प मन में लाना उचित नहीं है। शिवरात्रि का माहात्म्य सुनते हुए रात्रि को प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करना चाहिए। व्रतधारी को उचित है कि वह चारों प्रहर एक ही आसन पर बैठे तथा लोभ-रहित होकर यथाशक्ति धन खर्च करे। सूर्योदय होने पर व्रतधारी ब्राह्मणों को दंडवत् करता हुआ, अपने आसन से उठे। अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हो, अनेक प्रकार के उपहारों को एकत्रित कर, शुद्ध जल से भगवान् सदाशिव का अभिषेक करना चाहिए। फिर जितने ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प किया हो, उनके अतिरिक्त और भी जितने हो सके, उतने ब्राह्मणों को भोजन करावे। साथ ही भोजन कराते समय और जो भी लोग आ जावें, उन सब लोगों को भोजन करावें।

हे नारद ! जिन कार्यों को मैंने तुम्हें बताया है, वे सब धनवानों के करने योग्य हैं, परन्तु जो निर्धन हों, वह यदि उपर्युक्त सामग्रियों से

पूजन न कर सकें तो उसे कोई दोष नहीं होता। इस प्रकार चारों प्रहर तक पूजन करने के उपरान्त प्रातःकाल स्नान करके फिर पूजन करे और ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेकर समस्त देवताओं सहित शिवजी का विसर्जन करें। जब इन कार्यों से निवृत्त हो जावे, तब ब्राह्मणों से आज्ञा प्राप्त कर, अपने परिवार सहित भोजन करें। हे नारद ! मैंने विष्णु जी से शिवरात्रि-व्रत की जो विधि सुनी थी, वह तुम्हें सुनायी है।''

ॐ ॐ ॐ

तीसरा अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! आपने शिवरात्रि व्रत की विधि का जो वर्णन किया, अब मेरी यह इच्छा है कि आप उस उद्यापन की विधि को और सुनाने की कृपा करें, जिसे करने से शिवजी का व्रत पूर्ण होता है। जिसके द्वारा शिवजी अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर, दोनों लोकों की कामनाएँ पूर्ण करते हैं।''

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जब चौदह वर्ष तक शिवजी का व्रत निरन्तर कर लें, तब उसका उद्यापन करना उचित है। उद्यापन की विधि इस प्रकार है कि त्रयोदशी के दिन संयमपूर्वक रहे तथा चतुर्दशी के दिन निर्जल व्रत धारण करे। शिवजी का धाम दिव्यमंडल जिसे गौरी-तिलक कहा जाता है, की रचना करके लिंगतोभद्र तथा सर्वतोभद्र चक्र बनावे। यहाँ आठ कलशों की स्थापना कर, उन्हें फल-फूल तथा वस्त्रों से सुसज्जित करे। कलश के ऊपर शिव-गिरिजा एवं नन्दीश्वर की स्वर्ण-प्रतिमाओं की स्थापना करे। इन तीनों मूर्तियों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण से बनवाना चाहिए। इतना सब करके, दीपक जलाकर दाहिनी ओर रखे तथा प्रसन्नतापूर्वक रात्रि भर जागरण करके, चारों प्रहरों में शिवजी का चार बार पूजन करे।

हे नारद ! इस प्रकार रात्रि भर पूजन करने के उपरान्त प्रातःकाल होने पर पुनः स्नान करे तथा सबके साथ मिलकर शिवजी का पूजन करे। फिर हवन करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावे और उन्हें

वस्त्र, आभूषण, धन आदि दान में देकर प्रसन्न करे। जिस आचार्य को वरण किया हो, उसकी सबसे अधिक सेवा करे। उसे विधिपूर्वक गोदान करे तथा समस्त सामग्री सहित शिव-गिरिजा एवं नन्दी की स्वर्णमूर्तियाँ उसी को दे दे। आचार्य को दण्डवत् प्रणाम करने के पश्चात् शिवजी को पुष्पाञ्जलि भेंट करता हुआ स्तुति करें। तदुपरान्त ब्राह्मणों की आज्ञानुसार स्वयं भी परिवार सहित भोजन करे। जो लोग साधन सम्पन्न हों, उन्हीं के लिए यह उद्यापन कहा गया है। जो सामर्थ्यहीन हों, वे साधारण रीति से पूजन करके शिवजी को केवल पुष्पांजलि भेंट द्वारा ही अपना उद्यापन पूरा कर सकते हैं। उद्यापन कर लेने से व्रत पूर्ण हो जाता है।

ॐ ॐ ॐ

चौथा अध्याय

नारद जी ने कहा—"हे पिता ! शिवरात्रि व्रत का माहात्म्य सुनने से अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है। अस्तु, आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि जिन लोगों ने बिना जाने हुए शिवरात्रि का व्रत किया, उन्हें क्या फल प्राप्त हुआ है?" यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे पुत्र ! इस सम्बन्ध में तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ, जो सब प्रकार से आनन्द करने वाली है। पुरातन समय में एक व्याध निषाद नाम से प्रसिद्ध था। वह सभी जीवों को दुःख देने वाला, हिंसक तथा अत्यन्त कठोर था। उसका परिवार बहुत बड़ा था। वह प्रतिदिन वन में जाकर जीव-जन्तुओं का संहार करता तथा चोरी आदि द्वारा धन प्राप्त करता था। बाल्यावस्था से ही उसने कोई शुभ कर्म नहीं किया था। जिस वन में वह रहता था, वहाँ किसी को चैन नहीं लेने देता था। इस प्रकार के कुकर्म करते हुए उसे बहुत समय व्यतीत हो गया।

हे नारद ! एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि उसके घर में भोजन समाप्त हो गया। तब उसके माता, पिता, स्त्री आदि ने क्षुधातुर होकर उससे यह कहा—"हम लोग भूखे मर जाते हैं। अस्तु, तुम हमारे लिए

भोजन का प्रबन्ध करो।" उन लोगों की बात सुनकर निषाद अपना धनुष-बाण ले एक वन में जा पहुँचा। जिस दिन की यह घटना है वह शिवरात्रि व्रत का दिन था, परन्तु निषाद इस बारे में कुछ नहीं जानता था। अस्तु, उस दिन सन्ध्या तक वन में फिरने पर भी दुर्भाग्यवश निषाद को कोई जीव-जन्तु दिखाई नहीं दिया। जब रात्रि का समय आया, तब वह निषाद अपने मन में अत्यन्त व्याकुल होकर यह विचार करने लगा कि मुझे यहाँ कोई शिकार तो मिला नहीं, तब घर जाकर ही क्या करूँगा? तदुपरान्त वह यह सोचकर एक नदी के तट पर जा पहुँचा।

हे नारद ! इस प्रकार निश्चय करके निषाद नदी के तट पर जो एक बेल का वृक्ष था उसके ऊपर छिपकर बैठ गया और टकटकी लगा यह देखने लगा कि यदि कोई जीव नदी के तट पर पानी पीने आवे, तो मैं उसका संहार कर डालूँ। जब रात्रि का पहला प्रहर समाप्त होने को हुआ, उस समय वहाँ एक प्यासी हिरणी उछलती-कूदती हुई आ पहुँची। उसे देखते ही निषाद ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया, जिसका प्रभाव यह हुआ कि उस धनुष-बाण के आघात से बिल्व वृक्ष के कुछ पत्ते तथा निषाद के पास रखा हुआ पीने का शुद्ध जल, वृक्ष के नीचे स्थापित शिवलिंग पर गिर पड़े। इस प्रकार भाग्यवश उसके पहले प्रहर की पूजा स्वयं ही पूर्ण हो गयी। उस अनजान अवस्था में शिव पूजन हो जाने के प्रभाव से निषाद के अनेक पाप नष्ट हो गये।

हे नारद ! उधर हिरणी ने जब निषाद को बेल के वृक्ष के ऊपर बैठे हुए तथा धनुष ताने हुए देखा तो उसे सम्बोधित करते हुए पूछा—"हे निषाद ! तुमने अपना धनुष क्यों ताना है?" निषाद ने उत्तर दिया—"हे हिरणी ! मेरे परिवार के सभी लोग दिन भर के भूखे हैं। अस्तु मैंने यह विचार किया है कि मैं तुझे मारकर तेरे माँस से सब लोगों की क्षुधा का निवारण करूँ।" यह सुनकर हिरणी ने चिन्तित होकर अपने मन में यह विचार किया कि मुझे किसी प्रकार इसका संकट दूर करना चाहिए। अस्तु, उसने निषाद को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे

निषाद ! मेरा धन्य भाग्य है जो तुम मेरे माँस द्वारा अपना तथा अपने पारिवारिक जनों का मनोरथ पूर्ण करना चाहते हो। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरे माँस से तुम्हारे परिवार का पेट भर जायेगा तथा मुझे इसमें कोई आपत्ति भी नहीं है तथापि मैं यह चाहती हूँ कि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो।''

हे नारद ! हिरणी की बात सुनकर निषाद ने पूछा—''तुम क्या कहना चाहती हो?'' हिरणी बोली—''हे निषाद ! मेरे घर पर छोटे-छोटे अनेक बच्चे हैं। अस्तु, मैं यह चाहती हूँ कि उन सबको अपनी बहन को सौंप आऊँ। इतना करके मैं तुम्हारे पास लौट आऊँगी, तब तुम मुझे मारकर अपना प्रयोजन सिद्ध करना। संसार में सत्य के समान और कोई वस्तु नहीं हैं। यह पृथ्वी तथा आकाश भी सत्य के बल पर ही ठहरे हुए हैं। मैं भी अपने वचन को अवश्य सत्य सिद्ध करूँगी।'' इस प्रकार उस हिरणी ने घर हो आने देने के लिए निषाद से बहुत प्रार्थना की, परन्तु निषाद ने उसे स्वीकार नहीं किया।

हे नारद ! यह देखकर हिरणी ने अपने मन में अत्यन्त भयभीत हो, निषाद को विश्वास दिलाते हुए, इस प्रकार पुनः कहना आरम्भ किया—''हे निषाद ! यदि मैं अपने बच्चों का प्रबन्ध करके तुम्हारे पास लौटकर न आऊँ, तो मुझे वह पाप लगे जो वेद के विरुद्ध आचरण करने वाले मनुष्य को लगता है। उस समय निषाद ने हिरणी की बात पर विश्वास करके, उसे घर हो आने की आज्ञा दे दी। तब वह हिरणी जल पीने के उपरान्त अपने घर को चली गयी और निषाद उसी पेड़ पर बैठा हुआ, उसके पुनरागमन की प्रतीक्षा करने लगा।

हे नारद ! जब रात्रि का दूसरा प्रहर आया, उस समय उस हिरणी की बहन अपनी बहन को ढूँढती हुई उसी स्थान पर आ पहुँची। निषाद ने उसे देखते ही फिर अपने धनुष पर बाण को चढ़ाया, जिसके कारण अनेक बिल्वपत्र टूटकर शिवलिंग पर जा गिरे और उसके दूसरे प्रहर का शिवपूजन अपने आप हो गया। इस अज्ञानावस्था के पूजन से भी असंख्य पाप नष्ट हो गये। तब दूसरी हिरणी ने पहली हिरणी की भाँति

व्याध से धनुष चढ़ाने का कारण पूछा और व्याध ने अपना उत्तर दुहरा दिया। तदुपरान्त उस हिरणी ने अपने मन में अत्यन्त भयभीत होकर इस प्रकार कहा—"हे निषाद ! मेरा बड़ा भाग्य है जो तुम मेरे माँस द्वारा अपनी तथा अपने परिवार की क्षुधा का निवारण करना चाहते हो। यह शरीर नाशवान् है। अस्तु, इसके द्वारा यदि परोपकार हो तो इससे अधिक आनन्द की बात क्या होगी? फिर भी मैं यह चाहती हूँ कि मैं अपनी छोटी लड़की को अपने पति को सौंप आऊँ, तत्पश्चात् यहाँ आकर तुम्हारे बाण का लक्ष्य बनूँ।" जब निषाद ने उसकी प्रार्थना को अस्वीकार किया, तब उस हिरणी ने विश्वास दिलाते हुए इस प्रकार कहा—"यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग करूँ तो मुझे वह पाप लगे जो अपनी स्त्री को छोड़कर परायी स्त्री के साथ भोग करने पर लगता है।" यह सुनकर निषाद ने उसे भी घर हो आने की आज्ञा दे दी। तब वह तो पानी पीकर चली गयी और निषाद उसके लौटने की प्रतीक्षा में जगता हुआ, धनुष ताने अपने स्थान पर बैठा रहा।

हे नारद ! उधर जब हिरणी देर तक घर लौटकर न पहुँची और रात्रि का तीसरा प्रहर आया, तब हिरण उसे ढूँढने के लिए स्वयं भी चिन्तातुर तथा तृषातुर हो, नदी की ओर चल दिया। जब वह तट पर पहुँचा तो उसे देखकर भी निषाद ने अपने धनुष को खींचा, जिसके कारण पेड़ से कुछ बिल्वपत्र फिर शिवलिंग के ऊपर गिर पड़े। इस प्रकार तीसरे प्रहर का पूजन पूर्ण हो गया। इस पूजन से निषाद के शेष बचे पापों में आध पाप और नष्ट हो गये। जब हिरण ने निषाद को धनुष खींचे हुए देखा तो उसका कारण पूछा तथा निषाद ने भी पहले समान उत्तर दे दिया। उसे सुनकर हिरण बोला—"हे निषाद ! मेरे धन्य भाग्य हैं जो तुम मेरे शरीर द्वारा अपने परिवार को तृप्त करना चाहते हो। मेरा एक बालक है, तुम उसे मुझे अपनी स्त्री को सौंप आने दो। बालक को सौंपने के उपरान्त मैं फिर यहीं आ जाऊँगा। तब मुझे मार कर अपनी अभिलाषा पूर्ण करना।"

हे नारद ! यह सुनकर निषाद ने उत्तर दिया—"हे हिरण ! तुम्हारे

समान दो पशु और भी पहले यहाँ आकर जा चुके हैं। वे भी तुम्हारे ही समान प्रतीज्ञा करके यहाँ से गये, परन्तु अभी तक लौटकर नहीं आये। इस प्रकार दो बार धोखा खाने के उपरान्त अब मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास करने को तैयार नहीं हूँ। मैं तुम्हें किसी भी प्रकार लौटकर नहीं जाने दूँगा।'' निषाद ने ऐसे वचन सुनकर हिरण बोला—''हे व्याध ! मैंने अब तक सत्य की रक्षा की है और जीवन में कभी भी झूठ नहीं बोला है। मैं शपथपूर्वक तुमसे यह कहता हूँ कि चाहे जो हो, मैं तुम्हारे पास अवश्य लौटकर आऊँगा।'' यह सुनकर व्याध ने उसे भी जाने की आज्ञा दे दी। तब वह हिरण भी पानी पीकर अपने घर लौट गया।

हे नारद ! जिस समय घर पर हिरण तथा हिरणी सब एक हुए और उन्होंने अपना-अपना वृत्तान्त कहा तो वह एक-दूसरे का हाल सुनकर अत्यन्त शोक करने लगे। तब जो हिरणी सबसे पहले वधिक को विश्वास दिलाकर लौट आयी थी, वह अपने पति से इस प्रकार कहने लगी—''हे स्वामी ! सर्वप्रथम मैं उस बधिक से प्रतिज्ञा करके आयी हूँ। आप यहीं घर में रहकर बच्चों का पालन करते रहें।'' यह सुनकर दूसरी हिरणी ने कहा—''नहीं बहन ! यह कभी नहीं हो सकता। पहली स्त्री घर की स्वामिनी कहलाती है। अस्तु मैं आपको न जाने देकर स्वयं उस वधिक के पास जाऊँगी।'' अपनी दोनों स्त्रियों की ऐसी बातें सुनकर हिरण ने कहा—''पुरुष के रहते हुए स्त्री का जाना श्रेष्ठ नहीं है। अस्तु मैं अपने माँस से उस वधिक के परिवार को तृप्त करूँगा। बच्चों का पालन केवल माता ही कर सकती है।'' अपने पति के यह वचन सुनकर हिरणियों ने एक साथ कहा—''हे स्वामी ! हम विधवा होकर इस घर में कभी नहीं रहेंगी।

हे नारद ! इस प्रकार उन तीनों ने जब स्वयं जाने के लिए आग्रह किया, तब वे सबके सब उस वधिक के पास चले दिये। अपनी माताओं तथा पिता को जाते हुए देखकर बच्चों ने यह सोचा कि जब हमारे रक्षक ही नहीं रहेंगे तो हम किसके आश्रय पर जिएंगे। अस्तु, हमें भी इनके साथ चलना उचित है। तब वे भी उनके साथ चल दिये। इस

प्रकार हिरण का सम्पूर्ण परिवार उस वधिक के समीप जा पहुँचा। जब वधिक ने उन सबको अपने पास आते हुए देखा तो पूर्व की भाँति फिर अपना धनुष चलाया तो बिल्वपत्र तथा जल पुनः शिवलिंग के ऊपर गिर पड़े और उसके चौथे प्रहर का पूजन समाप्त हो गया। चौथा पूजन होते ही वधिक के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये। तब उसे श्रेष्ठ बुद्धि तथा उत्तम ज्ञान की प्राप्ति हुई। जिस समय हिरण ने दोनों हिरणियों तथा बच्चों के सहित उसके पास जाकर यह कहा—"हे वधिक ! अब तुम हमारे शरीर को शुद्ध करके, हम सबका संहार करो।" निषाद अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि जिन पशुओं को बुद्धिहीन कहा जाता है, वे मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक धन्य हैं ; क्योंकि वे अपने शरीर को नष्ट करके भी पराया उपकार करने को तैयार रहते हैं। न जाने इन अशुभ कर्मों के कारण मैं किस अवस्था को प्राप्त होऊँगा?

हे नारद ! इस भाँति अपने मन में निश्चय करके वधिक ने आँखों से आँसू बहाते हुए उन हिरणों को सम्बोधित कर उच्च स्वर में कहा—"हे शुद्ध पशुओ ! तुम अपने घर लौट जाओ, तुम्हारा जीवन तथा तुम्हारा धर्म धन्य है। मैं तुम्हें प्रतिज्ञा के बन्धन से मुक्त करता हूँ।" जिस समय निषाद ने उच्च स्वर से यह शब्द कहा, उसी समय शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर उसके सम्मुख प्रकट हो गये। उन्होंने वधिक का हाथ पकड़ते हुए इस प्रकार कहा—"हे निषाद ! हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुमने शिवरात्रि का व्रत रखकर अपने सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर दिया है, अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर हमसे माँग लो।"

हे नारद ! भगवान् सदाशिव के श्रीमुख से यह वचन सुनकर निषाद उनके चरणों पर गिर पड़ा। फिर हाथ जोड़े हुए केवल यह कह सका—"हे प्रभो ! मैंने आपके दर्शन करके ही सब कुछ पा लिया है।" तब भगवान भूतभावन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका नाम स्कन्द रक्खा और स्वयं ही अनेक वर देते हुए यह कहा—"हे निषाद ! तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। तुम श्रृङ्गवेरपुर को अपनी राजधानी बनाकर, वहाँ सुखपूर्वक राज्य करो। तुम्हारे अनेक सन्तानें होंगी तथा सभी देवता तुम्हारी प्रशंसा किया करेंगे। हमारे भक्त रामचन्द्र जी तुम्हें

अपना सेवक जानकर अत्यन्त कृपा करेंगे। वे तुम्हारे घर पधारकर तथा तुम्हें अपना मित्र बनाकर संसार में यश प्रदान करेंगे।'' इतना कहकर भगवान् सदाशिव मौनं हो गये।

हे नारद ! भगवान् भूत भावन के दर्शन पाने से उन हिरणों के भी समस्त पाप नष्ट हो गये। तब उन्होंने भी मृगयोनि त्यागकर देव स्वरूप प्राप्त किया। तदुपरान्त वे शिवजी की कृपा से विमानों पर आरूढ़ हो, देवलोक को चले गये। वे मृग आज तक नक्षत्र रूप से आकाश में दिखाई देते हैं। इस चरित्र को करने के उपरान्त भगवान् सदाशिव प्रत्यक्ष रूप में तो अन्तर्धान हो गये तथा लिंगरूप में वहीं स्थित होकर व्याधेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। व्याधेश्वर शिवलिंग अर्वुद गिरि पर स्थित है। श्री शिवजी की कृपा से वह व्याध भी स्कन्द नाम से प्रसिद्ध हो, श्रृंगवेरपुर में जा पहुँचा तथा समस्त भीलों का राजा बनकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा। जब त्रेतायुग में राजा रामचन्द्र जी ने अवतार लिया, तो उन्होंने स्कन्द के घर पहुँचकर उसे बहुत सम्मानित किया। रामचन्द्र जी ने अत्यन्त कृपा करके उसे शिवजी की भक्ति प्रदान की तथा शिवजी के अनुग्रह से वह इस लोक में सब प्रकार के सुख भोगकर, अन्त में सायुज्य मृत्यु को प्राप्त हुआ।

हे नारद ! शिवरात्रि के व्रत की ऐसी महान् महिमा है कि उस व्याध ने अनजान में ही शिवरात्रि का व्रत करके मुक्ति को प्राप्त कर लिया। सभी वेद तथा पुराणों ने शिवरात्रि व्रत को सब व्रतों का स्वामी कहा है। व्याधेश्वर शिवलिंग का यह चरित्र भी सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूरा करने वाला है। जो लोग इस चरित्र को पढ़ते, सुनते अथवा दूसरों को सुनाते हैं वे दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त करते हैं।''

ॐ ॐ ॐ

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! अब मैं तुमसे वह वृत्तान्त कहता हूँ, जिस प्रकार गुणनिधि नामक ब्राह्मण ने शिवरात्रि व्रत करके आनन्द

प्राप्त किया था। गंगा के तट पर द्रुपदपुरी नामक एक नगर बसा हुआ है। उस नगर को कम्पिला कहकर भी पुकारते हैं। वह स्थान अत्यन्त पवित्र है, क्योंकि वहाँ भगवान् सदाशिव रामेश्वर के नाम से तथा भगवती सत्यकाली के नाम से विराजमान हैं। उस नगर में यज्ञदत्त नामक ब्राह्मण शिवजी का परम भक्त था। वह दीक्षित नाम से प्रसिद्ध था। राजा ने उस ब्राह्मण को बहुत सम्मान तथा धन देकर प्रसन्न किया था। उसकी पत्नी परम धर्मात्मा एवं गृहस्थी के कार्यों में अत्यन्त कुशल थी। कुछ समय बाद उस ब्राह्मण के घर एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम गुणनिधि रखा गया। यज्ञदत्त ने उसे धर्म-कर्म का ज्ञान कराया एवं सम्पूर्ण विद्याएँ पढ़ायीं फिर बड़े होने पर उसका विवाह भी कर दिया।

हे नारद ! कुछ समय पश्चात् गुणनिधि बुरी संगति में पड़कर महादुष्ट बन गया। उसने वेद तथा पुराणों के धर्म को छोड़ दिया। माता ने स्वयं गुणनिधि को अनेक बार शुभ मार्ग का उपदेश दिया, परन्तु वह किसी भी प्रकार नहीं माना। धीरे-धीरे वह महाव्यभिचारी, चोर, मद्यपी, चुगुलखोर तथा माँसभक्षी बन गया। वह अपनी स्त्री को छोड़कर पर स्त्रियों के साथ रमण करने लगा। इन सब व्यसनों में उसने अपने पिता का धन नष्ट कर डाला। एक दिन वह अपने पिता की हाथ की अँगूठी को कहीं जुए में हार आया। संयोग से यज्ञदत्त ने उसे किसी एक जुआरी के हाथ में देख लिया उससे यह पूछा कि तुमने इस अँगूठी को कहाँ से पाया है। तब जुआरी ने उन्हें यह उत्तर दिया—"मैं इसे चुरा कर नहीं लाया हूँ। तुम्हारा पुत्र बहुत बड़ा जुआरी है, उसी से मैंने इस अँगूठी जुए में जीती है।"

हे नारद ! जुआरी की बात सुनकर यज्ञदत्त लज्जा से अपना मस्तक नीचाकर, घर लौट आया और अपनी स्त्री से गुणनिधि के बारे में यह पूछने लगा कि आजकल तुम्हारे पुत्र का चाल-चलन कैसा है। यद्यपि यज्ञदत्त को सब वृत्तान्त ज्ञात हो चुका था, फिर भी गुणनिधि किसी भी प्रकार के बुरे कर्म में नहीं है। यह सुनकर यज्ञदत्त ने क्रुद्ध हो कुश और

पानी माँगकर, गुणनिधि के नाम कुशोदक छोड़ दिया अर्थात् उसका त्याग कर डाला। यह देखकर गुणनिधि की माता ने हाथ जोड़कर अपने पति को समझाते हुए बहुत प्रार्थना की। तब यज्ञदत्त ने अपने क्रोध को शान्त कर लिया। परन्तु अब गुणनिधि ने अपने पिता के क्रोध का समाचार सुना तो वह उसके भय से रोता-पीटता हुआ घर से बाहर भाग गया।

हे नारद ! गुणनिधि को मार्ग में चलते-चलते जब सूर्यास्त हो गया, तब वह एक स्थान पर बैठकर रोने लगा। संयोगवश उस दिन शिवरात्रि थी। एक शिव भक्त पूजन की सामग्री सहित उसी मार्ग से जा रहा था, जहाँ गुणनिधि थक कर बैठा हुआ था। गुणनिधि को उस समय बड़ी ज़ोर की भूख लग रही थी। जब उसने यह देखा कि वे लोग उत्तमोत्तम पकवानों को शिवजी के ऊपर चढ़ाने के लिए ले जा रहे हैं, तो उसने सोचा कि मुझे भी इन लोगों के साथ शिव मन्दिर में जाना चाहिए। जब ये लोग इन वस्तुओं को शिवजी पर चढ़ाकर निद्रामग्न हो जायेंगे, तब मैं उन्हें उठाकर खा जाऊँगा, जिससे मेरी क्षुधा का निवारण हो जायेगा।

हे नारद ! इस प्रकार निश्चय करके उस शिव भक्त के पीछे चलकर, शिवालय में जा पहुँचा। शिव भक्तों ने मन्दिर के भीतर पहुँचकर षोडषोपचार द्वारा भगवान् सदाशिव की पूजा की, जिसे गुणनिधि ध्यानपूर्वक देखता रहा। तदुपरान्त जब वे लोग मूर्ति के पास से अलग हटकर कुछ ऊँघने लगे, तब वह सब को सोता हुआ जानकर मूर्ति के समीप जा पहुँचा और धीरे-धीरे पग बढ़ाता हुआ शिवजी पर चढ़े हुए नैवेद्य को उठाकर खा लेने की चेष्टा करने लगा। भक्त लोग बाहर के सहन में बैठे हुए थे तथा जहाँ शिवलिंग स्थापित था, वहाँ दीपक बुझ जाने के कारण अन्धकार हो गया था। गुणनिधि ने नैवेद्य को उठाने की इच्छा से अपने शरीर के वस्त्र से एक टुकड़ा फाड़कर सर्वप्रथम बत्ती जलायी, फिर उसने शिवजी के ऊपर चढ़े हुए नैवेद्य को

हाथ में उठा लिया। जब वह मन में अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ शीघ्रतापूर्वक शिवालय से बाहर निकला, उस समय संयोगवश किसी शिव भक्त के पावों से उसका पाँव टकरा गया, जिसके कारण उसकी निन्द्रा भंग हो गयी और वह चोर-चोर कहकर चिल्ला उठा।

हे नारद ! शोर हो जाने पर सब लोग उठ बैठे। उसी समय नगर के रक्षक भी उस स्थान पर आ पहुँचे। उन्होंने अपने बाणों द्वारा गुणनिधि को मार डाला। किसी पूर्वजन्म के पुण्य के कारण गुणनिधि मृत्यु के समय तक शिवनिर्माल्य नहीं खा सका था। जो लोग शिवजी पर चढ़े हुए प्रसाद को जिसे शिवनिर्माल्य कहा जाता है—खा लेते हैं, उन्हें बहुत पाप लगता है तथा उन्हें अनेक प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं। सब वेद तथा पुराणों ने इस बात की पुष्टि की है कि शिव-निर्माल्य खाने से बड़ा पाप लगता है। अस्तु, गुणनिधि की मृत्यु हो जाने पर यमराज के दूत उसे बाँधने के लिए आये, उसी समय शिवजी ने अपने गणों को बुलाकर यह आज्ञा दी—"हे गणो ! गुणनिधि ने शिवरात्रि का व्रत रखकर हमारे पूजन को अपनी आँखों से देखा है तथा हमारा निर्माल्य भी उसने नहीं खाया है। इसके अतिरिक्त उसने दीपक जलाकर अपने हाथ से हमारी आरती उतारी है। इसलिए हमने उसके सभी पाप नष्ट कर दिये हैं और उसे अपना सेवक बना लिया है। जो व्यक्ति शिवरात्रि के दिन हमारा पूजन देखता है, वह हमें अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि शिवरात्रि का व्रत सब व्रतों से अधिक श्रेष्ठ है। अस्तु, हमारी कृपा से वह कलिंग देश का राजा होगा, तदुपरान्त कुबेर बनकर हमारे मित्र के नाम से प्रसिद्ध हो, तीनों लोकों में सुयश प्राप्त होगा।"

हे नारद ! शिवजी के मुख से यह आज्ञा सुनकर गणों ने यमदूत के पास पहुँचकर, उनके हाथ से गुणनिधि को छीन लिया और उसे शिवजी के पास ले आये। शिवजी की कृपा से गुणनिधि कलिंग देश का राजा होकर दम नाम से प्रसिद्ध हुआ। तदुपरान्त वह कुबेर बनकर, शिवजी के मित्र के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ।"

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे पुत्र ! पूर्वकाल में सौमणि नामक एक ब्राह्मण-पुत्री परम सुन्दरी थी। उसके पिता ने एक योग्य ब्राह्मण-पुत्र के साथ उसका विवाह कर दिया। दोनों पति-पत्नी सुखपूर्वक विहार करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगे। परन्तु संयोगवश उसका पति युवावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। पति के मरने पर कुछ दिनों तक तो सौमणि शुद्ध आचरण से अपना समय व्यतीत करती रही, परन्तु बाद में कामदेव के वेग को सहन न कर सकने के कारण व्यभिचारिणी हो गयी।

हे नारद ! एक दिन जब वह वन में भ्रमण कर रही थी, उसी समय एक शूद्र से उसकी भेंट हो गयी। वह शूद्र उसे अपनी स्त्री बनाकर घर ले आया। उसके साथ रहकर सौमणि मद्य तथा माँस का भी भक्षण करने लगी। शूद्र के द्वारा उसने अनेक सन्तानों को भी जन्म दिया। एक दिन उसका शूद्र पति कहीं बाहर गया हुआ था। उसके पीछे सौमणि ने मद्यपान किया और माँस खाने की इच्छा से गोशाला में, जहाँ बहुत से बकरे भी बँधा करते थे, जा पहुँची। वहाँ उसने रात्रि के अन्धकार में एक बछड़े को बकरा समझकर मार डाला। जब वह उसे मारकर घर के भीतर लायी और यह जाना कि यह बकरा नहीं अपितु बछड़ा है, तब वह शिव-शिव शब्द का उच्चारण करने लगी। परन्तु इतने पर भी बछड़े के माँस को खा गयी तथा उसने कुछ माँस बाहर फेंककर यह प्रसिद्ध कर दिया कि उसे सिंह ने खा लिया है।

हे नारद ! मृत्यु के उपरान्त सौमणि ने एक चाण्डाली के घर में जन्म लिया। वहाँ वह जन्म से ही अंधी हुई। उसके माता-पिता उसे छोटी अवस्था में ही छोड़कर मर गये। अन्धी होने के कारण किसी ने उसके साथ विवाह नहीं किया। फिर उसे कुष्ठ रोग भी हो गया। एक दिन फाल्गुन मास की चतुर्दशी को जब शिव भक्त गोकर्ण क्षेत्र के मेले में जा रहे थे, तो वह भी भोजन पाने की इच्छा से उनके पीछे-पीछे चल

दी। वहाँ वह दोनों हाथ फैलाकर भिक्षा माँगती थी, परन्तु कोई भी उसके घृणित रूप को देखकर पास नहीं आता था। संयोगवश किसी एक शिवभक्त ने थोड़े-से बिल्वपत्र उसके हाथ पर रख दिये। जब उसने यह देखा कि वे पत्ते खाने योग्य नहीं हैं, तो उसने क्रुद्ध होकर नीचे फेंक दिये। भाग्यवश से बिल्वपत्र एक शिवलिंग पर जा गिरे। तब अन्धी की उस अज्ञानावस्था की पूजा से शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। रात्रि भर माँगते रहने पर भी किसी ने उसे खाने कुछ नहीं दिया, जिससे अज्ञानावस्था में उसका जागरण तथा निर्जल व्रत भी पूर्ण हो गया।

हे नारद ! प्रातःकाल होने पर जब सब लोग अपने-अपने घरों को लौटने लगे तो वह अन्धी चाण्डालिनी धीरे-धीरे चलती हुई अपने घर को चली, परन्तु मार्ग में ही एक स्थान पर गिरकर मर गयी। उस समय शिवजी ने अपने गणों को विमान सहित उसे लेने भेजा। जिस समय शिवजी के गण उस चाण्डालिनी को लेने के लिए पहुँचे, उस समय गौतम मुनि भी संयोगवश उसी स्थान पर जा पहुँचे। जब गौतम जी ने शिव गणों से यह पूछा कि तुम इस चाण्डालिनी को अपने साथ क्यों लिये जा रहे हो, तब गणों ने उन्हें सब हाल कह सुनाया। फिर शिवगण उस चाण्डालिनी को विमान पर बिठाकर शिवपुरी में ले गये। वहाँ वह मुक्त होकर भगवती गिरिजा की सखियों में सम्मिलित हुई। हे नारद ! शिवरात्रि का व्रत इस प्रकार श्रेष्ठ फल को देने वाला है। राजा मित्रसह भी इस व्रत को करके ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्त हुआ था। जो लोग इस आख्यान को पढ़ते अथवा सुनते हैं, उन्हें भी दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है।"

ॐ ॐ ॐ

सातवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! राजा मित्रसह ने शिवरात्रि का व्रत करके किस प्रकार ब्रह्म हत्या से मुक्ति पायी, वह

वृत्तान्त आप मुझे सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! शिवरात्रि का व्रत मुक्ति को देने वाला है। फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन इस व्रत का जागरण, शिवलिङ्ग दर्शन तथा उन पर बिल्वपत्र चढ़ाना अत्यन्त फलदायक कहा गया है। मोक्ष प्रदान करने में अन्य कोई व्रत इतना शीघ्र प्रभावशाली नहीं है।''

हे नारद ! वैवस्तव मनु के वंश में मित्रसह नामक एक राजा परम धर्मात्मा, वेद-पुराण तथा शास्त्रों को जानने वाला, नीतिज्ञ, दयालु, परम तेजस्वी, महावीर, ब्राह्मणों का सेवक, अत्यन्त सुन्दर तथा शुभ कर्मों को करने वाला हुआ। उसकी पत्नी का नाम दमयन्ती था, जो राजा नल की पत्नी दमयन्ती के समान परम-पतिव्रता थी। एक दिन वह राजा अपनी सेना सहित शिकार खेलने के लिए वन में गया। वहाँ उसने अनेक पशुओं का संहार किया। अन्त में उसकी रुचि ऐसी अधिक बढ़ी कि बहुत समय तक वह अपनी राजधानी में लौटकर नहीं आया। वन में ही डेरा डाले पड़ा रहा।

हे नारद ! उसी वन में राजा ने कमठ नामक एक राक्षस का संहार किया। उस राक्षस का दूसरा भाई भी वहाँ रहता था। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि राजा ने मेरे भाई को मार डाला है, तो वह उनसे बदला लेने का उपाय सोचने लगा। निदान वह मनुष्य का रूप धारण कर, राजा के पास पहुँचा और उनसे यह प्रार्थना करने लगा कि आप मुझे अपना सेवक बना लें। राजा ने उस राक्षस की माया को नहीं जाना तथा उसे अपना रसोइया नियुक्त कर लिया। जब कुछ दिन पश्चात् राजा अपनी राजधानी में लौटकर आया तो उसने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक अपने गुरु वशिष्ठ जी को भोजन का निमंत्रण भेजा। भोजन तैयार करने के लिए राजा ने उसी रसोइया रूपधारी राक्षस को आज्ञा दी।

हे नारद ! उस रसोइया रूपी राक्षस ने राजा का अहित करने के हेतु जो भोजन तैयार किया, उसमें मनुष्य का माँस पका दिया। जिस समय वह भोजन वशिष्ठ जी के सम्मुख परोसा गया, उस समय वशिष्ठ जी ने अपनी योग दृष्टि द्वारा यह जान लिया कि भोजन में मनुष्य का माँस

मिला हुआ है। तब उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा मित्रसह को यह शाप दिया कि तुम बारह वर्ष तक राक्षस बनकर रहोगे। वशिष्ठ जी द्वारा इस प्रकार शाप दिये जाने पर जब राजा ने विचार किया तो उसे यह भी ज्ञात हो गया कि इस भोजन में रसोइये रूपधारी राक्षस ने, मुझसे अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिए मनुष्य का माँस जान बूझकर मिला दिया है, फिर भी राजा का इसमें कोई दोष नहीं था। अस्तु, उन्होंने जब यह देखा कि वशिष्ठ जी ने निर्दोष होते हुए भी मुझे शाप दिया है, तो उसने यह इच्छा की कि मैं भी वशिष्ठ जी को शाप देकर यह प्रमाणित करूँ कि निर्दोष व्यक्ति को शाप देना उचित नहीं है। तब रानी ने राजा को वशिष्ठ जी को शाप देने से रोक दिया। राजा मित्रसह उसी क्षण राक्षस रूप हो गया और कल्माषपाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हे नारद ! राजा कल्माषपाद वन में जाकर बहुत-से जीवों को दुःख पहुँचाना तथा उन्हें मार कर खाने लगा। एक दिन उसने एक युवा ब्राह्मण को, जो अपनी युवा स्त्री के साथ रमण कर रहा था, जा पकड़ा। उस समय ब्राह्मणी ने राजा को बहुत कुछ समझाया, परन्तु कल्माषपाद ने उसकी एक भी बात नहीं मानी तथा उस ब्राह्मण का सिर फोड़कर खा लिया। यह देखकर ब्राह्मणी ने अपने पति के साथ सती होने का उद्योग किया तथा चिता पर बैठते हुए राजा को यह शाप दिया कि जिस समय तू अपनी स्त्री से भोग करेगा, उसी समय तेरी मृत्यु भी हो जायेगी। इतना कहकर वह स्त्री अग्नि में भस्म हो, पतिलोक में जा पहुँची।

हे नारद ! बारह वर्ष की अवधि बीतने पर राजा पुनः मनुष्य रूप को प्राप्त हुआ तो अपने राज्य में जा पहुँचा। तदुपरान्त एक दिन उसने अपनी रानी के साथ भोग करने की इच्छा प्रकट की। रानी ब्राह्मण पत्नी के शाप का समाचार पा चुकी थी। अस्तु उसने राजा को समझाते हुए भोग करने से रोका। उस समय राजा ने मैथुन के बिना अन्य संसारी भोगों को तुच्छ समझ, राजपाट त्याग, वन में रहने का निश्चय किया

तथा घर से निकल गया। वन में उसकी भेंट एक मुनि से हुई। उनसे उपदेश पाकर राजा तीर्थयात्रा करने के लिए स्थान-स्थान पर भ्रमण करने लगा। जिस समय राजा मित्रसह राक्षस रूप में था और उसने ब्राह्मण की हत्या की थी, तभी से उसके पीछे ब्रह्म हत्या भी लगी रहती थी। उससे मुक्ति पाने के हेतु जब वह तीर्थयात्रा करता हुआ जनकपुर में पहुँचा, तो वहाँ उसकी भेंट गौतम मुनि से हुई। मुनि को देखकर राजा ने यह प्रार्थना की—"हे मुने! ब्रह्म हत्या को दूर करने के हेतु मैंने अनेक तीर्थों में भ्रमण किया है, परन्तु वह किसी भी प्रकार दूर नहीं होती है, अतः आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताने की कृपा करें, जिससे मेरा यह पाप नष्ट हो जाये।"

हे नारद! राजा मित्रसह की प्रार्थना सुनकर गौतम जी ने कहा—"हे राजन्! तुम इस ब्रह्म हत्या से मुक्ति पाने के हेतु पश्चिम समुद्र के तट पर गोकर्ण क्षेत्र में जाकर महाबल शिवलिंग का पूजन करो। भगवान् सदाशिव के समान मुक्ति देने वाला अन्य कोई नहीं है। हम भी उसी गोकर्ण क्षेत्र से चले आ रहे हैं।" ऋषि से यह उपदेश सुनकर राजा मित्रसह गोकर्ण क्षेत्र में जा पहुँचा। वहाँ महाबल शिवलिंग का पूजन करने, क्षेत्र में स्नान करने तथा शिवरात्रि का व्रत करने से वह मुक्त हो गया। ब्राह्मणी का शाप भी उस शिवभक्ति के कारण निष्फल हो गया। तब वह समस्त पापों से मुक्त हो, घर लौट आया तथा आनन्दपूर्वक अपनी रानी के साथ भोग-विलास करने लगा। हे नारद! शिवरात्रि का व्रत मोक्ष प्रदान करने वाला है। राजा मित्रसह का यह वृत्तान्त भी अत्यन्त आनन्ददायक है। जो लोग इस चरित्र को प्रतिदिन पढ़ते अथवा सुनते हैं, उनकी इक्कीस पीढ़ी तर जाती हैं।"

ॐ ॐ ॐ

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद! अब मैं चतुर्दशी के व्रत का माहात्म्य कहता हूँ। यदि यह व्रत अनजान में भी हो जाए तो भी श्रेष्ठ

फल प्रदान करता है। पूर्व समय में किरात देश का विमर्षण नामक एक राजा था। वह अत्यन्त बलवान्, धैर्यवान्, दुष्ट, अन्यायी, नीच, हिंसक, कामी, क्रोधी, कठोर, सभी जीवों का मांस खाने वाला तथा सभी वर्णों की स्त्रियों के साथ भोग करने वाला था। परन्तु इतना सब होते हुए भी वह चतुर्दशी के व्रत को बहुत प्रिय समझता था। दोनों पक्षों की चतुर्दशी को वह शिवजी का विशेष रूप से पूजन करता तथा बड़ा उत्सव मनाकर शिव-व्रत करता था। उस दिन वह शिवजी के सम्मुख नृत्य-गायनकर, सब लोगों को दान देता और सभी पाप कर्मों को त्याग देता था।

हे नारद ! विमर्षण की रानी का नाम कुमुदवती था। वह परम सुशीला पतिव्रता तथा कलाकुशल थी। एक दिन उसने अपने पति को अधर्मों में लिप्त देखकर इस प्रकार कहा—"हे स्वामिन् ! आप प्रतिदिन माँस भक्षण करते हैं तथा सभी प्रकार की स्त्रियों के साथ भोग-विलास में संलग्न रहते हैं। आपने बहुत-से जीवों का वध भी किया है तथा प्रत्येक प्रकार का पाप कर्म आपको प्रिय है। परन्तु इतने पर भी आप शिवजी का पूजन किया करते हैं, यह देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है। अस्तु मैं आपसे यह जानना चाहती हूँ कि आपने शिवजी के प्रति ऐसी प्रीति का उपदेश कहाँ प्राप्त किया है?"

हे नारद ! रानी के ऐसे वचन सुनकर विमर्षण ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हे रानी ! पूर्वजन्म में मैं एक कुत्ता था तथा प्रतिदिन पम्पासुर नामक नगर में भ्रमण किया करता था। मेरा सम्पूर्ण जीवन भूख-प्यास में व्याकुल हो, इधर-उधर भ्रमण करने पर व्यतीत हुआ। संयोगवश एक दिन मैं एक शिव मन्दिर के सम्मुख जा पहुँचा। उस समय मन्दिर में शिवजी के अनेक भक्त पूजन कर रहे थे। मुझे वहाँ खड़े देखकर जब उन शिवभक्तों ने मुझे मारकर भगाया, तो मैं कुछ देर के लिए तो इधर-उधर हट गया, परन्तु फिर शिवलिंग पर चढ़ी हुई सामग्री को खाने की इच्छा से, उसी स्थान पर जा पहुँचा। मैं उस शिवालय के चारों ओर बार-बार चक्कर काटता हुआ, भोजन के लोभ से शिवजी

का पूजन देखता रहा। तब मुझे मन्दिर के पास से हटते न देखकर, एक मनुष्य ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, मेरे ऊपर बाण का प्रहार किया। उस बाण के लगते ही मैं निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार शिवपूजन देखते हुए मेरी मृत्यु हुई।''

''हे प्रिये ! इस प्रकार मैंने पूर्वजन्म में चतुर्दशी का पूजन तथा दीपों की माला देखी थी। उस पुण्य के कारण मैं भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों का सम्पूर्ण हाल जानता हूँ। पूर्वजन्मों के संस्कारों के कारण में भक्ष्याभक्ष्य सभी वस्तुओं को खाता हूँ, तो भी चतुर्दशी के दिन शिवजी का पूजन करना नहीं छोड़ता। इस पूजन का ही यह प्रताप है कि मेरे अशुभ-कर्म शुभ-कर्मों में परिवर्तित हो जाते हैं। हे रानी ! मैं यह चाहता हूँ कि तुम भी शिवपूजन के माहात्म्य को समझकर चतुर्दशी के दिन भगवान् सदाशिव की पूजा किया करो।'' राजा के ऐसे वचन सुनकर रानी ने कहा—''हे प्रभो ! आप मेरे पूर्वजन्मों का हाल भी बताने की कृपा करें।''

हे नारद ! यह सुनकर राजा ने उत्तर दिया—''हे प्रिये ! पूर्वजन्म में तुम एक कबूतरी थीं। एक दिन तुम्हें माँस का एक टुकड़ा मिला। तभी एक गिद्ध ने तुम्हारा पीछा किया, जिससे भयभीत होकर तुम भागती हुई श्रीगिरि शिवालय पर जा बैठीं, परन्तु गिद्ध ने वहाँ भी पहुँचकर तुमसे माँस का टुकड़ा छीन लिया तथा तुम्हें घायल करके उड़ गया। उसी घायलावस्था में तुम शिवालय में गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। मृत्यु के समय तुमने शिवलिंग के दर्शन किये। उस पुण्य प्रताप से इस जन्म में तुम हमारी रानी हुई हो।'' तब उसने राजा से इस प्रकार कहा—''हे स्वामिन् ! अब आप कृपाकर अपने तथा मेरे भविष्य का वृत्तान्त और सुनावें।''

हे नारद ! यह सुनकर राजा ने कहा—''हे प्रिये ! अगले जन्म में, मैं सिन्धु देश का राजा बनूँगा और तुम राजा संजय की पुत्री बनकर जन्म लोगी। तब भी तुम्हारा विवाह मेरे साथ होगा। तीसरे जन्म में, मैं सौराष्ट्र के राजा का पुत्र होकर तुम्हारे साथ विवाह करूँगा। तब तुम

कलिंग देश के राजा की कन्या बनकर जन्म लोगी। चौथे जन्म में, मैं गान्धार देश के राजा का पुत्र होकर तुम्हारे साथ विवाह करूँगा। तब तुम मगध देश की राजा के यहाँ पुत्री का जन्म पाओगी। पाँचवें जन्म में, मैं उज्जयिनी के राजा का पुत्र बनूँगा और तुम राजा दशारण्य की पुत्री होकर मेरे साथ ब्याही जाओगी। छठे जन्म में मैं अनर्त देश के राजा का पुत्र बनूँगा और तुम राजा ययाति के कुल में उत्पन्न होकर मेरी पत्नी होगी। तदुपरान्त सातवें जन्म में पांचाल देश के राजा पद्यपर्ण के रूप में मेरा जन्म होगा और तुम विदर्भ देश के राजा के घर में बसुमती नाम से जन्म ग्रहण करोगी। जब तुम्हारे पिता स्वयम्वर की रचना करेंगे, तो मैं अन्य राजाओं को जीतकर तुम्हें ले आऊँगा और तुम्हारे साथ विवाह करूँगा। उस समय हम दोनों भगवान् सदाशिव की पूजा में संलग्न होकर भोग-विलास करते हुए सन्तान उत्पन्न करेंगे। अन्त में, हम दोनों अपने पुत्र को राज्य देकर वन में चले जायेंगे। वहाँ अगस्त्य मुनि से ज्ञान प्राप्त कर, शिवलोक को प्राप्त होंगे। तब हमारी गणना शिवजी के गणों में होगी। इस प्रकार चतुर्दशी व्रत के प्रभाव से हम सात जन्म तक राजा-रानी होते रहेंगे।''

हे नारद ! इस प्रकार की बहुत-सी बातें कहकर राजा विमर्षण ने अपनी पत्नी को सन्तुष्ट किया तथा अपना शेष जीवन शिव पूजन एवं चतुर्दशी व्रत धारण करने में बिता दिया। सातवें जन्म में इसी व्रत के प्रभाव से उसकी मुक्ति हुई। चतुर्दशी व्रत की ऐसी महान् महिमा है। राजा विमर्षण का यह वृत्तान्त भी आनन्द मंगलों को देने वाला है। जो लोग इसे पढ़ते अथवा सुनते हैं, उनकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।''

ॐ ॐ ॐ

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं प्रदोष अर्थात् त्रयोदशी का व्रत वर्णन करता हूँ। मैं उन स्त्री-पुरुषों को परम धन्य समझता हूँ, जो

इस व्रत को धारण करते हैं। प्रत्येक मास के दोनों पक्ष में दो त्रयोदशी आती है। इस व्रत का विधान यह है कि प्रातःकाल के समय स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त हो, भगवान् सदाशिव का पूजन करे तथा व्रत का संकल्प करके प्रदोष व्रत धारण करे। जब तीन घड़ी दिन शेष रह जाए, तब अपनी शक्ति के अनुसार पुनः स्नान कर मौन धारण करे तथा श्वेत वस्त्र पहने। सन्ध्या के समय जप करने के उपरान्त प्रेमपूर्वक भगवान् सदाशिव का षोडषोपचार पूजन करे तथा स्तुति करता हुआ, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दंडवत् प्रणाम करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण भोजन कर चुके, तब स्वयं भी बिना नमक का भोजन करे।

हे नारद ! इस प्रकार किया हुआ प्रदोष व्रत सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला होता है। इसके समान अन्य कोई व्रत नहीं है। वेद और पुराणों का यह कहना है कि प्रदोषकाल में किया हुआ शिवजी का पूजन अत्यन्त आनन्ददायक होता है, यह बात तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध में, मैं तुमसे एक विचित्र वृत्तान्त कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! पुरातन काल में उज्जयिनी पुरी में चन्द्रसेन नामक एक राजा शिवजी का परम भक्त हुआ। वह सदैव त्रयोदशी का व्रत रखता और विधिपूर्वक शिवजी का पूजन किया करता था। वह महाकाल लिंग की पूजा करता और हर समय उन्हीं के ध्यान में मग्न बना रहता था। एक दिन मणिभद्र नामक शिवजी के एक गण ने उस राजा पर प्रसन्न होकर, उसे चिन्तामणि नामक एक मणि दी। उस मणि का यह गुण था कि जिस मनुष्य के पास वह मणि रहती थी तथा जो मनुष्य उसे देखता, स्पर्श करता अथवा स्मरण करता था, वह सम्पूर्ण विपत्तियों से छूटकर अतुलनीय आनन्द को प्राप्त करता था। उस मणि का स्पर्श पाते ही सभी धातुएँ स्वर्ण की हो जाती थीं अस्तु, उस मणि को धारण करने के कारण राजा चन्द्रसेन सूर्य के समान तेजस्वी प्रतीत होने लगा।

हे नारद ! जब अन्य राजाओं को उस मणि का प्रभाव ज्ञात हुआ, तब उन्होंने चन्द्रसेन से उस मणि को स्वयं प्राप्त करना चाहा, परन्तु

राजा ने किसी को भी वह मणि नहीं दी। निदान सब राजाओं ने एकत्रित होकर उसके नगर पर चढ़ाई कर दी। जब उज्जयिनी पुरी के चारों ओर उन राजाओं की सेनाएँ घेरा डाले पड़ी हुई थीं तथा सभी नगर निवासी अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे, उस समय दूसरे दिन शिवजी का प्रदोष व्रत आया। तब राजा अपने शत्रुओं की कुछ भी चिन्ता न करके, तीन घड़ी दिन शेष रहने पर भगवान् महाकाल का पूजन करने के निमित्त मन्दिर जा पहुँचा। जिस समय राजा चन्द्रसेन महाकाल का पूजन कर रहा था, उसी समय एक स्त्री अपनी गोद में पाँच वर्ष के एक बालक को लेकर, कहीं से उसके पास आ पहुँची। राजा जिस प्रकार शिवजी का पूजन कर रहा था, उस विधि को उस स्त्री का बालक बड़े ध्यानपूर्वक देखता रहा। कुछ देर बाद जब वह स्त्री अपने पुत्र को साथ लेकर घर चली गयी, तब घर जाकर उस बालक के हृदय में शिवजी की ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई कि वह कहीं से एक पत्थर का टुकड़ा उठा लाया और जिस प्रकार उसने राजा को पूजन करते हुए देखा था। उसी प्रकार स्वयं भी उसका पूजन करने का प्रयत्न करने लगा।

हे नारद ! जिस समय वह छोटा-सा बालक शिलाखण्ड का पूजन करने में संलग्न था, उसी समय उसकी माता ने उसको भोजन करने के लिए दो-तीन बार आवाज़ें दीं, परन्तु वह उन्हें सुनकर भी अपने स्थान पर निश्चल भाव से बैठा रहा। तब वह स्त्री स्वयं अत्यन्त क्रोध में भरकर उसके पास जा पहुँची। जब उसने बालक को एक पत्थर का पूजन करते हुए देखा तो पहले तो उसे खूब मारा, फिर उस शिवलिंग को उठाकर दूर फेंक दिया। इसके बाद वह उसे हाथ पकड़कर घर के भीतर खींच ले गयी। तब वह बालक हाय-हाय करके रोने लगा तथा उसी अवस्था में मूर्च्छित हो गया। मूर्च्छावस्था में उसने एक दृश्य देखा, जिसमें यह जान पड़ता था कि एक शिवालय रत्नों से बना हुआ है। उसके मध्य में एक रत्नजटित सिंहासन रखा है तथा उस सिंहासन पर उसका शिवलिंग प्रतिष्ठत था। उस दृश्य को देखकर बालक ने भगवान् सदाशिव की अत्यन्त स्तुति करते हुए यह प्रार्थना की—"हे

प्रभो ! मेरी माता मूर्ख है, अतः आप उसका अपराध क्षमा कर दें।''

हे नारद ! सन्ध्या के समय जब उस बालक की आँख खुलीं तो उसने यह देखा कि उसका घर सचमुच ही रत्न तथा स्वर्ण से निर्मित परम सुन्दर हो गया है। इस अद्भुत चरित्र को देखकर बालक ने उस शैय्या के समीप पहुँचकर अपनी माता को जगाया। जब माता ने अपनी आँखें खोलीं और वह अद्भुत चरित्र देखा तो अत्यन्त प्रसन्नता में भरकर अपने पुत्र से कहने लगी—''हे पुत्र ! यह सब शिवजी की कृपा का फल है। अस्तु किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं करना चाहिए।'' जब राजा चन्द्रसेन को यह समाचार मिला कि उस बालक की भक्ति से प्रसन्न होकर शिवजी ने ऐसी कृपा की है, तो वह स्वयं उस मन्दिर को देखने गया। वहाँ उसने बालक की तथा उसकी माता की अत्यन्त प्रशंसा की। जब अन्य आक्रामक राजाओं को यह समाचार मिला, तो वे उस नगर पर शिवजी की ऐसी कृपा देखकर अपने-अपने घर को लौट गये।''

ॐ ॐ ॐ

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जब अन्य राजाओं ने अपने दूतों द्वारा शिवजी की कृपा का यह समाचार सुना, तो उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस समय उन सब ने परस्पर विचार किया कि जिस स्थान पर शिवजी की ऐसी कृपा है, वहाँ हम किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते हैं? अस्तु, सभी एकत्रित हो, शस्त्र डाल, राजा चन्द्रसेन के समीप जा पहुँचे और उससे अपने अपराधों की क्षमा याचना करने लगे। तदुपरान्त सबने उस स्त्री के घर पहुँचकर वह दृश्य अपनी आँखों से देखा तथा उस बालक की अत्यन्त प्रशंसा की। फिर उन्होंने उस बालक को अपनी ओर से असंख्य धन देकर, सब गोपों का राजा बनाया।

हे नारद ! जिस समय सब राजा उस बालक के घर उपस्थित थे,

उसी समय हनुमान जी ने वहाँ प्रकट होकर सबको अपने दर्शन से कृतार्थ किया। हनुमान जी को देखकर सब राजाओं ने दंडवत् की। तब हनुमान जी उस बालक को अपनी गोद में लेकर सब लोगों को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार बोले—"हे राजाओ ! राजा चन्द्रसेन के ऊपर शिवजी की अत्यन्त कृपा है। भगवान् सदाशिव ने त्रयोदशी व्रत का माहात्म्य प्रकट करने के लिए ही यह सब चरित्र किया है। अब उचित है कि तुम सब लोग भी भगवान् सदाशिव के सेवक बनो। विशेषकर जब त्रयोदशी के दिन शनिवार हो, तब उसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। दोनों पक्षों की त्रयोदशी तिथियों में शुक्लपक्ष की चतुर्दशी अधिक शुभ कही गयी है। इस बालक ने शुक्लपक्ष की शनिवार युक्त चतुर्दशी को शिवजी का पूजन किया, इसलिए इसे ऐसी शुभ गति प्राप्त हुई है। इस बालक की आठवीं पीढ़ी में नन्द नामक गोपों का एक राजा उत्पन्न होगा। उसके घर में भगवान् विष्णु कृष्ण रूप में अवतार लेंगे। आज से वह बालक श्रीकर के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा। तुम सब लोग अपने-अपने घर जाओ और भगवान् सदाशिव की पूजा में संलग्न रहो। तुम सब प्रदोष व्रत में भस्म आदि धारण कर प्रदोष के भीतर ही भगवान् सदाशिव का पूजन किया करना।"

हे नारद ! इतना कहकर हनुमान जी ने श्रीकर को शिव पूजन की विधि का उपदेश दिया। सर्वप्रथम उन्होंने नाम के माहात्म्य का वर्णन किया, फिर भस्म धारण करने की रीति बतलायी, अन्त में रुद्राक्ष की महिमा सुनाकर अन्तर्धान हो गये। उस समय श्रीकर ब्राह्मण के साथ भगवान् सदाशिव का पूजन तथा त्रयोदशी का व्रत करने लगा। राजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर दोनों की शिवभक्तों में प्रमुख तथा त्रयोदशी का व्रत धारण करने वालों में अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। हे नारद ! त्रयोदशी व्रत की ऐसी महिमा है। त्रयोदशी व्रत का यह माहात्म्य सम्पूर्ण मनोरथों को प्रदान करने वाला है। जो लोग इस कथा को पढ़ते, सुनते अथवा दूसरों को सुनाते हैं, वे भी दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त करते हैं।"

ग्यारहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! आप मुझे त्रयोदशी व्रत का माहात्म्य सुनाने की कृपा कीजिये।" ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! शिवजी का ध्यान करने वाले मनुष्य संसार में परम धन्य हैं। जो मनुष्य अन्य सब धर्मों को त्याग कर, केवल भगवान् सदाशिव का पूजन करते हैं, वे भव बन्धन से छूटकर, मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक त्रयोदशी का व्रत धारण करता है, उस पर शिवजी सदैव अपनी कृपा बनाये रहते हैं। त्रयोदशी का व्रत करने से शिवजी के चरणों में प्रेम बढ़ता है। ऐसे मनुष्य को सभी ऋद्धि सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं।

हे नारद ! त्रयोदशी के व्रत में भगवान् सदाशिव का पूजन प्रदोष काल में करना चाहिए। इस व्रत में भगवान् शंकर के अतिरिक्त अन्य किसी देवता की पूजा करना उचित नहीं है।" जो मनुष्य प्रदोष व्रत धारण करता है, वह कभी भी दरिद्री नहीं रहता। प्रदोष काल में भगवान् सदाशिव की पूजा करना ही श्रेष्ठ है। ऐसी पूजा करने वाले लोग, धन, सन्तान, स्त्री, पुत्र आदि सभी वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। प्रदोष काल में सभी देवता भगवान् सदाशिव का पूजन करने के लिए उनकी शरण में जाते हैं। उस समय शिवजी शिवरानी सहित सिंहासन पर शोभायमान होते हैं।

हे नारद ! प्रदोष काल में शिवजी की जो सभा जुटती है, उसका कुछ वर्णन इस प्रकार है कि उस समय सब देवता तथा ऋषि-मुनि शिव-गिरिजा के चारों ओर बैठकर उनका भजन तथा कीर्तन करते हैं। विष्णु जी मृदंग बजाते हैं, मैं करताल बजाता हूँ, सरस्वती वीणा बजाती हैं, लक्ष्मी गीत गाती हैं, तुम भी वीणा बजाते हो, अन्य सब देवता तथा उपदेवता सेवा में खड़े होकर उनके यश का वर्णन करते हैं। इस प्रकार प्रदोषकाल में सभी देवता शिवजी की सेवा में संलग्न रहते हैं। इतने पर भी यदि कोई मनुष्य शिवजी के अतिरिक्त किसी

अन्य देवता का प्रदोष काल में पूजन करता है तो वह देवता पूजन करने वाले पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह कहता है कि कैसा मूर्ख है, जो इस समय शिवजी का ध्यान न करके, हमारी पूजा कर रहा है। इसलिए यही उचित है कि प्रदोषकाल में अन्य सबको त्यागकर, केवल भगवान् सदाशिव का ही पूजन किया जाए इस संबंध में मैं तुम्हें एक विचित्र आख्यान सुनाता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! दक्षिण दिशा में विदर्भ नामक देश में सत्यरथ नामक एक राजा राज्य करता था। वह न्याय तथा दया का आश्रय लेकर, धर्म पूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता था इसलिए उसके राज्य में कोई भी दुःखी न था। एक बार शाल्व नामक राजा ने उसके नगर पर चढ़ाई कर दी। उस युद्ध में राजा सत्यरथ मारा गया। तब उसकी रानी नगर से भागकर, बाहर विपिन की ओर चल दी। रात भर चलती हुई, जब सवेरे वह एक तालाब के समीप पहुँची, तो वहाँ उसने शुभ लग्न में एक पुत्र को जन्म दिया। प्रसव के उपरान्त रानी को ज़ोर से प्यास लगी, जिससे वह तालाब के तट पर पानी के लिए जा पहुँची। जैसे ही उसने तालाब में से पानी लेने को हाथ आगे बढ़ाया, वैसे ही एक घड़ियाल ने उसे निगल लिया। इस प्रकार रानी भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी। तब वह बालक अपने स्थान पर अकेला खड़ा हुआ, क्षुधा-तृषा से व्याकुल हो, रुदन करने लगा।

हे नारद ! उस बालक को रोते हुए देखकर शिवजी को बहुत दया आयी। तब उनकी कृपा से एक विधवा ब्राह्मणी, अपने पाँच वर्षीय पुत्र को साथ लिये उसी स्थान पर जा पहुँची, जहाँ वह बालक पड़ा हुआ था। जिस समय वह स्त्री उस बालक को अकेला पड़ा हुआ देखकर आश्चर्य में भरकर यह विचार कर रही थी कि इस नवजात शिशु को यहाँ कौन छोड़ गया है तथा इसका पालन किस प्रकार होगा। उसी समय भगवान् सदाशिव एक भिक्षुक ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर, उस स्थान पर जा पहुँचे और ब्राह्मणी से कहने लगे—"हे ब्राह्मणी ! तुम सन्देह त्याग इस बालक का पालन करो।"

हे नारद ! ब्राह्मण रूपी शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर उस विधवा ब्राह्मणी ने कहा—"हे महात्मन् ! आप मुझे इस बालक के पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाने की कृपा करें।" शिवजी बोले—"हे ब्राह्मणी ! यह बालक पूर्वजन्म में एक राजा का पुत्र था। एक समय यह त्रयोदशी व्रत धारण करके शिवजी का पूजन कर रहा था, उसी समय इसे अपने सेवकों द्वारा नगर में उत्पात होने की सूचना मिली। तब वह अपने पूजन को अधूरा छोड़कर शत्रु को देखने के लिए चल दिया। जब इसने उत्पात मचाने वाले व्यक्ति को देखा, तो क्रुद्ध होकर अपनी तलवार द्वारा उसका सिर काट डाला। तदुपरान्त यह उसी अशुद्ध दशा में भोजन करने चला गया तथा पूजन को पूर्ण करना भूल गया। उसी अपराध के कारण अब वह विदर्भ नरेश के यहाँ उत्पन्न होकर, ऐसी बुरी दशा को प्राप्त हुआ।"

"हे ब्राह्मणी ! त्रयोदशी का व्रत त्याग देने पर किसी भी मनुष्य को सुख नहीं मिल सकता। इसकी माता ने अपने पूर्वजन्म में अपनी सौत को छल द्वारा मार डाला था। उसी अपराध के कारण इस जन्म में उसे घड़ियाल खा गया है। तुम्हारे साथ जो एक पुत्र है उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त यह है कि इसने पूर्वजन्म में कुधान्य का दान ग्रहण किया था, इसलिए अब यह दरिद्री बनकर तुम्हारे बालक के रूप में उत्पन्न हुआ है। अब तुम्हें उचित है कि तुम अपने बालक की तथा इस राजपुत्र की देखभाल करो। जब ये बालक कुछ बड़े हो जाएँ, तब तुम इन दोनों से शिवजी का पूजन कराना। शिव-पूजन के प्रताप से ये दोनों सब प्रकार की संसारी धन-सम्पत्तियों को प्राप्त करेंगे तथा तुम्हें भी सुख पहुँचावेंगे। मृत्यु के उपरान्त तुम तीनों ही मुक्ति पद को प्राप्त करोगे।" इतना कहकर भगवान् सदाशिव ने उस ब्राह्मणी को अपने मुख्य स्वरूप का दर्शन दिया। उस रूप को देखकर ब्राह्मणी ने अत्यन्त प्रसन्न हो, दंडवत् प्रणाम तथा स्तुति की। तत्पश्चात् शिवजी अन्तर्धान हो गये।"

बारहवाँ अध्याय

नारद जी ने कहा—"हे पिता ! इसके पश्चात् क्या चरित्र हुआ?" ब्रह्मा जी बोले—"हे पुत्र ! वह ब्राह्मणी उस राजपुत्र को तथा अपने पुत्र को साथ लेकर चक्र नामक नगर में आकर रहने लगी। वह भिक्षाटन करके उन बालकों का पालन करती थी। कुछ समय बाद जब वे बालक बड़े हुए तो उन्होंने सुगमतापूर्वक सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। एक दिन उन दोनों बालकों ने शाण्डिल्य मुनि को अपने शिष्यों सहित भगवान् सदाशिव के गुणों का वर्णन करते हुए देखा। तब वे उनसे मंत्र लेकर, शिवजी की आराधना करने लगे। मुनि के उपदेश से उन्होंने प्रदोष व्रत रखना भी आरम्भ कर दिया।

हे नारद ! जब उन्हें व्रत करते हुए चार महीने व्यतीत हो गये, तब यह घटना घटित हुए कि एक दिन वे दोनों नदी में स्नान करके शिवजी का बाना धारण किये, अपने घर को लौट रहे थे कि उन्हें मार्ग में शिवजी की कृपा से धन से भरा हुआ एक घड़ा दिखाई दिया। वे उस घड़े को उठाकर अपनी माता के पास ले आये। उस धन को देखकर माता ने यह आज्ञा दी कि तुम दोनों इस धन को बराबर-बराबर बाँट लो। यह सुनकर राजपुत्र ने उत्तर दिया—"हे माता ! इस धन को तुम्हारे पुत्र ने पाया है। अस्तु, मैं इसे ग्रहण नहीं करूँगा। भगवान् सदाशिव जब मुझ पर कृपा करेंगे, तब मैं स्वयं ही असंख्य धन प्राप्त कर लूँगा।" इतना कहकर उस राजपुत्र ने वह सम्पूर्ण धन ब्राह्मणी के पुत्र को दे दिया और स्वयं पहले के समान शिव-पूजन एवं प्रदोष व्रत करता रहा।

हे नारद ! इसी प्रकार जब एक वर्ष और व्यतीत हो गया, तब एक दिन वे दोनों किसी वन में जा पहुँचे। वहाँ एक परम सुन्दरी गन्धर्व कन्या खड़ी हुई थी। राजपुत्र उस कन्या के पास जा पहुँचा। वह कन्या भी राजपुत्र को देखकर प्रेम मग्न हो गयी। तदुपरान्त दोनों में परचिय का आदान-प्रदान हुआ। उस कन्या ने कहा—"हे राजपुत्र ! मैं

कोद्रविक नामक गन्धर्व की पुत्री हूँ। मेरा पिता सब गन्धर्वों का राजा है। मैं गान विद्या में अत्यन्त प्रवीण हूँ। यह सब भगवान् सदाशिव की कृपा की है जो मैंने यहाँ तुमको प्राप्त किया है। अब तुम मेरे पति बनना स्वीकार करो।'' यह कहकर उसने राजपुत्र के कंठ में एक मोतियों की माला पहना दी। तब राजपुत्र ने कहा—''हे गन्धर्व पुत्री ! मैं जाति-पाति से बहिष्कृत तथा राज्य से हीन हूँ। अभी तो तुमने अपने पिता की आज्ञा भी प्राप्त नहीं की है। इस प्रकार माला पहनना कहाँ तक उचित है!'' गन्धर्व पुत्री ने उत्तर दिया—''हे स्वामिन् ! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर तुम्हारे साथ विवाह करूँगी और तुम्हारी रानी बनकर रहूँगी। तुम आज से तीसरे दिन अमुक स्थान पर आ जाना। वहीं मेरी व तुम्हारी पुनः भेंट होगी।'' इस प्रकार कहकर वह गन्धर्व कन्या चल दी। तब राजपुत्र भी अपने घर लौट आया।

हे नारद ! तीसरे दिन जब वह राजपुत्र निश्चित स्थान पर पहुँचा, तो वहाँ उसने गन्धर्व कन्या तथा उसके पिता को पहले से ही उपस्थित पाया। उस समय गन्धर्व राज ने राजपुत्र को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—''हे राजपुत्र ! मैं भगवान् सदाशिव के यहाँ नृत्य-गायन करने के लिए गया था, वहाँ श्री शंकर जी ने मुझे यह बताया कि पृथ्वी पर धर्मगुप्त नामक एक राजपुत्र अपने माता-पिता तथा राज्य से हीन होकर, आज कल गुरु के उपदेश द्वारा त्रयोदशी का व्रत कर रहा है। उसके व्रत के प्रभाव से उसके सभी पितर पापों से मुक्त होकर, हमारे लोक में आ पहुँचे हैं। अस्तु तुम्हें उचित है कि अब तुम राजपुत्र के समीप पहुँचकर उसकी सहायता करो, जिससे वह अपने शत्रुओं पर विजय पाकर फिर से अपने सिंहासन पर आरूढ़ हो सके।''

हे राजपुत्र ! शिवजी की उस आज्ञानुसार मैं तुम्हारे पास आया हूँ। सर्वप्रथम मैं अपनी पुत्री का विवाह तुम्हारे साथ किये देता हूँ, इसके अनन्तर मैं तुम्हारे शत्रुओं का नाश करके, तुम्हारा राज्य वापिस दिलवाऊँगा। तुम अपने राज्य को फिर प्राप्त करके अपनी रानी सहित संसारी भोग भोगोगे तथा अन्त में शिवलोग को प्राप्त होओगे।'' इतना

कहकर गन्धर्वराज ने अपनी पुत्री का विवाह उस धर्मगुप्त नामक राजपुत्र के साथ कर दिया। तदुपरान्त वह राजपुत्र के सब शत्रुओं का नाश कर आया और उसे उसका राज्य वापस दिला दिया। इतना सब चरित्र करने के उपरान्त गन्धर्व अपने देश को लौट गया। तब राजा धर्मगुप्त अपनी रानी सहित सुखपूर्वक राज्य करने लगा। उसने अपनी माता के समान ब्राह्मणी को तथा उसके पुत्र को भी अपने साथ बुला लिया। हे नारद ! त्रयोदशी का व्रत इस प्रकार चारों पदार्थों को देने वाला है। जो लोग इस चरित्र को पढ़ते-सुनते अथवा दूसरों को सुनाते हैं, उन्हें भी दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द-प्राप्त होता है।''

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! पुरातन काल में एक बार देवताओं तथा दैत्यों में बड़ा युद्ध हुआ। देवताओं के अधिपति इन्द्र थे और दैत्यों का अधिपति वृत्रासुर था। उस युद्ध में वृत्रासुर ने अपना शरीर इतना बड़ा किया कि किसी भी देवता में उसका सामना करने की सामर्थ्य नहीं रही। तब सब देवता युद्ध स्थान को छोड़कर भाग खड़े हुए और बृहस्पति की शरण में जाकर इस प्रकार कहने लगे—''हे प्रभो ! वृत्रासुर ने हमें युद्ध क्षेत्र में पराजित कर भाग दिया है। हममें इतनी शक्ति नहीं है कि जो किसी भी प्रकार उसका सामना कर सकें। अस्तु, आप कृपा करके कोई उपाय बतलाइये, जिससे हमें विजय प्राप्त हो।''

हे नारद ! देवताओं की प्रार्थना सुनकर बृहस्पति ने भगवान् सदाशिव का ध्यान धरते हुए उत्तर दिया—''हे देवताओ ! यह वृत्रासुर अपने पूर्वजन्म में चित्ररथ नामक एक राजा था। इसने विधिपूर्वक त्रयोदशी का व्रत धारण किया था तथा शिवजी की सेवा करके उनकी कृपा प्राप्त की थी। परन्तु शिवरानी द्वारा शाप दिये जाने के कारण यह इस जन्म में वृत्रासुर बनकर प्रकट हुआ है। अस्तु, यदि तुम वृत्रासुर पर

विजय प्राप्त करना चाहते हो तो प्रदोष व्रत धारण कर, भगवान् सदाशिव का पूजन करो। प्रदोष व्रत धारण करने वाला मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है। हम तुम्हें प्रदोष के व्रत की विधि बतलाते हैं, उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करो।

हे देवताओ ! प्रदोष का प्रारम्भ कार्तिक मास से करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक मास की त्रयोदशी तिथि को व्रत धारण करके एक वर्ष पर्यन्त शिवजी का पूजन करना चाहिए। यदि कभी शुक्लपक्ष में त्रयोदशी के दिन शनिवार पड़े तो वह अति उत्तम फल देने वाला होता है। जब सन्ध्याकाल से पूर्व प्रदोष काल आवे, तब किसी प्रसिद्ध शिवलिंग का पूजन करे। तदुपरान्त स्नान कर, मौन धारण करे तथा गो-घृत के बहुत-से दीपक जलावे। इन दीपकों की संख्या एक सौ से लेकर सहस्त्रों तक उचित है। यदि इतने दीपक जलाने की सामर्थ्य न हो तो दस-बीस दीपक अवश्य जलाने चाहिएँ। इसके उपरान्त सब प्रकार की सामग्री, श्रेष्ठ नैवेद्य प्रेमपूर्वक शिवजी की भेंट करे तथा शतरुद्री का पाठ-श्रवण करे। अन्त में दो सौ बार शिवलिंग की परिक्रमा करके ब्राह्मणों को भोजन करावे। फिर स्वयं भी भोजन करे। हे देवताओ ! यदि इस उपाय से तुम सब लोग व्रत करोगे, तो भगवान् सदाशिव तुम पर अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें वृत्रासुर पर विजय प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करेंगे। बृहस्पति के मुख से यह वचन सुनकर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदुपरान्त उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार प्रदोष व्रत धारण किया। फिर शिवजी की कृपा का आश्रय लेकर जब उन्होंने वृत्रासुर के साथ युद्ध किया और इन्द्र के व्रज द्वारा वृत्रासुर मृत्यु को प्राप्त हुआ, तब अपने शत्रु पर विजय पाकर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए।''

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें त्रयोदशी के व्रत की अन्य विधि सुनाता हूँ, उसे जान लेने से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। वह विधि इस प्रकार है कि त्रयोदशी के व्रत के दिन चाँदी का बैल तथा सोने के शिव-गिरिजा की मूर्तियाँ बनवाये।

शिवजी की मूर्ति इस प्रकार हो कि उसमें दस भुजा, पाँच मुख, तथा तीन नेत्र रहें। इन मूर्तियों के ताँबे के कलश में स्थापित करे। कलश के चारों ओर पंचरत्न के फल तथा फूल स्थापित करे। इसके साथ ही एक चाँदी अथवा मिट्‌टी का दूसरा कलश भी समीप ही स्थापित करे। उस कलश को वस्त्र, माला तथा आभूषणों से सुसज्जित करे। फिर षोडशोपचार विधि द्वारा भगवान् सदाशिव का पूजन करे। चारों प्रहर रात्रि जागरण कर, उत्सव मनाये तथा शिवजी को दंडवत् प्रणाम करता हुआ अनेक प्रकार से स्तुति करे। पूजन के उपरान्त हवन करे। तत्पश्चात् विसर्जन करके ब्राह्मणों को सुस्वादु भोजन कराये। फिर ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर स्वयं भी भोजन करे।

हे नारद ! प्रदोष व्रत की दूसरी विधि यह है कि जब त्रयोदशी के दिन शनिवार पड़े तथा शुक्लपक्ष हो, उस दिन सन्तान प्राप्ति के हेतु त्रयोदशी का व्रत आरम्भ करे। यदि तेरस मंगलवार की हो तो वह भी शुभ होती है। शुक्रवार को पड़ने वाली तेरस स्त्री, सन्तान तथा भाग्य की वृद्धि करती है। रविवार के दिन पड़ने वाली त्रयोदशी आयु-वृद्धि तथा रोग शान्ति के लिए फलदायक कही गयी है। व्रती को चाहिए कि वह संकल्प करके सन्ध्या के समय प्रीतिपूर्वक भगवान् सदाशिव का पूजन करे। चारों ओर दीपक जलाकर, अपने मनोरथ को प्रकट करता हुआ, शिवजी की अनेक प्रकार से स्तुति करे। फिर नन्दी के अण्डकोष को देखकर, उसके दोनों सिंगों के बीच के भाग को देखे। तदुपरान्त उसकी पूँछ का दर्शन करे। ऐसा करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। संसार में जितने भी तीर्थ हैं। वे सब बैल के अण्डकोष में स्थित रहते हैं। तदनन्तर ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा देकर भोजन करावे और मौन व्रत धारण करे। अन्त में, स्वयं भी लवण-रहित होकर भोजन करे अथवा खीर खाये। इस प्रकार एक वर्ष तक त्रयोदशी का व्रत धारण करे। यदि एक वर्ष तक व्रत करने की सुविधा न हो तो शनिवार की त्रयोदशी का केवल एक बार ही प्रदोष व्रत धारण करके सब व्रतों का फल प्राप्त कर ले।

हे नारद ! प्रदोष व्रत की विधियाँ अनेक प्रकार की हैं। तुम्हें यह बताता हूँ कि स्त्रियों को प्रदोष व्रत किस प्रकार करना चाहिए। स्त्रियों को उचित है कि वे माग शीर्ष अर्थात् अगहन मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को व्रत आरम्भ करें। उन्हें चमेली वृक्ष की डाल से दतौन करनी चाहिए तथा भरुआ के पुष्प शिवजी के ऊपर चढ़ाने चाहिएँ। स्नान आदि से निवृत्त होकर जब वे शिवजी का पूजन करने बैठें, तो सर्वप्रथम शिवलिंग के ऊपर भरुआ के पुष्प चढ़ावें, फिर अन्य विधियों से षोडशोपचार पूजन करके, नारंगी का अर्घ्य दें तथा फेनी एवं चिरौंजी का नैवेद्य लगावें। मार्ग शीर्ष मास के पूजन में शिवजी का नाम अनङ्ग होता है। स्त्रियों को चाहिए कि वे पूजन आदि से निवृत्त होकर, रात को शहद का भोजन करें।

हे नारद ! पौष मास में शिवजी का नाम लटेश्वर होता है। अस्तु, स्त्रियों को चाहिए कि वे इस मास में गूलर की दतौन करें तथा जाती-पुष्प को शिवजी के ऊपर चढ़ावें। अनार का अर्घ्य देकर अशोक बत्ती का नैवेद्य लगावें। उन्हें स्वयं श्वेत चन्दन को खाना चाहिए।

हे नारद ! माघ मास में शिवजी का नाम योगेश होता है। अस्तु, स्त्रियों को चाहिए कि वे इस मास में विष्णुकान्ता की दतौन करें, कुन्द के पुष्प शिवजी पर चढ़ावें, बीजपूर का अर्घ्य दें तथा ईख का नैवेद्य लगावें।

हे नारद ! फाल्गुन मास में शिवजी का नाम वीरेश होता है। अस्तु, इस मास में स्त्रियों को अनार की दतौन करनी चाहिए। उन्हें शिवजी के ऊपर धतूरे के पुष्प चढ़ाने उचित हैं।

हे नारद ! चैत्र मास में शिवजी का नाम भव होता है। अस्तु, इस मास में मल्लिका अर्थात् बेले की दतौन करनी चाहिए, धतूरे को शिवजी पर चढ़ाना चाहिए और उसी का अर्घ्य देकर, खजूर का नैवेद्य लगाना चाहिए। इस मास में रात्रि के समय स्वयं कपूर खाना उचित है।

हे नारद ! वैशाख मास में शिवजी का नाम महादेव होता है। अस्तु, इस मास में स्त्रियों को उचित है कि लटजीरे की दतौन करें, शिवजी

के ऊपर चमेली का पुष्प चढ़ायें, उत्पल का अर्घ्य दें तथा पटुक नामक अन्न का नैवेद्य लगावें।

हे नारद ! ज्येष्ठ मास में शिवजी का नाम प्रद्युम्न होता है। अस्तु, इस मास में स्त्रियों को सहदेई की दतौन करनी चाहिए, शिवजी के ऊपर बकुल का पुष्प चढ़ाना चाहिए। रात्रि के समय स्वयं लौंग खाना उचित है।

हे नारद ! आषाढ़ मास में शिवजी का नाम उमापति होता है। अस्तु, इस मास में स्त्रियों को उचित है कि वे नारंगी की दातौन करें तथा शिवजी के ऊपर कदम्ब के पुष्पों को चढ़ावें। स्वयं रात्रि को तिल खानी चाहिए।

हे नारद ! श्रावण मास में शिवजी का नाम शूलपाणि होता है। इस मास में स्त्रियों को उचित है कि वे जाती की दतौन करें तथा कमल का पुष्प शिवजी के ऊपर चढ़ावें। जामुन के फलों का अर्घ्य देकर, दूध का नैवेद्य लगाना उचित कहा गया है। रात्रि के समय स्वयं पूए खाने चाहिएँ।

हे नारद ! भाद्रपद मास में शिवजी का नाम सदव होता है। इस मास में व्रती स्त्रियों को कंकोल की दतौन करनी चाहिए तथा चम्पक के फूलों से शिवजी का पूजन करना चाहिए। स्वयं रात्रि के समय अगुरू का भोजन करना चाहिए।

हे नारद ! आश्विन अर्थात् क्वार मास में शिवजी का नाम कामदेव होता है। अस्तु, इस मास में व्रती स्त्रियों को कंकोल की दतौन करनी चाहिए तथा कनेर के पुष्प शिवजी के ऊपर चढ़ाने चाहिएँ। रात्रि के समय स्वयं काशीफल का भोजन करना चाहिए।

हे नारद ! बारहवें कार्तिक मास में शिवजी का नाम जगदीश्वर होता है। अस्तु, व्रती स्त्रियों को उचित है कि वे इस मास में ऊर्जकदम्ब की दतौन करें तथा शिवजी के ऊपर रक्त-उत्पल चढ़ावें। रात्रि के समय में फल खाना चाहिए।

हे नारद ! इस प्रकार जो स्त्री प्रदोष करती है, उसे सिद्धि प्राप्त होने

में कोई संशय नहीं रहता। इस भाँति एक वर्ष तक व्रत धारण कर लेने पर उद्यापन कर देना उचित है। इस विधि के सुनने तथा पढ़ने से भी दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है।"

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे पुत्र ! अब मैं एकादशी व्रत का माहात्म्य कहता हूँ। एकादशी तिथि सब तिथियों में श्रेष्ठ तथा उत्तम है। शिवजी को दोनों पक्षों की एकादशी प्रिय है। शुक्लपक्ष की एकादशी में अन्न-जल रहित होकर व्रत धारण करना चाहिए। उसकी विधि यह है कि प्रातःकाल उठकर नियमपूर्वक स्नान तथा शिवजी का पूजन करें। पूरा दिन शिवजी के भजन-कीर्तन में बिताये। सन्ध्या के समय पुनः स्नान करें तथा शिवजी का पूजन कर उन्हें प्रसन्न करें। शिवजी को प्रसन्नता प्रदान करने के हेतु गाल बजाये तथा आरती उतारें।

हे नारद ! कृष्णपक्ष की एकादशी में सन्ध्या समय भोजन करना तथा शुक्लपक्ष की एकादशी में निर्जल रहना उचित है, परन्तु यदि दोनों ही पक्षों में निर्जल व्रत धारण किया जाए तो उसका फल और अधिक शुभ होता है। अस्तु, इसे कभी नहीं त्यागना चाहिए। एकादशी का व्रत रखने वाला मनुष्य संसार में सम्पूर्ण भोगों को भोगकर, अन्त में शिवपुरी को प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में, मैं तुमसे एक कथा कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! सूर्यवंशी राजा मान्धाता ने इस व्रत को किया था। संयोगवश एक बार अयोध्या में बड़ा अकाल पड़ा तथा अन्न उत्पन्न न होने के कारण प्रजा अत्यन्त व्याकुल हुई। तब सभी प्रजाजन एकत्रित होकर राजा के समीप पहुँचे और हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—"हे पृथ्वीपति ! ऐसा कौन-सा पाप हुआ है जिसके कारण अकाल पड़ा है और हम लोगों को भारी कष्ट भोगना पड़ रहा है। हे महाराज ! हम लोग भूख से मरे जा रहे हैं। अस्तु, आपके

शरणागत् हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये और कोई ऐसा श्रेष्ठ उपाय बताइए जिससे सब लोगों का कष्ट दूर हो।''

हे नारद ! प्रजाननों के मुख से यह वचन सुनकर राजा मान्धाता ने अत्यन्त लज्जित हो ब्राह्मणों को बुलाया और उनका सम्मान करते हुए हाथ जोड़कर यह पूछा—''हे महानुभावो ! आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि मेरे देश में वर्षा क्यों नहीं हो रही है? इसके साथ ही आप कोई ऐसा उपाय भी बतलावें, जिसके करने से वर्षा होकर सब लोगों को आनन्द प्राप्त हो।'' राजा की प्रार्थना सुनकर सब ब्राह्मणों ने विचारकर उत्तर दिया—''हे राजन् ! वर्षा न होने का कोई कारण हमें ज्ञात नहीं होता, परन्तु वर्षा होने के लिए हम तुम्हें उपाय बताते हैं।'' इतना कहकर ब्राह्मणों ने वर्षा होने के अनेक उपाय बताए, परन्तु उन्हें करने पर भी किसी प्रकार वर्षा नहीं हुआ। यह देखकर राजा अत्यन्त निराश तथा चिन्तित हो राजधानी त्याग, वन को चल दिये। वहाँ लोमश नामक एक तपस्वी रहते थे। वे तपस्वी बड़े आत्मदर्शी, ज्ञानी तथा शिवजी के भक्त थे। राजा ने उन्हें सिद्ध जानकर बहुत प्रकार से स्तुति-प्रशंसा की। फिर हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—''हे सर्वज्ञ प्रभो ! अयोध्या में वर्षा न होने के कारण सम्पूर्ण प्रजा अत्यन्त दुःखी है। अब मैं व्याकुल होकर अपनी राजधानी त्याग, यहाँ वन में चला आया हूँ। सौभाग्य से मुझे आपके चरणों के दर्शन प्राप्त हुए हैं। आप कृपा करके कोई ऐसी युक्ति बताइये जिससे वर्षा हो।''

हे नारद ! राजा की प्रार्थना सुनकर लोमश ऋषि ने उत्तर दिया—''हे राजन् ! भगवान् सदाशिव की कृपा से मैं तुम्हें वर्षा होने का एक सरल उपाय बतलाता हूँ। तुम्हें उचित है कि तुम अपनी सम्पूर्ण प्रजा सहित एकादशी का व्रत धारण करो तथा भगवान् सदाशिव का पूजन करो। इस व्रत में शिवजी का पूजन करने के पश्चात् ही भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से तुम्हारे राज्य में अवश्य वर्षा होगी।'' लोमश मुनि से यह वचन सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो, अपनी राजधानी को लौट आये, फिर उन्होंने अपनी प्रजा सहित एकादशी व्रत धारण

किया। उसके प्रभाव से खूब वर्षा हुई और सम्पूर्ण प्रजा का दुःख दूर हो गया।

हे नारद ! इस व्रत के करने से राजा मुचुकन्द, राजा जनक तथा राजा सगर ने सम्पूर्ण मनोकामनाओं को प्राप्त किया था। रामचन्द्र जी ने भी एकादशी का व्रत धारणकर सफलता प्राप्त की थी। अब मैं तुम्हें रामचन्द्र जी की कथा सुनाता हूँ। राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र जी बड़े प्रतापी थे। भाग्यवश उन्हें वनवास प्राप्त हुआ। वहाँ लंका का राजा रावण उनकी पत्नी सीता को हर ले गया। तब रामचन्द्र जी सीता का पता लगाते हुए पम्पापुर में जा पहुँचे। वहाँ हनुमान से भेंट हुई। उनकी सहायता से वे सेना एकत्रित कर, समुद्र के तट पर पहुँचे, परन्तु जब उन्होंने यह देखा कि समुद्र को पार करना अत्यन्त कठिन है, तो वे उपाय की खोज में इधर-उधर भ्रमण करने लगे। संयोगवश एक स्थान पर उन्हें लोमश ऋषि तपस्या करते हुए दिखाई दिये। तब उन्होंने ऋषि के समीप पहुँचकर सब वृत्तान्त कह सुनाया और यह प्रार्थना की कि आप मुझे कोई उपाय बताइए जिसके आश्रय से मैं सेना रहित लंकापुरी में पहुँचकर रावण का संहार कर सकूँ।

हे नारद ! रामचन्द्र जी की प्रार्थना सुनकर लोमश ऋषि ने यह उत्तर दिया—"हे राम ! प्रथम तो तुम विष्णु जी के अवतार हो, दूसरे शिवजी के परम भक्त हो। वे सभी कार्य सिद्ध कर देंगे। जो भी प्राणी मनुष्य शरीर धारण करता है, उसे कोई-न-कोई कष्ट अवश्य उठाना पड़ता है, इसलिए तुम्हें भी यह दुःख हुआ है, क्योंकि तुम मनुष्य का शरीर धारण कर प्रकट हुए हो। अब तुम्हें उचित है कि तुम एकादशी का व्रत करो तथा शिवजी का पूजन करके कुछ दिन फलाहार करो। शुक्लपक्ष की एकादशी में निर्जल व्रत करने तथा शिव-गिरिजा का ध्यान धरने से तुम्हें सिद्धि प्राप्ति होगी। वेद और पुराणों का कथन है कि एकदाशी के समान फलदायक कोई दूसरा व्रत नहीं है।"

"हे नारद ! लोमश ऋषि की शिक्षानुसार रामचन्द्र जी ने एकादशी व्रत धारण किया। उस व्रत के प्रभाव से उन्होंने समुद्र पर सेतु बाँधा

तथा शिवलिंग की स्थापना कर, शिवजी को प्रसन्न किया। तदुपरान्त वे अपनी सेना सहित लंका में जा पहुँचे। फिर उन्होंने रावण को वंश सहित मार डाला। एकादशी का व्रत ऐसा ही फल देने वाला है। यह व्रत विष्णु जी तथा शिवजी दोनों का कहा गया है। इस व्रत को करने से शिवजी तथा विष्णु जी दोनों ही प्रसन्न होते हैं। इस व्रत का माहात्म्य सुनने से भी दोनों लोकों में आनन्द की प्राप्ति होती है।''

ॐ ॐ ॐ

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं अष्टमी के व्रत का माहात्म्य कहता हूँ। तुम ध्यानपूर्वक सुनो! अष्टमी का व्रत प्रत्येक मास में करना चाहिए। भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को शिव-पूजन की विधि इस प्रकार है कि प्रदोष, काल में दूब लाकर शिवजी का पूजन करे तदुपरान्त फल, फूल, धूप एवं बिल्वपत्र शिवजी के ऊपर चढ़ाकर अर्घ्य, नैवेद्य, दही, चावल और लावा समर्पित करे। इस प्रकार शिवजी का पूजन करने से कोई भी पाप नहीं रह जाता। पूजन करने वाले का शरीर अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है तथा उसे सभी मनोरथों की प्राप्ति होती है। पूजन करने वाले को चाहिए कि वह शिवजी की प्रसन्नता के हेतु दंडवत् प्रणाम करे तथा अनेक प्रकार से स्तुति करता हुआ उनके गुण-चरित्रों का पठन-पाठन एवं श्रवण करें। इस व्रत में शिवजी का पूजन करने के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। तत्पश्चात् स्वयं बिना नमक का भोजन करना चाहिए।''

हे नारद ! इस प्रकार भाद्रपद मास की अष्टमी को जो लोग व्रत रखते हैं, उनके सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं। इस व्रत के कारण ब्रह्म हत्या का पाप भी नष्ट हो जाता है। दूवर्नष्टमी का व्रत शिवजी को अत्यन्त प्रिय है। चारों वर्णों को इस व्रत को धारण करने का अधिकार है। सब वर्णों की स्त्रियाँ भी इस व्रत को कर सकती हैं।

हे नारद ! मार्गशीर्ष अर्थात् अगहन मास के कृष्णपक्ष में इस व्रत

को निर्जल रहकर धारण करना चाहिए। अगहन मास की अष्टमी का व्रत कालाष्टमी व्रत के नाम से प्रसिद्ध है। इसी दिन दोपहर के समय भैरव जी ने जन्म लिया था। अतः इस व्रत को भैरव व्रत भी कहते हैं। यह सब व्रतों का राजा तथा चारों फलों को प्रदान करने वाला है। भैरव व्रत करने वाले को संसार में कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती। इस व्रत को करके अनेक लोगों ने मुक्ति प्राप्त की है। यह व्रत करने की विधि यह है कि मध्याह्न काल में उत्सव करके रात्रि के चारों प्रहर जागरण में बिताये तथा हर प्रहर में शिवजी का पूजन करता रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर स्नान करके भगवान् सदाशिव का पूजन करे तथा ब्राह्मणों के छोटे-छोटे आठ बालकों को भोजन कराये। इसके पश्चात् अन्य ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा उन्हें दान-दक्षिणा देकर प्रसन्न करें। जब ब्राह्मण भोजन करके विदा हो जाएँ, तब स्वयं भी अपने कुल, परिवार तथा इष्ट मित्रों सहित शिवजी का स्मरण करते हुए, भोजन करें। इस भैरव व्रत को एक वर्ष तक निरन्तर करना चाहिए। जो लोग इस व्रत को करते हैं, उन्हें चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है।

हे नारद ! एक समय सभी देवता तथा ऋषि-मुनि एकत्रित होकर परस्पर विचार करने लगे कि परब्रह्म कौन है? जब वे स्वयं कोई निश्चय न कर सके तो मेरे पास आकर यह पूछने लगे—"हे ब्रह्मन् ! आप हमें यह बताने की कृपा करें कि परब्रह्म, अविनाशी, अनादि, अनन्त, निर्गुण, सर्गुण, सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी तथा सबसे श्रेष्ठ कौन है? वेदान्तीजन सच्चिदानन्द कहकर किसका भजन करते हैं? शेष जी किसके भय से पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण किये हुए हैं?"

हे नारद ! यह सुनकर मैंने उन्हें उत्तर दिया—"हे देवताओ तथा ऋषि-मुनियो ! तुम जिसे जानना चाहते हो, वह हमारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।" हे नारद ! मैंने यह बात शिवजी की माया के वशीभूत होकर कही थी, अस्तु, मेरी इस बात को सुनकर विष्णु जी अत्यन्त

क्रुद्ध हुए। फिर वे स्वयं शिवजी की माया के वशीभूत होकर मुझसे इस प्रकार कहने लगे—"केवल नामों के बल इतराना ही तुम्हें शोभा नहीं देता। सच पूछा जाए तो परब्रह्म हमारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। वेद का अर्थ न समझ पाने के कारण ही तुम ऐसे उल्टे वचन कह रहे हो।"

हे नारद ! इस विषय को लेकर मुझ में तथा विष्णु जी में बहुत विवाद होने लगा। तब हम दोनों ने यह निश्चय किया कि इस सम्बन्ध में वेदों से भी क्यों न पूछ लिया जाए। अस्तु, जब हमने वेदों से पूछा कि तुम परब्रह्म किसे कहते हो, तब उन्होंने यह उत्तर दिया—"हे ब्रह्मा तथा हे विष्णु ! परब्रह्म तो केवल भगवान् सदाशिव ही हैं। वे तीनों गुणों से भिन्न हैं तथा उन्हीं के अंगों द्वारा तुम दोनों की उत्पत्ति हुई है।" वेदों के मुख से यह शब्द सुनकर हम दोनों अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उस समय प्रणव ने हम दोनों को टोकते हुए कहा—"हे ब्रह्मा तथा हे विष्णु ! तुम वेदों के वचन को असत्य समझते हो, यह उचित नहीं है, तुम्हें संसारी जीवों के समान सत्य-मार्ग को भुलाकर, संशय में नहीं पड़ना चाहिए।

हे ब्रह्मा तथा हे विष्णु ! कैलाशवासी भगवान् सदाशिव अपनी इच्छानुसार कभी शरीर धारण करते हैं और कभी अशरीर हो जाते हैं। उनकी सभा में सभी देवता पहुँचकर शीश नवाते हैं। उस समय लक्ष्मी शिवजी के गुणों का गान करती हैं, सरस्वती वीणा बजाती हैं, इन्द्र बाँसुरी बजाते हैं, नारद भी वीणा बजाते हैं और तुम दोनों मृदंग बजाकर ताल देते हो।"हे नारद ! इस भांति बजाते हैं और तुम दोनों मृदंग बजाकर ताल देते हो।""हे नारद ! इस भाँति प्रणव ने मुझे तथा विष्णु जी को बहुत कुछ समझाया, परन्तु शिवजी की माया के वशीभूत होने के कारण हम दोनों की समझ में एक भी बात नहीं आयी।"

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! जिस समय यह वार्तालाप चल रहा था, उसी समय हम दोनों के बीच में एक ज्वाला-ज्योति प्रकट हुई। उस ज्योति से सम्पूर्ण पृथ्वी तथा आकाश परिपूर्ण हो गये। तदुपरान्त उस ज्वाला के बीच से एक व्यक्ति प्रकट हुआ, उसके शरीर का रंग नील लोहित था। वह अपने मस्तक पर चन्द्रमा, हाथ में त्रिशूल धारण किये तथा एवं अन्य अंगों में आभूषणों के स्थान पर सर्प लपेटे हुए था। उसे देखते ही मैंने अपने पाँचवें मुख से यह कहा—"अरे, हमारे बीच में यह कौन उत्पन्न हुआ?" तदुपरान्त मैंने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"तुम तो वही हो, जिसे हमने अपनी दोनों भौंहों के बीच से उत्पन्न किया था? तुम्हें रोते देखकर हमने तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। इस समय तुम यहाँ क्यों आये हो?"

हे नारद ! मेरी बात सुनकर शिवजी ने अत्यन्त क्रोध करके एक व्यक्ति को उत्पन्न किया। वह व्यक्ति भक्तों को प्रसन्नता प्रदान करने वाला तथा शत्रुओं को दुःख देने वाला था। काल के समान प्रकट होने के कारण वह कालराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसे देखकर काल भी भयभीत हो गया। अस्तु, उसे काल भैरव भी कहा गया। सम्पूर्ण विश्व का भरण करने की शक्ति रखने वाला होने के कारण वह भैरव भी कहलाया।

हे नारद ! तदुपरान्त भगवान् सदाशिव ने भैरव को यह आज्ञा दी—"हे भैरव ! प्रजापति ब्रह्मा ने हमारी निन्दा की हैं। अस्तु, तुम संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए इसे दंड दो। आज से हम तुम्हें अपनी काशीपुरी का कोतवाल भी नियुक्त करते हैं।" शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर भैरव ने मेरे पाँचवें मस्तक को, जिसके द्वारा मैंने शिवजी की निन्दा की थी, काट डाला। तत्पश्चात् शिवजी भैरव को ब्रह्म हत्या से मुक्त होने की युक्ति बताकर, अन्तर्धान हो गये।

हे नारद ! ब्रह्म हत्या से मुक्ति पाने के हेतु भैरव मेरे मस्तक को

अपने हाथ में लिये हुए तीनों लोकों में भ्रमण करते रहे, परन्तु ब्रह्म हत्या ने स्त्री रूप धरकर उनका कहीं भी पीछा न छोड़ा। पृथ्वी पर सब जगह भ्रमण करने के उपरान्त भैरव देवताओं के लोक में घूमने लगे। जब वे विष्णु जी के लोक में गये, तब विष्णु जी ने उनकी प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—''हे प्रभो ! आपके कंठ में अनेक ब्रह्माओं के मस्तकों की माला विराजमान है। यदि आपको ब्रह्म हत्या का पाप लग सकता होता, तब पहले कल्पों में भी अवश्य लगता, इस बार ही कोई नयी बात नहीं है। हे स्वामी ! आपके स्मरण मात्र से ब्रह्म हत्या दूर हो जाती है, तब स्वयं आपको कोई पाप लगना उपहास मात्र है। प्रलय काल में जब आप सम्पूर्ण सृष्टि का संहार कर देते हैं, तब भी आपको कोई दोष नहीं लगता। इस समय आप केवल एक ब्रह्मा का मस्तक काटकर ही ऐसा स्वरूप क्यों बनाये हुए हैं?''

हे नारद ! भैरव जी से इस प्रकार कहकर विष्णु जी ब्रह्म हत्या को सम्बोधित करते हुए बोले—''हे ब्रह्महत्या ! तू भैरव जी का पीछा छोड़ दे।'' ब्रह्महत्या ने उत्तर दिया—''हे विष्णु जी ! मैं भगवान् सदाशिव की आज्ञा से इनके पीछे लगी हुई हूँ।'' यह सुनकर विष्णु जी चुप हो गये और भैरव जी आगे चल दिये। जिस समय भैरव जी मुक्ति क्षेत्र काशीपुरी में पहुँचे, उस समय ब्रह्म हत्या स्वयं अदृश्य हो गयी। इस प्रकार शिवजी ने संसार के सम्मुख काशी की महिमा को प्रकट किया।

हे नारद ! काशी की महिमा का वर्णन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। भैरव जी की ब्रह्म हत्या तीनों लोकों की परिक्रमा करने पर भी दूर नहीं हुई थी, परन्तु काशी में जाकर वह अपने आप अदृश्य हो गयी। काशी जी में कपालमोचन तीर्थ सबसे अधिक फल देने वाला है। उसका स्मरण करने मात्र से ही बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। सभी वेद तथा पुराणों का कहना है कि कपालमोचन तीर्थ के समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है। वहाँ भगवान् सदाशिव भैरव जी के स्वरूप में सदैव विराजमान रहते हैं। उनके सभी पाप सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं।

सप्तमी तथा चतुर्दशी तिथि एवं रविवार तथा सोमवार के दिन भैरव जी का पूजन करने से सब पापों से मुक्ति मिलती है। जो मनुष्य भैरव जी की आठ परिक्रमा करते हैं, उनके तीनों प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं जो लोग भैरव की कथा सुनते अथवा दूसरों को सुनाते हैं, उन्हें भी बड़ा पुण्य होता है।''

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं सोमवार के व्रत की महिमा का वर्णन करता हूँ। सोमवार के व्रत को सभी स्त्री-पुरुष कर सकते हैं। जो लोग इस व्रत को करते हैं, उनके दोनों लोक सुधर जाते हैं तथा उन्हें सम्पूर्ण मनोकामनाओं की प्राप्ति होती हैं। सोमवार का व्रत करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट करने वाला है। अस्तु, प्रत्येक शिव भक्त को उचित है कि वह सोमवार के दिन व्रत रखकर सन्ध्या के समय शिवजी का पूजन करें। जो विधान त्रयोदशी व्रत का है, वही इस सोमप्रदोष के लिए भी उचित है। शिवजी के अतिरिक्त इस व्रत में अन्य किसी देवता का ध्यान करना उचित नहीं है।

हे नारद ! सोमशिव का भजन करने से सभी लोगों को अपने मनोरथ प्राप्त होते हैं। इस व्रत के द्वारा भाग्यहीन सौभाग्य, सन्तानहीन सन्तान तथा निर्धन अतुल सम्पत्ति प्राप्त करते हैं विधवा स्त्री तथा क्वारा पुरुष भी इस व्रत को धारण कर सकता है। इस संबंध में हम तुम्हें इतिहास सुनाते हैं, उसके द्वारा तुम यह जान सकोगे कि इस व्रत के प्रभाव से चित्राङ्गद मृत्यु से किस प्रकार बचा रहा तथा उसकी स्त्री ने किस प्रकार इस व्रत को करके अपने पति सहित शिवलोक में स्थान प्राप्त किया।

हे नारद ! आर्यावर्त्त देश में चित्रवर्मा नामक एक राजा परम प्रतापी, धर्मात्मा, दयालु, यज्ञ करने वाला तथा शिवजी का परम भक्त था। उसने अनेक सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। कुछ समय बाद उसके

घर में एक कन्या ने जन्म लिया। वह कन्या भी परम सुन्दरी थी। जब उसने ज्योतिषियों को बुलाकर उस कन्या के लक्षण पूछे, तब ज्योतिषियों ने ग्रह-नक्षत्रों का विचार करते हुए यह उत्तर दिया—"हे राजन् ! यह कन्या पार्वती के समान श्रेष्ठ, दमयन्ती के समान सुन्दरी, सरस्वती के समान बुद्धिमान्, लक्ष्मी के समान कलाओं का ज्ञान रखने वाली तथा अदिति के समान सन्तानवती होगी। इसका नाम सीमन्तिनी होगा। यह आठ पुत्रों को जन्म देगी तथा संसार में यश प्राप्त करेगी।" ज्योतिषियों की यह बात सुनकर राजा तथा रानी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने ज्योतिषियों को बहुत-सा धन दिया ; परन्तु उसी समय एक बुद्धिमान् ब्राह्मण ने निर्भीकतापूर्वक यह कहा—"हे राजन् ! तुम्हारी यह पुत्री चौदह वर्ष की आयु में विधवा हो जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।" इस बात को सुनते ही राजा तथा रानी को अत्यन्त शोक हुआ, परन्तु फिर धैर्य धारण कर उन्होंने सब ब्राह्मणों को विदा कर दिया तथा स्वयं भगवान् सदाशिव का ध्यान धरने लगे।

हे नारद ! जब वह कन्या युवावस्था को प्राप्त हुई और उसने अपनी सहेलियों के मुख से यह सुना कि एक ब्राह्मण ने चौदह वर्ष की आयु में मेरे विधवा हो जाने की बात कही है, तो वह अत्यन्त चिन्तित एवं दुःखी होकर याज्ञवल्क्य मुनि की पत्नी मैत्रेयी के पास जा पहुँची। उसने मैत्रेयी को दंडवत् प्रणाम करने के उपरान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा यह प्रार्थना की—"आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मेरे पति की आयु की वृद्धि हो।" उस समय मैत्रेयी ने कहा—"हे राजपुत्री ! तुम भगवान् सदाशिव तथा भगवती गिरिजा की अराधना करो। तुम सोमवार का व्रत धारण करके सोम शिव का पूजन किया करो। सन्ध्या के समय श्री शिवजी के पूजन करने के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन कराना, तत्पश्चात् स्वयं भोजन किया करना। इस उपाय से शिव गिरिजा प्रसन्न होकर तुम्हारे संकट को दूर कर देंगे। यह विश्वास रखो।" मैत्रेयी से यह उपदेश पाकर सीमन्तिनी अपने घर

लौट आयी तथा विधिपूर्वक सोमवार का व्रत धारण कर, उमा-महेश्वर का पूजन करने लगी।''

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! नैषध देश के राजा नल और दमयन्ती के सम्बन्ध में पहले भी कहा जा चुका है। वे दोनों राजा-रानी शिवजी के परम भक्त थे। उनके एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम इन्द्रसेन था। इन्द्रसेन भी शिवजी का परम भक्त था। इन्द्रसेन के घर चित्राङ्गद नाम के एक बालक का जन्म हुआ। चित्राङ्गद चन्द्रमा के समान सुन्दर, सम्पूर्ण विद्याओं तथा कलाओं में प्रवीण एवं अपने पिता के समान ही शिवजी का परम भक्त था। राजा चित्रवर्मा ने उसे सब प्रकार से योग्य देखकर अपनी पुत्री सीमन्तिनी का विवाह उसके साथ कर दिया। विवाह के उपरान्त चित्राङ्गद कुछ समय तक अपने ससुर के घर में ही रहा। एक दिन वह अपने सेवकों के साथ नाव पर चढ़कर यमुना नदी में जल-विहार कर रहा था कि अचानक ही वह नाव पानी में डूब गयी। इस समय दोनों किनारों पर खड़े हुए लोग हाहाकर करने लगे।

हे नारद ! जब राजा चित्रवर्मा ने यह समाचार सुना तो वह अत्यन्त व्याकुल हो, नदी के तट पर जा पहुँचा और उच्च स्वर से रुदन करने लगा। रानी भी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। जिस समय सीमन्तिनी को अपने पति के डूबने का समाचार मिला, उस समय वह भी विकलता के कारण मूर्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ी। राज्य के मंत्री, सभासद तथा प्रजा में से ऐसा कोई भी व्यक्ति न था, जो इस समाचार को पाकर अत्यन्त व्याकुल न हुआ हो। जब राजा इन्द्रसेन के पास यह समाचार पहुँचा तो वह भी अपनी पत्नी सहित शोक-समुद्र में डूब गये। सीमन्तिनी ने पहले तो पति के साथ सती हो जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु जब पिता ने ऐसा करने से मना किया, तब वह वैधव्य-धर्म में

स्थित रहकर, भगवान् सदाशिव का पूजन करती हुई, अपना जीवन व्यतीत करने लगी। पति की मृत्यु हो जाने पर भी उसने सोमवार का व्रत करना नहीं छोड़ा। जब सोमवार का दिन आया तो उसने मैत्रेयी की आज्ञानुसार दिन भर निर्जल व्रत रखकर, प्रदोष काल में शिव-गिरिजा का पूजन किया तथा अत्यन्त प्रेमपूर्वक उत्सव मनाया। इस प्रकार वैधव्यावस्था में उसे तीन वर्ष का समय व्यतीत हो गया। इधर तो यह हाल था, राजा चित्राङ्गद के पिता राजा इन्द्रसेन के ऊपर शत्रुओं ने चढ़ाई कर दी तथा उनका सम्पूर्ण राजपाट छीनकर, उन्हें रानी सहित बन्दीगृह में डाल दिया, परन्तु सीमन्तिनी के व्रत के प्रभाव से जल में डूबे हुए राजा चित्राङ्गद ने बहुत आनन्द प्राप्त किया। वह जमुना से जीवित निकल आया। भगवान् सदाशिव की ऐसी कृपा देखकर उसके श्वसुर आदि को जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।''

ॐ ॐ ॐ

उन्नीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने पूछा—''हे पिता ! आप मुझे यह बताने की कृपा कीजिये कि चित्राङ्गद यमुना में डूबने पर भी मरने से किस प्रकार बच गया?'' ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! वह वृत्तान्त इस प्रकार है कि जिस समय चित्राङ्गद जल के भीतर पहुँचा, तो उसने वहाँ नागों की अनेक स्त्रियों को क्रीड़ा करते हुए देखा। उन स्त्रियों की दृष्टि भी जब राजा पर पड़ी तो वे उसकी सुन्दरता पर मोहित हो गयीं और उसे अपने साथ पाताल में ले गयीं। चित्राङ्गद ने पाताल में जाकर यह देखा कि जहाँ नागों के अनेक नगर बसे हुए हैं। जिस समय चित्राङ्गद नागों के राजा तक्षक के रत्न जटित सिंहासन के समीप पहुँचा, उस समय वहाँ की विचित्र सामग्री एवं दास-दासियों की शोभा को देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। तदुपरान्त उसने परम तेजस्वी नागराज तक्षक को प्रणाम किया। तक्षक ने भी उसे अत्यन्त

सुन्दर देखकर अपनी स्त्रियों से पूछा—"यह राजपुत्र यहाँ किस प्रकार आया है? तुमने इसे कहाँ से प्राप्त किया है?" उस समय नाग-कन्याओं ने यह उत्तर दिया—"हे राजन् ! हमें इसके कुल आदि के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। हम इसे यमुना नदी के जल में पड़ा हुआ देखकर, यहाँ ले आयी हैं।"

हे नारद ! नाग-स्त्रियों की बात सुनकर तक्षक ने चित्राङ्गद से पूछा—"हे राजपुत्र ! तुम कौन हो?" चित्राङ्गद ने भगवान् सदाशिव का स्मरण कर, प्रणाम करते हुए राजा तक्षक को सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा यह कहा—"हे प्रभो ! पूर्व जन्मों के अनेक पुण्यों के प्रताप से ही आज मुझे आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे पितरों को भी आज तक आपके शुभ-दर्शन नहीं हुए। मैं यहां आकर अपने को परम सौभाग्यशाली समझता हूँ।" चित्राङ्गद के ऐसे विनम्र वचन सुनकर नागराज तक्षक ने अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कहा—"हे राजपुत्र ! अब तुम अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता मत करो तथा सुखपूर्वक यहाँ निवास करो। हाँ, एक बात तुम मुझे यह अवश्य बता दो कि तुम किस देवता का पूजन किया करते हो?" यह सुनकर चित्राङ्गद ने उत्तर दिया—"हे प्रभो ! सभी वेदों में जिन्हें महादेव कहकर वर्णन किया गया है, मैं उन्हीं भगवान् सदाशिव का पूजन करता हूँ।"

हे नारद ! चित्राङ्गद के मुख से भगवान् सदाशिव की प्रशंसा सुनकर नागराज तक्षक ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हे राजपुत्र ! तुम्हारी बात सुनकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। तुम शुद्धमार्ग को जानने वाला तथा शिवजी के भक्त हो। तुम यहाँ रहकर सुखपूर्वक राज्य करो। यहाँ सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। न तो यहाँ कोई वृद्ध होता है और न रोगी होता है। यहाँ का कोई निवासी मृत्यु को भी प्राप्त नहीं होता।" नागराज के मुख से यह वचन सुनकर चित्राङ्गद ने उत्तर दिया—"हे प्रभो ! मुझे यहाँ रहने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मेरे माता-पिता, स्त्री तथा प्रजाजन मुझे जल में डूबा हुआ जानकर अत्यन्त

दुःख को प्राप्त हो रहे होंगे। पता नहीं उनकी क्या हालत होगी? अस्तु, यदि आप कृपा करके मुझे उनके समीप पहुँचा दें तो श्रेष्ठ हो।'' यह सुनकर नागराज तक्षक ने अत्यन्त प्रसन्न होकर चित्राङ्गद को कुछ दिन तक तो अपने घर ठहराकर स्वागत-सत्कार किया तदुपरान्त एक दिन अनेक प्रकार के रत्न, वस्त्र, आभूषण आदि सामग्री उसे भेंट कर तथा काम्यक नामक एक घोड़ा देकर, उसके साथ अपना एक पुत्र तथा एक राक्षस कर दिया और उन्हें यह आज्ञा दी कि तुम इस राजपुत्र को घर तक विदा कर आओ। विदा करते समय तक्षक ने चित्राङ्गद को यह विश्वास भी दिलाया कि जिस समय तुम हमें याद करोगे, उसी समय हम तुम्हारे पास पहुँच जायेंगे, अस्तु नागराज से विदा होकर, चित्राङ्गद उन सेवकों के साथ घोड़े पर चढ़, यमुना तट पर आ खड़ा हुआ। वहाँ पहुँचकर तक्षक का पुत्र तथा चित्राङ्गद घोड़ों पर चढ़े हुए नदी के किनारों पर भ्रमण करने लगे।''

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! जिस दिन चित्राङ्गद लौटकर नदी तट पर पहुँचा, उस दिन सोमवार था। अस्तु, सीमन्तिनी शिवजी का व्रत धारण किये हुए, अपनी सखियों सहित वहाँ यमुना-स्नान करने के लिए आयी थी। जब उसने वहाँ पर दो राजपुत्रों को घोड़े पर सवार घूमते हुए देखा, तो चित्राङ्गद को पहचानकर, अपने मन में यह विचार करने लगी कि मेरे पति यहाँ किस प्रकार आ पहुँचे हैं।

हे नारद ! तब चित्राङ्गद ने घोड़े से उतरकर सीमन्तिनी को अपने समीप बुलाया और उसकी ओर आश्चर्यचकित होकर देखते हुए यह पूछा—''हे भद्रे ! तुम किसकी पुत्री तथा किसकी पत्नी हो? बाल्यावस्था में ही तुम विधवा कैसे हो गयी? तुम्हारी ऐसी दुर्बल-दशा क्यों हो गयी है?'' यह सुनकर सीमन्तिनी तो लज्जा के कारण कोई उत्तर न दे सकी, परन्तु उसकी सखी ने चित्राङ्गद से यह कहा—''हे महानुभाव ! यह

राजकुमारी राजा नल के पौत्र चित्रवर्मा की पुत्री है। इसका नाम सीमन्तिनी है। इनके पति की मृत्यु आज से तीन वर्ष पूर्व यमुना नदी में डूबकर हो गयी, अब ये विधवा होकर अपनी माता के घर ही रहती है। अस्तु, आज सोमवार का व्रत होने के कारण यहां स्नान के निमित्त आयी हैं।''

हे नारद ! इस प्रकार जब सखी सीमन्तिनी का परिचय दे चुकी, तब सीमन्तिनी ने स्वयं चित्राङ्गद से इस प्रकार कहा—''हे बटोही ! आप कौन हैं? क्या आप किन्नर, गन्धर्व तथा सिद्ध जनों में से कोई हैं अथवा शरीर धारण किये हुए साक्षात् कामदेव ही हैं? आपको देखकर मुझे अपने पति का स्मरण हो आया है। इतना कहकर सीमन्तिनी मूर्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ी।'' तब चित्राङ्गद ने उसे धैर्य बँधाते हुए इस प्रकार कहा—''हे राजपुत्री ! तुम्हारा पति अभी तक जीवित है। तुम्हारे शुभ कर्मों एवं सोमवार के व्रत के प्रभाव से वह शीघ्र ही तुम्हारे समीप आने वाला है। हम तुम्हारे पति के मित्र हैं और यहाँ तुम्हें उनके आगमन का सन्देश देने को आये हैं, परन्तु यह बात अभी किसी के सम्मुख प्रकट मत करना।'' चित्राङ्गद के मुख से यह शब्द सुनकर जब सीमन्तिनी ने उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखा तो यह निश्चय हो गया कि मेरा पति यही है। उस समय वह अपने मन में सोचने लगी कि याज्ञवल्क्य की पत्नी के वचन तथा शिवजी की कृपा से ऐसा होना कुछ असम्भव नहीं।

हे नारद ! जिस समय सीमन्तिनी इस प्रकार विचार कर रही थी, उसी समय चित्राङ्गद ने उसके कान में कुछ बात कही, जिसके कारण वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। चित्राङ्गद ने यह कहा था कि तुम अपने माता-पिता के पास जाकर यह समाचार कहो, तब तुम अपने पति को प्राप्त करोगी। इतना कहकर चित्राङ्गद तक्षक के पुत्र को साथ ले, वहाँ से चलकर अपनी राजधानी में जा पहुँचा। वहाँ उसने अपने शत्रुओं के पास तक्षक के पुत्र के द्वारा यह सन्देश भिजवाया कि या तो तुम लोग हमारा राज्य वापस कर दो, अन्यथा हम तुमको मार डालेंगे। जिस

समय तक्षक के पुत्र ने शत्रुओं से यह बात कही, उस समय वे शीघ्र ही चित्राङ्गद की शरण में आ पहुँचे। उन्होंने उसका राज्य लौटाकर, राजा-रानी को बन्दीगृह से मुक्त कर दिया।

हे नारद ! जब चित्राङ्गद ने अपने माता-पिता से सब हाल कहा, तो वे उस वृत्तान्त को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा अपने पुत्र को कण्ठ से लगाकर आशीर्वाद देने लगे। फिर उन्होंने राजा चित्रवर्मा के पास अपने सेवक को भेजकर यह सन्देश पहुँचाया कि चित्राङ्गद सकुशल लौट आये हैं और वे शीघ्र ही सीमन्तिनी को लेने के लिए आपके यहाँ पहुँच रहे हैं। राजा चित्रवर्मा ने जब यह समाचार सुना तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। कुछ समय बाद चित्राङ्गद भी उनके समीप जा पहुँचा। तब राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सीमन्तिनी के साथ उसका दुबारा विवाह किया तथा बहुत-सा दान दहेज देकर विदाई दी। चित्राङ्गद ने नागराज तक्षक से जो वस्तुएँ प्राप्त की थीं, उन सबको सीमन्तिनी को भेंट कर दिया। इस प्रकार दोनों ही कुल प्रसन्न हो गये। जब सीमन्तिनी को लेकर चित्राङ्गद अपने घर लौट आया तो राजा इन्द्रसेन उसे राज्य सौंपकर स्वयं अपनी रानी सहित वन को चले गये। वहाँ शिवजी की कृपा से उन्होंने मुक्ति पद को प्राप्त किया। तदुपरान्त राजा चित्राङ्गद ने दस सहस्त्र वर्षों तक मगध देश का सुखपूर्वक राज्य किया। उसके घर आठ पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुई। जब तक चित्राङ्गद जीवित रहा, तब तक उसने तथा सीमन्तिनी ने शिवजी के व्रत को नहीं त्यागा। वे प्रति सोमवार को व्रत रखते रहे तथा उत्साहपूर्वक शिवजी का पूजन करते रहे।''

ॐ ॐ ॐ

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! प्राचीन काल में विदर्भ देश में वेदमित्र नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। उसका मित्र सारस्वत नामक एक अन्य वेदपाठी ब्राह्मण था। कुछ समय उपरान्त वेदमित्र

तथा सारस्वत के यहाँ एक-एक पुत्र ने जन्म लिया। उन दोनों के नाम सामवान् तथा सुमेधा हुए। वे दोनों बालक स्वभाव तथा कार्यों में एक-दूसरे के समान थे। उन्होंने एक ही गुरु ने विद्या पढ़ी तथा अपनी सेवा द्वारा माता-पिता को प्रसन्न किया। जब वे बालक बड़े हुए तो एक दिन दोनों के माता-पिता ने इस प्रकार कहा—"अब तुम सोलह वर्ष के हो गये। अस्तु, हम तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं, परन्तु विवाह के लिए धन आवश्यक होता है, इसलिए सर्वप्रथम तुम धन का संग्रह करो। हम तुम्हें धन-प्राप्ति का एक उपाय बतलाते हैं, उनके अनुसार आचरण करने पर तुम्हें यथेष्ट धन की प्राप्ति होगी। वह उपाय यह है कि तुम दोनों यहाँ के राजा के पास जाओ और उन्हें अपनी विद्या के चमत्कार से प्रसन्न कर, धन प्राप्त करो।"

हे नारद ! माता-पिता की आज्ञा स्वीकार कर वे दोनों राजा के समीप जा पहुँचे। वहां उन्होंने अपनी विद्या की चतुरता प्रकट कर, राजा से धन प्राप्त किया। जब वे घर लौटने को हुए, उस समय राजा ने उसने यह कहा—"हे ब्राह्मण पुत्रो ! हम तुम्हें और भी अधिक धन की प्राप्ति के लिए एक उपाय बताते हैं, सुनो। उपाय यह है कि मगध देश का राजा चित्राङ्गद तथा उसकी रानी सीमन्तिनी प्रति सोमवार को व्रत धारणकर, ब्राह्मणों को दान दिया करते हैं, तथा स्त्रियों सहित उन्हें भोजन कराते हैं। अस्तु, तुम उनके यहाँ इस प्रकार जाओ कि तुम में से एक तो स्त्री का स्वरूप धारण कर ले और दूसरा उसका पति बन जाए। ऐसा करने पर जब तुम्हें वहाँ से धन प्राप्त हो जाए, तब तुम फिर लौटकर हमारे घर आना।"

हे नारद ! राजा के वचन सुनकर उस ब्राह्मण पुत्रों ने अत्यन्त भयभीत होकर उत्तर दिया—"हे राजन् ! हमें ऐसे धन की आवश्यकता नहीं है। अस्तु, हम आपकी आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हैं। कृपा करके आप हमें धर्म के विरुद्ध चलने का उपदेश मत कीजिये।"

हे नारद ! यह सुनकर राजा ने वेद का प्रमाण देते हुए उन बालकों से कहा—"हे ब्राह्मण पुत्रो ! हम तुम्हें वेद की आज्ञानुसार ही यह

कहते हैं कि देवता, गुरु, माता, पिता तथा राजा की आज्ञा का तिरस्कार करना उचित नहीं है। वह आज्ञा चाहे उचित हो, चाहे अनुचित, उसका पालन करना सभी मनुष्यों का धर्म है।'' राजा की इस आज्ञा को उन दोनों ने स्वीकार कर लिया। तब सामवान् ने तो स्त्री का वेष बनाया और सुमेधा उसका पति बनकर राजा चित्राङ्गद के समीप जा पहुँचा। सन्ध्या के समय शिवपूजन करने के उपरान्त जब राजा-रानी ने सभी ब्राह्मणों को उनकी पत्नियों सहित शिव-पार्वती का रूप जानकर दान देना आरम्भ किया, तब सुमेधा और सामवान् भी पति-पत्नी के रूप में उनके सम्मुख उपस्थित हुए। उस समय रानी सीमन्तिनी भगवान् को कृत्रिम नारी के रूप में देखकर बहुत हँसी। फिर भी राजा-रानी ने उन दोनों को गौरी-शंकर का स्वरूप जानकर पूजा तथा भोजनादि कराकर, बहुत दक्षिणा देने के उपरान्त विदा किया। वहाँ से छुट्टी पाकर जब दोनों ब्राह्मण पुत्र अपने घर की ओर चले और बीच में एक वन में पहुँचे, उस समय स्त्री रूपधारी सामवान् के हृदय में ठीक वैसे ही भाव जाग्रत हुए, जैसे एक काम-पीड़िता नारी के हृदय में होते हैं। उस अवस्था में उसने समेधा को सम्बोधित करते हुए यह कहा—''देखो, यह वन भोग-विलास करने के लिए कैसा उपयुक्त है। आओ, हम-तुम दोनों यहाँ मैथुन करें। सामवान् की बात सुनकर सुमेधा ने यह समझा कि वह हँसी कर रहा है। अस्तु, वह मुस्कराता हुआ, बिना कोई उत्तर दिये आगे बढ़ने लगा। कुछ दूर और चलकर स्त्री रूपधारी सामवान् ने फिर पहले के समान काम-पीड़ित होकर उससे कहा—''हे पति ! इस समय कामदेव के बाणों से मैं अत्यन्त दुःखी हो रही हूँ। भला तुम मेरे साथ रति क्यों नहीं करते हो? जब तक तुम मेरे साथ रति नहीं करोगे, मुझसे आगे नहीं चला जाएगा, अतः तुम मेरी इच्छा को पूर्ण करो।'' इन शब्दों को सुनकर जब सुमेधा ने पीछे मुड़कर देखा, तो उसे ज्ञात हुआ कि वास्तव में ही सामवान् एक परम सुन्दरी स्त्री के रूप में बदल गया है और उसके नेत्रों से काम वासना प्रकट हो रही है। तब उसने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—

''हे सामवान् ! तुम वेदपाठी, ब्रह्मचारी, निष्पाप ब्राह्मण पुत्र हो, फिर भला मुझ से ऐसी बातें क्यों कर रहे हो?''

हे नारद ! सुमेधा के यह वचन सुनकर सामवान् ने, जोकि उस समय वास्तव में पूर्ण रूपेण स्त्री हो चुका था, इस प्रकार कहा—''हे पति ! यदि तुम्हें विश्वास न हो तो मेरे गुप्त अंग को देख लो। उससे तुम्हें विदित हो जायेगा कि मैं अब पुरुष नहीं, अपितु स्त्री हूँ।'' यह सुनकर सुमेधा ने अत्यन्त आश्चर्य में भरकर जब उसके अंगों की ओर दृष्टिपात किया तो यह जानते हुए देर न लगी कि वास्तव में सामवान का कथन सत्य है। इस आश्चर्य को देखकर वह चकित रह गया और शिवजी का ध्यान धरने लगा। तभी उस स्त्री ने इस प्रकार फिर कहा—''हे युवक ! मैं काम के वेग से अत्यन्त पीड़ित हूँ। तुम मेरी अभिलाषा को पूर्ण करो।'' तब सुमेधा ने उत्तर दिया—''हे बन्धु ! हम तुम दोनों वेदपाठी ब्राह्मण पुत्र हैं। इस समय तुम अवश्य स्त्री रूप को प्राप्त हो गये हो, परन्तु तुम्हें इससे मुक्ति पाने के हेतु शिव-गिरिजा का ध्यान धरना चाहिए। विदर्भ-नरेश ने अपनी धूर्त्तता से हमें ठग लिया है। यदि हम उसके कथनानुसार कार्य नहीं करते, तो ऐसी विपत्ति कभी नहीं आती। यदि फिर भी तुम स्त्री बने रहो तो मैं अपने पिता से आज्ञा लेकर, तुम्हें अपनी पत्नी बना लूँगा।'' इतना कहकर सुमेधा ने शिवजी की माया तथा रानी सीमन्तिनी के व्रत के प्रभाव की अपने मन में अत्यन्त प्रशंसा की।

हे नारद ! इस प्रकार सुमेधा ने स्त्री रूप सामवान् को बहुत कुछ समझाया, परन्तु काम के वशीभूत होने के कारण उसने एक भी बात नहीं मानी। उसने सुमेधा को जबरदस्ती छाती से लगा लिया। तदुपरान्त वे दोनों घर पहुँचे। उस समय दोनों के पिता सब हाल देख, अत्यन्त क्रुद्ध हो, विदर्भ-नरेश के समीप गये और उसे सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहने लगे—''हे राजन् ! तुमने हमारे पुत्रों से ऐसा बुरा-कर्म क्यों कराया, जो इनमें से एक बालक स्त्री बन गया। अब भला, हमारे पितर किस प्रकार मुक्त हो सकेंगे? इस बालक के अतिरिक्त हमारे

कुल में अन्य कोई सन्तान भी नहीं है।'' सारस्वत ब्राह्मण राजा से इस प्रकार कहकर मूर्च्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब राजा ने सामवान् को स्त्री रूप में देखकर अपने मन में अत्यन्त आश्चर्य करते हुए यह उत्तर दिया—''हे ब्राह्मणो ! मैं यह कभी नहीं समझता था कि तुम्हारा बालक वास्तव में ही स्त्री बन जायेगा। मैंने तो अधिक धन की प्राप्ति के लिए ही, इन्हें ऐसी युक्ति बतायी थी। आप कोई ऐसा उपाय बतावें जिसके करने से इस बालक का स्त्री भाव दूर हो जाए।''

हे नारद ! ब्राह्मणों ने यह सुनकर राजा से कहा—''हे राजन् ! तुम अपने हृदय में शिवजी की भक्ति दृढ़ करो तथा उन्हीं से हमारे बालक की मुक्ति का उपाय पूछो।'' यह सुनकर राजा अपनी रानी सहित शिव-गिरिजा का पूजन करने लगा। उसने अनेक प्रकार के उपायों द्वारा शिव-गिरिजा को प्रसन्न कर लिया तथा गिरिजा जी ने प्रकट होकर राजा से वर माँगने के लिए कहा। उस समय राजा उनकी प्रार्थना करते हुए बोला—''हे भगवती ! मैं यह चाहता हूँ कि सारस्वत-ब्राह्मण का पुत्र, जो स्त्री बन गया है, वह फिर से पुरुष हो जाए।'' राजा की इस प्रार्थना को सुनकर भगवती गिरिजा ने उत्तर दिया—''हे राजन् ! हम अपने भक्त को किसी प्रकार अवज्ञा नहीं करना चाहतीं। अस्तु, तुमसे यह कहती हैं कि तुम बालक का विवाह सुमेधा के साथ कर दो।'' इतना कहकर जब गिरिजा अन्तर्धान हो गयीं, तब राजा ने दोनों ब्राह्मणों को बुलाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर सारस्वत ने अपने लड़के का विवाह सुमेधा के साथ कर दिया। तब वे दोनों पति-पत्नी प्रसन्नतापूर्वक विहार करने लगे। भगवती गिरिजा की कृपा से सारस्वत ब्राह्मण को एक दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई। हे नारद ! रानी सीमन्तिनी ने सोमवार का जो व्रत किया था, उसकी महिमा का यह प्रत्यक्ष चमत्कार तुम्हें मैंने सुनाया है। इस चरित्र को जो कोई सुनता, सुनाता अथवा पढ़ता है, उसे भी दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है।''

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब मैं तुम्हें वार्षिक व्रतों के सम्बन्ध में सुनाता हूँ। उन्हें धारण करने से व्रती को सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं तथा अन्त में मुक्ति प्राप्त होकर, शिवजी का सामीप्य-लाभ होता है। वार्षिक व्रतों में एक व्रत उमा महेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। उमा महेश्वर व्रत चैत्र तथा मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा अथवा अमावस्या को करना चाहिए। इस व्रत का नियम यह है कि प्रातःकाल उठ कर संकल्प करे, तदुपरान्त नित्यकर्म आदि से निवृत्त हो, नदी में स्नान करे। फिर अपने घर में आकर श्रेष्ठ मंडप तथा पाँच कलशों की स्थापना करे। कलशों को शुद्ध वस्त्र से ढाँके तथा उनके ऊपर शिव तथा गिरिजा की स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमा में शिवजी का स्वरूप, शंख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त तथा गिरिजा का स्वरूप वस्त्राभूषणों से युक्त होना चाहिए। तत्पश्चात् विधिपूर्वक उनका पूजन तथा हवन करके पंचाक्षरी मंत्र का जप करना चाहिए।

हे नारद ! प्रदोष-काल में शिवजी का दुबारा पूजन करके ब्राह्मणों को सपत्नीक भोजन करावे तथा उन्हें दान-दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट करे। तदुपरान्त स्वयं दूध सहित मीठा भोजन करे। इसी प्रकार एक वर्ष तक दोनों पक्ष में इस व्रत को धारण करता रहे। जो लोग इस विधि में उमा महेश्वर व्रत को धारण करते हैं, उनकी तीन पीढ़ियाँ तर जाती हैं। ऐसे लोगों को संसार में सुख तथा परलोक में शिवजी का सामीप्य प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में हम तुमसे एक कथा कहते हैं।

हे नारद ! प्राचीन काल में वैदर्भ नामक एक ब्राह्मण अनर्त देश में रहा करता था। वह ब्राह्मण अत्यन्त धनवान्, बलवान् तथा विद्वान् था। उसके अनेक सन्तानें थीं, जिनमें शारदा नामक एक कन्या बड़ी विदुषी थी। जब वह कन्या बारह वर्ष की हुई, तब एक अन्य धनवान् वृद्ध ब्राह्मण ने वैदर्भ के पास जाकर यह कहा कि तुम अपनी पुत्री का

विवाहा हमारे साथ कर दो। वह ब्राह्मण राजा का मित्र था। अस्तु, उसकी माँग सुनकर वैदर्भ पहले तो बहुत चिन्तित हुआ, परन्तु अन्त में यह विचार करके कि इस माँग को अस्वीकार करने पर राजा भी उसका विरोधी हो जायेगा, उसने शारदा का विवाह उस बूढ़े ब्राह्मण के साथ कर दिया।

हे नारद ! मध्याह्न काल में तो विवाह हुआ और उसी दिन संध्याकाल में जब वह ब्राह्मण नदी के तट से सन्ध्या करके लौट रहा था, मार्ग में सर्प के काट लेने से उसकी मृत्यु हो गयी। यह देखकर दोनों कुल के लोग अत्यन्त दुःखी हुए, परन्तु विधि के विधान में परिवर्तन करना सामर्थ्य की बात न जानकर, धैर्य धारण कर, चुप हो गये। शारदा विधवा होकर अपने माता-पिता के घर रहने लगी। जब कुछ समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन यह घटना घटी। शारदा के पिता तथा भाई किसी स्थान पर विवाह में सम्मिलित होने के लिये गये हुए थे। उनके लौटकर आने से पूर्व ही अन्धे वैध्रुव मुनि अपने शिष्यों का हाथ पकड़े हुए शारदा के घर जा पहुँचे। शारदा ने उनकी अत्यन्त सेवा की तथा भोजन कराया। उस समय वैध्रुव मुनि ने उसे वरदान देते हुए यह कहा—''हे शारदे ! तुम्हें अपने पति के द्वारा एक पुत्र की प्राप्ति होगी तथा देवताओं की कृपा से वह बालक बड़ा धर्मात्मा होगा।'' मुनि के यह वचन सुनकर शारदा ने अत्यन्त चकित हो, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—''हे प्रभो ! मेरे पति की मृत्यु तो विवाह के दूसरे दिन ही हो गयी थी। अस्तु, आप मुझे यह बतावें कि आपका कथन किस प्रकार सत्य होगा?''

हे नारद ! शारदा के मुख से यह शब्द सुनकर वैध्रुव मुनि ने कहा—''हे पुत्री ! नेत्रहीन होने के कारण मैं तुम्हें बिना देखे ही ऐसा वर दे बैठा हूँ, फिर भी मैं भगवान् सदाशिव को प्रसन्न करके अपने वचन को सत्य करूँगा। तुम भी मेरी आज्ञा मानकर उमा महेश्वर व्रत को धारण करो।'' मुनि के यह वचन सुनकर शारदा अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने उत्तर दिया—''मैं आपकी आज्ञानुसार उमा महेश्वर का व्रत

अवश्य धारण करूँगी।'' यह सुनकर मुनि ने उसे व्रत की विधि बतला दी। उसी समय शारदा के पिता तथा भाई भी लौटकर घर आ गये। उन्होंने जब सब वृत्तान्त सुना तो मुनि से इस प्रकार बोले—''हे प्रभो ! आपने अत्यन्त कृपा की जो यहाँ आकर हमें अपना दर्शन दिया है। हमारी यह पुत्री आपकी शरण में है। अब आप कृपा कर यहीं शिवालय में निवास कीजिए। जब इसका व्रत समाप्त हो जाए, तब आप जहाँ चाहें, वहाँ चले जाइयेगा ; परन्तु उस समय तक यहीं निवास कीजिये।'' वैध्रुव मुनि ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। तब शारदा उनके बताये अनुसार उमा महेश्वर का व्रत रखने लगी और वे उसे उपदेश करते रहे।''

ॐ ॐ ॐ

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! इस प्रकार शारदा को व्रत करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया, तब उसने व्रत का उद्यापन किया। मुनि ने भी जप, तप, योग आदि द्वारा भगवती गिरिजा को प्रसन्न किया। दोनों की ऐसी भक्ति देखकर श्री गिरिजा ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये। उनके दर्शन पाकर मुनि का अन्धापन दूर हो गया। उस समय मुनि तथा शारदा ने गिरिजा जी की स्तुति की।

हे नारद ! तब गिरिजा जी ने प्रसन्न होकर दोनों को सम्बोधित करते हुए यह कहा—''मैं तुम्हारी इच्छाओं को पूरा करूँगी। तुम जो चाहते हो, वह कहो?'' यह सुनकर मुनि बोले—''हे मातेश्वरी ! मैंने अनजान में शारदा को यह वरदान दिया है कि तुम अपने पति द्वारा एक पुत्र को जन्म दोगी। अस्तु, आप मेरे इस वचन को सत्य करने की कृपा करें।'' यह सुनकर भगवती गिरिजा बोलीं—''हे मुनि ! मैं तुम्हें शारदा के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाती हूँ।''

''हे मुनि ! पूर्वजन्म में शारदा एक दरिद्र ब्राह्मण की पुत्री थी। यह एक व्यक्ति को ब्याही गयी, जिसके घर में पहले से भी एक पत्नी थी।

वहाँ इसने अपनी सौत को अनेक प्रकार के कष्ट दिये। इसका पति भी इसकी सुन्दरता पर ऐसा मोहित था कि उसने भी अपनी पहली पत्नी की ओर ध्यान देना छोड़ दिया। फलस्वरूप वह चिन्तातुर हो कुछ दिनों में मृत्यु को प्राप्त हो गयी। इसके पड़ोस में एक युवा ब्राह्मण रहता था। एक दिन उसने इसकी सुन्दरता पर मोहित होकर इसका हाथ पकड़ लिया। तब शारदा ने उसे अनेक प्रकार के दुर्वचन कहकर धिक्कारा। परन्तु वह इसके मोह में व्याकुल होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

"हे मुनि ! शारदा ने अपनी सौत को बहुत कष्ट पहुँचाया था, इसलिए यह इस जन्म में विधवा हुई है तथा निरन्तर इक्कीस जन्मों तक विधवा ही होती रहेगी। इस बार यह उस ब्राह्मण की पत्नी होकर विधवा हुई, जिसने पूर्वजन्म में इसके विरह में अपने प्राण त्याग दिये थे। इसका पूर्व-जन्म का जो पति था, वह पाण्डुदेश में एक ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ है। वह अत्यन्त धनी, सुन्दर, बुद्धिमान् तथा शिवभक्त है। मैं यह वरदान देती हूँ कि उसके साथ इसकी प्रतिदिन स्वप्न में भेंट हुआ करेगी। उसके रहने का स्थान यहाँ से तीन सौ सात योजन दूर है। शारदा अपने उस पूर्व-जन्म के पति के साथ स्वप्न में भोग-विलास करके शुभ घड़ी में एक पुत्र को जन्म देगी। उस बालक को देखकर बालक का पिता अत्यन्त प्रसन्न होगा।"

हे नारद ! मुनि से इस प्रकार कहकर पार्वती जी ने शारदा से कहा—"हे शारदा ! तुम्हारा पति तुम्हें प्रतिदिन स्वप्न में मिला करेगा। उसके साथ भोग-विलास करती हुई तुम एक पुत्र को जन्म दोगी। तुम्हारा पुत्र बहुत बलवान्, धनवान् तथा यशस्वी होगा। इस व्रत के प्रभाव से तुम भी अन्त में मुक्ति को प्राप्त करोगी।" इतना कहकर भगवती गिरिजा अन्तर्धान हो गयीं।

हे नारद ! प्रातःकाल होने पर मुनि ने यह सब वृत्तान्त शारदा के माता-पिता को सुनाया। तदुपरान्त मुनि तो अपने स्थान को चले गये और शारदा प्रतिदिन स्वप्न में अपने पति से भेंट करने लगी। कुछ दिनों

बाद जब वह गर्भवती हुई तो बन्धु-बांधवों ने तथा अन्य लोगों ने उसे व्यभिचारिणी समझकर, धिक्कार देना आरम्भ किया। लोगों ने शारदा के माता-पिता से यह भी कहा कि वे उसे घर से निकाल दें। जब शारदा के माता-पिता इस बात के लिए तैयार हो गये, उस समय आकाशवाणी हुई—''शारदा ने कोई कुकर्म नहीं किया है। जो लोग इसे दोष लगायेंगे, उनकी जिह्वा फट जायेगी।'' इस आकाशवाणी को सुनकर शारदा के पिता, भाई, बन्धु आदि अत्यन्त प्रसन्न हुए, परन्तु कुछ लोग आश्चर्य में भरकर यह कहने लगे कि आकाशवाणी के बहाने यह किसी ने झूठी बात कह दी है। परिणाम यह हुआ कि ऐसे कहने वाले लोगों की जीभ तुरन्त फट गयी।''

ॐ ॐ ॐ

चौबीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी बोले—''हे नारद ! शुभ घड़ी प्राप्त होने पर शारदा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। वह बालक सूर्य के समान प्रकाशवान् था। उसका नाम शारदेव रखा गया। बड़ा होने पर उसने अल्पकाल में ही तीन वेद पढ़ लिया तथा शिवजी की भक्ति में संलग्न रहकर माता की सेवा करने लगा। विवाह हो जाने के पश्चात् उसने अनेक सन्तानों को जन्म दिया। एक बार वह अपनी माता को साथ लेकर गोकर्ण तीर्थ में स्नान करने के लिए, शिवरात्रि के दिन जा पहुँचा। वहाँ शारदा का पति वह ब्राह्मण भी आया हुआ था, जिसे शारदा स्वप्न में प्रतिदिन देखा करती थी। शारदा वहाँ उसे पहचान कर अत्यन्त आनन्दित हुई। उधर जब उसने यह भी देखा कि वह स्वप्न में जिस स्त्री तथा पुत्र को देखा करता है वे यहाँ उपस्थित हैं, तो वह भी अत्यन्त आनन्दित हुआ। तदुपरान्त वह वास्तविक भेद को जानने के लिए शारदा के पास आया और इस प्रकार पूछने लगा—''हे भद्रे ! तुम किसकी पुत्री तथा किसकी पत्नी हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम बारम्बार हमारी ओर क्यों देख रही हो, इसका कारण बताओ।''

यह सुनकर शारदा ने रो-रोकर अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त उसे सुना दिया। तब उस ब्राह्मण ने हँसकर पूछा—"यह पुत्र किसका है? इसे देखकर मेरे हृदय में पिता के समान प्रीति सम्पन्न होती है। जब तुम विधवा हो गयीं, तब यह बालक किस प्रकार उत्पन्न हुआ?" यह सुनकर शारदा ने लज्जित होते हुए उत्तर दिया—"हे स्वामिन् ! यह बालक आपके द्वारा ही उत्पन्न हुआ है। इसका नाम शारदेव है और यह सम्पूर्ण विद्याओं को जानने वाला है।" यह सुनकर उस ब्राह्मण ने मुस्कराते हुए कहा—"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारा पति तुम्हारा हाथ पकड़े बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो गया और तुम इस बालक को जन्म दे बैठीं।" अस्तु, जो वृत्तान्त सत्य हो, वह हमें बताओ। तब शारदा ने लज्जा त्यागकर सब सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया, जिससे ब्राह्मण को अपने मन में यह निश्चय हो गया कि शारदा मेरी ही स्त्री है।

हे नारद ! उस समय शारदा तथा उसके पति को अत्यन्त प्रसन्नता हुई—"तब शारदा ने अपने व्रत का आधा फल उस ब्राह्मण को दे दिया और स्वयं भी अपने पति के साथ रहकर उसके आधीन हुई। व्रत का फल प्राप्त होते ही उस ब्राह्मण को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। तब वह अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने माता-पिता की आज्ञानुसार शारदा तथा उसके बालक को अपने घर ले गया। वहाँ शारदा ने उसकी बहुत सेवा की। सांसारिक भोग करने के पश्चात् जब वह ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हुआ, तब शारदा भी उसके साथ सती हो गयी। उस समय वे दोनों विमान में बैठकर शिवपुरी में जा पहुँचे।

हे नारद ! शारदा की यह कथा अत्यन्त पवित्र है। इसे सुनने तथा सुनाने से दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द मिलता है। यह स्त्रियों के पति की आयु में वृद्धि करती है। उमा महेश्वर व्रत को राजव्रत कहा जाता है। जो स्त्रियाँ इस व्रत को धारण करती हैं, वे अपने दोनों कुलों को पवित्र कर देती हैं।"

इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां दशमखण्डस्समाप्तः ॥ १०॥

ॐ नमः शिवाय

श्री शिव महापुराण (सरल भाषा)

ग्यारहवाँ खण्ड

पहला अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! मैंने तुम्हें शिवजी के निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूपों के चरित्र सुनाये। अस्तु, अब तुम जो और सुनना चाहो मुझे बताओ?"

इतनी कथा कह कर सूत जी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो ! ब्रह्मा जी के मुख से यह वचन सुन कर नारद जी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे पिता ! आप ने अत्यन्त कृपा करके मुझे शिव-चरित्र सुनाया जिससे मुझे श्रेष्ठ धर्म की प्राप्ति हुई है। अब मेरी अभिलाषा है कि आप मुझे सम्पूर्ण ब्रह्मांड की स्थिति के सम्बन्ध में बताने की कृपा करें, जिससे मेरे मन में कोई सन्देह नहीं रहे।"

हे शौनकादि ऋषियो ! नारद जी की यह प्रार्थना सुन कर ब्रह्मा जी ने प्रसन्न हो कर कहा—"हे पुत्र ! भगवान् भूतभावन सब प्राणियों द्वारा पूजनीय हैं। यद्यपि सदाशिव जी तीनों गुणों से परे हैं, तो भी वे ब्रह्माण्ड के उपकार के लिए सगुण रूप ग्रहण करते हैं। वे सब के स्वामी हैं तथा उन्हीं का स्मरण करना सब लोगों को उचित है। इस प्रकार कहते हुए ब्रह्मा जी आनन्द मग्न हो गये। उस प्रसन्नता में उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली। तत्पश्चात् वे भगवान् सदाशिव के चरणों का बारम्बार स्मरण करते हुए, इस प्रकार बोले।

हे नारद ! तुम परम धन्य हो, क्योंकि तुमने बारम्बार भगवान् सदाशिव के चरित्रों के सम्बन्ध में प्रश्न करके मेरे आनन्द की वृद्धि की

है। जो लोग भगवान् सदाशिव के चरित्र सुनने के लिए किसी से कुछ प्रश्न करते हैं, वे बिना परिश्रम के ही भव-सागर से पार हो जाते हैं। हे पुत्र ! शिवजी के स्वरूप दो प्रकार के हैं—एक क्षर, दूसरा अक्षर। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ये दोनों स्वरूप गुप्त, प्रकट रूप से विद्यमान हैं। जिस प्रकार शिवजी के स्वरूप दो प्रकार के हैं, उसी भाँति उनकी माया भी दो प्रकार की है, पहली विद्या, दूसरी अविद्या। शंकरजी सगुण रूप, माया से परे, शरीर से रहित तथा परमेश्वर हैं। सगुणरूप शिवजी की लीला से लोकों का अस्तित्व प्रकट होता है। चौदहों भुवन तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन्हीं के द्वारा निर्मित हैं।

हे नारद ! मनुष्यों को सर्वप्रथम भगवान् सदाशिव के विराट् रूप का ध्यान धरना चाहिए। उस विराट् रूप में सात लोक ऊपर तथा सात लोक नीचे स्थित हैं। नीचे के लोकों के नाम इस प्रकार हैं—1. अतल, 2. वितल, 3. सुतल, 4. तलातल, 5. महातल, 6. रसातल तथा 7. पाताल। इन नीचे के लोकों को विराट् स्वरूप शिवजी के चरणों के समान समझना चाहिए। ऊपर के लोकों के नाम इस प्रकार हैं—1. भूर्लोक, 2. भुवर्लोक, 3. स्वर्लोक, 4. महर्लोक, 5. जनर्लोक, 6. तपर्लोक तथा 7. सत्यलोक। इन लोकों को शिवजी के शरीर का ऊपरी भाग समझना चाहिए। उपलोकों की गणना भी उन्हीं भागों में होती है। अब तुम विराट् स्वरूप का वर्णन और अधिक विस्तारपूर्वक सुनो। उस विराट् स्वरूप का चरणतल पाताल, टखना रसातल, पिंडलिया महातल, घुटने तलातल, जांघें सुतल, शरीर का एक भाग वितल, दूसरा भाग अतल तथा रानें महातल हैं। इसी प्रकार ऊपर के लोकों को यों समझना चाहिए कि भूर्लोक नाभि, भुवर्लोक छाती, स्वर्लोक मुख, जनलोक मस्तक, तपलोक सिर, सत्यलोक कण्ठ तथा महर्लोक हृदय हैं। वह इस प्रकार सिर से पाँव तक चौदहों लोकों को विराट् रूप का अंग समझकर ध्यान धरना उचित है।

हे नारद ! अब तुम चौदहों लोकों के विस्तार का वृत्तान्त सुनो। यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड चौदहों लोकों में बँटा है। भूतल के सात खण्ड हैं। वह एक अयुतयोजन लम्बा है। वहाँ स्वर्गलोक से भी अधिक आनन्द

उपस्थित हैं। वहाँ के सभी खण्ड अत्यन्त प्रकाशवान् तथा सुन्दर हैं। वहाँ भोग-विलास के लिए परम सुन्दरी स्त्रियाँ तथा असंख्य धन विद्यमान है। वहाँ देवताओं के स्थान रत्नों से जड़ित परम सुन्दर हैं, जिन्हें देखकर विश्वकर्मा को भी लज्जा आती है। वहाँ किसी को दुःख, शोक, वृद्धावस्था, मृत्यु, चिन्ता आदि नहीं होती। रसायन-सेवन करने के कारण वहाँ सभी प्राणियों के शरीर अत्यन्त तेजस्वी तथा दीप्तिमान रहते हैं। उस स्थान पर बहुधा, दैत्य, दानव, सर्प आदि रहते हैं। वे अपना समय प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करते हैं। महाशिरोमणि के प्रकाश द्वारा वहाँ कहीं अंधेरा नहीं रहता। दिन-रात प्रकाश ही फैला करता है। वहाँ की पुष्प-वाटिका में सहस्त्रों प्रकार के छायादार वृक्ष फल-फूलों से लदे रह कर हृदय को अत्यन्त आनन्द प्रदान करते हैं। उन पर बैठे हुए विविध प्रकार के पक्षी अपनी मधुर वाणी से सब लोगों का मन वश में कर लेते हैं।

हे नारद ! वहाँ की नदियों में कमल के फूल खिले रहते हैं तथा विविध प्रकार की मछलियाँ एवं जल-जन्तु भ्रमण करते रहते हैं। उनके राजा शेषनाग हैं। उनके सम्मुख अप्सराएँ सदैव नृत्य किया करती हैं तथा नागों की कन्याएँ सेवा में संलग्न रहती हैं। इस प्रकार मैंने संक्षेप में नीचे के सातों खण्डों का वर्णन किया। अब तुम प्रत्येक लोक का अलग-अलग वर्णन सुनो।''

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! सर्वप्रथम तुम अतल लोक का वृत्तान्त सुनो। वहाँ पुण्य करने वाला मनुष्य पहुँचता है। इस लोक का राजा मयदानव का पुत्र है। उसने छियानवे मायाओं का निर्माण किया है। भगवान् सदाशिव की सेवा किये बिना अतल लोक किसी को प्राप्त नहीं होता। अतल लोक का विस्तार दस सहस्त्र योजन है। मयदानव का पुत्र भगवान् सदाशिव के ध्यान में हर समय मग्न रहता है

तथा बिना परिश्रम किये लोकों में भ्रमण करता रहता है। यहाँ स्त्रियाँ तीनों लोकों को अपने कामपाश में आबद्ध कर लेने वाली हैं। जो मनुष्य पूर्वजन्म में शुभ-कर्म करता है, वही दूसरे जन्म में अतललोक में जाकर इन स्त्रियों के साथ विहार करता है।

हे नारद ! अतललोक की स्त्रियाँ हाटक अर्थात् स्वर्ण के रस को पी कर विहार करती हैं। इन स्त्रियों के दर्शन तथा स्पर्शमात्र से ही मनुष्य इनकी प्रीति में डूब जाता है। इस लोक जैसा आनन्द देवताओं को भी प्राप्त नहीं होता। जो लोग हाटक रस पीने वाली इन स्त्रियों के साथ संभोग करते हैं, इन्हें दस सहस्त्र हाथियों का बल प्राप्त हो जाता है। इस हाटक रस को प्राप्त करने के लिए मयदानव के पुत्र ने हाटकेश शिवजी का बड़ा पूजन किया था। मयदानव हाटकेश शिवजी की इस प्रकार स्तुति किया करता है—''हे भगवान् सदाशिव ! आप अनाथों के नाथ, तीनों लोकों का दुःख दूर करने वाले तथा सब को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। आपकी सेवा द्वारा असंख्य लोगों ने मुक्ति प्राप्त की है। आप सब का मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं। अस्तु, मेरे ऊपर भी निरन्तर अपनी कृपा बनाये रहें।'' इस प्रकार स्तुति करता हुआ मयदानव का पुत्र शिवजी की कृपा से उस अतल लोक का राज्य तथा अप्रमेय आनन्द प्राप्त करता है।

हे नारद ! अब तुम वितललोक का वृत्तान्त सुनो। यह लोक अतललोक से नीचे, ऊँचाई में दस सहस्त्र योजन तथा अंडे के समान गोल है। यह लोक तालाबों, नदियों तथा नहरों से सुशोभित है, जिनमें कमल के फूल खिले रहते हैं। इस लोक का राजा बलि है। वह सब प्रकार से भगवान् सदाशिव का पूजन किया करता है। इस लोक में शिवजी हाटकेश लिंगरूप से अपने गणों सहित विराजमान रहते हैं तथा तीनों लोकों का पालन करते हुए, शिवरानी के साथ विहार किया करते हैं। उनके मस्तक से निकलने वाली जलधारा हाटक रस के नाम से प्रसिद्ध है। उसे पी कर अग्नि अत्यन्त बलवान् रहता है। वायु के

संगम द्वारा उस अग्नि के मुख से जो थूक बाहर गिरता है, उसे हाटक अर्थात् कंचन कहते हैं, उस हाटक के आभूषण बना कर वहाँ के निवासी सभी दैत्य पहनते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ भी उन्हीं आभूषणों को धारण कर, अपने पतियों की सेवा में संलग्न रहती हैं।

हे नारद ! राजा बलि शिवजी की जिस प्रकार स्तुति करते हैं, वह संक्षेप में इस तरह है—"हे देवताओ के स्वामी ! आप शरणागतों का पालन करने वाले, सम्पूर्ण संसार के दुःखों को नष्ट करने वाले हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आपके ही स्वरूप हैं। नारद, शारद तथा शेष भी आपके गुणों का सम्यक् वर्णन नहीं कर पाते।" इसी प्रकार वहाँ के निवासी भगवान् सदाशिव की स्तुति एवं पूजा करते हुए सदैव प्रसन्न रहते हैं।

हे नारद ! अब तुम सुतललोक का वृत्तान्त सुनो। उसका विस्तार दस सहस्त्र योजन चौकोर है। वहाँ राजा विरोचन का पुत्र बलि राज्य करता है। उसने विष्णु जी को दान देकर अत्यन्त प्रसन्न किया था। उसके हृदय में भगवान् सदाशिव का प्रेम सदैव विद्यमान रहता है। शिवभक्त होने के कारण उसे विष्णु जी भी नहीं मार सके। उसने विष्णु जी को ब्राह्मण रूप में देखकर सब प्रकार का विरोध भुला दिया था तथा अपना अनिष्ट देखते हुए भी धर्म को नहीं छोड़ा था। उस राजा बलि द्वारा ही बाणासुर का जन्म हुआ था। बाणासुर ने एक पर्वत को अपने बल द्वारा मसल कर मिट्टी कर डाला था। बलि के नगर की रक्षा विष्णु जी स्वयं किया करते हैं।"

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! राजा बलि ने किस पुण्य के प्रभाव से ऐसा उच्च पद तथा श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया था?" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! शिवभक्त होने के कारण ही विष्णु जी उसे पराजित नहीं कर सके। मैं तुम्हें उसके पूर्व जन्म का तथा दूसरे जन्म का वृत्तान्त सुनाता हूँ।"

तीसरा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! पुरातन-काल में कण्व नामक एक मनुष्य महापापी तथा ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला था। उसने अनेक जीवों की हिंसा भी की। कुछ समय बाद वह ऐसा दरिद्र हुआ कि उसके शरीर पर कौपीन तक नहीं रह गयी। तब वह चोरी और छल द्वारा अपना समय व्यतीत करने लगा। एक दिन वह एक वेश्या के लिए पान, फूल तथा चन्दन लिये दौड़ा चला जा रहा था कि उसी समय संयोग से पृथ्वी पर गिर कर मूर्छित हो गया। कुछ देर बाद जब उसे चैतन्यता प्राप्त हुई तो उसने पृथ्वी पर गिरे हुए पान-फूल आदि का शिवजी के नाम संकल्प कर दिया तथा अपने मुख से नमः शिवाय शब्द का उच्चारण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो गया। यमराज के दूत उसे महापापी जान कर, बाँध कर यम को समीप ले गये। उस समय यम ने उसे सम्बोधित करते हुए यह कहा—''हे कण्व ! तूने संसार में अनेक दुष्कर्म किये हैं तथा अपने धर्म को त्यागा है। अस्तु, तुझे हम घोर नरक में डाल कर कष्ट देंगे।''

हे नारद ! यमराज की बात सुनकर कण्व ने उत्तर दिया—''हे समदर्शी धर्मराज ! आप जो यह कहते हैं कि मैं पापी हूँ सो ठीक नहीं है, एक शुभ कर्म करने के कारण मेरे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं। कण्व के मुख से यह वचन सुनकर यमराज ने चित्रगुप्त को अपने पास बुला कर कहा—''हे चित्रगुप्त ! तुम इस पापी की ढिठाई तो देखो कि यह अपने को निष्पाप बता रहा है। मैं इसे नरक में डालना चाहता हूँ। अस्तु, इसके पाप-पुण्य का जो लेखा-जोखा हो, उसे तुम मेरे सम्मुख उपस्थित करो।'' यमराज के मुख से इन शब्दों को सुन कर चित्रगुप्त ने शिवजी को स्मरण किया। तदुपरान्त कण्व को शिवजी का कृपापात्र जान कर इस प्रकार उत्तर दिया—''हे महाराज ! यद्यपि इस मनुष्य ने जीवन भर महापाप किये हैं, परन्तु मृत्यु के समय इसके मुख से नमः शिवाय शब्द निकला है। इतना ही नहीं, वेश्या के निमित्त जिस

सामग्री को यह लिये जा रहा था, उसे भी इसने शिवजी को समर्पित किया है। अस्तु, एक महापुण्य के कारण इसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं। मेरे विचार से आप इसे स्वर्ग भेजें तथा तीन घड़ी के लिए इन्द्रासन पर भी बैठावें। वहाँ इसकी जो इच्छा हो, वह कार्य करे।''

हे नारद ! चित्रगुप्त की बात सुन कर यमराज ने धर्मराज का उत्तम स्वरूप धारण कर, कण्व को अपना दर्शन दिया तथा शिवभक्त होने के कारण उसकी अत्यन्त प्रशंसा भी की। उस समय देव गुरु बृहस्पति जी ऐरावत हाथी को लिये हुए अन्य देवताओं के साथ धर्मराज के समीप आ पहुँचे। वे कण्व को ऐरावत हाथी पर बैठा कर इन्द्रलोक को ले गये। वहाँ उसे तीन घड़ी के लिये इन्द्रासन पर बैठा दिया गया। जिस समय देवराज इन्द्र को हटा कर कण्व उसके सिंहासन पर बैठा, तो अपने हृदय में उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

हे नारद ! जब कण्व इन्द्रासन पर बैठ गया, उस समय तुम ने उसके पुण्यों को क्षीण करने के निमित्त उसे यह सलाह दी कि तुम इन्द्राणी को अपने पास बुलाओ और उसके साथ भोग-विलास करके आनन्द प्राप्त करो। परन्तु तुम्हारी बात सुनकर कण्व ने यह उत्तर दिया—''हे नारद ! हमें इन्द्राणी से कोई प्रयोजन नहीं है।'' इतना कहकर कण्व ने तुम्हें तो विदा किया तथा स्वयं अपने पुण्य को बढ़ाने के हेतु दान देना आरम्भ कर दिया। उसने अगस्त्य ऋषि को ऐरावत हाथी, विश्वामित्र को उच्चैःश्रवा घोड़ा, गालव्य ऋषि को कामधेनु गौ तथा कल्पवृक्ष देकर अन्य वस्तुएँ भी ऋषि-मुनियों को दान कर दी। तीन घड़ी के भीतर ही उसने समस्त शिव क्षेत्रों में जा कर भगवान् सदाशिव का पूजन किया तथा ब्राह्मणों को दान देकर सन्तुष्ट कर दिया।

हे नारद ! जब तीन घड़ी का समय व्यतीत हो गया, तब देवराज इन्द्र पुनः अपने सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उस समय इन्द्र ने शिवजी की माया के वशीभूत हो, इन्द्राणी को अपने समीप बुला कर क्रोध प्रकट करते हुए यह कहा—''हे शची ! कण्व ने तुम्हारे साथ मैथुन अवश्य किया होगा। अस्तु, तुम जो सत्य बात हो, उसे हमें बताओ।'' उस

समय इन्द्राणी ने हँसते हुए यह उत्तर दिया—"हे स्वामिन ! कण्व बहुत शुद्ध व्यक्ति है। वह अत्यन्त निर्मल है तथा शिवजी उसके ऊपर अत्यन्त दयालु हैं। भगवान् शंकर की कृपा से वह माया-मोह आदि से छूट कर परम पवित्र हो चुका है।"

चौथा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! इन्द्राणी की बात सुनकर इन्द्र अत्यन्त लज्जित हुए। तदुपरान्त जब उन्होंने यह देखा कि ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कामधेनु गौ तथा कल्पवृक्ष आदि वस्तुएँ कहीं भी दिखाई नहीं देतीं तब उन्होंने बृहस्पति से यह पूछा—"हे गुरु ! इन सब वस्तुओं को यहाँ से कौन चुरा ले गया? बृहस्पति ने उत्तर दिया—"हे इन्द्र ! तुम्हारी सभी वस्तुओं को कण्व ने दान कर दिया है। उसने अपना जन्म सफल बनाने के हेतु तीन घड़ी में ही सम्पूर्ण शुभ-कर्म कर लिये हैं।" यह सुनकर इन्द्र ने अत्यन्त चिन्तित हो कर कहा—"हे प्रभो ! अब आप मुझे यह बताइये कि मैं अपनी वस्तुओं को फिर कैसे प्राप्त कर सकूँगा।" बृहस्पति ने उत्तर दिया—"हे इन्द्र ! इस सम्बन्ध में तुम यमराज के पास जा कर उपाय पूछो।"

हे नारद ! बृहस्पति की सलाह मान कर इन्द्र यमराज के पास गये और उनसे इस प्रकार कहने लगे—"हे यमराज ! तुमने कण्व को हमारा पद देकर उचित नहीं किया। उसने तीन घड़ी के भीतर ही हमारी सम्पूर्ण वस्तुएँ दान कर दीं। अब तुम उन वस्तुओं को हमें किसी प्रकार लौटा कर दिलवाओ।" इन्द्र की बात सुनकर यमराज ने कण्व को अपने पास बुला, अत्यन्त क्रुद्ध हो, इस प्रकार कहा—"हे कण्व ! तुझे पराई सम्पत्ति नष्ट करने का क्या अधिकार था? भला तुझे ऐसा कर्म करने का साहस किस प्रकार हुआ।" यह सुनकर कण्व ने निर्भय हो कर उत्तर दिया—"हे यमराज ! जब तक मैं वहाँ का स्वामी रहा, तब तक मैंने जो जी में आया किया। ऐसी स्थिति में आप मेरे किसी भी

कार्य को पाप कैसे कह सकते हैं?'' यमराज बोले—''दान देना तो पृथ्वी में उचित कहा गया है, क्योंकि वहाँ दान देने का फल प्राप्त होता है। देवताओं के लोक में दान देने का फल नहीं मिलता।''

हे नारद ! इस प्रकार यमराज ने कण्व को बहुत डराया-धमकाया, परन्तु वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ। उस समय चित्रगुप्त ने हँसते हुए यह कहा—''हे धर्मराज ! कण्व ने वेद के अनुसार उत्तम धर्म किये हैं। अस्तु, वह नरकगामी नहीं हो सकता। अस्तु, कण्व ने देव लोक में रह कर शिवजी के नाम पर जो दान दिया है, वह भी उचित है। इस पुण्यकर्म के कारण कण्व के सभी पाप नष्ट हो गये हैं।''

हे नारद ! चित्रगुप्त की यह सम्मति सुनकर धर्मराज ने इन्द्र से कहा—''हे देवराज इन्द्र ! तुम ने सौ अश्वमेध यज्ञ करके इन्द्रलोक को प्राप्त किया है तथा कण्व ने अपने शुभ कर्मों द्वारा सभी पापों को नष्ट कर डाला है। उचित है कि अब तुम अगस्त्य आदि सभी मुनियों के पास जाओ और उनकी सेवा करके धन आदि भेंट में देकर, अपनी वस्तुएँ प्राप्त कर लो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।'' यह सुनकर इन्द्र यमराज के पास से लौट आये। तदुपरान्त उन्होंने मुनियों की सेवा-सुश्रूषा एवं भेंट आदि द्वारा अपनी वस्तुएँ पुनः प्राप्त कर लीं।

हे नारद ! दूसरे जन्म में कण्व वृषपर्वा की पुत्री के गर्भ से जिसका नाम सुरुचि था और जो विरोचन को ब्याही गयी थी, उत्पन्न हुआ। विरोचन ने अपना मस्तक इन्द्र को दान देकर तीनों लोकों में यश प्राप्त किया था। कण्व ने इन्हीं विरोचन का पुत्र हो कर तीनों लोकों में बलि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बलि शिवजी की सेवा करके सदैव आनन्दित रहा। इन्द्र का मनोरथ पूर्ण करने के हेतु विष्णु जी वामन-ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उसके समीप दान लेने गये। बलि ने विष्णु जी का छल जानते हुए भी उन्हें प्रसन्न किया। उस दान के प्रभाव से वह इस समय सुतललोक का राजा है तथा विष्णु जी उसके नगर में रह कर प्रतिदिन उसे अपने दर्शनों से कृतार्थ किया करते हैं।''

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! अब तुम तलातल लोक का वृत्तान्त सुनो। यह सुतललोक के नीचे बसा हुआ है तथा उसका विस्तार भी सुतललोक जितना ही है। इस लोक का राजा मयदानव है। वह अत्यन्त मायावी है। मयदानव ने ही त्रिपुर को इस प्रकार बनाया था कि वह किसी देवता को दिखाई भी नहीं देता था। शिवजी की कृपा प्राप्त करके उसे दैत्यों में इतनी प्रतिष्ठा मिली है, जितनी प्रतिष्ठा देवताओं में विश्वकर्मा को प्राप्त है। तलातललोक के उद्यान फल-फूलों से युक्त हैं। उस लोक को भी स्वर्ग के समान ही समझना चाहिए।

हे नारद ! मयदानव वहाँ रह कर अपनी सम्पूर्ण प्रजा सहित शिवजी का स्मरण एवं पूजन किया करता है।''

इतनी कथा सुना कर ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! अब तुम पाँचवें महातललोक का वृत्तान्त सुनो। उस लोग में कद्रू का पुत्र तक्षक राज्य करता है। तक्षक के फण में इतने रत्न जड़े हुए हैं कि वहाँ कभी भी अंधेरा नहीं होता। तक्षक, सुषेण, कुहुक आदि महाविषधर सर्प, जिनके मस्तक में मणियाँ लगी हुई हैं, वहाँ निवास करते हैं। उनके विहार के हेतु सब प्रकार की सुख-सामग्री वहाँ उपस्थित हैं। वे सब भगवान् सदाशिव के परम भक्त हैं।

हे नारद ! तक्षक प्रतिदिन शिवजी के स्मरण, पूजन एवं ध्यान में संलग्न रह कर इस प्रकार स्तुति किया करता है—''हे भगवान् सदाशिव ! आप भक्तों का पालन करने वाले हैं। आपकी महिमा को ब्रह्मा, विष्णु, शेष, शरदा, नारद, व्यास आदि देवता तथा ऋषि-मुनि भी नहीं जान पाते।''

हे नारद ! अब तुम रसातललोक का वृत्तान्त सुनो। यह लोक महातल के नीचे बसा हुआ है तथा उसका विस्तार भी अन्य लोकों के समान है। उस लोक में कालकेय तथा कवच नामक दानव एवं दैत्य

निवास किया करते हैं। वे सब अत्यन्त प्रतापी तथा बलवान् हैं। एक बार देवताओं ने उन्हें परम तेजस्वी जान कर उनके राजा पण के समीप सुरमा को भेजा था। सुरमा ने वहाँ पहुँच कर यह कहा था कि विष्णु जी सब दैत्यों को मार कर तीनों लोकों को अपने आधीन करना चाहते हैं। अस्तु, तुम लोग उनसे त्राण पाने के हेतु भगवान् सदाशिव का पूजन करो। सुरमा की बात सुन कर वहाँ के सभी निवासी अत्यन्त भयभीत हुए। तभी वे दिन-रात भगवान् सदाशिव का स्मरण, पूजन एवं ध्यान करने लगे। शिवजी के कृपापात्र हो जाने के कारण अब वे सब पूर्णतया निर्भय हैं।

हे नारद ! अब तुम पाताललोक का वृत्तान्त सुनो। यह लोक रसातल के नीचे है तथा विस्तार में भी उसी के समान है। रसातललोक में वासुकि, शंख, कुलिक, धृतराष्ट्र, धनंजय, कमल, अश्वतर, देवदत्त तथा कर्कोट आदि नाग निवास करते हैं। उनके फणों में पाँच से लेकर सहस्त्रों की संख्या में मणियाँ लगी हुई हैं। वे मणियाँ ऐसी प्रकाशवान् हैं कि उनसे दिन और रात का भेद नहीं जाना जाता। उस लोक में जरा, मृत्यु, निर्बलता, दुःख शोक आदि का कोई भी भय नहीं है। शिवजी के कृपापात्र होने के कारण उन्हें किसी प्रकार का भय, शोक अथवा दुःख नहीं है।

हे नारद ! पाताल लोक के राजा वासुकि नामक नाग हैं। वे भगवान् सदाशिव की हर समय इस प्रकार स्तुति किया करते हैं—"हे आदि-अन्तहीन भगवान् सदाशिव। आप तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले तथा संहार करने वाले हैं। आप ही सब के स्वामी परब्रह्म हैं। आप सर्वथा स्वतन्त्र होते हुए भी भक्त के आधीन रहते हैं। यही आपकी विशेषता है।"

हे नारद ! जिन सात लोकों का यह वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा, उन्हें सप्ताम्बर कह कर पुकारा जाता है।"

छठा अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! मैंने जिन सातों लोकों का वर्णन किया, उन सब का विस्तार दस-दस सहस्त्र योजन है। वे सब अंडे के समान गोल तथा सुडौल हैं एवं उनकी लम्बाई सात लाख योजन है। उन सातों लोकों के नीचे एक अन्य लोक और है, जिसे शेषलोक कहा जाता है। वह लोक इन सब लोकों का मूल है। उसका विस्तार बीस सहस्त्र योजन है। उसमें सहस्त्र फणधारी शेषजी विराजमान रहते हैं। वे अपने मस्तकों पर पृथ्वी को धारण किये हुए हैं तथा शिवजी के तामसी रूप हैं। उनके नाम संकर्षण एवं अनन्त आदि हैं। वे प्रतिदिन भगवान् सदाशिव का स्मरण किया करते हैं। वे प्रलयकाल आने पर रुद्र की दोनों भौंहों के बीच में उत्पन्न हो कर ग्यारह शरीर धारण करते हैं तथा अपने प्रकाश द्वारा प्रलय करके सब का नाश कर देते हैं। उस समय उनका स्वरूप महाभयानक होता है तथा उनके हाथों में त्रिशूल दिखाई देता है। प्रलय कर चुकने के उपरान्त वे सुन्दर स्वरूप धारण कर लेते हैं।

हे नारद ! शेषजी का पूजन तथा श्रवण करने से सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है। उनकी पूजा से शिवजी प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वे शिवजी के परम भक्त तथा उन्हीं के एक स्वरूप हैं। वे शिवजी की इस प्रकार स्तुति किया करते हैं—"हे भगवान् सदाशिव ! आप भक्तों को आनन्द प्रदान करने के लिए पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करते हैं। आप दुष्टों को दण्ड देने वाले तथा सेवकों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। जिस समय हलाहल विष उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण सृष्टि जली जा रही थी, तब आप ने ही उस विष को पीकर तीनों लोकों का दुःख दूर किया था। काल भी आप से भयभीत रहता है। फिर मैं आपकी महिमा का वर्णन किस प्रकार करूँ?"

सातवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन कर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! अब आप मुझे यह बताइये कि नरकलोक किस स्थान पर स्थित है? उनकी गणना तीनों लोकों में होती है अथवा वे कहीं भिन्न है?" ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! नीचे के जिन सातों लोकों का मैंने वर्णन किया है, उन सब में पाताललोक के नीचे ये नरकलोक जल पर स्थित है। नरकलोक में पापियों को दण्ड देने के स्थान हैं। उन सब की संख्या पचपन करोड़ है। उनमें जो बड़े-बड़े नरक हैं, मैं उनका वर्णन तुमसे करता हूँ।

हे नारद ! मुख्य नरक इक्कीस हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

1. तामिश्र, 2. लौह-दण्ड, 3. महाभैरव, 4. शालूकरौरव, 5. कुमदल, 6. भीष्म, 7. भंयकर, 8. पूजरज, 9. कालसूत्र, 10. संघात, 11. तापन, 12. कंकाल, 13. संजीवन, 14. महापथ, 15. विचर्चित, 16. अन्ध, 17. कुम्भीपाक, 18. असिपत्र, 19. पतन, 20. अग्निमन्थन तथा 21. संदिग्ध। कुछ मुनियों ने प्रमुख नरकों की संख्या अट्ठाइस कही है। उनमें इक्कीस तो उपर्युक्त हैं, शेष सात इस प्रकार हैं—1. क्षारकद्रम, 2. राक्षस-भोजन, 3. शूलप्रात, 4. दण्डशूल, 5. घोर, 6. अवटिनिराधन तथा 7. सूचीमुख।

हे नारद ! इन नरकों में यमराज अत्यन्त भयानक स्वरूप धारण कर पापियों को दण्ड देते हैं। वे स्वयं दक्षिण की ओर पितरलोक में रहते हैं तथा पितरों की सम्मति से ही पापियों को दण्ड देते हैं। पापियों के कर्मों का लेखा-जोखा रखने वाले चित्रगुप्त हैं। मेरे बारह पुत्र जो श्रवण नाम से प्रसिद्ध हैं, प्रत्येक प्राणी के शुभाशुभ कर्मों का समाचार चित्रगुप्त के पास पहुँचाते हैं। यमराज की सभा में पृथ्वी के वे सभी धर्मात्मा राजा, जिन्होंने जीवन भर धर्मपूर्वक राज्य किया है। सभासद् के रूप में उपस्थित रहते हैं। वे सम्पूर्ण लोकों से आने वाले प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों का विचार कर, उनके लिए दण्ड अथवा स्वर्ग सुख का निश्चित करते हैं।

हे नारद ! अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि किस पाप के करने से कौन-सा नरक प्राप्त होता है। जो लोग दूसरे की स्त्री अथवा धन का अपहरण कर लेते हैं, वे यमदूतों द्वारा तामिश्र नरक में डाले जाते हैं। जो लोग छलपूर्वक किसी स्त्री का पतिव्रत-धर्म नष्ट कर देते हैं, उन्हें अन्धतामिश्र नरक में पहुँच कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। जो लोग मान तथा ममता में पड़ कर अन्य जीवधारियों के साथ शत्रुता रखते हैं, केवल अपने परिवार का पालन करने में ही संलग्न रहते हैं तथा प्राणियों की हिंसा करते हैं, उन्हें रौरव नरक में पहुँच कर अपना माँस स्वयं खाना पड़ता है। रौरव नरक को सब नरकों में अत्यन्त दारुण कहा गया है।

हे नारद ! जो लोग निर्दयी बन कर पक्षियों को मारते हैं, उन्हें कुम्भीपाक नरक में ले जा कर जलते हुए तेल में डाला जाता है। जो लोग ब्राह्मण तथा पितरों के विरोधी होते हैं, उन्हें कालसूत्र नामक नरक में जा कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। उसकी सम्पूर्ण भूमि ताँबे की है, जो सूर्य तथा अग्नि की ऊष्णता से हर समय जलती रहती है। जब पापी को उस नरक में डाला जाता है, तब वह वहाँ की ऊष्णता को सहन न कर सकने के कारण चारों ओर भागता है, परन्तु उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिलता। जो लोग अपने मुख्य धर्म को त्याग कर पाखण्डी हो जाते हैं, उन्हें असिपत्र नामक नरक में डाल कर, अग्नि के समान ऊष्ण पृथ्वी पर दौड़ाया जाता है तथा उनके शरीर को तलवार की धार के समान पैने पत्तों से काटा जाता है। जो लोग प्रतिदिन पंचयज्ञ किये बिना भोजन कर लेते हैं, मानो वे कौए के समान हो कर कृमिभक्षण करते हैं। मृत्यु के उपरान्त ऐसे लोग कीड़े बनते हैं और उन्हें कीड़े ही खाने पड़ते हैं।

हे नारद ! जो लोग शास्त्र-वर्जित स्त्रियों के साथ मैथुन करते हैं, वे खम्ब नामक नरक में डाले जाते हैं। वहाँ लोहे का एक खम्बा अग्नि के समान दिन-रात जला करता है। उन पापियों को उसी खम्बे से लिपटा कर जलाया जाता है। जो लोग पशुओं के समान मैथुन के अतिरिक्त

अन्य किसी शुभ कर्म में ध्यान नहीं लगाते, उन्हें कंटक तथा शाल्मलि नामक नरकों में डाला जाता है। जो लोग राजा अथवा अधिकारी हो कर धर्म के विरुद्ध आचरण करते हैं अथवा पुरातन धर्मों का खण्डन कर नवीन मत को प्रकट करते हैं, वे वैतरणी नामक नदी में डाले जाते हैं। उसमें मल, मूत्र, रक्त, केश, अस्थि, नख, माँस, पीव आदि भरे हुए हैं। उसमें सभी पापियों को गोता लगाना पड़ता है। जो लोग शौच, धर्म, नियम, लज्जा आदि का त्याग कर वेश्याओं के साथ भोग करते हैं, उन्हें पूयोदक नामक नरक में जा कर भोजन के बदले मल, मूत्र, मेद, मज्जा आदि खाने पड़ते हैं। जो ब्राह्मण जाति के लोग वन्य-पशुओं का शिकार करते हैं, उन्हें विकराल नामक नरक में जाना पड़ता है।

हे नारद ! जो लोग मिथ्या पाखण्ड फैला कर यज्ञ के बहाने निर्द्रयतापूर्वक जीवों का वध करते हैं, वे विशेष नामक नरक में डाले जा कर दुःखी किये जाते हैं। जो लोग अपनी स्त्री को छोड़ कर दूसरे वर्ण की स्त्री के साथ मैथुन करते हैं, उन्हें लालाभक्ष नामक नरक में जा कर वीर्य पीना पड़ता है। जो लोग चोरी, लूटमार तथा औरों के धन छीनने का कार्य करते हैं अथवा गाँवों को उजाड़ देते हैं, उन्हें सारमेयादन नामक नरक में जाना पड़ता है। जो लोग लोभ से अथवा दान प्राप्त करने की इच्छा से मिथ्या साक्षी देते हैं, उन्हें अनन्त नामक नरक में जाना पड़ता है। उस नरक में चारों ओर घोर अन्धकार भरा हुआ है। वहीं एक सौ योजन ऊँचा एक पर्वत है। यमदूत पापी मनुष्य को उस पर्वत के ऊपर ले जा कर सिर के बल नीचे डालते हैं; जिसके कारण उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, फिर भी वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार बहुत समय तक उसे क़ष्ट उठाना पड़ता है। जो ब्राह्मण अथवा स्त्री हो कर मद्यपान करते हैं, उन्हें अन्धकूप नामक नरक में जा कर बहुत कष्ट उठाना पड़ता है।

हे नारद ! जो मनुष्य वर्णाश्रम, धर्म, जप-तप, नियम, आचार-विचार आदि के विरुद्ध चले तथा कठोरता, अन्याय आदि का आश्रय

ले, उसे क्षार नामक नरक में सिर के बल नीचे डाला जाता है। जो लोग किसी मनुष्य की बलि देते हैं तथा जो स्त्री माँसभक्षण करती है, उसे शृक्षभोजन नामक नरक में जा कर दुःख उठाना पड़ता है। जो लोग जीवों को मार कर प्रसन्न होते हैं अथवा जाल डालकर जीवों को पकड़ते हैं, जो लोग निर्दोष मनुष्य के साथ विश्वासघात कर उन्हें मार डालते हैं अथवा जो लोग दया भाव को त्याग देते हैं, उन्हें शूलप्रोत नामक नरक में पड़ कर भूख-प्यास का दुःख उठाना पड़ता है। वहाँ चील, कौए आदि पक्षी अपनी चोचों से उनका माँस नोंच-नोंच कर खाते हैं। जो लोग अतिथियों की ओर क्रुद्ध-दृष्टि से देखते हैं अथवा अन्धे आदमियों को सीधे मार्ग से भटकाने तथा गड्ढे में गिराने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें निरोधन नामक नरक में पहुँच कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। जो लोग धन के गर्व में भरे रहते हैं अथवा धन-संग्रह करके अन्य लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वे सूचीमुख नरक में डाले जाते हैं।

हे नारद ! इस प्रकार नरकों की संख्या सहस्त्रों में है। विस्तारभय से उन सब का वर्णन नहीं किया गया। जो लोग धर्मात्मा होते हैं, वे स्वर्ग के लोक में जा कर विविध प्रकार के सुखों का उपभोग करते हैं। जब तक मनुष्य का कोई पाप अथवा पुण्य शेष रहता है, तब तक उसे मृत्यु लोक में बारम्बार आ कर जन्म लेना पड़ता है। जब पाप और पुण्य दोनों बराबर हो जाते हैं, तब प्राणी आवागमन से छूट जाता है। इस कथा को सुनने सुनाने तथा पढ़ने से भी दोनों लोकों में आनन्द की प्राप्ति होती है।''

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! नीचे के लोकों का वर्णन तो हो चुका, अब तुम ऊपर के लोकों का वृत्तान्त सुनो। क्षितिलोक में मनुष्य रहते हैं। क्षितिलोक का विस्तार पचास करोड़ योजन का है। इस लोक

में सात द्वीप हैं, जिन्हें चारों ओर से दिग्गज घेरे हुए हैं। इन द्वीपों के नाम इस प्रकार हैं—1. जम्बूद्वीप, 2. प्लक्ष द्वीप, 3. शाल्मलि द्वीप, 4. कुश द्वीप, 5. क्रौंच द्वीप, 6. शाक द्वीप तथा 7. पुष्कर द्वीप। ये सातों द्वीप क्रमानुसार एक-दूसरे से लम्बाई में दुगुने हैं। इन सातों द्वीपों के चारों ओर खाई की भाँति सात समुद्र हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. क्षारोदधि, 2. इच्छुरसोदधि, 3. सुरोदधि, 4. घृतोदधि, 5. क्षीरोदधि, 6. मण्डोदधि तथा 7. शुद्धोदकोदधि।

हे नारद ! मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत इन सातों द्वीपों के एकछत्र सम्राट् थे। प्रियव्रत ने अपने सातों पुत्रों को एक-एक द्वीप का राज्य दिया था। राजा प्रियव्रत के सातों पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. आग्नीघ्र, 2. इध्मजीह्व, 3. मुखबाहु, 4. कनकरेता, 5. धृतपृष्ठ, 6. मेधातिथि तथा 7. वीतिहोत्र।

इतनी कथा सुना कर सूत जी ने कहा—"हे शौनकादि ऋषियो ! यह वृत्तान्त सुन कर नारद जी ने ब्रह्मा जी से कहा—"हे पिता ! आप ने सृष्टि का यह वर्णन बहुत संक्षेप में किया। अस्तु मेरी इच्छा है कि आप मुझे इसे विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें।"

ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! जम्बूद्वीप का विस्तार नियुत योजन का है। यह कमल के फूल के समान गोल है। इसके भीतर नौ खण्ड तथा आठ पर्वत हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. भद्राश्वखण्ड, 2. हरिवर्षखण्ड, 3. किम्पुरुषखण्ड, 4. घृतखण्ड, 5. केतुमालखण्ड, 6. हिरणमयखण्ड, 7. करतखण्ड, 8. कुरुखण्ड तथा 9. इलावर्त्तखण्ड। पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं—1. गन्धमादन, 2. निषध, 3. हेमकूट, 4. हिमालय, 5. माल्यवान, 6. नीलिगिरि, 7. श्वेत तथा 8. शृंगवान्। इन नौ खण्डों में जो खण्ड इलावर्त्त नामक है, उसके मध्य में सुमेरु नामक एक स्वर्ण का पर्वत है। वह पर्वत अन्य सभी पर्वतों का राजा है तथा द्वीप के बीचों-बीच सुशोभित है। इलावर्त्तखण्ड के चारों ओर अनेक पर्वत हैं।

हे नारद ! सुमेरु पर्वत को भी चारों ओर से चार पर्वत घेरे हुए हैं।

उनके नाम इस प्रकार हैं—1. मन्दर, 2. मेरु, 3. सुपार्श्व तथा 4. कुमुद। इन पर्वतों पर क्रमानुसार चार वृक्ष हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. आम्र, 2. जामुन, 3. कदम्ब तथा बरगद। यहाँ चार ही समुद्र हैं वे इस प्रकार हैं—1. दधि का, 2. शहद का, 3. ऊख के रस का तथा 4. शुद्ध जल का। यहाँ देवताओं के विहार करने के निमित्त चार वन हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

1. नन्दनवन, 2. क्षेत्ररथ, 3. वैभ्राजक तथा 4. सर्वतोभ्रद। सुमेरु पर्वत के पूर्व की ओर हेमकूट तथा देवकूट नामक दो पर्वत हैं, दक्षिण की ओर कैलाश तथा करवीर नामक पर्वत हैं तथा उत्तर की ओर त्रिश्रृंग तथा मकर नामक पर्वत हैं।

हे नारद ! जम्बूद्वीप के इन नौ खण्डों में भरतखण्ड कर्मक्षेत्र अर्थात् शुभ कार्य करने के लिए सर्वोत्तम है, क्योंकि भरतखण्ड में किये हुए श्रेष्ठ कार्य उत्तम फल देने वाले होते हैं, इस कर्म-भूमि में जो मनुष्य पाप-पुण्य के जैसे कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भी प्राप्त होता है। इस खण्ड में क्रमानुसार चार युग बदलते हैं, जबकि अन्य खण्डों में सदैव त्रेता युग वर्तमान रहता है।''

ॐ ॐ ॐ

नौवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! सभी खण्डों के निवासी भगवान् सदाशिव की सेवा-पूजा में संलग्न रहते हैं। मधुखण्ड में समस्त नागों के राजा शेषनाग अत्यन्त प्रेमपूर्वक भगवान् सदाशिव का पूजन किया करते हैं तथा इस प्रकार स्तुति करते हैं—''हे प्रभो ! आप मृत्युञ्जय हैं। जब आपकी जैसी कृपा होती है, वैसा ही स्वरूप धारण कर लिया करते हैं। आप ही सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करने वाले, पालन करने वाले तथा नष्ट करने वाले हैं। आप सब के स्वामी हैं तथा सब लोग आपकी आज्ञानुसार कार्य किया करते हैं। हे नाथ ! अब आप मुझे श्रेष्ठ ज्ञान दें तथा मेरे हृदय में अपनी भक्ति को निरन्तर भरते रहें।''

हे नारद ! इसी प्रकार भद्राश्व खण्ड में वहाँ के राजा हयग्रीव भगवान् सदाशिव का सदैव पूजन किया करते हैं तथा शिवजी का मंत्र जपते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—"हे अशरण-शरण परब्रह्म शंकर जी ! आपके चरित्र परम विचित्र हैं। हे नाथ ! आप मेरे ऊपर अपनी कृपा दृष्टि बनाये रहें तथा मुझे अपना सेवक जान कर, काम, क्रोध, मद, लोभ, माया आदि से दूर रखें।"

हे नारद ! हरिवर्षखण्ड में विष्णु के अवतार नृसिंह जी भगवान् सदाशिव का पूजन तथा अराधना करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—"हे जगदीश्वर भगवान् सदाशिव ! आपके समान अन्य कोई देवता नहीं है। आप सम्पूर्ण संसार के स्वामी तथा सब को उत्पन्न करने वाले हैं। आपकी उत्पत्ति किसी के द्वारा नहीं हुई।" इस प्रकार नृसिंह जी शरभनाथ शिवजी का पूजन करते हुए उन्हीं के ध्यान में संलग्न रहते हैं।

हे नारद ! किम्पुरुष खण्ड में रामचन्द्र जी भगवान् सदाशिव का पूजन करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—"हे शंकरजी ! आप भक्तों का दुःख दूर करने वाले तथा सब के स्वामी हैं। आप अत्यन्त दयालु तथा अपने भक्तों को मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। आपकी कृपा से ही मैंने रावण तथा अहिरावण का संहार किया। यह भी आप के चरणों का प्रताप है कि मैं सब लोकों का स्वामी बना हुआ हूँ।"

हे नारद ! भरतखण्ड में नर नारायण भगवान् सदाशिव का मंत्र जपते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—"हे प्रभो ! आप मन, वचन, कर्म, इन्द्रिय तथा विचार से परे हैं। वेद भी आपकी महिमा का वर्णन करते हुए आश्चर्यचकित रह जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, सनकादिक सभी आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं।" हे नारद ! नर नारायण के समीप भगवान् सदाशिव सदैव स्थित रहते हैं। उस स्थान का नाम संसार में केदार प्रसिद्ध है। जो मनुष्य केदार में पहुँच कर अपने शरीर को त्यागते हैं, उन्हें शीघ्र मुक्ति प्राप्त होती है।

हे नारद ! केतुमाल खण्ड में कामदेव अपनी सेना सहित शिवजी का पूजन करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—"हे स्वामिन् ! आप

दुष्टों को भय देने वाले तथा भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। आपने मुझे अपनी क्रोधाग्नि से जला कर अत्यन्त कृपा की थी। आप मेरे सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर देने की कृपा करें, क्योंकि शरण में आये हुए प्राणी को आप उदारतापूर्वक क्षमा कर देते हैं।''

हे नारद ! रम्यक खण्ड में विष्णु जी शिवजी का पूजन करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—''हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। आपकी महिमा का वर्णन शेषजी से भी नहीं हो सकता। लक्ष्मी जी सदैव आपकी सेवा में संलग्न रहती हैं। अस्तु, आप मेरे ऊपर सदैव अपना अनुग्रह किये रहें।''

हे नारद ! हिरण्य खण्ड में लक्ष्मीपति पितरों सहित भगवान् सदाशिव की सेवा में संलग्न रहकर शिवमंत्र का जाप करते हैं तथा इस प्रकार स्तुति करते हैं—''हे देवेश्वर ! आप आपने भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाले, त्रिभुवनपति, निर्विकार, अनादि, अनन्त, दीनानाथ तथा शरणागतवत्सल हैं। हम यही प्रार्थना करते हैं कि आप हम लोगों पर सदैव अपनी कृपा बनाये रहें।''

हे नारद ! कुरुखण्ड में वाराह जी भगवान् सदाशिव के षडक्षरी-मंत्र का जप करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—''हे गिरिजेश्वर ! आप सम्पूर्ण ब्रह्मांड के स्वामी हैं। आप ही ने गज, गंगा, हर, श्रीकर, नन्दी, किरात, आदि को मुक्ति प्रदान की है। मैं आपकी शरण में हूँ।''

हे नारद ! इस प्रकार सभी खण्डों में भगवान् सदाशिव का पूजन किया जाता है। यह जम्बूद्वीप की कथा परम पवित्र तथा सम्पूर्ण कष्टों को दूर करने वाली है। इसके पढ़ने, सुनने तथा सुनाने से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।''

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''जम्बूद्वीप का वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुनाया। इसी द्वीप के अन्तर्गत आठ उपद्वीप भी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

1. स्वर्णप्रस्थ, 2. चन्द्र, 3. शुक्ल-परिवर्तन, 4. रमणक, 5. मन्दिरहरण, 6. जन्य, 7. सिंहल तथा 8. लम्ब। इस जम्बूद्वीप के चारों ओर खारे जल का समुद्र है।

हे नारद ! जम्बूद्वीप के बाद प्लक्षद्वीप का स्थान है। उसका सम्राट् सुछवि नामक एक बड़ा राजा हुआ। उस राजा के सात पुत्र थे, जिनके नाम इस प्रकार है—1. शिव, 2. यवस, 3. सुभद्र, 4. वेशान्त, 5. क्षेम, 6. अमृत तथा 7. अभय। उस राजा ने अपने इन सातों पुत्रों को द्वीप के सात खण्ड करके बाँट दिये। वे सातों खण्ड इन्हीं सातों लड़कों नाम से प्रसिद्ध हुए। इस द्वीप में सात पर्वत हैं तथा चार वर्ण के लोग रहते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

1. ऊर्ध्वायन, 2. परमहंस, 3. पतङ्ग तथा 4. सत्याङ्ग। मनुष्य को इनके दर्शन भी देवताओं के दर्शन के समान अत्यन्त कठिनता से प्राप्त होते हैं। यह सब सूर्य का पूजन करते हैं तथा उन्हीं के मंत्र को जपते हुए इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—"हे सूर्यदेवता ! आप भगवान् सदाशिव के रूप हैं। आपका शरीर तीनों गुणों से युक्त है। आप सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करते हैं।"

हे नारद ! इस प्रकार प्लक्षद्वीप के निवासी सूर्यनारायण के माध्यम से शिवजी का पूजन करते हैं। इस द्वीप के चारों ओर ईख के रस का समुद्र है।

हे नारद ! अब तुम शाल्मलिद्वीप का हाल सुनो। प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीप से दुगुना बड़ा है तथा शाल्मलिद्वीप का विस्तार प्लक्षद्वीप से दुगुना है। इस द्वीप के चारों ओर सुरोद-समुद्र है। प्रियव्रत का पुत्र यज्ञबाहु इस द्वीप का सम्राट् था। उसके सात पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—"1. सुराचन, 2. सोमस्व, 3. रमणक, 4. देवभद्र, 5. भद्र, 6. आप्यायन तथा 7. अविज्ञात। राजा यज्ञबाहु ने शाल्मलिद्वीप के सात खण्ड करके, अपने सब पुत्रों में बाँट दिये। वे द्वीपखण्ड उन्हीं बालकों के नाम पर प्रसिद्ध हुए।

हे नारद ! शाल्मलिद्वीप के निवासी चन्द्रमा का पूजन करते हैं और

उन्हीं का मंत्र जपते हुए इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—"हे चन्द्रमा ! आप भगवान् सदाशिव के कृपा पात्र हैं। अस्तु, हम आपको शिवजी का ही स्वरूप समझते हैं। आप अपने शीतल स्वभाव से सब को शीतलता प्रदान करते हैं तथा सभी जड़ी-बूटियों का निर्माण आपके ही द्वारा होता है। इस प्रकार आप अमृत के कुण्ड हैं। संसार का आरोग्य आप ही के ऊपर निर्भर है। आप हमारे ऊपर कृपा बनाये रहें।"

हे नारद ! शाल्मलिद्वीप के उपरान्त कुशद्वीप है। उस द्वीप को घृत का समुद्र चारों ओर से घेरे हुए है। राजा प्रियव्रत का पुत्र हिरण्य उस द्वीप का सम्राट् हुआ। हिरण्य के सात पुत्र हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. वसुदान, 2. दृढ़रुचि, 3. नामगुप्त, 4. सत्यव्रत, 5. विविक्त, 6. वामदेव। इस द्वीप में भी सात पर्वत हैं तथा सात नदियाँ हैं। राजा हिरण्य ने इस द्वीप को सात खण्डों में विभाजित करके अपने पुत्रों को बाँट दिया था। अस्तु, यह सभी खण्ड नहीं राजपुत्रों के नाम पर प्रसिद्ध हुए।

हे नारद ! कुश द्वीप के निवासी अग्नि को शिवजी का स्वरूप जान कर उनका पूजन, स्मरण एवं ध्यान करते हैं तथा इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—"हे अग्नि ! आपके बिना संसार का कोई भी कार्य नहीं चल सकता। आप भगवान् सदाशिव के रूप हैं। अस्तु, आप हमारे ऊपर कृपा बनाये रहें।"

हे नारद ! पाँचवाँ क्रौञ्चद्वीप कुशद्वीप से विस्तार में दुगुना है। उसके चारों ओर दूध का समुद्र है। वहाँ क्रौंच नामक एक पर्वत है, जिस पर स्कन्ध जी विराजमान रहते हैं। उस द्वीप का सम्राट् राजा प्रियव्रत का पुत्र धृतपृष्ठ हुआ। धृतपृष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. अनन्त, 2. बुद्ध, 3. मेघ, 4. मेघपृष्ठ, 5. भ्राजिष्ठ, 6. लोहित तथा 7. वनस्पति। इस द्वीप में भी सात पर्वत तथा सात नदियाँ हैं। राजा धृतपृष्ठ ने इस द्वीप को सात खण्डों में विभाजित करके अपने पुत्रों में बाँट दिया, तब वे सभी खण्ड उन्हीं राजपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हे नारद ! क्रौञ्चद्वीप के निवासी शिवजी को जल रूप समझ कर जल-मंत्र द्वारा स्मरण करते हैं तथा प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहते हैं—"हे जलरूप भगवान् शंकर ! आप सब को आनन्द देने वाले तथा सब के प्राणों को स्थिर रखने वाले हैं। आपके द्वारा ही सब को तृप्ति प्राप्त होती है।"

हे नारद ! क्रौञ्चद्वीप के बाद छठा शाकद्वीप है। इस द्वीप का विस्तार तैंतीस लाख योजन का है। इसे चारों ओर से दही का समुद्र घेरे हुए है। इस द्वीप में शाक नामक एक वृक्ष है, जो अपनी सुगन्धि द्वारा सम्पूर्ण द्वीप को सुगन्धित किये रहता है। राजा प्रियव्रत का पुत्र मेधातिथि इस द्वीप का सम्राट् हुआ। मेधातिथि के सात पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. पुरोज, 2. मनोज, 3. पवमान, 4. धूम्रानीक, 5. चित्ररूप, 6. बहुरूप तथा 7. विश्वाधार। इस द्वीप में भी सात पर्वत तथा सात नदियाँ हैं। मेधातिथि ने इस द्वीप के सात खण्ड करके अपने पुत्रों में बांट दिये, तब वे खण्ड उन्हीं राजपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हे नारद ! शाकद्वीप के निवासी भगवान् सदाशिव को वायुरूप जान कर वायुमंत्र द्वारा उनका पूजन, स्मरण तथा ध्यान किया करते हैं। वे सब स्तुति करते हुए इस प्रकार कहते हैं—"हे वायुरूप भगवान् सदाशिव ! दस प्रकार के शरीर कहे गये हैं, परन्तु वे सब आप के बिना निर्जीव हैं। आप तीनों लोकों के भीतर बाहर आते-जाते रहने पर भी सदैव निष्पाप तथा निर्मल बने रहते हैं। तीनों लोकों के सभी जीव आपके आश्रित हैं तथा सभी प्राणी आपके वश में रहते हैं। आपकी सहायता तथा शक्ति पा कर ही योगीजन ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं। हम सब आपकी शरण में हैं।"

हे नारद ! शाकद्वीप के पश्चात् पुष्करद्वीप है। उसका विस्तार शाकद्वीप से दुगुना है। उसके चारों ओर मीठे जल का समुद्र घिरा हुआ है। इस द्वीप में पुष्कर नामक तीन पत्ती के आकार का एक कमल-पुष्प है। इस द्वीप में केवल एक ही पर्वत है, जिसे मानसोत्तर कहा जाता

है। राजा प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र इस द्वीप के सम्राट् हुए। वीतिहोत्र के रमणक तथा घातिक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। तब वीतिहोत्र ने पुष्करद्वीप के दो खण्ड करके अपने दोनों पुत्रों में बाँट दिये। वे दोनों खण्ड उन्हीं राजपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

हे नारद ! पुष्करद्वीप के सभी निवासी केवल कर्म को ही भगवान् सदाशिव का स्वरूप समझते हैं तथा स्तुति करते हुए इस प्रकार कहते हैं—"हे कर्मरूप परब्रह्म ! हम आपको प्रणाम करते हैं। आपके अधीन देवता, मुनि आदि सभी प्राणी हैं। आपके द्वारा ही तीनों लोकों के सभी प्राणियों को सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। अस्तु, हे कर्म रूप भगवान् सदाशिव ! हम आपको दंडवत् करते हैं। आप सदैव हमारे ऊपर अनुग्रह बनाये रहें।"

इतनी कथा सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! इन सातों द्वीपों के ऊपर लोकालोक हैं। वह बहुत ऊँचा तथा विशाल है। उसे ग्रह, नक्षत्र, सूर्य तथा ध्रुव भी नहीं लांघ सकते। उसका विस्तार पचास करोड़ योजन का है। वहाँ तूर्यभाग नामक एक पर्वत है और उसके चारों ओर मेरे द्वारा स्थापित किये हुए दिग्गज स्थित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. अपराजित, 2. वामन, 3. गतपर्व, 4. पुष्कर, 5. शंखचूड़ तथा 6. ऋषभ। उस स्थान पर भगवान् विष्णु जी अपने भक्तों सहित निवास करते हुए सम्पूर्ण संसार का पालन करते हैं। लोकालोक के आगे योगी जनों के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति नहीं पहुँच सकता। मनुष्यों की दृष्टि में वह स्थान दिखाई नहीं देता। अस्तु, उनका वहाँ पहुँचना असम्भव है। हे नारद ! भू लोक का वर्णन मैंने तुम से किया।"

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! भूलोक के ऊपर भुवर्लोक है। उसकी लम्बाई सूर्य तक एक लाख मील से भी अधिक है। वहाँ प्रत्येक

जीव अपने पुण्यों के अनुसार पहुँचता है और अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करता है।

हे नारद ! पहले उपलोक का नाम पिशाचपुर है। वहाँ भूत-प्रेत आदि रहते हैं। वे पृथ्वी के अंश नहीं हैं। वे तीनों लोको में भ्रमण कर सकते हैं तथा प्रसन्न हो कर दूसरों को वरदान भी दे सकते हैं। उन्हें कभी किसी प्रकार का दुःख नहीं होता। जो लोग अपने कर्मवश उस लोक में जा कर भूत-प्रेत होते हैं, उनका वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। किसी की संगति अथवा अधीनता के कारण कुछ सामग्री एकत्रित कर, किसी मनोरथ की प्राप्ति के हेतु, किसी देवता की विधि रहित हो कर जो पूजा करते हैं। वे मृत्यु के उपरान्त पिशाचपुर में जा कर भूत-प्रेत का शरीर प्राप्त करते हैं।

हे नारद ! पिशाचपुर के ऊपर गुह्यकलोक है। वहाँ के निवासी भगवान् सदाशिव के भक्त हैं। वे अपने कुल देवताओं का पूजन करते हैं तथा उन्हीं की आज्ञानुसार आचरण करते हैं। वे श्रेष्ठ मार्ग द्वारा धन संचय करते हैं तथा सभी लोगों के साथ स्नेह का व्यवहार रखते हैं। गुह्यकलोक के राजा मणिग्रीव अपने गणों सहित भगवान् सदाशिव का पूजन करते हैं और उन्हीं के ध्यान में लीन रहते हैं।

हे नारद ! गुह्यकलोक के ऊपर तीसरा गन्धर्वलोक है। उसमें चारण तथा गन्धर्वों का निवास है। वे लोग गान-विद्या में अत्यन्त चतुर हैं। वहाँ किसी को कोई दुःख नहीं होता। गन्धर्वों के राजा विश्वावसु अपनी सम्पूर्ण प्रजा सहित भगवान् सदाशिव के मंत्र का जप करते हैं और उनकी स्तुति करते हुए यह कहते हैं—"हे भगवान् सदाशिव जी ! आप तीनों लोकों के स्वामी, आदि-अन्त से परे परब्रह्म हैं। ब्रह्मा तथा विष्णु जी आदि सभी देवता एवं ऋषि-मुनि आपकी सेवा किया करते हैं।"

हे नारद ! गन्धर्वलोक के ऊपर चौथा विद्याधरलोक है। वहाँ विद्याधर निवास करते हैं, जो सम्पूर्ण विद्याओं के जानकार हैं। जो लोग शास्त्र के आज्ञानुसार योग्य व्यक्तियों को विद्या दान करते हैं

अथवा श्रेष्ठ द्रव्य द्वारा विद्यार्थी को शिक्षा दिलाते हैं, वे मृत्यु के उपरान्त विद्याधरलोक को प्राप्त होते हैं। वे पंचाक्षरी मंत्र का जप करते हुए, उत्तम स्तोत्र का पाठ करते हैं तथा इस प्रकार प्रार्थना करते हैं— ''हे गिरिजापति ! आप सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पन्नकर्त्ता, सब के स्वामी, निष्पाप, अविनाशी, भक्तवत्सल तथा उपकारी हैं। आप हमारे ऊपर भी अपना अनुग्रह करें।''

हे नारद ! विद्याधरलोक के ऊपर पाँचावाँ सिद्धलोक है। जो लोग भगवान् सदाशिव का दृढ़तापूर्वक पूजन करते हैं तथा अपने धर्म के पालन में स्थिर रहते हैं, वे उस लोक में निवास पाते हैं। वहाँ के सिद्धजन भगवान् सदाशिव का मंत्र जपते हुए इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—''हे प्रभो ! आपका स्वरूप परमहंसों जैसा तथा वेष भूत-प्रेतों जैसा है, परन्तु आप भक्त की प्रत्येक मनोकामना को पूर्ण करते हैं। हे दयालु ! आप हमारे ऊपर अपनी विशेष कृपा सदैव बनाये रहें।''

हे नारद ! सिद्धलोक के ऊपर छठा अप्सरालोक है। वहाँ रम्भा आदि साठ सहस्त्र अप्सराएँ निवास करती हैं। वे नृत्य-गायन में अत्यन्त प्रवीण हैं। वे अप्सराएँ इन्द्र की सदैव सहायता किया करती हैं; क्योंकि योगियों तथा तपस्वियों के तप में विघ्न डालने के लिए इन्द्र उनका उपयोग करते हैं। जो स्त्रियाँ संसार में धर्मपूर्वक अपने पतिव्रत-धर्म की रक्षा करती हैं, वे इस लोक में पहुँच कर सुखपूर्वक बहुत समय तक भोग-विलास का आनन्द उठाती हैं।

हे नारद ! अप्सरालोक के ऊपर सातवाँ राहुलोक है। वहाँ सिंहिका नामक राक्षसी का पुत्र राहु निवास करता है। राहुलोक से दस सहस्त्र योजन नीचे सूर्यनारायण रहते हैं। जिस समय देवताओं को अमृत बाँटा जा रहा था, उस समय भगवान् विष्णु जी ने अपने चक्र द्वारा राहु का मस्तक काट डाला था। तत्पश्चात् जब राहु ने शिवजी की बड़ी तपस्या की, तो भगवान् भूतभावन ने उसे ग्रह बना दिया। तब से वह निर्भय हो कर देवताओं के समान आकाश में रहने लगा। मस्तक कट जाने के कारण राहु ने सूर्य-चन्द्रमा से शत्रुता बढ़ायी। अब भी वह अवसर पा

कर सूर्य तथा चन्द्रमा को कभी-कभी घेरे लेता है। उस समय भगवान् विष्णु जी अपने चक्र द्वारा उसे हटा देते हैं। संसार में ऐसे अवसर को ग्रहण के नाम से पुकारा जाता है। सूर्य का मंडल दस सहस्त्र योजन, चन्द्रमा का मंडल बारह सहस्त्र योजन तथा राहु का मंडल तेरह सहस्त्र योजन लम्बा है। इसलिए राहु सूर्य तथा चन्द्रमा पर प्रबल हो जाता है। ग्रहण के समय जो लोग थोड़ा भी दान-पुण्य करते हैं, उन्हें बहुत फल मिलता है।

हे नारद ! जिस समय विष्णु जी ने राहु का मस्तक काट डाला, तब वह उस स्थान से भाग कर शिवजी का तप करने लगा था। उसके तप से प्रसन्न हो कर शिवजी ने उसे ग्रह बना दिया। तभी से वह अपने लोक में स्थित हो कर भगवान् सदाशिव का पूजन करके इस प्रकार स्तुति किया करता है—"हे प्रभो ! आप अपने भक्तों को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हैं तथा उनके सब प्रकार के दुःखों का नाश करते हैं। मेरी यही अभिलाषा है कि आप मुझे अपने चरणों की भक्ति प्रदान करने की कृपा करें।"

ॐ ॐ ॐ

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! मैंने तुम्हें उपलोकों सहित भुवर्लोक का वृत्तान्त सुनाया, अब तुम स्वर्लोक के विषय में सुनो। स्वर्लोक भुवर्लोक के ऊपर स्थित है। उसमें भी कई उपलोक हैं। स्वर्लोक का विस्तार सूर्यमंडल से लेकर ध्रुवमंडल तक है। अब तुम सूर्यनायण के संबन्ध में कुछ वृत्तान्त सुनो।

हे नारद ! सूर्य की गति तीन प्रकार की है। उसे शीघ्र, मध्य तथा सम जानना चाहिए। उनके नाम ये हैं—1. उत्तरायण, 2. दक्षिणायन, 3. विषुवत् ! सूर्य की इन गतियों द्वारा छः ऋतु तथा बारह महीने प्रकट होते हैं। तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले सूर्य का रथ केवल एक पहिये का है। उसका एक सिरा सुमेरू पर्वत के ऊपर रहता है और

दूसरा मानसोत्तर के पर्वत के ऊपर। उनका रथ तेल पेरने के कोल्हू के समान चारों ओर घूमता है। सूर्य के घोड़ों को छन्द तथ सारथी को अरुण कहते हैं। उनके रथ के आगे-आगे अँगूठे के बराबर आकार वाले साठ सहस्त्र बालखिल्य ऋषि उच्च स्वर से वेद-मन्त्रों का पाठ तथा सूर्य के यश का वर्णन करते चलते हैं। उनके अतिरिक्त सप्तर्षि तथा नाग आदि भी सूर्य की सेवा में प्रस्तुत रहते हैं। सप्तर्षि प्रत्येक मास में बदल जाते हैं अर्थात् एक मास में जो सप्तर्षि उनके साथ रहते हैं, दूसरे मास में उनके स्थान पर दूसरे सप्तर्षि आ जाते हैं और पहले वाले हट जाते हैं। सूर्य के रथ का विस्तार नौ सहस्त्र योजन है। वह एक लाख योजन ऊँचा है। इस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकाश तथा आनन्द प्रदान करते हैं।

हे नारद ! सूर्य ने ऐसा उच्च पद भगवान् सदाशिव का तप करके प्राप्त किया है। वह कथा संक्षेप में इस प्रकार है—मेरे पुत्र मरीचि के द्वारा कश्यप का जन्म हुआ। जब कश्यप ने गृहस्थाश्रम को स्वीकार किया, तब दक्ष प्रजापति ने अपनी तेरह कन्याओं का विवाह उनके साथ कर दिया। उन तेरह कन्याओं में से जिस कन्या का नाम अदिति था, उसने बारह पुत्रों को जन्म दिया। उन बारह पुत्रों में से एक सूर्य है। इस प्रकार सूर्य का जन्म कश्यप द्वारा अदिति के गर्भ से हुआ है।

हे नारद ! सूर्य ने शिवजी का उग्र तप किया। तदुपरान्त शिवजी ने उन्हें दर्शन दिये। सूर्य ने भगवान् शंकर के मनोहारी स्वरूप को देखकर दंडवत्-प्रणाम किया। फिर प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! आप घट-घटव्यापी, अन्तर्यामी, अप्रमेय, महिमा-सम्पन्न, पुरातन-पुरुष, दुःखहारी, भक्तवत्सल तथा आदि अन्त से हीन हैं। मेरा धन्य भाग्य है, जो आपने शरीर धारण कर मुझे दर्शन प्रदान करने की कृपा की। हे नाथ ! आपने मुझे दर्शन दिये, इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है? मेरी यही कामना है कि मैं हर समय आपकी सेवा किया करूँ।"

हे नारद ! इतना कहकर जब सूर्य चुप हो गये, तब शिवजी ने

अत्यन्त प्रसन्न हो कर, उन्हें बिना माँगे ही वर देते हुए यह कहा—"हे सूर्य ! तुम परम तेजस्वी तथा प्रकाशवान् हो कर सब जीवों के कर्मों के साक्षी रहोगे तथा अपने भक्तों को सब प्रकार के आनन्द प्रदान करते रहोगे। तुम्हारी सेवा करने वालों के रोग दूर हो जाया करेंगे।" इस प्रकार सूर्य को वरदान देने के उपरान्त भगवान् सदाशिव अन्तर्धान हो गये। तब सूर्य प्रसन्न हो कर अपने लोक में लौट आये। तभी से वे शिवजी का ध्यान धरते हुए, सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकाशित किया करते हैं। जो लोग सूर्य का व्रत तथा सूर्य के निमिन्त तप, यज्ञ आदि करते हैं, वे सूर्यलोक में जा कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त करते हैं।"

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! सूर्यलोक का वृत्तान्त तुम सुन चुके। अब चन्द्रलोक के सम्बन्ध में सुनो। चन्द्रलोक सूर्य से एक लाख योजन ऊपर है। वहाँ धर्मात्मा तथा पुण्यात्मा लोग आ-जा कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त करते हैं। वहाँ किसी प्रकार का दुःख और शोक नहीं है। चन्द्रमा की किरणों से जो अमृत टपकता है, उसे पी कर वहाँ के निवासी सदैव हृष्ट-पुष्ट, अजर-अमर तथा आनन्दित बने रहते हैं। अब मैं तुम्हें वह कथा सुनाता हूँ, जिस प्रकार चन्द्रमा ने इतने उच्च पद को प्राप्त किया।

हे नारद ! मेरे मन द्वारा अत्रि मुनि की उत्पत्ति हुई थी। वे परम तेजस्वी, बुद्धिमान्, शीलवान् तथा विद्वान् हैं। उन्होंने कद्रम मुनि की पुत्री अनुसूया के साथ अपना विवाह किया। तदुपरान्त वे मेरी आज्ञानुसार अपनी पत्नी सहित ऋक्षकुल पर्वत जा कर, नर्मदा नदी के तट पर निवास करने लगे। वहाँ उन्होंने श्वास रोक कर सौ वर्षों तक कठिन तपस्या की। इस प्रकार का कठिन तप करते हुए जब अत्रि मुनि को बहुत समय व्यतीत हुआ और उनके मस्तक से एक अग्नि की ज्वाला निकल कर तीनों लोकों को भस्म करने लगी, उस समय सब

देवता, ऋषि, मुनि आदि व्याकुल हो, मेरे समीप आये और प्रार्थना करते हुए यह कहने लगे—"हे प्रभो ! इस ज्वाला के कारण हम सब लोग भस्म हुए जाते हैं। अस्तु, आप किसी प्रकार इसे शान्त करने का उपाय करें।"

हे नारद ! देवताओं की प्रार्थना सुन कर मैं उन्हें साथ लेकर विष्णु जी के समीप गया तथा उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब विष्णु जी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो, हम सब लोगों को साथ लेकर शिवजी के समीप जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने दण्डवत्-प्रणाम तथा स्तुति करने के उपरान्त शिवजी से सब वृत्तान्त कहा। उस समय शिवजी ने यह उत्तर दिया—"हे देवताओ ! आप लोग अपने हृदय में चिन्तित मत होएं। अत्रि मुनि योग साधन कर, वायु को जीत, प्राणायाम किये हुए, तप एवं ध्यान में मग्न बैठे हैं। यह ज्वाला उन्हीं के मस्तक से प्रकट हुई है।" अब हम उन्हें जा कर वरदान देंगे।"

इतना कह कर शिवजी मुझे तथा विष्णु जी को साथ लिए हुए अत्रि मुनि के पास जा पहुँचे। उस समय हम तीनों ही देवता अपने मुख्य स्वरूप को धारण किये हुए थे तथा अपने मुख्य वाहनों पर आरूढ़ थे। हम तीनों ने एक साथ ही अत्रि मुनि से वर माँगने के लिए कहा और उन्हें यह विश्वास दिलाया कि आपके समान कठिन तप तीनों लोकों में किसी ने नहीं किया है। हम लोगों के मुख से यह वचन सुन कर अत्रि मुनि ने दण्डवत्-प्रणाम करने के उपरान्त प्रार्थना की, तदुपरान्त हाथ जोड़ कर यह कहा—"हे प्रभो ! मैंने तो केवल एक ही देवता का तप किया था, फिर क्या कारण है जो आप तीनों यहाँ पधारे हैं? सर्वप्रथम आप मुझे अपने एक साथ आगमन का कारण बतावें, तत्पश्चात् वर प्रदान करें।"

हे नारद ! अत्रि मुनि की बात सुन कर हम तीनों ने एक साथ कहा—"हे मुनि ! आपने जगदीश के दर्शन प्राप्त करने के निमित्त तप किया था। हम तीनों देवता जगदीश कहलाते हैं तथा हम तीनों में कोई अन्तर नहीं है। यही कारण है कि हम तीनों आपके तप से प्रसन्न हो कर

यहाँ आये हैं। आपने सन्तान प्राप्ति के हेतु यह तप किया है। अस्तु हम तीनों देवता अपने-अपने अंश द्वारा आपके यहाँ तीन पुत्रों के रूप में जन्म लेंगे तथा तीनों लोकों में प्रसिद्धि प्राप्त कर माता-पिता के सुयश को बढ़ावेंगे। इतना कह कर हम लोग अत्रि मुनि को भक्ति का वरदान दे, अपने-अपने लोक को लौट आये। तब अत्रि भी अत्यन्त प्रसन्न हो कर अपने घर को चले गये।

हे नारद ! उचित समय आने पर हम तीनों देवताओं ने अत्रि के घर अपने अंश द्वारा तीन पुत्रों के रूप में जन्म लिया। उस समय आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी तथा सम्पूर्ण संसार में आनन्द भर गया। मेरे अंश से चन्द्रमा, विष्णु जी के अंश से दत्तात्रेय तथा शिवजी के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। यहाँ मैं तुम्हें केवल चन्द्रमा के सम्बन्ध में बताता हूँ। कुछ बड़े होने पर चन्द्रमा ने काशी जी में आ कर भगवान् सदाशिव के चरणों का ध्यान करते हुए कठिन तप किया। तब शिवजी ने प्रसन्न हो कर उन्हें वरदान दिया तथा सूर्य लोक के ऊपर रहने के लिए एक लोक भी प्रदान किया। इसके साथ ही शिवजी ने चन्द्रमा को समस्त ब्राह्मणों का राजा भी बना दिया। तब से चन्द्रमा अपने लोक में रह कर भगवान् सदाशिव का पूजन करते हुए इस प्रकार स्तुति किया करते हैं—"हे प्रभो ! आप तीनों लोकों के स्वामी एवं अन्तर्यामी हैं। ब्रह्मा, विष्णु जी आदि देवता आप के सेवक हैं। अस्तु, आप मेरे ऊपर सदैव कृपा बनाये रहें।"

हे नारद ! अब मैं नक्षत्रलोक का वर्णन करता हूँ। यह नक्षत्रलोक चन्द्रलोक से तीन लाख योजन ऊपर है। इसमें अश्विनी आदि नक्षत्र रहते हैं। नक्षत्रों ने इस लोक को कैसे प्राप्त किया, वह कथा मैं तुम से कहता हूँ। प्रजापति ने साठ कन्याओं को उत्पन्न किया था। उसमें अश्विनी से लेकर रेवती तक सत्ताईस कन्याओं ने काशी जी में जा कर कठिन तप किया। उनकी यह इच्छा थी कि हम सब शिवजी को अपना पति बनावें। अस्तु, जब शिवजी उनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर वरदान देने के लिए गये, उस समय उन्होंने स्तुति-प्रणाम करने के

उपरान्त यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आप अपने भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, हमारी यह इच्छा है कि आप हम सब को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें।" यह सुन कर शिवजी ने उत्तर दिया—"हे कन्याओ ! हम तुम्हें रहने के लिए चन्द्रलोक के ऊपर एक लोक देते हैं। तीनों लोकों में हमारे आठ रूप प्रसिद्ध हैं, उनमें एक चन्द्रमा का भी है। अतः हम तुम्हें यह वरदान देते हैं कि चन्द्रमा तुम्हारे पति होंगे। अब तुम अपने लोक में स्थित हो कर चन्द्रमा के साथ सुखपूर्वक विहार करो। पुरुषों के समान तप करने के कारण तुम्हारा नाम पुरुषों के समान प्रसिद्ध होगा।"

हे नारद ! इतना कह कर जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, वे सब कन्याएँ लौट कर दक्ष प्रजापति के पास जा पहुँचीं। उस समय दक्ष ने शिवजी के वरदान का वृत्तान्त जान कर, उनका विवाह चन्द्रमा के साथ कर दिया। तब उन्होंने बारह राशियों के रूप में चन्द्रमा को अत्यन्त आनन्द प्रदान किया। वे सब नक्षत्रलोक में रहती हुई, भगवान् सदाशिव का पूजन करती हैं तथा इस प्रकार प्रार्थना किया करती हैं—"हे प्रभो ! आप सब देवताओं में श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण संसार के स्वामी हैं। आपके नाम, चन्द्रचूड़, मूड़, धूर्ज्जटि, तारक, शूलपाणि, त्रिपुरारि, शम्भु, गिरिजेश, वामदेव असितकंठ, सनातन, कामारि, त्र्यम्बक, परब्रह्म, परमात्मा आदि प्रसिद्ध हैं। आप हमारे ऊपर ऐसा अनुग्रह कीजिये कि हम सदैव निष्पाप रहें।"

ॐ ॐ ॐ

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—"हे नारद ! नक्षत्रलोक से दो लाख योजन ऊपर शुक्रलोक है। शुक्र एक साथ ही सूर्य के आगे तथा पीछे चलते हैं। उनका आगे-पीछे चलना सूर्य की गति पर निर्भर रहता है। जो लोग संसार में काव्य करते हैं, वह शुक्रलोक को प्राप्त हो कर अनेक प्रकार के आनन्द उठाते हैं।"

हे नारद ! शुक्र का जन्म हमारे पुत्र भृगु द्वारा हुआ था। उन्होंने काशी जी में जा कर शिवजी का कठिन तप किया। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी जब उन्हें वर प्राप्त नहीं हुआ, तब वे एक पाँव पर खड़े हो कर पूरक प्राणायाम द्वारा अपने श्वास को ऊपर खींच, योग-मार्ग से शिवजी के ध्यान में स्थित हो गये। शुक्र के इस कठिन तप को देख कर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके समीप जा कर वर माँगने के लिए कहने लगे। उस समय शुक्र ने अत्यन्त प्रेम मग्न हो, दंडवत्-प्रणाम करने के उपरान्त इस प्रकार प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आप सब के स्वामी, निर्दोष, मृत्युंजय, काल के भी काल, तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले, पालनकर्त्ता तथा संहारकर्त्ता हैं। हे नाथ ! आप मुझे मृत्युंजय-मंत्र प्रदान कीजिए; क्योंकि मैंने इसी अभिलाषा से तप किया है।"

हे नारद ! शुक्र की प्रार्थना सुन कर शिवजी ने उन्हें अभिलषित वरदान देते हुए कहा—"हे शुक्र ! हम तुम्हें नक्षत्रलोक के ऊपर रहने के लिए एक लोक भी देते हैं। तुम वहाँ निवास करो तथा दैत्यों के पुरोहित बन कर मृत्युंजय मंत्र की सहायता से सब प्रकार के सुखों का उपभोग करते रहो।" इतना कहकर जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, तो शुक्र अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने लोक में आ कर रहने लगे। वे भगवान् सदाशिव का हर समय स्मरण किया करते हैं तथा उन्हीं की सेवा में संलग्न रहते हैं।

हे नारद ! शुक्रलोक से दो लाख योजन ऊपर बुधलोक है। वह लोक सम्पूर्ण सुखों की खान तथा विचित्र मन्दिरों से सुशोभित है। वहाँ चन्द्रमा के पुत्र बुध भगवान् सदाशिव का ध्यान धरते हुए निवास करते हैं।

हे नारद ! तीनों लोकों में प्रशंसा प्राप्त करके चन्द्रमा को अत्यन्त अहंकार हो गया। तब कामदेव के प्रभाव से एक बार उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी और वे अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी को भगा कर अपने घर ले आये। पहले तो बृहस्पति ने ही चन्द्रमा से अपनी पत्नी लौटा देने

के लिए कहा, परन्तु जब चन्द्रमा ने उनकी बात नहीं मानी, तब वे भगवान् सदाशिव की शरण में गये। उस समय बृहस्पति का पक्ष लेकर शिवजी चन्द्रमा से लड़ने के लिए आए और चन्द्रमा का पक्ष लेकर सभी दैत्य युद्ध करने को तैयार हो गये, उस समय दोनों पक्षों में घोर युद्ध हुआ। जब शिवजी ने चन्द्रमा को मारने के लिए अपना त्रिशूल उठाया, उस समय मैंने तथा विष्णु जी ने चन्द्रमा को बहुत कुछ समझाया। निदान हम लोग बृहस्पति की पत्नी तारा को चन्द्रमा के घर से निकाल कर शिवजी की शरण में ले गये। तब शिवजी ने बृहस्पति को उनकी पत्नी सौंपते हुए, अपना क्रोध शान्त किया।

हे नारद ! जब बृहस्पति ने तारा को गर्भवती देखा तो अत्यन्त क्रुद्ध हो कर यह आज्ञा दी—"हे तारा ! तुम इस गर्भ को तुरन्त गिरा दो।" यह सुन कर तारा ने अपने गर्भ को गिरा दिया। उससे एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस बालक को देख कर बृहस्पति तथा चन्द्रमा दोनों ही उसे प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे। जब दोनों में विवाद बढ़ा तो यह निर्णय किया गया कि तारा से ही इस संबन्ध में पूछा जाए कि यह किसका बालक है? तारा ने लज्जा के वशीभूत हो कर उन दोनों से तो कुछ नहीं कहा, परन्तु जब मैंने पूछा तो उसने यह बताया कि यह बालक चन्द्रमा के वीर्य से उत्पन्न है।

हे नारद ! जब यह ज्ञात हो गया कि वह बालक चन्द्रमा के वीर्य से उत्पन्न हुआ है, तो बृहस्पति ने कुछ नहीं कहा। तदुपरान्त चन्द्रमा ने प्रसन्न हो कर उस बालक को उठा लिया तथा उसको अत्यन्त बुद्धिमान् देखकर उसका नाम बुध रख दिया। बड़े हो कर बुध ने काशी जी में जा कर अत्यन्त कठिन तप किया। तब शिवजी ने उसके समीप पहुँच कर वरदान माँगने के लिए कहा, तब वह दंडवत्-प्रणाम करने के उपरान्त इस प्रकार बोला—"हे प्रभो ! आप अनाथों के नाथ हैं। आपने कृपा करके मुझे अपना दर्शन दिया, इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है? अब आप जो चाहें, वह वर मुझे देने की कृपा करें।" यह सुनकर शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न हो बुध को ग्रह का पद

देते हुए, रहने के लिए एक लोक प्रदान किया। उस समय सभी देवता वहाँ आ कर बुध की प्रशंसा करने लगे। तभी सूर्य तथा चन्द्रमा ने बुध को दो राशियाँ भेंट कीं। इसके उपरान्त जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, तब बुध अपने लोक में आ कर सुखपूर्वक निवास करने लगे।

हे नारद ! बुधलोक से दो लाख योजन ऊपर भौमलोक है। वहाँ तीन पक्ष एक राशि पर रहने वाले मंगल स्थित हैं। उनकी कथा इस प्रकार है—जिस समय सती ने दक्ष के यज्ञ में आ कर अपना शरीर त्यागा तथा शिवजी दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने के उपरान्त सती के वियोग में व्याकुल हो, सब वस्तुओं से मुख मोड़, श्वास चढ़ा, कठिन तप करने में प्रवृत्त हुए, उसके कुछ समय बाद तप की समाप्ति पर उनके मस्तक से पसीने की एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस बूँद द्वारा उस बालक का जन्म हुआ, जिसका रंग कुंदरू फल के समान लाल था। उस समय पृथ्वी स्त्री का स्वरूप धारण कर, उस बालक के समीप आ स्तन-पान कराने लगी। तब शिवजी ने प्रसन्न हो कर पृथ्वी से यह कहा—"हे पृथ्वी ! यह बालक हमारे पसीने की बूँद से उत्पन्न हुआ है, परन्तु तुमने इसे अपना दूध पिलाया है। अस्तु, हम यह बालक तुम्हीं को दे देते हैं।" शिवजी के मुख से यह वचन सुनकर पृथ्वी अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा उस बालक का पालन-पोषण करने लगी।

हे नारद ! भौम ने भी काशी जी में जा कर शिवजी का अत्यन्त कठिन तप किया। तदुपरान्त जब शिवजी उसे वरदान देने के लिए पहुँचे, उस समय उसने दंडवत्-प्रणाम करते हुए यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आपके चरित्रों का पार किसी ने नहीं पाया है।" यह सुनकर शिवजी ने प्रसन्न हो कर कहा—"हे भौम ! हम तुम्हें तीसरा ग्रह नियुक्त करते हैं। तुम्हारा स्थान बुधलोक के ऊपर होगा। तुम वहाँ रह कर सदैव प्रसन्नता प्राप्त करोगे।" इतना कह कर जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, तब भौम अपने लोक में रह कर भगवान् सदाशिव के चरणों का ध्यान धरते हुए, दिन-रात उन्हीं के पूजन में संलग्न हुए।

हे नारद ! भौमलोक से दो लाख योजन ऊपर बृहस्पतिलोक है। वहाँ के निवासी सदैव आनन्दित रहते हैं। बृहस्पति ने जिस प्रकार उच्च

पद प्राप्त किया, वह कथा इस भाँति है। हमारे पुत्र अङ्गिरस द्वारा बृहस्पति का जन्म हुआ था। उन्होंने काशी में जा कर शिवजी का कठिन तपस्या की। तब शिवजी ने उन्हें प्रसन्न हो कर यह वर दिया— "हे बृहस्पति ! हम तुम्हें समस्त देवताओं का गुरु एवं ग्रह नियुक्त करते हैं। आज से तुम देव पुरोहित एवं आचार्य के नाम से प्रसिद्ध होगे। इतना कहकर जब शिवजी अन्तर्धान हो गये, तब बृहस्पति अपने लोक में आ कर देवताओं के गुरु बन, सुखपूर्वक निवास करने लगे।

हे नारद ! बृहस्पति लोक से दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर लोक है। वहाँ सूर्य के पुत्र शनैश्चर सुखपूर्वक निवास करते हैं तथा भगवान् सदाशिव की स्तुति करते हुए यह कहते हैं—"हे प्रभो ! आप परमगति को देने वाले, दीनदयालु, भक्तवत्सल तथा सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं।" इस प्रकार शनैश्चर शिवजी का स्मरण एवं कीर्तन करते हुए सदैव आनन्दित बने रहते हैं। वे एक राशि पर ढाई वर्ष तक रहते हैं, क्योंकि उनकी गति अत्यन्त मन्द है। उनकी दृष्टि जिस पर पड़ जाती है, उसे बड़ा दुःख मिलता है।

हे नारद ! शनैश्चर ने जो उच्च पद पाया उसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि कश्यप के पुत्र सूर्य द्वारा छाया के गर्भ से, जो सूर्य की पत्नी है, शनैश्चर का जन्म हुआ था। शनैश्चर अपनी दृष्टि को सदैव नीचे की ओर झुकाये हुए अपना मुख देखा करते हैं, ताकि उनकी दृष्टि किसी के ऊपर न पड़ जाए। यदि कहीं वे अपनी दृष्टि ऊपर को उठा दें तो सम्पूर्ण सृष्टि के नष्ट होने में कोई सन्देह नहीं रह जायेगा। उन्होंने भी काशी जी में जा कर शिवजी का अत्यन्त कठिन तप किया था, तब शिवजी ने प्रसन्न हो कर उन्हें यह वर दिया—"हे शनैश्चर ! हम तुम्हें बृहस्पतिलोक के ऊपर रहने के लिए स्थान देते हैं। तुम ग्रह बन कर वहाँ सुखपूर्वक निवास करो।" तब से भगवान् सदाशिव की आज्ञानुसार शनैश्चर अपने लोक में आकर रहने लगे। वहाँ वे हर समय शिवजी का पूजन, ध्यान, कीर्तन एवं स्मरण किया करते हैं।"

ॐ ॐ ॐ

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—शनैश्चर लोक से ऊपर सप्तर्षि लोक है। वहाँ मेरे सात पुत्र, जो सप्तर्षि के नाम से प्रसिद्ध हैं, निवास करते हैं। वे भगवान् सदाशिव का पूजन करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—''हे प्रभो ! आप सब के स्वामी हैं। आप ही यज्ञपति हैं तथा आप ही यज्ञरूप हो कर यज्ञ की रक्षा करते हैं। हमें अपना सेवक जान कर सदैव अनुग्रह करें।'' हे नारद ! जो धर्मात्मा ऋषि-मुनि होते हैं, वे इसी सप्तर्षिलोक में रह कर आनन्द उठाते हैं।

हे पुत्र ! अब तुम ध्रुवलोक का वृत्तान्त सुनो। वह लोक तेरह लाख योजन ऊँचा है। वहाँ अत्यन्त सुन्दर भवन बने हुए हैं, जो आठ प्रकार के रत्नों से सदैव सुशोभित रहते हैं। सभी ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, कश्यप आदि उस ध्रुव लोक की परिक्रमा करते हैं। जिस प्रकार खम्बे से बँधा हुआ पशु उसके चारों ओर घूमता है, उसी प्रकार समस्त ज्योतिगण ध्रुव लोक के चारों ओर घूमते रहते हैं। कुछ मुनियों का यह कहना है कि जितने भी नक्षत्र दिखाई देते हैं, वे सब शिशुमार चक्र में गुँथे हुए हैं, उन सब के ऊपर ध्रुव स्थित है।

हे नारद ! ध्रुव परम भाग्यवान् है। उन्होंने विष्णु जी की कृपा से ऐसा उच्च पद प्राप्त किया तथा शिवजी की सेवा करके अपने लोक को निश्चित बनाया। उनकी कथा इस प्रकार है—''स्वायम्भुव मनु ने शतरूपा के साथ अपना विवाह किया था। उनसे उत्तानपाद नामक एक पुत्र की उत्पति हुई। राजा उत्तानपाद प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करने वाले, शूर-वीर, धर्मात्मा तथा उदार थे। उनके सुरुचि तथा सुनीति नामक दो रानियाँ थीं। ध्रुव का जन्म सुनीति के गर्भ से हुआ था। राजा उत्तानपाद ध्रुव की माता सुनीति की अपेक्षा सुरुचि को अधिक प्यार करते थे। एक दिन जब ध्रुव ने अपने पिता की गोद में बैठने की इच्छा की, उस समय सुरुचि ने कुछ ऐसे वचन कहे, जिन्होंने उनके हृदय को बींध दिया। तब ध्रुव रोते हुए अपनी माता के पास

पहुँचे। सुनीति ने सब वृत्तान्त सुन कर यह कहा—"हे पुत्र ! ईश्वर की सेवा किये बिना किसी को आनन्द प्राप्त नहीं होता। अस्तु, तुम्हें उचित है कि तुम श्री भगवान् के चरणों का स्मरण करते हुए, तपस्या करो।" यह सुनकर ध्रुव ने उन्हें उत्तर दिया—"हे माता ! आपकी आज्ञा से मैं तपस्या करके ऐसा उच्च पद प्राप्त करूँगा जहाँ कोई भी नहीं पहुँच सका है।" इतना कहकर ध्रुव अपनी माता से आज्ञा ले, तपस्या करने के लिए घर से निकल पड़े।

हे नारद ! मार्ग में तुमने ध्रुव को उपदेश किया था। तदुपरान्त उन्होंने मधुवन में जा कर दस सहस्त्र वर्षों तक घोर तपस्या की। उस समय देवताओं ने यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! ध्रुव की तपस्या से तीनों लोक जले जा रहे हैं। अस्तु, आप उसे शीघ्र वरदान देने की कृपा करें।" यह सुनकर विष्णु जी ध्रुव के समीप जा पहुँचे तथा उनकी स्तुति-प्रार्थना सुनकर इस प्रकार बोले—"हे ध्रुव ! तुम्हारी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। अब तुम काशी जी में जा कर शिवजी को प्रसन्न करने के हेतु शिवजी की तपस्या करके उनसे यह वरदान माँगो कि हमें विष्णु जी ने जो वर दिया है, वह अचल हो जाए। शिवजी से वर प्राप्त करने के उपरान्त तुम छत्तीस सहस्त्र वर्षों तक राज्य करोगे। फिर ऋषिलोक से ऊपर लोक को प्राप्त करोगे।"

हे नारद ! इतना कह कर विष्णु जी ध्रुव को अपने गरुड़ पर बैठा, काशी जी में जा पहुँचे। वहाँ वे स्वयं तो मणिकर्णिका में स्नान करके भगवान् विश्वनाथ का पूजन करने के उपरान्त अपने लोक को चले गये और ध्रुव इन्द्रियों को वश में करके शिवजी का कठिन तप करने लगे। जब उनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर शिवजी ने दर्शन दिया तथा वर माँगने के लिए कहा, उस समय ध्रुव ने दंडवत्-प्रणाम करने के उपरान्त यह प्रार्थना की—"हे प्रभो ! आप मुझे अपना सेवक जान कर यह कृपा कीजिये कि विष्णु जी ने मुझे जो वर दिया है, वह अचल हो जाए।" यह सुनकर शिवजी 'एवमस्तु' कह कर अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार वर पाने के उपरान्त ध्रुव अपने पिता के पास लौट आये। उस

समय राजा उत्तानपाद ने ध्रुव का अत्यन्त सत्कार किया तथा उनकी माता को भी बहुत प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त राजा उत्तानपाद ध्रुव को राज सिंहासन पर बैठाकर, स्वयं तपस्या करने के हेतु वन में चले गये।

हे नारद ! ध्रुव ने छत्तीस सहस्त्र वर्षों तक पृथ्वी पर आनन्दपूर्वक राज्य किया, तदुपरान्त वे अपने पुत्र को राज्य सौंप कर वन में तपस्या करने चले गये। वहाँ अन्त समय में विष्णु जी की आज्ञानुसार विष्णु जी के गण उन्हें विमान में बैठा कर ध्रुवलोक में ले पहुँचे। वह ध्रुवलोक सप्तर्षि से ऊपर है। ध्रुव इस प्रकार स्तुति करते हैं—''हे प्रभो ! आप सब के स्वामी हैं। अस्तु, आप मेरे ऊपर अपनी कृपा बनाये रहें।''

ॐ ॐ ॐ

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! सुरलोक ध्रुवलोक तक ही है। ध्रुवलोक से ऊपर महर्लोक है। वह पृथ्वी से एक करोड़ योजन की ऊँचाई पर स्थित है। उस लोक में अट्ठाइस करोड़ देवता रहते हैं। जो परम तपस्वी तथा शिवजी के उपासक हैं। उस लोक के सभी भवन स्वर्ण तथा रत्नों से निर्मित्त हैं। वहाँ किसी प्रकार का भय तथा शोक नहीं है। वे सब भगवान् सदाशिव के गुणानुवादों का वर्णन करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करते रहते हैं—''हे प्रभो ! आप ब्रह्म, सनातन, सच्चिदानन्द स्वरूप तथा आदि-अन्त से रहित हैं। शेषजी में आप के यश का वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं है। अस्तु, आप हमारे ऊपर कृपा रखते हुए, हमें सब प्रकार के सन्देहों से रहित बनावें।'' इस प्रकार सभी देवता स्तुति किया करते हैं। इस लोक में वे तपस्वी भी पहुँचते हैं, जिन्होंने संसार में रह कर अत्यन्त कठिन तप किया होता है।

हे नारद ! महर्लोक से एक करोड़ योजन ऊपर जनलोक है। वहाँ के सभी भवन स्वर्ण रत्नों से निर्मित है। वहाँ भृगु आदि पवित्र मुनियों का निवास है। वे पंचाक्षरी-मंत्र का जप करते हुए भगवान् सदाशिव की इस प्रकार स्तुति किया करते हैं—''हे परब्रह्म सदाशिवजी ! आप

अलख, अगोचर, निर्दोष तथा सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी हैं। हमें अपना सेवक जान कर कृपा बनाये रहें।''

हे नारद ! जनलोक के ऊपर तपलोक है। वह पृथ्वी से चार करोड़ योजन ऊपर है। वहाँ निर्दोष सिद्धजन निवास करते हैं। वहाँ के सभी भवन आठ-आठ खण्डों के हैं तथा स्वर्ण-रत्नों एवं बहुमूल्य मुक्ताओं से सुसज्जित हैं। वहाँ वे मुनि लोग पहुँचते हैं, जो संसार में रह कर निष्काम भाव से तप करते हैं। सनकादिक तथा दक्ष आदि भी उसी लोक में निवास करते हैं और भगवान् सदाशिव का स्मरण करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—''गिरिजापति ! आपकी सेवा से ही ब्रह्मा तथा विष्णु ने उच्च पद प्राप्त किया है। आपकी कृपा से शेषजी पृथ्वी का भार अपने मस्तक पर रखते हैं। अस्तु, आप हम सब पर भी कृपा बनाये रहें।''

हे नारद ! तपलोक के ऊपर सत्यलोक है। वह पृथ्वी से आठ करोड़ योजन ऊँचा है। वहाँ किसी प्रकार का दुःख, शोक, चिन्ता, रोग, मोह आदि नहीं है। उस लोक को शिवजी की कृपा से मैंने प्राप्त किया है। जो लोग वेदपाठी होते हैं तथा माघ मास में प्रयाग में जा कर स्नान करते हैं, वे मेरे सत्यलोक में आते हैं।

हे पुत्र ! भगवान् सदाशिव की आज्ञानुसार मेरी उत्पत्ति विष्णु जी के नाभिकमल से हुई। जब मैंने बहुत समय तक तप किया, तब शिवजी ने भक्ति सहित मुझे अपना दर्शन प्रदान करने की कृपा की। उस समय उनका स्वरूप इस प्रकार था—मस्तक पर जटाएँ, गंगा की धारा तथा चन्द्रमा विराजमान, तीनों नेत्र लालिमा लिये हुए, भाल पर त्रिपुण्ड सुशोभित, रुद्राक्ष की माला पहने, चरण कमल के समान सुन्दर, जाँघें केले के खम्बे के समान सुच्चिक्कण, सम्पूर्ण शरीर सूर्य के प्रकाश के समान श्वेत—जिस पर भस्म लगी हुई तथा जिसे देख कर सैंकड़ों करोड़ कामदेव भी लज्जित हों तथा वामाङ्ग में भगवती आदिशक्ति विराजमान थीं।

हे नारद ! शिवजी के उस परम सुन्दर स्वरूप को देखकर मैं प्रेम-

मगन हो गया। तदुपरान्त हाथ जोड़ कर स्तुति करते हुए इस प्रकार बोला—"हे प्रभो ! वेद, मन, वचन द्वारा आपकी प्रशंसा करते रहते हैं। भक्तों को प्रसन्नता प्रदान करने के हेतु आप अनेक प्रकार के अवतार धारण करते हैं। मंत्र, तंत्र, यंत्र, यामल, डामर, पंचरात्र, सोम, सावर, वाम, पाशुपत, नाकुल तथा कपाल आदि सभी मार्ग आपको ईश्वर कहते हैं। जिस प्रकार संसार में जल बहने के जितने मार्ग हैं, वे सब समुद्र में जा कर विलीन होते हैं, उसी प्रकार सब कर्म-धर्म आदि अन्त में आप से ही जा मिलते हैं। यद्यपि सब मतों ने आपका अनेक प्रकार से वर्णन किया है, परन्तु आप के यथार्थ रूप को कोई नहीं जान पाया है। वेद आपको मन तथा वचन से परे आश्चर्य रूप कहते हैं। इस प्रकार कोई भी आप के भेद को नहीं जान पाया, परन्तु आप स्वयं जिसके ऊपर कृपा करते हैं, वह सुगमता से जान लेता है। आपकी महिमा अप्रमेय है। आप मुझे अपना सेवक जान कर सदैव कृपा करें।"

हे नारद ! मेरी इस स्तुति को सुनकर शिवजी ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा—"हे ब्रह्मन् ! तुम परमधन्य हो। हम तुम्हें यह वर प्रदान करते हैं कि तुम्हें संसार को उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्राप्त होगी। तुम्हारा लोक सम्पूर्ण ब्रह्मांड के ऊपर होगा। तुम्हें हमारे समान ही ज्ञान की प्राप्ति होगी तथा तुम हमारे ही एक रूप कहलाओगे।" इतना कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गये तब मैं उनकी आज्ञानुसार ब्रह्मलोक में निवास कर, सृष्टि-उत्पादन का कार्य करने लगा।"

सत्रहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! तीनों लोकों का वृत्तान्त तो मैंने आपसे सुना, अब आप मुझे मन्वन्तरों का हाल सुनाने की कृपा करें। ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! चौहद मनु तथा मन्वन्तर हैं। वे संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। मनुओं के नाम इस प्रकार

हैं—1. स्वायम्भुव, 2. स्वारोचिष, 3. उत्तम, 4. तामस, 5. रैवत, 6. चाक्षुष, 7. वैवस्वत, 8. सावर्णि, 9. रुचि, 10. ब्रह्मसावर्णि, 11. वृषसावर्णि, 12. रुद्रसावर्णि, 13. देवसावर्णि तथा 14. इन्द्रसावर्णि ये चौदहों मन्वन्तर मेरे एक दिन में व्यतीत हो जाते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के सप्तर्षि देवता तथा इन्द्र अलग-अलग होते हैं। प्रत्येक मनु के दस-दस पुत्र हैं। ये सभी मन्वन्तर भूत, भविष्य तथा वर्तमान काल के हैं। जब ये चौदहों मन्वन्तर व्यतीत हो जाते हैं, उस समय को एक कल्प कहते हैं। वह कल्प मेरा एक दिन कहलाता है। जब एक चतुर्युगी व्यतीत हो जाती है। उसके पश्चात् प्रलय हो जाता है और मैं आनन्दपूर्वक सो जाता हूँ।

हे नारद ! अब मैं प्रत्येक मनु के पुत्रों, सप्तर्षियों, देवताओं तथा इन्द्र के संबन्ध में कहता हूँ कि किस मन्वन्तर में कौन-कौन से मनु के पुत्र, सप्तर्षि, देवता तथा इन्द्र होते हैं, ध्यानपूर्वक सुनो।

हे नारद ! पहले स्वायंभुव मनु के दस पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. आग्नीघ्र, 2. अग्निवाह, 3. मेधा, 4. मेधातिथि, 5. वसु, 6. ज्योतिष्मत्, 7. द्युतिमान, 8. हव्य, 9. हवन तथा 10. शुभ्र। स्वायंभुव मन्वन्तर में जो सप्तर्षि होते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—1. मरीचि, 2. अत्रि, 3. अङ्गिरा, 4. पुलह, 5. क्रतु, 6. पुलस्त्य तथा 8. वशिष्ठ। इस मन्वन्तर में देवताओं को नाम याम तथा इन्द्र का नाम यज्ञ होता है।

हे नारद ! दूसरे स्वारोचिष मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. हवि, 2. ध्रुव, 3. सुकृत, 4. ज्योति, 5. मूर्ति, 6. तप, 7. पृथु, 8. मनस्य, 9. नभ तथा 10. सूर्य। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार हैं—1. उर्ज्जस्तम्भ, 2. परस्तम्भ, 3. ऋषभ, 4. वसुमत्, 5. ज्योतिष्मत्, 6. द्युतिमत् तथा 7. रोचिष्मत्। इस मन्वन्तर में देवताओं का नाम तुषित तथा इन्द्र का नाम रोचन होता है।

हे नारद ! तीसरे उत्तम नामक मनु के पुत्र इस प्रकार हैं—1. दक्ष, 2. ऊर्ज्जित, 3. ऊर्ज्ज, 4. मधु, 5. माधव, 6. शुचि, 7. शुक्रवह, 8. नभस्व, 9. नभ तथा 10. ऋषभ। इस मन्वन्तर में वशिष्ठ के पुत्र

जिन्हें ऊर्ज्ज कहा जाता है, सप्तर्षि होते हैं। देवताओं का नाम सत्यवेदश्रुति तथा इन्द्र का नाम सत्यजित होता है।

हे नारद ! चौथे तामस नामक मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. द्युतिपात्, 2. सौतपस्य, 3. तप, 4. तापन, 5. तपरति, 6. शूल, 7. अकल्माष, 8. धन्वी, 9. खड्ग तथा 10. महर्षि। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार हैं—1. गर्ग, 2. पृथु, 3. वाग्मी, 4. जन्य, 5. धाता, 6. कपीनु तथा 7. कपिवास। इस मन्वन्तर में देवताओं का नाम सत्य तथा इन्द्र का नाम विशिष होता है।

हे नारद ! पाँचवें रैवत मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—प्रथम चार पुत्रों के नाम चौथे मनु के अन्तिम चार पुत्रों के समान हैं। शेष छः पुत्रों के नाम ये हैं—1. निरुत्सव, 2. आरण्यप्रकाश, 3. निदेह, 4. सत्य, 5. चित्, 6. क्रतु। इस मन्तवन्तर में सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार होते हैं—1. देववाह, 2. जयश्रुति, 3. शिर, 4. कनकरोम, 5. पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु तथा 7. सोमप। इसमें देवताओं का नाम भूत तथा इन्द्र का नाम विभु होता है।

हे नारद ! छठे चाक्षुष मनु के पुत्रों के नाम वे ही हैं, जो अङ्गिरस के पुत्रों के नाम हैं। वे संख्या में दस हैं। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार होते हैं—1. भृगु, 2. सुन्दर, 3. अम्बर, 4. विवस्वत्, 5. सुधर्म, 6. विरजा, तथा 7. सुहेतु। इस मन्वन्तर में पाँच प्रकार के देवता होते हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—1. आप, 2. प्रसूर, 3. क्रतु, 4. पृथूग्र तथा 5. खेल। इसमें इन्द्र का नाम मन्त्रद्रुम होता है।

हे नारद ! सातवें वैवस्वत मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—''1. हे इक्ष्वाकु, 2. भृगु, 3. गरुड़धृष्ट, 4. शर्याति, 5. नरिष्यन्त, 6. नाभाग, 7. दिष्टक, 8 रोष, 9. पृषध्र तथा 10. वसुमान्।

इसमें सप्तर्षियों के नाम ये हैं—1. अत्रि, 2. वशिष्ठ, 3. कश्यप, 4. गौतम, 5. भरद्वाज, 6. विश्वामित्र तथा 7. जमदग्नि। इस मन्तन्तर में बारह आदित्य, बहत्तर मरुद्गण, ग्यारह रुद्र तथा विश्वामित्र देवता हैं। इसमें इन्द्र का नाम पुरन्दर होता है।

हे नारद ! आठवें सावर्णि मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. वरिवान्, 2. अवन्तिवन, 3. सुमन्त, 4. धृत, 5. मान, 6. बसु, 7. वरिष्ठ, 8. आद्य, 9. विष्णुराज तथा 10. सुमति। इसमें सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार होते हैं—1. पाराशर, 2. व्यास, 3. अत्रिज, 4. कृपाचार्य, 5. द्रोणचार्य, 6. अश्वत्थामा तथा 7. गालव। इस मन्वन्तर के देवताओं के नाम अज, मरीच तथा कश्यप हैं एवं इन्द्र को बलि कहा जाता है।

हे नारद ! नौवें रुचि नामक मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. धृष्टकेतु, 2. दीप्तकेतु, 3. पंचहस्त, 4. निकृत, 5. वृषकेतु, 6. पृथुश्रवा, 7. द्युम्न, 8. श्रव, 9. ऋचीक तथा 10. गयबृहत्। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम यह हैं—1. मेधातिथि, 2. वसु, 3. ज्योतिष्मान्, 4. धृतमत, 5. सावर्णि, 6. हव्य तथा 7. पुलह। इसमें देवताओं का नाम प्रियमुख तथा इन्द्र का प्रभु होता है।

हे नारद ! दसवें ब्रह्मसावर्णि मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. अक्षय, 2. उत्तमौजस्, 3. भूरिसेन, 4. वृषसेन, 5. शतानीक, 6. निरमित्र, 7. जयद्रथ, 8. भूरिद्युम्न, 9. दर्श तथा सुवर्चि। इसमें देवताओं का नाम दूषद्वत् तथा इन्द्र का नाम शम्भु होता है।

हे नारद ! ग्यारहवें वृषसावर्णि मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. सर्वगत, 2. सुरानीक, 3. क्षामक, 4. दर्शकुहू, 5. बाहू, 6. नामखण्ड, 7. मनु, 8. दृढेषु, 9. सुशर्मा तथा 10. अदाह। इस मन्वन्तर में सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार होते हैं—1. हविष्मत्, 2. अनध, 3. निस्स्वर, 4. अष्टवर्ग, 5. चारुधृष्ट, 6. वशिष्ठ तथा 7. दत्त। इस मन्वन्तर में संगम, कामगम तथा निर्माण-प्रकाम नामक तीन प्रकार के देवता होते हैं तथा इन्द्र का नाम वेधृत होता है।

हे नारद ! बारहवें रुद्रसावर्णि मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. देववान्, 2. उपदेव, 3. देवश्रेष्ठ, 4. सुरनाथ, 5. देवक, 6. देवप्रवर, 7. वरदेव, 8. देवप्रिय, 9. सुरप्रिय तथा 10. प्रियरेवा। इस मन्वन्तर में सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार होते हैं—1. वशिष्ठसुत,

2. अत्रिसुत, 3. अङ्गिरासुत, 4. कश्यपसुत, 5. पुलहसुत, 6. पुलस्त्यसुत तथा 7. भृगुसुत। इसमें देवता पंचरहित के नाम से प्रसिद्ध होते हैं तथा इन्द्र का नाम क्रतुनाम होता है।

हे नारद ! तेरहवें देवसावर्णि मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. चित्र, 2. विचित्र, 3. तप, 4. वृषधृत, 5. अघ्न, 6. क्षेत्रवृद्ध, 7. निर्भय, 8. द्रोण तथा 9. सुतप। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार हैं—1. धृतमति, 2. हव्यपान, 3. तत्त्वदर्शी, 4. सुतपा, 5. परापक, 6. निरुत्सव तथा 7. निद्रह। इसमें देवताओं को सन्तराम तथा इन्द्र को दिवस्पति कहते हैं।

हे नारद ! चौदहवें इन्द्रसावर्णि मनु के पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—1. बुध्न, 2. तरंग, 3. मेरू, 4. विष्णु, 5. प्रवीण, 6. सुनन्दन, 7. तेजस्वी, 8. सम्बल, 9. तनुग्र तथा 10. अनूप। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार हैं—1. अग्नीध, 2. मागध, 3. अतिबाह्य, 4. शुचि, 5. युक्ति, 6. शुक्र, तथा 7. अजित्। इसमें देवताओं का नाम चाक्षुष तथा इन्द्र का नाम शुचि होता है।''

ॐ ॐ ॐ

अठारहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! मन्वन्तरों का वृत्तान्त सुनकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। अब आप मुझे सातवें वैवस्वत मन्वन्तर का, जो इस समय व्यतीत हो रहा है, सब वृत्तान्त सुनाने की कृपा करें। इस मन्वन्तर में जो राजाओं की कथा हो, उन्हें भी कृपा कर कहें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! अब मैं तुम से वैवस्वत मनु की सन्तानों की कथा कहता हूँ। वैवस्वत मनु की सन्तानों में अनेक धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुए, उनकी कथा पुण्य को बढ़ाने वाली है।

हे नारद ! सूर्य का जन्म कश्यप से हुआ। सूर्य की संज्ञा नामक स्त्री द्वारा श्राद्धदेव तथा यम नामक दो पुत्र एवं यमुना नामक कन्या का

जन्म हुआ। संज्ञा मैथुन के समय सूर्य के तेज तथा बल को सहने में अशक्त हो गयी, तब उसमें यह सामर्थ्य न रही कि वह सूर्य के साथ फिर भोग करें। अस्तु, उसने मैथुन से छुटकारा पाने के हेतु अपने ही समान एक दूसरी स्त्री को उत्पन्न करके उसका नाम छाया रखा। जब छाया ने उससे अपने उत्पन्न का कारण पूछा, उस समय संज्ञा ने यह उत्तर दिया—''मैं तो अपने पिता के घर जाती हूँ। तुम मेरे बदले यहाँ रह कर मेरी तीनों सन्तानों को अपनी सन्तानों के समान समझकर पालन-पोषण करना तथा यह प्रयत्न करना कि कोई भी व्यक्ति इस भेद को न जान सके।'' छाया ने यह बात स्वीकार कर ली। तब संज्ञा अत्यन्त लज्जित हो, अपने पिता के घर चली गयी। जब संज्ञा के पिता को उसके आने का कारण ज्ञात हुआ, तब उसने अत्यन्त अप्रसन्न हो कर संज्ञा को धमकाया तथा यह कहा कि तुम्हें अपने पति के घर रहना ही उचित है। यह सुनकर संज्ञा अपने पिता के घर से निकल, घोड़ी का स्वरूप धारण कर, उत्तर-दिशा की ओर एक वन में चली गयी तथा व्याकुल हो कर वहीं इधर-उधर भ्रमण करती रही।

हे नारद ! इस प्रकार संज्ञा तो घोड़ी का स्वरूप धारण किये वन में भ्रमण कर रही थी, उधर सूर्य इस भेद को न जान कर, छाया को ही संज्ञा समझते हुए उसके साथ रमण करते रहते थे। परिणामस्वरूप, छाया के गर्भ से दो बालक तथा एक कन्या की उत्पत्ति हुई। पहली बार उसके गर्भ से सावर्णि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो आठवाँ मनु हुआ। दूसरी बार शनैश्चर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सातवाँ ग्रह है। तीसरी बार तपती नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका विवाह सावर्णि मुनि के साथ हुआ। जब छाया को संज्ञा की भाँति रहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। तब उसकी बुद्धि में विरोध उत्पन्न होने से वह अपनी सन्तानों से अधिक प्रेम करने लगी तथा संज्ञा के पुत्रों से घृणा कर उठी। श्राद्धदेव तो इस बात को सह गये, परन्तु यम को छाया का ऐसा व्यवहार देखकर अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने उसे मारने की इच्छा से अपना पाँव ऊपर उठाया। उस समय छाया ने अत्यन्त क्रुद्ध

हो कर यम को यह शाप दिया कि तुमने जो पैर मेरे मारने के लिए उठाया है, वह तुम्हारे शरीर से अलग हो कर गिर पड़ेगा।

हे नारद ! इस शाप को सुनकर यम अत्यन्त क्रुद्ध हो, सूर्य के समीप पहुँचे तथा उन्हें सब हाल सुनाते हुए यह प्रार्थना की—"हे पिता ! आप ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मेरा पाँव गिरने से बच जाए।" यम की बात सुनकर सूर्य को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वे सोचने लगे कि यह क्या आश्चर्य है, जो माता अपने पुत्र पर इस प्रकार क्रोध करती है। फिर कुछ विचार करने के उपरान्त उन्होंने यम को धैर्य बँधाते हुए कहा—"हे पुत्र ! तुम चिन्ता मत करो। मुझे अत्यन्त आश्चर्य है कि तुम्हारे जैसे धर्मात्मा तथा सत्यवादी पुत्र को तुम्हारी माता ने किस प्रकार दोष लगा दिया है। संसार में किसी भी पिता में ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि वह माता के दिये हुए शाप को दूर कर सके। हाँ, मैं तुम्हें यह वर अवश्य देता हूँ कि तुम अंग-भंग हो जाने पर भी पृथ्वी पर नहीं गिरोगे तथा तुम्हें कोई कष्ट भी नहीं होगा।"

हे नारद ! इस प्रकार यम को समझाने के उपरान्त सूर्य ने छाया के समीप जा कर यह कहा—"हे निर्बुद्धि स्त्री ! तूने यह कैसा दुष्कर्म किया है? माता के समीप सभी पुत्र एक समान होनी चाहिए। तू मुझे वास्तविक कारण बता।" यह सुनकर छाया ने प्रारम्भ से अन्त तक सब सच्चा हाल कह सुनाया और यह बता दिया कि वह संज्ञा के रूप में यहाँ रह अवश्य रही है, परन्तु वास्तव में संज्ञा नहीं है। यह सुनकर सूर्य अपने श्वसुर के घर जा पहुँचे। वहाँ जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि संज्ञा वन को चली गयी है, तो वे अपने तेज को कम करके संज्ञा को ढूंढ़ने के लिये निकले। जब उन्होंने वन में जाकर यह देखा कि संज्ञा घोड़ी का स्वरूप रखकर विचरण कर रही है, तो उन्होंने स्वयं घोड़े का रूप धारण कर, उसके साथ मैथुन करना चाहा। यह देखकर संज्ञा भयभीत हो, आगे की ओर भाग उठी। उस समय सूर्य ने अत्यन्त कामवश हो, अपना वीर्य मुख-मार्ग द्वारा संज्ञा के मुख पर छोड़ दिया। उस वीर्य के प्रभाव से संज्ञा की नासिका द्वारा दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो

संसार में अश्विनी तथा कुमार के नाम से प्रसिद्ध हैं। अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य हुए।

हे नारद ! इस चरित्र के उपरान्त सूर्य ने संज्ञा के सम्मुख अपना स्वरूप अत्यन्त कोमल तथा सुन्दर रूप में प्रकट किया। उसे देखकर संज्ञा भी अत्यन्त प्रसन्न हो, वास्तविक स्वरूप धारण कर, अपने घर लौट आयी। फिर छाया भी उसके साथ रह कर, स्नेहपूर्वक समय व्यतीत करने लगी। संज्ञा के पुत्र श्राद्धदेव सातवें मनु हुए जो वैवस्तव नाम से प्रसिद्ध हैं। यमराज ने दिक्पाल हो कर उच्च पद को प्राप्त किया। यमुना ने नदी हो कर श्रीकृष्ण चन्द्र जी से अधिक स्नेह पाया। इसी प्रकार छाया की सन्तानों में से सावर्णि आठवें मनु हुए तथा शनैश्चर ग्रह-पद को प्राप्त किया। जो लोग इसे पढ़ते, सुनते अथवा सुनाते हैं, उन्हें दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है।''

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे पुत्र ! अब मैं श्राद्धदेव अर्थात् वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन करता हूँ। इस वंश के राजा बड़े तपस्वी तथा प्रतापी थे। एक बार श्राद्धदेव ने वशिष्ठमुनि की सहायता से तेजस्वी तथा भाग्यवान् पुत्र की प्राप्ति हेतु वरुण यज्ञ करना आरम्भ किया। उस समय श्राद्धदेव की रानी ने वशिष्ठ जी से एकान्त में यह विनय की—''हे ऋषि ! आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मेरे गर्भ द्वारा पुत्र न हो कर कन्या का जन्म हो। कन्या पुण्य को बढ़ाने वाली तथा मुक्ति को प्रदान करने वाली होती है। अस्तु, आप मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करें।'' यह सुनकर वशिष्ठ जी ने पुत्र-प्राप्ति के मंत्र के बदले कन्या-प्राप्ति के मंत्र को जपना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप यज्ञ पूर्ण होने पर बालक के बदले कन्या का जन्म हुआ। उस कन्या का नाम इला रखा गया।

हे नारद ! उस समय श्राद्धदेव मनु ने वशिष्ठ जी से यह पूछा—''हे

गुरु ! मैंने पुत्र की कामना से यज्ञ किया था, परन्तु कन्या क्यों उत्पन्न हुई, इसका कारण बताने की कृपा करें।" तब वशिष्ठ जी ने उन्हें वास्तविकता का ज्ञान कराते हुए कहा—"हे राजन् ! हम तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण कर देंगे।" इस प्रकार जब श्राद्धदेव की चिन्ता दूर हो गयी, तब उन्होंने इला की ओर प्रसन्नतापूर्वक देखा। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह कन्या परम तेजस्विनी है, तो वे अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने इला को इडा नाम से सम्बोधित करते हुए, अपने पास बुला कर, यह कहा—"हे पुत्री ! तुम समीप आकर खेलो। उस समय इडा उन्हें उत्तर देते हुए बोली—"हे पिता ! मेरा जन्म मित्रावरुण के अंश से हुआ है। यद्यपि आपको पुत्र की आकांक्षा थी, परन्तु माता की अभिलाषा को पूर्ण करने के हेतु मेरा जन्म हुआ है। फिर भी मैं आपकी अभिलाषा भी पूर्ण कर दूँगी। आप मुझे मित्रावरुण के पास जाने की आज्ञा दे दीजिये।"

हे नारद ! यह सुनकर श्राद्धदेव ने इडा को मित्रावरुण के पास जाने की आज्ञा दे दी। तब वह उनके पास पहुँच, हाथ जोड़, स्तुति करती हुई इस प्रकार बोली—"हे प्रभो ! मैं आपके अंश से उत्पन्न हुई हूँ। अस्तु, आप जो आज्ञा देगे, वह कार्य करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।" इडा के ऐसे वचन सुनकर मित्रावरुण ने अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कहा—"हे इडा ! मैं तुम्हारे विनय तथा सत्यवादिता से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अब तुम संसार में मेरे नाम से प्रसिद्ध होओगी। तुम्हारा शरीर भी लड़के के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। तुम्हारा नाम सुद्युम्न होगा।" मित्रावरुण के यह वचन सुनकर इडा अत्यन्त प्रसन्न हो, मनु के पास लौट आयी। उन्हीं दिनों वशिष्ठ जी ने भगवान् सदाशिव को प्रसन्न करके यह वर माँगा कि श्राद्धदेव की पुत्री इडा पुत्र रूप में परिवर्तित हो जाये। अस्तु, शिवजी के वरदान एवं मित्रावरुण की कृपा से इडा लड़का हो गयी और सुद्युम्न नाम से संसार में प्रसिद्ध हुई।

हे नारद ! एक दिन सुद्युम्न शिकारियों का वेष धारण कर, शिकार खेलने के लिए उत्तर दिशा की ओर गया। वहाँ संयोगवश वह सुरगिरि

जहाँ पर शिवजी गिरिजा सहित विहार कर रहे थे, जा पहुँचा। उस स्थान पर पहुँचते ही वह अपने सभी साथियों सहित स्त्री रूप को प्राप्त हो गया। यह आश्चर्य देखकर सब लोग अत्यन्त चकित हुए। सुद्युम्न के वहाँ पहुँच कर स्त्री हो जाने का यह कारण था कि एक बार भगवती गिरिजा उस स्थान पर भगवान् सदाशिव के साथ विहार कर रही थीं, तब कुछ देवता शिवजी के दर्शन प्राप्त करने के हेतु उस स्थान पर जा पहुँचे थे, परन्तु जब उन्होंने यह देखा कि शिवजी विहार में मग्न हैं, तब वे लज्जापूर्वक वहाँ से लौट आये और बदरीवन में ठहर गये। जब गिरिजा को यह ज्ञात हुआ कि यहाँ देवता आये थे और उन्हें विहार करते हुए देख गये हैं, तो वे अपने मन में बहुत लज्जित हुईं। उस समय शिवजी ने गिरिजा के हृदय को सन्तोष प्रदान करने के हेतु यह कहा— ''हे गिरिजे ! भविष्य में जो भी मनुष्य इस स्थान पर आयेगा, वह स्त्री का रूप हो जायेगा।'' इसलिए जब वह वहाँ जा पहुँचा तो उस शाप के प्रभाव के कारण स्त्री हो गया।

हे नारद ! स्त्री हो जाने पर सुद्युम्न अत्यन्त दुःखी हो अपने साथियों-सहित इधर-उधर भ्रमण करने लगा तथा घर लौट कर नहीं गया। जिस समय वह वन में भ्रमण कर रहा था, तभी चन्द्रमा का पुत्र बुध भी उसके समीप आ पहुँचा। जब बुध ने परम सुन्दरी नारी के रूप में सुद्युम्न को देखा तो वह उस पर मोहित हो गया। स्त्री रूपी सुद्युम्न भी बुध पर आसक्त हो गया। तब वे दोनों परस्पर भोग करने लगे। उन दोनों के संयोग से पुरुरवा नामक एक अत्यन्त प्रतापी राजा का जन्म हुआ। राजा पुरुरवा संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। उसी समय से संसार में चन्द्रवंश का आरम्भ हुआ जिसमें आगे चल कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अवतार लिया था। चन्द्रवंशी राजाओं की कथा अनेक हैं।

हे नारद ! पुरुरवा को जन्म देने के उपरान्त सुद्युम्न अत्यन्त दुःखी हो अपने गुरु वशिष्ठ का स्मरण करने लगा। तब वशिष्ठ जी प्रसन्न हो कर उसके पास पहुँचे। जब उन्होंने यह देखा कि सुद्युम्न स्त्री हो गया

है, तब वे उसे पुरुष रूप प्रदान करने के हेतु शिवजी का तप करने लगे। कुछ समय उपरान्त शिवजी ने प्रसन्न हो कर उन्हें अपना दर्शन दिया तथा वर माँगने की आज्ञा दी। तब वशिष्ठ ने भगवान् सदाशिव की स्तुति एवं प्रार्थना करते हुए यह कहा—"हे प्रभो ! मेरी यह अभिलाषा है कि सुद्युम्न पहले की भाँति फिर से पुरुष शरीर को प्राप्त करे।" वशिष्ठ जी की प्रार्थना सुनकर शिवजी बोले—"हे वशिष्ठ ! हम ने उस वन को जो शाप दिया है, वह तो मिथ्या नहीं होगा, परन्तु हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो कर यह वरदान देते हैं कि सुद्युम्न एक महीने तक स्त्री रूप में रहेगा और दूसरे महीने पुरुष हो जाया करेगा। वह अपने राज्य का विधिपूर्वक संचालन करेगा तथा हमारी कृपा से इसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।" इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये और सुद्युम्न पुनः पुरुष शरीर धारण कर अपने घर लौट आया तथा सुखपूर्वक राज्य करने लगा। उसने उत्कल, गय तथा विमल नामक तीन पुत्रों को जन्म दिया। उत्कल के नाम पर उत्कल देश प्रसिद्ध हुआ, गय ने गया को बसाया तथा विमल पश्चिम देश का राजा हुआ।"

ॐ ॐ ॐ

बीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—"हे पिता ! जिस समय राजा सुद्युम्न राज्य को त्याग कर वन में चले गये, तदुपरान्त मनु ने क्या कार्य किये आप मुझे यह बताने की कृपा करें।" ब्रह्मा जी बोले—"हे नारद ! मनु के दस पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें सबसे बड़े का नाम इक्ष्वाकु था। उसी के वंश का मैं वर्णन करता हूँ। इक्ष्वाकु ने सौ पुत्रों को जन्म दिया। वे सब बड़े धर्मात्मा तथा प्रजापालक थे। उन पुत्रों में सबसे बड़े का नाम मलकक्ष था, उसने अयोध्या पुरी का सुखपूर्वक राज्य किया। एक बार श्राद्ध के समय माँस की आवश्यकता पड़ने पर इक्ष्वाकु ने मलकक्ष को शिकार कर लाने की आज्ञा दी। तब वे पिता की

आज्ञानुसार वन में गये और वहाँ से एक शशक को मारकर घर को लौटे। मार्ग में उन्हें इतनी ज़ोर की भूख लगी कि वे उसी शशक में से थोड़ा माँस खा गये। जो माँस शेष बचा, उसे राजा इक्ष्वाकु को लाकर दे दिया। उस भेद को वशिष्ठ जी जान गये। तब उन्होंने इक्ष्वाकु से यह कहा—''हे राजन् ! यह माँस जूठा होने के कारण श्राद्ध के योग्य नहीं है।'' यह सुनकर राजा इक्ष्वाकु अपने पुत्र से अप्रसन्न हो राज्य को त्याग, वन में चले गये। वहाँ वशिष्ठ मुनि द्वारा प्राप्त ज्ञान से शिवजी का तप करते हुए परम पद को प्राप्त हुए।

हे नारद ! इक्ष्वाकु के चले जाने पर वशिष्ठ जी ने मलकक्ष को राजा बनाया। वह संसार में शशाद नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके पश्चात् क्रमानुसार अन्य इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने राज्य किया।

हे नारद ! यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि वैवस्वत के उत्तराधिकारी इक्ष्वाकु तथा इक्ष्वाकु के मलकक्ष अर्थात् शशाद हुए। तदुपरान्त उनके उत्तराधिकारी रिपुञ्जय, कौस्तुभ, हरिवाह, अर्णाभ, हर्यश्व, प्रथु, चन्द्र, युवनाथ, सारस्वत, वृहदश्व, कपिल तथा दृढ़ाश्व—ये सब क्रमानुसार राजा हुए। दृढाश्व के पश्चात् हर्यश्व, निभिकुम्भ, संघताश्व, कृषाश्व, प्रसेनजित तथा युवनाश्व हुए। युवनाश्व के कोई पुत्र नहीं हुआ, जिससे वह अत्यन्त दुःखी हो अपनी एक सौ रानियों को लेकर वन में चला गया, वहाँ मुनियों ने राजा से पुत्र प्राप्ति के हेतु इन्द्र यज्ञ कराया। एक दिन भाग्यवश रात्रि के समय राजा तृषातुर हो पानी पीने के लिए उस स्थान पर गये, जहाँ यज्ञ की सामग्री रखी हुई थी। उस समय सब ऋषि-मुनि सो रहे थे। वहाँ एक कलश में मंत्रों से अभिषिक्त जल रखा हुआ था। राजा को उस जल के सम्बन्ध में कोई बात नहीं मालूम था। अस्तु, उसने प्यास बुझाने के लिए उस जल को पी लिया।

हे नारद ! प्रातःकाल होने पर जब मुनियों ने कलश को जल से रहित देखा तो सब लोगों ने पूछताछ की। उस राजा ने उन्हें बताया कि तृषातुर होने के कारण मैंने उस जल को पी लिया है। यह सुनकर

मुनियों ने उत्तर दिया—"हे राजन्! यह वही जल था, जिसके द्वारा तुम्हारे घर में पुत्र उत्पन्न होता। परन्तु अब जो ईश्वर की इच्छा है, उसके सम्मुख किसी का क्या वश चल सकेगा?" निदान यज्ञ तो समाप्त हो गया और नियत समय आने पर राजा की कोख फाड़कर एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया। जब वह बालक दूध के लिये रोने लगा, उस समय मुनियों की प्रार्थना पर इन्द्र ने प्रकट हो कर उसके मुँह में अपनी कनिष्ठा उँगली डालते हुए कहा—"मान्धाता" अर्थात् "मुझे पी।" इन्द्र की उँगली के अमृत को पी कर वह बालक जीवित बना रहा। अस्तु, वह संसार में मान्धाता के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब मान्धाता बड़ा हो गया, तब युवनाश्व उसे राज्य सौंप कर स्वयं तप करने के हेतु वन में चले गये।

हे नारद! राजा मान्धाता सम्पूर्ण भूमंडल के चक्रवर्ती सम्राट् हुए। वे त्रसदस्यु के नाम से भी प्रसिद्ध थे। उन्होंने दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें एक का नाम पुरुकुत्स तथा दूसरे का नाम मुचुकुन्द था। राजा मुचुकुन्द ऐसे प्रतापी हुए कि स्वयं इन्द्र भी उनसे सहायता लेने के लिए आये। मुचुकुन्द के भाई पुरुकुत्स ने त्रय्यारुणि नामक पुत्र को जन्म दिया। त्रय्यारुणि ने राज्य पद को प्राप्त किया। उनके सत्यव्रत नामक एक ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने तेजस्वी मंत्रों को भ्रष्ट कर दिया। वह अपनी स्त्री को मार कर अनेक प्रकार के पाप करने लगा। उस समय राजा त्रय्यारुणि ने उसे अपने घर से निकाल दिया। तब वह रसोई घर के पास जा कर रहने लगा। उसके कुकर्मों को देख कर राजा त्रय्यारुणि राज्य को त्याग कर तप करने के हेतु वन में चले गये।

हे नारद! राजा सत्यव्रत जिस वन में तप कर रहे थे, उन्हीं दिनों विश्वामित्र भी अपने घर-द्वार को त्याग कर तप करने के लिए वन में जा पहुँचे थे। सत्यव्रत भी उनके आश्रम के पास ही वन में रह रहा था। एक दिन विश्वामित्र की पत्नी दरिद्रता के कारण अपने मँझले पुत्र को कंठ में रस्सी बाँधकर बेचने लगी। वह उसके बदले में सौ गौ चाहती थी। सत्यव्रत ने दया करके उस बालक को छुड़ा दिया और स्वयं

उसका पालन-पोषण करने लगा। तब वह बालक गालव नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। उसके द्वारा संसार में एक गोत्र गालव्य नाम से चला।

हे नारद ! सत्यव्रत विश्वामित्र का हर प्रकार से प्रतिपालन करता था। जिस समय तक सत्यव्रत वन में रहा, उस समय वशिष्ठ मुनि राजा के राज्य तथा कुटुम्ब का संचालन करते रहे। बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी वशिष्ठ जी ने राजा सत्यव्रत को राज्य सिंहासन पर आ बैठने के लिए आमन्त्रित नहीं किया। एक बार सत्यव्रत क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित हुआ। तब उसने क्रुद्ध हो कर वशिष्ठ मुनि की एक गाय को मार डाला और उसका माँस विश्वामित्र मुनि के साथ स्वयं खाया।

हे नारद ! वशिष्ठ जी को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने सत्यव्रत को महान् पापी ठहराया। जब विश्वामित्र ने यह देखा कि वशिष्ठ न तो सत्यव्रत को उसके सिंहासन पर बैठा रहे हैं और न उसे सुख भोग ही करने देना चाहते हैं। इसके विपरीत उसे महापापी ठहरा बैठे हैं, तब उन्होंने सत्यव्रत को त्रय्यारुणि के स्थान पर अपने तपोबल के प्रभाव से चक्रवर्ती राजा बना दिया तथा सशरीर स्वर्ग पहुँचाया। जिस समय त्रिशंकु को देवताओं ने सशरीर स्वर्ग में आते देखा तो उन्होंने उसे स्वर्ग से नीचे गिरा दिया, परन्तु विश्वामित्र ने उसे पृथ्वी पर न गिरने देकर बीच में ही रोक दिया। तब वे राजा त्रिशंकु आकाश में लटका हुआ अब तक दिखाई देता है।

हे नारद ! राजा सत्यव्रत द्वारा हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ, वे परम धर्मात्मा हुए। जब उनके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, तो वे चिन्तित हो कर वन में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने तुम से उपदेश पा कर वरुण की आराधना की तथा यह संकल्प किया कि मेरे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसे मैं वरुण को बलि देकर यज्ञ करूँगा। उस तप के प्रभाव से वरुण ने राजा को एक पुत्र दिया। उसका नाम रोहित रखा गया। जब वह बालक उत्पन्न हुआ तो वरुण ने राजा के पास पहुँच कर यह कहा—"हे राजन् ! तुम अपने संकल्प के अनुसार इस बालक की बलि देकर

हमारा यज्ञ करो। उस समय राजा ने यह उत्तर दिया—"हे वरुण देवता ! जो पशु दाँतों से रहित होता है, उसकी बलि नहीं दी जाती। जब इस बालक के दूध के दाँत गिर कर नये दाँत आ जायेंगे, तब हम इसकी बलि देंगे। यह सुनकर वरुण देवता अपने स्थान को लौट गये। कुछ समय बाद जब उस बालक के दूध के दाँत टूट गये तथा उसके स्थान पर नये दाँत भी उग आये, तब वरुण ने फिर राजा के पास पहुँच कर कहा—"हे राजन् ! अब तुम अपने पुत्र की बलि हमें दो। राजा ने पुत्र के मोह में पड़कर उस समय वरुण को यह उत्तर दिया—"हे वरुण ! जब पशु तरुण हो जाता है, तब वह बलि के उपयुक्त होता है। अस्तु, आप इस बालक को तरुण हो जाने दीजिये।"

हे नारद ! जब वह बालक तरुण हो गया, तब राजा ने उसे वन में भेज दिया जिससे उसकी प्राण-रक्षा हो जाए। जब वरुण फिर राजा के पास आये तथा उन्हें छल मालूम हुआ तो उन्होंने राजा को जलोदर रोग दे दिया। रोग के कारण वे अत्यन्त दुःख भोगने लगे। जब यह समाचार रोहित को मिला तब वह अपने पिता को देखने के लिए वन से घर को चला, परन्तु इन्द्र ने उसे बीच में ही ब्राह्मण का स्वरूप धारण कर रोक दिया और यह कहा—"हे रोहित ! तुम्हें घर जाने की आवश्यकता नहीं है। तीर्थों में भ्रमण करना अत्यन्त पुण्यदायक है।" इन्द्र की बात मान कर रोहित घर न जा कर तीर्थों में भ्रमण करता रहा। इस प्रकार छः वर्ष व्यतीत हो गये।

हे नारद ! तदुपरान्त रोहित ने अपने पिता को रोग दूर करने के लिए अजीगर्त्त के मँझले लड़के शुनःशेप को बलिदान के लिए खरीदकर, अपने पिता राजा हरिश्चन्द्र के पास भेजा। जब राजा ने रोहित के बदले उस बालक को बलिदान करना चाहा, उस समय शुनःशेप ने विश्वामित्र के बताये हुए दो मंत्रों का पाठ किया, जिनके प्रभाव से वरुण देवता उस पर प्रसन्न हो गये और उसकी जान बच गयी। तदुपरान्त वरुण देवता ने हरिश्चन्द्र के रोग को भी दूर कर दिया। हरिश्चन्द्र के उपरान्त रोहित राज्य सिंहासन पर बैठा। रोहित का पुत्र हरित हुआ। हरित से

चम्प, चम्प से विजय, विजय से मृग, मृग से वृक तथा वृक से बाहु उत्पन्न हुए।

हे नारद ! जिस समय बाहु राज्य सिंहासन पर थे, तब उनके ऊपर शत्रुओं ने चढ़ाई कर दी और उन्हें राज्य से भ्रष्ट कर दिया। तब वे अपनी स्त्री तथा पुत्र सहित भाग कर ऊर्ज्ज मुनि की शरण में गये। वहाँ राजा बाहु की पत्नी ने सगर नामक एक बालक को जन्म दिया। वह बालक विष सहित उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसका नाम सगर रखा गया। बड़े होने पर सगर ने ऊर्ज्ज मुनि से एक परम तेजस्वी बाण प्राप्त किया तथा उसके द्वारा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। तत्पश्चात् वह अपने पिता के राज्य सिंहासन पर आसीन हो, धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। इस प्रकार राजा मान्धाता के बाद क्रमशः मुचुकुन्द, पुरुकुत्स, त्रय्यारुणि, सत्यव्रत अर्थात् त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, रोहित, हरित, चम्पक, विजय, मृग, वृक, बाहु तथा सगर राजा हुए।''

ॐ ॐ ॐ

इक्कीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाकर सूत जी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—''हे ऋषियो ! नारद जी जब राजा सगर का वृत्तान्त सुन चुके, तब उन्होंने ब्रह्मा जी से इस प्रकार कहा—''हे पिता ! बाहु के पुत्र सगर विष सहित क्यों उत्पन्न हुए, यह आप मुझे बताने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! राजा बाहु दिन-रात स्त्रियों के भोग-विलास में पड़कर जब राजकाज से उदासीन हो गये, उस समय हैहय, तालजंप तथा शक्र नामक उसके तीन परम शत्रु राजा राक्षसों की सेना साथ ले, उनके नगर पर चढ़ाई करने के लिए आ पहुँचे। उन्होंने युद्ध में राजा बाहु को हरा दिया। तब राजा बाहु ऊर्ज्ज मुनि की शरण में जा पहुँचे और उन्हीं के पास रहने लगे।

हे नारद ! वहाँ राजा बाहु की पत्नी गर्भवती हुई। तब उसकी दूसरी सौतन ने ईर्ष्या के वशीभूत हो, गर्भ नष्ट करने के हेतु, उस रानी को

विष पिला दिया। जिस समय बड़ी रानी गर्भवती हुई, उसी बीच राजा बाहु की मृत्यु हो गयी। रानी ने अपने पति के साथ सती होना चाहा परन्तु ऊर्ज्ज मुनि ने गर्भवती होने के कारण उसे सती नहीं होने दिया। यद्यपि रानी के गर्भ को नष्ट करने के लिए उसकी सौतन ने विष पिला दिया था, तथापि भगवान् सदाशिव की कृपा तथा मुनि के आशीर्वाद से गर्भ स्थित बालक की मृत्यु नहीं हुई। समय पा कर शुभ लग्न में रानी ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया। वह बालक विष सहित उत्पन्न हुआ था, इसलिए मुनि ने उसका नाम सगर रखा। बड़े होने पर मुनि ने सगर को सभी विद्याएँ सिखायीं तथा एक ऐसा बाण दिया, जिसका वार कभी निष्फल नहीं जाता था। तदुपरान्त उसने शिवजी का तप करके उनकी कृपा प्राप्त की।

हे नारद ! सगर ने युद्ध क्षेत्र में अपने सभी शत्रुओं को पराजित कर दिया। अब उसके शत्रु भाग कर वशिष्ठ जी की शरण में गये। सगर ने उनके प्राण तो नहीं लिये, परन्तु सब के स्वरूप को बिगाड़ कर, अनादर करते हुए अपने राज्य से निकाल बाहर किया। तत्पश्चात् राजा सगर ऊर्ज्ज मुनि को अपना गुरु बना कर, अश्वमेध यज्ञ करने लगे। उस यज्ञ में उन्होंने एक श्यामकर्ण घोड़े को दिग्विजय करने के लिए भेजा तथा अपने साठ सहस्त्र पुत्रों को भी असंख्य सेना सहित घोड़े की रक्षा के लिए साथ कर दिया। वह घोड़ा समुद्र के समीप जब आग्नेयकोण में पहुँचा, तब इन्द्र ने उसे छल करके चुरा लिया। इन्द्र उस घोड़े को कपिल मुनि के समीप बाँध कर अपने लोक को चले गये। जब राजपुत्रों ने यह देखा कि घोड़ा अदृश्य हो गया है, तो उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसकी खोज की। जब कहीं पता नहीं चला, तो उन्होंने पृथ्वी को खोद डाला। पृथ्वी के गर्भ में जा कर उन्होंने यह देखा कि कपिल मुनि के पास वह घोड़ा बँधा हुआ है तथा मुनि ध्यान में मग्न बैठे हैं।

हे नारद ! घोड़े को वहाँ देखते ही सब राजपुत्रों ने एक साथ चिल्लाकर कहा—"इस धूर्त्त को तो देखो कि यह हमारा घोड़ा चुरा

कर तपस्या करने का ढोंग कर रहा है।'' इतना कह कर वे कपिल मुनि को मारने के लिए दौड़े। उनकी चिल्लाहट सुनकर कपिल मुनि की समाधि भंग हो गयी। ज्योंहि मुनि की दृष्टि उन राजपुत्रों पर पड़ी, त्योंही वे सब जल कर भस्म हो गये। केवल पंचजन्य नामक एक बालक, जिसे असमंजस भी कहा जाता है और जो दूसरी रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, जीवित बचा रहा। उस असमंजस के पुत्र अंशुमान ने कपिलदेव के पास पहुँच कर उनकी बहुत प्रार्थना की तथा घोड़े को वापस लाकर, अपने पितामह का यज्ञ पूर्ण कराया।

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! आप अंशुमान का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! असमंजस राजा सगर की केशिनी नामक रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। वह अपने पूर्वजन्म में एक योगी था। योग भ्रष्ट हो जाने के कारण ही उसने राजा के घर जन्म पाया था। बचपन में वह अयोध्या के बालकों को एकत्रित कर सरयू नदी के जल में डुबा कर मार डालता तथा अनेक प्रकार के उपद्रव मचाता था। जब प्रजा उसके अत्याचार से बहुत दुःखी हुई, तो राजा सगर ने असमंजस को घर से बाहर निकाल दिया। उस समय वह उन सब बालकों को, जिन्हें उसने सरयू नदी के जल में डुबा कर मार डाला था, जीवित अवस्था में पुनः लौटा आया।

हे नारद ! इसी असमंजस का पुत्र अंशुमान था। वह अपने पिता महाराजा सगर की अत्यन्त सेवा किया करता था। अस्तु, जब श्यामकर्ण घोड़ा लौट कर नहीं आया तथा राजा सगर के साठ सहस्त्र पुत्र भस्म हो गये, तब अंशुमान घोड़े का पता लगाने के लिए घर से निकला। वह अपने चाचाओं द्वारा खोदे हुए मार्ग से पृथ्वी के भीतर कपिल मुनि के समीप जा पहुँचा। अंशुमान ने मुनि को दंडवत्-प्रणाम तथा सेवा द्वारा प्रसन्न कर दिया। तब विष्णु जी के अवतार कपिलदेव जी ने प्रसन्न हो कर उससे यह कहा—''हे अंशुमान ! तुम इस घोड़े को ले जा कर राजा सगर का यज्ञ पूर्ण कराओ। तुम्हारे साठ सहस्त्र चाचा यहाँ जल कर भस्म हो गये हैं। जब ये गंगा जल का स्पर्श पावेंगे तभी,

इन्हें मुक्ति मिलेगी। अस्तु, तुम गंगा जी को पृथ्वी पर लाने का उपाय करो।'' मुनि के इन वचनों को सुनकर अंशुमान घोड़े को लेकर घर लौट आया तथा राजा सगर ने अपना यज्ञ पूर्ण किया। इस प्रकार सौ अश्वमेध यज्ञ करने के उपरान्त राजा सगर अंशुमान को राज्य सिंहासन पर बैठा कर, स्वयं तपस्या करने के हेतु वन में चले गये।''

ॐ ॐ ॐ

बाईसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! आप मुझे राजा सगर के साठ सहस्त्र पुत्रों तथा असमंजस के जन्म का वृत्तान्त सुनाने की कृपा करें।'' ब्रह्मा जी बोले—''हे पुत्र ! सुनो, राजा सगर की दो रानियाँ थीं। पहली का नाम सुमति तथा दूसरी का केशनी था। इन दोनों रानियों ने अपनी सेवा द्वारा ऊर्ज्ज मुनि को अत्यन्त प्रसन्न किया। जब मुनि ने उन्हें वर माँगने के लिए कहा, उस समय सुमति ने यह कहा—''हे मुनि ! आप मुझे साठ सहस्त्र पुत्र दीजिये।'' केशिनी ने यह कहा—''हे मुनि ! मैं केवल एक पुत्र ही चाहती हूँ।'' तब मुनि ने उन्हें अभिलषित वर प्रदान किया। फलस्वरूप सुमति के गर्भ से एक तूँबी उत्पन्न हुई। उस तूँबी में छोटे-छोटे साठ सहस्त्र बीज भरे हुए थे। जब उस तूँबी को घृत के कुण्ड में डाला गया, तब उससे साठ सहस्त्र बालक उत्पन्न हुए। वे सब बालक ही कपिल देव मुनि की क्रोधाग्नि में पड़ कर भस्म हो गये।

हे नारद ! मुनि के आशीर्वाद से केशनी ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह संसार में पंचजन्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पंचजन्य से अंशुमान तथा अंशुमान से राजा दिलीप की उत्पत्ति हुई। अंशुमान ने अपने पुत्र दिलीप को राज्य देकर गंगा जी को लाने के लिए घोर तपस्या की, परन्तु मनोरथ पूर्ण होने से पहले ही वे मृत्यु को प्राप्त हो गये। तत्पश्चात् राजा दिलीप भी अपने पुत्र भगीरथ को राज्य देकर गंगा जी को पृथ्वी पर लाने के लिए तप करने लगे। परन्तु वे भी अपने पिता की भाँति

मनोरथ प्राप्त होने से पहले ही स्वर्गवासी हो गये। तदुपरान्त भगीरथ ने अपने तप द्वारा भगवती गंगा जी को प्रसन्न किया।

हे नारद ! भगीरथ के तप से प्रसन्न हो कर गंगा जी ने उसे दर्शन देकर यह कहा—"हे राजन् ! मैं तुम्हारी इच्छानुसार पृथ्वी पर आने के लिए तैयार हूँ, परन्तु मेरे वेग को रोकने की सामर्थ्य संसार में किसी में नहीं है। जिस समय में आकाश के नीचे गिरूँगी, उस समय अपने वेग के कारण पृथ्वी को फोड़ती हुई, पाताल में चली जाऊँगी। अस्तु, तुम सर्वप्रथम तपस्या द्वारा शिवजी को प्रसन्न करो। वे मेरे वेग को रोकने में समर्थ हैं। पृथ्वी पर गिरते समय वे मुझे अपनी जटाओं में धारण कर लेंगे। तदुपरान्त मैं उनकी जटाओं से निकल कर मन्द गति से बहती हुई तुम्हारी अभिलाषा को पूरी करूँगी।" इतना कहकर जब गंगा जी अन्तर्धान हो गयीं, तब भगीरथ ने शिवजी का तप करना आरम्भ किया। शिवजी ने प्रसन्न हो कर गंगा जी को अपने मस्तक पर धारण करना स्वीकार कर लिया। उस समय राजा भगीरथ को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ।

हे नारद ! राजा भगीरथ की प्रार्थना पर जिस समय गंगा जी आकाश से गिरीं, उस समय तीनों लोकों में हाहाकर मचने लगा। तब शिवजी ने अपनी जटाओं को खोल दिया। गंगा जी उन जटाओं में इस प्रकार लुप्त हो गयीं कि दिखाई भी नहीं देती थीं। तत्पश्चात् राजा भगीरथ द्वारा प्रार्थना किये जाने पर शिवजी ने अपनी जटाओं में से गंगा जल की तीन बूँदें निचोड़ दीं। उनमें से पहली धारा पाताल को चली गयी, जिसका नाम भोगवती प्रसिद्ध है। दूसरी धारा आकाश को गयी जिसे मन्दाकिनी कहा जाता है। तीसरी धारा राजा भगीरथ के साथ पृथ्वी पर आयी जो भगीरथी के नाम से प्रसिद्ध है। फिर राजा भगीरथ गंगा जी को साथ लिये उस स्थान पर पहुँचे जहाँ सगर के साठ सहस्त्र पुत्रों की भस्म एक ढेर के रूप में पड़ी हुई थी। गंगा जल का स्पर्श पाते ही वे सभी राज पुत्र मुक्त हो कर, स्वर्ग को चले गये। अस्तु, राजा सगर के उपरान्त इक्ष्वाकु वंश में निम्नलिखित राजाओं ने क्रमानुसार राज्य किया—असमंजस, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ,

श्रुतनाभि, सिन्धुदीप, अयुतायु, ऋतुपर्ण (जिन्हें सुदास भी कहा जाता है), अनुपर्ण, मित्रसह (जिन्हें कल्माषपाद भी कहा जाता है), ऋषभ, अनरण्य, मण्डिद्रुम तथा निषध (जिसे खट्वांग भी कहते हैं)। राजा खट्वांग चक्रवर्ती राजा हुआ, अतः उन्हें चक्रवर्ती कहकर भी सम्बोधित किया जाता है।''

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! राजा खट्वांग के पुत्र दिलीप हुए। इन दिलीप को दीर्घबाहु भी कहा जाता है। दिलीप ने अपने गुरु की गाय नन्दिनी की बहुत सेवा की। उस सेवा के प्रताप से उन्हें रघु नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। रघु ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर अपना राज्य स्थापित किया। तभी से सूर्यवंश, जो राजा इक्ष्वाकु के नाम पर इक्ष्वाकु वंश के नाम से प्रसिद्ध था, संसार में रघुवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजा रघु के पुत्र का नाम अज था। अज की पत्नी का नाम इन्दुमती था। अज ने अपने सभी शत्रुओं को युद्ध-भूमि में परास्त किया। अज के पुत्र राजा दशरथ हुए। राजा दशरथ पर शनिश्चर ग्रह का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा था। राजा दशरथ ने राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नामक चार पुत्रों को जन्म दिया। इन चारों में रामचन्द्रजी विष्णु जी के मुख्य अवतार थे।

हे नारद ! इस प्रकार राजा दिलीप के वंश में क्रमानुसार निम्नलिखित राजा हुए—

रघु, अज, दशरथ, रामचन्द्र, कुश, अनित्य, निषध, पुण्डरीक, क्षेमध्वज, दिवा, आविक, परिपत्र, बलि, अस्थिल, वज्रनाभ, खगन तथा कंकनाभ। कंकनाभ जैमिनी के शिष्यों में प्रमुख थे, जिनके द्वारा याज्ञवल्क्य ने योगशास्त्र में दक्षता प्राप्त की थी। कंकनाभ के पश्चात् क्रमशः पुष्य, ध्रुवसिन्धु, सुदिति, अग्निपर्ण, अग्निशीघ्र तथा मरुत्त नामक राजा हुए।

हे नारद ! राजा मरुत्त अमर है। उन्होंने ऐसा यज्ञ किया, जैसे कोई दूसरा नहीं हुआ है। कलियुग का आगमन जान कर वे भरतखण्ड को छोड़ कर सप्तर्षियों ने जहाँ आश्रय लिया, उस कलाप ग्राम में जा कर रहने लगे। कलियुग के समाप्त हो जाने पर राजा मरुत्त पुनः भरतखण्ड में आवेंगे तथा सूर्यवंश की वृद्धि करेंगे। मरुत्त के पुत्र राजा वाण हुए। वाण के पश्चात् क्रमशः प्रश्नकृतसिन्धु, उष्ण, सहस्त्रबाहु, पशुशाङ्किक, प्रसेनजित, तक्षक तथा बृहद्वल नामक राजा हुए। बृहद्वल को अर्जुन ने मारा डाला था। इक्ष्वाकु से लेकर वृहद्वलतक सभी राजा इक्ष्वाकुवंशी हैं।

हे नारद ! अब मैं तुम्हें उन राजाओं के नाम सुनाता हूँ, जो इस वंश में आगे चल कर होंगे। बृहद्वल के बृहदराण्य नामक पुत्र उत्पन्न होगा। उसके वंश में निम्नलिखित राजा उत्पन्न हो कर अयोध्यापुरी का राज्य करेंगे—

उरुकत्रृषि, वत्सनवृद्धि, प्रतिव्योम, द्वारक, सहदेव, वृहदश्व, भानुमान, प्रतीकाश, सुप्रतीक, मुहदेव, शुनकच्छत्र, पुष्कर, अन्तरिक्ष, सुप्ता अमित्रजित्, वृहद्राज, विरही, कृतंजय, रत्नंजय, शाकप्राश, सिद्धोद, लांगल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, रंगयाम, सुरथ तथा सुमन्त्र। इक्ष्वाकु वंश केवल राजा सुमन्त्र तक चलेगा। तदुपरान्त दूसरा वंश आरम्भ होगा। सूर्यवंश की यह कथा अत्यन्त पवित्र है। इसे पढ़ने तथा सुनने से दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त होता है।''

❁ ❁ ❁

चौबीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनकर नारद जी ने कहा—''हे पिता ! आपने श्राद्धदेव तथा श्राद्ध का वर्णन किया। अब मेरी यह इच्छा है कि आप मुझे श्राद्ध का विधान विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें। श्राद्ध करने से पितर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, परन्तु मैं यह नहीं जानता हूँ कि पितर कौन हैं।''

यह सुनकर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—''हे नारद ! जिस प्रकार तुमने

मुझसे पूछा है, उसी प्रकार भीष्म-पितामह ने भी यह प्रश्न मार्कण्डेय मुनि से किया था। उस समय मार्कण्डेय मुनि ने इस सम्बन्ध में सनत्कुमार से जो कुछ सुना था, उस वृत्तान्त का वर्णन किया था। अस्तु, मैं तुम्हें भीष्म पितामह तथा मार्कण्डेय के प्रश्नोत्तर रूप में इस सम्बन्ध में बताता हूँ।

हे नारद ! जिस समय भीष्म पितामह कुरुक्षेत्र में शरशैय्या पर लेटे हुए थे, उस समय राजा युधिष्ठिर ने उनके पास पहुँच कर यह प्रार्थना की—"हे पितामह ! जो मनुष्य संसार में पुत्र की इच्छा रखते हैं, उन्हें क्या करना उचित है? वंश-वृद्धि का कौन-सा उपाय होता है?" भीष्म पितामह ने कहा—"हे राजन् ! जो लोग श्राद्ध करते हैं, उन्हें सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति होती है। पितरों के प्रसन्न होने पर वंश की वृद्धि भी होती है तथा दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्द मिलता है। अस्तु, पितरों की प्रसन्नता के हेतु श्राद्ध करना ही सब से सुगम साधन है।"

हे नारद ! यह सुनकर युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से कहा—"हे प्रभो ! आपने पितरों की महिमा का वर्णन किया, वह उचित है, परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि कुछ लोगों के पितर नरक में रहते हैं, कुछ के स्वर्ग में रहते हैं और कुछ के संसार में भ्रमण करते रहते हैं। ऐसी अवस्था में वे अपनी सन्तानों का कल्याण किस प्रकार कर सकते होंगे?" भीष्म जी बोले—हे युधिष्ठिर ! इस सम्बन्ध में, मैं तुम्हें एक वृत्तान्त सुनाता हूँ। एक दिन जब मैं श्राद्ध करने को उद्यत हुआ, उस समय मेरे पिता महाराज शान्तनु दिव्य स्वरूप धारण कर मेरे समीप आये। जब मैंने उनके हाथ में पिण्ड रखना चाहा तो वे मुझ से इस प्रकार बोले—"हे भीष्म ! तुम्हें इस प्रकार पिण्ड देना उचित नहीं है। तुम पिण्ड को कुशा में रख कर पृथ्वी पर रख दो, तभी वह मुझे प्राप्त होगा।" यह सुनकर मैंने उनकी आज्ञानुसार पिण्ड दान किया, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो कर इस प्रकार बोले—"हे भीष्म ! जब तक तुम जीवित रहोगे, तब तक तुम्हारा बल नहीं घटेगा। जब तुम चाहोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी। यह वरदान हम तुम्हें देते हैं। इसके अतिरिक्त यदि

तुम और कुछ चाहो तो वह वर माँग लो। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसे हम न दे सकें।''

हे युधिष्ठिर ! उनके मुख से यह वचन सुनकर मैंने प्रार्थना करते हुए यह कहा—''हे महाराजा ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप मुझे पितर एवं श्राद्ध के सम्बन्ध में सब वृत्तान्त सुनाने की कृपा करें।'' तब महाराज ने मुझे उत्तर देते हुए यह कहा—''हे भीष्म ! हमने एक बार मार्कण्डेय मुनि से पितृ कल्प के बारे में पूछा था। उस समय उन्होंने हमें जो उत्तर दिया, वह हम तुम्हें सुनाते हैं। मार्कण्डेय जी ने हमें सुनाया कि एक बार हम तपस्या कर रहे थे, उसी समय हमारी दृष्टि अचानक आकाश की ओर उठ गयी। तब हमने यह देखा कि एक विमान में अँगूठे के समान आकार वाला एक बालक बैठा हुआ, अन्तरिक्ष में उड़ता चला जा रहा है। हमने उस बालक को दण्डवत-प्रणाम करने के उपरान्त यह कहा—''हे प्रभो ! आप कौन हैं, यह हमें बताने की कृपा करें?'' उस समय उस बालक ने उत्तर दिया—''हे मार्कण्डेय ! हमारा नाम सनत्कुमार है। हम चार भाई हैं तथा हम सभी अन्तरिक्ष में भ्रमण करते रहते हैं।'' यह सुनकर हमने सनत्कुमार जी से यह कहा—''हे प्रभो ! आप मुझे पितृ कल्प का वर्णन सुनाने की कृपा करें।'' तब सनत्कुमार जी ने जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार है—

सनत्कुमार जी ने कहा—''हे मार्कण्डेय ! पूर्वकाल में जब ब्रह्मा जी ने देवताओं को उत्पन्न किया, तो उन्होंने सब को यह आज्ञा दी कि तुम हमारी सन्तान हो, अस्तु, यज्ञ किया करना, परन्तु देवताओं ने ब्रह्मा जी की इस आज्ञा को नहीं माना। वे केवल अपने ही प्रयोजन में लगे रहे। तब ब्रह्मा जी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर यह शाप दिया—''हे देवताओ ! तुमने हमारी आज्ञा का तिरस्कार किया है। अस्तु, तुम सब ब्रह्मज्ञान एवं सत्यज्ञान से रहित हो कर माया में भटकते रहोगे।'' ब्रह्मा जी के इस शाप के कारण सब देवताओं का ज्ञान नष्ट हो गया। तब वे अत्यन्त दुःखी हो कर उनकी शरण में गये और अत्यन्त सेवा करके यह कहने लगे—''हे पिता ! आप हमारे अपराध को क्षमा कर, पुनः ज्ञान

प्रदान करें। उस समय ब्रह्मा जी ने उनसे यह कहा—"हे देवताओ ! तुम सब अपने विमानों से नीचे उतर कर, अभिमान त्याग, अपने पुत्रों के पास जाओ और इस सम्बन्ध में उनसे प्रार्थना करो।"

ब्रह्मा जी की इस आज्ञा के अनुसार सब देवता अपने पुत्रों के पास गये तथा उनसे यह कहने लगे कि तुम हमें ज्ञान प्रदान करो। उस समय उन सभी पुत्रों ने अपने-अपने पिताओं को सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहा—"हे पुत्रो ! तुम अब पूर्ववत् पुनः ज्ञान प्राप्त करोगे।" जब देवताओं ने अपने पुत्रों के मुख से अपने लिए 'पुत्र' सम्बोधन सुना, तो वे अत्यन्त आश्चर्य में भर कर ब्रह्मा जी के पास गये तथा लज्जित हो कर यह प्रार्थना करने लगे—"हे पिता ! यह तो बड़ा अन्धेर है कि हमारे पुत्र मुझ को अपना लड़का कहते हैं। आप कृपा करके यह भेद हमें समझावें। देवताओं की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—"हे देवताओ ! तुम्हारे पुत्र ज्ञानी तथा विद्वान् हैं। तुमने जिन्हें उत्पन्न किया है, वे सब धर्म की वृद्धि करने वाले हैं। अस्तु, तुम सभी देवता परस्पर एक-दूसरे के पुत्र हो। अब तुम्हें यह उचित है कि तुम सब मिलकर यज्ञ करो, तभी हम तुम्हें आनन्द प्रदान करेंगे।"

हे मार्कण्डेय ! ब्रह्मा जी के मुख से पितरों का यह मुख्य वृत्तान्त जान कर, सब देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय से सब देवता तथा पितर संयुक्त हो कर संसार के सम्पूर्ण कार्यों को करते हैं। जो मनुष्य पितरों का श्राद्ध करते हैं, वे अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करते हैं। सभी पितर परस्पर एक-दूसरे के पुत्र हैं। इनमें सात प्रकार हैं। तीन प्रकार के पितर शरीर रहित हैं तथा चार प्रकार के पितर शरीरधारी हैं। हे मार्कण्डेय ! पितरों की ऐसी महिमा जान कर तुम उनकी भक्ति करो। जप तथा योग आदि उपायों द्वारा भी जो परमपद को प्राप्त नहीं होता, वह प्रेमपूर्वक पितरों की सेवा करने से मिल जाता है। जो मनुष्य अपने गोत्र का उच्चारण कर, शुद्ध-मंत्रों द्वारा पितरों को पिण्डदान करते हैं, वे सदैव प्रसन्न रहते हैं। श्राद्ध के समय पिता, पितामह आदि सभी पिण्ड ग्रहण करने के लिए आते हैं। पितरों को तर्पण देने वाले दोनों लोकों में सदैव आनन्दित रहते हैं।

मार्कण्डेय मुनि बोले—"हे शान्तुन ! इस प्रकार पितरों की महिमा सुनाकर सनत्कुमार ने मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान की। अस्तु, तुम्हें भी यह उचित है कि तुम पितरों की भक्ति करो, क्योंकि पितरों के समान श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। जो पितरों की महिमा को पढ़ते हैं अथवा सुनते हैं, वे भी दोनों लोकों में अत्यन्त आनन्दित रहते हैं।"

ॐ ॐ ॐ

पच्चीसवाँ अध्याय

यह वृत्तान्त सुनाकर भीष्म पितामह ने राजा युधिष्ठिर से कहा—"हे राजन् ! महाराज शान्तनु इतना कहकर पिण्डदान ग्रहण कर अन्तर्धान हो गये तब मैंने मार्कण्डेय मुनि के पास जा कर पितृकल्प के संबन्ध में पूछताछ की। उस समय मार्कण्डेय जी ने मुझे पितृकल्प के सम्बन्ध में सुनाते हुए यह कहा था—"हे भीष्म ! पूर्वकाल में भरद्वाज मुनि ने सात पुत्रों को जन्म दिया था। वे सब बड़े योगाभ्यासी हुए, परन्तु किसी कुकर्म के कारण योग भ्रष्ट हो, दूसरे जन्म में विश्वामित्र मुनि के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। उस समय उनके नाम इस प्रकार थे—1. पाकदिष्ट, 2. क्रोधन, 3. उदित, 4. हनुसर्प, 5. शुनक, 6. विषसर्प तथा 7. पितृवर्त्ती। इन सातों ने गर्ग मुनि को अपना गुरु बनाया। तदुपरान्त विश्वामित्र ने एक बार अप्रसन्न हो कर इन सातों लड़कों को शाप देते हुए अपने आश्रम से निकाल दिया। तब वे गर्ग के यहाँ चले गये। गर्ग मुनि के यहाँ एक कपिला गाय थी। वह प्रतिवर्ष एक बछड़े को जन्म देती थी। एक दिन वह गौ बिना किसी चरवाहे के अकेली वन में चली गयी। तब गर्ग मुनि ने इन सातों को गाय ले आने के लिए भेजा।

हे भीष्म ! जिस समय वे सातों गाय को लेकर लौट रहे थे, उसी समय उन्हें बड़े जोर की भूख लगी। तब उन्होंने अपनी बालबुद्धि के अनुसार गौ को मार कर भूख मिटाने का विचार किया। उनमें से कुछ बालक तो गाय को मारने के पक्ष में थे और कुछ यह कहते थे कि गुरु की गाय को मारना ठीक नहीं है। अन्त में, जो बालक सबसे छोटा था

और पितरों का भक्त था, उसने सब लोगों को सम्बोधित करते हुए यह सुझाव दिया कि तुम लोग सर्वप्रथम पितरों का आवाहन करके श्राद्ध करो, तदुपरान्त इस गाय को मारकर खा लो। ऐसा करने पर कोई पाप नहीं लगेगा। छोटे भाई की बात सब भाइयों को पसन्द आ गयी। तब उन्होंने गाय को मार कर अपनी भूख को बुझाया और गुरु के पास जा कर यह कह दिया—"हे गुरुदेव ! गाय को तो सिंह खा गया है, केवल उसका बच्चा शेष रह गया है।" गर्ग मुनि अत्यन्त कृपालु तथा सीधे थे। अस्तु, उन्होंने इस कथन को सत्य समझकर, कुछ नहीं कहा।

हे भीष्म ! मृत्यु के उपरान्त वे सातों भाई एक व्याध के घर में उत्पन्न हुए। यद्यपि उन्होंने वहाँ व्याध का जन्म पाया था, तो भी पूर्वजन्म के कारण वे जीवों की हिंसा नहीं करते थे। उन्होंने सारंग देश में स्थित हो कर धर्मव्रत का कठोर पालन किया। पूर्वजन्म में उन्होंने पितरों का तर्पण करने के उपरान्त गोवध किया था, इसलिए वे पूर्वजन्म के हाल तथा ज्ञान नहीं भूले थे। व्याध के घर जन्म लेने पर उनके नाम इस प्रकार हुए—1. नरवीर, 2. निवृत्ति, 3. शान्त, 4. निर्मन, 5. क्रतु, 6. शशि तथा 7. मातृव्रती। जब इनके माता-पिता मर गये तो ये सातों धनुष-बाण छोड़ कर, धर्म-मार्ग में स्थित हुए और समय आने पर मृत्यु को प्राप्त हुए।

हे भीष्म ! चौथे जन्म में वे सातों हिरण हुए और एक साथ ही कालिञ्जर पर्वत पर रहने लगे। उस समय उनके नाम इस प्रकार थे—1. नित्य, 2. त्रसित, 3. उन्मुख, 4. बधिर, 5. भद्र, 6. अनेत्र तथा 7. नारदप्रिय। हिरण के जन्म में भी उन सातों को अपने पूर्व जन्मों का स्मरण रहा। कुछ समय पश्चात् वहाँ भी वे मृत्यु को प्राप्त हुए। आज तक कालिञ्जर पर्वत पर उनके चरण-चिह्न दिखाई देते हैं।

हे भीष्म ! पाँचवें जन्म में ही वे शरद्वीप में चकवा-चकवी हो कर उत्पन्न हुए। उस समय उनके नाम इस प्रकार थे—1. निःस्पृह, 2. निर्मम, 3. शान्त, 4. अद्वन्द, 5. अपरग्र, 6. वृत्त तथा 8. निवृत्त। इस जन्म में भी उन्हें पूर्व-जन्म का स्मरण रहा। अस्तु, नदी के तट पर तपस्या करते हुए वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

हे भीष्म ! छठे जन्म में वे मानसरोवर में जा कर हंस हुए। उस समय उनके नाम इस प्रकार थे—1. सुमन, 2. सुवाक्, 3. सिद्ध, 4. पंचम, 5. शुद्रदर्शन, 6. सुनेत्र तथा 7. स्वतन्त्र। मानसरोवर वहाँ स्थित है, जहाँ से सरयू नदी का उद्‌गम हुआ है। वह स्थान योगी, तपस्वी एवं सिद्धों के रहने का है, वहाँ भगवान् सदाशिव सदैव विराजमान रहते हैं। ये सातों हंस वहीं रहकर अपने पूर्वजन्मों का स्मरण किया करते तथा मन ही मन भगवान् सदाशिव का ध्यान धरते रहते थे।

हे भीष्म ! अब तुम दूसरा वृत्तान्त सुनो। इस पृथ्वी पर कम्पिला नामक एक देश है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ विभ्राज नामक एक धर्मात्मा राज्य करता था। एक दिन वह अपनी रानियों सहित शिकार खेलता हुआ मानसरोवर के समीप वन में जा पहुँचा। उस राजा की शोभा तथा सामग्री को देखकर स्वतंत्र नामक सब से छोटे हंस ने अपने मन में यह अभिलाषा की कि मैं इस राजा के समान हो जाऊँ तो बहुत शुभ हो। यदि मुझे अपने सम्पूर्ण नियम, तप आदि शुभ-कर्मों के प्रताप से राजा का जन्म मिले, तो इससे बढ़कर सुख कोई अन्य नहीं होगा। जिस समय स्वतन्त्र ने अपनी अभिलाषा अन्य हंसों पर प्रकट की, उस समय शुद्रदर्शन तथा सुनेत्र नामक दोनों हंसों ने यह कहा— "यदि तुम राजा बनो तो हमारी यह इच्छा है कि हम दोनों तुम्हारे मंत्री हों।" अपने भाइयों की बात को सुनकर सुवाक् बोला—"शिवजी की कृपा से स्वतंत्र कम्पिला नगर का राजा होगा तथा शुद्रदर्शन और सुनेत्र उनके मंत्री होंगे। यह सुनकर सुमन ने उत्तर दिया—"ये तीनों कुछ दिनों तक राजसुख भोग कर अन्त में योग मार्ग ग्रहण करेंगे। यह मेरा कथन है।" इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके वे सभी चुप हो गये।

हे भीष्म ! इसके उपरान्त राजा विभ्राज शिकार आदि खेल कर अपनी राजधानी में लौट आया। कुछ समय बाद वह अपने अनुज नामक पुत्र को राज्य सौंप कर स्वयं तपस्या करने के लिए उसी मानसरोवर पर जा पहुँचा, जहाँ वे सातों हंस निवास करते थे। राजा विभ्राज ने वहाँ कठिन तप करके परम पद को प्राप्त किया। जिस

स्थान पर उसने तप किया था, वह स्थान विभ्राजित-वन के नाम से इस संसार में प्रसिद्ध हुआ।

हे भीष्म ! इसके पश्चात् वे तीनों हंस, जिनके हृदय में राजा तथा मंत्री बनने की अभिलाषा उत्पन्न हुई थी, मृत्यु को प्राप्त कर, कम्पिलापुरी में उत्पन्न हुए। उनमें से स्वतन्त्र नामक हंस राजा बना और संसार में ब्रह्मदत्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शुद्रदर्शन तथा सुनेत्र नामक दोनों हंसों ने एक श्रेत्रिय ब्राह्मण के घर में जन्म लिया। वे पाञ्चक तथा कुण्डरीक नाम से प्रसिद्ध हुए। जब ब्रह्मदत्त बड़ा हुआ तो कम्पिला देश का राजा तपस्या करने के लिए वन में चला गया। तब ब्रह्मदत्त राजा हो कर प्रजा का पुत्र के समान पालन करने लगा तथा श्रेत्रिय ब्राह्मण के पुत्र उसके मंत्री हो गये। इस प्रकार शिवजी की कृपा से उन्होंने अपने-अपने मनोरथों को प्राप्त किया। राजा ब्रह्मदत्त की रानी का नाम सुनीता था।

हे भीष्म ! शेष चार हंसों ने भी, जिन्होंने सांसारिक सुख का भी कोई लोभ नहीं किया था, एक श्रेत्रिय ब्राह्मण के घर में जन्म लिया। उस समय उनके नाम इस प्रकार हुए—

1. भ्रष्ट, 2. महात्मा, 3. नित्यदर्श तथा 4. निरतशुक। ये चारों बड़े ज्ञानी तथा योगभ्यासी हुए। इस प्रकार वे तीनों भाई—जो राजा तथा मंत्री बने थे, अपने योगपद से च्युत हो गये, परन्तु ये चारों पहले के समान योगमार्ग में संलग्न हुए। एक बार इन चारों ने महापथ की यात्रा करने का निश्चय किया।"

ॐ ॐ ॐ

छब्बीसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय जी ने कहा—"हे भीष्म ! जिस समय उस ब्राह्मण ने यह देखा कि उसके चारों पुत्र महापथ की यात्रा को जाने को प्रस्तुत हैं, उस समय उसने अत्यन्त दुःखी हो कर यह कहा—"हे पुत्रो ! तुम चारों तो महापथ की यात्रा को जाते हो, मैं अकेला घर पर रह कर क्या

करूँगा? अब या तो तुम मुझे भी अपने साथ लेते चलो, अन्यथा मेरे क्रिया-कर्म का उपाय करते जाओ, जिससे मुझे इस वृद्धावस्था में कष्ट न भोगना पड़े। मैं इतना दरिद्र हूँ कि घर में भोजन के लिए कुछ नहीं है। मेरे धन के रूप में केवल तुम चारों ही हो। अस्तु, मुझे अकेला छोड़कर जाना तुम्हें उचित नहीं है।'' यह सुनकर उन लड़कों ने उत्तर दिया—''हे पिता ! तुम कम्पिला नगरी के राजा ब्रह्मदत्त तथा उसके दोनों मन्त्रियों के पास जा कर हमारा संदेश कहना। वे तुम्हें असंख्य धन दे देंगे जिससे तुम्हारा जीवन सुखपूर्वक कट जायेगा।''

हे भीष्म ! इतना कहकर उन्होंने राजा ब्रह्मदत्त तथा उसके मन्त्रियों के नाम एक पत्र इस आशय का लिखा—''हे भाइयो ! हम तुम पूर्वजन्म के भाई हैं। पहले जन्म में कुकर्म करने के कारण हम व्याघ्र हुए। तदुपरान्त मृग, चक्रवाक तथा हंस हुए। तुमने वन में एक बार राजा को देखा, जिससे तुम्हारी आसक्ति राज्य पाने में हुई। उस आसक्ति के कारण तुम योग-भ्रष्ट हो कर, राजा तथा मंत्री बने हो और हम चारों इस ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुए हैं। अब हम लोग महापथ की यात्रा पर जा रहे हैं। अस्तु, उचित है कि तुम भी घर में व्यर्थ पड़े न रहकर हमारा साथ दो। हम अपने पिता को तुम्हारे समीप भेज रहे हैं। तुम उन्हें बहुत-सा धन देकर प्रसन्न करना तथा अपने पुत्रों को राजकाज सौंपकर हमारे पास शीघ्र आना।''

हे भीष्म ! इस प्रकार पत्र लिख कर उन चारों ने अपने पिता को विदा किया और स्वयं महापथ की यात्रा को चल दिये। वह ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हो कर, धन प्राप्त करने के लिए कम्पिला पुरी में जा पहुँचा, परन्तु उसे वहाँ राजा से भेंट करने का अवसर नहीं मिला। तब वह एक स्थान पर ठहर कर, राजा से भेंट करने की प्रतीक्षा करने लगा। संयोगवश उन्हीं दिनों राजा के घर एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम विश्वक्सेन रखा गया। विश्वक्सेन गुण, सौन्दर्य, बल तथा बुद्धि में अद्वितीय था। पुत्र उत्पन्न होने पर राजा ब्रह्मदत्त अपनी रानी तथा मन्त्रियों को साथ लेकर भ्रमण करने के लिए वन में जा पहुँचा, वहाँ उसने अनेक प्रकार से आनन्द मनाया।

हे भीष्म ! एक दिन राजा ने वन में किसी पशु को मैथुन करते हुए देखा, तब उसने यह इच्छा प्रकट की कि हम भी अपनी रानी के साथ संभोग करें। अस्तु, जब वह इस इच्छा से रानी के पास गया, तब रानी ने नम्रता, क्रोध, लज्जा, संकोच तथा विनय का आश्रय लेकर राजा को संभोग करने से रोका। जब राजा ने उसकी यह गति देखी तो पूछा—"हे रानी ! तुम इस प्रकार हठ तथा निषेध क्यों कर रही हो सो मुझे बताओ।" रानी ने उत्तर दिया—"हे राजन् ! यदि मैं इसका कारण आपको बता दूँगी, तो मेरी तुरन्त मृत्यु हो जायेगी। अस्तु, आप इस संबंध में मुझसे कुछ भी पूछने की कृपा न करें।" रानी के यह वचन सुनकर राजा अत्यन्त आश्चर्यचकित हो, निर्जल व्रत धारण कर, जगदीश्वर का ध्यान करने लगा। जब उसे व्रत रखते हुए छः दिन तथा छः रात व्यतीत हो गयी, तब परमेश्वर ने प्रकट होकर राजा से यह कहा—"हे राजन् ! प्रातःकाल होने पर तुम्हें सब वृत्तान्त ज्ञात हो जाएगा।"

हे भीष्म ! इतना कहकर जब परमेश्वर अन्तर्धान हो गये। तब प्रातःकाल होने पर राजा अपनी रानी तथा मंत्री को साथ लेकर राजधानी की ओर लौट चला। जिस समय वह राजधानी को लौट रहा था, तभी मार्ग में अवसर पा कर उस ब्राह्मण ने, जो राजा, के अन्य चार भाइयों का पिता था, वह पत्र राजा को दिया। उस पत्र को पढ़ते ही राजा का मन संसारी मोह-माया से विरक्त हो गया। तब उसने ब्रह्मण को बहुत-सा धन देकर विदा कर दिया। फिर स्वयं भी अपने पुत्र को राज्य-सिंहासन सौंप कर रानी सहित तपस्या करने के हेतु महापथ की यात्रा पर चला गया।

हे भीष्म ! जब राजा मानसरोवर को जा पहुँचा, तब वहाँ उसकी सुमीता नामक रानी ने, जो देवल की पुत्री थी, उसे बताया—हे स्वामिन् ! उस समय मैंने आपके साथ जो संभोग नहीं किया था, उसका कारण यह था कि मैं आपको संसारी भोग-विलास से विरक्त करके, यथार्थ मार्ग पर लाना चाहती थी। ईश्वर की कृपा से मेरा यह मनोरथ पूर्ण हुआ। आप इस अपराध के लिए मुझे क्षमा प्रदान कर

दें।'' रानी के मुख से यह वचन सुनकर राजा ब्रह्मदत्त को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। तदुपरान्त वह वहीं रहकर, रानी सहित भगवान् शिवजी की तपस्या करने लगा और अन्त में परमपद को प्राप्त हुआ।

हे भीष्म ! कुण्डरीक नामक जो भाई मंत्री था, वह भी राजा के चले जाने के उपरान्त अपने पूर्वजन्मों का स्मरण कर, संसारी मोह-माया त्याग, सांख्यशास्त्र की रीति से योग धारण कर मुक्त हो गया तथा पांचक नामक दूसरा मंत्री भी वेद की रीति के अनुसार शिवजी का तप कर, योग-मार्ग द्वारा परमपद को प्राप्त हुआ। इस प्रकार विश्वामित्र के सातों पुत्र अनेक जन्मों में अनेक शरीर धारण करने के उपरान्त मोक्ष को प्राप्त हुए, उनकी मुक्ति का कारण पितरों की सेवा ही समझनी चाहिए। पितरों की भक्ति करने से मोक्ष अवश्य प्राप्त होती है।

ब्रह्मा जी ने कहा—''हे नारद ! भीष्म पितामह के मुख से पितरों की ऐसी महिमा सुनकर युधिष्ठिर को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई। तब से उन्होंने अपना मन पितरों की सेवा में विशेष रूप से लगाया। पितरों का यह चरित्र अत्यन्त पवित्र है। जो लोग इसे पढ़ते, सुनते अथवा दूसरों को सुनाते हैं, वे संसार में सब प्रकार के आनन्द प्राप्त कर, अन्त में मुक्त हो जाते हैं।''

इतनी कथा सुनाकर सूत जी ने कहा—''हे शौनकादि ऋषियो ! ब्रह्मा जी के मुख से शिवजी के गुण-चरित्रों का श्रवण कर, नारद जी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा भगवान् सदाशिव का स्मरण-कीर्तन करते हुए, उनसे विदा लेकर भ्रमण करने हेतु चल दिये। भगवान् सदाशिव की महिमा तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। जो लोग श्री शिव-गिरिजा का स्मरण, पूजन एवं ध्यान करते हैं, उन्हें दोनों लोकों में अवश्य ही आनन्द प्राप्त होता है।''

इति श्रीशिवपुराणे ब्रह्मानारदसम्वादे भाषायां
एकादशखण्डस्समाप्तः ॥ ११॥ शिवार्पणमस्तु

ॐ ॐ ॐ


प्रदीप पब्लिशर्ज़
जालन्धर-4
MEHTA COMPUTERS